## -+{ः चक्रदत्त ः}-

#### सारचिनद्रका नामक विस्तृत हिन्दी भाषा टीका सहित

भनुवादक-रसतरिङ्गणी के प्रयेता,

## स्वर्गीय-कविराज सदानन्द शास्त्री प्राणाचार्य

यह प्रन्थ इतना दुरूह है कि प्राचीनकाल में ही-इस प्रन्थ की रलप्रमा, मानुमती, तत्त्वचित्रका आदि अनेक संस्कृत व्याख्याए वन चुकीं थीं। यद्यिए (हिन्दी, वगला आदि) मारतीय माषाओं में इस समय इसकी अनेक व्याख्याए मिलती हैं। किन्तु—मूलार्थ को लगाने वाली ऐसी सरल व्याख्या आजतक कोई नहीं वनी। प्राणाचार्य महोदय ने इस हिन्दी व्याख्या में मूल के ही अर्थ को सरल तथा सरस वनाने का प्रयन्न नहीं किया है, अपितु सन्दिग्ध तथा विषम स्थलों पर प्राचीन आचार्यों के विभिन्न मतों का उल्लेख कर दिया है। इस व्याख्या में एक और भी यह विशेषता है (जो कि अन्य संस्कृत अथवा भारतीय माषा लिखित व्याख्याओं में कहीं भी नहीं मिलती, एव जिसकी आवश्यकता पद २ पर अनिवार्य जान पहती है) कि-इस व्याख्या में योगों की वर्तमानकालोचित मात्राओं का भी उल्लेख कर दिया है। इस व्याख्या को पढ़कर विद्यार्थी परीला में अनायास ही पास हो सकते हैं।

इस न्याख्या के साथ रत्नप्रमा नामक टिप्पणी भी है, जिसमें जटिल विषयों का विवेचन वड़ी सरल रीति से किया गया है। इस टिप्पणी की सहायता से अध्यापक महोदय विद्यार्थियों की शाहाओं का समाधान वड़ी छुगमता से कर सकते हैं। मारत के भिन्न २ प्रकाशकों ने जितने भी सस्करण इस प्रन्थ के निकाले हैं उनमें यह बड़ी मही भूल रह गई है कि—मूल पाठ बहुत ही अशुद्ध छुपा है। इस प्रन्थ में (जो पाठ जिस प्रन्थ से उद्धृत किया गया है, उस प्रन्थ में उस पाठ को देखकर ) मूल पाठ को भी बड़ी खोज से शुद्ध किया गया है। इन्हीं विशेषताओं के कारण इस प्रन्थ के कलवर को सजाने के लिए उत्तम, मस्य, सुदृढ एवं कमनीय कागज का उपयोग किया है। इस प्रन्थ की छुपाई ऐसी अनोखी है, कि वम्बई के सुप्रसिद्ध मुद्रणालयों से भी आजतक ऐसी पुस्तक नहीं निकली। इतनी विशेषताओं के होते हुए भी विद्यार्थियों की सुलभता के लिए मूल्य रक्खा है केवल ६) छ: र०। डाकखर्च अलग; राजसस्करण मूल्य १२) र०

त्रायुर्वेदीय नावनीतकम्।

प्राचीन आयुर्वदिक समय के बहुत ऐमे अन्य भी छा। है, निनका हमें नाम भी शात नहीं, जिनमें से आयुर्वेदका एक १७०० वर्षका प्राचीन इस्तलिखिन ग्रन्य "नावनीतकन्" नानका मो है। जो कि १८८६ में लेफ्टोनेन्ट बावर नानक एक अप्रेजी विद्वानुको पूर्वीय तुर्किन्तान (Eastern Turkistan) में चीन देश के निकट मिना और मारतीय गवर्नमेंट ने इन अन्यकी प्राचीन मापाझी तथा लिपियोंके निपुच विदान डा॰ हानने माहिनको विषय समालेचना के लिये दिया था। लिन्होंने बढ़े परिश्रमसे २१ वर्ष पर्यंत अन्यके मर्मका अनु-सन्धान करके इसको गवर्नमेंट कार्पाको मीजदा सरतमें तैयार किया। बहुत मारी प्रयांत १५० राये के लगमा मन्य होनेके कारण नर्वसाधारण की ही इनके टर्गन भी दुर्तम थे। प्रत्युत ५ वा ६ वर्षमे तो यह भी द्वास (out of stock) हो गई है। ऐसी दशा होने पर आयुर्वेदिक जनता तथा वैधाना इस पुल्तक से अपरिचित्र रहना दही हानि और दुर्मा यका कारए था। इस द खकी अनुसव करते हुए कदिराज बलवन्त्रसिंह की ने जी कि बहुत वर्षीले श्राप्तर्वेदिक रिसच कर रहे हैं, दन अन्यको सर्व माधारराके हिताथे पुन. दौर्वहरि से नगोषन करके विगेष टिप्पणी महित तैयार किया है। जन्य चिकिस्ता विषय पर है. बहुन र्धापियों और योगोंको क्न्योंने विस्क करके उनके पृथक ? प्रयोग दिखाये गए ई, पिरोपकर्रक वाबोकारा, रनायन, अन्न, सुखलेय, अगदवन्त्र, बस्टिकर्ननन्त्र चिद्र और रमल इलादि विषयों पर विवरण है। नत्कृत सरल और प्रलेक क्रोक छन्द बड़ा मनोर्डक है। बाएक चिकिन्नाम इमले और उत्तन मग्रह ग्रन्थ मिलना अन्त्मन है। और प्राचीन अन्योंने मंग्रह होने के कारण बतका नाम मी ' नावनीतक्त' अर्थात् 'श्राव्यवेट का माखन'' है। प्रारम्मने एक मनोर्ज्ञक मनिकाके अन्दर अथप्राप्तिको क्या के अतिरिक्त अथ सन्दर्ग अन्य विरोध स्पयोगी विषय पर भी विचार किया गया है। इसकी छपानेके तिये कविराज को ने बढ़ी कठिनता पूर्वक गवर्नेमटेन आहा ली है। कान और हपाई बहुत उत्तन है। सारंब १=x२२ है। साधार्य आवृत्ति वाली सबिल्द प्रत्वक्का मूल्य केवल ४)

इस पुस्तकका लायकेरी एडीगन पृथक् तय्यार किया गया है। निसकी कागज़ बहुत ही मीटा और सुन्दर लगवाया गया है। जिल्द भन्नीव सुन्दर व पड़ी दमवाई गई है। दाम क् ) आठ रुपया

> पता—मेहरचंद्र लच्मणदास, संस्कृत पुस्तकाल्य सद्मिद्धा वाजार, लाहोर।

## विज्ञापनम्

श्रवि प्राणाभिसराः भिपंजः !

नैतन्न विदितचर तत्रभवता भवता यद्याविध समुपल्ल स्यमानेषु प्राची-नेषु संप्रहमन्येषु श्रीचकपाणिकृतस्य चिकित्सासारसंप्रहस्य कियानादरः। परमस्य प्रन्थस्य कर्ता श्रीचकपाणिः किस्मन् कुले, किस्मन् काले, किस्मश्र जनपदे समजनीत्येतिद्वषये यदितिवृत्तमुपलभ्यते शूयते वा तदिह प्रतिपाधते। श्रयं हि दत्तकुलान्तर्गतलोधवलीसंज्ञककुलोत्पनः, नारायणदत्तस्य पुत्र भाजुदत्तस्य च श्राता श्रासीदिति प्रन्थान्त एवोक्कादारमवृत्तान्ताञ्ज्ञायते। त्याहि—

गौडाधिनाथरसवत्यधिकारिपात्र-

नारायणस्य तनय सुनयोऽन्तरङ्गात्। भानोरतु प्रथितलोधवलीकुलीनः

श्रीचक्रपाणिरिह कर्तृपदाधिकारी ॥

इदमेवेतिवृत्तं स्वप्रणीतायाश्वरकतात्पर्यटीकेत्यपरपर्यायाया श्रायुर्वेद्विकेत्याख्यायाश्चरकटीकाया श्रन्तेऽपि लिखितं तेनैव । ज्ञायते चानेनैव यदस्य पिता नयपालराज्ञो मन्त्री रसवत्या निरीक्तक्ष्वासीत् । " मानुदत्तश्च "भूवालराज्ये प्रधानसेनाध्यक्तपटमलङ्करोति स्म इति "हिस्ट्री श्रोफ दी भूवाल" नान्नि पुस्तके प्रन्थकर्त्रा निर्दिष्टम् । शिवदासेन च " श्रन्तरक्षादितिपद्व्याख्यानावसरे " विद्याकुलसम्पन्नो हि भिषगन्तरङ्ग इत्युच्यते इत्युक्तवतास्य सुभि-षक्त्वमप्युपदर्शितम् ।

वङ्गान्तर्गत वीरभूमदेशवास्तव्यश्वाय चक्रपाणि ; श्रूयते तत्र हि श्री चक्रपाणिस्थापित श्रीचक्रपाणीश्वरमन्दिरोऽप्यस्तीति ।

यद्यप्यित्मन् प्रन्थे प्रन्थकृता न कीर्तितं स्वग्ररोनीम तथापि-

नरदत्तगुरूदिष्टचरकार्थानुगामिनी । क्रियते चक्रदत्तेन टीकायुर्वेददीपिका ॥ इति चरकटीकायामादावेवोकत्वादस्य ग्ररोर्नाम नरदत्त इति ।

# विषयानुक्रमणिका।

| विषया. ।               | र्ष्टाङ्का | विषयाः                       | प्रष्ठाद्धाः |
|------------------------|------------|------------------------------|--------------|
| अथ ज्वरचिकित्सा        | १          | कल्कसाध्ययवाग्वाः            |              |
| मंगलाचर <b>ण</b> म्    | 17         | प्रकार.                      | দ            |
| त्रन्थस्य सवन्धाभिध    | -          | काथसाध्यपेयादीनां प          | गरि-         |
| प्रयोजनान <u>ि</u>     | 77         | भाषा                         | 17           |
| चिकित्साक्र <b>मः</b>  | ર          | यवाग्वर्थं तग्डलपरिम         |              |
| नवज्वरे वर्जनीयानि     | "          | मराडादीनां लक्तराम्          | 11           |
| ज्वरादौ लहुनम्         | "          | श्रन्नादिपाकार्थं जलप        | _            |
| ज्वरस्य सम्प्राप्तिः   | 3          | माग्रम्                      | १०           |
| लङ्घनफलम्              | 77         | तरुणज्वरे श्रामदोषाए         | ļ <b>i</b>   |
| लह्वनस्य इयत्तावधारए   |            | पाचनानि                      | ઇક           |
| श्रलद्वनीयाः           | ક          | ज्वरस्य तरुणत्वादिका         | ालः १४       |
| सम्यक् इतस्य लहुनस     | य          | कषायप्रयोगकालः               | 27           |
| लत्तराम्               | 37         | रससामतालच्यम्                | ' १७         |
| श्रतिलङ्घितलज्ञणम्     | 11         | श्रामपाकलत्त्रग्म्           | >>           |
| अवस्थाविशेषे वमनम्     | ¥          | सर्वज्वरेषु पाचनम्           | १्र          |
| कुत्र वमनप्रयोगो न का  | र्थः ,     | परिणामप्रयुक्तस्य भेषः       | स्य          |
| उप्णशीतजलयोः प्रयोग    | 7.         | गुणा-                        | 23           |
| गुणाश्च                | ,,         | जीर्षेषिधलत्तराम्            | 38           |
| <b>प्र</b> डद्गपानीयम् | દ્         | <b>श्रजीर्णोषधल</b> त्त्रणम् | _ 11         |
| पडद्गपानीयादिनिर्माण   |            | भोजनसमयोपयुज्यमा             | तस्यौ-       |
| प्रकार                 | ,,         | षधस्य गुणाः                  | , , ,,,      |
| व्मनलङ्घनयोरनन्तरमि    | ते-        | मात्राविचारः                 | 73           |
| कर्तव्यता ,            | ७          | काथविषया परिभाषा             | २०           |

| विषयाः 🔥                 | पृष्ठाद्धाः | विषया ५                      | [ष्टाङ्काः  |
|--------------------------|-------------|------------------------------|-------------|
| चरकसुथुतयोर्मतेन र       | गप-         | मधूकसारादि                   | इ७          |
| कादि मानपरिभाषा          | २०          | श्रञ्जनम्                    | ३८          |
| चरकोक्षमानस्य मान        | यत्वम्२१    | <b>श्र</b> णङ्गावलेहिका      | 1,          |
| वातज्वरचिकित्सा          | 17          | पञ्चमुष्टिः                  | ३६          |
| काथस्नेहयोः प्रत्तेपमा   | न-          | चातुभद्रकपञ्चमूलम्           | 19          |
| परिमापा                  | २२          | दशमूलम्                      | So          |
| पित्तज्वरचिकित्सा        | રક          | चतुर्दशाङ्गः                 | 31          |
| कफल्बरचिकित्सा           | २७          | चातऋेष्महरो <i>ऽ</i> ष्टादशा |             |
| चातुर्भद्रावलेहिका       | રદ          | पित्रश्लेष्महरोऽप्टादशा      |             |
| श्रवलेह्सेवनकालः         | 17          | <b>मुस्ताचग</b> णः           | 11          |
| नवाङ्ग                   | 23          | शुट्यादिगणः                  | **<br>**    |
| पञ्चमद्रम्               | ३०          | <b>ब्</b> हत्यादिगणः         | ુ.<br>કર    |
| पिचश्चेष्मज्वगचिकि       | त्सा ३१     | श्रभिन्यासज्वरचिकित          | <b>बा</b> " |
| पटोलादि•                 | 75          | जीर्णज्वरिचकित्सा            | દક          |
| गुङ्गच्यादि              | 11          | निदिग्धिकादिः                | 27          |
| चातुभद्रकपाठासम          | តិ "        | विपमज्वरिचकित्सा             | 8X<br>      |
| कराटकार्यादि             | ,3          | <b>मुस्तकादि</b>             | ઇદ્         |
| श्रमृताप्टकः             | ३२          | श्रप्टाङ्गधूपः               | ४८          |
| पञ्चतिक्रम्              | 37          | श्रपराजिताधूपः *             | 22          |
| <b>वातश्लेपाल्यरचिकि</b> | त्सा ३३     | वृतीयकचतुर्वकयो-             |             |
| स्वेदस्य गुणा            | 73          | श्चिकित्सा                   | કદ          |
| पञ्चकोल-                 | રૂપ્ટ       | ज्यरे घृतप्रयोग.             | χo          |
| चुद्रादिः                | 11          | पिष्पल्याद्यं घृतम्          | પ્રશ        |
| सन्निपातज्वरचिकित        |             | श्रनिदिएकल्फकायसा            |             |
| सन्निपातज्वरे लहुन       | कालः ३६     | तायां विशेषनियमः             | <b>ય</b> ર  |
| निष्ठीवनम्               | ३७          | स्नेहसाघनपरिभापा             | દ્રરૂ       |

| विषयाः                   | पृष्ठाङ्काः      | विषया:                      | खिङ्काः      |
|--------------------------|------------------|-----------------------------|--------------|
| चीरषद्पलकं घृतम्         | ४३               | कलिङ्गाद्यगुडिका,           | <b>\$</b> 19 |
| स्नेहसाधनार्थं चीरव्र    | हिंगु-           | व्योषाद्यचूर्णम्            | ~`<br>"      |
| परिभाषा                  | ,,               | <b>त्र्यातीसारीचिकित्सा</b> |              |
| देशमूलषद्पलकं घृत        | तम् ४४           | श्रामपकाविड्लज्ञणम्         | 11           |
| काथसाध्यस्नेहपाके        | काथा-            | श्रामे क्रियाक्रमः          | ું.<br>હું   |
| दीनां परिभाषा            | <b>5</b> 7       | लङ्घनप्राधान्यम्            | ,,           |
| वासाद्यं घृतम्           | ક્ષ્             | बृहच्छालप <b>र्यादिः</b>    | હર           |
| गुद्भच्यादि घृतानि       | ২৩               | <u>स्</u> वल्पशालपर्ग्यादिः | "            |
| स्रीरपानावस्था           | 3%               | श्रामातिसारे संश्रहण-       | -,           |
| <b>चीरपाकपरिभाषा</b>     | ,,               | तिषेघ <sup>.</sup>          | ७२           |
| षट्कट्वरतेलम्            | ६१               |                             |              |
| श्रङ्गारकतेलम्           | 7,               | श्रवस्थाविशेषे संग्रहरा     |              |
| लाचादि तैलम्             | ६२               | घान्यपञ्चक <b>म्</b>        | "<br>ሄሪ      |
| श्रागन्तुज्वरचिकित्स     | ता ,,            | कञ्चरादिः                   | <b>ジス</b>    |
| कोघकामादि <b>ज्वर</b> चि | * * *            | श्रङ्कोडवटकः                | 30           |
| भूतज्वरिचकित्सा          | 1,               | वत्सकादिः                   | <u>ح</u> و   |
| वर्जनीयविधिः             | દ્દ્             | <b>कुटजपुटपाकः</b>          | ٠,٠          |
| ज्वरमुक्तिलत्तराम्       | 22               | श्योगाकपुटपाकः              | 9)<br>—3     |
|                          |                  | कुरजलहः                     | द३           |
| श्रथ ज्वरातिसारि         | <b>कित्सा</b> ६४ | कुरजाष्टक.                  | 17           |
| उत्पलषट्कम्              | ••               | षडङ्गघृतम्                  | <b>5</b> 8   |
| नागरादिः                 | ex<br>ex         | चीरिद्वमाद्यं घृतम्         | c٤           |
| ह्रीवेरादिः              | 27               | अथ ग्रहणीचिकित्सा           | - ದಕ್ಕ       |
| गुङ्क्यादिः              | ६६               | चित्रगुडिका                 | 22           |
| <b>उ</b> शीरादिः         | 77               | श्रीफलादिः                  | 52           |
| <b>पश्चमू</b> ल्यादिः    | 33 1             | पश्चपञ्चवम्                 | 13           |
| •                        |                  |                             |              |

| विपया.                       | वाष्ठद्धाः  | <b>विषया</b>            | पृष्ठाद्धाः |
|------------------------------|-------------|-------------------------|-------------|
| नागराधं चूर्णम्              | 32          | <b>अथाशिश्चिकत्सा</b>   | १०३         |
| भूतिम्वाद्यं चूर्णम्,        | 03          |                         | (           |
| <b>रहेष्मिकग्रहर्णे चिकि</b> | त्सा-       | प्रलेपाः                | १०४         |
| क्रम                         | 03          | दन्त्यरिष्टम्           | १०६         |
| <b>म</b> क्षातकत्तार         | १३          | प्राणदा गुडिका          | १०७         |
| पाठाद्यं चूर्णम्             | 27          | काङ्कायनमादकः           | .ફુ૦ફુ.     |
| कपित्थाप्टकचूर्णम्           | ६३          | माणिभद्रमोदकः           | 22          |
| दाडिमाप्टक                   | 3,          | स्वल्पग्र्र्र्णमोदकः    | ११०         |
| वार्चाकुगुडिका               | દર          | <b>वृहच्छूर</b> णमोद्कः | 23          |
| श्रष्टपलं घृतम्              | 2)          | ग्ररणपिएडी              | १११         |
| विल्बगर्भघृतम्               | 53          | व्यापोद्यं चूर्णम्      | <b>71</b>   |
| श्रुग्डीघृतम्                | દેક         | समशकेरं चूर्णम्         | ११२         |
| <b>नागरघृतम्</b>             | ,5          | तवणोत्तमार्थं चूर्णम्   | 19          |
| चित्रक <b>घृतम्</b>          | "           | विजयचूर्णम्             | ११३         |
| विख्वादिष्टतम्               | 39          | श्रीवाहुशालो गुड        | ११४         |
| चाङ्गेरीघृतम्                | 23          | गुडमहातक                | ११६         |
| मरिचाचं घृतम्                | 5,          | श्रपरो गुडमल्लातक.      | "           |
| महापद्पलकं घृतम्             | 33          | चव्याद्यं घृतम्         | ११७         |
| स्वल्पचुक्रम्                | ,,          | व्योपाद्यं घृतम्        | ११८         |
| वृहच्चुऋम्                   | <i>e</i> /3 | उदकषद्पलं घृतम्         | - ','       |
| तकारिष्टम्                   | ,,          | सिंह्यमृतं चृतम्        | ,<br>31     |
| श्रायामकाञ्जिकम्             | 8≂          | पिष्पल्याद्यं तैलम्     | 71          |
| कल्याग्गुड                   | 33          | रक्षाशिश्चिकित्सा े     | ११६         |
| कूष्माएडगुडकल्याण            | कम् १००     | कुरजलेह                 | १२०         |
| रसपर्पटिका                   | १०१         | <b>कुटजरस</b> िकया      | १२१         |
| ताम्रयोगः                    | १०२         | कुरजाद्यं घृतम्         | १२२         |
|                              | ı           | - · · · ·               |             |

| <u>_</u>                      |           |                                |             |
|-------------------------------|-----------|--------------------------------|-------------|
| विषयाः पृ                     | प्राह्वाः | विषयाः पृ                      | ष्ट्राङ्काः |
| सुनिषर्णकचाङ्गरीषृतम          | र् १२२    | विष्टव्धाजीर्शिचिकित्सा        | १४२         |
| <b>ज्ञार</b> .                | १२३       | पथ्यात्रिकम्                   | १४४         |
| <b>चारसूत्रम्</b>             | १२६       | विस्चिकाचिकित्सा               | 17          |
| न्नारेण सम्यग्दग्धस्य         |           | अथ क्रिमिचिकित्सा              | १४७         |
| लच्यम्                        | >>        | त्रिफलाघृतम्                   | 38\$        |
| श्रग्निमुखं लौहम्             | १२≍       | विडङ्गधृतम्                    | 3.          |
| <b>महातकलौहम्</b>             | १२६       | विडङ्गतैलम्                    | १५०         |
| रसगुडिका                      | १३०       | श्रथ पाएडुरोगचिकित्स           |             |
| <b>अथाग्निमान्द्यचिकित्सा</b> | १३०       | हेतुप्रत्यनीकचिकित्सा          | १४१         |
| हिग्वप्टकं चूर्णम्            | १३१       | नवायसलौहम्                     | १४३         |
| <b>अन्नमरा</b> डगुर्गाः       | 77        | योगराजः                        | 55          |
| तीच्णाग्निविकित्सा            | १३२       | विडङ्गाचं लौहम्                | १५७         |
| शार्टू लका। जेक               | १३४       | ज्यूष <b>णा</b> द्यं मराङ्करम् | ,           |
| श्रिमुखं चूर्णम्              | 22        | पुनर्नवामगङ्गरम्               | १४८         |
| पानीयभक्तगुडिका               | १३६       | वज्रवटकमराङ्गरम्               | १५६         |
| बृहद्शिभुखं चूर्णम्           | 27        | <b>धा</b> त्र्यारिष्टम्        | 32          |
| भास्करलवणम्                   | १३७       | द्राचाघृतम्                    | १६०         |
| श्रग्निघृतम्                  | १३८       | हरिद्राघृतम्                   | 22          |
| मस्तुषद्पलकं घृतम्            | १३६       | सूर्वाद्यं घृतम्               | 33          |
| यडवामुखचूर्णम्                | >>        | व्योषाद्यं घृतम्               | 72          |
| वृहद्श्रिघृतम्                | ,,        | श्रथ रक्षपित्तचिकित्सा         | १६१         |
| चारगुड-                       | १४०       | पलागुडिका                      | १६६         |
| चित्रकगुडः                    | १४१       | दूर्वां घृतम्                  | १६=         |
| · श्रामाजीर्णचिकित्सा         | 27        | शतावरीषृतम्                    | 55          |
| विद्ग्धाजीर्णिचिकित्सा        | ,,        | बृहच्छतावरीवृतम्               | १६६         |
|                               |           | = • • • •                      |             |

| विपयाः                    | पृष्ठाङ्काः | ť   |
|---------------------------|-------------|-----|
| वासाद्यं घृतम्            | 359         | ť   |
| कामदेवघृतम्               | १७०         | €   |
| सप्तप्रस्थघृतम्           | १७१         | ₹   |
| खएडकूष्माएडक              | १७२         | 3   |
| वासाखरडकुष्मारड           | តៈ "        | 5   |
| वासाखरडः                  | १७४         | ŧ   |
| खरडकाद्यो लौहः            | १७४         | *   |
| श्रथ यच्मचिकित्सा         | <i>७७</i>   | 1   |
| त्रयोदशाङ्ग.              | ३७१         | 5   |
| सितोपलादिलेह              | १८०         | 1   |
| तवद्वाच चूर्णम्           | ,,,         | 1   |
| तालीशाद्यं चूर्ण मोद      | कश्चरदर     | ;   |
| श्रङ्गवर्जुनाद्यं चूर्णम् | १दर         | ;   |
| विन्ध्यवासियोगः           | 77          | ;   |
| रसेन्द्रगुडिका            | 77          |     |
| पलादिमन्थ.                | १८३         | ;   |
| <b>सर्पिगुं</b> डः        | १८४         | ¦ : |
| च्यवनप्राशः               | १८६         |     |
| जीवन्त्याद्यं घृतम्       | १८८         |     |
| पिप्पलीघृतम्              | "           | 1   |
| पाराश्चरघृतम्             | १८६         | 1   |
| छागलाचं घृतम्             | <b>79</b>   |     |
| श्रपरं छागलाद्यं घृत      | म् "        |     |
| श्रजापञ्चकं घृतम्         | १६०         | 15  |
| वलागर्मे घृतम्            | "           | 1   |
| नागवलाघृतम्               | 13          | 1   |
|                           |             |     |

| विषया:              | वृष्ठाङ्का |
|---------------------|------------|
| निर्गुएडी घृतम्     | ं १६१      |
| वलाद्यघृतम्         | 17         |
| चन्दनाधं तैलम्      | १ह२        |
| वलाद्यं घृतम्       | १६३        |
| श्रथ कासचिकित्सा    | १६३        |
| वातकासचिकित्सा      | 27         |
| श्रपराजितलेहः       | <b>)</b> 1 |
| पित्तकासचिकित्सा    | 833        |
| कफकासचिकित्सा       | १६४        |
| नवाइयूंप            | १६६        |
| कट्फलादिः           | 77         |
| मरिचाद्यं चूर्णम्   | १६७        |
| समश्करं चूर्णम्     | 7)         |
| व्यापान्तिका गुडिका | १६५        |
| दशमूलघृतम्          | 339        |
| दशमूलाद्यं घृतम्    | 77         |
| दशमूलपद्पलकं घृत    |            |
| करटकारीघृतम्        | 51         |
| श्रपरं करटकारीघृता  |            |
| वृहत् करटकारीघृतम   | -          |
| रास्नाद्यं घृतम्    | २०१        |
| श्रगस्त्यहरीतकी     | 17         |
| व्याघीहरीतकी        | ,,<br>२०२  |
| त्रथ हिकाश्वासचिकि  |            |
| पणीसपञ्चकम्         | ૨૦૪        |

| विषयाः प                 | र्ष्ठाङ्काः      | विषयाः                    | पृष्ठाङ्काः   |
|--------------------------|------------------|---------------------------|---------------|
| हिंसार्च घृतम्           | २०४              | चीरकल्याणकं घृतम्         | २३४           |
| तेजावत्याचं घृतम्        | २०६              | महाकल्या एकं घृतम्        | 2, `          |
| भागींगुडः                | ,,               | चैतसं घृतम्               | २३६           |
| कुलत्थगुडः               | २०७              | महापैशाचिकं घृतम्         | 77            |
| श्रथ स्वरभेदचिकित्स      | ग २०⊏            | हिंग्वाद्यं घृतम्         | २३७           |
| कण्टकारीघृतम्            | २१०              | लग्रुनाचं घृतम्           | 12            |
| भृहराजाद्यं घृतम्        | 27               | <b>अथापस्मारि चिकित्स</b> | ा <b>२</b> ४० |
| श्रथारोचकचिकित्सा        |                  | स्वल्पपञ्चगव्यं घृतम्     | २४२           |
| यमानीषाडवः               | <b>२१३</b>       | बृहत्पञ्चगव्यं घृतम्      | 17            |
| कलहंस:                   | ,,               | महाचैतसं घृतम्            | ६४३           |
| त्र्यथ छदिंचिकित्सा      | २१४              | कूष्माग्डकघृतम्           | 51            |
|                          | - 1              | व्रह्मीघृतम्              | રક્ષક         |
| जातीधात्री               | २१८              | पलङ्कषाद्यं घृतम्         | <b>37</b>     |
| पतादिचूर्णम्             | "<br><b>૨</b> ૧૬ | <b>अथ दातव्याधिचिकि</b>   | त्सा२४४       |
| पद्मकाद्यं घृतम्         | _                |                           |               |
| श्रथ तृष्णाचिकित्सा      |                  | षड्घरणो योगः              | રક્ષ્ય        |
| श्रथ मूर्च्छाचिकित्सा    | २२५              | स्नहलवण्म्                | २४६           |
| श्रथ मदात्ययाचिकित       |                  | कल्याणकलेहः               | २४८           |
| पुनर्नवाद्यं घृतम्       | २२८              | मापवलादिः                 | 31            |
|                          |                  | स्वल्परसोनिपरङ            | २५०           |
| श्रष्टाङ्गलवणम्          | "<br><b>२</b> ३० | ऋादित्यपाकगुग्गुलु-       |               |
| श्रथ दाहचिकित्सा         |                  | वटक.                      | રપ્રપ્ર       |
| .कुशायं तैलं घृतञ्च      | २३१              | त्रयोदशाङ्गगुगुजु         | २४४           |
| <b>अथोन्मादिचिकित्सा</b> | २३२              | शाल्बणखेदः                | २४७           |
| <b>ज्यूषणाद्या-वर्ति</b> | २३३              | श्रश्वगन्धाद्यं घृतम्     | २४≒           |
| पानीयकल्याणकं घृत        | म् २३४           | दशमूलाचं घृतम्            | २४६           |

Ņ

₹

| विपया.                    | पुष्ठाद्धाः ।       | विषया                 | प्रधाद्धाः        |
|---------------------------|---------------------|-----------------------|-------------------|
| छागलाद्य घृतम्            | રપ્રદ               | तेलम्                 | ২৩১               |
| पलादितेलम्                | २६०                 | पकादशशातिकं प्रसार    | ર્ણી-             |
| यलाशेरीयतेले              | २६१                 | तेलम्                 | २७६               |
| महावलातंलम्               | ,,                  | श्रप्रादशशतिकं प्रसार | र्णा-             |
| विष्णुतेलम्               | २६२                 | तंलम्                 | २७=               |
| नारायगतेलम्               | २६३                 | महाराजमसारणीतिलम      | र् २८०            |
| महानारायण्तेलम्           | રદ્દછ               | <b>गुक्तकरणम्</b>     | रद्ध              |
| श्रश्वगन्ध्रातंत्तम्      | <b>२६</b> ४         | गन्धद्रव्यशुद्धिः     | 51                |
| मूलकाद्यं तेलम            | <b>३६६</b>          | नखीग्रुद्धि           | ⋜≒४               |
| रसानतेलम्                 | 11                  | वचायुद्धिः            | 12                |
| केतस्याद्यं तैलम्         | २६७                 | <b>मुस्तकशुद्धिः</b>  | 51                |
| सैन्यवाद्यं तैलम्         | <b>7</b> 9          | शैलजगुद्धि'           | २⊏६               |
| स्वल्पमापतेलम्            | 13                  | <b>चट्टाशीशुद्धिः</b> | 72                |
| मापतेलम् (प्रथम)          | 33                  | महासुगन्यिल इमीविल    | ास-               |
| " ( डितीय                 | र) २६८              | तिले                  | २८७               |
| , ( तृतीयं<br>महामापतेलम् | ) ;,<br>२६ <b>६</b> | श्रय वातरक्विकित्स    | ा २८६             |
| विश्वतीय प्रसारणाते       | -                   | गुडूचीतैलम्           | २६२               |
| वृहन्मापतेलम्             | ့ ၁७१               | नवकार्षिक.            | 17                |
| अपरं महामापतेला           | Į,,                 | गुडूचीघृतम्           | ે<br><b>ર</b> હરૂ |
| मजस्रेह:                  | ે રહેર              | शंतावरीचृतम्          | 2>                |
| चतुःखेदः                  | ,,                  | अमृताचं घृतम्         | 17                |
| कुञ्जप्रसारखीतैलम्        |                     | दशपाकवलातेलम्         | <b>ર</b> દેઇ      |
| श्रपरं त्रिशतीयप्रस       | -                   | गुहूच्यादिनैलम्       | 97                |
| <b>वैलम्</b>              | 1)                  | खुडुाकपश्चमतेलम्      | »,<br>»,          |
| सप्तशातिकं प्रसारर्ग      |                     | नागवलातैलम्           | २६४               |
|                           |                     | <del>-</del>          |                   |

| विषया-                            | पृष्ठाद्धाः ।   | विषया.               | पृष्ठाद्धाः |
|-----------------------------------|-----------------|----------------------|-------------|
| <b>पिरा</b> डतैलम्                | રદ્ય            | -गुडूचीघृतम्         | ३१२         |
| महापिएडतैलम्                      | २१६             | काञ्जिकपद्यलकं घृत   | म् ३११      |
| कैशोरको गुग्गुलुः                 | 17              | शुगठीघृतम्           | ,,          |
| श्रमृतागुग्गुलुः                  | २६७             | रसोनपिराडम्          | "           |
| पुनर्नवागुग्गुलुः                 | २६=             | प्रसारणीसन्धानम्     | ३१२         |
| योगसारामृतः                       | २६६             | रसोनसुरा             | 13          |
| <b>बृहद्गुड़्बीतैलम्</b>          | 71              | शिएडाकी              | <b>३</b> १२ |
| <b>प्रथोरुस्तम्मचिकित</b>         | सा ३००          | सिध्मला              | 363         |
| अष्टकट्वरं तैलम्                  | <br><b>૩</b> ૦૨ | श्रथ शूलचिकित्सा     | ३१४         |
| अष्टमस्पर परान्<br>कुष्टाचं तैलम् | •               | वातग्रलचिकित्सा      | <b>३</b> १४ |
|                                   | ,<br>,          | नारिकेलखग्ड-         | ३१६         |
| त्रथामवातिचिकित्सा                |                 | पित्तश्लिचिकित्सा    | ३१७         |
| रास्नादशमूलकम्                    | ३०४             | श्रपरनारिकेलखएडः     | ३१६         |
| रास्नापञ्चकम्                     | 27              | कफश्रलचिकित्सा       | ३२०         |
| रास्नासप्तकम्                     | 73              | <b>हिंग्वादिः</b>    | ३२१         |
| वैश्वानरं चूर्णम्                 | ३०४             | घात्रीलौहम्          | **          |
| श्रतम्बुषाद्यं चू्णेम्            | ३०६             | वृहद्धिश्वादिः       | ३२३         |
| शतपुष्पाद्यं चूर्णम्              | 2)              | रुचकादिः <b></b>     | 77          |
| हिंग्वाद्यं चूर्णम्               | 77              | परगडसप्तकम्          | રૂરઇ        |
| योगराजगुग्गुलुः                   | "               | परएडद्वादशकम्        | ३२४         |
| सिंहनादगुग्गुलुः                  | ३०७             | दाधिकं घृतम्         | ३२६         |
| वृहत्सिहनादगुग्गुलुः              | ३०८             | अथ परिगामशूल-        |             |
| अपरं श्रतम्बुषाद्यं च्            | ्णम् ५          | चिकित्सा             | ३२७         |
| वृहत् सैन्धवाद्यं तैल             | म् ३०६          | 11 _                 | 7,0         |
| श्रजमादा चवरकः                    | <b>3</b> )      | विडक्षादिमोदकः       | ))<br>330   |
| श्रुग्डीघृतम् ,                   | ३१२             | सामुद्राद्यं चूर्णम् | ३३०         |

| विषया.                            | पृष्ठाङ्काः | , विषया                     | पृष्ठाद्धाः       |
|-----------------------------------|-------------|-----------------------------|-------------------|
| सप्तामृतं लौहम्                   | ३३०         | वातगुल्मचिकित्सा            | ३४७               |
| गुडिपप्पलीघृतम्                   | ३३१         | पित्तगुल्मचिकित्सा          | 38£               |
| पिष्पली घृतम्                     | 22          | कफगुल्मचिकित्सा             | રૂપર              |
| कोलादिमगृहरम्                     | 15          | हिंग्वाद्यं चूर्णम्         | ३४२               |
| भीमवटकमर्ग्हरम्                   | ,,          | वचाधं चूर्णम्               | રૂપ્ક             |
| <b>चीरम</b> ग्हूरम्               | ३३२         | काङ्कायनगुडिका              | 322               |
| चविकादिमगङ्करम्                   | 29          | हबुपाद्यं घृतम्             | ३४६               |
| <b>शतावरीम</b> गृहूरम्            | <b>3</b> ;  | पञ्चपलकं घृतम्              | <i><b>३५</b>७</i> |
| तारामगङ्गरगुँड                    | इइइ         | ज्यूषणाद्यं घृतम्           | "                 |
| राममगङ्करम्                       | 77          | त्रायमाणाद्यं घृतम्         | <b>)</b> )        |
| <b>वृह</b> च्छतावरीमगृहूरम्       |             | द्राज्ञाचं घृतम्            | <b>३</b> ४८       |
| रसमगङ्करम्                        | ३३४         | चीरपट्पलकं घृतम्            | <b>77</b>         |
| <b>त्रिफलालीह</b> ः               | 39 ·        | धात्रीषट्पलकं घृतम्         | ,,<br>,,          |
| लौहगुडिका                         | ,,          | भागीपट्पलकं घृतम्           | 346               |
| <b>धात्रीलीहम्</b>                | ३३६         | भक्षातकं घृतम्              | 79                |
| लौहामृतम्                         | 2)          | रसोनाचं घृतम्               | ३६०               |
| खएडामलकी                          | ३३७         | दन्तीहरीतकी                 | 39                |
| नारिकेलखएडः                       | 57          | <b>बृ</b> श्चीराचरिष्ट      | ३६१               |
| कलायगुडिका                        | ३३८         | • •                         | 263               |
| <b>अथोदावर्त्तचिकित्सा</b>        |             | श्रथ हृद्रोगचिकित्सा        | ३६३               |
| नाराचचूर्थम्                      | ३४१         | वत्तमघृतम्                  | ३६८               |
| <b>~</b>                          |             | श्वदप्ट्राद्यं घृतम्        | 37                |
| श्रथानाहचिकित्सा                  | ३४४         | वलाचं घृतम्                 | ३६६               |
| <sup>धुरप्</sup> कमूलकाद्यं घृतम् | રુકદ્       | श्रर्जुनघृतम्               | 22                |
| क्षि राचं घृतम्                   | ,,          | श्रथ मूत्रकुच्छचिकित्स      | ा ३६६             |
| श्रथ शुल्मचिकित्सा                | ३४६         | _                           |                   |
| 24 O . 11 11/11/11                | 101 {       | वातम्त्रश्रुच्छे क्रियाक्रम | [i 17             |

| विषयाः प                    | រូខ្លាន្តាះ |
|-----------------------------|-------------|
| पित्तमूत्रहरुष्ट्रे कियाका  |             |
| कफसूत्रकुच्छे "             | ३७१         |
| शतावरीघृतचीरे               | રુષ્ટ       |
| त्रिकारटकार्यं घृतम्        | ३७४         |
| सुकुमारकुमारकघृतम्          | ٠,          |
| श्रथ मूत्राघातचिकितर        |             |
| चित्रकाद्यं घृतम्           | 30€         |
| <b>त्र्रथाश्मरीचिकित्सा</b> | ३८०         |
| वीरतरादिगणः                 | ,,          |
| पाषाणभेदांच घृतम्           | ३⊏१         |
| ऊपकादिः                     | ३⊏२         |
| कुशाद्यं घृतम्              | ,,          |
| वरुणाचं घृतम्               | ३⊏३         |
| वरुणादिगणः                  | ,,          |
| पतादिः                      | ३⊏४         |
| पाषाणभेदाद्यं घृतं चूर्य    | 河湖 "        |
| कुलत्थाचं घृतम्             | ३८६         |
| शरादिपञ्चमूलादिघृत          | म् "        |
| वरुणघृतम्                   | 32          |
| वीरतरायं तैलम्              | ३८७         |
| वरुणायं तैलम्               | 71          |
| अथ प्रमेहचिकित्सा           | ३८६         |
| <b>कुशावलेहः</b>            | 17          |
| न्यग्रोधाद्यं चूर्णम्       | ३६३         |
| त्रिकराटकार्य घृतं तैर्त    | त           |

| विषयाः                      | पृष्ठाङ्काः |
|-----------------------------|-------------|
| यमकञ्च                      | રૂશ્ક       |
| धान्वन्तरं घृतम्            | 37          |
| दाडिमाद्यं घृतम्            | ર્કદ્ર      |
| <b>ज्यूषणादिगु</b> डिका     | ३६६         |
| शिलाजतुप्रयोगः              | 389         |
| श्रथ स्थाल्यचिकित           | सा ३६⊏      |
| विडङ्गाद्यं चूर्णम्         | 338         |
| विडद्गायं लौहम्             | 79          |
| <b>व्योपाद्यशङ्गप्रयोगः</b> | ४००         |
| श्रमृताद्यगुगुतु            | ४०१         |
| नवकगुग्गुलुः                | 93          |
| लौहरसायनम्                  | ,,          |
| त्रिफलाद्यं तैलम्           | ४०२         |
| श्रथोदरिचिकत्सा             | ४०४         |
| सामुद्राद्यं चूर्णम्        | ४०६         |
| पटालाद्यं चूर्णम्           | 308         |
| नारायणचूर्णम्               | ८१०         |
| दशमूलषट्पलकं घृत            | तम् ४१४     |
| चित्रकघृतम्                 | 79          |
| विन्दुघृतम्                 | 11          |
| द्धिमएडाचं घृतम्            | ક્ષ્ય       |
| नाराचघृतम्                  | 19          |
| अथ सीहयकृचिकि               | त्सा ४१६    |
| माणाद्यगुडिका               | કરૃદ        |
| पिष्पतीवर्द्धमानानि         | "           |

| विपया                  | पृष्ठाङ्काः | । विपया                  | पृष्ठाङ्काः   |
|------------------------|-------------|--------------------------|---------------|
| पिष्पलीचित्रकघृतम्     | ध२०         | त्रथ गलगएडगएड-           |               |
| लोकनाथरसः              | ,,          | मालापचीग्रन्थ्यर्बुद-    |               |
| श्रपरं पिष्पलीघृतम्    | ઇરર         |                          |               |
| चित्रकघृतम् ँ          | 55          | चिकित्सा                 | 880           |
| रोहीतकंघृतम्           | धर३         | तुम्वीतैलम्              | <b>ક</b> કર   |
| महारोहीनकघृतम्         | 72          | श्रमृताद्यं तैलम्        | >5            |
|                        |             | <b>बु</b> च्बुन्दरीतैलम् | કકર           |
| श्रथ शोथचिकित्सा       | ્           | शाखाटकविम्वाधे तैले      | . ८८८         |
| चारादिगुडिक <u>ा</u>   | धरद         | नि <b>र्गुएडीतैलम्</b>   | 77            |
| पुननवाद्यं घृतम्       | <b>ઇ</b> રદ | ब्योपाद्यं तैलम्         | ક્ષક્ર        |
| स्वरुपपुनर्भवाधृतम्    | ४३०         | चन्दनाधं तैलम्           | 19            |
| पञ्चकोलाद्यं घृतम्     | 37          | गुआचं तैलम्              | 72            |
| शुरठी घृतम्            | "           | श्रथ श्लीपदाचिकित्स      | . ८४४         |
| चित्रकाद्यं घृतम्      | "           | वृद्धदारकचूर्ण <b>म्</b> | <b>ક</b> પ્રક |
| चित्रकघृतम्            | ४३१         | <b>कृ</b> ण्णाद्यमोद्कः  | ક્ષ્પ્રક      |
| माणकघृतम्              | 2,          | सौरेश्वरघृतम्            | "             |
| स्थलपद्मगृतम्          | ,,          | विडङ्गाद्यं तैलम्        | ८४४           |
| शैलेयाचं तैलम्         | 21          | अथ विद्रधिचिकित्सा       | 8 त त         |
| शुष्कमूलाधं तैलम्      | ४३२         |                          |               |
| पुननेवावलेह            | 2,          | अथ वर्णशोथचिकित          | सा ४४८        |
| दशमूलहरीतकी            | 99          | तिलाएक                   | ४६३           |
| कंसहरीतकी              | ४३३         | जीरकाद्यं घृतम्          | ४६६           |
| 200 20 20 20 A         | 433         | त्रिफलागुग्गुलु.         | સંહે          |
| अथ इद्धित्रप्तचिकित    | सा ४२५      | वटिकागुग्गुलुः           | 22            |
| यृहत्सैन्घवाद्यं तैलम् | ક્રફ્ક      | विडङ्गादिवटिकागुग्गुत्   |               |
| शतपुष्पाचं घृतम्       | ,,          | श्रमृतावटिकागुग्गुलु-    | )<br>}        |
|                        |             |                          |               |

| विषयाः                 | पृष्ठाद्वाः       | विषयाः प्र                   | ខ្លាន្តាះ       |
|------------------------|-------------------|------------------------------|-----------------|
| जातिकाद्यं घृतम्       | ४७१               | <b>त्र्रथोपदंशचिकित्सा</b>   | 8=8             |
| गौराचं घृतम्           | 27                | भूनिम्वाद्यं घृतम्           | <b>४</b> ८६     |
| करञ्जाद्यं घृतम्       | ४७२               | करक्षाचं घृतम्               | <b>&gt;&gt;</b> |
| प्रपौराडरीकाद्यं घृतम  | ξ "               | श्रागारधूमाद्यं तैलम्        | "               |
| तिक्षकाद्यं घृतम्      | *,,               | श्रथ शूकदेशिचिकित्स          | 0≈४ा            |
| श्रहारकं तैलम्         | ६७३               | श्रथ भग्नचिकित्सा            | 828             |
| प्रपौग्डरीकाद्यं तैलम  | ξ "               |                              | ४६१             |
| दूर्वाद्यं तैलं घृतञ्च | >>                | न्यायायानः                   | ४६२             |
| मिखिष्टाचं घृतम्       | ४७४               | श्राभागुग्गुलु.<br>गन्धतेलम् |                 |
| पाटलीतैलम्             | 27                |                              | 33<br>43.0.43   |
| चन्द्नाद्यं यमकम्      | 33                | श्रथ कुष्टाचिकित्सा          | 838             |
| अथ नाडीव्रणचिवि        | <b>केत्सा</b> ४७५ | पञ्चकपायः                    | 97              |
| सप्ताङ्गगुगुनुः        | <i>ও</i> ৩=       | कुष्टाद्यम्                  | ઇકેઇ            |
| सर्जिकाचं तैलम्        | ,,                | नवकषायः                      | ४०४             |
| कुस्भीकाचं तैलम्       | 308               | सप्तसमा योगः                 | 77              |
| भहातकाद्यं तैलम्       | <b>3</b> 7        | पञ्चनिम्यः                   | ४०६             |
| निर्गुएडीतेलम्<br>-    | ,,                | एकविंशतिको गुग्गुलु          |                 |
| हंसपादीतेल <b>म्</b>   | ಚದಂ               | तिक्रपद्पलकं घृतम्           | Koz             |
|                        | -m 0~a            | पञ्चतिक्रघृतम्               | ४०६             |
| श्रथ भगन्दरचिकि        | त्सा ४८०          | तिक्षकघृतम्                  | 37              |
| नवकार्षिकगुग्गुलुः     | ४८२               | महातिक्षकं घृतम्             | *,              |
| सप्तविंशतिगुग्गुलुः    | 2)                | महाखादिरकं घृतम्             | ४१०             |
| विष्यन्दनतै्लम्        | ४८३               | पञ्चतिक्षघृतगुग्गुलुः        | ४११             |
| करवीरायंतैलम्          | 52                | वज्रकं घृतम्                 | પ્રશ્વ          |
| निशाद्यं तैलम्         | 27                | श्रारग्वधाद्यं तैलम्         | ^ و             |

| विषयाः                       | पृष्ठाङ्काः      | विषयाः प                        | រូមន្តោៈ   |
|------------------------------|------------------|---------------------------------|------------|
| त्रणकं तैलम्                 | ,,               | रसग्रुद्धिः                     | "          |
| महातृ एकं तैलम्              | ४१३              | गन्घकशुद्धिः                    | 77         |
| वज्रकं तैलम्                 | 21               | चुघावती गुडिका                  | ४२७        |
| मरिचाद्यं तैलम्              | ४१४              | जीरकाद्यं घृतम्                 | ४२८        |
| बृहन्मरिचाद्यं तैलम्         | 35               | पटोलशुएठीघृते                   | ४२६        |
| विपतैलम्                     | ४१४              | विष्वलीघृतम्                    | 71         |
| करवीराद्यं तैलम्             | ,,               | द्राचाद्यं घृतम्                | 19         |
| श्वेतकरवीराद्यं तैलम         | र् ४१६           | शतावरीघृतम्                     | "          |
| सिन्दूराद्यं तैलम्           | ,,               | श्रथ विसर्पविस्फोटक             | -          |
| महासिन्दूरादं तैलम्          | ,,               | चिकित्सा                        | ५३०        |
| <b>श्रादित्यपाकतैलम्</b>     | ,,               | नवकपायगुग्गुलु                  | ४३३        |
| दूर्वाद्यं तैलम्             | ४१७              | श्रमृतादिः                      | 77         |
| श्रकेमनःशिलातैले             | ,,               | दशाङ्गः                         | ४३४        |
| गराडीरिकाद्यं तैलम्          | . ,,             | चतुःसमम्                        | <b>)</b> 7 |
| पृथ्वीसारतैलम्               | 77               | चृपाद्यं घृतम्                  | 77         |
| सोमराजितैलम्                 | ४१⊏              | पञ्चतिक्रकघृतम्                 | 23         |
| <b>अथोदर्दको</b> ठशीति       | पेच-             | महापद्मक घृतम्                  | ४३६        |
| चिकित्सा                     | ४१६              |                                 | 17         |
| व्यवस्थाविधिः                | ·                | अथ मस्रिकाचिकित                 | सा ४३७     |
| श्रथाम्लिपत्तिविकि           |                  | निम्वादिः                       | KRO        |
|                              | .जा. २ ११<br>४२२ | खदिराष्ट्रकः                    | 21         |
| दशाङ्गः<br>सम्बद्धाः         | 444              | श्रथ चुद्ररोगचिकित्र            |            |
| वासागुगाुलुः<br>वासासग्रहारः | "<br><b></b>     |                                 | ૧૩૧        |
| श्रभ्रकशुद्धिः<br>लौहशुद्धिः |                  | उपोदिकाद्वारतेलम्<br>चाहेरीयसम् | ४४८<br>१४८ |
|                              | tt<br>Red        | चाहेरीघृतम्                     |            |
| मराहूरश्चाद्धिः              | ४२६              | मूषिकाद्यं तैलम्                | 27         |

|                       |                        | विषया•               | पृष्ठाङ्काः                             |
|-----------------------|------------------------|----------------------|---|
| विषया'                | पृष्ठाङ्काः            |                      | ४७४                                     |
| हरिद्राद्यं तैलम्     | ४४१                    | कालकचूर्णम्          | 77                                      |
| कनकतैलम्              | "                      | पीतकचूर्णम्          | xox                                     |
| मिंखिष्ठाचं तैलम्     | ४४२                    | चारगुडिका            |   |
| माज्ञष्ठाच तलार       | "                      | महासहचरतलभ्          | <b>X</b> ⊘≒                             |
| कुंकुमाद्यं तैलम्     |                        | इरिमेदाद्यं तैलम्    | >>                                      |
| अपरं कुंकुमाद्यं तैल  |                        | लाचार्य तैलम्        | <i>૫૭</i> ૬                             |
| अपरं कुंकुमाद्यं तैत  | तम् "                  | लावाच रास्तर         | <b>3</b> 1                              |
| वर्शकं घृतम्          | ४४४                    | वकुलाचं तैलम्        |   |
| हरिद्राचं तैलम्       | ,7                     | सहकारगुडिका          | ))                                      |
| त्रिफलाद्यं तैलम्     | ሂሂሂ                    | स्वल्पखदिरवारका      | がたる                                     |
| त्रिफलांच तेलम्       |                        | बृहत्खादेरवटिका      | >7                                      |
| चित्रकाद्यं तैलम्     | 27                     |                      | त्सा ४८२                                |
| गुआदं तैलम्           | 3)<br>200 <b>5</b>     | अथ कर्णरोगचिकि       |   |
| भहराजतैलम्            | ४४६                    | दीपिकातैलम्          | ४८३                                     |
| प्रणीगडरीकां ते       | लम् "                  | चारतेलम्             | ४८८                                     |
| मालत्याद्यं तैलम्     | 99                     | श्रपामार्गचारतैलम    | i kek                                   |
| सालापाय सरा           | ሂሂ፣                    | सर्जिकाचार तैल       | , <u> </u>                              |
| स्तुह्याद्यं तैलम्    | नीवैलय                 | स्विकाषार पर्यः      | *-<br>33                                |
| श्रादित्यपाकगुडू      | चातलच्य <i>ग</i><br>४४ | दशमूलीतैलम्          | -                                       |
| चन्दनादं तेलम्        |                        | । विल्वत लग्         | 2 <b>)</b>                              |
| महानीलतैलम्           | ४६                     | जिम्बाध पर्याप       | ४८७                                     |
| भृङ्गराजघृतम्         | ሂዩ                     | र शम्बूकाद्यं तैलम्  | ४८८                                     |
| पटोलाद्यं घृतम्       | ሂዩ                     | व धुस्तूराद्यं तैलम् | 23                                      |
| पटालाच रु             | <del>:कि</del> ट्या ५६ | 3 बुस्यूराव तत्त्र   | ሂሩዩ                                     |
| त्रथ मुखरोगि          | राकारता र              | कुष्टाचं तैलम्       | 1 × × × × × × × × × × × × × × × × × × × |
| श्रोष्ठरोगचिकि        | त्सा                   | » । जीवनायाद्य तेल   | • •                                     |
| द्वतरोगचिकि           | त्सा ४                 | ६४ श्रथ नासारीग      | चिकित्सा ४६२                            |
| विदाच्यादिते <b>ल</b> | म ४                    |                      |   |
| विद्राज्यापुरा        | हत्सा ४                | ७० व्योषादिचूर्णम्   | 27                                      |
| जिह्नारोगचिवि         | 11//11                 | एउर पाठादितैलम्      | 73                                      |
| क्रवहरोगचिकि          | <i>ाता</i> ।           | <b>, ,</b>           |   |

| विषया                           | पृष्ठाङ्का |
|---------------------------------|------------|
| <b>च्याघीतेलम्</b>              | ४६२        |
| करवीरायं तैलम्                  | - ४१६      |
| शिखरितैलम्                      | หั         |
| चित्रकतैलम्                     | 27         |
| चित्रकहरीतकी                    | 27         |
| श्रथ नेत्ररोगचिकित              | सा ४६७     |
| विल्वाञ्जनम्                    | ६०४        |
| षडङ्गगुग्गुलु                   | ६०५        |
| वासकादि                         | 27         |
| दन्तवर्त्तिः                    | ६१०        |
| पटोलायं घृतम्                   | ६१२        |
| कृष्णाद्यं तैलम्                | 11         |
| श्रशकघृतम्                      | ६१३        |
| द्वितीयं शशंकाद्यं घृत          | तम् "'     |
| सुखावतीवर्त्तिः                 | ६१४        |
| चन्द्रोदयावित्तिः               | ६१४        |
| कुमारिकावर्त्तिः                | ٠ ,,       |
| त्रिफलाद्यवार्त्ते•             | ,,         |
| चन्दनाद्यवार्त्ते               | ६१६        |
| निशाद्यमञ्जनम् '                | 33         |
| त्र्यूपणाद्यवा <del>र्</del> चि | 77         |
| नयनसुखावार्त्तः                 | "          |
| चन्द्र <b>प्रभावार्त्त</b>      | ६१७        |
| श्रींनागार्जुनावित्त            | ,,         |
| पिप्पल्याद्यवर्त्तिः            | ६१८        |
| कोकिलावर्त्तिका                 | 77 i       |

| विषया                        | पृष्ठाद्धाः   |
|------------------------------|---------------|
| <b>भिफला</b> घृतम्           | ६२४           |
| महात्रिफलाचं घृतम्           | 77            |
| त्रेफलं घृतम्                | ६२६           |
| भृहराजाद्यं तैलम्            | ६२७           |
| नृपवहाभं तैलं घृतञ्च         | ६२=           |
| श्रभिजितं तैलम्              | 32 f          |
| चूर्णाञ्जनम् ं               | ६३३           |
| श्रथ शिरोरोगचिकि             | त्सा ६३५      |
| शताहाद्यं तैलम्              | ६३६           |
| जीवकाद्यं तैलम्              | "             |
| चृंहजीवकाद्यं तेलम्          | "             |
| पड्विन्दुतैलम्               | ६૪૦           |
| श्रंपामार्गतेलम्             | 93            |
| यप्रवाद्यं घृतम्             | દ્દઇરૂ        |
| मयुराद्यं घृतम्              | દ્દ દ્રષ્ટ    |
| प्रपौराडरीकाद्यं तैलम्       |               |
| मायूरं घृतम्                 | <b>દ</b> ઇપ્ર |
| श्रथासुग्दरचिंकित्स <u>ा</u> |               |
| पुष्यातुगं चूर्णम्           | रु४३          |
| मुद्राद्यं घृतम्             | ६४=           |
| शीतकल्याणकं घृतम्            |               |
| वृहच्छतावरी घृतम्            | ફ્ઝદ          |
| श्रथ योनिन्यापिन्ध           |               |
|                              | ६५०           |
| फलघृतं प्रथमम्               | ६४४           |

| विषया                    | पृष्ठाङ्का | विषयाः                  | पृष्ठाङ्का.  |
|--------------------------|------------|-------------------------|--------------|
| फलघृतं, द्वितीयम्        | ६४६        | साध्यसाधनपरिमाण्        | म् ६६७       |
| नीलोत्पलाद्यं घृतम्      | ६४७        | लौहमारणविधि'            | ् ७०५        |
| बृहच्छतावरी घृतम्        | ,,         | स्थालीपाकविधि           | 300          |
| श्रारग्वधाद्यं नैलम्     | ६४८        | <u>पुरपाकविधि</u>       | ંહરૄ૦        |
| <b>चारतैलम्</b>          | ,,         | पार्कविधिः "            | ७१३          |
| ष्यथ स्त्रीरोगचिकित्य    | अर डे गर   | श्रश्रकविधिः            | ७१८          |
| वज्रकाञ्जिकम्            | ६६४        | लौहभन्नणविधिः           | 3 <b>}</b> & |
| पञ्चजीरकगुडः             | - ६६४      | दासरसायनलौहम्           | હરક          |
| श्रीपग्रितेलम्           | ६६७        | ताम्रयोग                | ७२६          |
| काशीशायं तैलम्           | - 33       | <b>अपरस्ताम्रयोग</b> ्र | ७२७          |
|                          |            | शिलाजतुप्रयोगः          | ं ७३०        |
| अथ वालरोगचिकि            | -          | शिवागुडिका              | ७३४          |
| हरिद्रादिः               | ६७१        | श्रमृतभन्नातकी          | ७३७          |
| वालचातुर्भाद्रेका        | <b>5</b> 3 | _                       |              |
| धातक्यादिः               | 19         | श्रथ वृष्याधिकारः       | 350          |
| श्रृङ्गचादिः             | ६७२        | नारासिंहचूर्णम्         | <i>હ</i> કફ  |
| <b>श्र</b> श्वगन्घाघृतम् | ६७७        | गोधूमाछं घृतम्          | ७४३          |
| बालचाहेरीघृतम्           | ३७≈        | शतावरीघृतम्             | <i>હ</i> કક  |
| कुमारकल्याणकं घृत        | ाम् "      | गुडकूष्मागडकम्          | 33           |
| श्रप्टमङ्गलघृतम्         | <b>3</b> 3 | श्रश्वगन्घातैलम्        | ७४६          |
| लाचादितैलम्              | <i>३७३</i> |                         |              |
| अथ विषचिकित्सा           | ६८६        | श्रथ स्नेहाधिकारः       | 280          |
| मृतसञ्जीवनोऽगदः          | ६६१        | श्रथ स्वेदाधिकारः       | ७५६          |
| _                        |            | श्रथ वमनाधिकारः         | ७६०          |
| अथ रसायनाधिका            |            | 1                       | _            |
| ब्रह्मी <b>घृतम्</b>     | ६६६        | पञ्चकषायः               | ७६२          |

विपया. विषयाः पृष्टाद्धाः पृष्ठाद्वाः त्रथ विरेचनाधिकारः ७६६ श्रथ धृमपानाधिकारः ७६६ श्रभयाद्यो मोदकः ७इ७ श्रथ कवलगएइपाधिकारः श्रथानुवासनाधिकारः ७७१ ದ೦ನ श्रथ निरूहाधिकारः ७८३ | श्रथाश्च्योतनाञ्जनतपेणपुट-पाकाधिकारः ग्रर्द्धमात्रिकः 320 म्रथ शिराव्यधाधिकारः=०६ <del>द्यारवस्ति</del> 130 वैतरण्यस्तिः ७६२ श्रथं सुस्थाधिकारः 263 पिच्छिलयस्ति दिनाचारविधि-77 11 अयं नस्याधिकारः \$30 ऋतुचर्या 3,5



## ज्वरचिकित्सा ौ

## गुणत्रयविभेदेन मूर्तित्रयमुपेयुषे। त्रयीभुवे त्रिनेत्राय त्रिलोकीपतये र्नू

य सप्तवर्षदेशीयो दधार धरणीधरम् । क्रिंत्र कसध्वसकर वन्दे त देव देवकीसुतम् ॥ त्रीत्र तात किमय मातेति य दृष्ट्वा दृष्टपूर्वक्रिष्ठ् । श्रमृत् स्कन्देऽपि सन्देहस्त देह शिवद्योर्भक्र । टीका रत्तप्रभा चक्रदत्तिनिर्मेतसग्रहे । यद्यप्यास्ते तथाप्येष सन्देपाय ममोद्यम् ॥ विस्तरोक्षञ्च सन्दिप्य प्रतिन्निप्य च दुर्वच । व्याख्यान्तरञ्च निन्निप्य टीकेय क्रियते मया ॥

विशिष्टशिष्टाचारानुमितश्रुतिवोधितकर्त्तंच्यताक प्रारिष्सितयन्थसमाप्तिफलक तत्-प्रतिवन्धकविष्ठभ्वसमात्रफलक वा स्वयङ्कृतमिष्टदेवतानमस्कार शिष्यशिचार्थमादौ निवधाति गुणत्रयेत्यादि—गुणत्रय सस्वरजस्तमोरूपम्, मूर्तित्रय ब्रह्महरिहर-स्वरूपम् ॥१॥

## नानायुर्वेदविख्यातसद्योगैश्चकपाणिना । क्रियते संग्रहो गूढवाक्यवोधकवाक्यवान् ॥२॥

प्रचावता प्रवृत्त्यर्थ सम्बन्धाभिषयप्रयोजनमाह नानेत्यादि—सदिति सिद्ध-फलम् । गूढवाक्य गृढार्थ वचनम्, तद्योधक तद्येप्रतिपादक यद्वचन तद्युक्तम्, यथा—नवज्वरे षडद्गादिभेषजविधानम्, तथा तत्रैव "न दद्यात् तत्र भेषजम् " इति भेषजिनेषेषोऽपि, श्रतो विधिनिषेषयोरेकविषयत्वेन विरोध स्यात्, श्रत-स्तत्परिहारार्थ "मुख्यभेषजसम्बन्धो निषद्ध" इत्यादि वचन निबद्धमिति । सम्बेहण सह सद्योगाना वाच्यवाचकलच्चण मम्बन्ध, सद्योग एवाभिषेया, श्रवान्तरप्रयोजन चिकित्सितम्, मुख्यन्तु श्रारोग्यमिति ॥२॥

### रोगमादौ परीचेत ततोऽनन्तरमौपयम्। ततः कर्म भिपक् पश्चाङ्ज्ञानपृवं समाचरेत्॥॥॥

नत्र चिकित्नाक्रममाह रोगिमत्यादि—ग्रादी निटानपूर्वरूपादिभि रोगै परीचेत । ततो रोगपरीचानन्नरमापथ परीचेत । शानपूर्वमिति कर्मदर्शनजनिनशान-पूर्वम्, शायते श्रनेनेति शान शास्त्र तत्पृवकमिति वा ॥ ३ ॥

## ✓ नवज्वरे दिवास्वप्रस्नानाभ्यङ्गान्नमेथुनम् । क्रोधप्रवातव्यायामकपायांश्च विवर्जयेत् ॥ ४ ॥

तत्र ज्वरस्य मर्वरागप्रधानत्वात् प्रथम तिचिकित्मितं वक्तव्ये कृतमि भेपत्र निटानमेवनाटकृतमिव भवतीति निदानपरिवर्जनस्यंव गरीयस्त्वात् प्रथम निदान-परिवर्जनरूप चिकित्मितमाइ नवज्वर इत्यादि—नन्नात्र गुवन्न लव्वन्नस्य विधा-नात्, त्रत एवोक्त हारीते "गुर्वन्नसोजनाचापि विष्टम्यो दोपकोपनम्" इति । कपायाद्यति "न तु कल्पनमुद्दिश्य कषाय प्रतिपिध्यते" इति चरकवान्यस्वरमात्त कपायराव्येनात्र कपायरसमात्रमुच्यते, न तु स्वरमादि । श्रतपव जतुकर्थऽपि "कपायरमगुरूप्यानित्यकानान्यद्वान् नवज्वरे वर्जयत्" इत्युक्तम् । हरिश्चन्द्रयापि " नात्र स्वरमदीना निषेष " इत्युक्तम् । तथा " स्नम्यन्ते न विषच्यन्ते कुर्वन्ति विषमज्वरम् । दोषा बद्धा कपायेण स्ताम्मत्वात् तरुण्यते " इति चरकवचने स्ताम्मत्वादित्ययहेतु कपायरमवर्जनामिन्नायेणव सङ्गच्छते। उक्त हि"कपाय स्तम्मन राति " इति । वाग्मेटेऽप्युक्त " पित्तश्चेष्महरत्वेऽपि कपाय म न शस्यते । नवज्वरे मलस्तम्मात्कपायो विषमज्वरम् । कुर्वतेऽरुचिह्ह्ह्यामहिक्काध्यानादिकानपि" इति ॥ ४ ॥ ")

### ज्वरे लहुनमेवाटावुपदिप्रमृते ज्वरात्। ज्ञयानिलभयकोधकामशोकश्रमोद्भवात्॥ ४॥

श्रामारायसमुत्थाना पूर्व लद्धनमीपधीमत्युक्तम्, ज्वरे।ऽप्यामाशयममुत्थ श्रत-स्तत्र लद्धनमुपिटराति ज्वरे लद्धनमित्यादि—यद्यपि लद्धनगृहर्णीये "वतु प्रकारा समुद्धि " इत्यादिना टशविधमेव लद्धनमुक्त तथापि व्यायामप्रवातयोर्वर्जनीयत्वेनेवो-कत्वात् मरोधनादीनाव्चावस्थाविशेषिनयतत्वात् पारिशेष्यादशोपवास एव लद्धन-गच्छेनोच्यते । श्रतप्व लद्धनमेवेत्येवकारेण मरोधनादिरूप लद्धन निषिध्यते । तेन ज्वरस्य पूर्वरूपे यह्मचश्चनादिविधान तस्य न निषेध । वाग्मटेनापि "लाना-स्यक्तप्रदेहाश्च परिशेषञ्च लद्धनम् " इत्यनेन नवज्वरे श्रनशनरूपलद्धनापेक्षया परि-

शेषलङ्गनप्रतिषेध कुर्वना सशोधनादिरूप लङ्गन निषिध्यते। किं वा चरकेण निदानस्थाने " हिन लव्वशनमपतर्पण वा" इति यदुक्तम्, तत्पूर्वरूपावस्थायाम्; न्यकायान्तु लहुनमेवेत्येवकारेण लव्दशनमपि निषिध्यते इति श्रेयम् । ननु लघन-बृहर्णीये कफापित्तज्वरच्छद्बीदिषु मध्ये ज्वर पठित्वा उक्त "पाचनैस्तान् भिषक् प्राज्ञ प्रायेणादावुपाचरेत् " इति, इह तु लघनमेवादावित्यतो विरोध " नैवम्, तद्भेषजप्रयोगस्यादौ पाचन न तु ज्वरस्यादावित्यवगम्यते । किं वा श्रादावेव लघन कार्य्यामिति योज्यम्, तेन जीर्थाज्वरे न लघन कार्य्यमिति वोधयति । उक्त हि वाग्भटे ' शुद्धवातत्त्रयागन्तुजीर्थाज्वरिधु लघनम् । नेष्यते तेष्वभिद्दित गमन यन्न कर्पणम् " इति । हारीतेन तु "पित्तक्षेष्मविशुद्ध्यर्थे कुर्याद्रमनमादित " इति यदुक्त तत कफप्रधानानित्यादिवस्यमाणावस्थाया श्रेयम् । स्वयराब्देन धातुत्त्वयकृत ज्वर किं वा राजयदमकूत च्वर गृह्णाति । श्रनिलशब्देन निरामानिलग्रहण्य, उक्त हि " शुद्धवातस्रयागन्तुकीर्याज्वरिषु लघनम् । नेष्यते " इति । किं वा स्रयानिल-शब्देन धातुचयकुपितानिलग्रहणम् । यदुक्त " वायोधीतुचयात् कोपो मार्गस्या-वररोग च " इति । यस्तु वायुर्मार्गावररोग कुप्यति, स श्रावरक्षभितया प्रायेण मामे। भवति । तत्र लघन मात्रया कर्त्तव्यमेव । यदुक्त " सामे वातेऽपि लघन " भ्रनिलच्चरमिभथायापि कामादिज्वराभिधानम्, कालान्तरेख वातमम्बन्धो भवति, तेन प्रथममपि वातामम्बन्धेन कामादिज्वराखाम-लवनीयतोपदरीनार्थम् ॥ ५ ॥

श्रामशयस्थो हत्वार्त्ति सामो मार्गान् पिधापयन् । विद्धाति ज्वरं दोषस्तस्माल्लह्वनमाचरेत् ॥ ६ ॥ लवनोपपत्त्यर्थ ज्वरस्य सन्प्राप्तिमाह श्रामाशयस्य इत्यादि—वाग्मटस्य । अत्र । यत्तदोर्नित्यमम्बन्धात् यसमादिति सम्यते ॥ ६ ॥

> श्रनवस्थितदेषाग्नेर्लङ्घनं दोषपाचनम्। ज्वरम्नं दीपनं काङ्ज्ञारुचिलाघवकारकम्॥ ७॥

लघनफलमाइ अनवस्थितेत्यादि—सुश्रुतस्य । अनवस्थितौ स्वस्थाने स्वमाने चानवस्थितौ दोषाग्री यस्य स तथा । काङ्चा अन्नप्रार्थना, रुचि अभ्यवहार-पाटवम् ॥ ७॥

प्राणाविरोधिनां चैनं लङ्घनेनोपपाद्येत्। वलाधिष्ठानमारोग्यं यदर्थोऽयं क्रियाक्रमः॥ =॥ पतच लघन तथा कार्य यथा न वलहानि स्यािन्लाह प्राणाविरोधिनेत्यादि— प्राणो वलम्, विरोधश्चानित्तय इहोच्यते । हेतुमाह वलाधिष्ठानमित्यादि— अधिष्ठानमाश्रय, अत्र वहुन्नोहि । अत प्वोक्तम्, "यस्माहलवत सर्वितिया-प्रवृत्तिस्त्रसाहलमेव प्रधानमधिकरणानाम्" इति । यदर्थ आरोग्यार्थ ॥ ॥ ॥

तत्तु मारुतज्जुनृष्णामुखशोषभ्रमान्विते । कार्य्य न वाले वृद्धे वा न गर्भिएयां न दुर्वले ॥ ६॥

श्रलघनीयानाइ तत् त्वित्यादि ॥ ६ ॥

्रें वातमूत्रपुरीपाणां विसर्गे गात्रलाघवे । हृद्योद्वारकएठास्यश्चदौ तन्द्राङ्कमे गते ॥ स्वेदे जाते रुचौ चापि चुत्पिपासासहोदये । कृतं लङ्गनमादेश्यं निर्व्यथे चान्तरात्मनि ॥ १०॥

मन्यक् कृतस्य लघनस्य लच्चणमाह बातमूत्रेत्यादि—हृदयस्य शुद्धि, गीर-बादिराहित्यम्, क्एठस्य शुद्धि कफिततादिविरह् , आस्यस्य शुद्धि श्रविकृत-रसत्वम्, तन्द्रा निद्रावत् स्नाति , क्षमो दोपजा ग्लानि । च्लिरपपासामहोदय इति, च्लिरपपासयोर्श्वगपदुदय इत्यर्थ । वाग्मेटऽप्युक्त "च्लुनृट्सहोदय शुद्धहृदयोद्वार-क्रपठता" इति । किन्तु "सृष्टमाम्तविरमूत्र च्लिरपपासासह लघुम् । प्रमन्नात्मेन्द्रिय चाम नर विधात् सुलिधतम्" इति सुश्रुतदर्शनात् , च्लिरपपासयोरसहोऽमद्वा उदय इति चेक्रेण व्याख्यातम् , किन्तु न महते इत्यसह पचाधजन्त कर्त्तरि दृश्यते, तेन असहरान्दस्यासद्वार्थत्वकृत्यने कष्ट स्यादिति । कृतमिति मन्यक् कृतम् । श्रन्त-रात्मनीति श्रन्तरिन्दिये मनसीत्यर्थ ॥ १०॥

पर्वभेदोऽहमर्दश्च कासः शोपो मुखस्य च। चुत्रमणाशोऽकिचस्त्रण्णा दौर्वल्यं श्रोत्रनेत्रयोः॥ मनसः सम्भ्रमोऽमीच्णमृद्ध्ववातस्तमो हृदि। देहाग्निवलहानिश्च लहुनेऽतिकृते भवेत्॥११॥

श्रतिलक्ष्यमाइ पर्वमेद इत्यादि —श्ररुचि सत्यामि युमुचायाम् अनन्नाभिनन्दनम्, श्रोत्रनेत्रयोदीर्वत्य स्वविषयग्रह्यासामर्थ्यम् । सम्भ्रमोऽनवस्थि-तत्व, भ्रान्तिरियन्ये । अभीच्यमित्यतिरायेन । ऊद्ध्वृंवात हिक्काश्रास्कर्णस्वनज्ञम्याद्य, न, पुनरुद्गरिवरेष , श्रातिलङ्घनेन कफच्चयाद् । स च पुन कफकोषाद् भवति, यदुक्तम् ''अध प्रतिहतो वायु श्रेष्मया मारुतेन च । करोति नित्यसुद्गार-

मृद्धंवात म उच्यते।" तम हृदि मोह इत्यर्थ.॥ ११॥ सद्योभुक्तस्य वा जाते ज्वरे सन्तर्पशोतिथते। वमनं वमनार्हस्य शस्तमित्याह वाग्भटः॥ १२॥

ज्नरारम्भ एव वमनावस्थामाह सद्य इत्यादि—सन्तर्पणोत्थित इत्यन्न "सामे विशेषतः" इति वाग्मटे पाठो दृश्यते ॥ १२॥

> कफप्रधानानुत्क्किप्टान् दोपानामाशयस्थितान्। बुद्ध्वा ज्वरकरान् काले वस्यानां वमनैर्हरेत्॥ १३॥

तरुणातरुणज्वरे अवस्थाविशेषे अविशेषेण वमनमाह कफप्रधानानित्यादि— चरकस्य । कफ प्रधानो येषा ते कफप्रधाना । उत्किष्टान् हृह्णासादिना बहि-र्निगमनोन्मुखान् । काले यथोक्तायामवस्थाया, वम्यानामिति वमनयोग्याना, तेन गभिष्यादिनिषेष ॥ १३॥

> श्रनुपस्थितदोपाणां वमनं तरुणे ज्वरे । हृद्रोगं श्वासमानाहं मोहञ्च कुरुते भृशम् ॥ १४ ॥

उक्तावस्थान्यतिरेकेश वमने दोषमाह अनुपस्थितत्यादि—चरकस्य । अनु-परिथतदोषाणाम् अनुिक्तप्रदोषाणामित्यर्थः ॥ १४ ॥

तृष्यते सिलल्झोप्णं दद्याद्वातकपज्वरे।
मद्यात्थे पैत्तिके वापि शीतलं तिक्ककैः श्रतम्॥ १४॥
दीपनं पाचनञ्चेव ज्वरघ्रमुभयञ्च तत्।
स्रोतसां शोधनं वल्यं रुचिखेदप्रदं शिवम्॥ १६॥

लघनकाले तृष्यते जलमाह तृष्यते इत्यादि—चरकस्य। वातकफज्वर इति वातक्वरे कफज्वरे वातकफज्वरे च उष्ण सिललमर्द्धम्यत श्रेयम्। यदाह श्रक्षिवेश "काथ्यमानन्तु यत् ताय निष्फेन निर्मलीकृतम्। भवलर्द्धाविशिष्टच तदुष्योदक-मुच्यते"। मघोत्थ इत्यादि—मधस्य श्रत्युष्पावीर्थ्यत्वादम्लताच पित्तकर्तृत्वात् तब्वन्यक्वरस्य पित्तज्वतेन परिग्रहे सिद्धेऽपि पुनस्तदिभिधान श्रन्यसिश्वपि मघोत्थ-रोगे तिककम्यत्वलस्यव यौगिकत्ववेषमार्थमिलाहु । तिक्कं श्रतमिति वच्त्यमाया-मुस्तादिभिस्तिक्कं श्रतम्। ज्वरम्रमुभयच्च तदिति उभयमुष्य तथा तिककश्रत-रातिच्च। छत दीपनमिप न पाचन, लह्षन पाचनमिप न दीपनिस्तित्वतः पद-दयोक्ति, यद्यपि त्रिदोयजकफिपत्तक्वरयोः पानीय नोक्कं, तथापि सामान्येन विमान-स्थाने यद्यकः " किं जु खलु ज्वरिभ्यः पानीयमुष्य प्रयच्छिन्तं रे इत्यादिना तत्प्रा- माग्यादुष्णमेव जल देयम् । वातिपत्तज्वरेऽत्यर्थदाहकारके शीतमर्द्धश्वत जल देय-मित्यपि विमानः ण्वात्यर्थपित्तोत्स्यन्दे इत्यादिना धन्थेन स्चितम् ॥ १५ ॥ १६ ॥

## षडद्गपानीयम्

## मुस्तपर्पटकोशीरचन्दनोदीच्यनागरैः । श्टतशीतं जलं दद्यात् पिपासाज्वरशान्तये ॥ १७ ॥

तिक्तकै श्रतमिति यदुक तदाइ मुक्तेलादि—चन्दन रक्तचन्दन, यदुक्तम् "उक्ते चन्दनशब्दे तु गृद्यते रक्तचन्दनम्"। उदीच्य वालकम्। अत्र तु शुरुठी श्रतिकाप्यामाशयतुष्टिकारण्डवरहितत्वादिहिता । वाग्मेटे तु पद्यकाष्ठ पट्टयेते न तु शुरुठी ॥ १७॥

#### मुख्यभेषजसम्बन्धो निषिद्धस्तरुणे ज्वरे । तोयपेयादिसंस्कारे निर्दोपं तेन भेषजम् ॥ १८ ॥

नतु " ज्वरित पटहेऽतीते " इत्यादिना, सप्ताइनन्तरमेवौपधदान वच्यति, अत्र तु सप्ताइन्यन्तर एव पटङ्गाणौपधविधानम्, अत पूर्वापरअन्यविरोध निराचिकीपुराह मुख्यमेषजसम्बन्ध इत्यादि—अन्नपानादेरसस्कारकतया यदौपधमुप-युज्यते तत् प्रधान, तद्विन्न पुनरप्रधानमिति। तेन प्रधानौपधस्यैव तरुणज्वरे निषेध , नाप्रधानस्य पटङ्गादे । उपयुज्यते इत्यनेन भच्चणविषय , उपयोगो विविच्चत , तेन स्वेदादीनामप्रधानत्वात् त्रुणज्वरे न निषेष । अष्टाङ्गाद्यवलेहोऽपि प्रधानत्वात् तरुणज्वरे देय एव। यतस्विदोपजज्वरे तु सप्ताइन्यन्तर एव तस्य विधान तदपवाद-रूपमेविति उत्सर्गापवादरूपतया विधिनिषधयोर्न विरोध ॥ १८॥

#### यद्प्सु श्वतशीतासु षडद्गादि प्रयुज्यते । कर्षमात्रं ततो द्रव्यं साघयेत् प्रास्थिकेऽम्मसि ॥ श्रर्द्धश्वतं प्रयोक्तव्यं पाने पेयादिसंविधौ ॥१६॥

उक्तपहङ्गतीयसाधनार्थं तथा वस्त्यमाणस्य कषायसाध्यपेयादे साधनार्थन्न
भेपजजलमानव्यवस्थापिका वृद्धवैद्यव्यवहारसिद्धा परिभाषामाह यदप्तु इत्यादि—
ग्रतशीत शृतशीतजलिनिमत्त यद् पङङ्गादि द्रव्य प्रयुज्यते तद् कर्षमात्रम् । आदि—
श्वतशीत शृतशीतजलिनिमत्त यद् पङङ्गादि द्रव्य प्रयुज्यते तद् कर्षमात्रम् । आदि—
शव्देन पेयादिसम्पादनार्थजलसस्कारकथान्यपिप्पलीपञ्चम्लीधान्यपञ्चकादिग्रहः ।
पेयादिसविधावित्यादिशब्दात् तु यूषरसादीना ग्रहण्यम् । अस मध्यवीर्यस्यापि पङङ्गादे
कर्षो मन्दानलपुरुषविषयतया श्रेय , मध्यवीर्य्यस्य हि द्रव्यस्यार्द्यपलप्रमाणमग्रे व्यवस्थान

पनीयम् । प्रास्थिक इति द्रव्यद्वेगुण्याच्छरावचतुष्टयः; " द्वेगुण्य कुहवाद्र्धं प्रस्था-दिश्रुतिमानत " इत्युक्ते. । इमाञ्च परिभाषा काथसाध्ययनाग्विषयत्वेन वृद्धा प्रायः समाद्रियन्ते ॥ १६ ॥

# विमतं लिह्नतं काले यवागूभिरुपाचरेत्। यथास्वीषधसिद्धाभिर्मण्डपूर्वाभिरादितः॥ २०॥

वमनलह्ननयोरनन्तर यद्विधेय तदाह विमितिमत्यादि—चरकस्य । अवस्थान्वरात् कदान्विह्नमित कदान्विह्नकृषित, कदान्वि विमितलङ्घितम् । वमनानन्तर हि यदि सम्यग्विशुद्धिनं भवति, तदा तदहलङ्ग्वनमि ि क्रियते इत्यत उक्त—काले इत्यन्नदानयोग्यकाले । यथास्त्रीषय यस्या यवाग्वा यद्भेषज पिप्पलीनागरादि वाच्यं, तिसद्धाभि । किं वा यस्मिन् ज्वरे यद्यद्भेषज पाचन वाच्य तत्सिद्धाभि , उक्त हि सुश्रुते ''अन्नकाले हिता पेया यथास्व पाचनैः कृता'' इति। यद् यत् स्व यथास्विमिति वीप्सायामव्ययीभाव । मण्डपूर्वाभिरिति मण्ड पूर्व प्रधानोऽच्छत्या यासा ताभिरित्यर्थ । पतेन पेयाया प्रहण्, तस्या एव वहुद्रेवन मण्डप्रधानत्वात्; विलेप्यास्तु निरास , तस्या अल्पद्रवत्वेन मण्डप्रधानत्वाभावात् । अन्ये तु मण्ड पूर्व. प्रथमाभ्यवहाय्यो यासा ता इत्यर्थ , तेन प्रथम स्वच्छमाग खादित्वा ततो घनभाग खाद्य इत्याहु ॥ २०॥

## लाजप्यां सुखजरां पिष्पलीनागरैः श्वताम्। पिवेज्ज्वरी ज्वरहरां चुद्वानल्पाग्निरादितः॥ २१॥

लाजेपयामित्यादि — चरकस्य । अत्र लाजपेयामित्यादिना धृतश्रष्टा ज्वरापहा-मित्यम्तेन चरके दश यवाग्वोऽभिहिता । तत्र पिप्पलीनागरे शृतामित्यन्ता श्रेष्मणीति हरिश्चन्द्र । अन्ये तु लाजेपया सुखजरामित्येका, पिप्पलीनागरे शृतामिति दिता-याम्, एव शेषाभि सममेकादश पेया इति व्याचच्रते । किन्तु "प्राक् लाजपेया सुखजरा सशुग्ठीम् " इति वाग्भटदशंनात् हरिश्चन्द्रपच एव समीचीन , यतो-ऽस्मिन् प्रकरणे तत्र लाजेपया नोच्यते ॥ २१॥

पेयां वा रक्तशालीनां पार्श्ववस्तिशिरोरुजि । श्वदंष्ट्राकग्रदकारीभ्यां सिद्धां ज्वरहरां पिवेत् ॥ २२ ॥ कोष्ठे विवद्धे सरुजि पिवेत् पेयां श्रतां ज्वरी । मृद्धीकापिष्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः ॥ २३ ॥ पञ्चमूल्या लघीयस्या गुर्व्या ताभ्यां सघान्यया ।

### कण्या यूषपेयादि साधनं स्याद् यथाक्रमम् ॥ वातिपत्ते वातकफे तिदोषे श्लेष्मिपत्ते । यवागुः स्यात् तिदोषन्नी व्यान्नीदुःस्पर्शगोन्नुरै ॥ २४॥

पेयाभित्यादि—चरकस्य । श्रदच्या गोत्तुर, मुर्धाका द्रात्ता, चित्रक रक्षचिलक मासलत्वात् । पञ्चमृत्येत्यादि चत्वारो योगा श्रवचारययैव व्याख्याता । यवागू स्यादिग्यादी व्याघी कण्डकारी, दु स्पर्शो दुरालमा ॥ २२-२४ ॥

> कर्षार्द्धं वा कणाश्चग्रुट्योः कल्कद्रव्यस्य वा पलम् । विनीय पाचयेद् युक्त्या वारिप्रस्थेन चापराम् ॥ २४ ॥

कल्कसाध्ययवागूनाभनार्थे परिमापामाह कर्षार्द्ध वेत्यादि । कर्पार्द्ध वेति वर्पार्दं प्रत्येकम् । त्रिविध हि भेषजद्रव्य वीर्व्यमेदात् , तीच्यवीर्व्यं यथा शुरुट्यादि, मध्येवीर्थ्य विल्वाग्निमन्थादि, मृदुवीर्थमामलकादि । तीच्णद्रव्योपलचण, तेन तीच्णद्रव्यमात्रस्यैव ्र क्वापितम् । कल्कद्रव्यस्य वा पलिमिति मृदुद्रव्योपलच्चण्, तेनान्यस्यापि मृदुवीर्य्यः-द्रव्यस्यामलक्यादे पल श्राह्माभिति ज्ञापयति । एतेन तीच्णमृद्दरन्ययो मानन्यवस्थया मध्यवीर्य्यस्य बिल्वााग्नेमन्यादेरनुक्तमप्यर्द्भगतमान सामर्थ्यादेव श्रेयम् । यत् पुनर्मध्यवीर्थ्यस्य पडद्गादे कर्षप्रमाण्युकः, तन्मन्दानलपुरुपाभिप्रायेणेत्युकःमेव । विनीयेति कल्कीकृत्य, प्रचिप्येति वा । अपरामित्यन्याम् , अन्यत्वच्च कषायसाध्य-यवागूमपेच्य, तेन कल्कसाध्यामिलार्थ । एवज्र तीच्णद्रव्यापेचया कर्पप्रमाण, मृदु-द्रव्योपेचयां च पलप्रमाण, मध्यवीय्यंद्रव्योपेचया चार्क्रपलप्रमाण द्रव्य विनीय कल्कसाध्या यवागू वारिप्रस्थेन द्रव्यद्वैगुण्याच्छरावचतुष्टयमानेन साधयेदिति योजना । ननु प्रवलानलवलादी पुरुषे वहुयवाग्वादि विधेय तत्र कथ वारिप्रस्थेन यवागूसाधन भविष्यति ? इत्याह युक्लेति । एतेन यत्र उत्तमवलानले बहुयवागूर्वि-धेया. तत्र युक्ला जलप्रसद्दय त्रय वा तर्यं जानुरूप दत्त्वा यवागू साधयेत्, त्ररूप-वलानले तु वारिप्रस्थेनेत्यर्थ । अपरानिति पाठे यूपादीनिति, । तेन पेयासाधन-रीत्या यूषादयोऽपि साधनीया इति प्रतिपादितम् ॥ २५ ॥

#### षडङ्गपरिभाषैव प्रायः पेयादिसम्मता ॥ २६॥ ,

त्रथ काथसाध्ययवागृसाधनार्थं कथिह परिभाषा नीका १ हलते आह पडक्व-परिभाषेव इत्यादि—अन्ये तु 'काध्यद्रव्याअति 'चुएण श्रपियत्वा जलाढके। अर्द्धश्वेतन तेनाथ यवाग्वाद्युपकलपयेत् ' इलेव परिभाषामक्षिवेशमहितोका काथसाध्य यवागृविषयत्वेनत्याहु.। श्रस्थार्थ -श्रक्षालि॰ पलचतुष्टय श्रपियत्वा जलाढके द्रव- - द्वेगुर्यात् जलस्य षोढशशरावे। द्रव्य तावद् द्विविध वीर्य्यप्रधान रसप्रधानद्व । तत्र श्राध भेषजद्रव्य, द्वितीय पुनराहारद्रव्य मासादि । तत्र रसप्रधानद्रव्याभिप्राये- यौव चतु पलद्रव्याभिधानमत्र श्रेयम् । तेन परिभाषेय 'सिद्धा वराह्निर्व्यूहे यवागू- वृह्यो मता' इत्यादि यवागूविषया वोध्या । वृन्दस्तु 'वृद्धवैद्या पल द्रव्य प्राह्व- यित्वाढकेऽम्भिस । भेषजस्यातिवाहुल्यात् कटाचिद्रविभवेत्' इति जेब्जटन्याख्यात- मेव वृद्धव्यवहार निजपधेन लिखितवान् ॥ २६ ॥

### यवागूमुचिता इक्षाचतुर्भागकृतां चदेत्॥ २७॥

इदानीं यवाग्वर्थ कियन्माना दरदिलततग्डुला देया इत्यत श्राह यवागू-मित्यादि—उचितादित्यभ्यस्ताद, चतुर्मागकृतामिति चतुर्थभागकृता तिद्वसीय-वुभुकापेक्या ॥ २७॥

## सिक्थकै रहितो मएडः पेया सिक्थसमन्विता। यवामूर्वेहुसिक्था स्याद्वित्तेपी विरलद्रवा॥ २८॥

वेयादीना लच्चमाह सिक्थकैरित्यादि-अत्रत्र द्रवसिक्थममन्विवा यवाग्रिति मामान्यलक्षणम् । मा च द्रिविधा पेयाविलेपीमेदात् । तत्र यवाग्वा प्वोपरितनभागो मण्ड , न तु पृथड्मण्ड साध्यने श्रायुर्वेदशास्त्रेऽदर्शितत्वात् । यस्तु काचिन्मएडगुणो मएडीपयोगो वा श्रूयते सोऽप्यस्यैव बोध्य । ननु मएड-श्चतुर्दशगुराजलमाध्य , यवागूस्तु षड्गुराजलसाध्या इत्यनन्तरमेव वच्यति, तत् कथमुच्यते यवाग्वा उपरितनभागो मण्ड ? नैवम् । तत्र यवागूशब्देन पेया विव-चिता । तेन पेयाया पृथक् जलमान नोक्तम् । द्रवसिक्थसमन्वितत्वमेव यवागूमामा-न्यलक्त्या, तेन चतुरंशगुर्याजलसिद्धस्थापि मर्यष्टस्य मिक्थसमन्वितावस्थाया यवागू-त्वमेव, तेन सुष्ट्रक 'यवाग्वा उपरितनमागो मण्ड' इति । पेया इति सज्ञाबलात् बहुद्रवत्वमल्पसिक्थत्वच्च ज्ञेशम्। तेन सिन्थममन्त्रिता यवागूः पेथेति, पेयालच्चे वहुद्रवत्वमल्पसिक्थत्वञ्च लच्चणतया वोध्यम् । तथा विरत्तद्रवा बहुनिक्या च यवागू-विलेपीति विलेपीलचण वोध्यम्। तेन पेयाविलेपीन्यतिरेकेण पृथग् यवागूर्नोस्तीत्याहु । अतएव वाग्मटेऽपि यवागूगुरा पृथङ्नोक । तदुक 'मण्डपेयाविकेपीनामोदनस्य च लाघवम् । यथापूर्वं शिवस्तत्र मण्डो वातानुलोमन. रहित । तथा चरकेऽप्यन्न-माने मण्डेपेयाविलेप्योदनानामेव गुर्णो दरिंात , न पृथग् यवाग्वा इति । यत्तु द्रव्यगुखे माधनकरेख वेयाविलेपीगुख पाठित्वा निाखिन, ' तृखापनयनी लब्बी दीपनी

वितारोशिनो । करे चैवातिसोर च यवार् नवटा हिना रे हित तत्मामान्य राणा-भिष्ठायेण वोश्य नामान्य चीर रापवत् । यत्तु प्रयोगरहाकरे चितु विश्व भेने म्रक्त जलटानप्रमाणत । तत्र भक्त विलेपी च यवार् पेयया सह ॥ रे हित, तत्र मण्ड एव पेयाराव्देन विविच्चिन , यतस्तदनन्तरमेव पेयाया चतुर्दरा राणा जलस्क नेत्रव प्रज-राणा चले भक्त विलेपी च चतुर्राणे । यवार्ग पह्राणे तीये चतुर्दरा रापे पराम् हित ॥ २ = ॥

श्रन्नं पञ्चगुणे साध्यं विलेपी तु चतुर्गुणे । मण्डश्चतुर्दशगुणे यवाग् पड्गुणेऽम्भस्ति ॥ २६ ॥ वनागृपाकार्थ जलपरिमासमाह अनिस्सादि—मूदमान्तस्य । यनागृद्य पेया ॥ २६ ॥

पांशुघाने यथा वृष्टिः क्लेदयत्यतिकर्द्मम् । तथा स्ठेष्मणि संबृद्धे यचाग् स्ठेष्मवर्द्धनी ॥ ३० ॥ यनग्, कसिन् विषये न कर्त्तव्यत्याह पाशुधान इत्यादि—पाशुधाने पाशु-मच्चेष, श्रीतर्ह्ममं यथा त्याद तथा क्लेदयनि म्लेद जनयित ॥ ३० ॥

> मदात्यये मद्यतित्ये ग्रीष्मे पित्तकफाधिके । ऊद्ध्वेगे रक्षपित्ते च यवाग्रहिता ज्वरे ॥ तत्र तर्पण्मेवाग्रे प्रदेयं लाजशक्तुभि । ज्वरापहै फलरसैर्युक्तं समधुशकरम् ॥ द्रवेणालेडितास्ते स्युस्तर्पणं लाजशक्तव ॥ ३१॥

मदात्यय इत्यादि—चरकत्य । चरके एतद्रचनस्योपिर ''ऋने मधनसुतियतात्"' इत्यत्ति तेन मधकारणके ज्वरे यवानुनिषिद्धैव । तेन मदात्यये व्याधी तथा मधिनत्ये मधेप योऽमधहेतुकोऽपि ज्वर मोऽपि पेयानई । तथा ग्रीप्मे यो ज्वर , तथा पिचकफाधिको यो ज्वर , तथा उद्ध्वगरक्षिपित्तिनो यो ज्वर , तेषु सर्वेषु यवागृर्व हितेति। इह मदात्ययादीना पेयानईत्वेन तेषु जातोऽपि ज्वर पेयानई । पिचकफाधिक इत्यनेन् पिचकफयोरितमान्नोद्दमे नित पेयाया अदान बोधयित है तेन कफके ज्वरे, पिचके ज्वरे अनुद्भूतदोषे पेया देया । उक्त हि 'कफकेऽपि यदा खीयो लङ्गनादि-क्रमात् कफ । गस्ना एव यवाग्वन्तु तत्र पिचेऽप्यय क्रम ' इति । अतएव चरके ' पैचिके वाथ शीता मधुनुता पिवेद् । यवागृन् ' इत्यनेन पिचेऽपि यवागृहका । पाशुधाने यथा वृष्टिरित्यादि हारीतवचनमि श्रितिवृद्धकफिविषय क्षेयम् । अन्ये तु मिलितिपत्तकफाधिक पुरुषे यवागूप्रिनिषेधमाहु । उद्ध्वंगे कफिपित्ते इति पाठान्तरमनार्षं, पित्तकफाधिक इत्यनेनेव तदर्थस्य लाभात् । सुश्रुतेऽिष " कफिपत्तपरीतस्य ऊद्ध्वं सुकिपित्तिनस्तथा" इत्युक्तम् । अन्ये तु उद्ध्वंग इति ऊद्ध्वंगरक्तिपत्ते कफिपित्ते चित्त कफ्युकिपित्ते पित्तस्थानगते कफे । अध्ये । उक्त हि वाग्मेट "मद्योद्धवे मद्यनित्ये पित्तस्थानगते कफे । अध्ये तयोवाधिकयोस्तृद्धाहच्छिरिपीहिते । ऊद्ध्वं प्रवृत्ते रक्ते च पेया नेच्छिन्ति तेषु तु ॥" इति व्याख्याय कफिपत्ते चिति पाठमुपपादयन्ति । यद्यपि चरके , " ऊद्ध्वंगे तर्पण पूर्वम् " इति वचता यवाग् वाधित्वा ऊद्ध्वंगे रक्तिपत्ते तर्पण विहित्तेव, तथाप्यूद्धंगरक्तिपित्तिनो यो ज्वरस्तन्त्रापि तर्पणादिक्तमः कार्य्य इत्याह तत्रेत्यादि—ज्वरापहानि फलानि द्राचादाहिम।दोनि, उक्त हि " द्राचादाहिमखर्जूरिपयाले सपरूषके । तर्पणाहेषु कर्त्तव्य तर्पण ज्वरनाशनम् " इति । तर्पणशब्दार्थमाह द्रवेणालोहितास्ते स्युरित्यादि ॥३१॥

श्रमोपवासानिलजे हितो नित्यं रसौदनः। मुद्रयूपौदनश्चापि देयः कफसमुद्भवे। स एव सितया युक्तः शीतः पित्तज्वरे हितः॥ ३२॥

श्रमत्यादि—नित्यमिति सर्वदा नवे पुराखे च। रसो मामरसः, तेनोपसिक्त श्रोदन. रसीदन । एव मुझ्यूषीदनिमत्यत्रापि न्याख्ययम् । श्रयञ्च रसौदन दीप्ताश्चि प्रति वोध्य ; उक हि सुश्रुते '' उपवासश्रमकृते ज्वरे वाताधिक तथा । दीप्ताश्चि मोजयेत् प्राज्ञे। नर मामरसौदनम् '' इति । मुद्गयूषीदनश्चापीति कफजे मुझ्यूषीदनो देयो यवाग्वा श्रहितत्वात् । म एवेति मुझ्यूषीदन ॥ ३२॥

रक्षशाल्यादय शस्ता पुराणाः पष्टिकैः सह । यवाग्वोदनलाजार्थे ज्वरितानां ज्वरापहाः॥ ३३॥

रक्तशाल्यादय इत्यादि—चरकस्य । चरके पुराणा इत्यत्र "शालय " इति पठिन्ति, तेन यनकादीना निरास इत्याहु । ये तु पुराणा इति पठिन्ति तन्मते यद्यपि " शक्तथान्य शमीधान्य समातीतम् " इत्यनेन पुराणस्योपयोगो लब्ध , तथापि प्रमादादितनवस्य तथातिपुरातनस्य च ब्रह्ण मा मूदित्येनदर्थ पुराण इत्युक्तम् ॥ ३३ ॥

मुद्रामलकयूषस्तु वातिपत्तात्मके हितः। ' हस्वमूलकयूषस्तु कफवातात्मके हितः।

# निम्बक्तकयूपस्तु द्वितः पित्तकफात्मके ॥ ३४ ॥

सम्प्रति इन्द्रजेष्वाहारविधिमाह मुद्रामलकेत्यादि—आगलकोपत्तथा मुद्रम्य भूयमी मान्ना, श्राहारद्रन्यत्वात्। येगोऽय यघिष सुश्रुतेन अन्नपानाध्याये कपापित्त-ज्वरहरत्वेन निर्दिष्ट, तथापीह वातिपत्ति ज्वरेऽभिधानात् वातिपत्ति ज्वरहरत्वमिष वचनवलोदेवाध्यवमीयते। हस्त्रमूलको वालमूलक । श्रत्र रामोधान्यस्य यूपये।नित्वात् सुद्राधि वेष्यम् । एव यत्र नाहित नत्र मर्वत्र । किंवा व्यक्षनपरे। यूप । निम्बकृलकेत्यादि—सुश्रुतस्य। निम्बस्य पत्र, तथा कृत्रकर्य पटे।लस्य च पत्रम ॥३४॥

मुहान मसूराश्चणकान् कुलत्थान् समुकुष्ठकान् । श्राहारकाले यूपार्थे ज्वरिताय प्रदापयत् ॥ ३४ ॥

मुरानित्यादि—सुशुतस्य । मुकुष्रको वनमुद्र ॥ ३५ ॥ पटालपतं वात्तीकु कृलकं कारवेलकम् । कर्कोटकं पर्पटकं गोजिक्षां वालमूलकम् । पतं गुडूच्याः शाकार्थे स्वरिताय प्रदापयेत् ॥ ३६ ॥

पटोलेत्यादि—सुशुतस्य । वार्ताकु वार्तावुफन, कूलकमपि पटोलफन, कर्का-टक काकरोल इति ख्यात, गोजिह्या दावाराक ॥ ३६ ॥

#### न्वरितो हितमश्रीयाद् यद्यप्यस्यारुचिर्भवेत्। श्रमकाले ह्यभुञ्जानः द्वीयते म्रियतेऽथवा॥३७॥

इदानीं ज्वरितस्यारुचावि हितभाजन नियमयणाह ज्वरित इत्याहि—
श्रस्यारुचिरि यदि भवेत् तथापि ज्वरिते हितभेवार्शायादेव, इत्युभयत्रापि नियम ।
यतो दिनान्ते भोजयेदित्यनेन मुजि किया विहितेव। "न हि तन्याहित मुक्तमायुपे वा
सुखायवा" इत्यादिना हितमिष विहितम्, अत सिद्धे मत्यारम्भो नियमाय भविन ।
विपच्च दण्डमाह श्रम्काले हीत्यादि—यतोऽन्नकाले हितमभुजान पुरुप सीयते
श्रियते वा । अन्ये तु श्ररुची सत्याम् श्रातुर्भोजने इच्छामावात् श्राप्राच्य भिन्नक्रमेण योजयित्वा नत्र प्रश्विचान्यथा व्याचचते । श्रस्य यदि श्रमचिभेवेत् तदा
श्रहितमप्यश्रीयात् । जुन इत्याह श्रम्नकाले हीत्यादि—यतोऽभुआनम्य धातुत्त्यो
मरण वा स्यात् तस्यादितमश्रीयादित्यर्थ । न चैव व्याख्याने गुर्वाभिष्यन्यकाले
चेत्याचुत्तरप्रन्यविरोध स्यादिति वाच्यम् , यतस्तेनापि ग्रन्थेनाहित न प्रतिषिध्येन
श्रन्यथा व्याख्यानात् , तथा हि ज्वरी ना पुरुप ग्रुवंभिष्यन्यकाले च कथञ्चन कदा-

चिदद्यात् सक्तद्भुक्षीतेत्वर्थ । यतो मुक्त भोजन श्रायुषे वा मुखाय वा न श्रहित किन्तु हितमेव । हिशब्दस्थाने तुशब्द्रपाठेऽपि तुशब्दनिपातस्थानेकार्थत्वात् , हेतौ न्याख्येय: । नन्वेषा न्याख्या तदैव सङ्गच्छते यदि श्रहितार्थमुपदेश कापि शास्त्रे तिष्ठति किन्तिहिं हितस्येव सर्वत्रोपदेश । अवस्थाया तदिप हितमिति चेत तहिं श्रहितमिति व्याहतम् <sup>१</sup> मत्य, प्राय सर्वदा मुद्रादिवन्न हितमिति कृत्वा श्रहितमित्य-च्यते, श्रत एवाहु ''मनोऽनुरूप यदपथ्य तदिप क्रियत एवं' इति । यदक्ष चरके ''मनसोऽप्यानुकूल्येन तुष्टिरूजों रुचिर्वलम् । सुखोपभोगिता च स्याद् व्याधेश्वापि वलक्तय " इति । किन्तु जेज्जटमते एषा व्याख्या न सङ्गच्छते, यते। ज्वरितो हितमित्यादेरनन्तरमेव हितविधायकमहितप्रतिषधक " सतत विषम वापि " इत्यादि " वर्जयेच समामत " इत्यन्त यन्य जेज्जट पठित, तन्मध्ये च गुर्वभिष्यन्दीत्यादिग्रन्थोऽप्यस्ति, ततो गुर्वभिष्यन्दीत्यादिवानयस्याहितविधायकत्व-न्याख्याने प्रकरणमसङ्गत स्यात् । तथा चन्द्रिकाकारेणापि " ज्वरितस्य मन्दांग्ने-गुंवन्नापाकेऽजीर्णम् , श्रमिष्यन्दिन स्रोतेरोधकलेन ज्वरवृद्धि " व्याख्यातम् । एवच्च गुर्वभिष्यन्दीत्यादियन्थोऽप्यहितप्रतिपेधकपरतया ऋजुमार्गेग्रैव व्याख्येय । ज्वरितो हितमश्रीयादित्याद्यपि हितविधायकतया एव व्याख्येयम् । श्रहितस्य रोगवर्द्धकत्वेन मर्वत्र निषेधात् , उक्तरीत्या गुर्विभिष्यन्दीत्यादिग्रन्थ-विरोधाचेति ॥ ३७॥

### श्ररुचौ मातुलुंगस्य केशरं साज्यसैन्धवम् । धात्रीद्वात्तासितानां वा कल्कमास्येन धारयेत् ॥३≈॥

इदानीं वलवदुपद्रवत्वेनारुचे प्रतीकारमाह श्ररुचावित्यादि---योगान्तरमाह धात्रीत्यादि ॥ ३ ॥

### सातत्यात् स्वाद्धभावाद् वा पथ्यं द्वेष्यत्वमागतम् । कल्पनाविधिभिस्तैस्तैः प्रियत्वं गमयेत् पुनः॥ ३६॥

श्रथ हितमेव यदि मतते।पयोगादनिभमतरसादियोगाद्वा रुचिविषयो न स्यात् तदा कि कार्य्यम् १ इत्याह सातत्यादित्यादि—इढवलस्य । सातत्यादिति मतते।पयोगाद् । सतते।पयोगाद्धि स्वाद्दश्रमिष अप्रिय भवतीत्यनुभवसिद्धम् । श्रस्वादु तु स्वत प्वाप्रियम् । स्वादुरमीष्टो रस. । तैस्तै. कल्पनाविधिभिरिति स्वरसकत्कादिसद्दशास्त्रोकाविधानै पुन. प्रियत्व गमयेत् ॥ ३६ ॥

### ज्वरितं ज्वरमुक्तं वा दिनान्ते भोजयेल्लघु । श्लेष्मच्तये विवृद्धोष्मा बलवाननलस्तदा ॥ ४०॥

श्रत्रकालमाह ज्वरितिमित्यादि—वाग्मटस्य । दिनान्त इत्यपरोह्न, सुशुते-ऽप्युक्त "सर्वज्वरेषु सप्ताह मात्रावद्गोजन हितम् । दिनापायेऽन्यथा तद्धि ज्वर-वेगामिवर्द्धनम्" इति । ज्वरितिमित्यादिवाक्यानन्तर वाग्मटवचन यथा ' यथा-चितेऽथवा काले देशसात्म्यानुरोधत । प्रागल्यविद्युंज्ञानो न द्याजीर्येन पांड्यते" इति । तेन यस्य पुरुषस्य य उचित श्राहारकालः, तस्मित्रेव त भोजयेत् । यथोचिने द्वि काले देशसात्म्यानुरोधत प्राय चुद्वोधो भवति, तद्रतिक्रमे च चुधापगमो भवति तेन तस्य दिनान्तापेचा च कर्त्तव्यत्याह प्रागित्यादि । श्रल्पविद्वरिति काया-श्रेविद्यनि सरखात ज्वरितेऽल्पविद्येव भवति । देशमात्म्यानुरोधात् श्रल्पविद्यि प्रागेव पूर्वाह्वेऽपि भुजानोऽजीर्येन न पांच्यते न वाध्यते इत्यर्थ ॥ ४०॥

# गुर्वभिष्यन्द्यकाले च ज्वरी नाद्यात् कथञ्चन । न हि तस्याहितं भुक्तमायुषे वा सुखाय वा ॥ ४१॥

नन्वरुचाविष सत्या हितमेव मोक्षव्यम्, नाहितमित्युक्तम्, अतस्तत् किमहित यन्न मोक्षव्यम् १ इत्याह गुर्वित्यादि सुमुतस्य । गुरु पिष्टकादि, अभिष्यन्दि, दोषधातुमलस्रोतसा क्षेद्रजनकम् अम्लिकादि—नाद्यात् न खादेत् । तथा अकाले अप्राप्ते अतीते च काले हितमिष नाद्यात् । कथश्चन कदाचिद्रिष । अत्र हेतुर्ने-हीत्यादि ॥ ४१ ॥

### लङ्घनं स्वेदनं कालो यवाग्वस्तिक्रको रसः। पाचनान्यावेपकानां दोषाखां तरुखे ज्वरे॥ ४२॥

इदानीं लघनमेनादानिति यदुक्त तस्य पाचनतां दर्शयन्, प्रसङ्घाद स्वेदादीनामिप पाचनतामाह लङ्गनमित्यादि काल इत्यप्टाह । तिक्तकरसोऽत्र यवागूपानीयादिसस्कारकत्वेन श्रेय स्वतन्त्रभेषजप्रयोगस्य तरुणे निषेधात्। उक्तञ्च भेषज झामदोपस्य
भूयो ज्वलयति ज्वरम् इति। श्रिविपक्षानामित्युक्तवापि यत् तरुणे ज्वरे इत्युक्त तदष्टाहादूद्धंमतरुणे ज्वरे अपकेषु दोषेषु पाचनकषायस्य प्राधान्यमावेदयित, न तु
लङ्गनादीनाम्। किं वा अविपक्षअहण्यमष्टाहादूद्ध्वंमिप सामत्वानुश्चिभंवतीति
स्वनार्थम्। अत स्वाष्टाहादूद्धंमिप आमपाचनार्थं पाचन शमनीय वेत्यादि
वह्यति॥ ४२॥

### श्रासप्तरात्रं तरुणं ज्वरमाहुर्मनीषिणः। मध्यं द्वादशरात्रन्तु पुराणमत उत्तरम्॥ ४३॥

ननु ज्वरस्य तरुणता कियन्त काल तिष्ठति इत्याह आसप्तरात्रमित्यादि— मप्तरात्र व्याप्य । आडयमभिविधी न मर्च्यादायाम्, अष्टाहस्य निरामज्वरकालत्वे-नोक्तत्वात् । मध्य द्वादशरात्रानिति पाठ माधीयान्, न तु मध्य चतुर्दशाहन्त्विति, जतुरुणें 'जीर्णक्रयोदशदिवस ' इत्युक्तत्वात् । अत उत्तरमिति द्वादशाहानन्तरः श्रयोदशदिवसमारभ्य, पुराणमिति जीर्णज्वरमाहु । यत्तु "श्रिमप्ताहव्यतीतम्तु ज्वरो यस्तनुता गत । सीहाशिसाद कुरुते स जीर्णज्वर उच्यते' इति तन्त्रान्तरम्, तद्वतिजीर्णाभिप्रायेण वीध्यम् । यद्यपि तरुणज्वर प्रवात्र प्रकृतस्तथापि मध्यपुराण-योरश्राभिधानमेकवानयनिवद्धत्वात् ॥ ४३॥

#### पाचनं शमनीयं वा कपायं पाययेत्तु तम्। ज्वरितं पडहेऽतीते लघ्वन्नप्रतिभोजितम्॥ ४४॥

ननु लङ्गनानन्तर किं कर्त्तन्यम् ? इत्याइ पाचनमित्यादि---एतच विकल्पद्वय योग्यतया यथाक्रममामदोषपकदोपविषय श्रेयम् । तेन पाचन सामस्य, निरामस्य शमनमिति श्रेयम् । पडहेऽतीते इति ज्वरीत्पाददिनमारभ्य षडहेऽतिकान्ते सप्तमे-Sहानि लध्वनप्रतिभोजत ज्वरित श्रर्थादष्टमेSहनि पाचन शमनीय वा पाययेदिति योजना । एनख श्रष्टाहो निरामज्नरलच्चणमिति पूर्वनान्येन, तथा "नि सप्तता निरामज्वरलचाराम्" इति खरनादवाक्येन, तथा "सप्तरात्रात् पर केचिन्मन्यन्ते देय-मौषधम्" इति सुश्रुतवाक्येन, तथा "सप्ताहादौषध केचित्" इति वाग्भटनचनेन महैकवाक्यता उपपन्ना भवति । अन्ये पुनरसुमेवार्थं प्रकारान्तरेखेच्छन्ति-पडहे श्रतीते इति ज्वरोत्पाददिन परित्यज्य गणना कार्य्या वस्तिदिनपरिहारेण परिहार-गणनावत्, तेन पडहे अतीते इत्यस्य सप्तमे अतीते इत्येवार्थो भवति । भट्टारहरि-श्चन्द्रेणापि सप्तमे दिने कषायपान यद्न्याख्यात तस्याप्ययमभिप्राय उन्नेयः। अन्यथा सुश्रुतादिविरोधो दुष्परिहर इति । चन्द्रिकाकारेखोक्तम् " अचिरोगदिन-चतुष्टयवत् ज्वरस्य मप्ताइ सामताकाल , तत्र ''न पाचन वा शमन न शोधनम्" इति । यत्तु पेयाधनन्तर हारीतेनोक्तम् "एता क्रिया प्रयुक्षीत पट्रात्र सप्तमेऽहनि । पिनेत् कषायसयोगान् ज्वरझान् साधुसाधितान्।" इति, तथा "इति पाङ्रात्रिकः श्रोक्तो नवज्वरिहतो विधि । तत पर पाचनीय शमन वा ज्वरे हितम्॥" इति । खरनादवचनज्ञ पूर्वोक्तरीत्या अष्टाहमतिपादकमेव वेयम्। अथवा यतः सुश्रुते

" सप्तरात्रात पर केचिन्मन्यन्ते देयमीपभम्" इत्याद्यमिषाय "पैतिके वा ज्वेरे देयमल्पकालसमुख्यित । श्रचिरज्वरितस्यापि भैपज्य दोपपाकत " इत्युक्तम् , वाग्म-टेनापि "मृदुर्ज्वरा लघुरेंहश्चलिताश्च मला यदा। श्रीचरज्वरितस्यापि भेपज्य योजयेत् तदा।" इति यदुक्षम्, तदिष सुश्रुतसवादात् पित्तज्वरपरमेव शेयम्। प्तद्वचनद्रय सप्ताहादवीगपि पाचनकपायदानप्रतिपादकमनुद्भृतमामतायामेव श्चेयम् । उद्भतसामतायान्तु भेपजदानस्य वलवदपायजनकत्वात् । अत प्वाह वाग्भट ध सप्ताहादीयभ केचिदाहुरन्य दशाहतः । केचिल्लवन्नमुकस्य योज्यमामोल्वणे न त । तीवन्वरपरीतस्य दोपवेगोदयो यत । दोपेऽथवाभिनिचिते तन्द्रास्तैमित्य-कारिशि । श्रपच्यमान भैपज्य भूयो जनयति ज्वरम्॥" इति । श्रपेत्तिकज्वरे तु वात जादौ सप्ताहादवीक् पाचनमि न देयमेव । सप्ताहानन्तरमि यदि सम्यग्दोपपाक-लक्त्यानि ज्वरमार्दवक्तुधादीनि न भवन्ति तदा पाचनम्, अन्यथा तु शमन देयम् । एतदभित्रायेरीव "मृदौ ज्वरे लघौ देहे प्रचलेषु मलेषु च । पक दीप विजानी-याज्ज्वरे देय तदीपथम् " इति सुशुतवचन श्चेयम् । न चंतद्दचन ज्वरमार्दवादी दोपपाकलक्षणे सञ्जाते सत्येव भेपजस्य देयता बोधयति । तत्र च सप्ताद्यानन्तरमपि नियमो नास्तीति वाच्यम् । सप्तरात्रात् पर केचिदित्यादिवचनै सप्ताहानन्तरमेव भेपजदानस्य बोधितत्वात् । तेन सप्ताहादर्वाक् पाचन शमनन्न न देयमिति स्थितम्। व्याख्यानान्तरन्तु "ज्नरे पेया कपायाश्च" इत्यादि व्याख्यानावसर एव व्याख्ये-यम् । नतु सप्तरात्रादूर्ध्वं ज्वरस्य निरामत्वात् किमर्थं तत्र पाचन दीयते यदुक्तम् " श्रष्टाहो निरामज्वरतवाणम् " इति । सत्यप्यष्टाहे यदि न निरामत्व तदा लव्यण-मेव न स्यात् सामनिरामसाथारणत्वात्। श्रसाथारणथर्मो हि लक्षण भवति। श्रत्राहु दिविधा हि सामता, एका दोषस्य तरुगत्वरूपा। तरुगत्वन्न सप्ताहमानम् । तदुक्त पुष्कलानते ''श्रासप्तरात्र तरुणम्'' इत्यादि । द्वितीया तु रमस्य, मुख्वैरस्य-तृष्णारीचकादिरूपा । तत्र प्रथमा अष्टाहादपैति, अत्र हरिक्षन्द्रेण हेतुरप्युक्त "सप्ताना भातृना भात्विश्वना सप्ताहेनामपाकात् ऋष्टाहेनेव नैराम्यम् " इति । उक्तञ्च " सप्ताहेनैव पच्यन्ते सप्तथातुगता मला । निरामधाप्यत प्रोक्तो ज्वर प्रायोऽष्टमेऽहनि " इति । द्वितीया पुन सप्ताहात् परतोऽपि कदाश्विद्दीपवाहुल्या-दिमिमान्द्याचानुवर्तते । उक्तञ्च "क्ष्म्पलानामवान्ताना ज्वर प्राय कफाधिक । परिपाक न सप्ताहे नापि याति सृद्भाया'' इति श्रतस्तत्र पाचनसुचितमेव । अतप्रवाह सुभुत ''वहुदोषस्य मन्दाग्ने सप्तरात्रात् पर ज्वेर । लहुनाम्बुयवागूभि-

र्यदा दोषो न पच्यते । तटा त मुखवैरस्यतृष्णारोचकनाशनै । कषायै पाचनै-हंबैर्ज्वरप्ने समुपाचरेत्" इति ॥ ४४ ॥

### सप्ताहात् परतोऽस्तब्धे सामे स्यात् पाचनं ज्वरे । निरामे शमनं स्तब्धे सामे नौषधमाचरेत् ॥ ४४ ॥

इदानीं सप्ताहानन्तरमेव यस्यामवस्थाया पाचन शमनव्च देय तदाह सप्ताहादित्यादि — अस्तव्धे सामे इति लालाप्रमेप इत्यादि वस्यमाणस्य रमसामता-लस्रणस्य निवृत्ती सत्या प्राप्तलघुभावे मधुभाग्रडावलेपन्यायेन स्थितस्य कोष्ठावलेपकामभागस्य पाकार्थ पाचन देयम्। निरामे शमनमिति पाचनेन कोष्ठावलेपक स्यामभागस्य पाकात् सम्यड्निरामत्वे सतीत्यर्थ । सम्यड्निरामता च दशरात्रात् परमेव दोषामतारसामत्ये सर्वथा निवृत्त्या प्रायशो भयतीति। अतएव "दशरात्रात् पर केचिद्दातव्यमिति निश्चितम्" इति सुश्रुतेनोक्तम् । किंवा यत्र दोषाणामनितव्दत्वात् सप्ताहनैव रममामतापि निवर्तते तत्र सप्ताहानन्तरमिप शमनादि देयम् " स्तव्धे सामे नौषधमाचरेत्" इति लालाप्रसेकादिरसमामतालस्रणाना मत्त्वादप्राप्तलस्रवे सप्ताहानन्तरमिप पाचन शमनस्र न देयमित्यर्थः ॥ ४५ ॥

# रससामतालचणम्।

लालप्रसेको हम्लासहृदयाग्रुद्धथरोचकाः।
तन्द्रांलस्याविपाकास्यवैरस्यं गुरुगात्रता ॥
चुन्नाशो बहुमूत्रत्वं स्तब्धता बलवान् ज्वरः।
ग्रामज्वरस्य लिङ्गानि न दद्यात् तत्र भेपजम् ॥
भेपजं ह्यामदोषस्य भूयो ज्वलयति ज्वरम् ॥ ४६ ॥

रसमामतालच्चमाह लालाप्रमेक इत्यादि—हृदयाशुद्धि हृदयगौरवम् । न दचादित्यत्र हेतुमाहं भेषजामित्यादि ॥ ४६ ॥

#### श्रामपाकलच्याम्।

मृदौ ज्वरे लघौ देहे प्रचलेषु मलेषु च। पक्कं दोषं विजानीयाज्ज्वरे देयं तदौषधम्॥ ४७॥

पाकलक्षणमाह मृदावित्यादि — सुश्रुतस्य । मृदौ मन्दीभूते । मान्धश्च ज्वर-स्यामरसस्य पाकात् स्रोतिम शुङे पुन कोष्ठगते चोष्मणि भवति । प्रचलेषु प्रति- वन्धकस्यामरमन्य व्यपगमात् अविरुद्धेषु मलेषु वातिषत्तकप्रशृद्धदिषु । पकिमिति
निरामम् । दोषमित्यनेन दुष्टिकारकत्वात् शकृद्ध्युच्यत इत्यादु । देय तदाष्पिमिति
अल्पदोषे अस्तब्धमामताया पाचन, सर्वथा निरामत्वे तु शमन, शोधन यथावस्य देयम् । एतदनन्तरन्तु अन्यदिष पकलच्चण प्रकीयमतेन सुश्रुतेनोक्त यथ।
"दोपप्रकृतिनेकृत्यादेकेषा पकलच्चम् " इति ज्वरारम्भकाले यो दोपस्वमाय
सम्प्राप्तिरूप तस्यान्यथात्वादल्पत्वादेकेषा मते पकलच्चामिति । अन्ये तु प्रथमा
प्रकृति आमरसत्तममृच्छिताना ज्वरजननममर्थाना स्वकार्यस्य ज्वरतीमत्व देहगुरत्वमलविवन्धादेकत्यादन तते। विषय्ययो वैकृत्यम् । प्रथमा प्रकृतिरप्याम एव ।
यदुक्त "प्रथमां दोषदुष्टिन्च केचिदाम प्रचन्नते इति ॥ ४७ ॥

#### नागरं देवकाष्ठञ्च धन्याकं वृहतीद्वयम् । दद्यात् पाचनकं पूर्व ज्वरिताय ज्वरापहम् ॥ ४८ ॥

इदानीं सर्वज्वरमाथनार्थं पाचनकपायमाइ नागरिमत्यादि—भेलस्य । योगे।ऽय द्रव्यगुणपर्य्यालोचनया वातकफजे इनि भद्र । व्याधिप्रत्यनीकनया तु पित्तजे हिनत्व-मस्याभ्युपगम्य मर्वज्वरविषयत्व द्येयमित्याइ मर्वज्वरेष्ट्यिति । श्रतएव तन्नापि एतत्प्रश्वतियोगान्ते प्रद्येन "मर्वज्वरेषु पठयन्ते यथादोषयत्व प्रति" इति ॥ ४ = ॥

# , सर्वज्वरेषु-

पीताम्बुर्लिह्नतः चीणोऽजीर्णी भुक्तः पिपासितः । न पिवेदौषधं जन्तुः संशोधनमथेतरत् ॥ ४६ ॥

यैमेंपज न पेय तानाइ पीताम्बुरित्यादि---मुक्त इति कत्तीरि क , श्रथमध्द समुचये निपातम्यानेकार्थत्वाद, तेनेतरद् रामनद्य न पिवेडित्यर्थ ॥ ४६ ॥

वीर्य्याधिकं भवति भेपजमश्रहीनं हन्यात् तदामयमसंशयमाश्र चैव । तद्वालवृद्धयुवतीमृदुभिश्च पीतं ग्लानिं परां नयति चाशु वलत्तयञ्च ॥ ४०॥

परिणामभयुक्तभेषजगुणमाह बोर्च्याधिकमित्यादि — मोजनसमयिक्तयमाणीपधा-पेचया नीर्च्येणोत्कृष्टमित्यर्थ । स्रत्रहीनमिति हेतुगर्माविशेषण, यतोऽन्नद्दीनमेषज-मावरकदोपामावादिखलभेव स्रोत प्रतिपद्यते कोष्ठन्च मम्यग्मावयित । प्रश्नद्दीन इति पाठान्तरे कोष्ठ इति शेष ॥ ५०॥

श्रवुलोमोऽनिलः स्वास्थ्यं जुनुष्णा सुमनस्कता। लघुत्वमिन्द्रियोद्वारग्रुद्धिर्जीर्णोषधाकृतिः॥ ५१ ॥ भेपजपाकलक्षणमाह अनुलोमोऽनिल स्वास्थ्यमित्यादि ॥ ५१ ॥ क्षमो दाहाद्गसदनं भ्रमो मूच्छी शिरोरुजा। अरिवर्वलहानिश्च सावशेषौषधाकृतिः॥ ४२॥ मेपजस्यासम्यक्पाकलचणमाह क्रम इत्यादि ॥ ५२ ॥ श्रौषधशेषे भुक्तं पीतश्च तथौषधं सशेषे उन्ने ।

न करोति गदोपशमं प्रकोपयत्यन्यरोगांश्च ॥ ४३ ॥

भेपजाजी मोजने अन्नाजी गेंडपि भेषजीपयोगे दोपमाह श्रीषधरीप इत्यादि-भुक्त भोजन पतचाभ्यवहारोपलच्या तेन लेहपानयोरिप शहराम्, मुक्तमित्यस्य मम्बन्धे न करोति गदोपराममित्यन्तर्मावितो एयथौँ क्षेय., यत प्रस्तुतत्वादौपधमेव गदोपशमक युक्तम् । तेनायमर्थः---भेषजाजीर्थे मोजनमीषधमेव गदोपशमन न कारयतीत्यर्थ । पीतमित्यन्त परिमार्जनामिप्रायेगोक्तम्, तेन लेहादीनामपि यहण्म् । सशेषेऽन्ने इत्येव पाठ , श्रन्यथा च्छन्दोभद्ग. स्यात् ॥ ५३ ॥

> शीव्रं विपाकमुपयाति वलं न हिस्या-दन्नावृतं न च मुहुर्वदनान्निरेति । प्राग्भुक्षसेवितमथौषधमेतदेव दद्याच वृद्धशिशुभीरुवराङ्गनाभ्यः॥ ४४॥

भोजनसमयोपयुज्यमानस्याप्योषधस्य विषयविशेषे गुणमाह शीघ्रामित्यादि-शोवपानिता बुमुचितस्य प्रवलजठरानलसम्बन्धादिस्यभिमान्ध । प्राग्मुक्तसेवितमिति मकात् पूर्वमन्यविहतकाले सेवितम् ॥ ५४ ॥

मात्राया नास्त्यवस्थानं दोषमग्नि वलं वयः। व्याधि द्रव्यञ्च कोष्ठञ्च वीच्य मात्रां प्रयोजयेत् ॥ ४४ ॥ तद्भेषज किंपरिमाण्मित्याइ मात्राया इत्यादि--- अवस्थानमिति नैयत्यम् . भतएव चरकेणाप्युक्त "मात्रा खलु व्याधिवलापे बिखी" इति ॥ ५५॥

उत्तमस्य पलं मात्रा त्रिभिश्वाचैश्व मध्यमे। जघन्यस्य पलार्द्धेन स्नेहकाथ्यौषधेषु च ॥ ४६ ॥ तिह मन्दबुद्धरनभ्यवसाय स्यात् इत्यत काथ्यस्य मान प्रसन्न सेहस्याप्याह उत्तमस्येत्यादि — सेहकाय्योपधेष्विति केहरूपाणि काय्यरूपाणि चीपधानि तेषु, किंवा श्रीषध खरसगुढादि ॥ ५६ ॥ ,

> कर्पादौ तु पलं यावहचात् पोडशिक जलम् । ततस्तु कुडवं यावत् तोयमप्रगुणं भवेत् ॥ , काध्यद्रव्यपले कुर्यात् प्रस्थार्द्ध पादशेषितम् ॥ ५७ ॥

काथ्यस्य तावत् पलमान तच्च कियता जलेन क्षयनीयमतस्तन्मानमाइ कर्पादानित्यादि — भ्रियनेशस्य काथविषयेय परिमापा। पल यावदित्येकपलम्। पोटशिक जलमिति पोटशकर्पादिरूपम्। भतप्य कर्पादिमानकाथ्यापेच्या दोयमानम्य पोटशन्याण्यजलस्य वस्तुगत्या कुडवादिमानत्वेऽपि न द्वैगुर्य्यम्, जलमानस्यापि कर्पादिरूप्तया निर्देष्टत्वात्। उक्त हि "रिक्तिकादिपु मानेपु यावन्न कुडवो भवेत्। ग्रुष्कद्रवाद्रयोक्षापि जल्य मान प्रकीतितम्" इति । गिक्तकादिष्टिति रिकिरूपनया निर्दिष्टेष्वित्यर्थे । तत इति प्रकपलाद्द्र्ष्वं पलद्वयमारभ्य कुडवपर्यन्तिमत्थ्ये । भत्रत्र पल यावदित्यन्तिस्थ्ये । भत्रत्र पल यावदित्यन्तिस्थ्ये । भत्रत्र पल यावदित्यस्य पेयाकाथविषयता, तनस्तु कुडव यावदित्यदि ज्ञ मम्पूर्णकोकानुरोधादेवोक्तम्। श्रतप्य पल यावदित्यस्य पेयाकाथविषयत्व द्वयम् पाटावशिष्टत्वञ्च वोधयन् कृष्यात्रयोक्तवचनमुपन्यस्यतिकाथ्यद्वय्यपले कुर्य्यादित्यादि । प्रस्थाद्विमिति द्वद्गुण्यात् पोडश पलानि । श्रतप्वोक्तमन्यत्र "काथ्यद्व्यपले वारि दिरष्टगुणमित्यर्थे । पतेन पले काथ्ये दीयमानस्यापि पोडशगुणकलस्य पादावशिष्टता कार्योति स्वयति । जक्तञ्चान्यत्र "द्व्यमापोत्यिन काथ्य दत्त्वा पोडशिक जलम् । पादावशिष्ट कर्त्तव्यमेष काथविष स्मृत " इति ॥ ५०॥

द्वात्रिशन्मापकैर्माषश्चरकस्य तु तैः पलम् । श्रष्टचत्वारिशता स्यात् सुश्चतस्य तु मापकः । द्वादशभिर्धान्यमापैश्चतुःषष्ट्यां तु तैः पलम् ॥ ४८ ॥

इदानीं काथ्यस्य पलित्रकर्पादिकमिल्यादि यदुक तत् सर्वमिकिञ्चित्कर यतो रिक्तिकादिशानाधीन मापकशान मापकशानाधीनञ्च कर्पपलादिशान तदेव मूल निर्णीतम्, अतो मापकादिमानं न्यवस्थापित्तु परिभाषामाह द्वात्रिंशन्मापकै रिल्यादि—द्वात्रिंशन्मापकैरिल्यादे ।, तेन द्वात्रिंशता विश्वादि साधारर्थिमापक , तैश्च मापकैरष्टचत्वारिशता चरकमते पल स्यादिति योग्य, सुश्रुतमते पुनझाहिमापै-द्वीदशिमापिक , तैर्मापकैश्चतु पष्ट्या सुश्रुतमते पलित्यर्थ ॥ ५०॥

एतच तुलितं पञ्चरिक्षमाषात्मकं, पलम् । चरकार्द्वपलान्मानं चरके दशरिक्षकेः॥ मापेः पलं चतुःपष्ट्या यद्भवेत्तत्त्वेथेरितम्॥४६॥

इदानां सुश्रुतचरकमते यावतीमी रिक्तिमिमीषको भवति तदाह एतच्चित्यादि—
एतदिति द्वादराधान्यमापकृतैश्चतु पष्ट्या मापकै सुश्रुतेन यत् पलमुक्त तत् रिक्तिकाभिस्तुलित मत् पञ्चरिक्तमापात्मक भूत्वा चरकाई पलोन्मान भवतीत्यर्थः ।
एतदेव विशव्यति चरके दशरिक्तिरित्यादि । यतश्चरके द्वात्रिशन्मापकलायकृतै
रष्टचत्वारिंशन्मापके यत् पलमीरितमुक्त तदशरिक्तिकश्चतु पष्ट्या मापके स्तुलितं सत्
नथा तावन्मानमेव मवेत्, यतश्चतुर्विशत्या मापकलायर्दशरितकास्तुल्या भवन्ति,
ततश्च दशरिततकमानाश्चतु पष्टिमापकाश्चतुर्विशतिमापकलायग्वर्युणिता मन्त पट्
त्रिशदिषमपञ्चदशशतमापकलाया मवन्ति । एव चरकमतेऽि द्वात्रिशन्मापकलायप्रमाणा येऽष्टचत्वारिशन्मापकास्त द्वात्रिशता गुणिता सन्त पट्त्रिशदिषकपञ्चदशशतमापकलायाः स्त्रुरिति दशरिवतकमापकृतपलमानेन सह द्वात्रिशन्मापकलायप्रमाण्मापकृतपलमानस्य तुल्यता । सुश्रुतमते पुनर्दादशमापकलाया मापक , ते चतु पष्टि पलिमत्युक्तम् । ते चतु पष्टिमापका द्वादशमापकलायग्रिता सन्तोऽष्टषप्ट्यधिकमप्तश्चतमापकलाया भवन्तीति चरकोक्तपलमानादर्बेन सुश्रुतोक्तपलमानमिति॥ १६॥

्रात्स्मान्पलं चतुःषष्ट्या मापकेर्दशरक्षिकेः । चरकानुमतं वैद्यश्चिकित्सासूपगुज्यते ॥ ६० ॥ .

इदानीं चरकसुश्रुतोक्तमानयोर्मध्ये चरकोक्तमानमेव व्यवहारीपयोगिक-मित्याह तस्मादित्यादि—यस्माचरकोक्तमानमेव वैधैक्षिकित्मास्पयुज्यते, तस्माहरा-रक्तिकैक्षतु पण्ट्या मापकैर्यत् पल तदेव व्यवहारसिद्धमिति शेष ॥ ६०॥

### वातज्वरचिकित्सा ।

्रीत्वादिपञ्चमूलस्य काथः स्याद्वातिके ज्वरे । पाचनं पिष्पलीमूलगुङ्क्चीविश्वजोऽथवा ॥ ६१॥)

पाचनयोगद्वयमाह विल्वादीत्यादि—विल्वादिपञ्चमूल महत् पञ्चमूलम् । श्रवचारणाप्यनेन क्रियते पिप्पलीमूलेत्यादिकन्तु काथिवपयमेवेति, काथाश्रीक्तपाचन-योगन गणरूपेणैव श्रवचारणा क्रियते, न पुनरगणरूपेण। श्रवचारणायोगेनापि गणरूपेण्व कपायोऽपि क्रियते । तेन धान्यपिष्पत्यादिना कपायविधिरित्याहु क्षेत्रिचु काथार्थोक्तपाचनयोगेनागणरूपेणापि अवचारणमाहु ॥ ६१॥

#### किराताव्दामृतोदीच्यवृहतीद्वयगोचुरैः। सस्थिराकलसीविभ्वैः काथे। वातज्वरापह ॥ ६२॥

किरातित्यादि—किरातः चिरायतेति स्यातम्। श्रम्दो मुस्तकम्, श्रमृता गुद्ध्यी, उदाच्य वालकम्, स्थिरा शालपर्या, कलसी पृत्रिपर्या, विश्व शुरुठा, विश्वस्थाने विल्वम्य क्रचित् पाठ । 'योगवाह पर वायु ' इति पित्तयुते पाचनोऽत्य योज्य इति निश्चल ॥ ६२ ॥

र्णेरास्ना वृक्तादनी द्वारु सरलं सैलवालुकम् । कपायः शर्कराक्षीद्रयुक्ता वातज्वरापदः॥ ६३॥

रास्तित्यादि—वृज्ञादनी वन्दा, एनवालुक स्वनामख्यात, हारितिऽय योगः, किन्तु तत्रोत्तरादिमन्यथा पठ्यते, 'कोष्ण मगुडसांपेष्क पिवेदातज्वरापहम् ' इति एव चन्द्रोटऽपि । शर्कराज्ञीद्रपाठन्तु वहुमग्रहपुस्तकेष्वेवास्ति श्रत आर्थेणापि भवितन्यम् । श्रत पित्तरेलष्मश्रुते तत्त्रचेपो वोध्य । श्रय योगो गुडमात्रप्रचेपा-दिपि रिविग्रुप्तेन पठ्यते ॥ ६३ ॥

प्रक्षेपः पादिकः क्वाध्यात् स्नेहे कलकसमो मतः॥
परिभापामिमामन्ये प्रक्षेपेऽप्यूचिरे यथा।
कर्पश्चूर्णस्य कल्कस्य गुडिकानाञ्च सर्वशः॥ ६४॥
द्रवशुक्त्या स लेढग्यः पातव्यश्च चतुर्द्रवः।
मात्रा चौद्वघृतादीनां स्नेहकाथेषु चूर्णवत्॥६४॥

' स्रीद्रशर्करयोमीनार्थं परिभाषामाह प्रसेष इत्यादि—काथ्यात् कथनीय-द्रव्यात् रास्नादे उत्तमपुरुषांपद्यया पलात् पादिक कर्ष इत्यथं । किहे कत्कममो मत इति 'कत्कस्तु स्नेहपार्दकः ' इत्युन्ने कत्कसम पादिक इत्यथं । इमामिनि वस्त्यमाणाम् । कर्ष इत्यादाविष स्नोद्रादीना मात्रा चूर्णविद्रत्यतिदेशेन कर्ष प्वार्थः । अत पकार्थत्वादनुमत्वेव । पर्व ' मितोपलागुडस्त्रारसामान्याशप्रकल्पना ' इति वस्तनस्यापि ' प्रसेष पादिक काथ्यात् ' इति वस्तेन सहैकवाक्यता हेया । तथा हि मितोपलादिकमत्रोपलस्या तेन मध्यादिकमपि हेयम् । सामान्यमुत्मगंसिद्ध पलिवकपोद्यपलस्य यत् काथ्यद्रन्यमान तस्याशेन स्तुर्मागरूपेण प्रकल्पना येषा

ने नथा। तेनापि काथ्यात् पादिक प्रव प्रचेपो होयः। समानैषा प्रकल्पनेति पाठ-पन्नेऽपि समाना चूर्णसमाना कर्षे इत्यर्थः। तेन "मात्रा चौद्रष्टतादीना केहकाथेषु चूर्णवत्" इत्यनेन सहैकवान्यता। यत्र काथप्रधानता तत्र प्रचेप पादिक इत्यादि परिभाषा। एव यत्र चूर्णपेची द्रव तत्र कर्षश्चूर्णस्य कल्कस्येति परिभाषा। द्रव-शुक्त्यास लेढव्य इति,स लेढव्यक्षेत् तद द्रवशुक्त्या द्रवार्द्धपलेन इत्यर्थ । पातव्यश्चेत् तदा चूर्त्द्रव चतुर्गुणद्रव. वृद्धवेद्यव्यवहारस्तु पञ्च ष्रमापकेणेति ॥६४-६४॥

विल्वादि पञ्चमूली च गुडूच्यामलके तथा। कुस्तुम्बुरुसमो होप कपायो वातिके ज्वरे ॥ ६६॥

वित्वादीत्यादि — कुस्तुम्बुरु धनीयकम्। सम इति सममागकृत कषाय इत्यर्थ , एतेन ' भागेऽत्यनुक्ते ममता विधेया '' इति परिमाषार्थ स्चितः । किंवा शम तालव्यादि तेन नाय पाचनयोग किं तिर्ध शमन इत्यर्थ । चन्द्राटेऽपि शमनाधिकारेऽय योग पठित । अत्र शमनलच्या यथा " न शोधयित यद्दोषान् समान् नोदीरयत्यिप । समीकरोति च कुद्धास्तत् सशमनमुच्यते" इति । न शोधयित यद्दोषानिति दुष्टान् दोपान् न देहान्नि सारयित, एतेन शोधम व्यवच्छिन्ति । समान् नोदीरयत्यपीति अदुष्टानितृद्धया न विमार्गान् करोति, अनेन पाचन व्यवच्छिन्ति, पाचन हि दोषान् विमार्गीकुर्वन् पचित यथा आसे स्थाल्या जलन्त्रगुलादीन् विमार्गीकुर्वन्नेव पचित, न कोपयतीति क्षचित् पाठ , स च न सङ्गत , नोदीरयतीत्यनेन पानरक्त्यात् शोधनव्यवच्छेदाय पदान्तर मृग्यम् ॥ ६६ ॥

पिष्पलीशारिवाद्राचाशतपुष्पाहरेखुभिः । कृतः कषायः सगुडो हन्याच्छ्नसनजं ज्वरम् ॥ ६७ ॥

पिप्पलीत्यादि-सुश्रुतस्य । यत्र शारिवैका पट्यते तत्रानन्तम्लमेन, एवमन्यत्रापि क्षेयम् । श्वसनजमिति वातनम् । पिप्पलीशारिवेत्यादिकमारम्य वातन्वरे ये वाच्यास्ते शमनयोगा एव वोध्या , यसात् सुश्रुते "श्रत सशमनीयानि कषायाणि निवोध मे" इत्यिभिधाय एते योगा उक्ता ॥ ६७ ॥

गुडूची शारिवा द्राचा शतपुष्पा पुनर्नवा । सगुडोऽयं कषाय स्याद्वातज्वरविनाशनः ॥ ६८॥ गुडूचीत्यादि—तशन्तरे गुडूचीस्थाने पिप्पती पठ्यते ॥ ६८॥ द्राच्चागुडूचीकाश्मर्य्यश्रायमागाः सशारिवाः । निष्काथ्य सगुडं काथं पिवेद्वातज्वरापहम् ॥ ६६ ॥ द्राह्मेत्यादि—सुष्रुतस्य । काश्मर्थं गाम्मारीफलम् ॥ ६६ ॥ शतावरीगुडूचीभ्यां स्वरसो यन्त्रपीडितः । गुडप्रगाढः शमयेत् सद्योऽनिलकृतं ज्वरम् ॥ ७० ॥ श्रातावरीत्यादि—अनयो स्वरम मम एव त्राह्य ॥ ७० ॥

पित्तज्वरचिकित्सा ।

र्किलिक्कं कट्फलं मुस्तं पाठा तिक्कक्रोहणी । पक्कं सशक्षरं पीनं पाचनं पैत्तिके ज्वरे ॥ ७१ ॥ सत्त्रीद्रं पाचनं पैत्ते तिक्काव्देन्द्रयवैः कृतम् ॥ ७२ ॥

पैत्तिकल्वरे पाचनयोगमाह कलिङ्गीमध्यादि—कलिङ्गम् इन्द्रयव । पाठा श्राकनादी मचौद्रमित्यादौ तिका कटुकी ॥ ७१-७२ ॥

लोधोत्पलामृतापद्मशारिवाणां सशर्करः । काथः पित्तज्वरं हन्यादथवा पर्पटोद्भवः॥ ७३॥

लोघोत्पलेत्यादि—उत्पल नीलोत्पलम्, पद्म च पद्मपुष्पम्। "गुद्भचोशारिना-लोघनमलीत्पलश्रकरा " दत्यायुर्वेदसारदश्नात् । एक प्वाय योग , सुश्रुते सु योगद्वय प्यञ्येत "गुद्भचीपद्मलोघाणा शारिवीत्पलयोस्तथा। शर्करामधुर काथ शीत पित्तज्वरापद् " देति । किंवा एतद्वचनमवादात् सुश्रुतेऽप्येकयोगो च्याख्येय । पर्पटोद्भव इत्यन्नापि सशर्कर इति योज्यंम् ॥ ७३॥

पटोलयवनिष्काथों मेंचुनाः मचुरीकृतः । तीव्रपित्तज्वरामही पानात्तृड्दाहनाशनः ॥ ७४ ॥ पटोलेलादि सप्टम् ॥ ७४ ॥

दुरालभापपेटकप्रियङ्गुभूनिम्बवासाकदुरोहिगीनाम् । जलं पिवेच्छकरयावगाढं तृष्णास्त्रपित्तज्वरदाहयुक्तः ॥७४॥ दुरालभेत्यादि—शर्करात्र प्रचेपविधिनैव, श्रान्ये लवगाढिमिति वचनाद सम्यद्माधुर्यादिका शर्करा देवेत्याहुँ॥ ७४॥।

त्रायमाणा च मधुकं पिष्पलीमूलमेव च । किराततिक्ककं मुस्तं मधूकं सविभीतकंस्। सश्करं पीतमेतत् पित्तज्वरविनाशनम् ॥ ७६ ॥ त्रायमायात्यादि—त्रायमाया वलीयालता इति, मधुक यष्टिमधु, मधूक मधूकपुष्प पित्तहन्तृत्वात् ॥ ७६ ॥

> मृद्वीका मधुकं निम्वं कटुका रोहिगी समा। श्रवश्यायस्थितं पाक्यमेतत् पित्तज्वरापहम् ॥७७॥

मृद्दोकेत्यादि—मृद्दीका द्राचा, कडुका रोहियो कडुरोहियो, अवश्याय-स्थित गिशिरस्थित, न तु शीतकषायमत आह पाक्यमिति । यतेन पाक कृत्वैव शिशिरे स्थापयेत् न तु 'द्रव्यादापोस्थितात् तोये' श्त्यादि शीतकषायविधिना ॥७७॥

्रप्कः पर्पटकः श्रेष्ठः पित्तज्वरविनाशनः । र्कि पुनर्यदि युज्येत चन्दनोदीच्यनागरैः ॥ ७८ ॥

े एक इत्यादि—चन्दन रक्षचन्दन, नागर कडकमि न पित्ते विरुध्यते मधुरपाकित्वाद् ॥ ७= ॥

विश्वाम्बुपर्पटोशीरघनचन्दनसाधितम् ।
दद्यात् सुशीतलं वारि तृद्कुर्दिज्वरदाहनुत् ॥
पर्पटामृतधातीणां काथः पित्तज्वरापहः ॥७६॥

विश्वत्यादि---श्रम्बु वालक, धन मुस्तम् । पर्पटेत्यादि---श्रमृता गुडूची

द्राचारन्वधयोश्चापि काश्मर्थस्याथवा पुनः ॥ ८० ॥
द्राचेत्यादि—सुश्रुतस्य। श्रारम्य शोना हु, श्रस्य च चरके फिलिनी वर्गे
सुश्रुते पत्रवर्गे पाठात् श्रन्त परिमार्जने फल, विह परिमार्जने कुष्ठादी पत्र श्रेयम् ।
तेनात्र फलमेव, एवं काश्मर्य्या श्रिप फलमेव। श्रत्र द्राचारम्बभयोश्चापीत्यको योगः।
काश्मर्य्यस्याथवेति द्वितीय । इदश्च योगद्वय " गुद्धचीपद्मलीश्चाणा शारिनीत्पलयोत्तथा । शर्करामधुरः काथ शीतः पित्तज्वरापह " इत्यस्यानन्तर सुश्रुते पत्र्यते,
तेनात्र योगद्वये 'शर्करामधुरः काथ शै स्त्यनुवर्त्य टीकाकारैः शर्कराप्रचेपो विधेय इति
व्याख्यातम् ॥ ८० ॥

द्राज्ञाभयापपेटकाव्दतिक्का-काथं सशम्पाकफलं विद्ध्यात्। प्रलापमूरुक्काभ्रमदाहशोष-

#### तृप्णान्विते पित्तभवे ज्वरे तु॥ ८१॥

द्रोच्चित्यादि—ख्यातमितप्रभस्य शम्पाक शोनालु तस्य मञ्जाभाग प्रचेप इति केचित्, श्रय प्रचारी । श्रन्ये तु तत्फलै सह मिलित्वा काथ इत्याहु । दरे॥

> ब्युपितं धन्याकजलं प्रातः पीतं सशर्करं पुंसाम् । श्रन्तदीहं शमयत्यचिराद् दूरप्ररूढमपि ॥ ८२॥

व्युषितिमित्यादि — धन्यानकाथ एवं व्युषित कार्य्य इति कश्चित्, म्रान्य तु द्रव्यादापोत्थितात् तोये प्रति निशि मस्थितात् । कपाया योऽभिनियाति स शीत समुदाहृत । पड्भि पंतैश्चतुर्भिवां सिललाच्छीतफायटये। । म्राप्तुत भपजपल रसाख्याया पलद्वयम् '' इति शास्त्रयुक्त्या शीतकपायमित्याहु । वृद्ध-वैद्यास्तु भेषुजार्द्वपले जलपलहयेन् शीतकपाय कुर्वन्ति ॥ ८२॥

🎤 पित्तज्वरेण तप्तस्य क्रिया शीतां समाचरेत् ॥ ५३ ॥

पित्तज्वरेण तप्तस्येत्यादि—तप्तस्यत्येनन वच्यमाणा प्रदेहाधा शीतलक्रिया जीर्णज्वर एव कर्त्तव्येति बोधयित । श्रत एवेकि सुश्रुते ''परिपेकान् प्रदेहाश्च स्नेहान् मशोधनानि च । स्नानाभ्यद्गादिवास्वप्तशीतव्यायामयोपित । कपायगुरुमच्याणि क्रोधादीनि तथैव च । मारवन्ति च मोज्यानि वर्जयेत् तरुणज्वरी'' ॥ - १॥

विदारी दाडिमं लोधं दिधत्थं वीजपूरकम् ।
पिभः प्रदिह्यान्मूर्द्धानं तृड्दाहार्त्तस्य देहिनः ॥८४॥
विदारीत्यादी—दिधत्य किपत्यफल, दाटिमस्यापि फल, वीजपूरकस्य
केशरम् ॥ ८४॥

शृतभृष्टाम्लिपष्टा च धाती लेपाच दाहनुत्। अम्लिपष्टेः सुशीतैर्वा पलाशतस्जैर्दिहेत्॥ वदरीपल्लवोत्थेन फेनेनारिष्टकस्य वा॥ ८४॥

ष्टतेत्यादि—धात्री आमलकी, आदौ अम्लकाञ्चिकपिष्टा पश्चान्यनाग्यत-भृष्टेत्यर्थ । अम्लिपिष्टैरित्यादि—अम्ल काञ्चिकम्, पलारातरुजैश्च पलारानवपद्धवे दिहेत् लिम्पेत् । वदरीपह्मवोत्थेनेत्यादि—अन्नापि वदरीपह्मव काञ्चिकेन पिष्ट्वा प्रचुरकाञ्चिकन गोलियत्वा मन्थानवर्ग्डेन प्रमध्य फेनग्रहण कर्त्तव्यम् । एव निम्बपन्नस्येत्याद्व ॥ ६५ ॥

#### ज्वराचाकत्सा।

कालेयचन्दनानन्तायप्रीवद्रकाञ्जिकैः । सप्तिः स्याञ्किरोलेपस्तृष्णादाहार्तिशान्तये ॥ ८६ ॥ कालेयेत्यादि—कालेय कालेयकाष्ठ, श्रनन्ता श्रनन्तमूल, बदर बदरफलम् । मध्तिगिति—धतमत्र शतधीत प्रयच्छन्ति वृद्धा ॥ ८६ ॥

उत्तानसुप्तस्य गभीरताम्र-

कांस्यादिपात्रं प्रशिधाय नाभौ। तत्राम्बुधारा वहुला पतन्ती

> निहन्ति दाहं त्वरितं सुशीता ॥८७॥ -मर्वत्रैव कफमदन्ध विना। यथा गात्रे क्रम्बुक्या न प

उत्तानेत्यादि-मर्वत्रैव कफमवन्ध विना। यथा गात्रे श्रम्बुक्या न पतन्ति, तथा कार्म्यम् ॥ =७॥

पीतकाञ्जिकवस्त्रावगुगठनं दाहनाशनम् ॥ ८८॥ पीतेलादि—परन्तु सम्यगलोडियत्वा क्रियते ॥ ८८॥ जिह्वातालुगलक्कोमशोपे मूर्धिन तु दापयेत्। केशरं मातुलुङ्गस्य मधुसैन्धवसंयुतम् ॥ ८६॥

जिह्नत्यादि--- सुश्रुतस्य । लेपोऽयम् । क्षोम पिपामास्थानम्, मूर्धि शिर-स्तालुमध्ये ॥ ८६ ॥

मातुलुङ्गशिफाविश्वब्राह्मीत्रान्थिकसम्भवम् । कफज्वरेऽम्बु सत्तारं पाचनं वा कणादिकम् ॥ ६० ॥

मातुलुङ्गेत्यादि—शिफा मूल, ब्राह्मी ब्राह्मीशाक, अन्धिक पिप्पलीमूलम्। सचारमिति मातुलुङ्गाशिफाविशेषणेमव, न तु कणादिकमित्यस्य, यतस्तन्त्रान्तरे पिप्पल्यादिकन्तु पाचन कफंजे ज्वेरे इत्युक्तम्। न तु यवचारप्रचेप इति ॥६०॥

पिष्पलीपिष्पलीमूलचव्यचित्रकनागरम्।
मरिचैलाजमोदेन्द्रपाठारेणुकजीरकम्॥
भागौ महानिम्वफलं हिंगु रोहिणीसर्षपम्।
विडङ्गातिविषे मूर्वा चेत्ययं कीर्तितो गणः॥,
पिष्पल्यादिः कफहरः प्रतिश्यारोचकज्वरान्।
निहन्यादीपनो गुल्मग्रल्लझस्त्वामपाचनः॥ ६१॥

क्यादिकमिति द्वश्रुतोक्तपिष्पल्यादिगयाः भतस्तमेव गया निर्दिशति पिष्प-लीत्यादि ॥ ६१ ॥

> कडुकं चित्रकं निम्बं हरिद्रातिविषे वचा। कुष्टिमन्द्रयवं मूर्वा पटोलञ्चापि साधितम्॥ पिवेन्मरिचसंयुक्तं सज्ञौदं श्लैष्मिके,ज्वरे॥ ६२॥

कडकिमित्यादि — तन्त्रान्तरस्य । सुश्रुते "इरिद्रा चित्रक निम्बसुशीरातिविषे वचा" इति दर्शनात् कडुकस्थाने उशीरमिति निश्चल पठित । कडुकेत्यादि वचान्त एको योग , कुष्ठादिपटोलान्तो दितीय । श्रतपव वृन्दे पूर्वार्द्ध परित्यच्य कुष्ठमित्यादि दितीयाद्धमेव पठ्यते । टल्वचास्तु एकयोगत एव सुश्रुतटीकाया च्यास्या-तवान् । पटोलिमिति पटोलपत्र, 'पटोलादेश्खदस्तथा' इति वचनात् । साधित-मित्यनन्तर कथायमिति शेष । मरिचमल्प मधु तु प्रचुर प्रचेप्य तीक्ष्यमृदुनीर्य-त्वादिति चक्तः ॥ ६२ ॥

निम्बिविश्वामृतादार शटी भूनिम्वपौष्करम्। पिष्पल्यौ बृहती चेति काथो हन्ति कफज्वरम्॥६३॥ निम्नेत्यादि—पौष्कर पुष्करमूल, तदमावे कुष्ठ, एव सर्वत्र । बृहती। करटकारी॥६१॥

> सिन्दुवारदलकाथः सोपणः कफजे ज्वरे। जङ्गयोश्च वले चीणे कर्णे वा पिहिते पिवेत्॥ ६४॥

सिन्दुवारेत्यादि—आयुर्वेदसारस्य । सोषण इति सिष्णलीक , अतएव कणाट्य इति पठ्यते, अन्ये तु कषणशब्देन मरिच व्याख्यानयन्ति व्यव-इरन्ति च ॥ १४॥

> श्रामलक्यमया कृष्णा चित्रकश्चेत्ययं गणः। सर्वेज्वरकफातद्वमेदी दीपनपाचनः॥ ६४॥

श्रामलकीत्यादि-स्पष्टम् ॥ ६५ ॥

. ا त्रिफला पटोलवासाञ्छित्ररुद्दातिक्ररोहिणीपड्ग्रन्थाः। मधुना श्रेष्मसमुत्ये दशमूली वासकस्य वा काथः॥ ६६॥

त्रिफलेत्यादि--- विन्नह्हा गुङ्ची । तिक्षरोहिणी कडुरोहिणी, पढ्यन्या वचा । श्रय योगो दरामूलीवासककायसाहचर्यात् काथ एव, दरामूलीवासकाम्यां मिलिताभ्यां काथ । अत्रापि मधु प्रचिपन्ति ॥ ६६॥

मुस्तं वत्सकवीजानि त्रिफला कटुरोहिसी।
परूपकासि च काथः कफज्वरविनाशनः॥ ६७॥
मुस्तमित्यादि—मुशुतस्य। वस्सक कुटनः॥ ६७॥

# चातुर्भद्रावलेहिका

कद्फलं पौष्करं शृङ्गी रुण्णा च मधुना सह । कासश्वासज्वरहरः श्रेष्ठो लेहः कफान्तरुत् ॥६=॥ कट्फलमित्यादि—कट्फल स्वनामस्यात, शृङ्गी कर्कटशृङ्गी ॥६=॥ कर्षश्चूर्णस्य कल्कस्य गुडिकानाञ्च सर्वशः । द्रवशुक्त्या स लेडव्यः पातव्यश्च चतुर्द्रवः ॥६६॥

कर्ष इत्यादि--पिरापा व्याख्याता पूर्वमेव, किन्तु इद कर्षमान उत्तमपुरुष-मपेच्य कथितम्, तेन मध्यजधन्यापेच्रया कर्षमानादपकर्षो शेयः। व्यवहारस्तु द्वित्रै-रचूर्णमापकैरिति ॥६६॥

कर्ध्वजञ्जगरोगन्नी सायं स्यादवलेहिका। श्रधोरोगहरी या तू सा पूर्व मोजनान्मता॥१००॥ श्रस्थोपयोगार्थ समयमाह कर्धेत्यादि॥१००॥

चौद्रोपकुल्यासंयोगः कासश्वासज्वरापहः। सीहानं हन्ति हिकाञ्च वालानाञ्च प्रशस्यते ॥१०१॥ चौद्रोपक्रत्येत्यादौ उपक्रत्या पिपली ॥१०१॥

संस्पृद्रोषेषु हितं संस्पृप्रमथ पाचनम्।

द्वन्द्वजाना चिकित्सामाह स्तसृष्टमित्यादि—ससृष्ट मिलित वातहरा-दिभिः ॥१०२॥

#### नवाङ्गः

्रिविश्वामृतान्द्रभूनिम्वैः पञ्चमूलीसमन्वितैः। र् कृतः कषायो हन्त्याग्च वातिषत्तोद्भवं ज्वरम् ॥१०३॥ विश्वामृतेत्यादि—अमृता ग्रह्ची, पञ्चमूली स्वल्पा पञ्चमूली ॥१०३॥ त्रिफलाशाल्मलीरास्नाराजवृचाटरूपकै । श्रुतमम्बु हरेत्तूर्ण वातपित्तोद्भवं ज्वरम् ॥१०४॥

त्रिफलेत्यादि —शात्मलीवृत्तस्य मूलम् । राजवृत्तस्य शोखालुवृत्तस्य फल श्रन्त परिमार्जनत्वादिति प्रागेवोक्तम् । श्राटरूपको वासक ॥१०४॥

किरातिक्कमसृतां द्राचामामलर्की शटीम्। निष्काथ्य पित्तानिलजे काथं तं सगुडं पिवेत् ॥१०४॥ किरातिक्कांमेत्यादि—सुश्रुतस्य। त्रमृता गुडूची ॥१०४॥

निदिग्धिकावलारास्नात्रायमाणामृतायुतै । / मसुरविद्नैः काथो वातिपत्तज्वरं जयेत् ॥१०६॥

निदिविधकेत्यादि — निदिविधका कर्ण्यकारी । मस्रविद्रलैरिति वीहिमस्र-दलैरिति वकुल । अन्ये तु मस्रविदल स्थामालतामाहु, यद्यप्यस्या पर्याये मस्रविदला पठ्यते, तथापि लिङ्गमशिष्ट लोकाश्रयत्वात् इति लिङ्गे अनाटर । अस्याश्च द्रव्यगुणे ज्वरहन्तृत्वमस्ति, व्यवहारस्तु कविदनया कविद् ब्राहि-मस्रेणेति ॥१०६॥

#### पश्चभद्रम्

्री गुङ्रची पर्पटं मुस्तं किरातं विश्वभषेजम् । ﴿ वातिपत्तज्वरे देयं पञ्चभद्रमिदं श्रुभम् ॥१०७॥

पञ्चमद्रस्य पित्तकफद्दन्तृत्वमि वोध्यम्। यदाह हारीतं, "किरात पर्पट निम्व गुडूची विश्वभेषजम्। पित्तेश्रूष्मज्वरे कुट्योत् पाचन ज्वरनाशनम्" इति ॥१०७॥

> मधुकं शारिवे द्राज्ञा मधूकं चन्द्रनोत्पलम् । काश्मरी पद्मकं लोधं त्रिफलां पद्मकेशरम् ॥ परूपकं मृणालञ्च न्यसेदुत्तमवारिणि । मधुलाजसितायुक्तं तत्पीतमुपितं निशि ॥ वातपित्तज्वरं दाहतृष्णामूर्ज्ञांविमश्रमान् । शमयेद्रक्तपित्तञ्च जीमूतानिव मारुतः ॥१०=॥

मधुकमित्यादि—दे शारिवे श्यामलतानन्तमूले, मधूक मधूकपुष्पम्, उत्पल नीलोत्पलम्, काश्मरी गाम्भारी श्रस्या फल वृद्धोपदेशात् । पद्यस्य केशर किञ्जलक मृणालमुशीरम् । उत्तमवारिणि तस्डुलोदके । एतत् भर्वं शीतकपायिविधना गृहीतम् ॥१०=॥

# श्रथ पित्तश्लेष्मज्वरिचकित्सा । पटोलादिः

पटोलं चन्दनं मूर्वा तिक्का पाठामृतागणः। पित्तन्क्रेण्मारुचिच्छर्दिज्वरकगृङ्गविषापहः॥१०६॥

पित्तकफडारचिकित्मामाह पटोलमित्यादि—सुश्रुतस्य । गखोक्तत्वात् काथ-कल्कादिकलपनास्य वोध्या ॥१०६॥

### गुडूच्यादिः

गुड़ची निम्वधन्याकं पद्मकं चन्दनानि व । एप सर्वेज्वरान् हन्ति गुडूच्यादिस्तु दीपनः ॥ हृज्ञासारोचकच्छदिंपिपासादाहनाशनः ॥११०॥

उद्भृचीत्यारि—पद्मक पद्मकाष्ठम् । यत्र पद्ममित्यस्ति तत्र प्रायः पद्मकेशरमेव गृह्यते । अत्र अत्यन्तदग्रह्णिपासाया वृद्धाः शीतीकृत्य मधु प्रिचिपन्ति । तच्च वहुधा वृष्टपत्तम् ॥ ११०॥

# चातुर्भद्रकपाठासम्कौ

किरातं नागरं मुस्तं गुडूची अक्राधिके।

्पाठेदिःच्यम् णालैस्तु सद्द पित्ताधिके पिवेत् ॥ १११ ॥
किरातिमत्यादि—''पाठेदिःच्यमृणालैस्तु मद्द पित्ताधिके पिवेत् '' इनि
किरातादिमि सद्द मिलित्वा पिवेत् , श्रत पाठामप्तकत्वम् । मृणालमुशीरम् ।
पित्ताधिक इत्यत्र कफ इति रोष । जतुकर्णेऽप्युक्त 'मूनिम्व धन –गुद्ध्ची—शुग्रह्मम्बवासकमार्ग्य मयापाठा' इति ॥ १११.॥

# कगटकाय्योदिः

कर्यकार्थ्यमृताभागीं नागरेन्द्रयवासकम्। भूनिम्बं चन्दनं मुक्तं पटोलं कटुरोहिश्या॥ कषायं पाययेदेतत् पित्तस्रोष्मज्वरापह्म्। दाहत्रण्णारुचिच्छर्दिकासहत्पार्श्वश्रुल्युत्॥ ११२॥

ł

क्रण्टकार्थ्यादि — भागी वामनहाटी, इन्द्र इन्द्रययः। यवासक दुरालभा । एप योग पित्तोत्तरे कफ इति केसिस् ॥ ११२ ॥

> सपत्रपुष्पवासाया रसः सौद्रसितायुतः। कफपित्तज्वरं हन्ति सास्रपित्तं सकामलम् ॥ ११३॥

सपन्नेत्यादि—रम ग्यरम तरय गुरुरतात् भ्रह्मवल प्रोवेग्गीवयुज्यंत । सितामधुनोरतु प्रत्येक चतुर्मायवयोरत्र प्रदेष धनि मास्त्रविश्च रस्ति सितामधुनोरतु । ११३॥

पटोलं पिचुमर्दश्च त्रिफला मधुकं वला। साधितोऽयं कपायः स्यात् पित्तन्केंग्मोद्भवे ज्वरे ॥११४॥ पटोलामित्यादि पिचुमर्दो निम्न ॥११४॥

#### श्रमृताप्टकः

गुडूचीन्द्रयवारिष्टपटोलं कहुरोहिणी।
नागरं चन्द्रनं मुस्तं पिप्पलीचूर्णसंयुतम् ॥
श्रमताष्टक इत्येप पित्तरुप्टेम्पज्यरापदः।
ह्नासारोचकच्छित्रिप्णादाहिनवारणः॥११४॥
श्रमताष्टके शिष्टो निम्य ॥११४॥
/ पटोलयवधन्याकं मुद्दामलकचन्द्रनम् ।
पेतिके रुप्टेमपित्तोत्थे ज्वरे तृद्छिदिंदाहनुत्॥११६॥
पटोलयादि—सप्टन्॥११६॥

#### पश्चतिक्रम्

जुद्रामृताभ्या सह नागरेण सपौष्करञ्जैव किरातिक्कम् । पिवेत् कपायन्त्विह पञ्चतिक्कं ज्वरं निहन्त्यप्रविधं समग्रम् ॥११७॥

च्चेद्रत्यादि—चुद्रा कण्टकारी, नागरस्य कडुत्वेडिप छित्रिणी गच्छन्नीनि न्यायात् पञ्चतिककमशा ॥ ११७॥

### े सशर्करामत्तमात्रां कटुकामुण्णवारिणा । पीत्वा ज्वरं जयेज्जन्तुः कफपित्तसमुद्भवम् ॥ ११⊏ ॥

सरार्करामित्यादि — सुश्रुतस्य कल्पकल्पनेयम् । रार्कराक्टरोहिययो मिलिल्ला ममभागेन कर्ष । वैद्यप्रसारकेऽपि समभाग प्रवोक्त । चक्रस्तु शर्कराया उप-सर्जनत्वात् कटुकायाश्च प्राधान्यात् कटुकाया द्वादश माषका सितायाश्चत्वार इति । तत्र, श्रायुर्वेदमोरे 'मिता कटुकया युक्ता पीत्वा चोष्णेन वारिणा । जीर्णज्वर जयेच्छीघ्र कफापित्तकृत ज्वरम् श्रे इत्यत्र सिताया प्रव प्राधान्येन निर्देशात् । तसात् 'भागेऽप्यनुक्ते ममना विधेया' इति वचनात् समभागतेव युक्ता ॥ ११ ॥

### दीपनं कफविच्छेदि वातिपत्तानुलोमनम्। ज्वरभ्ने पाचनं भेदि श्टतं धान्यपटोलयोः॥११६॥

दीपनमित्यादि—श्रत्र धन्याकत्य दश मापका , पटोलस्य तु षरमाधका इति केचित् । नन्न, समभागवाधकाभावात् । श्रत काथ , व्यवहारस्तु व्यक्षने-नैव ॥११६॥

# वातश्लेष्मज्वरचिकित्सा ।

कफवातज्वरे खेदान् कारयेद्र्ज्ञनिर्मितान् । स्रोतसां मार्दवं कृत्वा नीत्वा पावकमाशयम् । हत्वा वातकफस्तम्मं खेदो ज्वरमपोहृति ॥ १२०॥

वातकपाज्वरिवािकत्सामाह कप्तवातित्यादि — रूज्ञिनिर्मितािनिति करीषबुस-पायाणवाष्पनिर्मितान् । यथिप वातश्चेष्मिण स्निग्धरूज्ञ एव स्वेदो युक्त यदुक्त 'स्वेदोऽनिले स्निग्धरूजो वातश्चेष्मिण शस्यते ' इति तथािप श्चामाशयगत-स्यैव दोषस्य ज्वरारम्भकत्वात् वातेऽपि रूज्ञ एव स्वेद उक्त । उक्त हि 'श्चामाशय-गते वात रूज्जपूर्व प्रशस्यने ।। १२०॥

### ्रवर्परभृष्टपटस्थितकाञ्जिकासिक्को हि चालुकास्वेदः। शमयति वातकफामयमस्तकग्रलाङ्गभङ्गादीन्॥१२१॥

तमेव रूक्तस्वेदमाह खर्षर इत्यादि—स्विद्यते श्रनेनेति स्वेदः, वालुका एव स्वेद वालुकास्वेदः, तेन खर्षरमृष्टेत्यादि विशेषण मङ्गच्छते । वालुकाप्रकर इत्यपि पाठः ॥ १२१॥ ्रमुस्तनागरभूनिम्यं त्रयमेनन् त्रिकापिकम्। कफवातामशमनं पाचनं ज्वरनाशनम्॥ १२२॥ मुन्देत्यादि—प्रत्येक कर्षः॥ १२२॥

#### पश्चकोलः

्रिपप्रतीभिः श्रतं तोयमनभिष्यन्टि द्वीपनम् । चतुरुप्रेप्मविकारम् प्लीहुन्बरविनाशनम् ॥ १२४ ॥

पिष्पनोमि श्वामित्याहि—पिष्पन्दाम्नोइपर्वाव्यत्वात् काथ्यान्नरवत् अस्य अर्देपलाहिमानेन क्षाये न युन्येन देन कर्षमेकमन्य वा गृहीत्वा कपाय कार्यः प्रदेल हेम्मिप वाने च योज्य । बृद्धान्तु क्षायेन व्यवहरन्ति, अष्टमापक गृहीत्वा पडह्नवर्द्दश्वनामावस्थायामिप कुर्वन्ति ॥ १२४॥

 त्रारग्वधग्रन्थिकमुस्तितिक्वाहरीतकीभिः कथितः कपायः । सामे सग्रले कपवातयुक्ते ज्वरे हितो दीपनपाचनश्च ॥१२४॥

आरन्वभेत्यादि--आरन्वभः गोराालुकन अन्यिक पिप्पनीमृत्, दिक्षा कडुको । दीपनपाचनश्चत्यत्र 'दीपनेभद्रनोऽमी 'इत्यपि पाठ ॥१०४॥

चुद्रादिः कएटकार्य्यादिर्वा

जुद्रामृतानागरपुप्कराह्यये.

कृत-कपायः कफमारतो दृवे। सरवासकासारुचि पर्वरक्ररे

ज्वरे त्रिदोपप्रमवे च शस्यते **४१२६**॥

चुंद्रेत्पाडि—चुडा क्टकारी॥ १२६॥

दशमूलीरसः पेयः कणायुक्त कफानिले । श्रविपाकेऽतिनिद्रायां पार्श्वरुक्त्वासकासके ॥ १२७॥ दरामूलित्यादि—रस काथ । प्राविपाके देशाणामीषत्पाके, तेन पाचन-त्वमस्य ॥ १२७॥

मुस्तं पर्पटकः ग्रुग्ठी गुडूची सदुरालमा।

कफवातारुचिच्छुर्दिदाहशोषज्वरापहः॥ १२८॥

मस्तिमित्यादि—काथेन॥ १२८॥

दारुपपेटभाग्येब्दवचाधान्यककट्फलं । साभयाविश्वपृतीकैः काथो हिंगुमधूत्कटः ॥ ; कफवातन्वरे पीतो हिकाश्वासगलप्रहान् । कासश्वासप्रसेकांश्च हन्यात्तरुमिवाशिनः ॥ मात्रा चौद्रघृतादीनां स्नेहकाथेषु चूर्णवत् । मापिकं हिंगुसिन्धृत्थजरणाद्यास्तु शाणिकाः ॥१२६॥

दावित्यादि — पूतीको लाटाकरेश इति निश्चल । किन्तु भूतीक इति पाठो वहुपुस्तेकपु दृश्यते स च टीकया न ज्याख्यात. । भूतीकश्च यमानी । हिंगुचौदयो प्रेसपार्थ परिभाषामाह मात्रेत्यादि — चूर्यविदिति कर्ष इत्यर्थ । उत्तमस्य पल मात्रेति पचे इय मात्रा श्रेया, माषिक हिङ्ग्विति चेन्नद । श्राधशब्देन मैन्थव-सौवर्चल-मरिचादय ॥ १२६॥

मातुलुङ्गफलकेशरो घृतः सिन्धुजन्ममरिचान्वितो मुखे।
हन्ति वातकफरोगमास्यगं शोषमाश्च जडतामरोचकम् ॥१३०॥ भावलेङ्गत्यादि—सिन्धुजन्म सैन्धवम् ॥१३०॥

#### सन्निपाते---

लहुनं बालुकास्वेदो नस्यं निष्ठीवनं तथा।
श्रवलहोऽञ्जनञ्जेव प्राक् प्रयोज्यं त्रिदोषजे॥
सन्निपातज्वरे पूर्वं कुर्य्यादामकफापहम्।
पश्चात् श्रेष्मणि संक्षीणे शमयेत् पित्तमारुती ॥१३१॥

सित्रपातज्वरचिकित्सामाह लङ्ग्नमित्यादि—यद्यपि सित्रपातज्वरिखदोषा-रञ्ध , तथापि आमाशयस्य कफस्थानत्वाद , स्थानित्वेन च कफ एव बली, अत-स्तत्प्रत्यनीकचिकित्सा प्रथमतो विधेया । अतः कफप्रत्यनीकमेव लङ्ग्नादिक प्रथम कर्तन्यमित्याष्ट्र लङ्गनमित्यादि । अतप्त्रोक्तमन्यत्र ' क्षेष्मनिग्रहमेवादी कुर्याद व्यापो त्रिदोपन ' इति, यत् पुनस्तन्त्रान्तरे ' शमयेत् पित्तमेवादी ज्वरेषु समवायिषु । दुनिवारतम तिद्ध ज्वरार्रेषु विरोषत । तथा वातस्यानु जयेल् वित्त वित्तस्यानु जयेत् कफम् । त्रयाया वा जयेत् पूर्व यो भेवेद्रलवत्तम ' इत्युक्त तत् पुनरवस्थाविशेषे वे।ध्यम् । तथाहि सामज्वरे कफमेनादित प्रतिकुर्व्यात् श्रामपाकान्ते पित्तभेवादी, चिरजे मारुतमेवादाविति । श्रत्रार्थे तन्त्रान्तर र ज्वरे त्रिदोषे साम रामयेत् कंफमादित । पाकान्तमागते पित्त चिरजे विषमेऽनिलम् ! इति । श्रन्थे पुन ' वातस्यानु जयेत् पित्तम् ' इत्यादिश्लोकमतीसारविषयतया वर्णयन्ति । ननु वातादीना विभिन्नमञ्चयप्रकीपादीना युगपदवस्थानामावात् कथ सम्भूय सान्निपातिकव्याध्यारम्भकत्वम् ? श्रथ मन्यते त्रिदे।पकरिनदानवरोन प्रकापादेषा युगपदुपस्थितिरिति, तदि न मने।रम यतस्तथाविधनिदानोषसेवनेऽपि दीषाया विपरीतेर्र्ये परस्परीपमातात् युगपत्प्रकीपस्य श्रनुपपेत । श्रत्रीच्यते न खल दोषाया निखिल एव गुणे विपरीत , समानस्यापि कतिपयगुणस्य नद्भा-वात समानेन हि गुर्खेन दोपार्खामन्योन्यप्रकाेपस्यापि सम्भवात् । तथाहि रीह्य लाधनांधर्वायुस्तैजस पित्त प्रकापयित, पित्तमध्येवमेन वायुम्, वायुरिप शैत्यात् कफम्, कफोडिप तथा वायुम्, पित्तञ्च द्रवत्वेन कफम्, कफोडिप तथा पित्तमिति, गुग्र-साम्यम्। न वाच्यम् , विपरीतस्तु गुर्खाः भूयान् श्रल्प समानगुर्णमभिभूय प्रशामय-त्येव, कुतो न करोत्येव यतो दूष्यापेखया त्रिदोपकरद्रव्यप्रभावाच दे।पगुणा दूष-यन्ति पर न शमयन्तीति । दृढनलस्त्वाह ' विरुद्धैरि न त्वेते गुणैर्झन्ति परस्परम् । दे।षाः सहजसात्म्यत्वात् घेार विषमहीनिव' इति । अस्यार्थस्तु अस्मदीयचरकतत्व-प्रदीपिकायामनुमन्धेय ॥ १३१॥

त्रिरात्रं पञ्चरात्रं वा दशरात्रमथापि वा।

लहुनं सन्निपातेषु कुर्योद्वारोग्यदर्शनात्॥
दोषाणामेव सा शक्तिल्वने या सहिष्णुता।
न हि दोषच्चे कश्चित् सहते लहुनादिकम्॥१३२॥

लङ्घन स्वियत्वा दोषमेदेन तदविधमाद्द त्रिरात्रमित्यादि--- त्रिरात्र लङ्घन-विधिविकत्यो यथाक्रममुत्वयावाताचयेचया द्वेय । कुर्याद्वारोग्यदर्शनादित्यभिधान समब्द्वदेषत्रयापेचया बलसम्पत्तो च द्वेयम् । एतावन्त काल कथ लङ्घन कर्तुं शक्यमित्याशक्याद्द दोषायाामित्यादि--- 'लङ्गनादिकम् ' इत्यत्र आदिशब्दात् वालुकास्वेदादीनामपि ग्रहणम् ॥ १३२॥

# निष्ठीवनमाह—

þ

श्राद्रैकस्वरसोपेतं सैन्धवं कदुकत्रयम् ।
श्राकण्ठं धारयेदास्ये निष्ठीवेच पुनः पुनः ॥
तेनास्य हृदयात् श्रुष्मा मन्यापार्श्वशिरोगलात् ।
लीनेऽप्याकृष्यते श्रुष्को लाघवञ्चास्य जायते ॥
पर्वभेदोऽङ्गमर्दश्च मूर्ज्ञाकासगलामयाः ।
मुखाक्तिगौरवं जाङ्यमुत्क्लेशश्चोपशाम्यति ॥
सकृद्द्वित्रिचतुःकुर्यात् हृष्ट्वा दोषवलावलम् ।
एतद्धि परमं प्राहुर्भेषजं सन्निपातिनाम् ॥ १३३ ॥
निधीवनमाह शाईकेत्यादि—शाईकत्वरसमुष्य कृता सैन्धवादिचूर्यमनुरूप
इत्वा निधीवनमपदिशन्ति वृद्धा ॥ १३३ ॥

मातुजुङ्गाईकरसं कोण्णं त्रिलवणान्वितम्। श्रन्यद्वा सिव्धिविद्वितं तीद्त्णं नस्यं प्रयोजयेत्॥ तेन प्रभिद्यते श्रेषमा प्रभिन्नश्च प्रसिच्यते। शिरोहृदयकएठास्यपार्श्वरुक् चोपशाम्यति॥ १३४॥ नस्यमाह मातुज्जेत्यादि—लवणत्रय सैन्धवसीवर्चल विद्यः। सिद्धिविहित-

मिति । श्रस्य योगस्य भाज्ञिकतन्त्रोकत्वात् भाज्ञिकतन्त्रस्यैव सिद्धिस्थाने श्रेयम् । ॥ १३४ ॥

# मधूकसारादिः

मधूकसारसिन्धृत्थवचोषण्कणाः समाः । श्रुद्णं पिष्ट्वाम्भसा नस्यं कुर्यात् संक्षाप्रवोधनम् ॥१३४॥ मधूकसारेत्यादि—मधूक फलविरोषस्तस्य सार फलास्थि, जपण मरिचम् । श्रन्भमा कोष्णेन ॥ १३४॥

सैन्धवं श्वेतमरिचं सर्षपं कुष्टमेव च । वस्तमूत्रेन पिष्टानि नस्यं तन्द्रानिवारणम् ॥ १३६॥ सैन्धवमित्यादि—श्वेतमरिच शोभाजनवीजम् ॥ १३६॥

#### **अञ्जनमाह**—

् रशिरीषवीजगोमूत्रकृष्णामरिचसैन्धवैः। श्रञ्जनं स्यात् प्रवोधाय सरसोनशिलावचैः॥ १३७॥

श्रक्षनमाह शिरिषेत्यादि—शिला मन शिला । मरसोनेत्यादिविशेषारे की योग , पृथक्पाठात् पृथग्योगोऽपि नोध्य । यदुक्तमायुर्वेदमारे ' यद्काचनीज-गोमूत्र-कणा-मरिच-सैन्थवे । शिलावचारसोनैर्वा श्रक्षन स्यात् प्रवाधनम् ' इति ॥ १३७॥

#### अष्टाङ्गावलेहिका

कद्फलं पौष्करं शृङ्गी ज्योपं यासश्च कारवी।
श्रुच्णचूर्णीकृतश्चैतन्मधुना सह लेहयेत्॥
एषावलेहिका हन्ति सन्निपातं सुदारुणम्।
हिक्कां श्वासञ्च कासञ्च कर्रुटरोगं नियच्छति॥
उर्ध्वगश्रुष्महर्गे उष्णे स्वेदादिकर्मणि।
विरोध्युष्णे मधु त्यक्त्वा कार्य्येषार्द्वक्र रसै।॥१३=॥

श्रवलेष्ठमाह कट्फलिमत्यादि—यासो दुरालमा, कारवी कृष्णजीरकम्।
सित्रपाते स्वेदस्य सर्वदा हितलेन श्रीय्रमम्बन्धसमुद्भूत देहस्य जञ्णलम् । मधु च जञ्णे
विरुध्यते, श्रतस्तत्र मधु त्यक्त्वा श्राद्रंकस्वरसेनावलेष्ट कार्थ्य इत्याह उर्ध्वग इत्यादि ।
यक्तुष्णे इति पद स्वदादिविशेषणम् श्रपरक्रेषपप्स्यथंम् । यस्मात् उष्णिवरोधि मधु
ततो मधु त्यक्त्वा इत्यथं. । ननु ('क्रियायास्तु गुणालाभे क्रियामन्या प्रयोजयेत् ।
पूर्वस्या शान्तवेगाया न क्रियासङ्करो हितः') इत्यनेन सुश्रुते क्रियासङ्करो निषिद्ध ,
तत् कथ नस्यनिष्ठीवनादीना युगपदेव सित्रपातज्वरे विधानम् ? श्रत्रोच्यते, क्रियासङ्करो ग्रानेकिक्रयामेलक , तस्य च दूपकत्व न सङ्करत्वमात्रेण, किं तिर्धि श्रितमात्रलेन श्रिय-मान्यजनकतया तथा परस्परगुणविरोधादुभयोरिप निष्कलतया च ।
यतदोषद्वयमन्त परिमार्जन एव सम्भवति न पुनर्वष्टि परिमार्जने नस्यनिष्ठीवनादौ ।
यतदिभसन्धाय वृन्दोऽपि समाधानमुक्तवान् यथा हि क्रियामिस्तुत्यस्पाभि
क्रियासाङ्कर्यमिष्यते । भित्रस्पतया यास्तु ता. कुर्वन्ति न दूषणम्)') इति ।
ग्रत्यस्पता चात्रान्तःपरिमार्जनत्वेनव कृया । तेनायमर्थः एकरिमन् श्रन्तः
परिमार्जने उपयुक्ते यथपरमन्त परिमार्जनसुगुज्यते तेनैव क्रियासाङ्कर्यंस्य

उक्तरीत्या दूषकत्व न विह परिमार्जने नस्यादाविति । कषायादिमेषजोपयोगानन्तर पुनरवलेहादिदाने च यद्यपि कियासाक्तर्यदोषो भवत्येव तथापि काथ्याक्तत्या न विरोधः । तदक्तता चानादिवृद्धन्यवहारात् दोषानुपलम्भाद्य वोध्यम् । किं वा क्रियामाक्तर्यंस्य दोषस्यालपत्या कर्र्यशादिवलवदपायप्रशमकत्या च निषद्धमप्य-वलेहादिकमवस्थाविशेषे भ्रगीक्रियते । यथा पीतिविषे वालादौ वमनम् । अन्ये तु कल्पनया तुल्यरूपता व्याख्याय कषायावलेहयोर्धुगपदुपयोगेऽपि कल्पनामेदान्न साकर्यमित्याहु । तन्न, सुश्रुते भ्रक्षिमान्धादिहेतुत्वेन क्रियासद्भरमात्रस्यैव दोषत्व-सुक्तम् । तत्र चातुल्यरूपता तुल्यरूपता वित विशेषो न।स्ति केवल वृन्देनैव कषायनस्यादीना सिन्नपते युगपदुपयुज्यमानानामविरोधार्थम् प्रक्रियामिस्तुल्यरूपामितित वचन निवद्धम् । तम्च क्रियाद्वय कल्पनया तुल्यरूपमतुल्यरूप वा मवतु, चभयथाप्यतिमात्रादिनाश्रिमान्धादिहेतुत्वा निषद्धमेव । तेनाभिन्नकल्पना-समेऽपि भपजद्वेय युगपद्भक्षे भित्रमान्द्यदिहेतुत्या निषद्धमेव । तेनाभिन्नकल्पना-समेऽपि भपजद्वेय युगपद्भक्षे भ्रतिमान्नत्विन तुल्यरूपत्वम्, विह परिमार्जने च मिन्नरूपत्व व्याख्याय कषायनस्याजनादिषु क्रियासाकर्यदेषत्व परिहरखी-यम् ॥१३=॥

# पञ्चमुष्टिः

्रयवकोलकुलत्थानां मुद्गमूलकश्चग्ठयोः।
पक्षकमुष्टिमाहृत्य पचेदष्युणे जले॥
पञ्चमुष्टिक इत्येष चातपित्तकफापहः।
शस्यते गुल्मशूले च श्वासे कासे चये ज्वरे॥ १३६॥

यवेत्यादि----प्रत्येक यवादोना मुष्टिमन्तर्नसम्, न तु पल द्रव्यवाहुल्यात् । प्रयमेव पत्तः प्रचारो । एकैक द्रव्यमाहृत्य ममुदितानामेषा मिलित्वा पलमात्र पचेदित्यन्ये । चक्रः पुनर्यवादीनामाहारद्रव्यत्वात् प्रत्येक पलमानत्वेऽपि न देष हत्याह । अस्यव योगस्य धान्यशुरुठीयोगात् सप्तमुष्टिक इत्यपि नाम । यदुक्त ' यवकोलकुलत्यैश्च मुद्रमूलकशुरुठकै । धन्याकविश्वसयुक्तैर्यूषः स्यात् सप्तमुष्टिक ' ॥ १३६॥

चातुर्भद्रकपश्चमूलकम् पञ्चमूलीकिरातादिर्गणो योज्यस्त्रिदोषजे । पित्तोत्कटे च मधुना कण्या च कफोत्कटे ॥ १४० ॥
पञ्चम्लीत्यादि—वातिपत्तीकनवाङ्गयोग ण्वायम् । भन्न पुनर्मधुयोगात् पित्तील्वणिनदीपद्दन्तुत्वम्, पिप्पलीयोगाच कफोल्वणिनदीपद्दन्तुत्वमस्य इयम । भन्न
कनीयस्या एव पञ्चमूल्या व्यवहार । भ्रन्ये पुन श्रेप्मोल्वणे महती पञ्चमूलीमाहु
॥ १४०॥

#### दशमूलम्

विल्वश्योणाकगाम्भारीपाटलागणिकारिकाः।
दीपनं कफवातम्नं पञ्चमूलिमदं महत्॥
शालपणीपृश्चिपणींवृहतीम्चयगोन्तरम्।
वातिपत्तहरं वृष्यं कनीयः पञ्चमूलकम्॥
उमयं दशमूलन्तु सिवपातस्वरापहम्।
कासे श्वासे च तन्द्रायां पार्श्वशूले च शस्यते॥
पिप्पलीचूर्णसंयुक्तं कएठहद्ग्रहनाशनम्॥ १४१॥

दशमूलस्य चक्तत्वादुक्तव्याख्यादयानुरोधाः पञ्चमूलदयमाह नित्वेत्यादि— महातम्मम्भवत्वात् वित्वादिपञ्चमूलस्य महत्व स्वत्यतरुसम्भवत्वाञ्च मालपर्य्यादीना-मत्यत्व श्यम् । सुश्रुते तु गोच्चरस्याने परपडमूल पट्यते, चरके तु गोच्चर इति । तेन सुश्रुतप्रयोगेषु पर्यटमूलेन, चरकादिप्रयोगेषु गोच्चरेथैव व्यवहार इति। शालि-हात्रादावप्येरपडमूलेनेवेति ॥ १४१ ॥

# चतुर्दशाङ्गः

चिरज्वरे वातकफोल्वेण वा त्रिदोपजे वा दशमूलिमश्रः। किरातिक्कादिगणः प्रयोज्यः श्रद्धथर्थिने वा त्रिवृताविमिश्रः॥१४४॥

चिरन्तर इत्यादि—वातकफोल्वण इत्युमयन्नापि मम्बच्यते । शुद्ध्यधिने ना त्रिवृताविभिन्न इति मलविवन्धे मति शोधनार्थं त्रिचतुरत्रिवृञ्चूर्णमापकाणा प्रदेप इत्याहु ॥ १४२॥

# वातश्लेष्महरोऽष्टादशाद्गः

दशमूली शटी श्रद्धी पौष्करं सदुरालभम् । , भागीं कुटजवीजञ्च पटोलं कटुरोहिणी ॥ श्रष्टादशाङ्ग इत्येष सन्निपातज्वरापदः । कासहृद्ग्रहपार्श्वात्तिश्वासहिकावमीहरः ॥ १४३॥ दशमूलीत्यादि—स्पष्टम् ॥ १४३॥

### पित्तश्लेष्महरोऽष्टादशाङ्गः

भूनिम्वदारुदशमूलमहौपधाव्द-तिक्तेन्द्रवीजधानिकेमकणाकषायः। तन्द्राप्रलापकसनारुचिदाहमाह-श्वासादियुक्तमखिलं ज्वरमाशु हन्ति॥

#### मुस्ताद्यगणः

मुस्तपर्पटकोशीरदेवदारुमहौषधम्।
त्रिफला धन्वयासश्च नीली किम्पल्लकं त्रिवृत्॥
किरातितक्षकं पाठा वला करुकरोहिणी।
मधुकं पिष्पलीमूलं मुस्ताद्यो गण उच्यते॥
श्रष्टादशाह्ममुदितेमतद्वा सिन्नपातनुत्।
पित्तोत्तरे सिन्नपात हितश्चोकं मनीषिभिः।
मन्यास्तम्मे ऊष्धाते उरःपार्श्वशिरोग्रहे॥ १४४॥

भूनिम्बत्यादि—इन्द्रवीजम् इन्द्रयव । मुस्तेत्यादि—नीली नीलबुह्ना, कम्पिल्लक ग्रुग्रहारोचनी । वलास्थाने वचेनि न पाठ, श्रायुर्वेदसारादौ वला-पाठात् ॥ १४४॥

# ् श**ट्यादिग**गः

शटी पुष्करमूलञ्च व्याघ्री श्रद्धी दुरालभा।
 गुड्डची नागरं पाठा किरातं कट्ठरोहिणी॥

एप शस्त्रादिको वर्गः सन्निपातज्वरापहः।
कासहृद्ग्रहृपार्श्वार्तिश्वासे तन्द्रश्वाञ्च शस्यते ॥१४४॥
शटीत्यादि—किरातस्थाने केचित् पटोल पटन्ति, तम्न, हारीतजतुकर्यचन्द्राट
विदेहेप किरातस्थैन पाठादिति ॥ १४४॥

#### बृहत्यादिगगः:

ृ वृहत्यो पौष्करं भागीं शटी श्रद्धी दुरालभा। वत्सकस्य च वीजानि पटोलं कटुरोहिणी॥ वृहत्यादिगणः प्रोक्षः सन्निपातज्वरापहंः। कासादिपु च सर्वेषु देयः सोपद्रवेषु च॥१४६॥

बृहत्यावित्यादि—कासादिष्वित्यत्र आदिशब्द्यह्यात् शट्याबुकहृद्यहा-दीना प्रहणम् । चरकेऽपि शट्याबनन्तरमस्य योगस्य पाठात् ॥ १४६ ॥

भागी पुष्करमूलञ्च रास्नां विल्वं यमानिकाम् । नागरं दशमूलञ्च पिष्पलीञ्चाप्सु साधयेत् ॥ असिपातज्वरे देयं हत्पार्थ्वानाहश्चलिनाम् । कासश्वासाग्निमान्द्यत्वं तन्द्राञ्च विनिवत्त्येत् ॥ द्विपञ्चमूली षड्यन्था विश्वगृध्रनसीद्वयम् । कफवातहरः काथः सन्निपातहरः परः॥ १४७ ॥

भागींभित्यादि—भेलस्य । विल्व विल्वमूल यै।गिकमस्तम्मकत्वात् । दश-मूलद्वेति पाठपचेऽपि भागदय तस्य आद्य, किन्तु भेले 'नागरच्च मृखालच्च पिप्पलीं च' इति पाठो दृश्येत एव चन्द्रोटेऽपि, श्रत एकभागस्तस्येति युक्तम् । द्विपच्चमूलीत्य।दि—द्विपञ्चमूली दशमूली, पड्यन्था वचा, गृधनसीद्वय कानागर-कुटकराणिमेदात् रक्तश्रेतपुष्पमेदाद्वा ॥ १४७ ॥

#### श्रमिन्यासज्वरचिकित्सा

कारवीषुष्करैरएडत्रायन्तीनागरामृताः ।

रशमूलीशटीश्टङ्गीयासभार्गीपुनर्नवाः ॥

तुल्या मूत्रेण निष्काथ्य पीताः स्रोतोविशोधनाः ।

श्रिभिन्यासज्वरं घोरमाश्र ध्रन्ति समुद्धतम् ॥१४८॥

सन्निपातज्वरभेदस्याभिन्यामस्य चिकित्मामाह कारवीत्यादि—कारवी कृष्ण-जीरकम्, त्रावन्ती त्रायमाणा, मृत्रेण गोमूत्रेण ॥१४८॥ /

्रमातुलुङ्गारमभिद्विल्वन्याघीपाठीरुवृकजः । काथी लवणमूत्राढ्योऽभिन्यासःनाहशूलजुत् ॥१४६॥

मातुलुगेत्यादि—श्रश्मभित् पाषायाभेदी, विल्वस्य मूल, लवण सैन्धव, मूत्र गोमूत्रम् । गोमूत्रसैन्धवे प्रचिप्य काथ पेय । गतप्रयोगदर्शनात् गोमूत्रेण काथ प्रचेपञ्च लव्यामियोके ॥१४६॥

निद्रोपेतमभिन्यासं चीणं विद्याद्धतौजसम् ॥१४०॥

रिविनिश्चेय श्रामिन्यासलक्ष्यस्य श्रनुक्तत्वात् तल्लक्ष्यामिहैवाह निद्रोपेत-मिलादि—सिन्नपातज्वरमेव निद्रोपेतमिमन्यास विद्यात् । क्षीण विद्याद्धतौजसमिति क्षीणमिति चीण्यधातुगतम् । श्राभिन्यासज्वरमेव चीण्यधातुगत हतीजस विद्यात् । उक्त हि सुश्रुते 'श्राभिन्यासन्तु त प्राहुईतोजसमधापरे । सिन्नपातज्वर कृच्छ्रमसाध्य-मपरे जगु ' इति ॥१५०॥

> कराउरोधकप्रश्वासहिकासंन्यासपीडितः । मातुजुङ्गाईकरसं दशमूल्यम्मसा पिवेत् ॥१४१॥

करठरोधेत्यादि-दशमूलकाथमेव मातुलुगाईकरसे प्रचिच्य पिवेदित्यर्थ ॥ १५१॥

व्योषाव्दत्रिफलातिक्रापटोलारिष्टवासकैः।
सभूनिम्बामृतायासैस्त्रिदोषज्वरनुज्जलम् ॥१४२॥
व्योषेत्रादि—श्रीष्टो निम्न , तस तक्। जल काथ ॥१४२॥
त्रिवृद्धिशालात्रिफलाकटुकारग्वधैः कृतः।
सद्चारो भेदनः काथः पेयः सर्वज्वरापदः ॥१४३॥
त्रिवृद्धिलादि—विशाला गोरचकर्कटी, यवचार प्रचेप्य ॥१४३॥
स्वेदोद्रमे ज्वरे देयश्चृणों भृष्टकुलत्थजः।
घर्षेज्जिह्नां जडां सिन्धुत्र्यूषणैः साम्लवेतसैः॥
उच्छुष्कां स्फुटितां जिह्नां द्राच्या मघुपिष्टया।
लेपयेत् सघृतश्चास्यं सिन्नपातात्मके ज्वरे ॥१४४॥
सेदोद्रम स्लादि—सिन्नपातात्मके ज्वर स्लन्त स्पष्टम् ॥१४४॥

काकजङ्घाजटा निद्धां जनयेच्छिरसि स्थिता ॥१४४॥ काकजङ्घा स्लादि—जटा मृलम् ॥१४४॥ सिन्नपाते प्रकम्पन्तं प्रलपन्त न चृंहयेत्। तृष्णादाहाभिभूतेऽपि न द्द्याच्छीतल जलम् ॥१४६॥ सिन्नपात स्त्यादि—स्पष्टम् ॥१४६॥

सिन्नपातज्वरस्थान्ते कर्णमूले सुदारुणः।
शोधः सञ्जायते तेन कश्चिदेव प्रमुच्यते॥
रक्तावसेचनैः पूर्व सिर्पःपानैश्च तं जयेत्।
प्रदेहैं कफिपत्तप्रैर्वमनैः कवलप्रहैः॥
गैरिकं पाश्चजं शुरुठीवचाकद्वककाञ्जिकैः।
कर्णशोथहरो लेपः सिन्नपातज्वरे भृशम्॥१४७॥

सिन्नपातज्वरस्यान्ते रोपे सिन्नपातज्वरे वा गते इत्यर्थ । रकावमेर्चनिरिति बहुवचनात् रक्षावसेचन नेरन्तय्यें य वे। ध्यम् । जतुकर्षे 'शञ्चद्रकस्य मोचयाम्' इत्युक्तत्वात् । सिप्रित्र पञ्चतिकिन्निफलाष्टतादि । चकारात् वातकफन्ननेहोऽपि वोध्य । यदुक्त तत्रैव 'लेहाश्च कफवानन्ना कार्या मकवडयहा । त्रिफलाप्टनपान वा बल ज्ञात्वा समाचरेत्' इति ॥ १ ५७॥

कुलत्थकद्फले ग्रुगठी कारवी च समांशिकैः। सुखोप्णैर्लेपनं कार्य्ये कर्णमूले मुहुर्मुहुः॥१४८॥ कुलत्थिति सप्टम्। दशमूलेनापि सुलोप्णेनात्र लेपसुपदिशन्ति॥१५८॥

> जीर्याज्वरचिकित्सा निदिग्धिकादिः

निदिग्धकानागर्कामृतानां काथं पिवेन्मिश्चितपिष्पलीकम् । जीर्याज्यस्य कासग्रल-

श्वासाग्निमान्द्यार्दितपीनसेषु ॥ हन्त्यूर्ध्वगामयं प्रायः सायं तेनोपयुज्यते ॥१४६॥ नीर्थन्नरिचिकित्सामाह निदिग्धिकेत्यादि—निदिग्धिका कवटकारा, वातकके क्षियते, पित्तानुबन्धे पिप्पर्शा त्यक्ष्वा मधु प्रक्षिपन्ति वृद्धा । पिप्पली चूर्णस्य माषक-द्वय प्रचेष्य प्रचारादिति कश्चित् । पुराग्यप्रक्षिश्यायेऽप्यय योगो दृष्टफल । श्रास्यव योगस्य मोपपत्तिक वैद्यव्यवहारसिद्धमुपयोगकालमाह हन्तीत्यादि—किन्तु विन्दुमोर प्रात समयोऽप्युक्त । यथा 'श्वामकामविनाशाय मन्दोग्नदीपनाय च । श्रामकेश्च निष्टत्त्यर्थे प्रातरुत्थाय त पिनेत्' इति । तथा वृन्दोऽप्याह 'तच्च रात्रिक्वरे सायमन्यत्र प्रातरिष्यते' इति ॥१५६॥

> पिष्पलीचूर्णसंयुक्तः क्वाथिश्वन्नकहोद्भवः। जीर्णज्वरकप्रध्वंसी पञ्चमूलीकृतोऽथवा॥ कासाजीर्णाविश्वासहत्पारहिक्तमिरोगनुत्। जीर्णज्वरेऽग्निसादे च शस्यते गुडपिष्पली॥१६०॥

पिप्पलीत्यादि—छित्ररुद्दा गुद्ध्यी, पद्ममूली च महती । योगद्दयेऽपि विष्पलीचूर्णप्रदेष । पित्तानुवन्थे मंधु उपिद्दशन्ति षृद्धा । इदछ योगद्दय प्राय मायसुपयुज्यते । कासेत्यादौ गुद्धपिप्पल्यो प्रत्येक माषकत्रयेण व्यवहरन्ति षृद्धा ॥ १६०॥

#### विषमज्वरचिकित्सा

कित्रकाः पटोलस्य पत्रं कटुकरोहिणी।
पटोलं शारिवा मुस्तं पाठा कटुकरोहिणी॥
निम्वं पटोलं 'त्रिफला मृद्वीका मुस्तवत्सकौ।
किरातित्क्रममृता चन्द्नं विश्वभेषज्ञम्॥
गुद्धच्यामलकं मुस्तमर्द्वश्लोकसमापनाः।
कषायाः शमयन्त्याश्च पञ्च पञ्चविधान् ज्वरान्।
सन्ततं सततान्येषुस्तृतीयकचतुर्थकान्॥१६१॥

विषमज्वरिविकित्मामाह कलिङ्गका इत्यादि—वाग्मटम्य । एते पञ्च योगाः पञ्चसु सन्तत-मततान्येषुष्क-चृतीयक-चतुर्थकेषु यथासख्य ग्रेयाः । श्रन्ये तु सर्व एव योगा सर्वत्र इत्याहु । तत्र यथामख्यमेव युक्त सततोष्ठेखेन पटोलादियोगस्य तथा निम्बादेशचान्येषुष्कोष्ठेखेन, गुद्धच्यादेश्च चतुर्थकोष्ठेखेन चारपाणौ दृष्टत्वात् । मन्ततं सततान्येषुस्तृतीयकचतुर्थका।निति पाठस्तु वाग्मटे चरके नास्ति वृन्देऽपि नास्ति । तेनायमर्दश्चोकः सम्रहे केनापि प्रमादात् लिखितः ॥१६१॥

गुडप्रगाढां त्रिफलां पिवेद्वा विषमार्दितः। दीर्घपत्रककर्णाच्यनेत्रं खदिरसंयुतम्॥ ताम्बूलैस्तद्दिने भुक्तं प्रातर्विषमनाशनम्। गुद्धचीमुस्तघात्रीणां कपायं वा समान्तिकम्॥१६२॥

गुडप्रगाढामित्यादि—सुश्रुतस्य । त्रिफलामित्यत्र कथितामिति रोप शित ढल्वण । गुडोऽत्र प्रचेप्य । दीर्घपत्रकेत्यादि । कणाख्य काणाखोड शित ख्यात । तस्य विरोपण दीर्घपत्रेति । नेत्र मूल तदिप शुष्कदेशजात प्राध्ममुप-दिशन्ति वृद्धा । गुडूचीत्यादि—सुश्रुतस्य श्रय योगो यधीप पूर्व चतुर्थके पठित , तथापि मधुयोगात् विषमज्वरमात्रहन्तृत्वमप्यस्य वीध्यम् । डल्वणस्तु यधिप योगोऽय विषमज्वरे पठित तथापि समानतन्त्रोक्तत्वात् विषमज्वरिवेशेषे चतुर्थक एवाय वोध्य हत्याह ॥ १६२॥

### मुस्तकादिः

मुस्तामलकगुडूचीविश्वौषधकग्रदकारिकाकाथः। पीतः सकग्राचूर्णः समधुर्विपमज्वरं हन्ति॥ महौषधामृतामुस्तचन्दनोशीरधान्यकैः। काथस्तृतीयकं हन्ति शर्करामधुयोजितः। वासाधात्रीस्थिरादारुपथ्यानागरसाधितः॥ सितामधुयुतः काथश्चातुर्थकिनवारगः। मधुना सर्वज्वरजुच्छेफालीदलजो रसः॥१६३॥

मुस्तादिमहौषधादी स्पष्टी । वासादौ वासास्थाने चन्द्राटे पाठा पठपते, व्यव-हारस्तु वासयेव । स्थिरा शालपर्यी । पथ्या हरीतकी । मधुनेत्यादौ मर्वज्वरनुत् विपमाविषमज्वरनुत् ॥१६३॥

श्रजाजी गुडसंयुक्ता विषमज्वरनाशिनी । श्रियसादं जयेत् सम्यग्वातरोगांश्च नाशयेत् ॥१६४॥ श्रजाजीत्यादि—मनाग्मृष्ट कृष्णजीरकमिति चक्र । सितजीरकमित्यन्ये ॥ १६४॥

रसोनकर्कं तिलतैलिमश्रं योऽश्नाति नित्यं विषमज्वरार्त्तः।

### विमुच्यते सोऽप्यचिराज्चरेण वातामयैश्चापि सुघोररूपैः॥१६४॥

रमे,नक्किनित्यादि—मक्ताद पूर्व कर्तव्य, यदाह चरक. 'रमोनस्य सनैतस्य प्राग्मकसुपतेवनम् 'इति ॥ १६५ ॥

प्रातः प्रातः ससर्पिवी रसोनमुण्योजयेत् ।

पिष्पलीवर्द्धमानं वा पिवेत् चीररसाशनः ।

पट्पलं वा पिवेत् सर्पिः पथ्यां वा मधुना लिहेत्॥१६६॥

प्रातिरसादि—पिष्पतीत्वादियोगौ नीश्रुतौ । षट्पत निप्तिव वस्यनायन ॥ १६६॥

पयस्तैलं घृतञ्चेव विदारीनुरसं मधु । सम्मूच्छर्य पाययेदेतद् विषमज्वरनाशनम् ॥ १६७ ॥

पय इत्यादि—दुःशं शृतं नोष्यम् । विदारोद्धरसिनि इद्धरस्थाने स्वरम् इति न पाठः चतं हि हारीने 'विदारोद्धरतः सर्पिर्नम्षुतंतश्चनं पयः । पिने-बातुर्थकशासकासवातव्यरपदम् ' इति । अन्ये तु विदारोस्वरसी विषमव्यरमात्रे, बातुर्थे इद्धरसात् योगान्तरमाद्धः ॥ १६७ ॥

पिष्पत्तीशर्कराज्ञोद्धं घृतं ज्ञीरं यथावलम् ।

खोन मथितं पेयं विषमज्वरनाशनम् ॥ १६८ ॥

पिर्व्यात्वादि—दुष्यं धनं दोष्यम् ॥ १६८ ॥

पयसा वृपदंशस्य शक्तद्वेगागमे पिवेत् ।

वृषस्य द्धिमएडेन सुरया वा ससैन्धवम् ॥ १६६ ॥

पयसेत्वादि—वृषदंशो दिहातः । वृषस्यापि शक्तदिव्यं ॥ १६६ ॥

नीलिनीमजगन्याञ्च त्रिवृतां कटुरोहिणीम्। पिवेज्ज्वरस्थागमने स्नहस्वेदोपपादितः॥ १७०॥

विषमन्तरे विरेकार्यमाह मीतिनीत्यादि—मीतिनी नोटबुहा । आगमने आगमनदिवमे ॥ १७० ॥

सुरां समरडां पानार्थे भन्यार्थे चरणायुघान् । तित्तिरींख्य यूमरांख्य प्रयुञ्ज्याद्विषमज्वरे ॥ १७१ ॥ मुरामित्यादि—चरकस्य सप्टम् ॥ १७१ ॥ श्रम्लोटजसद्दस्रेण् दलेन सुरुतां पिवेत् । पेयां घृतप्लुतां जन्तुश्चातुर्थकहरीं ज्यहम् ॥ १७२ ॥

ऋम्लेटसश्चाद्वेरी ॥ १७२ ॥

सैन्धवं पिप्पलीनाञ्च तग्हलाः समनःशिलाः । नेत्राञ्जनं तैलपिष्टं विपमज्वरनाशनम् ॥ व्याद्यीवसा हिंगुसमा नस्यं तद्वत् ससैन्धवा ॥ १७३ ॥

मैन्धविमत्यादि - चरकस्य । श्रक्षनराय्द श्रभ्यक्षेनेऽपि वत्तते, तिव्ररामाय नेत्रपदम् । न्याबोत्यादा स्त्रोलिङ्गनिर्देशात् लिङ्गमेव प्रयोजक न तु जाति ॥१७३॥

कृष्णाम्बरद्दढावद्धगुग्तुलूकपुच्छजः। धूपश्चातुर्थकं हन्ति तमः सूर्यः इवेदितः॥ १७४॥ कृष्णाम्बरेत्यादि—अम्बरस्य रूणल भृहराजस्वरमादिभि , उल्क पेत्रकः॥ १७४॥

शिरीपपुष्पस्वरसो रजनीद्वयसंयुतः ।
नस्यं सर्पिं समायोगाचातुर्थकज्वरं जयेत् ॥
नस्यं चातुर्थकं हन्ति रसो वागस्त्यपत्रजः ॥ १७४ ॥
नस्यमाह शिरीपेत्यादि—रजनीद्वयचूर्णं मर्पिश्च प्रचेप्यम् । नस्यमित्यादी
अगस्त्यपत्र वगमेनपत्रम् ॥ १७४ ॥

# **अप्टाइध्यः** '

पलङ्कपा निम्यपत्रं वचा कुष्टं हरीतकी। सर्पपाः सयवाः सर्पिर्धृपनं ज्वरनाशनम्॥ १७६॥ ४ पलङ्कपत्यादि—पलङ्कपा ग्रुगुद्धः॥ १७६॥

श्रपराजिताधूपः । पुरघ्यामवचासर्जनिम्वाकोगुरुदारुभिः । सर्वज्वरहरो घृप कार्च्योऽयमपराजितः ॥ १७७॥ पुरेत्यादि—पुरो गुग्गुछ , घ्याम गन्धतृषम् ॥ १७७॥ वैडालं वा शकृद् योज्यं वेपमानस्य धूपने । श्रपामार्गजटा कट्यां लोहितैः सप्ततन्तुभिः । वद्धा वारे रवेस्तूर्णं ज्वरं हन्ति तृतीयकम् ॥ १७५॥

वंडालिमित्यादि स्पष्टम् । श्रपामार्गस्य जटा मूल, पृष्ठे पाद दत्त्वा वन्ध कार्य्य इत्याहु । वन्धनविधिरायुर्वेदसारे यथा 'श्रपामार्गस्य मूलञ्च सम्यगज्ञालितानन । वशीयाद् वामदस्तेन मर्वज्वरविमोज्ञयम्'॥ १७८॥

काकजङ्घा वला श्यामा ब्रह्मदएडी कृताञ्जलिः।
' पृश्चिपर्णी त्वपामार्गस्तथा भृद्गराजोऽएमः॥
पपामन्यतमं मूलं पुष्येगोद्धत्य यत्नतः।
रक्कसूत्रेग संवेपय वद्यमैकाहिकं जयेत्॥ १७६॥

काकजघेत्यादि--काकजघा स्वनामख्याता, श्यामा दृद्धदारक , ब्रह्मदयङी ब्रह्म-यधिका, कृताञ्जलि लाजालिया ॥ १७६॥

मूलं जयन्त्याः शिरसा धृतं सर्वज्वरापहम् ॥ १८० ॥ मूलिमलादि—जयन्त्या श्वेताया इत्याहु , भूजयन्त्या इत्यन्ये ॥ १८० ॥

भूतानुवन्धिनोस्तृतीयकचातुर्थकयोश्विकित्सा कर्म साधारणं यद्यत् तृतीयकचतुर्थकौ । श्रागन्तुरनुवन्धो हि श्रायशो विषमज्वरे ॥ १८१ ॥

भृतानुवन्धिनोस्तृतीयकचतुर्थकयो। श्रिकित्मामाह कर्मे लादि — देवन्यपाश्रय वालमगलादि, युक्तिन्यपाश्रयन्न कषायादि, पतदुश्यमिप चिकित्सित साधारणशब्देनान्नोच्यते । जह्यादिति अन्तर्भूत्ययर्थमिद तेन साधारण चिकित्सित तृत्वीयकचतुर्थको कर्मरूपो जह्यादिति हापयेत् निराकुर्य्योदित्यर्थ । ननु ज्वरान्तरे सर्वन्न
युक्तिन्यपाश्रय, कषायादिकमेवोपदिष्टम् , न देवन्यपाश्रयम् । प्रत्र पुन किमर्थे
देवन्यपाश्रयमपि कर्त्तन्यत्वेन उपदिश्येने इत्याह आगन्तुरित्यादि — आगन्तुर्मृतादि ।
विषमज्वरशंदिन तृतीयकचतुर्थकविवासिमतो । तृतीयकचतुर्थकशब्देनात्र तदिपर्यः
यस्मापि प्रहण्यम् । अन्य तु यद्याप्यागन्तुरनुवन्धो हि इत्यादिवचनवलाद्विषमज्वरमात्र' एव देवन्यपाश्रय कर्म कर्त्तन्यमित्यादि तथापि तृतीयकचतुर्थकाविति
यदुक्त तदिरोपार्थम् । तेन तृतीयकचतुर्थकयो प्रायेण भृतानुवन्धजन्यत्वाद् तयोरेव
विशेषण देवन्यपाश्रय कर्म कर्त्तन्यमित्याद्व । अन्ये तु साधारणशब्देन दोषमात्र-

माधारण युक्तिन्यपाश्रयमात्र कर्माच्यते । नह्यादित्यस्य त्यनतीत्यर्थं तेन तृतीयक-चतुर्थके युक्तिन्यपाश्रयमात्र न कार्य्यं किन्तुमयमपि कार्यन । प्वन्नागन्तुरनुयन्धो हीत्यादि द्वितीयार्द्धमपि मगच्छत इत्याद्ध ॥ १८१॥

> गद्गाया उत्तरे कृते श्रपुत्रस्तापसी मृतः । नसी तिलोदकं दद्यान्मुञ्चत्येकाहिको ज्वरः ॥ एतन्मन्त्रेण चाश्वत्यपत्रहस्तः प्रतपेयेत् । सोमं सानुचरं देवं समातृगणमीश्वरम् ॥ पुजयन् प्रयतः शीद्यं मुच्यते विषमज्वरात् ॥ १८२॥

गगाया इत्यादि—एकष्ट्रचाया पुष्कारिण्या श्रक्ताकर दिते पानीय नृतनघट्या नेतल्यम् , दिते च र्वा पालिद्रिने तर्पण कार्य्यम् । श्रत्र कुगा यवा कुसुमानि च दित्वन्नमापमकादिना विलिश्चेत्युपिदशन्ति षृद्धा । श्रम्य मन्त्रस्य केचिद्राध-श्लोक पठन्ति यथा— 'श्रगवगकालिंगेषु नंतराष्ट्रमगधेषु च । वाराणस्याञ्च यद्-षृत्त तन्न सरानि हे क्वर <sup>। १</sup> इति । मोममित्युमया महितम् , श्रनु चरैनंन्धादिभिश्च सहितम् ॥ १८२॥

विष्णुं सहस्रमूर्द्धानं चराचरपति विभुम् । स्तुवन् नामसहस्रेण ज्वरान् सर्वान् व्यपोहति ॥१८३॥ विष्णुमिलावि—नामसहस्रेण महामारताबुक्षेन ॥ १८३॥

# ज्वरे घृतप्रयोगः

ज्वराः कपायैर्घमनैर्लद्वनैर्लघुभोजनैः।

र्वास्य ये न शाम्यन्ति सिपंस्तेपां भिषग्जितम्।

निर्देशाहमपि इत्वा कफांत्तरमलद्वितम्।

न सिर्पः पाययेत् प्राज्ञः शमनैस्तमुपाचरेत्॥

यावज्ञघुत्वादशनं दद्यानमांसरसेन तु॥ १८४॥

इदानी इत्तपयोगान् विवद्धः इतस्य काल विषयञ्चाह ज्वरा कषायिरित्यादि — अत्र कषायेरित्यममासनिटेरोन व्यस्तरिष कषायादिप्रयोगे रूकस्य मिष पान कर्तः व्यमिति दर्शयति । वमनैरित्यनेन अवस्थाविधेयवमनप्रयोगान् सिषं पडहपूर्वमाविनो दर्शयति । लद्धनैरित्यनेन च लद्धन स्वेदन काल इत्याद्युक्ता लद्धनममानकला स्वेदा-

दये। ६ पे गृह्यन्ते । रूचस्येति वचनेन कपायादिप्रयोगे मत्यिप यद्यपि मामानुवन्थत्वात् कपोत्तत्वा वा यत्र रूचत्व न भवति, तत्र मिपंनं दातन्यमिति दर्शयति। भियग-जित चिकित्मितम् । दशाहाद्दं हि पृतपानावस्या चरकेयोक्षा, इदानीं तदपवादमाह निर्दशाहमपीत्यादि—निर्गतो दशाहान्निर्शाह । अनिङ्गतमिति असञ्जानलिङ्गतः फलम्, इयञ्चावस्या प्रवलसः मदोपारन्थत्वात् ज्वरस्य, तथा असम्यगुपचाराच भवतीति श्रेयम् । यावस्रधुत्वादिति च्छेद । लघुत्वे तु जातं कफोत्तरता अलिङ्गता चापयाति, तेन तदा मिपं पानमनुषृत्त कर्चन्यमित्यर्थ । यावदिति यावस्रधुत्वात् लघुत्वपर्यन्त शमनैरुपाचरेत् । लघुत्व सित सिपं पानम्, अथवा यावत् तावत् नित्ययोगित्वात् लघुत्वात् यावत्पर्यन्त शमनैरुपाचरेत् मामरसेन । अशनन्तु निर्दशाहरूचरे कफोत्तरेऽप्यलङ्गितेऽपि मासरसेन देयमित्याहु , अशन दचान्मासरसेनिति । ननु किमर्थमेतादृशमशन कफविरुद्धमि कफप्रधानावस्याया दीयते १ सत्य मामरसस्य धलजनकत्वात्, अत प्रवोक्ष तत्रैव 'वल ह्यल निग्रहाय दोषाया वलकुच तत् ' इति ॥१८४॥

मांसार्थमेणलावादीन् युक्तथा दद्याद्विचत्तणः । कुक्कुटांश्च मयूरांश्च तित्तिरि कौञ्चमेव च ॥ गुरूष्णत्वात्र शंसन्ति ज्वरे केचिचिकित्सकाः । लह्वनेनानिलवलं ज्वरे यद्यधिकं भवेत् ॥ भिषद्धात्राविकल्पको दद्यात् तानपि कालवित् ॥१८॥

एखलावादीनित्यादिशब्दात् कपिञ्चलादीना ग्रहणम्। मात्राविकल्पच इति, विकल्पो विशिष्टकल्पना मस्कार इत्यर्थ । मात्राज्ञा विकल्पज्ञश्चेत्यर्थ । तेन तावतो मात्रा कर्त्तव्या, ताहरा मस्कार कार्य्य, यथा लघुत्वानुष्णत्वे भवत इत्यर्थ ॥ १८४॥

# विष्पल्याद्यं घृतम्

पिष्पल्यश्चन्दनं मुस्तमुशीरं कडुरोहिणी। कलिङ्गकास्तामलकी शारिवातिविषे स्थिरा॥ द्राज्ञामलकविल्वानि त्रायमाणा निदिग्धिका। सिद्धमेतैर्घृतं सद्यो ज्वरं जीर्णमपोहति॥ त्तयं कासं शिर'शूलं पार्श्वश्ल हलीमकम् । श्रद्गाभितापमग्निञ्च विपमं सन्नियच्छिति ॥ पिष्पल्याद्यमिटं कापि तन्त्रे त्त्रिरेण पच्यते ॥१८०॥

मीर्प पानावस्था प्रतिपाद्य मधीप्याह पिप्पल्य इत्यादि-किलक्षक इन्द्रयव नामलको भन्यामलको गारिवा अनन्नमूलम्, विल्व बिल्वशलाडु द्राचादिफल-गृह्यते, स्रत प्रवेशकम् 'स्रनिर्धिष्टप्रमाणाना लेहाना प्रस्थ इष्यते । स्रनुक्ते काथ-माने तु पात्रमेक प्रशस्यते दित । श्रन्ये पक्तव्यष्टतस्य मानानिर्देशे श्रन्यवस्थित-मानेमेवेच्छात पक्तव्यमिति । यत्र तु प्रस्थादिमाननिर्देश करोति, तत्र तावन्माने-नव संहेन प्रायो रोगोपणमो बनतीति शयम्। तथाहि वातन्याध्यादी मूरिसेहे माध्ये भूयमीमेव सेहमात्रा वद्यति । तथा प्रपारङरीकाद्यनस्ये योगितया सेहस्य कुडवमानमेवोक्तम् । कुष्ठोक्तितिक्षपर् पलादौ तु श्रत्यलपष्टतसविधानेन तथैव पकस्य ष्ट्रनम्य कार्य्यकर्तृत्व भनतीति भेषजप्रभावदर्शि महर्षिवीधयति । तत्र यदि कुष्ठम्य क्षीघरागनया भूयमा तिकपट्पलेन प्रयोजन, तदा पुन पुन. पट्पलमान एत पक्षच्य 'यथा क्रवेन्ति म उपाय' इति वचनात् । एव पानीयकल्याणागस्यहरी-नक्याटाविप प्रतिनियतमानकथनप्रयोजन वाच्यम् । तस्मान्न यादृच्छिकमाचार्य्यस्य क्षचिन्मानाभिधानमनभिधानञ्च किचिदिति । अत्र क्षचित् पुस्तके इलीमकमिति पाठ किचचारोचकिमिति पाठद्रयमि न प्रचेषणीयम् । यत सुश्रुते 'जीर्णज्चर-शिर म्लगुल्मोटरह्लीमकान् ' इति दृश्यते । वारमटे च 'पिप्पलीन्द्रयवधावनि-तिकाशारिवामलकतामलकीमि । विल्वमुस्तिहिमापालिनिमेव्ये द्राच्चयातिविषया स्थिरया च । एतमाशु निहन्ति साधित ज्वरमित्र विपम हलीमकम् । श्रुक्ति मृशनापममये। वमशु पार्श्वरुज तथा खयम् रहित दृश्यते तस्मात् पाठइयमेव द्युहम् 11 15 11

यत्राधिकरणे नोक्षिर्गणे स्यात् स्नेहसंविधी । तत्रेय कल्कनिय्यूटाविप्येते स्नेहवेदिना ॥ एतद्वाक्यवलेनैय कल्कसाध्यपरं घृतम् ॥१८७॥

श्रत्र केचित् ' कल्ककाथार्गनिर्देशे गणात् तम्मात् समापनेत् ' इति सुश्रुनवच-नात् पिप्पल्याद्योना कल्कत्व कपायत्वज्ञेच्छन्ति । अन्ये तु कल्कत्वमेव मन्ते । अत प्रतत् समयनिरासार्थं परिमापामाहः यत्रेत्यादि—श्रिपकर्योनेत्यिकारितया, नेन यत्रेवाचार्य्यं गण्यत्वमिष्कृत, तत्रेव विदारिगन्धादिगण्यादी कल्ककपायकल्पना । यत्र त्विधिकृतगण्यत्व नास्ति, तृत्र कल्ककल्पनेव । एतेन सुश्रुतोक्ता 'कल्ककाथाविनर्दशे ' इत्यादिका परिभाषा अधिष्टृतगण्विपयेव, न तु भेषजममृहमात्रविपया इति ।
ननु मा भूदुमयकल्पना अनियमेन कदाचित् कल्ककल्पना कदाचित् काथकल्पना
कुतो न स्यात् १ इति चेन्नैवम्, कपायकल्पनाया द्रव्य न साचात् प्रधानमृत लेहमाधने व्यविह्यते । कल्करतु माचादेव क्रिहसम्बन्ध पट्यत इति कल्कस्य प्राधान्यात्
तथा वृद्धवैद्यव्यवहाराचेत्याह एतदाक्यवलेनेवित्यादि ॥१८७॥

जलसेहीषधानान्तु प्रमाणं यत्र नेरितम्।
तत्र स्यादीपधात् सेहः स्नेहात् तोयं चतुर्गुणम् ॥
श्रमुक्ते द्रवकार्यं तु सर्वत्र सिलं मतम् ॥ १८८॥
धृततेलगुडादीश्च नैकाहादवतारयेत्।
ध्युपितास्तु प्रकुर्वन्ति विशेषेण गुणान् यतः॥
सेहकल्को यदांगुल्या वर्त्तितो वर्त्तिवद्भवत्।
चह्नौ जिसे च नो शब्दस्तदा सिद्धि विनिर्दिशेत्॥
शब्दस्योपरमे प्राप्ते फेनस्योपरमे तथा।
गन्धवर्णरसादीनां सम्पत्तौ सिद्धिमिदिशेत् ॥१८६॥
जलस्रोहत्यादी जलशब्दो द्रवमात्रोपलचकः॥ १८८—१८६॥

# चीरपट्पलकं घृतम्

पञ्चकोलैः ससिन्धूत्थैः पलिकैः पयसा समम्।
सिपैः प्रस्थं श्रतं प्लीहविषमज्वरगुल्मनुत् ॥
श्रत्र द्रवान्तरानुक्ते क्तरमेव चतुर्गुणम्।
द्रवान्तरेण योगे हि क्तरं स्नेहसमं भवेत् ॥ १६०॥

पश्चकोलैरित्यादि —पयमा सममित्यस्य समशब्दस्य तुल्यार्थतास्त्रीकिरिख स्लिह्मम क्षीरम्, त्रिगुण् त्र जलमशींऽधिकारोक्तषट्पल्छतमंवादात् । तद्यथा 'सत्तारे पञ्चकोलस्तु पलिकैस्त्रिगुणोदके । ममक्षीर एत प्रस्थ ज्वराशे प्लीह-गुल्मनुत् ' इति । क्षीरदध्यारनालैस्तु पाको यत्रेरितः क्षचित् । चतुर्गुण जल तत्र वीर्याधानार्थमावयेत् 'परिभाषयमनार्षति छत्। कैश्चित् नाद्रियते । अन्ये तु चीरािनाधनिवयेयमित्याहु । चक्रम्तु नममित्यस्य महाभेनामाशित्याह अत्रिन्यादि । एनचान्य द्ययन्ति यतः सुश्रुनोक्षोटरिचिकितिने ' पद्पनकेऽन्मिन् धन-प्रम्थ नुल्यज्ञीरम् ' इति प्रस्थे । चरकेऽन्तुक गुन्मे ' धतप्रस्थ विपाचेथत् चीर-प्रस्थेन ' इति । व्यवहारम्नु कचित् त्रिगुणादेकेन किचचर्तुगुणाटकेनेति ॥१६०॥

दशमूलपद्पलकं घृतम्

दशम्लीरसे सर्पिः संत्तीरे पञ्चकोलकैः ।
 सत्तारैईन्ति तत्सिद्धं ज्वरकासाग्निमन्द्रताः ।
 वातिपत्तकफव्याधीन् प्लीहानञ्चापि पाग्हनाम् ॥१६१॥

दशमूलीरम इत्यादि —रम काथ जे जटमेने काथश्चतुर्गुण इत्तरन्तु सेह-समम्। म हि क व्याच्चतुर्गुण वारीत्यादि परिमाणार्थमृजु बुद्धा डीग्योगे मर्व-त्रैवमेव पाक व्याचिष्ट । चक्रम्त्वाह यत्र काथ जीरज्ञान्ति तत्र चीरेण सह सेहा चतुर्गुणो इव कार्य , केहपाके चतुर्गुप एव इव उत्मर्गमिद्ध । 'सेहात् तीय-चतुर्गुणम् इत्यन्न तीयस्य इवीपलन्त्यत्वात् । श्रत काथोऽत्र त्रिगुण चीरस्र सेह-मममिति । पञ्चकोलयवन्तरा. प्रत्येक पलिका पूर्वाक्षपट्पलकमाहन्रस्यात् पट्-पलत्वानुपपत्तश्चेति ॥ १६१ ॥

क्षाथ्याचतुर्गुणं वारि पाटस्थं स्याचतुर्गुणम् । सिंहात् सेहसमं चीरं करुमस्तु सेहपाटिकः । चतुर्गुणन्त्वप्रगुणं द्रवहैगुण्यते। भवेत् ॥ पञ्चप्रभृति यत्र स्युर्द्रवाणि सेहसंविधौ । तत्र सेहसमान्याहुर्र्वाक् च स्याचतुर्गुणम् ॥ १६२ ॥

दरामूलं।काथार्थं परिमापामाह कांध्यादित्यादि—नेन्द्रमम चोरिमिति यश-द्रवान्तरमन्ति तन्नेद्र केवलचारे तु चीरमेव चतुर्गुण पाकस्य चतुर्गुणद्रवेशैदोत्नर्ग-मिद्धलात् इति गयदासचकी । अन्ये तु यंत्रेव केवल चीर तत्रव स्नेह्मम चीरम्, जलन्तु चतुगुण चीरदध्यारनालन्तित्यादिवचनादित्याहु । द्रवंद्रगुण्यतो मविदित् यद्यपि 'शुष्कद्रव्येष्विद मानमवमादि प्रकाश्चितम् । द्विगुण तद् द्रवेष्विष्ट मद्य-प्रवोद्भृतेषु च ' इति वचनात् द्रवमात्र एव देगुण्यमायाति, तथापि स्निष्ण्यक-चोन्नरीष्टते पोडशपलरूपस्य द्रवप्रस्थस्यास्य देगुण्येन द्राविंगत्यलरूपत्वे द्रवत्वेन स्दि-यदयमाचार्य्यं ' त्रिंगत्यलानि सु प्रस्था विशेयो दिपलाधिक ' इति करोति, तेन

द्वैगुएयाभिथायकपरिभापान्यभिचारः कचिदस्तीति द्वापयति । श्रतएव रक्षिकादौ त्रिपलपर्यन्ने कुटवपूर्वमाने द्रवाद्रयाद्देगुएय न कार्यम् । यदाइ॰ गोपुररिक्त 'राक्तिकादिपु मानेषु यावन्न कुडवो भवेत् । शुष्के द्रवार्द्रयोश्वापि तुल्य मान प्रकीतितम् रहित, तथा ' हिगुण कुडवादी तु शुष्कान्मान दवस्य च । आर्द्रस्य बाल्पवीर्य्यत्वात् रोयमन्यत्र तत्ममम् ' इति । तथा जतुकर्येऽप्युक्तम् 'श्राद्रीणाञ्च द्रवाणाञ्च द्विगुण् कुढवादयः। ' एवञ्च कुढवादिमानयोग्यस्यापि यत्र पलोल्लेखेन मान तन्नापि न द्वेगुएय विभेय तेन 'राखामहस्रनिर्यूहे तैलद्रोण विपाचयेत् ' इत्या देषु पलोह्नेखेन जल गृद्यमाण द्विगुण भवति । कचित्तु पलोह्नेखविधानेऽपि तन्त्रान्तरीय-वाक्यैकवाक्यतया पलोल्लेखागतद्रवेऽपि कुटनादिविवचा कृत्वा द्वैग्रयथ विधेयम् । यथा चतर्चाण्चिकित्मित 'मधुकाष्टफल द्रावाप्रसकाथ.' इत्यादिना चरके य. प्रयोग उक्त म जतुकर्षे 'द्राचाया मधुकाद्धप्रस्थकाथ ' इत्यादिना ग्रन्थेन पठित । तेन जतुकर्ण मधुकस्यार्द्धप्रस्थोद्वेग्वपाठात् इतद्वेगुर्यमेव जलस्य भवति । तत्प्रत्यया-चेहापि मधुकाष्ट्रपलेक्षिखिविहितेऽपि कांधे कुटवद्वयविवक्तया कृतद्वैगुर्ययमेव जल देयम् । एवमन्यदनुसरणीयम् । अत्र केचित् कुढवस्यापि द्वैगुण्य नेच्छन्ति, यदि हि हिगुण कुटन, स्यात् ,तटा काथ्याचतुर्गुणमित्यादि, कल्कश्च स्नेहपादिक इति , परिभाषा सर्वतन्त्रामिद्धा वाधिता स्यादिति । यत सुश्रुते ' स्नेह्कुढवे साध्ये भेषज-पल कल्कामिष्टम् ' इत्युक्तम् , तथा च कृष्णात्रेथेणाप्युक्त ' लेहपाकविधी यत्र प्रमाण नोदित कवित्। केहस्य कुडव तत्र पचेत् कल्कपलेन तु ' इति अत्र हि यदि कुडवश्चतुःपलरूप. स्यात्, तदैव कल्कपलस्य स्तेहपादिकत्व घटते । श्रष्टपल-रूपत्वे कल्कपलस्य स्नेहापेच्चया श्रष्टमागत्वमेव स्यादिति । एतच नातिसाधु, यतः सुश्रुत एव " क्षेष्टकुडवे माध्ये काध्यद्रव्यप्रस्था विधेय ' इत्युक्तम् तत्र कुडवे-नेन यदि रनेहपलचतुष्टय गृह्यते तदा चतुःपलस्नेहे पोडशपलकाथ्यमहण स्यात् । न च तथा व्यवहरति काथ्यपाडशापल हि श्रष्टपल एव स्नेहे गृह्यते, तस्मादसाधक-मेतत् कुडवाद् द्वैगुरयस्येति द्वैगुरा कुडवे युक्तम् । श्रगस्त्यहरीतक्या मधुनः कुडव यच्चरकेयोक तन्त्रान्तरे 'मधुनश्च पलाष्टकम् ' इति पट्यत्, तथा तन्त्रा-न्तर भायमाणाचतु पल पक्तवा दशकेऽम्मसि रेशिषते । कुढवे कुढवान् सिपैः चीरभात्रीरमान् पेचेत् रह्युक्तम् । तत्र यदि चतु पल कुडव स्यात् तदा चरकोक त्रायमाणाष्ट्रतेन सह विरोध स्यात्। तथाहि ' जले दशगुणे साध्य त्राय-मायाचतु.पलम् ' इत्यादि यावत् ' रसस्यामलकानान्तु चीरस्य च धतस्य च । पलानि पृथगष्टाष्टी दत्वा सम्यन्विपाचयेत्। तथान्यत्राप्युक्तम् । ' त्राईद्रव्य- 

#### वासाद्यं घृतम्-

वासां गुडूचीं त्रिफलां त्रायमाणां यवासकम्।

पक्तवा तेन कपायेण पयसा द्विगुणेन च ॥

पिप्पलीमूलमृद्धीकाचन्दनोत्पलनागरैः।

कल्कीकृतश्च विपचेद् घृतं जीर्णज्वरापहम्॥ १६३॥

पञ्चप्रमृतीत्यादिपरिभाषार्थं पुनर्वासायद्याल्याक्याक्य एव व्यक्षीकरिष्यमः।
वासामित्यादि—यवासक दुरालमा। अत्र चकाराद्यासादिकाथोऽपि द्याद् द्विगुण इत्याद्व, यक्षक्रेतत्, यत केद्दपाके चतुर्गुग्रोमेव द्रवमुत्सर्गसिद्धम् ' केद्दात् विग्रेण इत्याद्व, यक्षक्रेतत्, यत केद्दपाके चतुर्गुग्रोमेव द्रवमुत्सर्गसिद्धम् ' केद्दात् तोय चतुर्गुग्राम् ' इति वचनात्। तोयराच्दोऽपि तत्र द्रवमात्रोपलचक इति। अत्र द्रंभ्यामपि चातुर्गुग्यमित्यादि परिमापयेव चीरकपाययो प्रत्येक द्रेगुग्येय सिद्धे चकारोऽय काथचातुर्गुग्यार्थे इति केचित् । अन्य तु परिभाषावलात् यचपि चीर कपायध्य दिगुण् एव लभ्यते, तथापि स्पष्टार्थं चीरदेगुग्यमामिथानमित्याद्व, तत्र, चीरस्य हि मानानुक्तो ' काव्याचतुर्गुण्य वारि पादस्य स्याचतुर्गुण्यम् । केद्दात् केद्दसम चीर कत्कस्तु केद्दपादिक ' इति वचनात् चीरस्य द्रवान्तरसान्निध्ये सित केद्दसमत्वमेव स्यात्। तत कपायमागत्रय चीरमागश्चेक इति कृत्वा द्वाभ्यामिष चातुर्गुग्यमिति परिभाषायां प्रत्येकमेव द्रवेण चातुर्गुग्यमिच्छन्ति । तस्याद्य चातुर्गुग्यमिति परिभाषायां प्रत्येकमेव द्रवेण चातुर्गुग्यमिच्छन्ति । तस्याप्य चातुर्गुग्य चीरस्य द्वगुग्यमेव ' प्रसा दिगुण्य च ' इति

वचनात् तन्न एकेनापि चातुर्गुरुय, द्वाम्यामपि चातुर्गुरुय, त्रिभिरपि चातुर्गु-ण्यम्, चतुर्भि मममिति वचनेन चतुर्भि स्नहमताभिधानेन स्नहाचातुर्गु-एयमेव द्रवस्ये।क्षम् । श्रतो द्वाभ्या त्रिभिरिप तथा चातुर्गुएय कार्य्यम् । यथा केहचातुर्गुएय स्यात् तथा चं मिलित्वैव चातुर्गुएय सिध्यति, न प्रत्येकमित्यर्थ किञ्च यदि प्रत्येक चातुर्ग्रस्य विविचत स्यात् तदा द्वयोस्त्रयाणा चातुर्ग्रस्यमिति कुर्यात् । तृतीयानिदेशेन हि साहित्य सूचयता मिलितयोरेव चातुर्यस्य प्रतीयत इति । श्रत एवैतत्परिमाषास्वरमात् " पञ्चप्रमृति यत्र स्युद्रवाणि स्निहसविधै। । तत्र केह्समान्याहुरवांक्तरमाचतुर्गुग्यम् " इति मिलित्वैव चातुर्गुग्यम् । श्रन्यथा पतद्वचनयोविरोधो दुष्पिन्हर स्यात्। श्रन्ये तु श्रवीक् स्याच चतुर्गुणम् इति प्रत्येकमेव चातुर्गुर्ययम् । श्रन्यथा यत्र यत्र केहपाके चत्वारि द्रवाणि सन्ति तत्र यदि द्रवचतुष्टयस्य मिलित्वा वातुर्गुय्य स्यात् तदा क्षेहममान्याहुरताव्रतापि द्रव-चतुष्टयस्य मिलित्वा चातुगुंख्ये मिद्धे, अर्वाक् स्यात् तु चतुगुंखमिति वचन ताव्-देकदिनिद्रविषये चरितार्थमेव । यत्र वा द्रवचतुष्टयविषये अचरितार्थमित्युच्यते तावतापि न वन्तुचति । यस्प्रोदेकेनापि चातुर्गुण्यमित्यादि चतुर्भि सममित्य-न्तया परिभाषया द्रवचतुष्टयविषये ठावन्मिलित्वा चातुर्गुग्य सिद्धमेव । तदिदानीं प्रत्येक लेष्ट्समत्वेन साध्यताम् , श्रवीक् स्यात्त चतुर्गुणिमिति वचनेन साध्यता-मिति । श्रन्य पुनर्नयैवानुपपस्या चतु प्रमृतीनि पठन्ति । श्रोकरठोऽपि गुल्मा-धिकारे परिमाषायामस्या चतुःप्रसृतीति पाठमेव स्वीकृतवान् ॥ १६३ ॥

# गुडूच्यादिघृतानि--

गुट्टच्याः काथकरकाभ्यां त्रिफलाया वृषस्य च ।
मृद्धीकाया बलायाश्च सिद्धाः स्नहा ज्वरिक्छदः ॥१६४॥
गुड्च्या इत्यादि—नाग्मटस्य । गुड्च्यादीना पञ्चाना पृथक् २ काथकल्काभ्या सिद्धानि पञ्चवतानि वोध्यानि ॥ १६४ ॥

्र ज्वरे पेयाः कषायाश्च सर्पित्तीरं विरेचनम् । पडहे षडहे देयं कालं वोत्त्यामयस्य च ॥ १६४ ॥

श्रत्र पेयादिक यदिहोक तद्याध्यविष्ठत्रकालाविशेषापेच्यामिति प्रतिपादयन् चीरादिकमिमधातु पीठिका रचयित ज्वरे पेया इत्यादि—श्रत्र पेयाकषाय-सिंप.चीरिवरेचनानामुत्सर्गाविधया ज्वराहादारम्य षडहे यथाक्रम देयत्वमुच्यते । तेन '' विमित लिह्नत काले यवागूमिरुपाचरेत् '' इत्यादि विशेषवचनात् लिह्नतादे पछदातिक्रमेऽपि यत् पेयादिदानमुक तम विरोधमायद्वति, मामान्यविषे विशेष-विधिना वाधनस्य मर्वश्रेवानुमतस्यात् । ननु पेयारिप्रयोगे " गावक्कररमू-दुभावात् पष्टइ वा विनव्या " रत्यारिना पष्टइ यावत् यनागृर्वेषेति नर्कणोतः. तथा श्रत्रापि पटहे पेयादानगुरूम् तदय पटह कि ज्वरीस्पाददिन गृहीस्या भवत सहनविषयदिन हित्या या ? नाच धनशनम्प्पणगर्वयम्पात् । सपन छाध प्रवीपक्रम । यद्ताः " उत्ररे लपनमेवारी " इति । नापि द्विताय . ''ज्बरित पहरेंद्रशीते लग्नप्रितिशीनित'' ज्यरिदनादारभ्याष्टेन पानन शमनीय वा पायवेदित्युकात्वात् ज्वरदिनञ्च कोटीयुर्लेवाष्टादः, यद्भक्षः भष्टादी निरामञ्चर-लक्षणन् " इति । भगातु ज्वरीरपाददिन गृहीरीपाष्टाह, प्रत्येतन्य । " याग-ज्ञ्बरमृद्रमायात् पटह या विनक्त्यः " इत्येननापि ज्यरोत्पाददिनमारम्यय पहह-पर्यान्त पेयाप्रयोग उच्यते । पेया हि ज्येर प्राधान्येन द्रीपपाचनार्थ क्रियेन् यदक " लात स्वेदन कालो यवाश्वस्थितको रस. । पाचना-यशिपववानो दीपाणा तरुणे ज्वरे " इति। न तु यरिमन् पडेइ पया, तरिमयेव पडेइ लट्टनाडिकमपीनि । लद्वनादिभिनिरवकाशतया पेयापटारय निविषयत्विमिति वाच्यम् . सरय वातज्वर-विषयत्वात् । वातज्वरी धलद्वनीय । यद्यक " प्रते ज्वरात् ध्रयानिकभयक्षीध-कामशोकश्रमोद्भवाद " इति । नेनालहुनीय बातज्वरे पेया समग्रेमव पटह स्या-प्नोति । एकदिशिदिन लिद्विते पेया च दोपपाननार्थं कियते । कियनेऽपि ज्येर पञ्चनतुस्तिदिन यावत् पेयादिकंमेबेति स्रता निविषयावम् पेयापप्रहण्यः ! यत्र त दोषाखामतिमामतवा सन्निपानज्वरे वा लघनमेन पद्मामानिक्रवेखापि क्रिवेत. तत्र प्रादेशिके विभी पेवाया पदाप्रनियम चीत्मर्गिक प्रवक्षते। ननु पेवा रे।पवाचनांब कियते, ति श्रतिलामिते पया कथ कियते ? लघनेनैव दे।पपाकिमद्भवाद। नेपम् श्रतिलिधिते पेया न दोषपाचनार्थं कियते, कि तीं क्षूपामदीयाशिमन्भसणाय । तवाग्निमन्धर्चणे जाते पुनरीपभपानमेव भवति । ज्वरे पेया कपायाश्चित्यादावाप ममानकार्य्याणा लपनादीनामुपलचणभूता पेया । यत पेया यत्र प्रतिपदा मद्यक्ति ज्वरादी तर्पणक्रमेखापि पडहो माह्य । तम प्रथमपटेह उत्नगितनघनादि पाचन कार्य्यामिति पेया पटोट देथेति वचनेनी ध्यने, कपायपटहोऽपि ज्यरीश्वाराष्ट् मप्तमिटिन परित्यज्याष्टमाध्मारम्येव देया । मप्तमे ज्वरम्य तरुखत्येन कपायपाननिषेधात, यत् तु हारीते लघनी प्लोदकमुन्ता दिषटगशृतनल-पानीयपानपेयाविधानान्तरमुसान् " ण्ता क्रियां प्रयुक्तीन पट्राय सप्तमेऽइनि । पिनेत् कपायसयोगान् ज्वरहान् माधुमाधितान् 3 इति, नथा रारनादेनाधि

" लिंबतालिंबत तस्माद् विमत वा ज्वरादितम् । तस्मात्म्यत्वादतस्ताभिरादौ ज्वरसुपाचरेत्' इति यवागूमियंथादोषिमत्यादि तर्पणादिक्रममिधायोक्षम्
'इति याड्रात्रिक प्रोक्तां नवज्वरिहतो विधि.। तत पर पाचनीय शमन वा ज्वरे
हितम्' इति, तदिष प्रागुक्तरीत्या श्रष्टाद्द एव कषायपानिवधायक्रमिति प्रागेव
प्रतिपादितम् । वस्तुतस्तु मप्तमाष्टमाद्दक्षयायपानिवधायकाना रचनानामदूरान्तरत्वात् एव न परस्परिवरोध इत्युक्तम् । एतन्मतेऽप्यनुद्भृतसामतायां सप्तमदिन एव
कषायपानम् । उद्भृतसामतायान्तु श्रष्टमेऽद्दानि इति व्यवस्था । तैनैतस्मिन् व्याख्याने
हारीतखरनादवचन यथाश्रतमेव सङ्गच्छते । तथा ज्वरे पेया कथायाश्रेत्यादिनापि
पेयाषडहानन्तरमेव सप्तमे दिने यत् कषायपानमुक्त तदप्यनुद्भृतसामतामिप्रायेखेति
न विरोधमावद्दति । काल वीच्यामयस्य चेति ज्वरलच्चरास्यामयस्यावस्थारूप काल
वीच्य यडहे यथाक्रम पेयादि देयमित्यर्थः ॥ १६५॥

जीर्गज्वरे कफे चींगे चीरं स्यादमृतोपमम्।
तदेव तरुशे पीतं विश्वद्धन्ति मानवम् ॥ १८६॥

कीरपानावस्थामाह जीर्थंज्वरे इत्यादि — कफे कीय इति, कफक्रयात् वातिपत्तोत्तरताया कीरममृतायत इत्यर्थ । यदुक ''दाहतृष्णापरीतस्य वातिपित्तोत्तर ज्वरम् । वन्धप्रच्युनदोष वा निराम पयमा जयेत् '' इति ॥ १६६॥

कासाच्छ्वासात् शिरःश्रलात् पार्श्वश्रलात् सपीनसात् । मुच्यते ज्वरितः पीत्वा पञ्चमूलीश्वतं पयः ॥ १६७ ॥

कासादित्यादि-पञ्चमूली खल्पा वातपित्तहन्तृत्वात् ॥ १६७॥

द्रव्यादष्ट्युणं ज्ञीरं ज्ञीरात् तोयं चतुर्गुण्म् । ज्ञीरावशेष कर्त्तव्यः ज्ञीरपाके त्वयं विधिः ॥ १६८॥ विकारकवलाव्याव्रगुडनागरसाधितम् । वर्षोमूत्रविवन्धमं शोथज्वरहरं पयः ॥ १६६॥

द्वीरसाधनपरिभाषामाह द्रव्यादित्यादि—त्रिकरटकेत्यादौ गुड. प्रद्येप्य, गुडपाकस्य निष्पयोजनत्वादित्याहु ॥ १६८ ॥

वृश्चीरविल्ववर्षाभूपयश्चोदकमेव च। पचेत् त्रीरावशिष्टन्तु तद्धि सर्वज्वरापहम्॥ २००॥ प वृक्षीरेत्याटि-वृक्षीर श्रेनपुनर्नवा, वषाभू रक्षपुनर्नवेनि । अत्रोडकर्नी-रीषधाना पूर्ववदेव मानम् ॥ २०० ॥

शीतं वेष्णं स्वरे स्वरं यथासैरोपधैर्युनम् ॥ २०१ ॥ र् गीन वेसाहि—विकल्प इच्छाविशेषष्टन , किंवा बाते स्पण्, पित्ते शीन-निति ॥ २०१ ॥

एरएडमूलसिद्धं वा ज्वरे सपरिकर्त्तिके ॥ २०२ ॥

एरएडेत्याहि—प्रत्र विन्वफनमिद्ध दुग्धमिप दोध्य चरकोकतात् । उदे
कत्तनवत् पोडा परिकर्तिका ॥ २०२ ॥

स्वरिभ्यो वहुरोपेभ्य अर्ध्वञ्चाधश्च वुद्धिमान् । रद्यात् संशोधनं कालं करुपे यदुपरेस्यते ॥ २०३ ॥

मरोधिनावस्थामाह ज्वरिन्य इत्यादि—बहुदोषेन्य इति श्रल्पटोषेषु मरोधिननिषेधार्थमुक्तम् । काल इति यथोक्तवमनविरेचनयोग्यज्वरान्धायान् । कृत्य इति कृत्यन्थाने अन्ये यदुपटेच्येते तहेयम् ॥ २०३ ॥

मद्नं पिप्पलीभिर्वा कलिङ्गैर्मधुकेन वा । युक्तमुप्णाम्बुना पीतं वमनं स्वरशान्तये ॥ २०४॥

वननयो त्रयमाह मदनीनत्यादि—मदन पिप्पनीयुक्त करे । क्रालिङ्ग इन्द्रयव. तद्युक पित्तकरे, यष्टिमधुयुक्तन्तु टाह्माय हत्याहु ॥ २०४॥

श्रारम्बर्धं वा पयसा मृद्दीकानां रसेन वा। त्रिवृतां त्रायमाणां वा पयसा ज्वरितः पिवेत्॥ २०४॥ चतुरो विरेचनयोगानाइ श्रारम्बर्धनित्वाहि—श्रत्र चरके वाग्मेटे च त्रिवृतासले त्रिफलापाठो दृष्यते, वैकाकारिश्च त्रिफलेन व्याख्यायते॥ २०४॥

ज्वरक्षीण्स्य न हितं वमनं न विरेचनम् ।
कामन्तु पयसा तस्य निरूहेर्वा हरेन्मलान् ॥
प्रयोजयेज्ज्वरहरान् निरूहान् सानुवासनान् ।
प्रकाशयगते दोपे वच्यन्ते ये च सिद्धिषु ॥ २०६ ॥
व्यर्जाण्येलादि—सप्टन् । निद्धिषु निद्धियानोक्षाध्ययेषु ॥ २०६ ॥
गौरवे शिरसः शुले विवद्धेष्विन्द्रियेषु च ।
जीर्णेज्वरे रुचिकरं द्द्याच्छीर्पविरेचनम् ॥ २०७ ॥

नस्यावस्थामाह गौरव इत्यादि—विवद्धेष्विति स्वविषयग्रह्णासमर्थेषु ॥२०७॥ श्रभ्यद्गांश्च प्रदेहांश्च सस्त्रेहान् सानुवासनान् । विभन्य शीतोष्णकृतान् दद्याज्जीर्णज्वरे भिषक् ॥ तैराशु प्रशमं याति वहिर्मार्गगतो ज्वरः । लभनते सुखमङ्गानि वलं वर्णश्च वर्द्धते ॥ २०८॥

जीर्णज्नरेऽम्यद्गादीनाह श्रभ्यङ्गानित्यादि—विभज्येति शीतोष्णसमुत्यज्वर-विभागेनेत्यर्थ । तेन उष्णोत्थे जीर्णज्नरे शीतद्रव्यक्तता प्रदेहादय शीतोत्थे तु उप्णद्रव्यकृता देया इत्यर्थ. । विद्मीर्गस्त्वगादि । उक्त हि "शाखा रक्तादयो धातव-स्त्वक् च बाह्यो रोगमार्ग " इति ॥ २०८ ॥

षद्कद्वरतैलम्

सुवर्चिकानागरकुष्टमूर्वा-लाचानिसालोहितयप्रिकाभिः । तैलं ज्वरे षड्गुणकट्वसिद्ध-

मभ्यञ्जनाच्छीतविदाहनुत् स्यात् ॥ द्धाः ससारकस्यात तक्रं कट्वरमिष्यते । घृतवत् तैलपाकोऽपि तैले फेनोऽधिकः परः ॥ २०६॥

सुवाचिकेत्यादि — सुवर्चिका सर्जिकाचार, लोहितयष्टिका मिजिष्ठा, सुश्रुत-षृद्धवाग्भटादिवहुतरतन्त्रमवादात्। श्रन्ये तु लोहितं चन्दनम्, यष्टिका मिजिष्ठा विदेहसवादादित्याहु । व्यवहारस्तु पूर्वव्याख्ययैव । शीतविदाहहन्तृत्वञ्च योगस्य श्राचिन्त्यशिक्तत्वात् । तैलपाके विशेष स्मारयति धतवदित्यादि ॥ २०६ ॥

# श्रङ्गारकं तैलम्

मूर्वा लाक्ता हरिद्रे द्वे मिश्रिष्ठा सेन्द्रवारुणी।

बृहती सेन्धवं कुष्ठं रास्ना मांसी शतावरी॥

श्रारनालाढकेनैव तेलप्रस्थं विपाचयेत्।

तेलमङ्गारकं नाम सर्वज्वरिवमोक्त्रणम्॥ २१०॥

मूर्वेत्यादि—इन्द्रवारुणी गोरक्षकंटी, अद्वारको मङ्गल, तत्कृतलादद्वारक-

# लाचादितैलम्

लाचाहरिद्रामञ्जिष्ठाकलैकस्तैलं विपाचयेत्।
पङ्गुणेनारनालेन दाहशीतज्वरापहृम्॥ २११ ॥
लाचादितैल स्पष्टम्—अन्नापि दाहशीतहरत्व प्रमावाद् ॥ २११ ॥
यवचूर्णार्द्वकुडवं मञ्जिष्ठार्द्वपलेन तु ।
तैलप्रस्यः शतगुणे काञ्जिके साधितो जयेत् ॥
ज्वरं दाहं महावेगमङ्गानाञ्च प्रहर्पनुत् ॥ २१२ ॥
यवेत्यादि—मञ्जिष्ठा अर्द्वपलेनेत्यत्र दिपलेनेति न पाठ सुभुतचन्द्राटादं।
अर्द्वपलेनेति पाठात् ॥ २१२ ॥

सर्जकाक्षिकसंसिद्धं तैलं शीताम्बुमर्दितम् । ज्वरदाहापहं लेपात् सद्यो घातास्रदाहनुत् ॥ २१३ ॥ प्रदेहमाह सर्ज हत्यादि—सर्जो धूनक करूक, काजिक चतुर्श्यम्, मिद्ध पक्षम् । तत शीताम्बुमदित शीतलजलेन तेल मम्मर्थ गाढाभ्यद्ग कार्यः ॥२१३॥

चन्दनाद्यमगुर्वाद्यं तेलं चरककीि तम् ।
तथा नारायणं तेलं जीर्णज्वरहरं परम् ॥ २१४ ॥
नारायणंतेल नातव्याथा नद्यमाणम् ॥ २१४ ॥
श्रिमघातज्वरो न स्थात् पानाभ्यद्गेन सर्पिपः ।
स्रतानां विणितानाञ्च स्तव्यणिकित्सया ॥ २१४ ॥
श्रीमघोतत्यादि—न स्यात् न मनेत् शाम्यतीत्यर्थ । स्तनामित्युर स्ताः
नाम् । श्रत्रापि न्तरो न स्थादिति योज्यम् ॥ २१४ ॥

# श्रागन्तुज्यरचिकित्सा

श्रोपिधगन्धविषजी विपपीतप्रवाधनम् । जयेत् कपायैमीतमान् सर्वगन्धकृतैस्तथा॥ २१६॥ श्रीपर्धात्यादि—सुश्रुतस्य। प्रवाधन चिकित्मितम् । विषपीतप्रवाधनिरिति पाठे, विषपीतस्य यानि चिकित्सितानि तैरित्यर्थः। सर्वगन्धकृतैरिति सर्वगन्धः सीश्रुत एलादिगणः, स एवात्र विषद्दरलादुचिनः, न तुः "्चातुर्जातककर्षूरककोन लागुरुशिल्हकम् । लवद्गमिहतक्रेव मर्वगन्थ विनिदिशेत् " इति निर्धस्टकारोक्षी श्राह्म । तस्योद्वर्त्तनादिमात्रविषयत्वात् ॥ २१६ ॥ <sup>१</sup>

#### श्रभिचाराभिशापोत्थौ ज्वरौ होमादिना जयेत्। दानस्वस्त्ययनातिथ्येरुत्पातत्रहपीडजौ ॥२१७॥

श्रभिचोरेत्यादि — सुश्रुतस्य । श्रभिचारोऽथर्ववेदोक्तः श्येनादियाग । श्रभि-शापा गुर्वोदीनामनिष्टाभिशसनम् । होमादिनेत्यादिशब्दात् प्रायश्चित्तवलिमङ्गलादयो गृद्यन्ते । उत्पातो निर्धातादिः । प्रह्पीडाजिमति प्रह्पीडाजन्यम् " डवापो-सज्ञाच्छन्द्रमोर्वेडुलम् " इति पाढाराब्दस्याकारस्य हस्वत्वम् । सुश्रुते तु " उत्पात-ग्रहपीडितम् '' इति पाठा दृश्यते ॥ २१७ ॥

#### क्रोधकामादिज्वरचिकित्सा

क्रोधजे पित्तजित् काम्या अर्थाः सद्दाक्यमेव च। श्राश्वासेनेष्टलाभेन वायोः प्रशमनेन च॥ हर्षेणैश्च शमं यान्ति कामक्रोधभयज्वराः। कामात् कोधज्वरो नाशं कोधात् कामसमुद्भवः॥ याति ताभ्यामुमाभ्याश्च भयशोकसमुद्भवः॥ २१८॥

क्रोधज इत्यादि -- अत्र चरक " काम्यैरथैर्मनोजैश्च पित्तमैश्चाप्यपक्रमै । सद्वावयेश्च शम याति ज्वर कामसमुद्भव " इति । श्राथासेनेत्यदि--चरकस्य स्पष्टम् । कामादिजन्यान् ज्वरान् कामादयः, परस्पर नाशयन्तीत्याह कामादि-त्यादि चरकस्य ॥ २१८ ॥

भूतज्वराचिकित्सा / भूतविद्यासमुद्दिष्टैर्वन्घावेशनता्डनैः ।

जयेद् भूताभिषङ्गीत्थं मनःशान्तैश्च मानसम् ॥ २१६॥

भृतविद्यादि-सुश्रुतस्य । भूताना यत्तराचसादीना ज्ञानार्था प्रशमनार्था च विद्या, सा च सुश्रुतोत्तरतन्त्रादावनुमरणीया । बन्धावेशनताडनैरिति श्रनुप्रविष्टस्य भृतस्य पुनरपसरता मन्त्रण मयमने वन्ध । मन्त्रेणाकृष्य मस्तके निवेशनमावेशनम् । तांडन मन्त्रे सर्पपादिामरभिद्दननम् । ताडनैरित्यत्र पूजनैरित्येव पाठः सुश्रते दृश्यते । टीकाइतोऽपि पूजनै. बल्युपहारस्तुत्यादिभिरिति व्याख्यानयन्ति । भूता- भिषयोत्थिमिति, भृताभिनम्बन्धेत्थम् । मानम कामकोधाविजम् । मन शान्तैरिति मन प्रमार्वन । मन शार्न्तरित्यत्र विज्ञानांद्यित्यिप पाठ सुश्रुते दृश्यते । टीका-कृतोऽप्यादिशन्त्रात् समाधिर्धेर्योदीना ग्रह्णिमिति न्यानकते ॥ २१६ ॥

#### वर्जनीयविधिः

्रियायामञ्च व्यवायञ्च स्नानं चंक्रमणानि च । ज्वरमुक्तो न सेवेत यावश्चो वलवान् भवेत् ॥ २२० ॥ ज्वरमुक्तेन यम्र नेव्य तदाह न्यायामश्चेत्यादि—स्नानम् नंस्करमपि ज्वर प्रत्यानयित, नदुक्त " स्नानमाशु ज्वर कुर्यात् ज्वरमुक्तस्य देहिन । तस्मान्मुक्त ज्वर स्नान विषवत् परिवर्जयेत् " इति ॥ २२० ॥

#### ज्वरमुक्तिलच्चग्रम्

देहो लघुर्व्यपगतक्कममोहतापः ।
पाको मुखे करणसाष्ट्रवमन्यथत्वम् ।
स्वेदः स्वः प्रकृतिगामिमनोऽन्नालिप्सा
कराष्ट्रश्च मूर्धिन विगतज्वरलस्रणानि ॥ २२१ ॥
इति ज्वरिविकत्सा ।

न्त्ररमुक्तिन्त्रयमाद् देह इत्यादि—वाग्भटस्य । मुख एव पाकी व्याधि-प्रभावाद् । एव कण्ड्झ मूर्जीत्यपि ॥ २००॥ इति स्वर्श्विकित्साविवृति ।

# अथ ज्वरातिसारचिकित्सा।

ज्वरातिसारे पेयादिकर्मः स्याज्ञित्विते हितः॥१॥ उत्पत्तपट्कम्

ज्वरातिसारी पेयां वा पिवेत् साम्लां श्रुतां नरः। पश्चिपणीवलाविल्वनागरोत्पलधान्यकैः॥ २॥

ज्वरे सत्युपद्रवत्वेनातीसारस्य सम्भवाद् ज्वरानन्तर ज्वरातीसार उच्यते । ज्वरातीसारमेलकश्च ज्वरातीसाराभ्यामन्योन्यस्य इति कृत्वा निदानसग्नेहे माधवेन न पठित । श्रत प्रवेक्त सिद्धसोर भू ज्वरातिसारयोग्न्त निदान यत् पृथक् पृथक् । तत् स्याज्ज्वरातिसारस्य तेन नात्रोदित पुन "इति । ननु एव चिकित्सापि मावष्यतीति चेत् १ नैवम् मिथावर्द्धनात् । उक्त हि, ' ज्वरातीसारयोग्न्क भेषज्ञ यत् पृथक् पृथक् । न तन्मिलितयो कार्य्यमन्योन्य वर्द्धयेद् यत ॥ प्रायेण हि ज्वरहरमीषधमनुलोग्ननम्, श्रतिसारहर्ण्य स्तम्भनमिति परस्पराविषद्धन्तात् मिलितयानं कार्य्यमित्यर्थः । पेया वेति वाशब्दश्चरके यवाग्वन्तरापेच्या । कि वा साम्लामित्यस्यानन्तर वाशब्दो योज्य । तेनानम्लामपीत्यर्थ फलति । साम्लामिति ईषदम्लाम् । श्रम्लत्वच्च दाहिमरसादिना । एतच्चाम्लसात्म्य प्रति शेयम् । पश्चिपणीत्यादि—सुश्चते त्वस्मिन् योगे वालकमिप दृश्यते, यथा "पृश्चिपणीत्यादिन्यश्चकोत्पलवालके । सनागरै पिवेत् पेयां साधिता-सदरामयी "॥ १ । २ ॥

पाठेन्द्रयवभूनिम्बमुस्तपर्पटकासृताः । जयन्त्याममतीसारं सज्वरं समहौषघाः ॥ ३॥ पाठत्यादि प्रयोगः क्षांयन ॥ ३॥

# नागरादिः

नागरातिविषामुस्तभूनिम्बामृतवत्सकैः ।
सर्वदवरहरः काथः सर्वातीसारनाशनः ॥ ४॥
नागरेत्यादि—वत्सक इद्रयवः, सिद्धमारे " द्विन्नाम्निम्बशुय्ख्यन्दकिः
हातिविषाङ्कतः " इत्यकत्वाद ॥ ४॥

#### हीवेरादिः

हीवेरातिविषासुस्तिविल्वधान्यकनागरैः।
पिवेत् पिच्छाविबन्धम्नं ग्रूलदोषामपाचनम्॥
सरक्तं हन्त्यतीसारं सज्वरं वाथ विज्वरम्॥ ४॥
क्षंवेरादिर्वातश्रेष्मणीति वृद्धाः। योगोऽयमवचारणयापि । विल्वशुण्ठक स्तम्भक्तलात्, एव वस्त्यमाणेषु॥ ४॥

#### गुडूच्यादिः

गुड्ड्च्यतिविपाधान्यश्चरिंगिवत्वाव्दवालकैः ।
पाठाभूनिम्वकुटजचन्दनोशीरपद्मकैः ॥
कपायः शीतलः पेयो ज्वरातिसारशान्तये ।
ह्यासारोचकच्छितिपासादाहनाशनः ॥ ६ ॥
गुड्ड्यादी कुटबेन तत्कल लघुलात् पाचनत्वाच । श्रय ये।ग पित्तकेष्मणीन

#### उशीरादिः

उशीरं वालकं मुस्तं धन्याकं विश्वभेषजम् । समद्गा धातकी लोधं विल्वं दीपनपाचनम् ॥ हन्त्यरोचकपिच्छामं विवन्धं सातिवेदनम् । सशोशितमतीसारं सज्वरं वाथ विज्वरम् ॥ ७ ॥ दशीरेलादि—यद्यपि नमद्गाराब्देन मिडाडाप्युच्यते, तथापि वराहकान्तयैव । व्यवहरन्ति वृद्धाः ॥ ७ ॥

#### पञ्चमूल्यादिः

पश्चमूलीवलाविल्वगुहूचीमुस्तनागरेः।
पाठाभूनिम्बह्विरकुटजत्वक्फलैः श्टतम्॥
हन्ति सर्वानतीसारान् ज्वरदोपं वर्मि तथा।
सम्ब्रुलोपद्रवं श्वासं कासं हन्यात् सुदारुणम्॥ =॥
्पश्चमूलादौ यधीष " पश्चमूलीति नामान्याद् योज्या पिसे कनीयमी ।
महती पश्चमूलीति वातरेष्माधिके तथा)" इति कृन्देनीक्षम्, तथापि स्वल्पपञ्चमूलीव व्यवहरन्ति कृदा ॥ =॥

किल्क्गितिविपाश्चग्दीिकराताम्ब्रुयवासकम् । ज्वरातीसारसन्तापं नाश्चेद्विकल्पतः ॥ ६ ॥ वत्सकस्य फलं दारु रोहिणी गजपिप्पली । श्वदंष्ट्रा पिष्पली घान्यं विल्वं पाठा यमानिका ॥ डावप्येतौ सिद्धयोगौ स्ठोकार्घेनाभिभाषितौ । ज्वरातिसारशमनौ विशेषाद्दाहनाशनै ॥ १० ॥

नागरामृतभूनिम्वविल्ववालकवत्सकैः। समुस्तातिविषोशीरैज्वरातीसारहज्जलम् ॥ ११ ॥ मुस्तकविल्वातिविषापाठाभूनिम्ववत्सकैः काथ । मकरन्दगर्भयुक्षो ज्वरातीसारौ जयेद् घोरौ ॥ १२॥ घनजलपाठातिविषापथ्योत्पलघान्यरोहिणीविश्वैः। सेन्द्रयवैः कृतमम्भः सातीसारं ज्वरं जयति ॥ १३ ॥ कलिङ्गत्यादि यमानिकान्त योगत्रय पित्तोत्तरे इत्याहु । नागरामृतभूनिम्ब-

त्यादि जयतीत्यन्त स्पष्टम् ॥ ६---१३॥

# कालिङ्गाद्यगुडिका

कलिङ्गबिल्वजम्ब्वाम्रकपित्थं सरसाञ्जनम्। लाचाहरिद्रे हीवेर कट्फलं शुकनासिकाम्। लोधं मोचरसं शङ्खं घातकी वटशुङ्गकम्। पिष्ट्वा तग्हलतोयेन वटकानचसम्मितान्। क्रायाग्रुष्कान् पिवेच्छीव्रं ज्वरातीसारशान्तये । रक्षप्रसादनाश्चेते ग्रलातीसारनाशनाः ॥ १४ ॥

कलिंगेत्यादौ हारीतचन्द्राटसवादात् कलिंगस्थाने कट्वङ्ग पठन्ति. कटवङ्गश्च श्योगाक , जम्ब्ताम्रफलयारस्थि याद्यम् । हरिद्रे इति हरिद्राह्यम् । तर्द्हलोदकञ्च " जलमप्रगुण दत्त्वा पल कारिहततर्द्हुलात् । भावियत्वा तता याद्य तर्यं जोदक्कर्मिथा '' इत्यनेन ग्राह्मम् । शुकनासिका चर्मकारवटक ॥१४॥

उत्पत्तं दाडिमत्वक् च पद्मकेशरमेव च । पिवेत् तग्डलतोयेन ज्वरातीसारनाशनम् ॥ १४ ॥

उत्पलेत्यादी—दाहिमफलस्य त्वक्ं, "फल स्याद्दाहिमादीनाम् " इति वचनात् । एवमन्यत्रापि वोध्यम् । श्रन्ये वृद्धत्वचमातु । पद्मस्य केशर् किञ्जल्कम्। सरके पित्तोत्तरे योगोऽयमिलाहु ॥ १५॥

# व्योषाद्यचूर्णम्

व्योषं वत्सकबीजञ्ज निम्बभूनिम्बमार्कवम्। चित्रकं रोहिणीं पाठां दावींमतिविषां समाम्॥ श्रद्याचूर्यीकृतान् सर्वोस्तत्त्वत्यां वत्सकत्वचाम् । सर्वमेकत्र संयोज्य प्रियेत् तगृहलाम्बुना ॥ सत्त्वौद्रं वा लिहेदेतत् पाचनं प्राहि भेपजम् । कृष्णाविष्यशमनं ज्वरातीसारनाशनम् ॥ कामलां प्रह्यीदोपान् गुल्मं सीहानमेव च । प्रमेहं पागृहरोगञ्च श्वयथुञ्च विनाशयेत् ॥ १६॥

घ्योपादौ तत्तुल्या वरसकत्वचामिति मिलितच्योपादिचूर्यातुल्याम् ॥ १६॥

दशमूलीकपायेण विश्वमत्तसमं पिवेत्। ज्वरे चैवातिसारे च सशोथे प्रहणीगदे॥ १७॥ विडद्गातिविपामुस्तं दारुपाठाकलिङ्गकम्। मरिचेन समायुक्तं शोथातीसारनाशनम्॥ १८॥

दशमूलीलादि-अत्र प्रचेप्यस्य शुरठीचूर्णस्य यत् कर्पमानत्वसुक्षम्, तत काथ्यस्य दरामूलस्य पलरूपामुत्तममात्रामपेत्त्यः तेन मध्यमाधममात्रानुमारेख शुष्ठी-चुर्णस्य हासोऽपि बोध्य । तेनात्र प्रदेष पादिक काथ्यादित्यव परिभाषा प्रव-र्तते । न तु पातव्यक्ष चतुर्द्रन इति वचनाद् विश्वचूर्णाप्रेचया त्रामूलीकाथश्चतु-ग्रंखा कार्य । यत विश्वचूर्णापेचया दशमूलस्य पाचनदीपनत्वेन यीगिकत्वात् प्राधान्यम्। अपि च काथकरण हि काथ्यमानापेचम्, काथ्यमानव्च उत्तमपुरुपाध-पेचम् । श्रतस्तत्र पलत्रिकपाईपलमानमुल्मर्गतो व्यवस्थितमस्येव, तदपेचस च काथ्यस्य उत्तमपुरुपाद्यपेचया व्याधिनिष्ट्त्यै प्रयुज्यमानस्य न्यूनत्वकर्णे मेपनस्याल्प-मात्रत्वदोषाद् व्याधिनिष्टत्तिरेव न स्यादिति विषचे दोषदर्शनाद् यथावस्थिनचतु-र्भागावशिष्टकाथप्रयोगाच काथस्यैव प्रधानता । ततक्ष यदि पातव्यरच चतुर्दव इलनुसाराद् विश्वचूर्णापेद्यया दशमूलीकाथश्चतुर्गुणी गृह्यते, तदा प्रधानस्य काथस्य न्यूनता स्यात्; चतुर्भागानशिष्टकाथानुसारेण वा यदि चतुर्माग चूर्ण गृह्यते, तदा चूर्णेबाहुल्य स्थादिति । तेन यत्र काथेन चूर्णेपानम् , तत्र प्रचेप पादिक काथ्या-दित्यस्यैव विषय , न तु पातन्यश्च चतुर्द्रव इत्यस्यिति सिद्धः । एवमन्यत्रापि काथेन चूर्णस्य कल्कस्य वा पाके काथस्य प्राधान्यमनुमन्नव्यम् । श्रतएव रुचकादिचूर्णे वृन्दोऽप्याह "कायेन चूर्णपान यत् तत्र काथप्रधानता । प्रवर्तते न तेनात्र चूर्णा-पेक्षी चतुर्देव " इति । चूर्णापेक्षी चूर्णमानापेक्षीत्वर्थ । १७॥ १८॥

किराताच्दामृताविश्वचन्द्नोदीच्यवत्सकैः। शोथातिसारशमनं विशेषाज्ज्वरनाशनम्॥१६॥ किराताच्दामृतोदीच्यमुक्तचन्द्नधान्यकैः। शोथातिसारतृड्दाहशमनो ज्वरनाशनः॥२०॥ इति ज्वरातिसारचिकित्सा।

किरातेत्यादि स्पष्टम् ॥ १६ ॥ २० ॥ इति ज्वरातीसारचिकित्साविवृति ।

# अथातीसारचिकित्सा।

त्रामपककमं हित्वा नातिसारे किया यतः। श्रतः सर्वातिसारेषु क्षेयं पकामलचणम् ॥१॥

ज्वरोपद्रवस्थातीसारस्य चिकित्सामभिधाय सम्प्रति स्वतन्त्रस्यातीसारस्य चिकिन्स्मामाह् श्रामेत्यादि—सुश्रुतस्य । क्रिया चिकित्सा ॥ १ ॥

मज्जत्यामा गुरुत्वादिद् पका त्त्सवते जले। विनातिद्ववसंघातशैत्यश्लेष्मप्रदूषणात्॥२॥

श्रामपकलच्चणमाइ मञ्जतीत्यादि—चरकस्य। श्रामेति श्रामान्विता विट् जले मञ्जति । गुरुत्वादिति श्रामाहितगुरुत्वात् । पक्षेति निरामा, सवते निराम-त्वन लघुत्वादित्यर्थ । इयोरप्यामपकलच्चणयोरपवादमाइ विनातिद्रवेत्यादि— श्रातिद्रवंत्वात् श्रामापि सवते; तथा श्रातिमङ्घातात् श्रातिकाठिन्यात् पक्षापि मञ्जति; तथा शित्यसहतिश्रेष्मप्रदूषणात् कफसम्बन्धकृतगौरवेण पक्षापि मञ्जति । शैत्यस्थाने शैत्यपाठे श्रेतवर्णता । पतेनातिद्रवेत्वादिक विना मञ्जनसवने सामनिरामलच्चणतया इये इत्थर्थ ॥ २ ॥

शक्तदुर्गन्धि साटोपविष्टम्मार्त्तिप्रसेकिन । विपरीतं निरामन्तु कफात् पकञ्च मज्जति ॥ ३॥ मामत्वनिरामत्वयो मन्यग्द्यानार्थमपरमपि लन्तणमाह गरुदित्यादि—आटो-पविष्टम्भावेवात्तां तत्महिनम् । किं वा अनि ग्लम, आटोपो मनापूवक उदरचोम , विष्टम्म मतोद्रग्लमलाप्रवृत्ति, प्रमेकिन कफप्रमेकिन , किं वा प्रमेक स्लोकस्तो-कमलमरणम् । कफात् पक्कच मन्तितियस्य नन्त्रान्तरीयवचनत्वान्न पीनम्कस्यमा-राह्मनीयम् । इह तु मन्पूर्णकेकानुरोधात् पठिनम् ॥ ३ ॥

्र श्रामे विलंघनं शस्तमार्टा पाचनमेव च । कार्य्यञ्चानगनस्यान्ते प्रद्रवं लघुभोजनम् ॥ ४ ॥

श्राम इत्यादि — प्रद्रविमिति प्रकृष्टद्रवम् , प्रकंपश्चात्र शास्त्रविहितत्वेन श्रेय । तेनात्राविहितद्रवाश्वनिषेधाथम् , विहित्तलाजमयद्यदिविधानार्थे प्रशस्द्रोपादान श्रेयम् । श्रत वर्जयेद् वेदल ग्ली कुष्ठी मान चर्या स्त्रियम् । द्रवमग्रमतीमारी सर्वञ्च तम्युष्ट्रवरो " इत्यादि वचनेन महात्र विराध । श्रन्ये तु प्रगतद्रविमित व्या- स्वाय विरोध परिहन्ति । श्रपेर तु निपातन्यानेकार्थत्वात् प्रशस्त्रस्य इंपटयंता व्या- स्वायन्ति । श्रन्ये तु केवलद्रवर्मयं निपेधो न तु खाजमग्डाटेरित्यादु ॥ ४॥

लंघनमेकं मुक्त्वा न चान्यटस्तीह भेपजं विलनः। समुदीर्ण दोपचय शमयति तत् पाचयत्यिप च ॥ ४ ॥ लद्वनपाचनयोर्मध्ये लद्वनस्य प्राधान्यमाह लद्वनमित्यादि—स्पष्टम ॥४॥

हीवेरश्रह्मवेराभ्यां मुस्तपर्पटकेन वा ।

मुस्तोदीच्यश्रतं तोयं देयं वापि पिपासवे ॥

मुस्तोदीच्यश्रतं तोयं देयं वापि पिपासवे ॥

ग्रुक्तोऽन्नकाले चुत्वामं लघून्यन्नानि भोजयेत् ॥६॥

ग्रीवेरेत्यादि योगत्रय पद्मविधिता श्रद्धश्रत वोध्यम् । वदीच्य वालकम् ॥६॥

श्रीपधिसद्धाः पेया लाजानां शक्तवोऽतिसारिहताः ।

वस्त्रप्रस्रुतमग्रदः पेया च मस्र्य्यृपश्च ॥ ७॥

प्रदव लबुभोजनिर्मित बदुक्त तदेव दर्शयि श्रीपथिमदा इत्यादि—श्रीपथ वच्यमाणशालपर्गिदि—धान्यपश्चकादिकम् । पया चेति पेया च वस्त्रप्रस्रुतेत्यर्थ । श्रतप्त्रोक्तम् '' वस्तस्रुता यवागूर्योऽप्रस्रुतस्त्रद्धम्ककम् '' दति ॥ ७ ॥

्र गुर्वी पिएडी खरात्यर्थे लघ्नी सैव विपर्य्थात्। सक्तूनामाश्च जीर्येत मृदुत्वादवलेहिका॥ = ॥

गुर्वीत्यादि ।—श्रत्यंथ पारा कठिना राक्तुपिषिडका गुर्वी स्थात् । मैव विपर्य्ययादिति मुद्दी मा लब्बी भवति । श्रवलेष्टिका श्रवलेष्ट्योग्या पिएडी ॥ म ॥

# **ब्**हच्छालपगर्यादिः

शालपर्णी पृक्षिपर्णी बृहती कगरकारिका। वलाश्वदंष्ट्रावित्वानि पाठानागरधान्यकम्॥ पतदाहारसंयोगे हितं सर्वातिसारिणाम्॥ ६॥

षृहच्छालपर्र्यादौ — विल्वाने विल्वशलाटव भग्नाहित्वात् । यदुक्त "कफानिलहर तींच्य सिन्ध समाहि दीपनम् । कडितिक्षकपायोग्य विल्वमाममुदाहतम् " इति । एव सर्वत्रं स्तम्भनयोगे वेध्यम् । छ्यान्तु विल्वस्य मूल श्रेयम्, "विल्वमूलं मरुच्छ्लेष्मच्छदिम् न तु पित्तकृत्" इति गुर्यपाठात् । आहारसयोग इति आहारस्य मयोजने सस्कार इति यावत् । मवीतिसारियामिति आमपच्यमानपकातिसारियाम्, प्रत्येकद्दसिश्वपातिमारिया वा ॥ ६ ॥

# खल्पशालपएयोदिः

शालपर्शीवलाविल्वैः पृश्चिपएर्या च साधिता । दाडिमाम्ला हिता पेया पित्तश्चेष्मातिसारिणाम् ॥ १० ॥ स्वल्पशालपर्थादि ।—वाग्मदस्य ॥ १० ॥ यवागूमुपभुञ्जानो न तु व्यञ्जनमाचरेत् ।

शाकमांसफलैर्युक्ता यवाग्वाऽम्लाश्च दुर्जराः ॥ ११ ॥ यवाग्वोऽम्ला इति श्रम्ला श्रम्लविपाका ॥ ११ ॥

धान्यपञ्च कसंसिद्धो धान्यविश्वकृतोऽधवा।

श्राहारो भिषजा योज्यो वानश्लेष्मातिसारिणाम् ॥ १२ ॥
वाति पञ्चमूल्या कफे वा पञ्चकोलकैः ॥ १३ ॥
धान्यपञ्चकेत्यदि स्पष्टम् । वाति पेते पञ्चमूल्या इति स्वरूपण्चमूल्या॥१२॥१३॥

धान्योदीच्यश्वतं तोयं तृष्णादाहातिसार्जुत्। स्राभ्यामेव सपाठाभ्यां सिद्धमाहारमाचरेत्॥ १४॥ स्राभ्यामिति धान्योदीच्याम्याम्॥ १४॥

्रदोपाः सन्निचिता यस्य विदग्धाहारमूर्विञ्जताः। त्रुतिसाराय कल्पन्ते भूयस्तान् सम्प्रवर्त्तयेत् ॥ १४ ॥

दोषा इत्यादि—सिन्निचिता इति सम्बय प्राप्ता । विदग्धशब्देनात्राविपका-द्वारवाचिना चतुर्विधमप्यामविद्ग्धविष्टब्धरसशेषरूपमजीर्णमुच्यते । मूर्चिन्नता इति वर्दिता । सम्प्रवर्त्तयेदिति स्वयं प्रवर्त्तमानदोपस्य उपेक्षया प्रवर्त्तन कारथेत् । उक्त हि तेपूपेवेव मेषजम् '' इति, तथा स्तोक स्तोक विवद्धवा विरेचनयोगेन प्रवर्त्तयेत्। श्रतण्य वस्यति स्तोक स्तोक विवद्ध वेत्यादि ॥ १५ ॥

नतु सड्ग्रहर्णं दद्यात् पूर्वमामातिसारिणे । दोपा ह्यादी रुध्यमाना जनयन्त्यामयान् वहून् ॥ शोथपार्य्द्वामयसीद्दकुष्ठगुल्मोदरज्वरान् । दर्यडकालसकाध्मानग्रहरूयशॉगटांस्तथा ॥ १६॥

न तु सम्रहणिनत्यादौ — पूर्वमिति विशेषणेनीत्तरकालमामातिमारिणेऽपि श्रितिनस्त्तवहुदोपतया द्वीत्यभातेने सम्रहण देयमिति दर्शयित । श्रतपत्र वद्द्यति द्वीणधातुवलात्तरस्यति । श्रन्य तु पूर्वं सम्रहण न देयमिति वचनेन प्रधानमम्बद्धा-शाल्मलकुटजलगादिसम्रहण न देयमिति वोधयित , मुस्तोदीच्यादि तु पाचनमहण्त्र यत्, पूर्वमिति देयमेवेत्याहु ॥ १६ ॥

्र चीणघातुवलार्त्तस्य वहुदोषाऽितितस्रितः। श्रामोऽिष स्तम्मनीयः स्यात् पाचनान्मरण् मवेत् ॥१७॥ अवस्थायामामेऽिष समहण देयमित्याह चीणत्यादि—पाचनादिति केवल-पाचनात्, पाचनन्तम्भनन्तु हितमेव ॥ १७ ॥

्रस्तोकं स्तोकं विवद्धं वा सग्नुलं योऽतिसार्थ्यते ।

श्रमयापिष्पलीकल्कैः सुखोष्णैस्तं विरेचयत् ॥ १८ ॥

विरेचनावस्थामाह स्तोकीमत्यादि—सुशुतन्य । अभयापिष्पकीकल्कस्य
सुखोष्णता कद्रभ्णयोगेन श्रेया ॥ १८ ॥

#### घान्यपञ्चकम्---

घान्यकं नागरं मुस्तं वालकं विल्वमेव च।

श्रामग्रलविवन्धमं पाचनं विह्नदीपनम् ॥

इदं धान्यचतुष्कं स्यात् पित्ते ग्रुगर्ठी विना पुनः ॥ १६॥

धान्यकमित्यादि—अय योग सामिषित्ते बोध्य । यदुक्तमायुर्वेदसारे " विल्विविश्व-धनोदीच्य-धान्यके कंथित जलम् । सामापित्तातिसारप्त दीपन धान्यपञ्चकम् । " धान्यपञ्चक यदुक्त तत् शुग्रठोन्यतिरेकेश कर्त्तन्यमित्येतदर्धमाद्व इद धान्यचतुष्क स्यादित्यादि । भोजेऽप्युक्त " धान्यक वालक मुक्तं विल्व पित्ते प्रयोजितम् । श्रामश्र्लिविबन्धम् पाचन विद्विदीपनम् ' इति । तथान्यश्राप्युक्त ' धान्यक वालक मुस्त विल्व पित्ते तु दीपनम् । श्रामश्र्लिविबन्धम् पाचन नागरान्वितम् ' इति ॥ १६ ॥

पिष्पली नागरं धान्यं भूतीकश्चाभयां वचाम्।
्रहांवेरभद्रमुस्तानि विल्वं नागरधान्यकम् ॥
पृश्लिपणीं श्वदंष्ट्रा च समङ्गा कएटकारिका।
तिस्रः प्रमथ्या विहिताः श्लोकार्द्धरितसारिणाम् ॥
कफे पित्ते च वाते च क्रमोदेताः प्रकीर्तिताः।
संज्ञा प्रमथ्या ज्ञातव्या योगे पाचनदीपने ॥ २०॥

पिप्पलीमित्यादि — प्रमध्यात्रय चरकस्य । अत्र भूतीक यमानी, सद्रमुस्त मुस्तकमेव, समङ्गा वराहकान्ता । एतास्तिस्त प्रमध्या यथाक्रम कफपित्तवाते- चित्रि चरकटीकाकृतो व्याचचते । अतस्तमेवार्थं चक्रोऽप्याह कफे पित्ते चेत्यादि । यद्यपि हीवरिमित्यादि द्वितीयो योगो धान्यपञ्चकमेव, तथापि तस्यैव प्रमध्यासज्ञा- विधानार्थं पुनश्चरकवाक्य लिखितम् । न च वाक्य प्रमध्यामध्यपठित हीवेरिमित्यादि- कमेवास्तु, किं धान्यपञ्चकयोगस्य पृथक् कथनेन १ सत्यम्, धान्यपञ्चकसज्ञया हि शास्त्रव्यवहार कर्त्तव्यो यथा धान्यपञ्चकसिद्ध इत्यादि । तथा शुर्यठोरिहतस्य तस्यैव धान्यचतुष्कसज्ञयापि, अत प्तद्विशेषकथनार्थमेव तस्य पृथक् कथनमिति ज्ञेयम् । संज्ञा प्रमध्या इत्यादि — प्रमध्याशब्दो हि वृद्धपरम्परया पाचनदीपन-कषाये वैद्यशास्त्र परिमापितः श्रूयते । यथा विडगकषायः शैखिरिककषायशब्देन वैद्येरुच्यते इति ॥ २०॥

ज्यूषणातिविषाहिड्गुवलासौवर्चलाभयाः।
पीत्वोष्णेनाम्भसा हन्यादामातीसारमुद्धतम्॥ २१॥
प्रथवा पिष्पलीमूलपिष्पलीद्वयचित्रकान्।
सौवर्चलवचाव्योषिद्गुप्रतिविषाभयाः।
पिवेत् श्रेष्मातिसारार्त्तश्चर्णिताश्चोष्णवारिणा॥ २२॥
हरिद्रादि वचादि वा पिवेदामेषु बुद्धिमान्।
खडयूषयवामूषु पिष्पल्यादि प्रयोजयेत्॥ २३॥
ज्यूष्णेलादौ त्रूषणादीना चूर्णम्। श्रथनेत्यादि विश्रकान्त एको योग ।

मीवर्चलेत्यादौ प्रतिविधा भ्रतिविधा । इरिद्रादि-वचादिगयौ मौथुनौ । यदाह इरिद्रा दारुहरिद्रा कलशी कुटजवीजानि मधुकन्चेति ।' ' वचा मुस्ताविधासया भद्रदारु नागरक्चेति ।' खडयूप इत्यादि—पिप्पल्यादिश्च सौश्रुती गयो। ज्वरा-धिकारे चक्रेसैवोक्त ॥ २१—-२३॥

्र तक्षं किपत्थचाद्गेरीमिरचाजाजिचित्रकैः । सुपकः खडयूपोऽयमयं काम्वलिकोऽपरः । दध्यम्लो लवणस्नेहतिलमापसमन्वितः॥ २४ ॥

खडयूपमाह तक्तिमत्यादि—श्रयञ्च यूप 'कर्षार्द वा कणाशुस्त्र्योः कल्कद्रव्यस्य वा पलम् ' इत्यादिना बोध्य । तेन तीच्छवीय्यांणा मिरेचाजाजी- चित्रकाणामल्पमानत्वम्, किप्त्यचाक्षेच्योंस्तु मध्यवीर्यत्वाद् बहुमानत्वम्, तक्रस्य तु प्रस्थमानत्व कल्पनीयम् । यूपयोनित्वाच मुद्रोऽपि देव । तस्यैव दथ्यादि- योगात् काम्बलिकसञ्चामाह दथ्यम्ल इत्यादि । दथ्यम्लेति दथना श्रम्लीकृत ॥२४॥

नागरातिविषामुस्तैरथवा धान्यनागरैः। तृष्णातीसारग्रूलघ्नं पाचनं दीपनं लघु॥ २४॥

नागरादी श्वतमिति शेष । उक्त हि चरके 'नागरातिविषामुस्तकाथ स्यादा-मपाचन ' इति ॥ २४ ॥

> पाठावत्सकवीजानि हरीतक्यो महौपधम्। पतदामसमुत्थानमतीसारं सवेदनम्। कफात्मकं सपितञ्ज वच्चों वधाति च ध्रवम्॥ २६॥

पाठेत्यादि—सुश्रुतस्य । श्र्य योग काथेन चूर्णेन वा श्रेयर् । 'यतोऽय सुश्रुते विशतियोगमध्ये पठित । तदनन्तरं सुश्रुतेनैवोक्त यथा ' प्रयोज्या विशति-थोगा श्रोकार्द्धविहितास्त्वमी । धान्याम्लीप्याम्बुमद्याना पिवेदन्यतमतेन वा निष्काथान् वा पिवेदेपा सुखेाष्यान् सार्धुमाधितान् शतु ॥ २६ ॥

पयस्युतकाथ्य मुस्ता वा विश्वति भद्रकाद्वयाः।

र्वीराविशिष्टं तत् पीतं हन्यादामं सवेदनम्॥ २७॥

पयस्युत्काय्येत्यादौ त्रिगुर्योदक वोध्यम्, यदाह वाग्मटः ' पयस्यु-काथ्य मुस्ता वा विंशति त्रिगुर्योऽम्मि ' इत्यादि । अत्र छागदुग्थमित्याहु-र्षद्धा ॥ २७ ॥ पकोऽसक्तदतीसारो ब्रह्मणीमार्दवाद् यदा । प्रवर्त्तते तदा कार्य्यः चिष्रं सांब्राहिको विधिः॥ २८॥ पक हत्यादि सप्टम्॥ २८॥

पञ्चमूलीवलाविश्वधान्यकोत्पलविल्वजाः। वातातिसारिणे देयास्तक्रेणात्यतमेन वा ॥ २६॥

पञ्चमूलीत्यादौ पन्चमूली स्वल्पा महती वा । धान्यकोत्पलविल्वजा इति विल्वजा विल्

# कञ्चटादिः

कश्चटजम्बूदाडिमश्दद्गाटकपत्रबिल्वहीवेरम् । जलधरनागरसहितं गङ्गामि विगिनीं रुन्ध्यात् ॥ ३०॥ कन्नदेत्यादौ—कन्नदादीना चतुर्णा पत्रम्। नागरान्तैरष्टामि कषाय ॥३०॥

कृत्वालवालं सुदृढं पिष्टैर्वामलकैर्भिषक् ।

प्रार्द्रकस्वरसेनाशु पूरयेन्नाभिमण्डलम् ।
नदीवेगोपमं घोरमतीसारं निरोधयेत् ॥ ३१ ॥

कृत्वेत्यादि स्पष्टम् ॥ ३१ ॥

किरातितक्षकं मुस्तं वत्सकं सरसाञ्जनम्। पित्तातिसाररोगम्नं सत्तौद्रं वेदनापहम्॥ ३२॥

किरातितिककिमित्यादि—अत्र तग्डुलोदकमि वोध्यम् तेन एषा चूर्णं मधुसाहिततग्डुलोदकेन पिवेदित्यर्थ । यदाह वाग्मट 'किरातितिकक मुस्त वत्सक सरसाजनम् । कटकटेरी हीवर विल्वमध्य दुरालमा । तिला मोचरसो लोघ समगा कमलोत्पलम् । नागर धातकीपुष्प दाहिमस्य त्वगुत्पलम् । अर्द्ध-श्लोकै: स्मृता योगा सचौदास्तग्डुलाम्बुना ' इति । चरकेऽप्युक्क 'किरातितिकक मुस्त वत्सक सरसाजनः । विल्व दाग्हरिद्रात्वग् होवर सदुरालमम् । चन्दनञ्च मृशालन्य नागर लोधमुत्पलम् । तिला मोचरसो लोघ समगा कमलोत्पलम् । नागर भातकीपुष्पमुत्पल दाहिमत्वच । कट्फल नागर पाठा जम्म्बस्थि सदुरा-लमा । योगा पहेते सचौद्रास्तरहुलोदकमयुता । पेया पित्तातिसारमा श्लोका-द्धेंस्तु निदर्शिता ' शति । निश्चलस्तु वातेत्यादी क्वाथियेत्वेति रेाप श्त्याह ॥३२॥

पतं वत्सकवीजस्य श्रपियत्वा जलं पिवेत्।
यो रसाशी जयेच्छीद्यं स पैतं जठरामयम्॥ ३३॥
पत्तिमत्यादि—वाग्भटस्य। रसाशी जागलमासरसेन मुझान ॥ ३३॥
मधूकं कट्फलं लोधं दाडिमस्य फलत्वचम्।
पित्तातिसारे मध्वाकं पाययेत् तयहलाम्बुना॥ ३४॥
मध्कमित्यादि—चूर्णविषवा योगोऽयन्॥ ३४॥
कुटजातिविषामुस्तं हरिद्रापिंगिनीद्यम्।
सत्तौद्रशकरं शस्तं पित्तश्रेष्मातिसारिणाम्॥ ३४॥
कुटजत्यादौ हरिद्रादयम्, पांचनीद्रय शालपणिष्ठिभपण्यौ । क्षाथेनायं
योगः॥ ३५॥

कुटजत्वक्फलं मुस्तं काथियत्वा जलं पिवेत्।
श्रतीसारं जयत्याशु शर्करामधुयोजितम्॥ ३६॥
कुटजलित्यादि योगश्य स्पष्टम्॥ १६॥
विव्यच्तास्थिनिर्यृहः पीतः सत्तौद्रशक्तरः।
निद्दन्याच्छर्चतीसारं वैश्वानर इवाहुतिम्॥ ३७॥
विल्वेत्यादि स्यातम्॥ १७॥
पटोलयवधन्याककाथः पेयः सुशीतलः।
शर्करामधुसंयुक्तश्छर्चतीसारनाश्यन ॥ ३८॥
प्रयेलेत्यादि स्थातम्॥ १८॥
प्रियङ्ग्वञ्जनमुस्तार्यं पाययेत् तु यथावलम्।
तृष्णातिसारच्छर्दिमं सत्तौदं तग्रह्णाम्बुना॥ ३६॥
प्रियङ्ग्वञ्जनमुस्तार्यं पाययेत् तु यथावलम्।
तृष्णातिसारच्छर्दिमं सत्तौदं तग्रह्णाम्बुना॥ ३६॥
प्रियङ्ग्वत्यादौ श्रञ्जन रमाञ्जनम्। नृर्णिनभया योगोऽयम्॥ ३६॥
कित्रक्वचामुस्तं दारु सातिविषं समम्।
कर्षकं तग्रह्णतोयेन पियेत् पित्तानिलामयी॥ ४०॥

प्रक्तिंगत्यादौ सातिविषमिति किलगादिविशेषयम् ॥ ४० ॥ कुटजं दाडिमं मुस्तं धातकीवित्ववालकम् । लोधचन्दनपाठाश्च कपायं मधुना पिवेत् ॥ सामे सशुले रक्तेऽपि पिच्छास्रावेषु शस्यते । कुटजादिरिति ख्यातः सर्वातासारनाशनः ॥ ४१ ॥

कुटन दाहिममित्यादौ दाहिमफलवल्कलम् ॥ ४१ ॥
समङ्गातिविषा मुस्तं विश्वं ह्रीवेरधातकी ।
कुटजत्वक्फलं विख्वं काथः सर्वातिसारनुत् ॥ ४२ ॥
ममङ्गत्यादौ समगा वराहकान्ता । काथ इत्यत्र एषामिति शेष ॥ ४२ ॥
दलोत्थः स्वरसः पेयो हिज्जलस्य समाद्धिकः ।
जयत्याममतीसारं काथो वा कुटजत्वचः ॥ ४३ ॥
दलोत्थ इत्यादि सप्ष ॥ ४३ ॥

वटारेहिन्तु सम्पिष्य ऋत्णं तग्रहत्तवारिणा । तत् पिवेत् तक्रसंयुक्तमतीसारक्जापहम् ॥ ४४ ॥ तग्रहत्तजलपिष्टाङ्कोठमूलकर्षार्द्वपानमपहरित । सर्वातिसारग्रहणीरोगसमूहं महाघोरम् ॥ ४४ ॥

वटारोहमित्यादौ आरोहः श्रस्थायो भागः । सर्वातिसारयहर्खात्यत्र सयोगा-देरिप रेफस्य लघुत्वात्र च्छन्दोभगः । यदुक्त 'यदा तीवप्रयत्नेन संयोगादेरगौरवम् । न च्छन्दोभग इत्याहुस्तददोषाय सूरय ' इति ॥ ४४—४५ ॥

> कल्कः कोमलवन्त्रोलदलात् पीतोऽतिसारहा ॥ ४६ ॥ कल्क इत्यादी-कोमलवन्त्रोलदलः वन्त्रोलिकशलयः ॥ ४६ ॥

कुरजत्वक्कृतः काथो घनीभूतः सुरीतिलः। लोहितोऽतिविषायुक्तः सर्वातीसारनुद्भवेत्॥ ४७॥

कुटजत्वक्कृत. काथ इत्यादी घनीभृत इति चतुर्थभागावशिष्ट काथ एव पुनःपाकात् तथा घन कार्य्य यथा चूर्ये प्रविप्ते लेह. स्याद, श्रतएव सुशोभन इत्युक्तम् ॥ ४७॥ 🖊 वदन्त्यत्राष्टमांशेन काथादतिविषारजः।

प्रतिप्यत्वात् पादिकन्तु लेहादिति च नो मितः ॥ ४८ ॥

श्रतिविधाचूर्णं कियेद्विधित्येत्वदर्थमाह वदन्तीत्यादि—चतुर्थमागाविधिष्टकाथोपक्या श्रष्टमारानातिविधाचूर्णं देयमिति वदन्ति वृद्धाः । चकस्तु स्वमतमाह प्रकेप्यत्वादित्यादि—तदितिविधाचूर्णं पादिक चतुर्भागाविधिष्ठकाथोपक्येत्यर्थं कृत इत्याह प्रकेप्यत्वादिति । लेहादिति ल्यव्लोपे पश्चमी, लेह्मुद्दिश्य प्रकेप्यत्वादित्यर्थं । तद्वाहि प्रति । लेहादिति ल्यव्लोपे पश्चमी, लेह्मुद्दिश्य प्रकेप्यत्वादित्यर्थं । तद्वाहि वि वृत्व तो भागो निर्दिष्टो द्रवकल्कयो । तत्रापि पादिक कल्को द्रवाद काय्यो विचानता इति । 'कल्को दृशदि पेषित ' इति हि कल्किक्तकाथम् । श्रत कल्कराव्येन चूर्णस्यापि प्रहण्यम् । द्रवादिति चतुर्भागाविधिष्टा । भतः काथ्यपलचतुष्टयं दत्तस्य शरावचतुष्ययं पादिकिमिति तु न व्याख्याने । द्रवाद पादिक कार्य्यं इत्युक्ते । तत्रापि लेहाकारात् द्रवादिति व्याख्याने कष्टकल्पना स्यात् । श्रतिविषायुक्त इति धनीभृतकाथस्य विशेषण्यम्, तेन काथे धनी-भृते श्रनिविषाचूर्णप्रकेष इत्यर्थ । वृद्धवैद्यास्तु मधुनापि लेह् कारयन्ति साय-समयेऽपि ॥ ४८॥।

#### श्रङ्कोठवटकः

स्त्वार्वद्वोठपाठानां मूलं त्वक् कुटजस्य च ।

 शालमलीशालिनर्यासधातकीलोध्रदाडिमम् ।

 पिष्ट्वाच्चसिमतान् कृत्वा वटकांस्तग्हलाम्बुना ॥

 तेनैव मधुसंयुक्कानेकैकान् प्रातकिथतः ।

 पिवेदत्ययमापन्नो विड्विसर्गेण मानवः ।

 श्रद्घोठवटको नाम्ना सर्वातीसारनाशनः ॥ ४६॥

सदावीत्यादौ दावीं दारुहरिद्रा, श्रङ्कोठ अङ्गोड शीत ख्यातस्तर । तस्य-मूलेमव । उक्त हि हारीने 'पलजाङ्कोठमूलस्य पाठा दावीं व्य तत्समाम् । पिष्ट्वा तप्रहुलतोयेन वटकानचसम्मितान् ' इत्यादि ॥ ४६ ॥

पयस्यर्द्धोदेक च्छागे ह्वीचेरोत्पलनागरैः । पेया रक्तातिसारम्री पृश्चिपगर्या च साधिताः ॥ ५०॥ पगसीत्यादि—चरकस्य। नागरमत्र मुक्त, न तु शुष्ठी, रक्तातिसारे 'श्रजा क्वीरक्रीष्ट्रीधनजलोत्पले ' इति जनुकर्णसवादात् । क्रोष्ट्री पृक्षिपणीं । श्रतपव पृक्षिपपर्यन्त एको योग., श्रन्ये तु पृक्षिपपर्या च नाधिता इति पृथक्पाठ , पृक्षि-पर्णीकाथेन नाधिता इत्यर्थ । तेनाद्धोदकच्छागदुन्थ पृक्षिपणीकाथैर्मिलित्वा पाकः कार्न्थ. । उक्त हि वाग्मटे ' पयस्यद्धोदके छागे हीवेरीत्पलनागरे । पेया रक्ताति-सारक्षी पृक्षिपणीरसान्विता ' इति जवते ॥ ५०॥

> रसाञ्जनं सातिविषं कुटजस्य फलं त्वचम्। धातकीश्टङ्गवेरञ्ज प्रिपवेत् तग्रह्णाम्बुना॥ चौद्रेण युक्तं नुदति रक्षातीसारमुल्वणम्। मन्दं दीपयते चाग्निं श्रूलञ्जापि निवर्त्तयेत्॥ ४१॥

रसाञ्चनमित्यादि — श्रत्र कुटजस्य फल त्वक् च । सुश्रुतेऽप्युक्त 'रसाञ्चनं मातिविष त्वग्वीज कौटज तथा । धातकीं नागरचैव पाययेत् तय्हुलाम्बुना । सग्रद्भ रक्षजं हन्ति योगो मधुसमन्वितः ' इति ॥ ५१ ॥

विडद्गातिविपा मुस्तं दारु पाठा कलिङ्गकम्।
मरिचेन समायुक्तं शोथातीसारनाशनम्॥ ४२॥
विडद्गेत्यादि—अत्र मरिचत्य प्रचेप्यत्विमत्याहु.।

# वत्सकादिः

सवत्सकः सातिविषः सवित्वः
सोदीच्यमुस्तश्च कृतः कषायः।
सामे सग्नले सह शोणिते च
चिरप्रवृत्तेऽपि हितोऽतिसारे ॥ ४३॥ 🖵

वत्सकादी वत्मक कुटज.। तस्य त्विगिति चन्द्रकलाटीकाकारः वैद्यप्रसार-करच। अन्ये तु 'विल्वशत्रुयवाम्मोदवालकातिविषाकृतः। कषायो इन्त्यतीसार साम पित्तसमुद्भवन् 'इति जुश्रुतसवादात् फलमेवेत्यादुः। किन्तु प्रायो व्यवहारस्त्वचा, फलेनापि ज्वरे रक्षप्रावल्ये च। यदुक्त 'कुटज. कफवातास्कृत्वग्दोषाशोंऽतिसार-जित्। तद्दीज रक्षपिचातीसारज्वरहर हिमम् 'इति॥ ५३॥

> कषायो मधुना पीतस्त्वचो दाडिमवत्स्रकात्। सद्यो जयेदतीसारं सरक्षं दुर्निवारकम्॥ ४४॥

कपाय इत्यादां—दाडिमात् कोमललक् ॥ ४४ ॥
गुडेन खाद्येद्विएवं रक्कातीसारनाशनम् ।
आमग्रलविवन्धभं कुक्तिरोगविनाशनम् ॥ ४४ ॥

गुंहेनेत्यादि—अत्र गुढिनिल्वयो॰ समभाग , विल्वज विल्वरालाडु , तच पान्तियेनोत्तिवय प्राह्मम् । उत्स्वेदनशेपजलज्ञानुपेयम् ॥ ५५ ॥

> विल्वाव्द्धातकीपाठाश्रुएठीमोचरसाः समाः। पीता रुन्धन्त्यतीसारं गुडतकेण दुर्जयम्॥ ४६॥

षित्वाच्देत्यादि—गुढेन मधुरीकृत तक्र गुटतकम् । पेषणमपि तकेल, श्रायु वेंदसारमवादात् ॥ ५६ ॥

्राह्मकीवद्रीजम्बूप्रियालाम्चार्जुनत्वनः ।

पीताः चीरेण मध्वाद्धाः पृथक् शोणितनाशनाः ॥४७॥

राह्मकीत्यादी—चीरमाज बार्धामत्याहु ॥ ५७॥

जम्ब्वाम्नामलकीनान्तु पह्मवानथ कुट्टयेत् ।

संगृद्धा स्वरसं तेपामजाचीरेण योजयेत् ।

तं पिवेन्मधुना युक्तं रक्तातीसारनाशनम् ॥ ४=॥

जम्बान्नत्यादी स्वरमन्द्यानचीरयो सममाग मधुनोऽपि मात्रा चूणंवदेव,

मात्रा चौद्रश्तादीना स्नेहकाथेषु चूणंवदित्युक्ते ॥ ४=॥

विल्वं छागपयः सिद्धं सितामोचरसान्वितम् । कलिङ्गचूर्णसंयुक्तं रक्तातीसारनशनम् ॥ ४८॥

विल्व श्वागपय निद्धमित्यादि—विल्वरालाट्ट्रत्वेडनयोग्यन छागदुग्धेन किश्चित् पानीयमहितेनोत्तित्वध तत मितादिना सयोज्य लेखन्। अत्र विल्वरालाटु-मापकाष्टक सिताया एकमापक॰, मोचरमकलिक्षयोश्चूर्णं मिलित्वा मापकम् इति इद्वव्यवहार । अजादुग्धमुत्त्वेडनावशिष्टमनुपेयन् ॥ ५६ ॥

ज्येष्ठाम्बुना तग्हुलीयं पीतञ्च ससितामधु । पीत्वा शतावरीकल्कं पयसा जीरभुग् जयेत् । रक्तातिसारी पीत्वा वा तया सिद्धं घृतं नरः ॥ ६०॥ ज्येष्ठाम्बुनेत्यादावपि रक्तातिसारनाशनमिति योज्यम् । ज्येष्ठाम्बु तारदुलाम्बु । त्रग्डुलीयकस्य सुद्रमारिषस्य मूलम् । पीत्वेत्यादि—चरकस्य । वातिपत्तोत्तरे योगोऽयमिति वदन्ति । पयसा पीत्वेत्यन्वय । चीरभुगिति चीरेण भुजान । तयिति रातावर्य्या कल्कस्वरसरूपतया एत पीत्वेत्यन्वय ॥ ६०॥

> कुटजस्य पतं त्राह्यमष्टभागजले शृतम् । तथैव विपचेद् भूयो दाडिमोदकसंयुतम् ॥ यावचैव लसीकामं शृतं तमुपकल्पयेत् । तस्यार्द्धकर्षं तकेण पिवेद्रक्तातिसारवान् ॥ श्रवश्यमरणीयोऽपि मृत्योर्याति न गोचरम् । काथतुल्यं दाडिमाम्बु भागानुक्रौ समं यतः ॥ ६१ ॥

कुटजस्य पलिमत्यादि—कुटजङ्गाल पल १, पा पानीय रा १, रेष पल १। दाडिमफलकल्क पल १, पा पा रा १, रेष पल १। एनत् काथद्वय मिश्रीकृत्य तावत् पक्षच्य, यावत् लसीकार्भ स्यात् ततोऽष्टमापक गृहीत्वा तक्रकर्षद्वयेन सह पात्वन्यसित्यर्थः ॥ ६१ ॥

करकस्तिलानां कृष्णानां शर्कराभागसंयुतः। श्राजेन पयसा पीतः सद्यो रक्तं नियच्छति ॥ ६२॥

कल्कस्तिलानामित्यादि —शर्कराभागसयुत इति शर्कराया भागश्चतुर्थे। तेन शर्करायाश्चत्वारो भागाः, एकस्तिलक्षेति । उक हि जतुकर्ये " कृष्णतिलान् शर्करापादिकान् छागीपयसा " इति । एवं चरके वाग्भटे-ऽपि । यथा " कल्कस्तिलाना कृष्णाना शर्करापञ्चभागिक " इति । शर्कराभाग-मपेस्य पञ्चमो भागस्तिलक्ष्कस्येत्व्र्थं ॥ ६२ ॥

गुद्दाहे प्रपाके वा पटोलमधुकाम्बुना। सेकादिकं प्रशंसन्ति छागेन पयसापि वा। गुद्धंशे प्रकर्त्तव्या चिकित्सा तत्प्रकीर्तिता॥ ६३॥ —

गुददाह तत्यादि—पटोलमधुकाम्बुनेत्यर्द्धश्रतेन । सेकादिकीमत्यत्रादिशन्दात् प्रलेपादिग्रह । चिकित्सा तत्प्रकीर्तितेति गुदभ्रशचिकित्सा, सा च जुद्ररोगे वाच्या ॥ ६३ ॥

श्रवेदनं सुसम्पकं दीप्ताग्नेः सुचिरोत्थितम् । नानावर्णमतीसारं पुटपाकैरुपाचरेत् ॥ ६४ ॥ पुरपाकयोग्यावस्थामाह श्रवेदनियादि—सुश्रुनन्य । श्रवेदनमस्लमन्पराल वा । टल्वणस्तु नानावर्णभित्यनेन मान्निपानिकोऽतिमार पुरपाकन्य विषय इति दिश्तिमित्पाह ॥ ६४ ॥

#### कुटजपुटपाकः

स्निग्धं घनं कुटजवलकमजन्तुजग्धमादाय तत्त्वण्मतीव च पोथयित्वा ।
जम्वूपलाशपुटतगृहलतोयसिक्तं
चद्धं कुशेन च वहिर्घनपङ्गिलसम् ॥
सुस्तिन्नमेतद्वपोड्य रसं गृहीत्वा
कोडेण युक्तमतिसारवते पद्धात् ।
हुम्णात्रपुत्रमतपूजित एप योगः
सर्वातिसारहरणे स्वयमेव राजा ॥
सरसस्य गुरुत्वेन पुटपाकपलं पिवेत् ।
पुटपाकस्य पाकोऽयं वहिरारक्रवर्णता ॥ ६४ ॥

स्तिग्धमिलादि—अजन्तुनग्धमिति न किमिमिर्मिचितम् । पोथित्वा चोद-वित्वा । जन्त्पत्रनिर्मतपुटे वर्ग्डलनोयेन निक्तमिलार्थ । योगोऽय रक्तपिचोत्तर दलाहु ॥ ६५ ॥

### श्योखाकपुटपाकः

त्वक्षिग्रं दीर्घवृन्तस्य काश्मरीपत्रवेष्टितम् । मृदावितं सुकृतमद्गारेप्ववकृतयेत् ॥ स्वित्रसुद्भृत्य निष्पीड्य रसमादाय यत्ननः । शीतीकृतं मधुयुतं पायपेदुद्रामये ॥ ६६ ॥

तक्षिण्डिमित्याहि—कस्यचित् तन्त्रस्य । त्वच पिण्डस्पकत्कन् । दीर्घ-वृत्त रयोणाक । काश्मरी गान्मारी । सुकृतमिति कुशनेष्टेनेन सुप्टु वद्धमित्यर्थ । अवकृत्वयेत् अक्षारेराच्छावयेत् । कृत आवरणे इत्यस्य स्पम् । डहेदित्यन्ये । उद्द-रामयप्रकरणादितत्तारे सुशुते पुनर्य योगोऽन्यथा प्रस्रते, यथा " तक्षिण्ड दीर्घन्तस्य पद्मकेगरससुनम् । काश्मरीपद्मपत्रैक्षावेष्ट्य सुश्चेण त । इत्यम् " शुष तुल्यमेवेति । श्योणाकस्य त्वच पद्मकेगरञ्च ममभाग कृत्वा सिम्पिष्य, त पिग्रङ गाम्मारीपत्रपद्मपत्रयो॰ पुटे नििच्य, स्त्रेणावेष्टय मृत्तिकया चावलिप्य निर्धूमखटि-राद्वारेषु पुटपाकविधिना पक्तवा रसो माह्य इति न्याख्यानयन्ति टीकाकृत । अत्र रयोग्णाकपुटपाके नाग्भटसनादात् मधुस्थाने शर्कराप्रचेपोऽपि वोध्य ॥ ६६ ॥

#### क्रटजलेह:

शतं कुटजमूलस्य चुएणं तोयामेणे पचेत्। काथे पादावशेषेऽसिन् लेहं पूते पुनः पचेत्। सौवर्चलयवज्ञारविडसैन्धविपण्पली-धातकीन्द्रयवाजाजीचूर्णे दक्वा पलद्रयम्॥ लिह्याद्वदरमात्रं तृत् शीतं चौद्रेण संयुतम्। पकापकमतीसारं नानावर्णं संवेदनम्। दुर्वारं त्रहणीरोगं जयेचेव प्रवाहिकाम्॥ ६७॥

शतिमलादि-अर्मणो द्रोण । लेहिमिति लेहाकार यथा मवति तथा पचेत् । पलद्रयमिति मिलित्वा । श्रासन्नपाके चूर्णप्रचेप । यवचारस्थाने गुडचारपाठी न प्रसिद्ध । वदरमात्रमित्यष्टमाषकम् । माषचतुष्टयेन व्यवहार । चौद्रयुक्तमित्युपयोग-काले अनुरूप मधु दस्वा उपयोज्यम् ॥ ६७ ॥

कुटजाष्टकः

तुलामथाद्री गिरिमक्षिकायाः

संजुद्य पक्त्वा रसमाददीत ।

तिसन् सुपूते पलसम्मितानि

ऋच्णानि पिष्ट्वा सह शाल्मलेन ॥

पाठां समङ्गातिविषां समुस्तां

विल्वञ्च पुष्पाणि च धातकीनाम्।

प्रक्तिप्य भूयो विपचेत्तु ताव-

द्वीप्रतेपः खरसस्तु यावत्। पीतस्त्वसौ कालविदा जलेन

मण्डेन वाजापयसाथवापि ।

निहन्ति सर्वन्त्वतिसारमुत्रं
कृष्णं सितं लोहितपीतकं वा ॥
होपं त्रहण्यां विविधञ्च रक्षं
ग्रलं तथाशांसि सशोणितानि ।
ग्रस्वरञ्जेवमसाध्यरूपं
निहन्त्यवश्यं कुटजाप्रकोऽयम् ॥
तुलाद्रव्ये जलद्रोणो
द्रोणे द्रव्यतुला मता ॥ ६८ ॥

तुलामित्यादि—तुलाद्रव्ये जलद्रोण इति वद्दयति । रमध पादावशिष्ट एवोत्सर्गसिद्ध । पलसम्मितानीति प्रत्येक, द्रव्यप्रधानत्वाकिर्देशस्य । समद्रा वराइकान्ता । शाल्मलेनेति शाल्मलीवेष्टकेन । अत्र केचित् चूर्णं दत्वेव पांक , "प्रक्षिप्य
भूयो विपचेत् " इति वचनात् प्रचाराच्चेत्याष्ट्रः । अन्ये तु तस्मिन् सुपूते भूयः
पचेत्, ततो मनाक् दर्वाप्रलेपनावस्थाया शाल्मलीवेष्टकादिचुर्णं प्रक्षिप्य, ततो रस
इति मोज्यम् । प्रतेन "प्रायो न पाकरचूर्णांनां सूरिचूर्णस्य ये।गत " इत्यपि वचनमनुगृहीत भवतीत्याद्ध । व्यवहारद्यानेनेवेति । जलेनेति शोतलजलेनाग्निमान्यं,
मर्येटन वस्तिद्वष्टी, छागीद्रयेन रसे ॥ ६०॥

## **प**डड्रघृंतम्

चत्सकस्य च वीजानि दार्व्याध्य त्वच उत्तमाः। पिप्पली श्टङ्गवेरञ्च लाज्ञा कटुकरोहिणी॥ पड्भिरेभिर्घृतं सिद्धं पेयं मएडावचारितम्। श्रतीसारं जयेच्छीयं त्रिद्येपमिष दारुणम्॥ ६६॥

पढक्क होते दार्ब्याक्ष त्वच उत्तमा इति सर्वत्र दार्क्यास्तवच एव प्राधा उत्तम-त्वात् । तस्य दुर्लभत्वात् अत्र काष्ट्रमेव गृद्यते । पद्भिरिति पद यथालाभ-अह्यानिपेषार्थम् । एभि कल्कैत्र्याचतुर्गुत्यमेव जल देयम् । इदमेव एत कुटजत्वचा सप्ताक्ष भवति, तद्कक वैद्यप्रदीपे 'मयहेन पेय नत्निपं मप्ताक्ष कुटजत्वचा' इति ॥ इ.ह.॥

# चीरिद्रुमाद्यं घृतम् चीरिद्रुमाभीरुरसे विपकं तज्जैश्च कल्कैः पयसा च सर्पिः। सितोपलार्द्धं मधुपाद्युक्तं रक्तातिसारं शमयत्युद्दीर्णम्॥ ७०॥

चीरिद्रुमेलादौ—चीरियो हुमा वटोडुम्बरादय । एषामन्यतमस्य समुदि-तस्य वा काथ.। शतावरीरसध्य प्रतापेचया मिलित्वा त्रिगुणः। कल्कोऽप्येषामेव। पयध्य लेहसमन्। प्रतमपेच्य च सिताया अर्ड षोडशपलमित्यर्थ । मधुनोऽपि ष्रतमपेच्यैव पादिकत्व क्षेयम्॥ ७०॥

जीर्गे उमृतोपमं चीरमतीसारे विशेषतः ।
छागं तद्भेषजैः सिद्धं देयं वा वारिसाधितम् ॥ ७१ ॥
चीरपानविषयमाह जीर्थं इत्यादि—तद्भेषजैरिति श्रीतसारहन्त्रभेषजै ।
देय वा वारिसाधितमिति केवलेन त्रिग्रेथेन जलेन साधितमित्यर्थः । उक्त हि
सुश्रुते 'यथामृतं तथा चीरमतीसारेषु पूजितम् । चिरोत्थितेषु तत् पेयमपा भागैस्विमि शृतम्'॥ ७१ ॥

बार्ल बिल्वं गुडं तैंलं पिष्पली विश्वभेषज्ञम् ।
लिद्याद्वाते प्रतिहते सम्भूले सप्रवाहिके ॥ ७२ ॥
वालिवल्विमिलादि —चरकस्य । वाते प्रतिहत इति विवद्धवाते ॥ ७२ ॥
प्रयसा पिष्पलीकल्कः पीतो वा मरिचोद्भवः ।
ज्यहात् प्रवाहिकां हन्ति चिरकालानुवन्धिनीम् ॥७३॥ —
प्रयसेत्यादि —दुग्ध पल१, पिष्पली माष ४, श्रथवा मरिचनूर्ण सार २,
एव व्यवहरन्ति । सविवन्धाया प्रवाहिकायामय योग ॥ ७३॥

कत्कः स्याद्वालिबिल्वानां तिलकत्कश्च तत्समः।
द्धः सराम्लः स्नेहाट्यः खडो हन्यात् प्रवाहिकाम्॥७४॥
कल्क स्यादित्यादि—चरकसः। श्रत्र केहाट्यता तिलदिषसरयोगात्।
खढ इत्यस्यैव योगस्य सज्ञा। चरके खहस्याने सब इति पाठान्तरम्॥ ७४॥

विल्वोपणं गुडं लोधं तैलं लिह्यात् प्रवाहरें। ॥ ७४ ॥ विल्वोपणेलादो विल्व विल्वशलाड , ऊपण मिरचम् । यदुक्त 'बिन्वपेशी गुड लोध तेल मिरचयोजिनम्' इति । नेलेन लेह ॥ ७५ ॥

्रद्धा ससारेण समाज्ञिकेण भुज्जीत निश्चारकपीडितस्तु । सुतप्तकुण्यकथितेन वापि ज्ञीरेण शीतेन मधुप्तुतेन॥ ७६॥

दन्नेत्यादि—सुयुतस्य । ममारेख अनुद्धृतनवनीतेन । निश्चारक प्रवाहिका, यदाह परारार — 'निर्वाहयेत् नफेन छ पुरीष यो मुहुर्मुहु । प्रवाहिकेति मा स्थाता केश्चित्रिश्चारकरच म ' इति । सुतप्तकुष्यक्षथितेनेति स्रत्यन्तनप्तसुवर्णरजते-नर्लोहप्रचेपात् कथितेन । अन्ये तु भगटिन रूप्यादि कुष्यमाच छते । केचितु कुष्यस्थाने कूपं पठिन्त, न्याच चते च कूप पाषाणभेदो दिविणापथे स्थान । ग्रह्मनाभ्याकृतिरिति ॥ ७६॥

दीप्ताञ्जिनिंपुरीपो यः सार्थ्यते फेनिलं शकृत्।
स पिवेत् फाणितं ग्रुएठीदधितैनपयोघृतम्॥ ७७॥
शोथं ग्र्लं ज्वरं तृप्णां कासं श्वासमरोचकम्।
छुर्दि मूच्छ्रीञ्च हिक्काञ्च दृष्ट्वातीसारिणं त्यजेत्।
वहुमेही नरो यस्तु भिन्नविद्को न जीवति॥ ७८॥
स्नानाभ्यद्गावगाहांश्च गुरुक्तिग्धातिभोजनम्।
वयायाममग्निसन्तापमतीसारी विवर्जयेत्॥ ७६॥
इत्यतीसारिचिकित्सा।

दीप्ताप्तिरिति-सुश्रुतस्य । धनत्मर्वमालोक्य पेयस ॥ ७७--७६ ॥ इति सनीमारिचिकित्साविद्दनि ।

# अथ ग्रहणीचिकित्सा ।

प्रदृशीमाश्रितं दोपमजीर्णवदुपाचरेत्।
 श्रतीसारोक्षविधिना तस्यामञ्ज विपाचयेत्॥१॥

अहर्यतीमारयो परत्पर कार्य्यकान्समावमम्बन्धोऽस्तीत्मनतर अहस्याचि-कितिमतमुच्यते अहस्यामाशिनमित्यादि—वाग्मटस्य । अहस्या अग्न्याधाननाही, यदुक्तम् 'अग्न्यधिष्ठानमञ्जस्य अहस्याद् अहस्या मता' इति । अर्जार्यबदुपाचरेदिति, आमाधजीर्येषु यथा वमनाष्टुपचारो दीपनपाचनव्चौषधम्, तथेत्यर्थ । अतीसारो-क्राविधिनेति लङ्गनतम्बन्नपाचनादिना ॥ १॥

शरीरानुगते सामे रसे लङ्घनपाचनम्। विश्रद्धामाशयायासौ पश्चकोलादिभिर्युतम्। दद्यात् पेयादि लघ्वत्रं पुनर्योगांश्च दीपृनान्॥२॥

शरीरानुगत इत्यादि—चरकस्य। शरीरानुगते शरीरच्यापके। सामे रस इति प्रामशब्दोऽत्र भावप्रधान , तेन आमतासहितेऽपक इत्यर्थ । रस इत्याहाररसे। विशुद्धामाशयायेति—वमनविरेचनलङ्गनैर्यथायोग्यतया निर्हतामदोषाय॥ २॥

## क्रिपत्थवित्वचाङ्गेरीतऋदाडिमसाधिता । पाचनी त्राहिणी पेया सवाते पाञ्चमूलिकी ॥ ३ ॥

कपित्थेत्यादि—चरकस्य । कपित्थानिल्वयो फलम्; दाडिमफलस्य तु स्वक्, श्रन्थे तु फलमेनेत्याहु । कपित्थादीना चतुर्णा मृदुद्रव्यत्ने मिलित्वा पल कल्क , तक्तच्च द्रवस्थाने, तच्च तानक्तेषम् यानतः यवाग् सिध्यति । वृद्धवैद्यास्तु श्रत्यम्त-गुरुत्वभिया तक्तजलाभ्या तुल्याभ्या पाकमिच्छन्ति । श्राहिणीत्यन्ता एका यवाग् , एषा च वातकफे । मनाते पाञ्चमूलिकीति दितीया, वातातिसारे स्वल्पपञ्चमूलसिद्धा यवागृहितेति शेष , 'श्रुवाधैर्वाय्वतीमार' इति जतुकर्णमनादात् ॥ ३ ॥

त्रह्यादिोषिणां तकं दीपनं त्राहि लाघवात्।

पथ्यं मधुरपाकित्वात्र च पित्तप्रकोपणम् ॥

कवायोष्णविकाशित्वाद्रौदयाचैव कफे हितम्।

चाते स्वाद्यम्लसान्द्रत्वात् सद्यस्कमविदाहि तत्॥ ४॥

तकस्य ब्रह्मणीदोपसात्म्यतां दोषत्रयहितत्बन्न सहेतुकमाह ब्रह्मीदोषिणा-मिल्यादि—दीपन ग्राहि लाघवादिति पथ्यत्वे हेतु । मधुरपाकित्वान्न च पित्त-प्रकोपणमिति, श्रम्लत्वात् पित्तप्रकोपणे प्राप्ते मधुरपाकितया पित्त न प्रकोपयिति; चकारात्रापि पित्त शमयतीति श्राकृतम्, किंवा 'सर्वमेवान्न प्रायो ह्यस्य विदद्यते' इति उक्तिविदाहजनक यदस्ति, तदपि तक्रप्रयोगे विदाहकृत्र मवति, मधुरपाकित्वात् तकस्य । न तु जाताम्ललेन पित्तप्रकोपनिषेधार्थमय यम्थ , महस्कोपयोगेन पित्त-कारियोऽम्लरसस्याभावात् । भम्लब्र न प्रयोज्य विदाहित्वान्त्र अत्तरवाह् मद्य-स्कमिवदाहीति सयोमिथितमेव तक पञ्यमानावस्थाया विदाहकुन्न भवति । किञ्चि-त्कालस्थित पुनरम्ललाद् विदाहि भवलेव । यत्तु स्वाहम्लमान्द्रलादिलनेन भम्म-रम्लस्थक तदम्लानुरमतया भ्रेयमिलाहु । विकाशिलादिति दोषावृत्तस्रोतोविशोध्यस्त्वादित्यर्थ । रीद्यादित्यत्र वैशद्यादित्यपि पाठान्तरम् , पैन्छिल्यरहितलादिन्त्वर्थ । एतच्च विलेगे जीर्थावस्थायां ग्रह्यया देयमिलाहु ॥ ४॥

ग्रुएटीं समुस्तातिविषां गुडूची पिवेज्जलेन कथितां समांशाम्। मन्दानलत्वे सततामताया-मामाजुवन्धे ग्रह्मीगदे च॥४॥

शुरकीमिलादि—सततामतायामिति सर्वदा भामकोष्ठतायाम् । श्रामानुवन्ध इति श्रामे प्रवर्त्तमान इलाहु । प्रद्यागद्विशेषणानया पुनरामानुवन्ध इति काचित् पाठो दृश्यने ॥ ५ ॥

धान्यकातिविषोदीच्ययमानीमुक्तनागरम् । ८ वलाडिपर्णीविल्बञ्च दद्यादीपनपाचनम् ॥ ६ ॥ धान्यकेलादियोग काथेन ॥ ६ ॥

## चित्रकगुडिका

चित्रकं पिष्पलीमूलं द्वौ ज्ञारौ लवणानि च । व्योपहिंग्वजमोदाञ्च चन्यञ्चैकत्र चूर्णयेत् ॥ गुडिका मातुलुद्गस्य दाडिमाम्लरसेन वा । कृता विपाचयत्यामं दीपयत्याशु चानलम् ॥ सौवर्चलं सैन्घवञ्च विडमौद्भिटमेव च । सामुद्रेण समं पञ्च लवणान्यत्र योजयेत् ॥ ७ ॥

चित्रकमित्यादि—चरकस्य । श्रत्र किपश्चलाविकरणकस्यायात् केचिल्लवण-मिन्क्षन्ति, तत्र, 'पट्टिन पञ्च द्दी हारी मिरच पञ्चकोलकम् । दीप्यक हिंगु-गुडिका वीजपूररेम कृता । कोलदाडिमतीये वा पर पाचनदीपनी ' इति वाग्मट- वचनात् । श्रतएव चक्रीऽप्याह मौर्चचलिमत्यादि—श्रोद्भिद शाम्बरिलवणम् , उत्कारिकेत्यन्ये । सामुद्रक करकचम् । गुडिकेयमार्द्रकरसेनापि वेाध्या श्रायुर्वेदमार-दर्शनात् ॥ ७ ॥

### श्रीफलादिः

श्रीफलशलाद्धकल्को नागरचूर्णेन मिश्रितः सगुडः। ग्रहणीगदमत्युग्रं तक्तभुजा शीलितो जयति ॥ ८ ॥ श्रीफलेत्यादि—नागरचूर्णं बद्धत्वमात्रकृत् । सगुड इति समगुड । अय योगो वाते इत्याहः ॥ ८ ॥

#### पश्चपल्लवम्

जम्यूदाडिमश्टङ्काटपाठाकञ्चटपञ्जवैः । पकं पर्य्युषितं बालवित्वं सगुडनागरम् ।

हन्ति सर्वानतीसारान् ग्रहणीमतिदुस्तराम् ॥ ६॥

जम्बूदाडिमेत्यादि—एषा पश्चवैरास्तरण कृत्वा श्रनुरूपञ्च जल दत्त्वा बाल-विल्वमुत्त्वेद्य पर्य्युषित कार्य्यम् । सगुद्यनागरिमिति विल्वसमो गुड , नागरचूर्यन्तु कहुत्वमात्रकारकम् । रक्ते तु नागर न देयम् । उत्त्वेदनरेषजलमनुपेयमित्याहु-र्वृद्धा ॥ १ ॥

नागरातिविषामुस्ताकाथः स्यादामपाचनः।
चूर्णं हिङ्ग्वष्टकं वातग्रहएयान्तु घृतानि च ॥ १०॥
नागरेत्यादि स्पष्टम् । हिङ्ग्वष्टकमिमान्धे वस्यमायम् ॥ १०॥

# नागराद्यं चूर्णम्

मागरातिविषामुस्तं धातकी सरसाञ्जनम्।
तिवस्तकत्वक्फलं विल्वं पाठां कदुकरोहिणीम्॥
पिवेत् समांशं तच्चूर्ण सत्तौद्रं तएइलाम्बुना।
पैत्तिके ग्रहणीदोषे रक्तं यश्चोपवेश्यते॥
प्रशांस्यथ गुदे शुलं जयेचैव प्रवाहिकाम्।
नागराद्यमिदं चूर्ण कृष्णात्रेयेण पूजितम्॥

शीतकपायमानेन तग्हलोदककरूपना। केऽप्यपृजुणतोयेन प्राहुस्तग्हलभावनम्॥ ११॥

नागराधन्यूंणे सचौद्रमिति मधुप्रचेपयुक्तम् । कृष्णात्रेय पुनर्वेद्य । तण्डुलाम्बुनत्यादि । तण्डुलान्द्यना तण्डुलधावनाम्युना । तश्च तण्डुलाम्द्र कथ
कर्तन्यमिति जिज्ञासाया स्वमत वृन्दमतञ्चोपन्यस्यति शातकपायमानेनेत्यादि—
शातकषायविधानञ्च चुण्णमुण्णाम्मासे न्युष्ट शातमाङ्कश्चिकित्सकाः श्वात जलमत्र तण्डुलमपेन्य पह्णुण याद्मम् । उक्त हि च पह्मि पत्रिश्चतुर्भिर्वा सिललान्वश्चीतफाण्ट्यो श्वात । वृन्दमतमाह केऽपीत्यादि—अन्ये तु द्विगुणमम्द्र तण्डुलेन
मम चिर स्थित तण्डुलाम्द्र वदन्ति । अपरे तु अनियततण्डुलमनियतजलेन
प्रचाल्य जल गृह्नन्ति ॥ ११ ॥

# भूनिम्बाद्यं चूर्णम्

भूनिम्बकदुकाव्योषमुस्तकेन्द्रयवान् समान् । द्वौ चित्रकाद् वत्सकत्वग्मागान् षोडश चूर्णयेत् ॥ गुडशीताम्बुना पीतं त्रहणीदोषगुल्मनुत् । कामलाज्वरपाण्हत्वमहारुव्यतिसारनुत् । गुडयोगाद् गुडाम्बु स्याद् गुडवर्णरसान्वितम् ॥ १२ ॥

भूनिन्वेत्यादि — द्वी चित्रकात तथा वत्मकत्वग्मागान् षोढशेति—प्रथमभागा-पत्तया द्विमागपोडशभागपरिग्रह । गुडशुक्त शीतान्तु गुडशांतान्तु गुडशांत्र गुणवर्णतामाधुर्यापत्तिजनको देग इत्याह गुडयोगादित्यादि । वैद्यप्रसारके तु सर्व-चूर्णसमो गुड शीतलजलेन च पानमित्युक्तम् । व्यवहारस्तु पूर्वेणेव । पैत्तिकग्रह-एयामम्लिपत्तिचिकित्सितमपि वोध्यम् । तद्कक्त वद्यप्रदीपे प्रम्लिपत्तिहित यच पान मोजनभपनन् । पैत्तिके ग्रहणोदोषे तत्मवंसुपकलपयेत् शिन ॥ १२॥

्रश्रहिएयां स्टेष्मदुष्टायां विभितस्य यथाविधि ।
कद्वम्ललवण्त्रारैस्तीव्णैश्चाग्नि विवर्द्धयेत् ॥ १३ ॥
श्रह्ण्यामिलादि स्वध्न् ॥ १३ ॥
समूलां पिष्पलीं चारौ द्वौ पञ्चलवणानि च ।
आतुलुद्वामयारास्त्राशटीमरिचनागरम् ।
कृत्वा समांशं तच्चूणीं पियेत् प्रातः सुस्नाम्बुना ॥

श्हेष्मिके ग्रह्मादोषे चलवर्णाग्नेवर्द्धनम् । पतेरवाषधेः सिद्धं सिष्टः पेयं समारुते ॥ १४ ॥ सम्लामित्यादि । मातुन्जक्तस्यात्र मूलम् । एतिरिति पिप्पलीम्लादिभि. कल्करूपैः ॥ १४ ॥

#### भन्नातकचारः

भह्नातकं त्रिकटुकं त्रिफला लवणत्रयम्। श्रन्तर्धूमं द्विपलिकं गोपुरीपाशिना दहेत्॥ स स्नारः सर्पिपा पेयो भोज्ये वाप्यवचारितः। हत्पागृहश्रहणीदोपगुल्मोदावर्त्तरहलुनुत्॥ १४॥

महातकिमिलादि—चरकर्य। गोपुरीपाग्निनेति श्रविन्त्यप्रभावाद सयोग-नंस्कारजशकीनामिति। स चार इति भहातकादीनामन्तर्वृमटाहाद् य चारः स एव सर्पिषा पीत इत्सर्थः। मोज्ये व्यक्षने वा स चारो देय ॥ १५॥

र्स्वजायां ग्रह्त्यान्तु सामान्यो विधिरिण्यते ॥ १६ ॥ सर्वजायामिलादि—सामान्यो विधिरिति प्रलेकदोषोक्कचिकित्सामेलकेन विदेशपग्रह्माचिकित्सा कार्य्येलर्थः ॥ १६ ॥

चूर्णं मरिचमहौपघकुटजत्वग्भवं क्रमाद् द्विगुणम्। गुडमिश्रमधितपीतं प्रह्णीदोपापहं ख्यातम्॥ १७॥ चूर्णमित्यादि—गुडमिश्रनकेणालोह्य पीतमिलर्थः॥ १७॥

# पाठाद्यं चूर्णम्

पाठावित्वानलन्योपजम्बूदािडमधातकी ।
कडुकाितिविपामुस्तदावींभूिनम्ववत्सकैः ॥
सर्वेरतैः समं चूर्णं कौटजं तएडलाम्बुना ।
सन्तौद्रश्च पिवेच्छिदिंज्वरातीसारग्रलवान् ।
तुद्दाहग्रहणीदोपारोचकानलसादिजित् ॥ १८॥
पाठािदचूर्णे वन्कुलािस, पत्तसाहचर्यात् दािडमफलस्यािप गीजन् ।

बत्तक इन्द्रववः ॥११=॥

# कपित्थाष्टकचूर्णम् ।

यमानीपिष्पलीमूलचातुर्जातकनागरैः।
मरिचाग्निजलाजाजीधान्यसीवर्चलैः समैः॥
वृत्ताम्लंधातकीकृष्णाविस्वदाडिमतिन्दुकैः।
त्रिगुणैः पड्गुणसितैः कपित्थाएगुणै कृतः॥
चृणौं ऽतिसारम्रहणीत्त्रयगुरुमगलामयान्।

मासं श्वासार्शन हिकां किपत्थाप्रमिदं जयेत् ॥ १६॥ यमानीत्यादि— अय योगो नाग्मेट अतीसार्शनिकित्तिते लिखित. । अग्नि- श्वित्रक , जल नालकम् । स्मेरिति नममागं । वृत्ताम्ल महाईकम् । त्रिगुखैरिति एकभागोपेन्नया वृत्ताम्लाटीन पर्णा प्रत्यक त्रिगुखल्नम् । पर्गुखिरिति एकभागोपेन्नया वृत्ताम्लाटीन पर्णा प्रत्यक त्रिगुखल्नम् । पर्गुखिरिति किपार्थाप्रपुर्णे कृत इति निताकित्ययोगिप पर्गुखाष्टकगुण्यत्वे एकगुणोपेन्नयेन, प्रते कृतचूणं इति योज्य । अरुणस्तु नाग्मटरीकाया पर्गुखितिरिति पद वृत्ताम्लादिन्तिन्तानां निरेषणा व्याख्याय मिलितवृत्ताम्लादिद्रव्यपर्कापेन्नया सितायाः पर्गुखल्कमाह । तथा मिति सितामागानां शतमष्टाधिक भवति । अन्ये तु पर्भुखितिक कापित्थाष्टगुणे इति पठित्ति, व्याख्यानयन्ति च— एकभागोपेन्नया कपित्थ-स्वाष्टगुण्यत्मम् , अष्टगुणकितिप्रयोपेन्नया च निताया पर्गुखल्निति, तथा मिति सिताया अष्टचलारिग्रद्वागा मनन्तीति । अपरे तु पर्गुखन्तिते, कपित्थाष्टगुणीक्त इति चृणविरोपण कृत्वा ममुदितचूणंपेन्नया सिताकपित्ययो पर्गुणाष्टगुणान्त्रयान्ति । एतन्मतत्रयमपि न व्यवहारसिद्धम् , शर्वराकपित्थयोरतिनदृत्वा दिति । तसादिकमागापेन्नयेन पर्गुखाष्टगुण्यत्विति । कपित्थमागापिन्नयादस्य कपित्थाह्य इति सञ्चा ॥ १६॥

## दाडिमाष्टकः ।

कर्षोनिमता तुगाचीरी चातुर्जातं डिकार्षिकम् ॥
यमानीधान्यकाजाजीप्रन्थिव्यापं पलांशिकम् ॥
पलानि दाडिमाद्यौ सितायाश्चैकतः कृतः ।
गुणैः कपित्थाप्रकवच्चूणेंऽयं दाडिमाप्टकः ॥ २०॥
कर्षोनिमतिति—वाग्भरस । तुगाचीरी वशलीचना, चातुर्जात लगेलापत्रकेरात्म् । द्विकार्षिकमिति प्रत्येक, निर्देशस्य द्रव्यप्रधानलांष् । एव यमान्या-

दिकमपि प्रत्येक पलाशिकम् । यन्थिक पिप्पलीमूलम्, दाहिमस्यात्र फल " फलन्तु दाहिमादीनान् '' इत्युक्ते । एवमन्यत्रापि । चकाराल् सिनाया अपि अष्टी पलानि ॥ २ ।।

# वात्तीकुगुडिका

चतुष्पलं सुधाकाराडात् विपलं लवरात्रयात्। वार्ताकुकुडवश्चार्काद्यो द्वे चित्रकात् पले। द्रम्था रसेन वार्त्ताकोर्गुडिका भोजनेत्तराः। सुक्का सुक्कं पचन्त्याशु कासभ्वासार्शसां हिता। विस्चिकाप्रतिश्यायहद्रोगद्वाश्चं ता मताः॥ २१॥

चतुष्पलिमलादि—वाग्मटस्य । श्रिपल लवणत्रयादिति मिलिता, निर्देशस्य मानप्रधानत्वात् । त्रिफला लवणानि चेति ये पठिन्ति, ते त्रिफलालवणैमिलित्वा चतुष्पल वटन्ति पूर्वोक्तचतुष्पलिमत्यस्यापि सम्बन्धात् । लवणान्यविशेषात् पन्नै-वेत्याहु. । वार्चाकुकुडव इति शुष्कवार्चाकुपलचतुष्ट्य, व्यवहारात् । श्रकीदिति श्रक्तमूलात् । दग्ध्वा रसेन वार्चोकोरिति श्रन्तर्ध्म दग्ध्वा चारिकृत्य वार्ताकुरसेन गुडिका. कार्य्या इत्यर्थ. । दग्धीन वार्चाकुरम इति च पाठ. । मोजनोत्तरा इति माजनमुत्तर पश्चात्कालीन यामा तथा । किंवा मोजनादुत्तरा । मुक्ता पचन्तीत्यत्र मुक्त मुक्तिमत्यिष पाठ ॥ २१॥

## अष्टपलं घृतम्

ज्यूपण्त्रिफलाकल्के विल्वमात्रे गुडात् पले । सर्पिषोऽप्रपत्तं पक्त्वा मात्रां मन्दानलः पिवेत् ॥ २२ ॥

त्र्यूपणेलादां — विल्वमात्र इति पड्भिभिलित्वा पलमात्रे, करकैस्य पादिक-त्वाद् । चतुर्गुणजलेनाष्ट्रपलष्टनस्यात्र पाक । इत्थमेव फलदानस्यस्य भवतीति महर्षिवचनादुन्नीयते । मात्रामिति श्रमिवलानुरूपपरिमाणम् ॥ २२ ॥

# विन्वगर्भघृतम्

मस्रस्य कपायेण विल्वगर्भ पचेद् घृतम् । हन्ति कुच्यामयान् सर्वान् ग्रहणीपाएडकर्मलाः । केवलं त्रीहिपाएयङ्गकांधो च्युष्टस्तु दोषलः ॥ २३॥

ļ

मस्र खेलादि—मस्रस्य काथोऽलन्तिशिषणोष्टलक बद्ध्वा कार्य । एव मापकुलत्यादीनामि । बिल्वगर्ममिति बिल्वशलादुक्त्कम् । धृतमत्र प्रश्यमानमेव । त्रीष्टिमासकाथस्य तदह कार्य्यतामाह केवलत्यादि—जन्त्वङ्ग छागादिमासम् । केवलमिति पाठे केवल समग्रयथा स्यात् तथा न्युष्टो रात्रिन्युषितो दोपल , यावता कालेन व्यम्लोमवित म एव दोषल इत्यं । केवलमीष्टिजन्त्वङ्गपाठे तु द्रव्यान्तर-स्युक्तमीक्षादिकाथस्य न दोषलत्वमित्याहु । तत्तु न व्यवहारसिद्धम् , अतएव वृन्दे " त्रीष्टिप्राययञ्चो काथ व्युषित दोषल मतम् " इत्येवोक्तम् । व्युष्टिति पदिसिद्धम्तु न्युष्टादिम्योऽण् इति स्वनिर्देशात् ॥ २३॥

## शुर्येशवृतम्

विश्वौषधस्य गर्भेण दशमूलजले श्टतम् । घृतं निद्दन्याच्छ्लयथुं ग्रद्दणीसामतामयम् ॥ २४॥

विश्वीपथस्थेत्यादि — ग्रह्णीसामतामयमिति ग्रह्णीनाड्याश्रितो य सामता-रूप श्रामयो रोगस्तमित्यर्थ ॥ २४॥

#### नागरघृतम्

घृतं नागरकलेकन सिन्धं वातानुलोमनम् । प्रहृणीपारहरोगम्नं प्रीहकासज्वरापदृम् ॥ २४ ॥ प्रतमित्यादौ जल चुतुर्गुणम् ॥ २४ ॥

# चित्रकष्टृतम्

चित्रककाथकल्काभ्यां प्रहणीघ्नं श्टतं हवि । गुरुमशोथोदरप्तीहग्रलाशोंघ्नं प्रदीपनम् ॥ २६॥ चित्रकश्त सप्टम् ॥ २६॥

# बिन्वादिघृतम्

विल्वाग्निचन्यार्द्रकश्टङ्गवेर-काथेन कल्केन च सिखमाल्यम् । सच्छागदुग्धं श्रह्मणीगदोत्थ-ग्रोथाग्निमान्द्याचित्रद्वरिष्टम् ॥२०॥ विल्वानीत्यादी—आईकेति शृङ्गवेरिवशेषण, तेन शुष्कस्य शुण्ठीरूपस्य निराम । विल्वादीना काथिस्त्रगुण, चतुर्गुण इत्येके । छागचीर स्नेहसमम् ॥२७॥

# चाङ्गेरीघृतम्

नागरं पिष्पलीमूलं चित्रको हस्तिपिष्पली।
श्वदंष्ट्रापिष्पली धान्यं बिल्वं पाठा यमानिका॥
चाद्गेरीस्वरसे सिंपः कल्कैरेतैर्विपाचितम्।
चतुर्गुणेन दभा च तद् घृतं कफवातनुत्॥
श्रशांसि श्रहणीदोषं मूत्रकृष्कं प्रवाहिकाम्।
गुदश्रशार्तिमानादं घृतमेतद्वथपोहति॥ २८॥

नागरिमत्यादि—अत्र हस्तिपिप्पली चवी, जतूकर्णमनादात् । तद् यथा
" दिषधान्यविल्वपाठायमानिकापञ्चकालगोद्धरकै । चाहेरीस्वरसे सिर्पेग्रंदिन सृतिमूत्राचितुद् ग्राहि " इति । द्रव्यावल्याञ्च हस्तिपिप्पली चवीपर्यायत्वेन दृश्यते
" चिवका कोलवल्ली च हस्तिपिप्पल्यपीष्यते " इति । विल्वस्थाने विषापाठोऽपि
जतूकर्णसनादादेव न भवति । चाहेरीस्वरसोऽप्यत्र चतुर्गुर्ण । चतुर्गुर्णेन दक्षा
चलत्र चकारस्य ममुचयार्थत्वात्, आयुर्वेदसारेऽपि " चतुर्गुर्णेन दक्षा च चाहेरीस्वरसेन च " इत्युक्तम् । अन्ये तु " स्वरसे चीरवद्विधि " इति वचनात्
चाहेरीन्वरमश्च लेहसम इत्याहु , व्यवहारस्तु पूर्वव्याख्ययेव ॥ २८ ॥

# मरिचाद्यं घृतम्

मरिचं पिष्पलीमूलं नागरं पिष्पली तथा।
मल्लातकं यमानी च विडकं हस्तिपिष्पली ॥
हिङ्गु सौवर्चलञ्चेव विडसैन्धवचव्यथ।
सामुद्रं सयवत्तारं चित्रको वचया सह ॥
एतैरईपलैभीगैष्ट्रतप्रस्थं विपाचयेत्।
दशमूलीरसे सिद्धं पयसा द्विगुणेन च ॥
मन्दाग्नीनां हितं सिद्धं ग्रहणीदोषनाशनम्।
विष्टम्ममामं दौर्वल्यं सीहानमपक्षिति॥
कासं श्वासं न्यञ्चेव दुर्नामसभगन्द्रम्।

कफजान् हन्ति रोगांश्च वातजान् क्रिमिसम्भवान् । तान् सर्वान् नाशयत्याशु शुष्कं दार्वनलो यथा॥ २६॥

मरिचाच्छते विडङ्गीनभवचवीति समाहारद्रन्द्रः । किंवा विडक्षमन्धवसुका चवीति मध्यपदलोपी समाम । दिगुरोपन चिति चकाराहरामूलीकाथोऽपि दिगुरा । श्रन्य तु दशमूलीग्मश्चतुगुण इत्याहु , व्यवहारस्तु पूर्वेणैव ॥ २६ ॥

# महापट्पलकं घृतम्

सौवर्चलं पञ्चकोलं सैन्धवं द्वुपां वचाम्। श्रजमोदां यवचारं हिड्गु जीरकमौद्भिद्म् ॥ कृष्णाजाजीसभृतीकं कल्कीकृत्य पलाईकम्। ब्राईकस्य रसं चुकं चीरं मस्वम्लकाक्षिकम् ॥ दशमूलकपायेण घृतप्रस्थं विपाचयेत्। भक्तेन सह दातव्यं निर्भक्तं वा विचच्णे ॥ क्रिमिसीहोदराजीर्ग्जवरकुष्टपवाहिकाम्। वातरोगान् कफव्याधीन् इन्याच्छूलमरोचकम्॥ पारहरोगं चयं कासं दौर्वल्यं ग्रह्णीगदम्। महापद्पलकं नाम चृक्तमिन्द्राशनिर्यथा ॥ ३०॥

मौवर्चलेत्यादी-पञ्चकोल मिलितार्द्धपल, कल्कस्य पट्पलरूपात् । इतुपा स्वनामख्याता, कृष्णाजाजी कृष्णजीरकम्, मूतीक यमानी । सीवर्चलादीना प्रत्येकमर्द्रपलम् । अत्र वचिति न पाठ किन्निह विडिमित्येव, चन्द्राटादी दृष्टत्वात् । श्राहकम्बरसादीना पराया द्वायां प्रत्येक स्नेहममत्व ''पन्चप्रमृति यत्र स्य " ब्लुके ॥ ३०॥

् स्वल्पचुक्रम् यन्मस्त्वादि श्रुचौ भागडे सगुडचौद्रकाञ्जिकम् । धान्यराशो त्रिरात्रस्थं शुक्तं चुकं तदुच्यते **।** द्विगुणं गुडमध्वारनालमस्तु क्रमादिह ॥ ३१ ॥

स्वल्पन्तकमाइ यदित्यादि---मस्त्वाडीत्यस्य विशेषण सगुढेत्यादि । आदि-शन्दाइधि तक्रज्ञ,मस्तुस्थाने यत्, तदपि मस्तुसम याद्यमिति । अन्ये तु श्रादिभृत मन्तु प्रथमे।रिथत मस्त्वित्याहु, । त्रिरात्रस्थमिति ग्रीष्माभिष्रायेख, वर्षादिषु पुन-र्वस्यमाखरूरच्चुक्रवदवस्थापनकालव्यवस्था । श्रम्लत्व यावद्वा भवतीति ॥३१॥

#### बृहच्चुक्रम्

प्रस्थं तरहलतोयतस्तुपजलात प्रस्थत्रयश्चाम्लतः
प्रस्थार्द्धं दिघतोऽम्लमूलकपलान्यष्टौ गुडान्मानिके।
मान्यौ शोधितश्रद्धवेरशकलाद् हे सिन्ध्वजाज्योः पले
हे कृष्णोपणयोर्निशापलयुगं निक्तिप्य भाराडे हहे॥
स्मिन्धे धान्ययवादिराशिनिहितं त्रीन् वासरान् स्थापयेद्
ग्रीष्मे तोयधरात्यये च चतुरो वर्षासु पुष्पागमे।
पद् शितेऽष्टिद्दनान्यतः परिमदं विस्नाव्य सञ्चूर्णयेत्
चातुर्जातपलेन संहितिमदं श्रुक्षञ्च चुकञ्च तत्॥
हन्याद्वातकपामदोषजनितान् नानाविधानामयान्।
दुर्नामानिलगुरुमश्रूलजठरान् हत्वानलं दीपयेत्॥ ३२॥

षृहच्चुक्रमाह प्रस्थमित्यादि — तुपजलादिति सतुषयवक्रतसन्धानात्, तदभावे कााक्षिकात् । अम्लत इति तुषजलस्य दक्षश्च विशेषण्यम् । अम्लमूलक कााक्षिकाध - विसमूलकमित्यादुर्धृद्धा । मानिके इति मानिकाद्वयम्, मानिका पलान्यष्टी, तेन षाटशपलमित्यर्थ । शोधितश्वक्षवेरशकलादिति निस्तुषाईकरूग्वत् । द्वे कृष्णी-पण्योतित कषण् मरिचम् । तोयधरात्यये चेति चकारादनापि त्रीन् वासरान् स्था-पयेत् । शोत इत्यनेन हेमन्तिशिशयोरेव ग्रहण्यम् । विस्रान्येति वस्तपूत कृत्वा चातुर्जातपलेन मिलित्वा पलमात्रेण । सन्त्यूर्णयेत् अवन्यूर्णन कारयदिति ॥ ३२ ॥

# तक्रारिष्टम्

यमान्यामलकं पथ्या मरिचं त्रिपलांशकम्। लवणानि पलांशानि पञ्च चैकत्र चूर्णयेत्॥ तक्रकंसासुतं जातं तकारिष्टं पिवेन्नरः। दीपनं शोथगुरुमांशःकिमिमेहोदरापहम्॥ ३३॥

तक्रारिष्टे त्रिपलाशक तथा पलाशानीत्यपि प्रत्येक श्रेयम् । तक्रस्य कसे आदके श्रास्त कृतसन्धानम् । जातमिति श्रम्लरसतया जातम् ॥ ३३ ॥

**ऋायामकाञ्जिकम्** वाट्यस्य दद्याद् यवशक्तुकानां पृथक् पृथक् त्वाढकसम्मितञ्ज । मध्यप्रमाणानि च मूलकानि द्याचतु पष्टिसुकिएतानि ॥ द्रोगेऽम्भस प्राच्य घटे सुधौते दद्यादिदं भेपजजातयुक्षम्। चारइय तुम्बुरुवस्तगन्धा-धनीयकं स्पाद्विडसैन्धवञ्ज॥ सौवर्चलं हिङ्गु शिवाटिकाञ्च चव्यञ्च दद्याद् द्विपलप्रमाण्म्। इमानि चान्यानि पलोन्मितानि विजर्जरीकृत्य घटे विपेच ॥ कृष्णामजाजीमुपकुञ्चिकाञ्च नथासुरीकारविचित्रकञ्च । पत्ति स्थिता अयं वलवर्ण देह-वयस्करोऽतीव वलप्रदक्ष ॥ कान् जीवयामीति यत प्रवृत्त-स्तत्काञ्जिकेति प्रवदन्ति तज्ञा । श्रा यामकालाजरेयच मक-मायामकेति प्रवदन्ति चैनम्॥ दकोदरं गुल्ममथं शिहानं हद्रोगमानाहमरोचकञ्च। मन्दाग्नितां कोष्टगतञ्च श्रल-मर्शीविकारान् सभगन्दरांश्च। यातामयानाश्च निहन्ति सर्वान् संसेव्यमानं विधिवन्नराणाम् ॥ ३४ ॥ श्रायामकाशिकं वाट्यस्थेति निस्तुपदरदिलतयवमण्डस्य तथा यवशक्तुकानाञ्च प्रथक् पृथगाडकमम्मितमित्यादकप्रमाणम् । मम्मितमिति भावे क । चतु पृष्टीत्या-कृतिमानेन । मुकल्पितानीति खण्डन्यण्डाकृतानि । सान्येत्यासान्य । तुम्बुरू विगग्दन्यम्, वस्तगन्था फीकान्थी (श्रजगन्था), शिवाटिका वशपत्री (हिंड्युपत्री), कृष्णा पिष्पती, उपकुञ्जिका स्थूलकृष्णजीरक , श्रासुरी राजिका, कारिव सुगन्धि सद्मकृष्णनीरकम् । श्रा यामकालादिति याम प्रहरस्य काल तमवधीकृत्य ॥१४॥

कल्याग्गगुडः '

प्रस्थत्रयेणामलकीरसस्य शुद्धस्य दचाईतुलां गुडस्य । चूर्णांकृतेप्रेन्थिकजीरचव्य-व्योपेभकृष्णाहबुपाजमोदै ॥ विडङ्गसिन्धुत्रिफलायमानीन पाठाश्रिधान्यैश्च पलप्रमाण । दच्या त्रिवृच्चूर्णपलानि चाप्रा-वष्टी च तैलस्य पचेद् यथावत्॥ तं भन्नयेदन्तफलप्रमाण् यथेष्टचेष्टं त्रिसुगन्धियुक्तम्। श्रनेन सर्वे ग्रहणीविकारा सभ्वासकासस्वरभेदशोथा ॥ शाम्यन्ति चायं चिरमन्तराये-हितस्य पुंस्त्वस्य च वृद्धिहेतु । स्त्रीणाञ्च वन्ध्यामयनाशनोऽयं कल्याग्को नाम गुडः प्रदिष्ट ॥ तैले मनाग् भर्जयन्ति त्रिवृदत्र चिकित्सका । श्रत्रोक्तमानसाधर्म्यात् त्रिसुगन्धि पत्तं पृथक् ॥ ३४ ॥ प्रस्थत्रयेखेल्यादि---श्रय योग सुश्रुते कासप्रतिपेधे पठित' । श्रत्र अन्यिक पिप्पलीमूलम्, अनमोदा यमानी अन्त.परिमार्जनत्वाद्, अतो यमान्या माग-

द्रयम् । श्रिगिश्चत्रकः । पलप्रमाणैरिति प्रत्येकम् । निष्टुच्चूर्णं तैले मनाग् भर्ज-नीयम्, भर्जनेन च तस्य मन्द्रवीर्यंत्वाद्रिनिविरेचकत्व न भवति । श्रद्धफलप्रमाण कर्षम्, व्यवहारस्तु चतु पद्ममापकैरिति । त्रिस्चगन्धि त्वगेलापत्रकम् । त्रिष्टुच्चूर्णं-सिहेत एव तैले गुडमामलकीरसगोलित प्रदाय पाकः, सिद्धे च लेष्टे श्रिन्थकादि-चूर्णप्रदेष इति व्यवहारो वंधानाम् । श्रिनेक्षमानमाधर्म्यादिति श्रन्थिकादिचूर्णंस्य प्रत्येक पलमानत्वसुक्तम् तत्माहचर्यादित्यर्थः ॥ ३५ ॥

#### क्षमाग्डगुडकल्याग्वम्

कूष्माएडकानां रूढानां सुस्वित्रं निष्कुलत्वचाम् । सर्पिःप्रस्थे पलशतं ताम्रभारखे शनैः पचेत्॥ पिष्पली पिष्पलीमूलं चित्रको हस्तिपिष्पली ! धान्यकानि विडङ्गानि यमानी मरिचानि च ॥ त्रिफला चाजमोदा च कलिहाजाजिसेन्धवम्। एकैकस्य पलञ्चैव त्रितृदृष्ट्रपलं भवेत्॥ तैलस्य च पलान्यष्टी गुडपञ्चाशदेव तु । प्रस्थैस्त्रिभिः समेतन्तु रसेनामलकस्य तु । यदा दर्वीप्रलेपस्तु तदैनमवतारयेत्॥ यथाशक्ति गुडान् कुर्यात् कर्पकर्पाईमानकान्। श्रनेन विधिना चैव प्रयुक्तस्तु जयेदिमान्॥ प्रसद्य प्रहणीरोगान् कुष्ठान्यशींभगन्दरान्। ज्वरमानाहहृद्रोग गुल्मोद्रविस्चिकाः॥ कामलापागृहरोगाश्च प्रमेहाश्चेव विशतिम्। वातशोणितवीसपीन् ददुचर्महलीमकान्। कफिपत्तानिलान् सर्वान् प्रकढांश्च व्यपोद्दति॥ व्याधित्तीणा वयःत्तीणाः स्त्रीषु त्तीणाश्च ये नराः,। तेषा बुष्यञ्च वत्यञ्च वय स्थापनमेव च। गुडकल्यागुकं नाम वन्ध्यानां गर्भदं परम् ॥ ३६ ॥ कूप्पाएडकानामित्यादि — रूढानामिति मम्यक्पकानाम् मन्यक्पाकश्च सर- त्मरातीतत्वेनेव भवतीति । ताष्ट्रशस्य कृष्मायङस्य खयङखरङीकृतस्य त्यक्तवीज-मश्ररीवल्कलस्य त्वचा कृतास्त्रर्यस्य किञ्चित् पानीय दत्त्वा उत्स्वन्नस्य निष्पीट्य गलितरमस्य पिष्टस्यातेष किञ्चिच्छुष्कस्य पलशत याद्यम्, ततस्तस्य धृतशराव-वतुष्टये तैलस्य चाष्टपले सन्तलन कार्य्यम् । तत आमलकस्वरमस्य दादशशराविण पञ्चाशद्गुटपलान्यालोट्य, तत पूत्वा मन्तलितकुष्मायङादिकमें कृत्य क्रिक्स्यम् । ततो गुटपाकविषया अवतारिते पिष्पल्यादिचूर्णस्य प्रचेष इत्र्यम् क्रिक्स्यमात्री क प्राय क्रांद्रेनेत्याष्टु ॥ ३६ ॥

# रसपर्पटिका

याम्लिपत्ते विधातव्या गुडिका च लुक्किंद्रिः तत्र प्रोक्षविधा गुडौ समानौ रसगन्धकी हैं सम्मर्ध कज्जलाभन्तु कुर्ण्यात् पात्रे दृढाश्रये । नतो वादरविद्वस्थलोहपात्रे द्रवीकृतम् ॥ गोमयोपिर विन्यस्तकद्रलीपत्रपातनात् । कुर्ण्यात् पर्पिटकाकारमस्य रिक्तद्वयं क्रमात् ॥ द्वादशराक्षकां यावत् प्रयोग प्रहारार्द्धतः । तदूद्ध्वं वहुपूगस्य भन्नणं दिवसे पुनः ॥ तृतीय एव मांसाज्यदुग्धाद्यत्र विधीयते ॥ वर्ज्यं विदाहिस्त्रीरम्भामूलं तैलञ्च सार्पपम् । जुद्रमत्स्याम्बुजखगांस्त्यक्त्वोित्रद्वः पयः पिवेत् ॥ ग्रहणीन्तयकुष्ठार्शःशोपाजीर्णविनाशिनी । रसपर्पटिका ख्याता निबद्धा चक्रपाणिना ॥ ३७॥

मिद्धफला रसपर्पटोमाह याम्लेत्यादि—तत्रेति तत्र चुधावत्या भोक्तविधा यो रसगन्धकशुद्धिप्रकारो वक्तव्य , तेन शुद्धावित्यर्थ । नत्र सगन्धक रस दृढाश्रये खल्विशिलाया सम्मर्थ कज्जलाम चूर्ण कुट्यांत । वादरविह्नस्थिति वदरदारुसन्धु- चिताशिस्थ इत्यर्थ । शुद्धपारदक्षरे १, शुद्धगन्धककषे १, पूतृद् द्वय खल्वे तावद्धपेणीय लोहदर्गेद्धन पापाणदर्गेद्धन वा, यावत् कज्जलाम् अवित तिती लिति दृत्विकाया- मेतन्चूर्णं उत्तवा वदरागारोपिर विनयस्य खेळ्कर्रायेद्धन सञ्चाल्य यदा द्वीभूतं सुवित,

तदा श्रार्द्रगोमयिष्ग्टोषिरस्थापितकोमलकदलीपभे दालनीयम्, प्रपरमण्लीपयान्तरेख मम्मीड्य पर्षिटकाकृति कार्यो । राक्तद्रय क्रमादिति प्रथम गुआयुगन, पितिहन-मेकैकवृद्धिते भन्यमिति क्रमादित्यर्थे । पर्णे कृत्वा मम्भन्त्य हिंगुगुभामेका जीग्क-गुजाद्द्यक्र भन्नणीयम् । तत च्या स्थित्वा दन्नादिलग्न प्रमान्य जलचुलुक पातन्यमित्युपदेश्न । प्रहगदंत इति प्रहराद्धंभ्यन्तरे । तद्दर्घ्वमिति प्रहगद्धांद्र्यस्यम् नृतीये दिवंम द्रितं मम्बन्ध ॥ ३७॥

#### ताम्रयोगः

स्थाल्यां सम्मर्च दातव्यौ मापिकौ रसगन्धका।
नखलुएएं तदुपरि तएइलीयं द्विमापिकम् ॥
ततो नैपालताम्रादि विधाय सुकरालितम् ॥
पाश्चना पूर्यदूर्ध्वं सर्वा स्थालीं ततोऽनल ॥
स्थाल्यधो नालिकां यावदेयस्तेन मृतस्य च।
ताम्री ताम्रस्य रक्त्येका त्रिफलाचूर्ण्रिकका ॥
त्रयूपणस्य च रक्त्येका विडहस्य च तन्मधु।
घृतेनालोड्य लेढव्य प्रथमे दिवमे ततः॥
रिक्षवृद्धि प्रतिदिनं कार्या ताम्रादिपु त्रिषु।
स्थरा विडहरिकस्तु यदा भेदो विविद्यतः।
नदा विडहरिकस्तु यदा भेदो विविद्यतः।
वदादशाहं योगवृद्धिस्ततो हासकमोऽप्ययम्
प्रहणीमम्लिपत्तञ्च स्यं ग्रलं च सर्वदा।
नाम्रयोगो जयत्येप चलवणीय्रिवर्द्धनः॥ ३८॥

# इति ग्रह्णीचिकित्सा।

तामयोगमाह म्याल्यामित्यादि—श्रत्नापि रसगन्धकौ जुधावतीगुढिकोकि-विषया शोधित। मार्बा। सुकरालितामिति पिष्टमकसिवधकेन नीरम्भेलिपितामित्यर्थ। पाशुना वाल्लक्या। नालिका घटीमेका यावदनलञ्जाला न्याल्यथे। देयेत्यर्थ। त्रिफलाया मिलिला चूणरिकका एव त्रिकटोरिप। सर्वमिद चूर्ण विडद्वान्त मधुष्टताम्यामालोक्य लेह। विडह्नरिकका पुन स्थिरा न न्यूनाधिकमात्रा रत्यर्थ। यदा पुनः कोष्ठनिवन्धाध्मानादिषु विरेकोऽपेक्तितो भवति, तैदेव पर विडङ्गस्य रिक्तिद्य माह्मित्सर्थ । अस्य च पत्री यथा—रोधितरसगन्धकपमा १, एतद् ह्य कञ्जलीकृत्य दृदन्तनपातिलिकाया स्थाप्यम् । तदुपरि तप्छुलीयकशाकमूलचूर्णस्य माषकद्रयमङ्गुलीह्रयेन गृहीत्वा देयम् । अनन्तरमेतत् सर्व कयटक्वेषयोग्येन नैपालताअपञ्चदशमापकेण कृतताअथा अम्बरोलिरसमावितया ढक्कनीयम् । ढिक्कित्वा पिष्टमक्तिस्क्थकेन ताञ्जिकाया रम्धलेपन कार्य्यम् । तत स्थालोमध्यस्थितायास्ता- त्रिकाया उपि ता स्थालो वाञ्जकया पूर्यित्वा, तद्यो घटिका यावत् ज्वाला देया । एव कृतताअदिक १, मिलितिश्रकलाचूर्णरिक १, तथा मिलितिश्रकडचूर्णरिक १, विडगचूर्णरिक १, पतत् सर्व कृतमधुम्यामालोङ्य लेखम् , शीतलजलमनुपयम् , प्रथमितने । एव द्वादशिदनपर्यम्त रिक्षमेका कृत्वा वृद्धि । वृद्धिवत् हासक्रमोऽपि एवमेव श्रेयम् । रसगन्धकलन्नणञ्च योगरलाकरे यथा—'मुक्ताफलसम क्रिग्ध धन निम्पटल गुरु । चपल चपल शस्त वदन्ति भिषजा वरा 'चपलिमिति रम, द्वितीय चपलिमिति चञ्चलम् । भुक्तिपच्छममच्छायो नवनीतनमप्रम । मस्य कठिन क्रिग्ध अष्ठो गन्धक उच्यते ।' धृतमासरमादीनाञ्चाश्राहारविधिविध्य ।

इति ग्रह्णोचिकित्माविष्टति ।

# अथार्राश्चिकित्सा।

दुर्नाम्नां साधनोपायश्चतुर्धा परिकीर्त्तितः।
भेपज्ञचारशस्त्राश्चिसाध्यत्वादाद्य उच्यते॥
यद्वायोरानुलोम्याय यद्ग्नियलवृद्धये।
श्रुत्तुपानौषधद्रव्यं तत् सेव्यं नित्यमशेसैः॥
श्रुष्कार्शसां प्रलेपादिकिया तीच्णा विधीयने।
स्नाविणां रक्षमालोक्य किया कार्य्यास्वितिकी॥

पूर्वाक्तमगत्मैव ग्रहण्यनन्तरमशिश्चिकित्सितमुच्यते दुर्नाम्नामित्यादि—श्राध इति भेषजोपाय । विस्तरेण वच्चमाणा चिकित्सा सारोद्धारेणाह यद्वायोरि-त्यादि—चरकस्य । श्रशंसैरित्यगोरोगयुकै. । शुष्कार्शमामित्यादि—श्रादिशब्दात् स्वदादीना ग्रहणम् ॥ १ ॥

#### प्रलेपमाह---

्रस्तुक्त्तीरं रजनीयुक्तं लेपाद् दुर्नामनाशनम् । कोपातकीरजोघपीन्निपतन्ति गुदोद्भवाः॥ २॥

लेपादीनाह स्तुक्त्वीरिमत्यादि—स्तुहीत्तारेण हरिद्राचूर्णमाद्रै कृत्वा लेप । उक्त हि वाग्मेट 'स्तुक्त्वीरार्द्रनिशालेप ' इति । कीपातकी घोषक ॥॥॥

श्रर्कत्तीरं सुधात्तीरं तिक्रतुम्व्याश्च पत्नवा । करक्षो वस्तमूत्रञ्च तेपनं श्रेष्ठमर्शसाम् ॥३॥

श्रकेंत्यादी-करअस्य त्वक्, मुशाचीरिमत्यत्र सुधाकाण्डश्रस्के वाग्मटे च दृश्यते ॥ ३ ॥

श्रर्शोद्यी गुदगा वर्त्तिर्गुडघोपाफलोद्भवा। ज्योत्स्निकामूलकल्केन लेपो रक्तार्शसां हित ॥ ४॥

वित्तं फलवित्तं । गुड जलेन द्रवीकृत्य घोषाफलचूर्णं प्रिचिप्य पक्तवा वित्तं कार्य्या । ज्योत्किका घोषक ॥ ४॥

तुम्वीवीजं सोद्भिदन्तु काञ्जीपिष्टं गुडीत्रयम् । श्रशीहरं गुदस्थं स्याद्धि माहिषमश्रतः ॥ ४ ॥ बद्भिदमुत्कारिकालवृष शाम्भरिलवण वा ॥ ४ ॥ महावोधिप्रदेशस्य पथ्या कोपातकीरज । कफेन लेपतो हन्ति लिङ्गवर्त्तिमसंशयम् ॥ ६ ॥

महानोधिप्रदेशस्येति—महानोधिर्मगधे प्रसिद्ध । पथ्या हरीतकी । कफेन क्षेष्मणा, ममुद्रफेनेनेत्यन्ये, उदिधिकफत्नादिति भाव । मुष्टियोगतया पूर्वन्याख्या साध्वी । तिगनिर्तितिगारी ॥ ६ ॥

श्रपमार्गोड् घ्रिजः चारो हरितालेन संयुत । लेपनं लिद्गसम्भूतमशों नाशयति ध्रुवम् ॥ वातातीसारविद्गश्चर्वास्यशींस्युपाचरेत् । उदावर्त्तविधानेन गाढविद्कानि चासकृत् ॥ ७ ॥ श्रपामागेंलादि सप्टम् । वातातीमारविदिति वातातीमारिविक्तिसावत् ॥ ७ ॥ विद्विचन्धे हितं तक्तं यमानीविडसंयुतम्।

वातश्लेष्मार्शसां तकात् परं नास्तीह भेषजम्॥

तत्प्रयोज्यं यथादोषं सस्तोहं रूक्तमेव वा।

न विरोहिन्त गुद्जा पुनस्तकसमाहताः॥ ८॥

विद्विवन्ध इलादि स्पष्टम्। वातश्लेष्मार्शमामिलादि—चरकस्य॥ ८॥

त्वचं चित्रकमृलस्य पिष्ट्वा कुम्मं प्रलेपयेत्।

तकं वा दिध वा तत्र जातमर्शोहरं पिवेत्॥ ६॥

त्वसिल्लादि—तस्वेव। चित्रकमृललच पिष्ट्वा तिलोत्सेषमात्र कुम्मगर्मे लेगो देय ॥ ६॥

पित्तस्रेष्मप्रशमनी कच्छुकराङ्गरजापहा।
गुदजान् नाशयत्याशु योजिता सगुडाभया॥
सगुडां पिष्पलीयुक्तामभयां घृतभर्जिताम्।
त्रिबृद्दन्तियुतां वापि भत्त्ययेदानुलोमिकीम्॥१०॥
गुदजानिलात्र मामाकुरानिति शेष, तेन पुलिक्षता उपपन्ना। सगुडामित्यादि स्पष्टम्॥१०॥

तिलारुष्करसंयोगं भक्तयेदग्निवर्द्धनम् । कुष्ठरोगहरं श्रेष्ठमर्शसां नाशनं परम् ॥ तिलभन्नातकं पथ्या गुडश्चेति समांशिकम् । दुर्नामकासभ्वासम्नं सीहपाएडज्वरापहम् ॥११॥

तिलारुष्करेत्यादि—सयुज्यते प्रयुज्यतेऽयमिति सयोग प्रयोग एव । अन्ये तु तिलारुष्करयोः मयोगो यत्रेत्याहु ॥ ११ ॥

> गोमूत्रव्युषितां दद्यात् सगुडां वा हरीतकीम्। पञ्चकोलकयुक्तं वा तक्रमसौ प्रदापयेत्॥ १२॥

गोमूत्रव्युषितामित्यादि—चरकस्य । रात्रौ गोमूत्रस्थितामिति चक्र । सगु-डामित्यन्त एको योगः । वाशब्दः पूर्वयोगापेचयाः, चरके हि 'सगुडामभया वाथ प्राशयेत् पौर्वभिक्तकीम्' इत्यभिधाय तदनन्तरमय योग चक्तः, श्रतो भिन्नयोगत्वेन न पौनरुक्त स्यादिति । पतेन गोमूत्रव्युषितामिति प्रयोगानुरोधात् पुनरिप तन्त्रा- न्तरीयगुडहरीतक्यभिहितेति निश्चलेनोक्तमसगतम्, योगद्दयस्येव चरकोकत्वात् इति । पञ्चकोलगुक्तभिति पञ्चकोलच्येशुक्तम् ॥ १२॥

> मृक्तिप्तं शौरणं कन्दं पक्त्वाग्नौ पुटपाकयत्। श्रद्यात् सतैललवणं दुर्नामविनिवृत्तये ॥ १३॥

मृश्लिप्नमित्यादि--वाग्मटस्य । शौरण कन्दमिति वन्यश्ररणमूलम्, एव मर्वत्राशिक्षि, तदभावे आम्यण्यरणोऽपीत्यन्ये ॥ १३ ॥

खिद्य वार्चाकुफलं घोपायाः चारजेन सलिलेन ।
तद् घृतभृष्ट युक्तं गुडेनातृप्तितो योऽत्ति ॥
पिवति च तकं नूनं तस्याश्वेवातिवृद्धगुद्जानि ।
यान्ति विनाशं पुंसां सहजान्यपि सप्तरात्रेण ॥ १४ ॥
क्षित्रमित्यादि—धोपकवारोदकेन पह्युग्वेनैकविशतिवारपरिस्नुतेन उत्स्वेध
ध्ते भृष्ट्वा श्रमुरूपगुढेन मयोज्य मध्येदिति ॥ १४ ॥

श्रसितानां तिलानां प्राक् प्रकुश्चं शीनवार्य्यनु । खादतोऽशासि नश्यन्ति हिजदाढ्योद्गपुष्टिदम् ॥१४॥

श्रमितानामित्याटि—तिलाना प्रकुष्ट पलम् , प्राक् खादत श्रनु प्रसान्छी-तवारि खादत इति योज्यम् । द्विजदार्ट्यम् टन्तदार्ट्यम् ॥ १५ ॥

## दन्त्यरिष्टम्

दन्तीचित्रकम्लानामुभयोः पश्चमूलयो ।
भागान् पलाशानापेश्य जलहोणे विपाचयेत् ॥
तिपलं त्रिफलायाश्च दलानां तत्र दापयेत् ॥
रसे चतुर्थशेषे तु पृतशीते प्रदापयेत् ।
तुलां गुडस्य तत् तिष्ठेन्मासार्ड घृतभाजने ॥
तन्मात्रया पिवेशित्यमशोंभ्यो विप्रमुच्यते ।
प्रहणीपागृहरोगमं वातवर्चोऽनुलोमनम् ।
दीपनञ्चारुचिम्नञ्च दन्त्यरिष्टमिदं विदुः ॥
पात्रेऽरिष्टादिसन्यानं धातकीलोभ्रलेपिते ॥ १६ ॥

दन्तीत्यादि—चरकस्य । अत्र उमयोरितिवचनवलाल् पञ्चमूलयो प्रत्येक भागा याह्या , त्रिफलाया इत्यत्र तु निर्देशस्य मानप्रधानत्वात् मिलितित्रिफलाया एव पलत्रय याह्यम् । मासार्द्धमिति तन्त्रान्तरे तु मासमित्युक्तम् , यथा—' त्रिफला-दशमूलाग्निकुम्माना पल पलम् । वारिद्रोणे स्थित पादशेषो गुडतुलायुत । आज्यभाण्डे स्थिता माम दन्त्यरिष्टो निषेवित ' इति, उभयमपि प्रमाण स्मृति-देशवत् ॥ १६॥

स्नागरारुक्तरवृद्धदारकं गुडेन यो मोदकमन्युदारकम् । श्रशेषदुर्नामकरोगदारकं करोति वृद्धं सहसैव दारकम् । चूर्णे चूर्णसमो क्षेयो मोदके द्विगुणो गुड ॥ १७ ॥

सनागरेत्यादि अरुष्करं मल्लातकम् । वृद्धमित्यत्र आत्मानमिति राष । उदारकमिति महाफलम् । अस्य योगस्य चतु समसज्ञामाह मन्यदत्त । तन्मते समेनैव गुढेन किज्ञिकाल दन्त्राग्नी विपक्षेन मोदकविधानम् । चकस्तु मोदकत्वात् गुडस्य द्वैगुण्यमाह । अन्य तु मोदके भोदके द्विगुणो गुढ हे हित कस्यचित् अभिग्रुकस्य वाक्यमनापंभिति कृत्वा नादियन्ते, उक्तरीत्या समेनापि गुढेन मोदक-तोपपत्ति ॥ १७॥

# प्राग्यदा गुडिका

त्रिपलं श्रक्षवेरस्य चतुर्थं मरिचस्य च।
पिष्पल्याः कुडवाईश्च चन्यस्य पलमेव च॥
तालीशपत्रस्य पलं पलाई केशरस्य च।
द्वे पले पिष्पलीमृलादईकर्षश्च पत्रकात्॥
सूद्मेलाकर्षमेकन्तु कर्षं त्वङ्मुणालयोः।
गुडात् पलानि तु त्रिशच्चूर्णमेकत्र कारयेत्॥
श्चलप्रमाणा गुडिका प्राण्देति च सा स्मृता।
पूर्वं भद्या च पश्चानु मोजनस्य यथावलम्।
मद्यं मांसरसं यूषं त्तीरं तोयं पिवेत् तथा॥

हन्यादशींसि सर्वाणि सहजान्यस्रजानि च ।
वातिपत्तकफोत्थानि सिन्निपातोद्भवानि च ॥
पानात्यये मूत्रकुच्छ्रे वातरोगगलग्रहे ।
विपमज्वरे च मन्देऽग्नी पाण्डरोगे तथेव च ॥
क्रिमिहद्रोगिणाञ्चैव गुल्मग्रलार्त्तिनां तथा ।
श्वासकासपरीतानामेषा स्यादमृतोषमा ॥
शुण्ठ्याः स्थानेऽभया देया विड्यहे पित्तपायुजे ॥
प्राण्देयं सितां दत्वा चूर्णमानाचतुर्गुणाम् ।
श्रम्लिपत्ताग्निमान्द्यादौ प्रयोज्या गुद्जातुरे ॥
श्रम्लिपत्ताग्निमान्द्यादौ प्रयोज्या गुद्जातुरे ॥
श्रमुपानं प्रयोक्तव्यं व्याघौ स्थेष्मभवे पलम् ।
पलद्वयन्त्वनिलजे पित्तजे तु पलत्रयम् ॥ १८ ॥

त्रिपलिमत्यादि — चतुर्थं मरिचम्येति पलमेकमित्यर्थ । केगरम्य नागकेश-रस्य । त्वड्मुखालवोरिति त्वक् गुडत्वक् , भ्रमुखालमुशीरम् , श्रनयोगिलित्वा कर्षे । पूर्व भरवा तु पद्माच भोजनस्यति भोजनस्य पूर्व मोजनान्यवहिनपूर्वकाले गुटिका भक्ता, तु पश्चाच मचादिक पिनेदिति ये। ज्यम । न तु मगङ्रादिवत् मे। जनस्य पूर्वपश्चाद्भावेन भक्त्येति कल्पनीयम् , श्रशंसि कविदय्यस्य विधेरदृष्टत्वात् । मध वातकफेऽनुपेयन्, मासरमे। वान, वित्ते स्नार, मुद्रयूप. कफे, तोयमुण्ण वातकफे, प्रवमन्यत्राप्यनुपानमेदो दोपमेदेन कल्पनीय । बाग्भेट पुनर्य योगी शहर्णा-चिकिरिसते पट्यते, तत्र चातुर्जातसुर्शारख प्रत्येक कर्षमानसुरः, तथा—' तालीग-पत्रमरिचचन्यानान्तु पत पत्तम् । कृष्णा तन्मूलयोदे द्वे पेत गुण्ठीपलवयम् । चतु जीतमुरोरछ कर्पौरी श्रदणचूर्णितम् । गुढेन वटक कृत्वा त्रिगुणन मटा भनेत् । मुद्रयूपरसाविष्टमस्तुपेयापयोऽनुप । वातरेक्षमोल्वणा छाँदै महर्णा पार्श्वहदुजाम् । गुदश्रवशुपाग्डुत्वगुरुमपानात्यवार्शमाम् । प्रेमकपीनसश्वासकासानाञ्च निवृत्तये । भनया नागरस्थाने दद्याशार्थन निद्यहे । छर्चादिषु च पैत्तेषु चतुगुंखसितान्निता । पनलेन गुडिका कार्या गुष्टेन सितयापि वा। पर हि बहिनम्पर्काह्मधिमान मनीन्त ता ' इति । शुएछा स्थान दत्यादि-चूर्णमानादिति ससुदितचूर्ण मानात् । केविचु गुडमानाचातुर्गुणमिति पठन्ति, तन्न, नाग्मटनिगेपात्, प्रभूतरार्के-रामनगाच अत्र दोपमेदेनानुपानमात्रामेदमाइ अनुपानमित्यादि ॥ १८ ॥

# **काङ्कायनमोदकः**

पध्यापञ्चपलान्येकमजाज्या मरिचस्य च ।
पिप्पलीपिप्पलीमूल-चव्यचित्रकनागरा. ॥
पलाभिचृद्धाः क्रमशो यवत्तारपलद्धयम् ।
भल्लातकपलान्यष्टौ कन्दस्तु द्धिगुखो मतः ॥
द्धिगुखेन गुडेनैषां चटकानत्तसम्मितान् ।
कृत्वैनं भन्नयेत् प्रातस्तकमम्मोऽनु वा पिबेत् ॥
मन्दान्नि दीपयत्येष प्रह्मखीपागृहरोगनुत् ॥
काङ्कायनेन शिष्येभ्य शस्त्रज्ञाराग्निभिविना ।
भिषग्जितमिति प्रोक्तं श्रेष्ठमशौविकारिखाम् ॥ १६ ॥

पथ्येत्यादौ—मरिचस्येत्यत्राप्येकामिति सम्बध्यते । तेन मरिचस्य पलमेक-मित्यर्थ । पलाभिवृद्धा क्रमरा इति यथाक्रम पलेन वृद्धा । कन्दस्तु द्विगुख इति षोष्ठशपलः । द्विगुखेन गुडेनेति समुदितचूर्णापेच्या । श्रक्षसम्मितानिति कर्षसम्मिन् तान्, न्यवहारस्तु षडष्टमापकैरिति ॥ १६ ॥

# माशिभद्रो मोदकः

विडक्सारामलकाभयानां
पतं पतं स्वात् त्रिवृतात्रयश्च ।
गुडस्य पड् द्वादशभागयुक्ता
मासेन त्रिंशद् गुडिका विधेयाः ॥
निवारणे यत्तवरेण सृष्टः
स माणिमद्र. किल शाक्यभिन्नवे ।
श्रयं हि कासन्तयकुष्ठनाशनो
भगन्दरप्तीहजलोदराशसाम् ॥
यथेप्रवेष्टात्रविहारसेवी
श्रोन वृद्धस्तरुणो भवेच्च ॥ २०॥

विद्यसारेत्यादौ- त्रिवृतात्रयमिति त्रिवृतायाः पजनयम् , गुष्टस्य च षद् -

पलानि, द्वादशभागयुक्ता इति द्वादशपलरूपविभागेन युक्ता कृता । मासेनेति मासेने।पयोक्कन्यमिति शेष । श्रयमंथ —द्वादशपलानि विभन्य मासेने।पयोज्यम् । श्रिशद्गुडिका समभागेन कुर्व्यात् इति तेन ण्कैकगुडिका पड्किकाधिकनवमाध-कोपेतकर्षमाना भवति । कर्ष १, माष ६, रक्षि ६, । न्यवहारस्तु दशिभरष्टाभिर्वा माधकैरिति । निवारण इत्यत्र गुदनानामिति शेष । देश इत्यन्ते ॥ २०॥

### खल्पशूर्यमोदकः

मरिचमहौषधचित्रक-शूरणभागा यथोत्तर द्विगुणा । सर्वसमो गुडभागः

सेन्योऽयं मोदकः प्रसिद्धफलः॥
ज्वलन ज्वलयति जठरमुन्मूलयति श्रलगुल्मगदान्।
निःशेपयति स्त्रीपदमर्शोसि नाशयत्याश्च॥ २१॥
स्वलग्ररणमोदक स्पष्ट ॥ २१॥

# **बृहच्छूर्र**णमोदकः

श्रूरणपोडशभागा वहेरहों महोषधस्यातः।
श्रूरंन भागयुक्तिमिरिचस्य ततोऽपि चार्देन॥
त्रिफला कणा समूला तालीशायण्करिकामिन्नानाम्।
भागा महोषधसमा दहनांशा तालमूली च॥
भागः श्रूरणतुल्यो दातव्यो वृद्धदारकस्यापि।
भृक्तेले मिरचांशे सर्वाग्येकत्र सञ्चूण्यं॥
हिगुणेन गुडेन युत सेव्योऽयं मोदक प्रकामधने।
गुरुवृष्यभोज्यरहितेष्वितरेषूपद्रवं कुर्य्यात्॥
भस्मकमनेन जनितं पूर्वमगस्त्यस्य योगराजेन।
भीमस्य मारुतेरिप येन तो महाशनौ जातौ॥
श्रश्चिवलबुद्धिहेतुनं केवलं श्रूरणो महावीर्थः।
प्रभवति शक्कवाराशिभिविनाण्यश्सामेष ॥

श्वयशुरुरीपद्जिद् ग्रह्णीमपि कफवातसम्भूताम् । नाशयति वलीपलितं मेघां कुरुते वृषत्वञ्च ॥ हिक्कां श्वासं कासं सराजयन्मप्रमेहांश्च । सीहानञ्चाथोग्रं हन्तीति रसायनं पुंसाम् ॥ २२॥

यूर्णपोडशमागा इत्यादी—त्रिफलाकणासमूलातालीशारुकरिक्रमिद्वाना भागा महीषधसमा इति त्रिफलादीना प्रत्येक महीषधसमा मागा , त्रिफलायाश्च प्रत्येक्तम् । कणा ममूला इति पिप्पल्या फल मूलश्चेत्यर्थ । समूला इत्यत्र स्त्रियाः पुवद्धापितपुस्कादनृह इत्यादिना पुवद्धावो नोद्धावनीय । तस्योत्तरपदे स्त्रीप्रत्य-यान्ते परतो विधानात् । विशेषणत्वादस्य पूर्वानेपातोऽपि नोद्धावनीय , विवद्यावशादस्य पूर्वानेपातेपात्रेप्तर्यकम् , मृक्क गुढत्वक् । गुरुवृष्यभोज्यरहितेष्त्रिन प्रकामधनप्रतियोगितया दरिद्रेषु, उपद्रविति व्यापितम् ॥ २२ ॥

शूरस्यिषडी

चूर्णीकृता षोडश शूरणस्य
भागास्ततोऽर्द्धेन च चित्रकस्य ।
महौषधाद् द्वौ मरिचस्य चैको
गुडेन दुर्नामजयाय पिएडी ॥
पिएड्यां गुडो मोदकवत् पिएडत्वापत्तिकारक ॥ २३ ॥
चूर्णीकृता स्त्यादि—वाग्मटस्य । मोदकवदिति द्विगुण स्त्यर्थ ॥ २३ ॥

व्योषाद्यं चूर्णम्

व्योषान्यरुष्करविडङ्गतिलाभयानां चूर्णं गुडेन सहितन्तु सदोपयोज्यम्। दुर्नामकुष्ठगरशोथशकृद्दिवद्धाः

नम्रेर्जयत्यवलतां क्रिमिपारहताञ्च॥ २४॥

च्योषाद्वीत्यादि —अत्र गुडस्यैकभागत्व चूर्ययोगत्वात् इति । किन्त्वय योगो विभीतकामलकयोगात् गुडिकापि क्रियते, यदाह वाग्मट — गुडच्योषामयारेखु-तिलाहष्करचित्रकै । अशासि हन्ति गुडिका त्वश्विकारण्य शीलिता र इति॥२४॥ 2

समश्करं चूर्णम् श्रुग्ठीकणामरिचनागद्तत्वेगलं चूर्णीकृतं कमविवर्द्धितमृद्ध्वमन्त्यात्। खादेदिदं समसितं गुद्जाग्निमान्य-कासारुचिश्वसनकग्ठहृदामयेषु॥ २४॥

शुष्ठीत्यादि--नाग नागवेशरचूर्णम्, टल तेजपत्रम् । क्रमविवर्दितमूर्ष्व-मन्त्यादिति श्रन्तस्थितद्रव्यादारम्य तदुपरितनद्रव्यमेकद्वित्यादिक्रमेण वद्धयेदित्यर्थ । समिनिर्माति मिलित-मर्वचूर्णममशर्करम्, श्रमनमिति श्वास ॥ १५॥

# लवणोत्तमाद्यं चूर्णम्

ल्बणोत्तमविह्नकित्तक्षयवां-श्चिरिविल्वमहापिचुमर्दयुतान्। पिव सप्तदिनं मथितालुलितान् यदि मर्टितुमिच्छसि पायुरुहान्॥ २६॥

लवणोत्तमेत्यादि—वाग्भटस्य । लवणोत्तम सन्धवम्, विह्नश्चित्रक , कालिक्ष-यव दन्द्रयव । चिरिविल्व करज , तस्य मूलम्, यत् पुनरस्य सुश्रुते फलग्रहण्यस्क तच्छोधने छेयम् । महापिचुमदं पर्वतिनम्व , निम्बमदृश्रदृहत्त्वत्रो छुच , वाकाय-नीति लोकख्यात । ग्रामिनम्ब एव पर्वतमवत्वेन पर्वतिनम्ब इत्याहुर्न्य, ऋस्य लग् ग्राह्मा । मधितालुलितानिति तक्षेणालाटितान् ॥ २६॥

# नागार्जुनयोगः

त्रिफला पञ्चलवणं कुष्टं कद्धकरोहिणी।
देवदारुविडहानि पिचुमर्दफलानि च ॥
यला चातिवला चैव हरिद्रे हे सुवर्चला।
पतत् सम्भृतसम्भारं करञ्जत्वप्रसेन च ॥
पिप्द्वा च गुडिकां छत्वा वदरास्थिसमां बुध ।
पक्कां ता समुद्भृत्य रोगे रोगे पृथक् पृथक् ॥
उप्लेन वारिणा पीता शान्तमां प्रदीपयेत्।

श्रशंसि हन्ति तकेण गुल्ममम्लेन निर्हरेत्॥
जन्तुदएन्तु तोयेन त्वग्दोपं खादिराम्बुना।
मूत्रकृच्छुन्तु तोयेन हृद्रोगं तेलसंयुता॥
इन्द्रस्वरससंयुक्षा सर्वज्वरिवनाशिनी।
मातुलुद्गरसेनाथ सद्यः श्र्लहरी स्मृता॥
कापित्थितिन्दुकानान्तु रसेन सह मिश्रिता।
विपाणि हन्ति सर्वाणि पानाशनप्रयोगतः॥
गोशकृद्रससंयुक्षा हन्यात् कुष्ठानि सर्वशः।
श्यामाकपायसहिता जलोदरिवनाशिनी॥
भक्षच्छुन्दं जनयति भुक्षस्योपिर मिल्तता।
श्राचिरोगेषु सर्वेषु मधुनाघृष्य चाञ्चयेत्॥
लेहमात्रेण नारीणां सद्यः प्रदरनाशिनी॥
व्यवहारे तथा खूते संश्रामे मृगयादिषु।
समालभ्य नरो ह्यां चिप्रं विजयमाप्नुयात्॥२०॥

त्रिफलेत्यादौ- आतिबला खेतबला, सुवर्चला स्र्यांवर्त । मम्मृतमम्मारमिति बाठः । मम्मृत्य सम्मारमिति पाठेऽपि सम्भार त्रिफलाधौषधजात मम्मृत्य मेल-यित्वा करअत्वयमेन पिष्ट्वेति योज्यम् । पृथक् पृथक् इत्यस्य पानाशनप्रयोगत इत्यनेन वस्यमाणेन सम्बन्ध । तेन रोगे रोगे पृथक् पृथक् पानाशनप्रयोगन उपयुश्चीतिति शेषः । गुल्ममम्लेनेति काश्चिकेन, जन्तुर्वृश्चिकादि , इन्द्रस्वरस् आकाशजलम् , श्यामाकषायश्चिवृताकाथ , मक्तच्छन्द मक्ताकाद्याम् । व्यवहार इति वाग्व्यवहाररूपे वादे, समालम्येति आलिप्य ॥ २७॥

विजयचूर्णम्

त्रिकत्रयवचाहिंगुपाठाचारानिशाद्वयम्।
चव्यतिक्राकलिङ्गानि शताद्वालवणानि च ॥
प्रित्थिविल्वाजमोदा च गणोऽप्टाविंशतिर्मतः।
पतानि समभागानि श्रुच्णचूर्णानि कारयेत्॥
ततो विडालपदकं पिवेदुष्णेन वारिणा।

परगडतेलयुक्षन्तु सदा लिह्यात् ततो नरः ॥
कास हन्यात् तथा शोधमशीसि च भगन्दरम् ।
हुच्छूलं पार्श्वेश्रलञ्ज वातगुल्मं तथोदरम् ॥
हिक्काश्वासप्रमेहांश्च कामलां पाग्हरोगताम् ।
श्रामान्वयमुदावर्तमन्त्रचृद्धि गुदं किमीन् ॥
श्राम्ये च प्रह्णीदोषा ये मया परिकीर्तिताः ॥
महाज्यरोपसृष्टानां भूतोपहृतचेतसाम् ।
श्रामान्तु नारीणां प्रजावद्दैनमेव च ।

विजयो नाम चूर्णोऽयं सुष्णात्रयेण पूजितः॥ २८॥
शिकत्रयामित्यादि—शिकड त्रिफला त्रिजात त्रिकत्रयम् । ये तु त्रिजातस्थाने मुस्तविद्यक्षचित्रकरूप त्रिमदमाहुः, तन्मते चन्यतिकाकिकाधीत्यत्राधिराय्देन भद्गातक द्रेयम् । लवणानीति पञ्च लवणानि, अन्यथा अष्टाविरातिसख्या
नेापपथते । अन्यि पिष्पलीमूलम्, अजमोदा यमानी । विद्यालपदकमिति कर्षम् ।
आसमिति केवल शासम्, हिक्काश्वासेनि हिक्कासहित श्वास इत्यर्थ , अतो न
पौनरुक्त्यम् । अन्ये तु श्वाममित्यत्र कासमिति पठ्नत । रोगान् जयतीति कृत्वा
विजयसञ्चा ॥ २८ ॥

## श्रीबाहुशालो गुडः

तित्रृत् तेजोवती दन्ती श्वदंष्ट्रा चित्रक शटी।
गवाचीमुस्तवित्वाह्मविडङ्गानि हरीतकी॥
पलोन्मितानि चैतानि पलान्यष्टावरुष्करात्।
पट्पलं वृद्धदारस्य श्रूरणस्य तु षोडश॥
जलद्रोणद्वये काथ्यं चतुर्भागावशेषितम्।
पूतन्तु तं रसं भूयः काथ्येभ्यिर्क्रगुणो गुडः॥
लेहं पचेत् तु तं तावद् यावद्द्वींप्रलेपनम्।
श्रवतार्थ्यं ततः पश्चाच्चूर्णानीमानि दापयेत्॥
त्रिवृत्तेजोवतीकन्द्चित्रकान् द्विपलांशिकान्।
पलात्वङ्मरिचञ्चापि गजाह्यञ्चापि षट्पलाम्॥

द्वात्रिशतं पत्तान्येवं चूर्णं दत्वा निघापयेत् । ततो मात्रां प्रयुक्षीत जीर्खे चीररसाशनः॥ पश्च गुल्मान् प्रमहांश्च पाएहरोगं हलीमकम्। जयेदर्शीसि सर्वीण तथा सर्वीदराणि च॥ दीपयेत् प्रहणीं मन्दां यदमाणञ्चापकषीत । श्रपीनसं प्रतिश्यायमाद्यवात तथैव च ॥ श्रयं सर्वगदेष्वेव कल्याणो लेह उत्तम । दुर्नामारिरयञ्चाशु दृष्टो वारसहस्रश ॥ भवन्त्येनं प्रयुक्षाना शतवर्षे निरामया । श्रायुषो दैर्घ्यजननो वलीपलितनाशन ॥ रसायनवरश्चेष मेघाजनन उत्तम । गुड श्रीबाहुशालोऽयं दुर्नामारि प्रकीर्तित ॥ तोयपूर्णे यदा पात्रे चिप्ता न प्लवते गुडः॥ न्निप्तश्च निश्चलस्तिष्ठेत् पतितस्तु न शीर्य्यते । यदा दर्वीप्रलेप स्याद् यावद्वा तन्तुलीमवेत्॥ एष पाको गुडादीनां सर्वेषां परिकीर्तितः। सुखमद सुखस्पशी गुड पाकमुपागत ॥ पीडितो भजते मुद्रां गन्धवर्णरसान्वित ॥ २६ ॥

त्रिष्टत् तेजोवतीत्यादि—कस्यचित् तन्त्रस्य । तेजोवती चर्वा, एव सर्वत्र । यत्र पुनश्चवी तेजोवती चास्ति तत्र पर तेजोवत्या ज्योतिष्मती गृह्यते, यथा गुग्गुलु-पञ्चतिक्षके धृते । गवाची गोरचकर्कटी, तस्या मूलम्, एव सर्वत्र । न तु गवाची स्तापराजिता, कार्थि टीकाक्रद्भिरच्याख्यात्त्वात् । काथ्येभ्यास्त्रगुणो गुढ इति एकचत्वारिशतपलकाथ्यापेच्य त्रेगुण्येन गुडस्य त्रयोविशतिपलाधिकशतपल भवति । कन्दः श्रद्रण् , त्रिष्टदादीना द्विपलत्वम् , एलादीनाञ्च षट्पलत्वम् । यद्यपि निर्दे-शस्य द्रव्यप्रधानत्वादेव प्रत्येक सिष्यति, तथापि दात्रिशतपलानीति यद्यक तत् कचित् द्रव्यप्रधाननिर्देशेऽपि प्रत्येकना नास्तीति स्चनार्थम् । तेन कैशोरकगुग्गुलौ त्रिकटोश्चूर्णं पडचपरिमाणमित्यत्र मिलित्वैव त्रिकटुनूर्णंपडचपरिमतता वृद्धक्यव-

हारिमिद्धेति बोध्यम् । द्वाविशत पलान्येव पाठे। इन्यथा च्छ्रन्द्रोमङ्ग स्यात् । किचिध्य द्वाविश्व पलान्येविति पाठ । अपीनमिति प्रतिश्यायमेद । पीनेसे च प्रति-प्रयाय इति पाठेऽपि म प्वार्थ । अत्र अनुपानमनुक्तमिप वातकफें कोष्णाम्यु, पित्ते चिरित्ते केयम् । न चात्र महातकप्रेवशादुष्णजलम् अयुक्तमिति गद्भनीयम्, यतो महातकरेलह एव उष्णजलिषेषो न महातकरेणामात्रे । तथा चे। कम्— " उष्णोठकानुपानन्तु कहानामथ शस्यते । जाते महातकरेलहात् तत्र तोयन्तु शीतलम् " इति । बृद्धान्तु शीततीयेन व्यवहरन्ति । तोयपूर्णे यदा पात्र इत्यादि गुडपाकलक्षणम् । बृद्धान्तु तोयपूर्णपात्रोपिर कोमलकदलीपत्र दत्त्वा, गुहस्य मुद्रापाक निरूपयन्ति । न प्लवते न तरित पिति । पात्राधोगतो यदि न शोर्थने न विस्तीर्णता यानि ॥ २६ ॥

#### गुडभल्लातकः

भन्नातकसहस्रे हे जलद्रोणे विपाचयेत्।
पादशेपे रसे तस्मिन् पचेद् गुडतुलां मिपक् ॥
भन्नातकसहस्रार्खे छिन्वा तत्रैव दापयेत्।
सिद्धेऽस्मिस्त्रिफलाव्योपयमानीमुस्तसैन्धवम्।
कर्पाशसमितं दद्यात् त्वगेलापत्रकेशरम् ॥
खादेदशिवलापेनी प्रातरुत्थाय मानव ॥
कुष्टार्श कामलामेदप्रहणीगुल्मपाण्डता ।
दन्यात् प्लीद्दोदरं कासिकिमिरोगमगन्दरान्।
गुडभन्नातको ह्यप् श्रेष्ठश्चार्योविकारिणाम् ॥ ३०॥

गुडमहातके महातकसहस्रे हे इति महातकाना महस्रद्रयम्, एव मर्वत्र प्रलादिमानविरहे, यथा मन्धवाधतेले महातकास्थानि विशितिरिति । यत्र तु प्रलादिमुतिस्तत्र तथ्य न्यवहर्तन्यम् । यथा बाहुशालगुढे, '' प्रलान्यष्टावरुष्करा-दिति ।' एव हरीतक्यादाविष ग्रेयम् । महातकसहस्राद्धे व्हिस्तेति हिथा कृत्वा गुडमहितकाथ एव प्रकृत्य हरीतकीवत् । त्रिफलादीनाम्च प्रत्येकमेव कर्षमानम् ॥ ३०॥

> त्रपरेा गुडभञ्जातकः दशम्लामृता भागीं श्वदंष्ट्रा चित्रकं शटी ।

मलातकसहस्रश्च पलांशं काथयेद् वुधः।
पादशेषे जलद्रेशे रसे तस्मिन् विपाचयेत्।
दत्वा गुडतुलामेकां लेहीभूतं समुद्धरेत्॥
मान्तिकं पिष्पलीं तैलमौरुवूकञ्च दापयेत्।
कुडवं कुडवञ्चात्र त्वगेला मरिचं तथा॥
श्रशः कासमुदावर्चं पाग्हत्वं शोथमेव च।
नाशयेद्विसादञ्च गुडभल्लातकः स्मृतः॥ ३१॥

दितीयगुडमल्लातके पलाशिमिति दशमूलादिभि सम्बध्यते। भल्लातकसहस्रञ्च पूर्ववदाकृतिमानात् । काथयेदिति पूर्वोक्तमञ्जातकगुडमवादात्, स्रशापि जलद्रोणे किंवा काथ्यद्रव्येभ्योऽष्टगुणे जले । मान्तिक मधु । श्रीरुवुक्तच्र तैलमेरण्डतेलम्, एतच्य प्रथमतः विप्त्वेव गुड पक्तव्य । सिद्धे मधुपिप्पलीचूणादि प्रद्येप्पम् । एक कुडव शब्दो मान्तिकादिभि सम्बध्यते, श्रपरश्च त्वगेलादिभि । मान्तिकरण्डतेलयोश्च द्रवत्वात् प्रत्येकमष्टी पलानि । त्वगेलामिरिचादीनानंतु कुडव मिलित्वेति केचित्, प्रत्येकमित्यन्य । पतदेव युक्त द्रव्यप्रधानत्वात् निर्देशस्य । श्रायुर्वेदसारेऽप्युक्तम्— 'मल्लानकसहस्र हि शटीदह्मगोन्तुरान् । दशमूल्यमरामार्गी पलाशा । सविपाच्य च । दत्त्वा गुडतुला तत्र लेहवत् साधु साधयेत् । पिप्पल्या मधुन मिद्धे तैलस्यो- एकुकस्य च । प्रत्येक कुडव दत्त्वा त्वगेलामारिचस्य च । मिश्चित भन्नयेद्वित्यमर्श कासोदरापहम् ' इति । श्रतप्व श्रायुर्वेदसारसवादात् कुडवार्दश्च त्वगेलामारिच- मित्रि पाठान्तरमपि प्रतिचेपणीयम् ॥ ३१॥

# चन्याद्यं घृतम्

चव्यं त्रिकटुकं पाठां चारं कुस्तुम्बुक्षि च।
यमानी पिष्पलीमूलमुभे च बिडसैन्धवे॥
चित्रकं वित्वममयां पिष्ट्वा सर्पिर्विपाचयेत्।
शक्तद्वातानुलोम्यार्थं जाते दिश चतुर्पुणे॥
प्रवाहिकां गुदश्रंशं मूत्रकुच्छं परिस्रवम्॥
गुदवङ्चणश्रलञ्च घृतमेतद् व्यपोहति॥ ३२॥
चन्यमित्यादि—चरकस्य। कुस्तुम्बुर धनीयकम्। जाते दिश्वीति सुजाते।

श्रत्र केचिद् 'स्वरमज्ञीरमाङ्गल्यै पाको यत्रेरित कचित् । चतुर्गुण जल नत्र वीर्य्याधानार्थमानेषत् व स्त्वाडुः । परिस्नविमिति गुदपरिस्नावम् ॥ ३२ ॥

## व्योपाद्यं घृतम्

ब्योपगर्भे पलाशस्य त्रिगुणे भस्मवारिणि ॥ साधितं पिवतः सर्पि पतन्त्यशस्यसंशयम् ॥ ३३ ॥ म्योषाय ग्रत सप्टम् ॥ ३३ ॥

उद्कपट्पलं घृतम् सत्तारे पञ्चके।लैस्तु पिलकैस्त्रिगुणोदके। समत्तीरं घृतप्रस्थं ज्वराशेःसीहकासनुत्॥ ३४॥ <sub>वरकपट्पलप्रत</sub> सप्टम्॥ ३४॥

## सिंह्यमृतं घृतम्

पचेद्वारिचतुर्देशि कर्एदकार्य्यमृताशतम् । तत्राग्नित्रिफलाव्योपपूतिकत्वक्किलिङ्गकैः ॥ सकाश्मर्य्यविडङ्गैस्तु सिद्धं दुर्नाममहनुत् । घृतं सिद्यमृतं नाम दोघिसत्वेन भापितम् ॥ ३४॥

पचेदित्यादी—कण्टकारीगुड्च्योमितित्वा रात, निर्देशस्य मानप्रधानत्वात् । अन्ये तु द्रवस्यस्तदर्शनात् प्रत्येकमेव शतमाहु । चतुर्दाणे द्रोणावशेष , अतोऽस प्रतादक बेध्यम् । चतुर्द्राणे न पाकस्योत्सर्गमिद्धत्वात् । प्रस्थपचे तु पोढश-गुणलेमव पाकस्य । अग्निरत चित्रक , पूर्वाकस्य करञ्जस्य त्वक्, काशमर्थं गाम्मारीफलम्, कल्कस्य तु सेहापचेया पादिकत्वमेव वेधिसत्त्वेनिति योगिविशेषण्, अन्ये तु लेकनाथेनेत्याहुः ॥ ३५ ॥

# पिप्पल्याद्यं तैलम्

पिष्पली मधुकं विल्वं शताह्नां मदनं धचाम्। कुष्ठं शटीं पुष्कराख्यं चित्रकं देवदारु च॥ पिष्ट्वा तैलं विपक्षव्यं द्विगुण्जीरसंयुतम्। श्रशेसां मूदवातानां तच्छ्रेष्ठमनुवासनम् ॥
गुदिनःसरणं शूलं मूत्रक्टच्छं प्रवाहिकाम् ।
कटश्वरृष्ठदौर्वेल्यमानाहं वङ्चणाश्रयम् ॥
पिच्छास्रावं गुदे शोथं वातवचीविनिग्रहम् ।
उत्थानं वहुदोषञ्च जयेचैवानुवासनात् ॥ ३६॥

पिणल्यादतेले विलव विलवशलाड , पुष्कराख्यमिति पुष्करमृल, तदभावे कुष्ठमेव दिगुण श्राह्मम् । अत्र द्रवान्तरस्यानिर्देष्टत्वात् द्विगुण पव पाक शित केचित् । अन्य तु चतुर्गुणपाकस्य उत्सर्गसिद्धत्वात् जलमण्यत्र दिगुणमिच्छन्ति । अपरे तु ' चीरदध्यारनालेस्तु पाको यसेरित कचित् । जल चतुर्गुण तस वीर्याधानार्थमावेषत् ' शित वचनात् जलमपि चतुर्गुणमाचचते, युक्तचैतत्, यदाह् वृद्धसुश्रुत ' शटीपुष्करकृष्णाह्मामदनामरदारुभि । शताह्माकुष्ठयष्ट्याह्वचाविल्व- हुताशने । सुपिष्ट द्विगुण चीर तेल तोयचतुर्गुणम् । पक्त्वा वस्तौ निधातव्य मूदावातानुलोमनम् ' शित ॥ ३६ ॥

रक्नार्शिश्विकत्सा

# रक्तार्शसामुपेदोत रक्तमादौ स्रवद्भिषक् । दुष्टास्र निगृहीते तु श्रुलानाहावसुग्गदाः ॥ ३७॥ ८

रक्षारीसा चिकित्सामाह रक्षारीसामित्यादि—उपेचेत, न तु स्तम्मयेत्। निगृहीत इति स्तम्भिते । श्रमुग्गदा इति वीसर्पादय ॥ ३७॥

। लाजै. पेया पीता चुक्रिकाकेशरोत्पलैः सिद्धाः हन्त्यस्रसावं तथा बलापृश्चिपर्णीभ्याम् ॥ ३०॥

लाजै. पेयेत्यादि । चुकिका चाक्रेरी; केशर नागकेशरम् । तथा बलापृश्नि-पर्सीन्यामिति द्वितीयो योग । तथेत्यनेन लाजै पेयेत्यनुवर्तते ॥ ३८ ॥

> शक्तकाथः साविश्वो वा किंवा विल्वशलाटवः। योज्या रक्ताशंसैस्तद्वज्न्योत्सिकामूललेपनम्॥३६॥

शक्रकाथ इत्यादि - राक कुटन , जक्ष हि रखनावे 'वृत्तकः शक्रपर्यायो वत्सको गिरिमिह्नका 'इति । तद्वल्कलकाथ , जक्ष चरके 'कुटनल्बङ्निर्य्यूह स्मागर क्रियो रक्षसम्बय 'इति । वाग्मटेऽप्युक्ष 'सकफे प्रपिवेत् पाक्य

शुग्रठीकुटजवल्कलम् १ इति । निश्चलस्तु इन्द्रयवकाथ इत्याह् । सनागर ईपन्नागर स च प्रसेपविधिनिति केचित् । अन्य तु उक्तवाग्भटवचनसवादात् शुग्रठीकुटजवल्क-लया काथ इत्याह् । विल्वशालाटव इत्यत्रापि सनागर इति योज्यम् । अन्य तु केवल विल्व पिष्ट्वा पर्यामत्याहु । ज्योत्किका कोपातकी घोषकभेट ॥ ३६ ॥

#### ेर्नवनीतित्ताभ्यासात् केशरनवनीतशकराभ्यासात्। दिवसरमिथताभ्यासाद् गुदजाः शाम्यन्ति रक्षवहाः ॥४०॥

नवनीतित्वाभ्यामादित्यादि — योगत्रयमेतत्। स्रत्र केशर पद्यकेशर, रक्ष-स्तम्मनत्वात्, यदाद्य वाग्मट 'शर्कराम्मोजिक्ष्यत्क-सिंहत सद्य वा तिले । सम्यस्त रक्षगुद्जान् नवनीत नियच्छति ' इति । स्राधुनिकास्तु नागेकशेरण व्यव-हरन्ति । दिशमरस्य मित तक दिशसरमिथतम्, उक्ष द्वि जतुकर्णे 'नवनीत निलैयुंक्ष शर्भरा केशरेण वा । नवनीत द्वत वाच दिशो वा खिजत मर ' दित ॥ ४०॥

#### समङ्गीत्पतमोचाह्न तिरीटतिलचन्दनैः। छागचीरं प्रयोक्तव्यं गुद्जे शोणितापहम्॥ ४९॥

ममझेलादि—समझा वराहकान्ता, उत्पल नीलोत्पलम्, योचक शाल्मली-वेष्टकम्, तिगट पट्टिकालोधम्, एपा कल्कश्छागचीरे खालोड्य पेय.। उक्त हि वाग्मटे ' लोध तिल मोचरस सूमझा चन्दनोत्पलम् । पायित्वाजदुरेधन शालीस्तेनैव भोज-येद इति । अन्य तु द्वीरपरिभाषया च्छागद्वीर पक्तवा पेयमित्याहुं ॥ ४१ ॥

#### कुटजलेह:

कुटजत्वक्पलयतं जलद्रोगे विपाचयत् । श्रष्टभागाविशिष्टन्तु कपायमवतारयेत् ॥ वस्त्रपूतं पुन काथं पचेम्नहत्वमागतम् । भम्नातकं विडङ्गानि त्रिकदु त्रिफलां तथा ॥ रसाञ्जनं चित्रकञ्च कुटजस्य फलानि च । वचामतिविपां विल्वं प्रत्येकञ्च पत्तं पलम् ॥ त्रिंशत्पलानि गुडस्य चूर्णीकृत्य निघापयेत् । मधुन कुडवं दद्याद् घृतस्य कुडवं तथा ॥ एप लेहः शमयति चार्शो रक्षसमुद्भवम् । वातिक पैत्तिकञ्चेव श्लैष्मिकं सान्निपातिकम् ॥ ये च दुर्नामजा रोगास्तान् सर्वान् नाशयत्यपि । श्रम्लपित्तमतीसारं पाग्रहरोगमरोचकम् ॥ श्रह्मणीमार्दवं कार्श्यं श्वयशुं कामलामपि । श्रमुपानं घृतं दद्यान्मधु तकं जलं पयः । रोगानीकविनाशाय कौटजो लेह उच्यते ॥ ४२ ॥

कुटजत्वक्पलशतामित्यत्र केचित् पलस्थाने फलमिति पठिन्ति, तन्मते वुटजत्वक् फलयोमितित्वैव पलशतम् । चन्द्राटेऽष्टमागावशिष्टमित्यत्र चतुर्भागावशिष्टमिति पठ्यते । अत्र ष्टतकुडव प्रथम दत्त्वा लेह पक्तन्य , मिद्धे तिस्मन् भल्लातकादि-चूर्णप्रतेष । मधुन कुडवोऽष्टो पलानि, ष्टतंकुडवोऽप्येवम् कुडवेहेगुर्थन्तु पूर्वमेव स्थापितमिति ॥ ४२ ॥

#### कुटजरसाक्रिया

कुटजत्वचो विपाच्यं शतपलमाई महेन्द्रसालिलेन।
यावत् स्यादरसं तद् द्रव्यं स रसस्ततो श्राह्यः॥
मोचरसः समङ्गा फालिनी पलांशिमिस्तिभिस्तैश्च।
वत्सकवीजं तुल्यं चूर्णीकृतमत्र दातव्यम्॥
पूतोत्कथितः सान्द्रः स रसो दवींप्रलेपनो ग्राह्यः।
मात्राकालोपहिता रसिक्रयेषा जयत्यस्क्सावम्॥
छागलीपयसा युक्ता पेया मग्डेनाथवा यथाग्निवलम्।
जीर्णोषधश्च शालीन् पयसा छागेन भुञ्जीत॥
रक्तगुद्जातीसारं शूलं सास्युजो निहन्त्याशु।
वलवच्च रक्कपित्तं रसिक्रयेषा ह्यभयभागम्॥ ४३॥

कुटजत्वच इत्यादि — श्रत्र पलरात तुला, तेन 'तुलाइन्ये जलद्रोख ' इति वचनात् द्रोखमात्र जल श्राह्मम्, तच 'यावत् स्यादरमम् ' इति वचनाच-तुर्भागावशिष्ट कार्य्यम्, जक हि 'चतुर्भागजले प्रायो द्रव्य गतरसं भवेत् ' इति । यन्ये तु तन्त्रान्तरीययोगान्तरे 'होखेडम्भस पलरात विषाच्य कुटजत्वचोड- हमागस्थ ' इत्यहमागावशिष्टदर्शनात् अत्राप्यष्टमागावशिष काथो बाह्य दत्याहु । व्यवहारस्तु पूर्वेश्व | महेन्द्रमलिनमान्तरीजजलन् ' तदमावे सूमिस्थजल तदनुकारि बाह्यन् । यदुक्त— ' किञ्चितुवरानु सतनु लघु शीत छुगिन्ध सुरमञ्ज । अनिम्यान्दि च यत् तत् जितिस्थमेन्द्रबन्धेयम् ' फलिनी प्रियतु । दवीप्रलेपनी बाह्य इति दवीप्रलेपावस्थायामवतारणीय इत्यर्थ । तेन रसिक्रया लेपस्पैन, वाग्मदेऽप्युक्तन्— ' पक्तवावेनह लीड्वा च तद्यथाप्रिवल पिवेत् ं इत्यादि । छमयमागिति यद्यपि युगपदूद्ध्वाध प्रवृत्तरक्षित्तस्यामाध्यत्, तथाप्युमयमाग हन्नीत्यम्य क्रमेरीयद्वीगमधोगञ्च इन्तीत्यर्थ, तत्राप्युभेगस्य याप्यत्वात् तत्प्रति-यापनमेव निहन्यादित्यस्यार्थो क्रेय । अन्ये तु योगशकेरिचन्त्यत्वादसाध्यमपि— इन्नीत्यर्थमाहु ॥ ४३॥

#### कुटजाद्ये घृतम्

कुटजफलवल्ककेशरनीलोत्पललोध्रधानकीकल्कै । सिद्धं घृतं विधेयं ग्रूलरक्षांशसा भिषजा ॥ ४४ ॥

हुटजायप्टेन-कुटजस्य फल बल्कलञ्च, बल्करान्दो बल्कलबचन, क्वित्तु बस्कलमिति पाठ । श्रत्र जल चतुर्राणमर्थवशाद ॥ ४४ ॥

#### सुनिषएणक-चाङ्गरीघृतम्

त्रवाक्षुप्पी वला दावीं पृश्लिपणीं त्रिकण्टकम्।
न्यग्रोधोद्धम्यराश्वत्थश्चद्वाश्च द्विपलोनिमताः॥
कषाय पप पेष्यास्तु जीवन्ती कटुरोहिणी।
पिष्पली पिष्पलीमूलं मरिचं देवदारु च॥
कलिङ्गं शालमलीपुष्पं वीरा चन्दनमञ्जनम्।
कद्रफलं चित्रकं मुस्तं प्रियङ्ग्वतिविषे स्थिरा॥
पद्मोत्पलानां किञ्चलकः समङ्गा सनिदिग्धिका।
चित्रवं मोचरसं पाठा भागा स्यु कार्षिका पृथक्।
चतुःप्रस्थश्यतं प्रस्थं कषायमवतारयेत्।
विश्वत्पलानि तु प्रस्थो विश्वयो द्विपलाधिकः॥
सुनिपण्णक-चाङ्गेर्यो प्रस्थौ द्वौ स्वरसस्य च।

सर्वेरेतैर्यथोहिष्टेष्ट्रेतप्रस्थं विपाचयत् ॥
पतदर्श स्वतीसारे त्रिदोषे रुधिरस्रुतौ ।
प्रवाहणे गुदभंशे पिच्छास्र विविधास् च ॥
उत्थाने चातिवहुश शोश्रश्लगुदामये ।
सूत्रप्रहे सूढवाते मन्दाग्नावरुचावपि ॥
प्रयोज्यं विधिवत् सर्पिर्वलवर्णाग्निवर्द्धनम् ।
विविधेष्वन्नपानेषु केवलं वा निरत्ययम् ॥ ४४ ॥

श्रवाक्षुणीत्यादि — श्रवाक्षुणी हेठवहली । प्रवाज्ञाष्टाना प्रत्येक पलद्वर्गमिति मिलित्वा पोट्रगण्न काथ्य भवति । तथा सुनिपण्णकन्तोक्ष्ट्योमिलित्वा
प्रस्थद्वय, मानप्रधानत्वानिर्देशस्य । वीरा श्रत्र स्नीरकाकीली । चतु प्रस्थश्त प्रत्यमित्यादि—यणि पोडश्यते काथो चतु प्रस्थ जलसुत्मर्गमिद्धमेव तथा शेषोऽपि चतुर्थो
भाग प्रस्थ एव भवति, तथापि यदेतचतु प्रस्थश्वनित्यादि वचन, तद् काथ्याचतुर्गेण
वातित्यादिपरिभाषाया स्वक शयम् । तथा ' त्रिरात्मलानि तु प्रस्थो विश्वेगो दिपलाथिक ' इत्यपि वचन द्वदं गुण्यपरिभाषास्चकत्वेनैव श्रेयम् । एनदेव दृष्ट्वा दृदवलमस्कोरऽपि द्वदेगुण्यमुक्तम् । किंवा परिभाषानिद्धमिष द्वदेशुण्य यदिद्द
निदिशति तद् द्वदंगुण्यपरिभाषा किचिद्वाधितापि भवतीति म्वयति । तेन कुडवप्रस्थादिक गृहीत्वेव द्वगुण्य, न कुटवादवीक् इत्यर्थे मिद्धो भवति । श्रन्ये तु
दाद्यीर्थमशायितशिष्यबुद्धिवृद्ध्यथमेतद्वचनित्यादु । त्रिशत्यलविशेषण्यतया यद्यपि
दिवलाधिकानीति निर्देशो युज्यते, तथापि प्रस्थविशेषण्यतया पुलिक्षस्य एकवचनस्य
च निर्देश समर्थनीय । उत्थाने वहुश इति स्तोकस्तोकातिमरणे ॥ ४५ ॥

## <sup>ुळ</sup> ह्यारः

प्रशस्ते उहानि नक्षत्रे कृतमहलपूर्वकम् ।
कालमुष्ककमाहृत्य दग्ध्वा भस्म समाहरेत् ॥
श्रादकन्त्वेकमादाय जलद्रोणे पचेद्भिपक् ।
चतुर्भागाविशिष्टेन वस्त्रपूर्तेन वारिणा ॥
शह्च चूर्णस्य कुडवं प्रचिष्य विपचेत् पुनः ।
शनै शनैस्तु मृद्धश्रौ यावत् सान्द्रतसुर्भवेत् ॥

सर्जिकायावश्काभ्या शुग्ठी मरिचिषिष्पती । वचा चातिविषा चैव हिङ्गुचित्रकयोस्तथा ॥ एषां चूर्णानि निक्तिष्य पृथक्त्वेनाष्ट्रमाषकम् । द्रव्या सह्वाद्दिनञ्चापि स्थापयेदायसे घटे । एष विह्नसमः क्वार कीर्तित काश्यपादिभिः ॥ ४६ ॥

इदानीं चारपाकविधिमाह प्रशस्त इत्यादि — कालमुक्क कृष्णपुष्पे। घरटा-पारित , म श्रेष्ठगुण , यदाह विश्वामिल 'श्रेतपुष्प कृष्णपुष्पे। रक्तपुष्पस्तथैन च। पीतोऽन्योऽपि वरस्तपु कृष्णपुष्प प्रकीतितः ' इति । तस्य च काष्ठ तिलनालैर्देग्ध्वा भस्म कर्त्तव्यम् , इत्थमेन सुश्रुताभिधानात् । श्राटकमिति भस्मनश्चतु पष्टिपलानि । जलद्रोण इति दैगुण्याचतु षष्टिशराने, श्रन्ये तु श्रत्र देगुण्य नेच्छन्ति । शखचूर्णस्य कुटनश्चतु पल , पोडशांशेनाकृतदेगुण्यात् । परिस्नानितपादानशिष्टचारोदकाटका-दिति चन्द्रिका । श्रागमप्रामाण्यसिद्धनद् देगुण्यपचे तु द्वानिंशाशनेति नोध्यम् । श्रायस इति लोहम्ये, एनच पात्रनिशेषकथन ग्रुणोत्कर्षार्थम् , 'यथा कुर्वन्ति स उपाय 'इत्युके । चार इति प्रतिसारणीय चार इत्यर्थ , प्रतिसारणीयक्ष झच-खीय इत्यर्थ ॥ ४६॥

तोये कालकमुष्ककस्य विपचेद् मस्माहकं पड्गुणे पात्रे लोहमेय हहे विपुलघीर्द्व्या शनैर्घष्ट्यन् । दग्ध्वाग्नौ वहुशह्वनाभिशकलान् पूतावशेषे लिपेद् यद्येरएडजनालमेष दहति लारो वरो वाक्शतात् ॥ प्रायस्त्रिभागशिष्टेऽस्मित्रच्छुपैच्छिल्यरक्रता । सञ्जायते तदास्त्राच्य लाराम्मो प्राह्यमिष्यते ॥ तुर्य्येणाप्टमकेन पोडशभवेनाशेन संन्यूहिमो मध्य श्रेष्ठ इति क्रमेण विहित लारोदकाच्छुह्वक ॥ नातिसान्द्रो नातितन्त लारपाक उदाहतः । दुर्नामकादौ निर्दिष्ठ लारोऽयं प्रतिसारणः ॥ पानीयो यस्तु गुल्मादौ तं वारानेकविंशातम् । स्नावयत् पडगुणे तोये केचिदाहुस्रतुर्गुणे ॥ ४७॥

· तोये कालकसुष्ककस्येति—पड्गुयेति षडाढके व्यवहारादकृतद्विगुये, श्रतपव वृन्देनोक- 'हैगुएय नाढकेऽप्यत्र मागमात्रीपलक्षणात् ' इति । एतन्त्रान्ये दूप-यन्ति, आढकादिश्रुत्या द्रवे यद्देगुर्य सर्वागमसिद्ध तत् कथ वाधनीयम्, न च कचित् तन्त्र भागमात्रमुक्तम्, येन भागमात्रोपलक्षणमिति वाच्यम्, श्रतएव चेक्रेणा-स्वरसादेव हैगुण्यार्थ न किमपि लिखितम् । दण्ध्वाग्नी वहुराह्मनाभिशकलान् प्तावशेषे चिपेदिति त्रिभागशेषेखाच्छ्यंचिछ्नस्याहिलच्चोदये कल्कमपनीय छान-थित्वा चाराम्बु ब्राह्मम्, तत पुन पचेत्, पश्चादासन्तपाके वहशह्वनाभिशकला नमी दग्धा तस्य चूर्ण तुर्येगित्यादि वस्त्यमाण। तुसारेण चिपेत् । श्रन्ये तु त्रिमाग-रोषे चतुर्भागावरोषे वा चारोदके वस्तपूरे राखचूर्णं दत्वा पुन. पक्तव्य, यथा नाति-मान्द्र नातितरलव्य स्यादित्याहु.। पूतावशेष इत्यत्र पूताब्धि शेषे इति केचित् पठन्ति, तन्मते च चतुर्थाशावशेषे चारोदक इत्यर्थ । सम्यक् सिद्धचारलच्यामाह यथे-रएटजन।लिमत्यादि--एम इति पक शीत चारी यदि निस्त्वचमेरएडनाल लेपन वाकराताच्छोटिकराताद् दहति, तदा वर श्रेष्ठ इत्यर्थ । पूतावरोषे इत्युक्त, तच कियदवशिष्ट स्थाप्यम् इत्याह प्रायिक्षमाग इत्यादि । आस्त्राच्येति वस्त्रेण गाल-यिता । इदानीं प्रचेप्यशङ्खचूर्णस्य मानमेदेन प्रतिसारणीयचारस्य मृद्वादिभेद-माइ तुर्येथेलादि-चारोदकात् इति त्रिमागावशिष्टचारोदकमपेच्य । शङ्कक शङ्क-चूर्ण यदि तुर्थेण चतुर्थारोन निहित प्रयुक्तो भवति, तदा सन्यूहिम इति मृदु-चारी भवति । सब्यूहिम इति मृदुत्तारसङ्गा । अष्टमकेन।प्टमारोन यदि शङ्खन्यूर्य दीयते, तदा मध्य चारः, पोडरामवेनारोन यदि राक्क्चूर्यं दीयते तदा श्रष्ठ चार इलार्थ.। यद्यपि सन्यूहिमे चारोदकाचतुर्थाशेन दायमान शङ्खचूर्य मध्यश्रष्ठचारे दीयमानशङ्खनूर्णापेचया प्रभूतमेव, तथापि चारस्य मृदुत्वमेव भूयसी शङ्खनूर्णेन चारीदकस्य तीच्याताया श्रमिभृतत्वात्। पानीयचारे तु न शहःचूर्ययोग इति तस्य नैते भेदा. । प्रतिसारणीयचारपाकलचण तथा तदिपयञ्चाह नातिसान्द्र इत्यादि-प्रतिसारण इति अञ्चणप्रयोजक । पातन्यचारोदकस्य विधान विषयञ्चाह पानीय इत्यादि-पानीय शति पातन्यो य द्वार, त द्वार पह्युणे चतुर्युणे वा जले पाक विनैव एकविंशतिवरान् परिस्नान्य चारोदक आध्रम्। अन्ये तु चतुर्गुणे जले पक्तवा श्रद्धांवाशिष्ट कृत्वा कल्कमपसार्य्य चारोदक एकविंशतिवारान् परिस्नावयेदेव, न प्रतिसारयायचारवत अस्य पुन. पाक इति तात्पर्यार्थ इत्यादु. । विश्वामित्रोऽप्याद्द ' पानाय मावनायाथ परिस्नान्य चतुरीये । जले चार्डावशिष्टे च चाराम्भी श्राह्मभिष्यते ' इति पानाय यद्भावन चारोदकविधान

तदर्थमित्यर्थ- । पानीयज्ञारमात्रा त्र पलित्रकर्पार्द्धपलरूपा क्रमादुत्तममध्वमाधमनला-नलविषया शेया ॥ ४७ ॥

#### चारस्त्रम्

भावितं रजनीचूर्णे स्तुहीक्तीरे पुन पुनः।
यन्धनात् सुदृढं सूत्रं भिनन्यर्शो भगन्दरम्॥
प्राग्दिक्त्णं ततो धामं पृष्ठजञ्चात्रजं कमात्।
पञ्चतिक्तेन सस्नेह्य दहेत् कारेण बहिना॥
धातजं श्रेष्मजञ्चार्थः कारेणास्रज-पित्ते।
महान्ति तनुमूलानि चिछ्व्वेव बिलनो दहेत्।
चर्मकीलं तथा चिछ्व्वा दहेदन्यतरेण वा।
पक्षजम्बूपमो वर्ण कारद्ग्धः प्रशस्यते॥ ४८॥

चारस्त्रमाह मावितिमत्यादि—पुन पुनरिति सप्ताहमित्यर्थ । प्राग्दिचणमित्यादि—एतच क्रमोपदर्शन मक्कलार्थमसिद्धिराष्टपुरुषगम्य वा, एप च क्रमो
यस चतुर्ध्वेव पार्थेप्वर्शीस सन्ति त प्रत्येव बीच्यः, यस्य पुनरेकतमपार्थ, तस्य
तदेव दहनीयम, एप च क्रम चारे चारस्त्रेऽमां च । अग्रजमिति अयहकोपममीपस्यम्, अस्य च दाहो वृद्धवैर्धनं क्रियते पायद्ध्यमयात् । पञ्चातिकेनेति पञ्च
निक्षप्रतेन पानादिना सेहियत्वेत्यर्थ । चारेस्य बिह्ना च उभयमेव रेष्ट्मज वातजञ्च दहेत् । रक्षजे पित्तजे पुन चारेस्य दहेत् । चारो हि सर्वत्रैवोचित ।
यदाह सुश्रुत — 'चारस्तु सर्वत्रैवाप्रतिषिद्धो नत्विष्ठ ' इति । अन्यतरेस्यिति
चारेस्य बिह्ना वा । चारेस्य सम्यग्दर्यस्य लच्चमाह पक्षेत्यादि—पक्षजम्मूपमः
क्रियकृष्णवर्स्य हत्यर्थ ॥ ४८॥

गोजीशेफालिकापत्रैरशे संलिख्य लेपयेत्। चारेण वाक्शतं तिष्ठेद् यन्त्रहारं पिघाय च ॥ तञ्चापनीय बीचेत पकजम्बूफलोपमम्। यदि च स्यात् ततो भद्रं नो चिक्तम्पेत् तथा पुनः॥ तचुपाम्बुप्लुतं साज्यं यष्टीकल्केन लेपयेत्। न निम्नं तालवर्णामं बिह्नदग्धं स्थिनासुजम्॥ निर्वाण्य मधुसर्पिभ्यां विद्वसञ्जातवेद्नाम्।
सम्यग्दग्धे तुगाचिरिप्तद्यचन्दनगैरिकैः॥
सामृतै सर्पिषा युक्तैरालेपं कारयेद्भिषक्।
मुद्वर्तमुपवेश्यासौ तोयपूर्णेऽथ माजने॥
चारमुष्णाम्बुना पाथ्यं विवन्धे मूत्रवर्वसोः।
दाहे वस्त्यादिजे लेप शतधौतेन सर्पिषा॥
नवात्रं माषतकादि सेव्यं पाकाय जानता।
पिवेद् वण्विशुद्धवर्थं वराक्ताथं सगुग्गुलुम्॥
जीर्णे शाल्यन्नमुद्गादि पथ्य तिक्ताज्यसैन्धवम्।
कृढसर्वव्रणं वैद्यः चारं द्वानुवासयेत्।
पिप्पल्याद्येन तैलेन सेवेद्दीपनपाचनम्॥ ४६॥

प्रतिमार्णियचारो यथोपयोज्यस्तदाह गोजीत्यादि —गोजी शाखोटक । चारेण लेपयेदित्यन्वय । लध्वचरीचारखकालो वाक्, तस्या शत, छोटीशत वा । यन्त्रद्वार गुदस्थितयन्त्रस्य द्वार पिधाय कर्पटादिना ढक्कयित्वा । पक्क म्मूफलोपम सम्यग्दग्धे, हीनदग्धे तु ले।हित भवति । यदाह वाग्भट — पक्तनम्बूनिम शस्त सम्यग्दग्ध विपर्य्यात् । ताम्राभ तोदकण्ड्वाढ्य दुर्गन्ध तत पुनर्रहेत् । श्रतिदग्धे स्रवेद्रक्त मृच्छां-दाहज्वरादयः । गुदे विशेषाहिरमूत्रसरोधो वातिवर्चनम् । वातिपेचप्रशमनी शीता तत्र किया हिता' इति । तुषाम्यु काश्विकम् । न निम्नमिलादिना सम्यग्वहिदग्ध-लज्ञयम् । विद्वदम्धिमिति विद्वना सम्यग्दम्ध, न निम्नमित्यादि लज्ज्ययुक्त भव-तीत्यर्थ । तालवर्णाभिनित पक्षतालसमवर्णम् , तालवृन्ताभिनित पाठेऽपि पक्ष-तालवन्तसमवर्णमित्यर्थ । स्थितास्रजमिति स्थितरक्षम्, एतच यदा अर्शरिखत्वा टहाते तदा श्रेयम् । दाहश्च शिरामद्वीचलेन रक्तस्तम्मक इति । दाहानन्तर यदि-धेय तदाह निर्वाप्येत्यादि-सम्यग्दग्धेऽरीसीत्यर्थ । तुगाचीरी वंशलोचना, तदमावे तालचीरी, सच पर्कटि , तस्य वल्कलम् , श्रम्ता गुद्द्ची, यद्यपि गुद्र्ची पाकादुम्लावीच्या तथापि स्पर्शाच्छीतैव, यथा काजिकमम्लमपि मच्चलात् पित्तकर स्परेंग शातिमिनि कृत्वा पित्तहर मवति, तेन गुहून्या निर्वापण्यतं चिन्त्यमिति केनचिदुक्तम्, तदप्यपास्तम्, किं वा उष्णवीर्य्याया अभि गुङ्क्या द्रव्यान्तर-सयोगमहिस्त्रवात्र दाहप्रशमकत्व द्वेयम् । तोयपूर्णं इति को स्वतीयपूर्णं इत्याहु.।

चारमुष्णाम्ब्रेनेति, चार यवचारम् । वराकाधनिति वरा त्रिफ्ला, तिकाज्य पश्च-निक्तपृतम् । चार ठत्त्वेनि चारवस्ति दत्त्वा चारविन्तित्रानानन्तर पिप्पन्यादेन तैनेनानुवामयेतिन्यर्थ ॥ ४६ ॥

## त्रिशुखं लीहम्

त्रिनृचित्रकनिर्गुएडीस्त्रहीमुरिडतिकाखटाः । प्रत्येकशोऽप्रपत्तिका जलहोग् विपाचयेत्॥ पलत्रयं विडद्गस्य व्योपात् ऋर्पत्रयं पृथक्। त्रिफलायाः पञ्चपलं शिलाजतुपलं न्यसेत्॥ दिच्योपधिहतस्यापि वैकद्भतहनस्य वा। पलद्वादशकं देयं रुक्मलोहस्य चृर्णिनम् ॥ पलैश्चतुर्विशतिभिर्मधुशर्करयोर्युतम्। घनीभूते सुशीते च टापयेटवतारिते ॥ एतटब्रिमुखं नाम दुर्नामान्तकरं परम्। सममन्त्रि करोत्याश्च कालाग्निसमतेजसम्॥ पर्वता श्रपि जीर्ज्यन्ति प्राशनाटस्य देहिन । गुरुवृष्याश्रपानानि पयो मांसरसो हितः॥ दुर्नामपाएडभ्वयथुकुष्टसीहोष्टरापहम्। प्रकालप्लितञ्चेतदामवातगुदामयम् ॥ न स रोगोऽस्ति यञ्चापि न निहन्यादिदं चण्ति। करीरकाञ्जिकादीनि ककारादीनि वर्जयेत्। म्रवत्यतोऽन्यथा लोहं देहाद् किट्टञ्च दुर्जरम् ॥४०॥

प्रमिद्धफलमग्निमुखनौहमाह त्रिष्टश्चित्रकेत्याटि—मत्र मुखिदितिका मुख्टिरी
भव्जदा मून्यामलकी, भव्या स्थाने जेटित पाठे त्रिष्ट्यदीना मूर्लामल्यमं । एपाञ्च जलहोण क्षामश्चतुर्यमागाविष्टि योडगशरावरूपोऽर्थवशादेव मिद्ध । प्रथितस-नेन स्योपन्य प्रत्येक त्रिक्षयमानन्त्रम्, त्रिफलायात्र मिलित्वा पञ्च पलानि । एवा त्र विडङ्गादिशिलाजलन्त्रचूर्णाना पाकावतारसमये प्रदेष । दिन्योपि स्वर्णमान्तिक मन शिला वा गालिकोकनो वा, अन्यत्र तु मन शिलाहतस्यिनिपाठान्तरदर्शवा- न्मन शिलेति युक्तम् । लीहमारकत्वात् तु मर्नाययेवाविरुद्धानि । वैकद्कतहतस्य वेति राढाया विह्निति ख्यातम् । विन्तु मर्नायाया विह्निति ख्यातम् । किन्तु मर्नायामान्निकादिक विना मम्यग् लीहमारण न सिन्यति, अवश्य तत्साधन इयसमुच्येनापि कर्त्तव्यम् । म्वमलीह कान्तव्यतिरिक्त वज्रपायक्यादिकृष्णलीहम् ; तदुक्तं विषयटी 'तीह्त्यमय उत्तरापथिष्यट क्वम क्वमकुट्टि कृष्णलीहनामानि '। अत्रानुक्तस्यापि गव्यष्टतस्य चतुर्विशतिपलानि पाकारम्भममय एव वृद्धवेधदीयन्ते, दित विना किचिद्रपि लीहस्य पाकादर्शनात्, अत एव किचित् पलैश्चतुर्विशलाच्य-शर्करयोरपीति पाठान्तर केचित् पठिन्त । मधुशक्तरयोश्चतुर्विशतिपलानि मिलित्वा मर्करयोरपीति पाठान्तर केचित् पठिन्त । मधुन प्रदेशः, तेन शर्कराया द्वादश-पलानि, मधुनो द्वाटश पलानि, वृतस्य च चतुर्विशतिपलानीति । मच्चपविधिरचनमारलीहनत् ॥ ५०॥

## भन्नातकलौहम्

चित्रकं त्रिफला मुस्तं श्रन्थिकं चित्रकाऽस्ता।
हिस्तिपिण्णल्यापामार्गदग्डोत्पलकुठेरकाः॥
एपां चतुष्णलान् भागान् जलद्रोणे विपाचयेत्।
भक्षातकसहस्रे हे छिच्चा तत्रैव दापयेत्॥
तेन पादावशेषेण लौहपाते पचेद्भिषक्।
तुलाई तींच्णलौहस्य घृतस्य कुडवद्धयम्॥
च्यूपणं त्रिफला विहः सैन्धवं विडमोद्भिदम्।
सौवर्चलविडद्गानि पलिकांशानि कल्पयेत्।
कुडवं वृद्धदारस्य तालमूल्यास्तथैव च॥
श्रूरणस्य पलान्यधौ चूर्णं कृत्वा विनिच्चिपेत्।
सिद्धे शीते प्रदातव्यं मधुनः कुडवद्धयम्॥
प्रातमोजनकाले च तत खादेद् यथावलम्।
श्रशांसि ग्रहणीदोषं पाग्रहरोगमरोचकम्॥
किमिश्रहमाश्मरीमेहान् श्रूलञ्चाश्च व्यपोहिति॥
करोति शुकोपचयं चलीपलितनाशनम्।

#### रसायनमिदं श्रेष्ठं सर्वरोगहरं परम् ॥ ४१ ॥

मह्मातकलीहे कुठेरक. पर्णाश । मह्मातकसहस्रे हे हत्याकृतिमानात् । तत्र-विति जलहोणे । तीच्यालीहस्येति वज्रपायस्वादिलीहस्य । गन्यप्रतस्य कुष्टवद्वयमिति हैगुययात् पोडश पलानि, एव मधुनोऽपि । मिद्धे च व्य्प्यादीना प्रचेष , सर्व-मपरमस्ततसारवत् । श्रज्ञासृतसारोकविधिना पुटित यथान्याधि प्रत्यनीकद्रन्यपुटि-तञ्ज लीह आहा, मच्चयानिविधिरपि तथैव ॥ ५१ ॥

## रसगुडिका

रुसस्तु पादिकस्तुल्या विडद्गमरिचाश्रकाः।
गद्गापालद्गजरसे खल्वयित्वा पुन पुन ॥
रिक्तमात्रा गुदार्शोद्यी बह्नरत्यर्थदीपनी ।
वेगावरोधस्त्रीपृष्ठयानमुत्कटकासनम्॥
यथास्व दोपलञ्चान्नमर्शस परिवर्जयेत्॥ ४२॥

#### इति अशीश्चिकित्सा ।

रसस्तु पादिक इति विडङ्गादीनामेकतमभागापेत्तया, तेन विटङ्गमरिचाञ्च-काणा प्रत्येक त्रयो भागा , पारदस्येको भाग इत्यर्थ । शोधितपारद २ माषा, मारिताञ्चचूर्ण विडङ्ग मरिच, प्र०६ माषा । ग्रन्थान्तरेऽपि रसभागापेत्तया विडङ्गम-रिचाञ्चकाणा प्रत्येक मागत्रयमुक्तम् । गङ्गापालद्गिति पालङ्कसदृशपत्र गङ्गापालङ्ग, गाङ्गराइ इति ख्यातम् । पुन पुनरिति महाहमात्र कृत नियम इत्यर्थ । रसाञ्चक शोधनञ्च जुधावत्युक्तविथयेव विधेयम् । पृष्ठयान हस्त्यश्वादिपृष्ठे गमनम् ॥ ५२ ॥ इति अशीक्षिकित्साविष्ठति ।

# अथाग्निमान्द्यचिकित्सा ।

समस्य रत्त्रणं कार्य्यं विषमे वातनिग्रहः। तीत्त्र्णे पित्तप्रसीकारो मन्दे ऋष्मविशोधनम् ॥१॥ श्ररं.कार्य्ववात् तदनन्तरमग्निमान्चादिचिकित्सामाह समस्यत्यादि—रच्चण-मिति पालनम् । वातनिग्रहो वातस्य प्रशमनमित्यर्थ ॥ १॥

हिङ्ग्वष्टकं चूर्णम्

त्रिकडुकमजमोदा सैन्धवं जीरके हे समधरणधृतानामष्टमो हिंगुभागः। प्रथमकवलभुक्तं सर्पिषा चूर्णमेत-

ज्जनयति जठराग्नि, वातरोगांश्च हन्यात् ॥२॥

त्रिकटुकिमित्यादि—वाग्मटेनाय योगो गुल्माधिकारे पठित । अजमोदा यमानी, एव सर्वत्रान्त.परिमार्जने, वहि.सम्मार्जने पुनरजमोदेव, उक्त हि 'अन्त -मम्मार्जने प्रायोऽजमोदा च यमानिका । वहि सम्मार्जने श्रेया चाजमोदाऽजमोदिका' इति । समधरणधृतानामिति धरण तुला, तया सम यथा स्यात् तथा धृतानाम्, अन्ये तु पलदशमाशो धरणम्, समाश्च ते धरणधृताश्चेति विग्रह । अष्टमो हिंगु-माग इति त्रिकट्वादीना सप्तभागास्तदेकभागसमो हिंगुभाग इत्यर्थ । वातरोगाश्च इन्तीत्वत्र वाग्मटे वातगुल्माश्च इन्तीति कचित् पाठ ॥ २॥

> समयवश्कमहौषधचूर्ण लीढं घृतेन गोसर्गे । कुरुते चुघां सुखोदकपीतं विश्वीषधं वैकम् ॥ ३॥

समेत्यादौ--यवश्को यवचार । विश्वीषध वैकमिति वाशब्द पूर्वयोगाः पेचया, इवार्थे वाशब्दो वा । गोसर्गे गो सर्व्यकिरणस्य सर्गे मोचे प्रातिरत्यर्थ ॥३॥

> श्रन्नमण्डं पिवेदुष्णं हिंगुसौवर्चलान्वितम्। विषमोऽपि समस्तेन मन्दो दीप्येत पावकः॥४॥

श्रत्नमग्रहमित्यादि —श्रत्नस्य मण्ड श्रत्नमण्ड इति केचित् । श्रन्ये तु चतुर्दशगुणाम्बुसाधित एव मण्डे।ऽन्नमण्डशब्देनोच्यते, श्रन्नपद सुरामण्डादि-निरासार्धमित्याहुः ॥ ४ ॥

**अन्नम्पर्युगाः** 

चुद्वोघनो वस्तिविशोधनश्च प्रागुप्रदः शोगितवर्द्धनश्च।

#### ज्वरापहारी कफपित्तहन्ता वायुं जयेदष्रगुणो हि मगड ॥ ४॥

चुद्दोवन इत्यादि—अष्टगुणो हि मण्ड इति — सुतण्डुलाना प्रस्तद्रयन्य (तद्दं मुद्द व दुकतक) कुस्तुम्बुरु सैन्धविध्युतैलम् । पिश्व सर्वे मण्ड इत्यस्यानन्तर-मेव । यद्यीप माधवकरेण द्रव्यगुणे सुतण्डुलेत्यादिवचनान्तर चुद्दोधेनत्यादि पद्य पित तथाप्यन्नमण्डस्यापि मण्डल्वमामान्यादेतत् गुणाष्टक श्रेयम् । कुस्तुम्बरु धन्याक्, तश्च मनाग्मृष्ट ग्राह्मम्, विधि पुनरस्य यधोक्तमानी तण्डुलमुद्दो तक्षजले युक्त्या दत्वा विपाच्य मण्डो ग्राह्म । पश्चात् त्रिकटुकादिभियेथा मस्कार इति ॥ ४ ॥

#### तीच्णामिचिकित्सा

नारीज्ञीरेण संयुक्षां पिवेदौह्यन्यरीं त्वचम्। श्राभ्यां वा पायसं सिद्धं पिवेदत्यग्निशान्तये॥ यत्किञ्चिद् गुरु मेध्यञ्च श्रेष्मकारि च भेषजम्। सर्व तदत्यग्निहितं भुक्त्वा प्रस्वपनं दिवा॥६॥

श्रायशिचिकित्मामाह नारीचीरियेत्यादि—उडुम्बरत्वचः कर्ष , पायमपचे तु उडुम्बरत्वच पलम् , तर्ग्डल नारीचोरञ्चानुरूप दत्त्वा पायम कार्थ्य । यत्किञ्चि-दित्यादि महिपोदुरथादि ॥ ६ ॥

#### ्र मुहुर्मुहुरजीर्णेऽपि भोज्यमस्योपकरुपयेत्। ् निरिन्धनोऽन्तरं लब्ध्वा यथैनं न निपातयेत्॥ ७॥

मृदुर्मुदुरित्यादि न्तथाजीर्थाऽपि मुदुर्मुदुर्मोज्यमस्योपकल्पयेत्, यथा निरिन्धनोऽप्ति, श्रन्तरिमित्यवकाण लब्ध्वा, एनमातुर न निपातयेत् न मारयेत्, धातु-पाकादिति भाव । उक्त हि " श्रहारमित्र पचित दोपानाहारवितत । धातृन् क्षीयेषु न जीवेद् धातुसच्चये " इति ॥ ७॥

विश्वाभयागुङ्गचीनां कपायेण षङ्कपण्म् ।

पिवेत् श्रेष्माणि मन्देऽग्नौ त्वक्पत्रसुरभीकृतम् ॥
पञ्चकोलं समरिचं पङ्कपण्मुदाहृतम् ॥ = ॥
विश्वामयेत्यादि—लक् गृष्टलक्, लक्षप्रे सुरमिमात्रलकारके देये । पञ्च-

कोल समरिच पद्मणामिति, तदुक्त 'मरिच पिप्पली शुएठो त्र्यूषण ममुदाहृतम्। पिप्पलीम्लस्युक्त चतुरूषणमुच्यते। माग्नि पञ्चोषणञ्चैव सचन्यञ्च षद्मणम् ' इति । पतच षद्भणा प्रचिपविषये श्रेयम् ॥ = ॥

## हरीतकी भक्त्यमाणा नागरेण गुडेन वा। सैन्धवोपहिता वापि सातत्येनाग्निदीपनी॥ ६॥

हरीतकीत्यादि—सुश्रुतस्य । योगत्रयमेतत्, शुरुव्या कफे, गुडेन नाते, मैन्धवेन दोषत्रुग्रेऽपि विरोषाद्वातकफे ॥ ६ ॥

#### सिन्धृत्थपथ्यमगधोद्भवविद्वर्याः मुण्णाम्बुना पिवति यः खलु नष्टविद्व । तस्यामिषेण सघृतेन वरं नवान्नं भस्मीभवत्यशितमात्रीमह च्लोन ॥ १०॥

सिन्ध्रथेत्यादि — पथ्या हरीतकी, हस्तत्विमह छान्द्रमत्वात् । मगधोद्भवा विष्पती, अत्रापि पूर्ववद् हस्ववत्वम् । वर प्रकृष्टमिति यावत्, मासवताभ्यामधिकः मपीत्यर्थ । केचिदिह सन्धवादीना मानभेदार्थ नातिप्रसिद्ध हरिश्चन्द्रमत वर्ण-यन्ति । तद्यथा — हरीतकी हरिहरतुल्यषङ्गुणा चतुर्गुणा चतुरविना मपिष्पती । दिचितक वरवदनेकसैन्थव रमायन कुरु नृप विद्वदीपनम् ' इति । व्यवहारस्तु समभागेनेति ॥ १ • ॥

#### ्रिसन्धृत्यहिंगुत्रिफलायमानी-व्योषेर्गुडांशेर्गुडिकान् प्रकुर्यात् । तैर्माचतैस्तृप्तिमवाष्नुवन् ना भुक्षीत मन्दाग्निरपि प्रमृतम् ॥ ११ ॥

निन्ध्र्थेत्यादी—गुडाशैरिति एकद्रव्यसमीऽत्र गुडभाग , प्रायेख हि श्रेष्मा-थिकेऽग्निसादे श्रेष्मिण च गुडो बहुतरो न युक्त इत्याहुरेके । अन्य तु सर्वचूर्णा-पेख्या द्विग्रयो गुड , तसाद् गुडादर्ब समुदितचूर्णम् , तेन गुडाशिनित, मोदके द्विगुणो गुड इति वचनमनुगृहीत भवतीत्याहु । तृप्तिमवाप्नुविश्वति मन्दाग्निरि तावद् प्रभूत मुद्दे यावद् तृप्तिमवाप्नोति । अनाप्नुविश्वति पाठे पुनरत्यिन्नित्वाद् प्रभूतभोजनेऽपि न तृप्तिमाप्नोतित्यर्थ ॥ ११॥

#### विडद्गभन्नातकचित्रकासृताः सनागरास्तुल्यगुडेन सर्पिपा। लिद्दन्ति ये मन्दहुताशना नरा भवन्ति ते वाडवतुल्यवंद्वयः॥१२॥

निडगेत्यादि — तुल्यगुडेनेत्यत्र युक्ता इत्यध्याहार्थ्यम् तेनैव भागममा गुड । केवलप्रतेनैव लिहन्तीति व्याख्यानयन्ति केचित् । श्रन्ये तु तुल्यगुडेनेति पद मिंप-विरोषण वर्णयित्वा ममुदितचूर्णपेष्वया द्विगुणेन मिलित्वा गुटमिंपा लेह इति व्याचचते, युक्तष्ठेतत् नागार्जुनोक्तवचनसवादात्; तथा हि " मञ्जूर्णिता गुङ्ची विष्ठगमञ्जातकनागरहुताशां । ज्वलयन्ति जठराश्चिं ममेन गुडमिंपा लीढा " इति ॥ १२ ॥

#### गुडेन शुराठीमथवोपकुल्यां पथ्यां तृतीयामथ दाडिमं वा । श्रामेष्वजीरोपु गुदामयेपु वर्षोविवन्धेषु च नित्यमद्यात् ॥ १३॥

गुढेन शुण्ठीमित्यादि—पथ्या तृतीयामिति समस्तमममस्तन्न । तत्र समस्त-पचे गुढेनेति पदम्, तथा पथ्या तृतीयामिति पदन्न शुण्ठ्यादिषु प्रत्येक योज्यम्, तेन गुढेन पथ्या तृतीया शुण्ठीमित्येको योग । तथा गुढेन पथ्या तृतीयामुपकुल्या-मिति द्वितीय । तथा गुढेन पथ्या तृतीय दाढिममिति लिङ्गिविपरिणामेन योज्यमिति योगत्रय यथामख्यमामाजीर्णादिषु रोगेषु योज्यम् । यत्तु गुटशुण्ठीमच्या गुढिपिप्पलीमच्या वा, तदिसन् व्याख्याने प्रयोगान्तरमेन । यदा तु पथ्या तृतीयामित्यसमस्तपाठस्तदा गुढेनेति पद शुण्ठ्यादिषु चतुर्षु प्रत्येक योज्यम् । तेन चलारो योगा यथाक्रममामादिषु योज्या । श्रिसन् पचे तृतीयामिति पद योग-न्यवच्छेदार्थं श्रेयम् ॥ १३॥

#### भोजनाग्रे सदा पथ्यं जिह्नाकएठविशोधनम्। अग्निसन्दीपनं हृद्यं लवणाद्रीकभक्तणम्॥ १४॥

मोजनान्ने इत्यादि स्पष्टम्—इमन्तु योग सर्वेऽप्यादियन्ते प्रत्यच्नफलत्वात् सङ्जलभ्यत्वाच ॥ १४॥

कपित्थतकचाङ्गेरीमरिवाजाजिवित्रकै । कफवातहरो ग्राही खडो दीपनपाचन ॥ १४॥

किपित्येत्यादी — कफनातहर इत्येव पाठ , न तु कफापित्तहर इति, हन्यगुग्-पर्स्यालो चनया किपित्यादीना वातकफहन्तृत्वात् । खड इति यूषविशेषस्य पारि-भाषिको सञ्चा, अस्य विधानस्रातीसाराधिकार पनोक्षम् ॥ १५॥

## शार्दूलकाञ्जिकः

पिष्पली श्रङ्गवेरश्च देवदार सवित्रकम् ।
चित्रकां विल्वपेशीश्चाजमोदाश्च हरीतकीम् ॥
महौपधं यमानीश्च धान्यकं मरिचं तथा ।
जीरकश्चापि हिडुश्च काञ्जिकं साधयेद्भिषक् ॥
एप शार्वूलको नाम काश्जिकोऽग्निबलप्रदः ।
सिद्धार्थतेलसम्भृष्टो दश रोगान् व्यपोहति ॥
कासं श्वासमतीसारं पाग्रहरोगं सकामलम् ।
श्चामश्च गुल्मश्लश्च वातगुल्मं सवेदनम् ॥
श्चर्शासि श्वयथुश्चैव भुक्ते पीते च सात्म्यत ।
चीरपाकविधानेन काञ्जिकस्यापि साधनम् ॥ १६ ॥

विष्पलीत्यादी—विल्वपेशी विल्वशलाड , शृद्धवेरम् आर्द्रकम् । पाकात् त्रिमागरोषे किञ्चके कडतेले सन्तलनम् , हिंगुजीरकयेश्च प्रचेप इत्युपदिशन्ति षृद्धा । सात्म्यतोऽभ्यासादित्यर्थ । चीरपाकविधानेनेति द्रव्यादष्टगुण चीरमित्यादि-परिमापया, अतएवेशकमन्यत्र " चीरमस्त्वारनालाना नास्ति पाकोऽम्मसा विना । मम्यक् पाको न गच्छेतु तस्मात् तोय चतुर्गुणम् " इति ॥ १६ ॥

## अग्निमुखं चूर्णम्

हिङ्गुभागो भवेदेको वचा च हिगुणा भवेत्। पिप्पली त्रिगुणा चैव श्रङ्गवेरं चतुर्गुणम्॥ यमानिका पश्चगुणा पड्गुणा च हरीतकी। चित्रकं सप्तगुणितं कुष्ठश्चाष्टगुणं भवेत्॥ एतद्वातहरं चूर्णं पीतमात्रं प्रसन्नया।
पिवेद् दक्षा मस्तुना वा सुरयां कोप्णवारिणा॥
सोटावर्चमजीर्णञ्च मीहानमुदरं तथा।
श्रद्धानि यस्य शीर्थ्यन्ते विपं वा येन भिन्तम्॥
श्रशोंहरं दीपनञ्च श्लेप्मझं गुल्मनाशनम्॥
कासं श्वासं निहन्त्याशु तथैव यदमनाशनम्॥
चूर्णमश्रिमुखं नाम न कचित् प्रतिहन्यने॥ १७॥

हिंगुमाग इत्याटी—दिगुणिस्याद्यमागापेचया एव त्रिगुरोति । प्रसन्नयेति सनिम्ब्बाते, टप्नेति त्रुढवाते, मन्तुनेति अन्यकफवाते, सुरया कफवाते, उप्ण-वारिया सामवाते कफे च ॥ १७॥

## पानीयभक्तगुडिका

रसोऽईभागिकस्तुल्या विडहमरिचाभ्रका । भक्नोद्केन सम्मर्ध कुर्याद् गुञ्जानिभान् गुडान ॥ भक्नोदकानुपानेन सन्या विह्नप्रदीपनी। वार्य्यवभोजनञ्जात्र प्रयोगे सात्म्यामिष्यते ॥ १= ॥

पानीयमक्तगृटिकाया—्मोऽइंसागिक इत्येकसानापेच्या, केचित्रत्र कन्न-हिकार्थ मन्याई गन्धक दिपान । विट्ठाईग्ना प्रत्येक रमापेच्या द्विगुणो माग । क्रगोंऽधिकारेक्षरमगुटिकायान्तु विट्ठादीना रसापेच्या प्रत्येक त्रिगुणो भाग इति नेद । सक्षोठकेनेत्यत्रमक्तपानीयेन ॥ १= ॥

## बृहद्शिमुखं चूर्णम्

हैं। जारौ चित्रकं पाठाकरञ्जलवणानि च । स्टमलापत्रकं भागीं किमिश्नं हिंदु पौष्करम् ॥ शटी दावीं त्रित्रुन्मुस्तं वचा सेन्द्रयवा तथा । धात्रीजीरकवृत्ताम्लं श्रेयसी चोपकुञ्चिका ॥ श्रम्लवेतसमम्लीका यमानी सुरदारु च । श्रम्यातिविषा ज्यामा हवुपारन्वधं समम् ॥ तिलमुष्ककशिशृणां कोकिलाचपलाशयोः।
चाराणि लौहिकिष्टञ्च तप्तगोमूत्रसेचितम्॥
सर्वाणि समभागानि स्ट्रमचूर्णानि कारयेत्।
मातुलुद्गरसेनेव भावयेच दिनत्रयम्॥
दिनत्रयञ्च श्रुक्तेन चार्द्रकस्वरसेन च।
श्रत्यशिकारकं चूर्णं प्रदीप्ताशिसमप्रभम्॥
उपयुक्तविधानेन नाश्यत्यचिराद्गदान्।
श्रजीर्णकमथो गुल्मं सीहानं गुदजानि च॥
उदराण्यन्त्रचुद्धिञ्च श्रष्ठीलां वातशोणितम्।
प्रसुद्दयुल्चणान् रोगान् नएमशिञ्च दीपयेत्॥
समस्तव्यञ्जनोपेतं भक्तं दत्वा सुभाजने।
दापयेदस्य चूर्णस्य विडालपद्मात्रकम्।
गोदोहमात्रात् तत् सर्वं द्रवीभवित सोष्मकम्॥१६॥

वृहदिग्नमुखे—करः करः कम्लस्य त्वक्, यत्तु एतस्य सुश्रुतेन कोविदार-पूर्वाणा फलिम्त्यनेन फलग्रहणसुपिद्ष्षम्, तच्छोधनविषय श्रेयम् । लवणानि पञ्चलवणानि, वृत्तान्ल महादंक, श्रेयमी गजिपपली, एव सर्वत्राग्निदीपनयोगे, वाते पर श्रेयस्या रास्ना गृह्यते । उपकुञ्चिका स्वल्पकृष्णजीरकम्, श्रम्लिका तिन्तिडी एव मर्वत्राग्निदीपनयोगे । पुरीप—सग्रहादौ, पुनरिक्तका चाहेरी गृह्यते । स्यामा वृद्धदारकः श्रारम्वथस्य फलम्, तिलशच्देनात्र तिलनालग्रहण चारार्थत्वाद्, मुष्कक घण्टापारुलि लौहिकष्ट मण्डूरम्, तच्च पुराण ग्राह्मम् । जेज्जटस्य किष्ट पृथ्यनेव पार्थिवद्य्व्य मण्ड्रादिति । तप्त गोमूत्रसेचितमिति श्रश्चवर्ण कृत्वा सप्तथा गोमूत्रानिवीपितमित्यर्थ, एव सर्वत्र मण्ड्ररशोधन होयम् । गुक्तेनिति ग्रहण्युक्त-मन्धानिवेशपेण, तदमावे काजिकेन । एवमन्यत्रापि वोध्यम् । गोदोष्टमात्रात् गोदोहनमात्रकालात् ॥ १६॥

#### भास्करलवणम्

पिष्पत्ती पिष्पत्तीमूलं धन्याकं कृष्णजीरकम् । , सैन्धवञ्च विडञ्चैव पत्रं तात्तीशकेशरम् ॥ एपां द्विपलिकान् भागान् पत्र्व सीवर्चलस्य च। मरिचाजाजिश्रएठीनामेकैकस्य पर्लं पलम् ॥ त्वगेले चाईभागे च सामुद्रात् कुडवद्रयम् । राडिमात् कुडवञ्चैय द्वे पले वाम्लवेतसात्॥ पतच्चूर्णीकृतं श्रक्षं गन्धाद्यमसृतोपमम्। लवणं भास्करं नाम भास्करेण विनिर्मितम्॥ जगतस्त हितार्थाय वातन्हेण्मामयापहम्। वातगुल्मं निद्दन्त्येतद् वातश्रूलानि यानि च। तकमस्तुसुरासीधुशुक्तकाश्चिकयोजितम्॥ जाङ्गलानान्तु मांसेन रसेषु विविधेषु च। मन्दाग्नेरञ्जत शक्तो भवेदारवेव पावकः॥ श्रशीसि प्रह्मीदोपं कुष्टामयभगन्डरान् । हद्रोगमामदोपांश्च विविधानुदरस्थितान्॥ प्तीहानमश्मरीञ्चैव श्वासकासोदरिकमीन्। विशेपत शर्करादीन् रोगान् नानाविघांस्तथा। पारिहरोगांश्च विविधान् नाशयत्यशनिर्यथा ॥ २०॥

भान्करलवरो — केशर नागेकरारपुष्पम् । पञ्च मैनवंतस्यति पञ्चपलानि सीवर्जलस्येत्यर्थे । त्वगेले चार्द्धमागिके इति पलापेचया, तेन त्वगेलयो । प्रत्येकमर्द्धपलमित्यर्थे । गन्थाट्यमिति पत्रनालोशादिद्वन्ययोगादेव, न पुनर-परचातुर्जातप्रचेपेस् ॥ २०॥

अग्निघृतम्

पिष्पली पिष्पलीमूलं चित्रको हस्तिपिष्पली।
हिंगु चव्याजमोदा च पञ्चैच लवणानि च ॥
हो चारो हबुपा चैच ट्याटईपलोन्मितान।
टिघकाञ्जिकग्रक्तानि स्नेहमात्रासमानि च ॥
श्राद्रक्तसरसम्पर्धं घृतप्रस्थं विपाचयेत्।
पतटित्रघृतं नाम मन्टामीनां प्रशस्यते ॥

श्रशंसां नाशनं श्रेष्ठं तथा गुल्मोदरापहम्। ग्रन्थ्यर्धुदापचीकासकफमेदोऽनिलानिष ॥ नाशयेद् ग्रह्णीदोषं श्वयथुं समगन्दरम् ॥ ये च वस्तिगता रोगा ये च कुक्तिसमाश्रिताः। सर्वीस्तान् नाशयत्याश्च सूर्य्यस्तम इवोदित ॥ २१ ॥ पिप्पलीत्यादि—स्वल्पाधिष्टते हिस्तिपप्पली गजपिप्पली; श्रजमोदा बस्त-गन्धा ( वनयमानी ), दौ चारौ यवचार सर्जिकाचारश्च ॥ २१ ॥

## मस्तुषद्पलकं घृतम्

पितकः पञ्चकोलस्तु घृतं मस्तुचतुर्गुग्म् । सत्तारेः सिद्धमल्पाशिकफगुल्मं विनाशयेत् ॥ २२ ॥ मस्तुपट्पलके—धतस्य प्रस्य , 'श्रनिदिष्टप्रमाणाना स्नेहाना प्रस्य स्थतः' स्त्युक्ते । पिलके प्रत्येकशः , कल्कस्तु स्नेहपादिक स्त्युक्ते ॥ २२ ॥

## बडवामुखचूर्णम्

पथ्यानागरकृष्णाकरञ्जविल्वाग्निभिः सितातुल्यैः । वडवामुखं विजयते गुरुतरमपि भोजनं चूर्णम् ॥ २३ ॥ पथ्यत्यादौ—कृष्णा विष्पती, श्रविश्वत्रकः ॥२३॥

#### **ब्हद्शिघृतम्**

भक्षातकसहस्राई जलद्रोणे विपाचयेत्।
श्रष्टभागावशेषञ्च कषायमवतारयेत्॥
घृतप्रश्रं समादाय कल्कानीमानि दापयेत्।
ज्यूषणं पिष्पलीमूलं चित्रको हस्तिपिष्पली ॥
हिंगुचव्याजमोदा च पञ्चैव लवणानि च।
द्यौ चारौ हबुषा चैव द्यादईपलोनिमतान्॥
दिधकाञ्जिकश्रुक्कानि स्नेहमात्रासमानि च।
श्राद्देकस्वरसञ्चैव शोभाञ्जनरसं तथा॥
वत्सर्वमेकतः कृत्वा शनैर्मृद्दश्चिना पचेत्।

एतद्भिष्टृतं नाम मन्दाग्नीनां प्रशस्यते ॥ श्रशेसां नाशनं श्रेष्ठं मूदवाताजुलामनम्,। कफवातोद्भवे गुल्मे स्त्रीपदे च दकोदरे ॥ शोधं पाएड्वामयं कासं श्रह्णीं श्वासमेव च। एतान् विनाशयत्याशु तमः स्ट्ये इवेदितः ॥ २४॥

बृहद्शिष्टते—महातकमहस्तार्द्धिमत्याकृतिमानात् , शोभाक्षनरम शोमाधनस्य मृलस्य स्वरम ॥ २४ ॥

#### चारगुड:

द्वे पञ्चमूले विफलामकमूलं शतावरीम्। दर्न्ती चित्रकमास्फीतां रास्नां पाठां सुधां शटीम् ॥ पृथग्दशपलान् भागान् दग्ध्वा भस्म समावपेत्। तिःसप्तकृत्वस्तद्भस्म जलद्रोणे च गालयेत्॥ तद्रस साधयेदशौ चतुर्भागावशेषितम्। ततो गुडतुलां दच्चा साघयेन्सृदुनाग्निना ॥ सिद्धं गुडन्तु विशाय चूर्णानीमानि दापयेत्। वृश्चिकालीं द्विकाकोल्यी यवन्नारं समावपेत्॥ एते पञ्चपला भागाः पृथक् पञ्च पलानि च। हरीतकी विकरुकं सर्जिकां चित्रकं वचाम्॥ हिड्ग्वम्लवेतसाभ्याञ्च हे पले तत्र दापयंत्। श्रच्यमाणां गुडिकां कत्वा खादेद् यथावलम् ॥ श्रजीर्णं जरयत्येष जीर्णे सन्दीपयत्यपि । भुक्तं भुक्तञ्च जीर्ध्येते पार्हित्वमपकर्षति ॥ प्तीहार्शः श्वययुञ्चैव श्लेष्मकासमरोचकम्। मन्दाञ्जिविषमात्रीनां कफे कराठोरासि स्थिते॥ कुष्ठानि च प्रमेहांश्च गुल्मञ्चाशु व्यपोहति। ख्यातः चारगुडो होष रोगयुक्ते प्रयोजयेत्॥ २४॥

कारगुडे श्रास्फोता नवमित्तका हाफरमाली इति ख्याता; सुधा स्नुहो, तस्या मूलम् । त्रि मप्तकृत्व इत्येकविशतिवारान् वाराभिधेये कृत्वस्त्रत्ययः । वृश्चि-काली वृश्चिकपत्री, काकोल्यौ काकोलीक्षीरकाकोल्यौ । पते पञ्चपता मागा पृथगिनि च्छेद । पञ्चपतानीत्यत्र पषामिति शेष , तेन हरीतक्यादीना वचान्तानां मिलित्वा पञ्च पलानीत्यर्थः । हिंग्वम्लवेतसयोरिष मिलित्वैव द्वे पते । रोगयुक्त इति न तु स्वम्थे, सौम्यधातुक्तयभयात् ॥ २४ ॥

#### चित्रकगुड:

नासारोगे विधातव्या या चित्रकहरीतकी। विना धात्रीरसं सोऽस्मिन् प्रोक्तश्चित्रगुडोऽग्निदः॥२६॥ <sub>नासारोग स्त्यादि स्पष्टम् ॥ २६ ॥</sub>

## **श्रामाजीर्याचिकित्सा**

विचालवणतोयेन वान्तिरामे प्रशस्यते ॥ २७ ॥

श्रक्षिमान्धाजीर्थयो परस्परकारणत्वादिश्वमान्धप्रकरण एवाजीर्थाचिकिस्सा-माह वचेत्यादि--वचालवणकल्कयुकेनोष्णीदकेन किंवा वचया श्रद्धंश्रुतेनोष्णीदकेन भलवेथेन वा वमनम् ॥ २७ ॥

विद्ग्धाजीर्ग्याचिकित्सा
 श्रत्नं विद्ग्धं हि नरस्य शीव्रं
 शीताम्बुना वै परिपाकमेति ।
 तद्धश्यस्य शैत्येन निद्दन्ति पित्त-

#### माक्केदिभावाच नयत्यघस्तात्॥२८॥

विदग्धाजीर्थाचिकित्सामाह श्रन्नमित्यादि — सुशुतस्य । शीताम्बुना परिपाक-मेतीति यदुक्त तदेवीपपादयति तद्धयस्थित्यादि । हिशब्दो हेतौ । तदिति शीताम्बु; श्रस्याजीर्थिन पित्त निहन्तीत्यन्वय । श्राक्षेदिभावादिति द्रवत्वात् ॥ २८ ॥

विद्द्यते यस्य च भुक्तमातं दह्येत हत्कोष्ठगलञ्च यस्य । द्वाचासितामाचिकसम्प्रयुक्तां लीद्वामयां वे स सुखं लमेत्॥ हरीतकी धान्यतुषेदिसद्धा सपिष्पली सैन्धवहिक्नुयुक्ता ।

#### सोद्गारधृमं भृशमप्यजीर्ण विजित्यसद्यो जनयत् जुधाञ्च ॥२६॥

विदयत इत्यादि — मुश्रुतस्य । मुक्तमाश्रमिति माशराब्द कात्स्न्यें यावद् मुक्तमित्यर्थ , मुक्तमाक्त्ये माश्राब्दो वर्तते । किंवा मुक्तमाश्रमिति मोजनानन्तर, तत्कालमेवेत्यर्थ । 'श्रुश्न विदय्ध हि नरस्य शीघ्रम् श्रे इत्यादि वाक्य, तथा 'विद्यति तस्य तु मुक्तमाश्रम् श्रे इत्यादि वाक्य, तथा 'मवेदजीर्ण प्रति यस्य शद्दा' इत्यादि वच्यमायन्तु सौश्रुतवचनमनार्थमिति, श्रजीर्णे मेषजनिषेधम्य स्वयमेव सुश्रुतेनोक्त-त्वात्, लद्द्वनाधुपदेशाञ्च, ततश्च केनाप्यश्चवैद्यन पसर्ववेचन प्रकल्पित योगश्रयमिद-मित्याह केज्जट । श्रपरे तु प्रचाराद् भूरिपाठदर्शनाच्च योगश्रयमेतदर्थं मन्यन्त एव, किन्तु स्वल्पाजीर्थं वोध्यमेतत्, प्रभूताजीर्थे तु भेषजसम्बन्ध न कुर्यात् , श्रत्पाजीर्थे तु श्रीपध सेव्यमिति । इरीतकीत्यादी — धान्यतुपीद मन्धानविशेष , तदमावे काजिक, तेन मिद्धा उत्स्विश्चा ॥ २६ ॥

## विष्टब्धाजीर्श्यचिकित्सा

्रविष्टच्धे खेदनं पथ्यं पेयञ्च लवणोदकम् ॥ ३० ॥
रसशेपे दिवास्त्रप्तो लड्डन वातवर्जनम् ।
व्यायामप्रमदाध्ववाहनरतक्कान्तानतीसारिण्
श्र्लश्वासवतस्त्रपापिरगतान् हिक्कामरुत्पीडितान् ।
स्रीणान् सीणकफाञ्चिश्रन् मदहतान् वृद्धान् रसाजीर्णिनो
रात्री जागरिताम्नराम्निरशनान् कामं दिवा खापयेत् ॥ ३१ ॥

विष्टन्थाजीर्णचिकित्सामाह विष्टन्थ इत्यादि । लवणोदक सैन्धवयुक्तमुच्णो-दक्तमित्यर्थ । रसरोप दिवास्त्रम इत्यल्पदोपापेच्चया, महित च लङ्ग्नमुचितम् । लङ्ग्नमित्य्यं तु लङ्ग्नमुचितम् । लङ्ग्नमित्युपवास , अन्ये तु लङ्ग्नमञ्चेनात्र लाधवकरो विधिरिष्यते, तेन लष्वत्र मया जरणार्थं कालप्रतीच्चण पाचनौपध तथा स्वेदस्य प्राप्यते, न पुनर्लंङ्ग्नमुपवास , दोपस्याल्पत्वादित्याहु । वातवर्जनमिति वातस्यासेवनम् । व्यायामित्यादि । रतिति मावे क , रतमनुरिक्तरासिकिरिति यावत्, तेन व्यायामादावितरतत्वेन ये स्नान्ता-स्वानित्यर्थं , न तु रत सुरत, तस्य प्रमदामहर्णेनेव लन्धत्वात् । वाहनञ्च हस्त्यादि-यानम् । व्यायामादिस्नान्तानाञ्च धातुपुष्ट्यर्थम् । यदुक्तं 'स्वमप्रसङ्गाच नरे। वराह इव पुष्यति ' इति । अतीसारे दिवास्वाप कप्तवद्वकत्या स्रोत मरोधकत्या

प्रमावादाः हित, म च सर्वातीसारे कफवर्ज्ये श्रेय । ग्रलश्वासतष्णादिष वात-शान्त्या प्रभावदा हित । चीणानिति धातुचीणान्; तेन सुश्रुतीकरसादिधातु-चर्येऽपि दिवास्ताप प्राप्यते । चीराकफानिति स्वतन्त्र किंवा न्यायामादिष्वपि योज्य, तेन व्यायामादिकान्तान चीणकफानेव दिवा खापयेत. शिश्यनाञ्च निद्रा-मात्म्यत्वाच दिवानिद्रा । मदहतानिति प्रमत्तान्, तेषाञ्च मधजरणार्थं दिवास्वाप । वृद्धान् प्रति धातु-पुष्ट्यर्थम् । रमाजीियानो रसिवराषपाकार्यं दिवानिद्रा राम्राविष निदितस्यैवाहारपाकस्य दृष्टत्वात् । किञ्च निद्राणस्य स्रोत सङ्कीचादनिर्गच्छन् देहोष्मा जठरानलमुद्दीपयति, तेन शीव्रमजीर्णस्य पाक । न च दिवास्वमात् कफ-पित्तयो प्रकापा भवति. तदक चरके - दिवास्वमात् रूष्मपित्ते प्रकृप्यते ? इति तत्प्रकीपाचाग्न्यपद्यात एव कथ स्यादिति वाच्य, यतः स्रोत मह्रोचादपजातः जठराझिर्जाठराजीर्णपाचक एव न तदा कफिपत्तयो प्रकीप , प्रतिनियतशिक्तक-त्वाद् भेषजानामिति । ऋस्तु वा कफपित्तप्रकोपस्तथापि नाग्निमान्ख, तथाविध-दोषद्च्यसयागामावात्, न चाय नियम यत् कफप्रकाेपेऽवश्यमग्न्युपघात इति कफपित्तप्रकोपजन्यतिमिरादी मत्यपि कफपित्तप्रकोपेऽग्न्युपवातादृष्टत्वादिति । रात्री जागरिताना जागरणजनितवातक्तोभप्रशमनार्थमेव दिवास्वम , म च रात्रिजागरण-कालादर्द कार्यं यदाह वाग्मट,— असाल्याजागराद्रध्वं प्रातः सुप्यादत-न्दित १ इति । निरशनानिति । श्रतएव हारीते-- भुक्तवा स्वय्नमसेवेत स्वस्थी-रव्यस्वधिता भवेत इति ॥ ३० ॥ ३१ ॥

> त्रालिप्य जठरं प्राज्ञां हिंगुज्यूषण्सैन्धवैः। दिवास्वप्तं प्रकुर्वित सर्वाजीर्णप्रणाशनम्॥ ३२॥

श्रालिप्येत्यादि स्पष्टम् ॥ ३२ ॥

धान्यनागरसिद्धन्तु तोयं दद्याद्विचत्त्रणः। श्रामाजीर्गप्रशमनं दीपनं वस्तिशोधनम् ॥ ३३॥

धान्यनागरेत्यादि — कर्षार्द्धं वा कखाशुष्ट्योरित्यादिव चनेन तीक्त्यद्रव्यस्याल्प-मानत्वमुक्त , तेनेद्दापि तीक्त्यातीक्त्ययोर्धान्यनागरयोरक्तमात्राया पले गृह्यमाखे धान्य सार्द्धत्रिक्षंमान नागरन्तु कर्षार्द्धमान आद्यम् । यतु धान्यशुष्ट्युपयोगे शुष्ट्याख्य धान्यनस्त्रयमिति केनिचदुक्ष , तदनार्षत्वान्नाद्रियते । वैद्यप्रचारस्तु शुद्धाः ष्णमाषकाः, धान्यस्य दश एव कर्षेणेति ॥ ३३॥ पथ्यात्रिकम्

पथ्यापिण्पत्तिसंयुक्तं चूर्णं सौवर्चलं पिवेत्।

मस्तुनोष्णोदकेनाथ बुद्ध्वा दोषगार्ति मिषक्॥

चतुर्विधमजीर्णेञ्च मन्दानलमथारुचिम्।

श्राध्मानं वातगुल्मञ्च ग्रूलञ्चाश्च नियच्छति ॥३४॥

पथ्यत्यादि—पथ्यादीना त्रयाणा ममे। भाग , तच मिलिता कर्पप्रमार

ग्राह्म कर्षश्चर्णस्य क्लस्वेत्यादिवचनात्॥ ३४॥

भवेदजीर्ण प्रति यस्य शङ्का स्निग्धस्य जन्तोर्वलिनोऽन्नकाले । पूर्व सञ्ज्ञरहीमभयामशङ्क

स प्राश्य भुञ्जीत हित हिताशी॥ ३४॥

भवेदजीर्श्यमित्यादि — मुश्रुतस्य । रसरेषाजीर्श्यविषयक्तमिद वाक्यम् । भोजनीं-पदेशात् रसरेषि हि स्वल्पदेषि , तेन तत्रीषधपूर्वक भोजन सम्भवतीति । पूर्विमिति प्रात काले, यस्य पुरुषस्याजीर्थं प्रति राद्वा भवेद् सोऽन्नकाले यस्य पुरुषस्य य भोजनकाल तस्मिन् सुशुण्ठी शुण्ठीसहिताम् श्रभया सम्प्राश्य मुर्जातेति योजना, न तु पूर्व सम्प्राश्येत्यनेनेव पूर्वकालस्य लन्धत्वादिति ॥ ३५ ॥

> किञ्चिदामेन मन्दाग्निरभयागुडनागरम्। जग्ध्वा तकेण भुक्जीत युक्केनान्नं षहूपणे ॥३६॥

किञ्चिदित्यादि--यद्यि गुडेन शुरुठीत्यादिवचन पूर्वमुक्त तथापि तक्रपडू-पणमम्बन्धाद् योगान्तरिमवैतदोध्यम् ॥ ३६ ॥

#### विद्यचिकाचिकित्सा

विस्चिकायां विमतं विरिक्तं सुलिद्वितं चा मनुजं विदित्वा । पेयादिमिदींपनपाचनैश्च

सम्यक् सुधार्त्तं समुपक्रमेच्च ॥ २७॥ विद्यानिकाचिकित्सामाह, विद्यचिकायामित्यदि—सुशुतस्य । पेयादीनाष्ट्र दीपनपाचनत्वम्, दीपन-पाचन-धान्यपञ्चकादि-सस्कारात् ॥ ३७ ॥

# ज्रष्टसैन्धवया करकं चुकतैलसमन्वितम्। विस्च्यां मर्दनं कोष्ण खरवीश्रलनिवारणम्॥ ३८॥

कुष्ठित्यादि — श्रातुरस्य तात्कालिकी पीड़ा महती, तदहे च तैल पक्तुमश-क्यम्, श्रत किन्चिच्चुक तैलञ्च दत्त्वा कुष्ठमैन्धवयो कल्केन कदुष्णेन मर्दन कार्य्य-मित्याहुर्वृद्धा तैलपाकपन्ने तु कुष्ठसैन्धवयो कल्क पादिक , चुक्रञ्च चतुर्गुणम् । खल्वी हस्तादौ शिरामोटन रूपा वेदना ॥ ३ ॥

## करञ्जनिम्बिशखरीगुडूच्यर्जकवत्सकै'। पीतः कषाया वमनाद्योरां हन्ति विसूचिकाम्॥३६॥

करखेत्यादि—करअस्य फलम्, शिखरी अपामार्गस्तस्य बीजम्। अर्जक भेतपणीश इति टल्वण , तथा वृन्दटीकाया चन्द्राटेऽप्यर्जक इति पठ्यते तस्मात् श्रर्जकस्थाने अर्जुनिति प्रमादपाठ । वत्सक कुटज । पीत कषायो वमनादिति वमनार्थञ्च कषाय 'काथ्यद्रन्याञ्चली चुएखा श्रपित्वा जलाढके । श्रर्द्धभागावशेषञ्च वमनेष्यवचारयेत् ' इति परिभाषया श्रर्द्धश्वत कार्थ्य । श्रर्द्धभागावशेषमित्यत्र चतुर्मागावशेष इति पाठो दृश्यते तच्च निश्चलो नानुमन्यते । वमनञ्चातीच्यम्, स्तोक-स्तोकविमकारकार्जार्थिनिरासार्थम् ॥ ३६ ॥

#### व्योषं करञ्जस्य फलं हरिद्रां मूलं समावाप्य च मातुलुङ्गवाः। छायाविश्रप्का गुडिकाः कृतास्ता हन्युर्विसूचीं नयनाञ्जनेन॥ ४०॥

व्योपिमत्यादि — सुश्रुतस्य । मातुल्लक्षी मधुकुनकुटी । विस्चीशब्देनात्र विस्चीजिनतमूर्च्छाप्रमीलकशिरोरोगादयो गृद्यन्ते, कारणे कार्योपचारात् । किं वा श्रक्षनेन प्रमावादेव विस्ची हन्यते हति सुश्रुतटीकाकृती व्याचचते ॥ ४०॥

#### गुडपुष्पसारशिखरितग्डलगिरिकर्णिकाहरिद्राभि । श्रञ्जनगुडिका विलयति विस्चिकां तिकटुसनाथा ॥ ४१ ॥

गुडपुष्पेत्यादि--गुडपुष्पे मधुकवृत्त , तस्य सारो याद्यः । शिखरितग्रङ्खाः अपामार्गवीजानि । गिरिकर्षिका अतापराजिता तस्या मूल प्राध्मम् । त्रिकटुकान्त

एको बोग । विलयति रामयि ॥ ४४ ॥
्रत्वक्पत्ररास्तागुरुशिग्रुकुष्ठैर
रम्लेन पिष्टैः सवचाशताह्रै ।
उद्वर्त्तनं खल्विविस्विकाम्नं
तैलं विपक्षक्य तदर्थकारि ॥ ४२ ॥

त्वक्पन्नेत्यादि—त्वक् गुडत्वक्, पत्र तेज पत्रम् । श्रम्लिपिष्टिरिति क्रांजिकपिष्टै । शताह्वा सुल्लुफा (सोया) इति ख्याता, शताह्विरित्यत्र जटाह्विरित्यन्ये पठिन्त, यथा
'राक्षापत्रागुरुमामीकुष्ठशिग्नुत्वचो वचा । पिष्टमम्लेन तच्छ्रेष्ठ विस्च्यामङ्गमर्दनम्' ।
सुश्रुते तु शतपुष्पी जटामासी चेति द्रयमि न दृश्यते, यथा—'कुष्ठञ्चागुरुपत्रश्च
राक्षा शिग्नुत्वचा वचा । पिष्टमम्लेन तच्छ्रेष्ठं विस्च्यामङ्गमदर्भम्' इति । तेल
विमकञ्च तदर्थकारीति, त्वक्पत्रादिमि कल्कीकृते काक्षिकेन द्रवेण चतुर्गुणेन
तेल एक एल्वीविस्विकाम्न भवतीत्यर्थ ॥ ४२ ॥

पिपासायामनूत्क्रेशे लवक्षस्याम्बु शस्यते ।

जातीफलस्य वा शीतं श्टतं भद्रधनस्य वा ॥ ४३ ॥
विस्च्यामतिवृद्धायां पाण्योदाहः प्रशस्यते॥ ४४ ॥

विपासायामित्यादी—अन्तालेश इत्युत्कामिका, ठिकरीति लोके स्थाता इति
निश्चल , अन्य त्वनृत्वलेश इतीपदुत्विलए दीप इत्याहु । लवडाम्बु अर्द्धश्वतशीतम्,
एव जातिफलाम्बु भद्रधनाम्बु च श्चेयम् । भद्रधन भद्रमुस्तकम् , अत्रान्तरे
योगान्तर दृष्टफलमत्र वीद्धव्यम्—' आझाय तिद्देशपशो मातुलुङ्गफलत्वचम् ।
पीत्वा मद्रधनकाथमनृत्वलेशाद्दिमुच्यते '। पाष्पर्योदीह् इति पादपार्धिणुगदाहस्तु
मृच्छीरान्यर्थम् , मृच्छेतरलचणामावे सति मसरारादिशलाकया पाददाह । म च
प्रमावात् पाददेशे एव कृतो हितो भवतीति वचनादुत्रीयते । सुश्चेतऽच्युक्त 'माध्यासु
'प्रशस्त पाष्पर्योदीहनम् ' इति । चन्द्रोटऽच्युक्त ' युद्धाया विस्वया पार्ध्यिदेशे च
दाह ' इति । अत पार्ध्यिदेशे इत्यत्र पार्थदेश इति ये पठन्ति ते आन्ता । पार्ध्यिदाहम्य सर्वतन्त्रविहितत्वात् ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

वमनन्त्वलसे पूर्वे सवण्नोष्णवारिणाः । स्वेदो वर्त्तिर्लङ्घनञ्च क्रमश्चातोऽग्निवर्द्धनः ॥

सरुक् चानद्रमुद्रमम्लिपष्टैः प्रलेपयेत्। दारुहैमवतीकुष्ठशताह्वाहिंगुसैन्धवै ॥ तकेण युक्तं यवचूर्णमुष्णं सत्तारमर्ति जठरे निह्न्यात्। स्वेदो घटैर्वा वहुवाष्पपूर्णे-रुष्णैस्तथान्यैरपि पाणितापै ॥ ४४ ॥ तीव्राक्तिरपि नाजीर्गी पिवेच्छूलझमौषधम्। दोषाच्छन्नो उनलो नालं पक्तुं दोषौपघाशनम् ॥ ४६ ॥

इत्यग्निमान्द्यचिकित्सा।

अलमकचिकित्सामाह वमनिमत्यादि-लवर्णन सैन्थवेन । विचरिति फलबितः मा चोदावर्ते वस्यमाखा । श्रत इति श्रत उद्ध्वीमत्यर्थ । सरुगति सश्र लम् । इमनती वचा । तक्रेणेत्यादि--चरकस्य । मचारमिति सह यवचारम् तत्सर्व घटे प्रक्षिप्य उदरे स्वेद इत्याह काश्चित्, तन्न, चरकेऽस्य योगस्य प्रदेहप्रक-रखे पठितत्वात्। तस्माद् यवचूर्णयवचारौ तक्रेख पिष्ट्वा किञ्चिदुष्ण कृत्वा उटरे लेप: कार्य । स्वेदो घटैना बहुवाष्पपूर्णैरिति तप्तकाक्षिकादिभिर्वाष्पूर्णैर्घटैस्तथा-न्येरुक्योर्वस्त्रपटकादिभिस्तथा हस्ततापरिष खेद इति योज्यम् । तीत्राचिरित्यादि-वाग्मटस्य । ना पुरुष. । दीषाच्छन्न इति स्नामदेश्याभिभूत । नालमिति न समर्थ ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

इत्यग्निमान्धन्तिकत्साविवृति ।

# अथ क्रिमिचिकित्सा ।

पारसीक्यमानीका पीता पर्य्युषितवारिणा प्रातः। गुडपूर्वी किमिजातं कोष्टगतं पातयत्याशु ॥ १॥

श्रजीर्णात् क्रिमिमम्भव इत्यजीर्णानन्तर क्रिमिचिकित्मामाह पारसिकेत्यादि— पारसीक्यमानी खोरामनी यमानीति 'स्थाता । गुडपूर्वेति गुड' पूर्वी यस्या इति, गुड मद्मवित्वा मनाक् विलम्ब कृत्या मा पातब्येत्यर्थ । पेषणमाप पर्स्युषितवारि-येति ॥ १ ॥

> पारिमद्रक्षपत्रोत्यं रसं चौद्रयुतं पिवेत् । केबुकस्य रसं वापि पत्त्रस्याथवा रसम्॥ लिह्यात् चौद्रेण वैडद्गं चूर्ण किमिविनाशनम्॥२॥

पारिसद्वेत्यादि-पारिसद्वक मन्दारिवरीष । केवुकस्येति केबुकस्य कि उन् ताडा इति ख्वानस्य तस्य मूलस्वरम ब्राह्मम् , एव पत्त्र्रस्य, पत्त्र्र सालिखः, चौद्रयुतमिति पद केबुकरमे पत्त्र्रसेऽपि योज्यम् । लिह्मादित्यादि स्पष्टम् ॥ २ ॥

मुस्ताखुपर्णीफलशिग्रदारुकाथ सक्तष्णाकिमिशत्रुकलकः।
मार्गद्वयेनापि चिरप्रवृत्तान्
किमीन् निहन्ति क्रिमिजांश्च रोगान्॥३॥

मुस्तेत्यादी--आखुपणी मूपिकपणी दन्तीभेदी वा, फलशन्देनात्र त्रिफला आचा रविग्रप्तमवादाद । किमिशत्रुविङक्षमार ॥ ३ ॥

> श्राखुपर्णीद्तै पिष्टै पिष्टकेन च पूपिकाम्। जग्म्वा सौवीरकञ्चानु पिवेत् क्रिमिहरं परम्॥४॥

श्राद्धपर्यादलेरित्यादि—शाखुपर्या द्रवन्ती मूषकपर्यी टन्तीभेदो वा,
मग्द्कपर्यात्वन्ते, दल कीमलदलम् । यदाह वाग्मट ' श्राखुपर्याकिमलयैः
सुपिष्टै पिष्टमिश्रित । पक्त्वा पूर्यलिका खादेद् धान्याम्लक्ष पिवेदनु ' इति । पिष्टकेनेति यविष्टकेन क्रिमिहरत्वादिति सुश्रुतटीकाक्षत । शालितग्रहुलिष्टकेनेति
निक्षल । श्राखुपर्यापत्रस्य भागत्रय पिष्टकस्य त्वेको माग इत्याहु । मौदीर
काश्रिकम्, ययिष सुश्रुते वाग्मेटे च चीराश्रि मासानित्यादिनाम्लमात्रस्यैव
वर्णनसुक तथाषि विशेषवचनादत्र माश्रिकानुपानमिति न विराधमावहति ॥४॥

पलाशयीजस्वरसं पियेष्ठा चौद्रसंयुतम्। पिवेत् तद्वीजकस्कं वा तक्रेण किमिनाशनम् ॥४॥ भलाशवीजमिलादि—भलाशवीजस्य स्वरसः, तदीनकन्को वा तक्रेणेति तराडुलाम्बुनाप्यय योगा श्रेय । तदुक्ष सुश्रुते 'पलागवीजस्वर्सं कल्क वा तराडुलाम्बुना रहित ॥ ५ ॥

> सुरसादिगणं वापि सर्वथैवोपयोजयेत्। विडद्गसैन्धवचारकम्पिक्षकहरीतकीः। पिवेत् तकेण सम्पिष्य सर्विक्रिमिनिवृत्तये॥ ६॥

सुरसाटिगरा मौश्रुत , मर्वथैवेति कल्ककषायकल्पना । विडङ्गसैन्धवेत्यादौ— कान्पिल्लको गुरुहारोचना कमलागुटी (कमीला) इति ख्याता ॥ ६ ॥

विडङ्गपिष्पलीमूलशिष्ठिमिमेरिचेन च।
तक्रसिद्धा यवागूः स्यात् किमिन्नी ससुवर्धिका॥
्रीतं विम्वीघृतं हन्ति पक्षामाशयगान् किमीन्॥ ७॥

विडक्केलादि—चरकस्य । तक्रमिद्धेति तक्रमत्राद्धोदक ग्राष्ट्राम्, श्रन्यभात्य-स्तता स्यादित्यादु । सुनर्चिका मर्जिकाचार , त दत्ता मचयेत् । विम्नीष्टत-मिनि—विम्नीष्टने विपक्किन्नोफलस्य कत्कश्चतुर्गुण जलम् ॥ ७॥

#### त्रिफलाघृतम्

त्रिफला त्रिवृता दन्ती वचा कम्पिलकं तथा। सिद्धमेमिर्गवां मूत्रे सिंपः क्रिमिविनाशनम्॥ =॥

त्रिफलाष्टते दन्ती नागठन्ती, मा च स्यूकमूलेत्याहु । तदुक्त 'तिवृत्क-न्पिल्लक्षवचानागदन्तीफलत्रये । गोमूत्रमधितं मीपे पानत क्रिमिनाशनम् ' इति ॥ = ॥

#### विडङ्गघृतम्

√ित्रफलायास्त्रय प्रस्था विडङ्गप्रस्थ एव च।

डिपलं दशमूलञ्च लाभत समुपाचरेत्॥

पादशेषे जलद्रोणे श्टंत सिंपिर्विपाचयेत्।

प्रस्थोन्मितं सिन्धुयुतं तत्परं किमिनाशनम्॥,

विडङ्गधृतमेतच्च लेहं शर्करया सह।
सर्वीन किमीन प्रणुटति वज्रं मुक्कमिवासुरान्॥॥।

त्रिफलाया इत्यादि स्पष्टम् । विडग्नष्टत किचत् पुस्तके, तथा कुन्दे च । नच टीकाकृद्धिनं धृत इत्यिधिकमेवेति श्रेयम् ॥ ६ ॥

्र रसेन्द्रेण समायुक्तो रसो धुस्त्रपत्रजः। ताम्बूलपत्रजो वापि लेपो यूकविनाशन ॥ १० ॥

रसेन्द्रेखेत्यादौ---रमेन्द्र पारदः । ताम्जूलपत्र पर्णः । लेपन यौकनाशनिक्षित्त पाठे यौक यूकवृन्दम् ॥ १० ॥

विडङ्गतैलम्

सविडङ्गगन्धकशिलासिद्धं सुरभीजलेन कटुतैलम् । श्राजन्म नयति नाश लिज्ञासिहतांस्तु यूकांश्च ॥ ११ ॥ इति क्रिमिचिकित्सा ।

सिवडङ्गत्यादी---शिला मन शिलेति केचिदाहु, श्रन्ये तु गन्धकशिला गन्धकपापाणमेनेतिः वदन्ति । सुरभीजल गोमृत्र तच चतुर्गुण प्राह्मम् ॥ ११॥ इति क्रिमि चिकित्साविष्टति ।

## अथ पाण्डरोगचिकित्सा।

साध्यन्तु पाएड्वामयिनं समीत्य स्निग्धं घृतेनोद्ध्वमधश्च शुद्धम्। सम्पाद्येत् सौद्रघृतप्रगादै-ईरीतकीचूर्णमयैः प्रयोगैः॥१॥

पुरीपिकामित पाग्छुरागस्य प्राहुर्भावात् किम्यनन्तर पाग्छुरागिविकित्मामाह माध्यमित्वादि—सुश्रुतस्य । ममीद्येति अनुवन्ध्यानुवन्धरूप तद्दापिविरोप सम्यग्रुपलम्य सिन्धमेन, न स्वित्र पाग्छुरागे सेदिनियेधात् । उक्त हि सुश्रुते 'पाग्छुमेंहा रक्तिपत्ती तुपांच चतचीयो दुवेलोऽबीर्यमुक्त । दकोदरी गर्मिणी पीतमचो नैते स्वैद्या यक्ष मत्तोऽतिसारी 'हति । छतेनिति- न तु तैलादिना सर्वपार्द्धरागाया पित्तप्रधानत्वात् रक्तदृष्यत्वाद्य । उक्त हि सुश्रुते 'व्यायाममम्ल

लवणानि मध मृद दिवास्त्रममतीव तीच्णच्। निषेवमाणस्य प्रदूष्य रक्त दीपास्त्वच पाय्हरता नयन्ति ' इति । पित्ते घनस्व प्राथान्यात् छतेनैव सेहन युक्तम्, धतन्न भणनसस्क्रनमेव देय वहुगुण्यतात् । उक्त हि चरके ' कल्याणक पन्नमन्य महातिक्तमथापि वा । स्नेहनार्थ धत दधात् कामलापाय्हरोगिणे ' इति । उक्त हि
सुश्रुते च ' केवलेनेव छतेनेत्याहु ।' उद्ध्विमिति वमनेन, श्रुष्ठ इति विरेचनेन ।
यधि पाय्हरोगं वमन निषद्धम्, यद्धक्त 'न वामयेन् तैमिरिक न गुल्मिनं न
चापि पाय्हरोगपाडितम् ' इति तथापि पाडितमिति वचनेन प्रवृद्धपाय्हुगंगविषय
तद्धचन श्रेयन्ः उपक्रमे तु कालक्तुंदोषायपेक्तया कफोद्रेकावस्थाया मृदुवमन श्रेयम् ।
वथाच हारीत 'कालक्तुंदोषप्रकृति शरीर समीद्य दधाद्धमन विषिश्च ' इति ।
सुश्रुतेऽप्युक्तम् ' एतेऽप्यनीर्णव्यथिता वम्या ये च विषानुरा. । अतीव
चोल्वणक्तपास्ते च स्थुर्भधुकाम्बना ' इति । विरेचनन्तु तीस्त्यमेव, यदुक्त ' वान्तस्य
तीस्त्यान्यनुलोमनानि कफोपदिष्टानि मिषान्वद्ध्यात् ' इति । इदानीं ससोपनानन्तर कृत्यसर्थनकामस्य दोपविशेषरामनार्थमाह सम्पाद्धेदित्यादि—हरीवकी
चूर्णमयं प्रयोगैर्वस्यमार्थर्नवायसादिमिर्हरीतकीचूर्णवहुलैरित्यर्थ. । हरीवक्तिचूर्णसुतिरिति पाठान्तरम् ॥ ' ॥

पिवेद् घृतं वा रजनीविपकं सत्तेफलं तैल्वकमेच चापि। विरेचनद्रव्यकृताम् पिवेद्वा योगांश्च वैरेचनिकान् घृतेन॥२॥

रजनीविपक्षमिति हरिद्राक्तककाथाभ्या सिद्धमिति गयदास । तम्न, कत्क-काथकरखस्य गर्णावेषयत्वात् तस्मात् हरिद्राक्तकिमिद्धमित्वन्ये, भ्रन्ये तु वच्यमाय-हरिद्राष्ट्रतमित्यादुः । तम्न, चरकक्ष्यत्वात्, इद वाक्य मीश्रुतमिति । त्रैफलमिति विफलाकाथकत्किसिद्धम् , त्रिफलापटोलिपिनुमर्देत्यादि कुष्टोक्तम् , वातरोगोक वा स्रेवन् । तैल्वकिमिति वातव्याध्युक्तम् । विरेचनद्रव्यक्ष्यामिति त्रिश्चरादिद्वव्यसस्कृत ष्टतम् ; इद हि वाक्य सौश्रुतम् । योगाश्च वैरेचिनकानिति मीश्रुतिविरेचनाध्यायोक्तान् इतेन पिनेदिति ॥ र॥

हेतुप्रत्यनीकाचिकित्सा

्र विधिः क्रिग्घस्तु वातोत्थे तिक्षशीतस्तु पैत्तिके । ऋष्मिके कटुरूकोष्णः कार्थ्यो मिश्रस्तु मिश्रके ॥ ३॥ देतुप्रस्नांकाचिकित्मामाह विधिरिलादि । मिश्रक र्रात दृष्ट्ये ॥ ३ ॥ विश्व करं तिवृच्चृर्णे पलाई पैत्तिके पियेत् । कफपाग्रहस्तु गोमूत्रक्किन्नयुक्तां हरीतकीम् ॥ नागरं लौहचूर्णं वा कृष्णा पथ्या तथाश्मजम् ॥ गुग्गुलुं वाथ मूत्रेण कफपाग्रह्वामयी पियेत् ॥ सप्तरात गवां मूत्रे भावितं वाप्ययोरज । पाग्रहरोगप्रशान्त्यर्थ पयसा प्रपिवेन्नर ॥ ४॥

दिशकरिमलादि ।— तिवृच्चृणमेत्र डिगुणगंक मत् पलाइंमान पिवेत् तेन मकरा कप । मा ५ गंक्न ४ । तिवृच्चृण मापा ६० गंक्न ६ एव मिलित्वा पलाइमिलार्थ न तु त्रिवृच्चृण पलाई मत् डिगंकर पल्मेकम्, एव मिलित्वा माइपलोमक प्रलाहेपयोगेऽस्था मात्राया ध्रमहंत्वात् । गोमृत्राक्तित्रत्यथ , वृद्ध-वाग्मेटेऽप्युक्त "गोमृत्रेण वा हरांतकी कान्त्रिता "द्यादि, श्रन्ये तु गोमृत्रेण विलत्नामुत्वेविद्यामिलाहु , श्रन्य तु चरकवद्यमाणयोगे श्रारव्वधरमेनेनि पाठत्वा श्रारव्वधरसेन हरीत्रका पिवेदित्य पृवृपाठ एव साहु , । नागरमिलादि — नागरलाहचूर्णाभ्यामेको योग , कृष्णापथ्याम्या डितीय , श्रम्य शिलाजतु श्रम योगम्यतिय , गुग्गुलुमिति चतुर्थ , गोमृत्रेणित मन्द्रध्ये मर्वत्र । लाहचूर्णन्तु जारिन पुविन्द्र प्राद्य प्रमाव तह्माव लाहप्रिका प्राद्या, मा च गालिश्चरमित्रकाकार्थ पुट्याकन ममाधनोया, एव मर्वत्र , तद्य मापकमेक. गुण्ठाचूर्णञ्च मापकचतुष्ट्यमिलाहु । एवगुण पिष्पलाहरीनकीचूर्णं, तथा गुदरालाच्यु मापा अ, श्रत्येपिनगुन्गुलु मापा द, मर्वत्र गोमृत्रेण पानम् । मारात्रिलादि—स्पष्टम् ॥ ४॥

फलिकामृतावासातिक्षाभृनिम्वनिम्वनः। क्षाथः चौद्रयुतो हन्यात् पारहरोगं सकामलम्। कर्नात्रकेषादौ।—अवृता गृह्ची, तिक्ना कटकी, मृनिविधरता॥ ५॥ श्रयस्तिल्ञ्यूपणकोलभागैः

श्रयस्तिलञ्जूपणकोलभागै। सर्वे समं माजिकघातुचूर्णम्। तैमोटकः चौद्रयुतोऽनुनकः

#### पागङ्वामये दूरगतेऽपि शस्तः॥ ६॥

श्रयित्तेलसर्दां—कोल शुष्कवदर न तु कर्षार्द्ध, यदाह सुदान्तसेन श्रन्य कोलितलच्योप समर्माचिकथातुना । मधुना वटकान् कृत्वा जग्ध्वा तक्र पिवेदनु ' इति । तिलोऽपि कृष्य , माचिकथातु स्वर्यमाचिक, तदिप शुद्ध श्राह्म, तच्छ्रोधनश्च ले।हप्रदीपादौ वोध्यम् । श्रनुतक इति तक्रानुपान ॥ ६॥

> श्रयोमलन्तु सन्तप्तं भूयो गोमूबसेचितम्। मधुसर्पिर्युतं चूर्णं सह भक्तेन योजयेत्॥ दीपनञ्जाग्निजननं शोथपाराङ्वामयापहम्॥७॥

श्रयोमलिमलादि—श्रयोमल पुराणमण्डूर, भूयो गोमूत्रशोधितिमिति सप्तवा-रान् । इंदरास्य मण्डरचूर्णस्य मापकद्वय त्रिधा विभज्यातो दर्शनात् मोजनादिम-व्यान्तेषु मधुमिपन्यां लेख, पश्चादभ्यासक्रमेण माषक वर्डयेत् । श्रनुपानिमह तक दुरभ वा ॥ ७ ॥

## नवायसं लोहम्

ज्यूषणं विफलामुस्तविडङ्गचित्रका समाः। नवायो रजसो भागास्तज्ज्यूर्णं मधुसर्पिषा॥ भज्ञयेत् पार्रहहद्रोगकुष्ठार्शःकामलापहम्॥ =॥

त्र्यूषणिस्वादि—पक्तभागोपत्तया नवगुण मण्डूरचूर्णम्। श्रादौ रिकेड्य प्रतमधुम्या लीहपात्रे लोहसुपिलक्तया विमर्थ लिह्यात्, रिकेड्य कृत्वा वृद्धि कार्थ्या मापकद्वय यावदिति व्यवहार । वाग्भेटे तु तक्ताचनुपानच्चोक्त, यथा 'व्योषाग्नि-त्रिफलाविह्मसुरेतस्तुल्यमयोरज । चूर्णित तक्तमध्वाज्यकोष्णाम्मोमि प्रयोजितम्' इति । एतदेव नवायसं सुश्रुते प्रमेहचिकित्साया पठितम् ॥ = ॥

#### योगराजः

त्रिफलायास्रयो भागास्त्रयिस्तिकडुकस्य च ॥ भागिश्चत्रकमूलस्य विडङ्गानां तथैव च ॥ पञ्चाश्मजतुनो भागास्तथा रूप्यमलस्य च । माचिकस्य च ग्रद्धस्य लौहस्य रजसस्तथा ॥ श्रष्टौ भागाः सितायाश्च तत् सर्वे स्राच्णचूर्णितम्। माज्ञिकणाप्तुतं स्थाप्यमायसे भाजने शुभे ।
उद्धम्बरसमां मात्रां तत खादेद् यथाग्निना ॥
दिने दिनं प्रयोगेण जीर्णे भोज्ये यथेप्सितम् ।
वर्जायत्वा कुलत्थांश्च काकमाचीं कपोतकान् ॥
योगराज इति ख्यातो योगोऽयममृतोपम ।
रस्तायनमिदं श्रेष्ठं सर्वरोगहरं परम् ।
पाएहरोग विप कासं यदमाणं विषमज्वरम् ।
कुष्ठान्यजरकं मेहं श्वासं हिकामरोचकम् ।
विश्रपाद्धन्त्यपसारं कामलां गुदजानि च ॥ ६॥

त्रिफलाया इत्यादि—चरकत्य । त्रिफलायास्यो मागा इति मिलित्या त्रयो।
मागा , पव निकदुकत्यापि, निर्देशस्य मानप्रधानत्वात् । चित्रकविद्वह्नयोरिष प्रत्येक
पलम् । शिलाजत्वादिलीहचूर्यान्ताना प्रत्येक पश्च पलानि, शर्करायाश्चाष्टी पलानि,
शिलाजतु च शिवागुद्धिकोक्कविधिना शाह्मम् । रूप्यमलस्य चेति रूप्यस्यावध्मायमानस्य यत् किट्ट निर्गच्छिति तद्ग्यमल, माज्ञिकत्येति मारणपुटनादिना शुद्धस्य
स्वर्णमाण्किस्य । अन्ये पञ्चाश्मजतुनो मागा पञ्च रूप्यमलस्य चेत्रत्र तथा रूप्यमलस्य इति पठन्ति, तेन रूप्यमलस्येति शिलाजतुविशेषण्, ततश्च रमायनाधिकारे
राजत कद्धक श्वतमित्यादिना यिच्छलाजतु रूप्यमलस्येनीक्त तदिह गृद्धते इत्यादु ।
पतत्तु न व्यवहरन्ति वृद्धा । वाग्मटे तु लीहस्याने रूप्य पठितम्, यथा 'ताप्यादि
चरूत्यायोमला पञ्च पला पृथक् । चित्रकित्रफलाग्योपविटङ्गे पलिकं नह । शर्क
राष्टपलीन्मशारचूर्याता मधुनाप्छता ' इति तदत्र प्रयोगे भेदाद्यविरोध , उक्त हि
'मुवर्णमथवा रूप्य योगे यत्र न लम्यते । तत्र लीहन कर्म स्यात् भिषम्, कुर्यादिचच्च ' इति । पूर्वोक्तन्यवस्थापि शिलाजतुलीहमलसर्यमाचिकलीहरजीमिश्चतुर्भिदेव दृश्यते, तेन तन्त्रकारवचनयोर्न विरोध इति । उद्धन्वर कर्ष । अजरकम्
अत्रीर्थम् । यथाग्निनस्यत्र ना पुरुष ॥ ६ ॥

विशालाकद्वकामुस्तकुष्ठदारुकालिङ्गका ।
कर्षाशा द्विपिचुर्मूर्वा कर्षाद्वां च घुण्रिया।
पीत्वा तच्चूर्णमम्मोभि सुखं लिह्यात् ततो मधु॥
पाएहरोगं ज्वरं दाहं कासं श्वासमरोचकम्।

#### गुल्मानाहामवातांश्च रक्षापित्तञ्च तज्जयेत् ॥१०॥

विशालेखादि—विशाला गोरचकर्कटो । कर्षाशा च घुणप्रिया इत्यपपाठ किन्तु कर्षाद्धांशिति । उक्त हि चरके 'विशालाकडकामुस्तकुष्ठदारुकलिककान् । कर्षो निमतानितिविषा कर्षाद्धांत्र प्रदापयेत् । कर्षो मधुरमाद् द्वौ च सर्वचूर्ण छुखाम्बुना । मृदित त रम पूत पीत्वा लिखात्तु माचिकम् ' इति, श्रतप्य वचनवलात् कल्ककथय-विधानमध्यत्र योगे बोध्यम्, तेन तच्चूर्ण छुलै कदुष्णरम्भोभिश्चूर्णपेचया चतुर्गु-णेमृदित्वा वस्तपूत कृत्वा पिवेत्, श्रनन्तरत्र मधु लिखादित्यर्थ ॥ १०॥

लौहपात्रे श्रतं चीरं सप्ताहं पथ्यभोजनः।
पिवेत् पाएड्वामयी शोधी श्रह्णीदोषपीडित ॥
कल्याणकं पञ्चगव्यं महातिक्तमथापि वा।
स्निहनार्थे घृतं दद्यात् कामलापाएडरोगिणे॥
रेचनं कामलार्त्तस्य स्निग्धस्यादौ प्रयोजयेत्।
तत प्रशमनी कार्या किया वैद्येन जानता॥ ११॥

लीहपात्र इत्यादि — अत्र जल चतुर्गुण वोध्य पाकानुपपते । कल्याणघत पञ्चगन्यघतञ्च उन्मादे वस्यति, महातिकञ्च कुष्ठे, रेचनञ्च पित्तहरत्वेन ॥११॥

त्रिफलाया गुडूच्या वा दार्व्या निम्बस्य वा रस । प्रातमीचिकसंयुक्त शीलित कामलापह ॥ १२॥

त्रिफलाया इत्यादि —स्पष्टम् ॥ १२ ॥

श्रक्षनं कामलात्तीनां द्रोणपुष्पीरसः स्मृतः। निशागैरिकघात्रीणां चूर्णं वा सम्प्रकरूपयेत्॥ १३॥

श्रश्चनित्यादि —श्रश्चन नेशाञ्चन, द्रोणपुष्पी दयडकलस इति केचित्। निशादिर्भिरंचुण्शिन कार्य्य, तदुक तन्त्रान्तरे निशागिरिकधात्रीणा चूर्णेरत्राञ्चन मतम्। पतच मध्यकशालाकया कार्य्यमित्याहु ॥ १३॥

नस्यं कर्कोटमूलं वा घेयं वा जालिनीफलम् ॥ १४ ॥

नस्यमित्यादौ--कर्नोटमूलामिति कर्नोटमूलरस इत्यर्थ । जालिनी पीत-चोषक ॥ १४॥ श्रयोरजोव्योषविडद्गचूर्णं लिहेद्धरिद्रां त्रिफलान्विता वा । सशर्करा कामलिनां त्रिभएडी

हिता गवाची सगुडा च शुरठीं ॥ १४ ॥

सशर्करेत्यादि—सुश्रुतस्य । त्रिमण्डी त्रिष्ठता, रेचनार्थमय योग । गवाची गोरचकर्कटा, श्वेतापराजिता इत्यन्ये, श्रत्रापि मशर्करेत्यादि योज्यमित्याद्द निश्चल । कार्तिकस्तु सगुडा च शुण्ठीत्यत्र चकार, भिन्नक्रम योजयित्वा शुण्ठी मगुडिति ब्याख्याय गवाचीमपि सगुडामाद्द । एव सुश्रुतटीकाया बल्वणोऽपि व्याख्यातवान् ॥ १५ ॥

दावीं सत्रिफला व्योषविडङ्गान्ययसो रजः। मधुसर्पिर्युतं लिह्यात् कामलापागृहरोगवान् ॥ १६॥ 🞻 टावीत्यादि—चरकस्य। दार्व्यास्त्वक्॥ १६॥

तुल्या अयोरजःपथ्याहरिद्राः चौद्रसर्पिषा । चूर्णिता कामली लिह्याद् गुडचौद्रेण वामयाम् ॥१७॥

तुला इत्यादि—स्पष्टम् ॥ १७ ॥

धात्रीलौहरजोव्योषनिशाचौद्राज्यशर्कराः। लीद्वा निवारयत्याश्च कामलामुद्धतामपि ॥१८॥

थात्रीत्यादि स्पष्टम् ॥ १८ ॥

दग्ध्वात्तकाष्ठैर्मलमायसन्तु

गोमूत्रनिर्वापितमष्टवारान् ।
विचूर्ण्य लीढं मधुना चिरेण कुम्माह्रयं पारहगदं निहन्ति ॥ १६'॥

दग्ध्वेत्यादि — मुश्रुतस्य । श्रचष्ट्वो विभीतकष्ट्य । सुश्रुते बहुपुस्तकेषु चन्द्राटादिषु गोमूत्रनिर्वापितसप्तवारमित्येव पाठो दृश्यते, श्रन्य तु गोमुत्रनिर्वापित-मष्टवारमित्यव पठन्ति ॥ ११ ॥

्र पाहरोगिक्रयां सर्वी योजयेच हलीमके । कामलायाञ्च या दृष्टा सापि कार्य्या भिषम्वरैः ॥ २०॥ पाय्डुरोगकामलाचिकित्सा हलीमकेऽप्यतिदिशति पाय्डुरोगिकयामित्यादि । किया विरेचनादिरूपा ॥ २०॥

# विडड़ाघं लौहम्

विडक्षमुस्तित्रफलादेवदारुषद्वष्णे । तुल्यमात्रमयश्चूर्णं गोसूत्रेऽष्टगुणे पचेत्॥ तैरचमात्रां गुडिकां रुत्वा खादेद् दिने दिने। कामलापागृहरोगार्च सुखमापद्यतेऽचिरात्॥२१॥

विडङ्गलाहे तुल्यमात्रमयश्चूर्णमिनि मिलितिविडङ्गचूर्णिदिसर्वचूर्णमममयश्चूर्णमित्यर्थ । श्रत्र लीहस्य प्राधान्यात् नद्रपेत्तयैवाष्टगुर्णगोमूत्रेण लीहचूर्णं पक्तवावतारिते च विडङ्गादिचूर्णस्य प्रत्तेप इति केचित् । श्रन्ये तु विङङ्गादिचूर्णसिहितस्यैव लीहचूर्णस्य पाकः; गोमूत्रस्याष्टगुर्णस्व सर्वचूर्णिपेत्तयैव । श्रत्र द्रवेद्वेगुर्ण्य न व्यवहरन्ति वृद्धा । पाकश्चात्र मुद्रापाकेनेत्याहु । श्रत्तमात्रा गुडिका कुर्य्यात् च तत्त्रमाण खादेत् । मात्रा टेहादिवलापेत्तिणी, श्रतण्य वृद्ध्या विभन्य कर्त्तव्या ॥ २१ ॥

# त्र्यूषसाद्यं मसङ्करम्

ज्यूषणं त्रिफला मुस्तं विडकं चव्यचित्रको । दार्वीत्वद्धाचिको धातुर्प्रन्थिकं देवदारु च ॥ एषां द्विपलिकान् भागांश्चूणं कृत्वा पृथक् पृथक् । मग्हूरं द्विगुणं चूर्णाच्छुद्धमञ्जनसन्निमम् ॥ मूत्रे चाष्रगुणे पक्त्वा तस्मिस्तु प्रक्षिपेत् ततः । उद्यम्बरसमान् कुर्याद् वटकांस्तान् यथावलम् ॥ उपभुञ्जीत तकेण सात्म्यं जीर्णे च भोजनम् । मग्हूरवटका ह्येते प्राण्दा पाग्हुरोगिणाम् ॥ कुष्ठान्यजरकं शोथमूरुस्तम्मं कफामयान् । ज्ञाशीस कामलामेहान् सीहानं शमयन्ति च ॥ निर्वाप्य वहुशो मूत्रे मग्हूरं ग्राह्यामिष्यते । ग्राह्यन्त्यष्टगुणितं मूत्रं मग्हूरचूर्णतः ॥ २२ ॥

त्र्यूपणमित्यादि-चरकस्य । दावीत्विगिति पष्टीममाम , न तु दार्था त्वस् चेति, ताप्य दार्व्यास्त्वच चन्यम् ' इति वाग्मटवचनात् । यन्थिक पिष्पलीमूलम् । र्णामश्चतुर्दशद्रव्यं पृथग्दिपलेरप्टाविशतिपलानि भवन्ति । मग्रङ्खः समुदिन-चूर्याद् द्विगुण मत् पट्पन्नाशत्पलमान मनीत । गोमूत्रश्च मिलितचूर्णापेचयाए-गुँगम्, पह्नोलेखागतत्वेन देगुरयमि नास्ति । श्रन्ये तु मूत्रमष्टगुर्गं प्रत्यामस्या मर्स्टूरापेच्चयेव वटान्ति । चक्रेखाप्यनुमतोऽय पच अतो दीपकायामेव पच प्रतिमातीत्युक्तम् । ण्तच न युक्त, यदाह वाग्मट 'ताप्य टार्च्यान्त्वचा चन्थ मन्थिक देवदारु च । ब्योपादिनवक्षम्रैय चूर्णयेद् हिगुरा तत । मग्रहरजाअन निभ मर्वतोऽष्टगुर्णे पचेत्। पृथग्विपके गोमूत्रे वटकीकरणचमे । प्रचिप्य वट-कान् कुर्य्यात् तान् छादेत् तक्षभोजनम् ' इति । वाग्मटटीकायाञ्च मर्वत इति मण्डूरसिहतचूणादष्टगुण गोमूत्रमिति व्याख्यानम् । वृद्धवाग्भटेऽपि मूत्र मर्वतोsष्ट्रगुणमित्युक्तम् । पृथक् पृथगिति एकपृथक्राच्दा द्विपलिकानीत्यनेन मन्बध्यते, द्वितीयपृथक्राच्याच मण्डूरचूर्णभेव पृथक कृत्ना पक्तव्यम् , तस्मिन्नासनपाके त्र्यूप खादिन्र्र्यप्रचेप चूर्यबहुलत्वात् , एव सर्वत्र बहुन्र्र्यप्रचेपविषये श्रासन्नपाक ण्व प्रचेप , खल्पचूर्णस्य तु प्रचेप मम्यक्षाके सत्येव, अतप्रवाक ' प्राया न पाक-रचूर्णाना भूरिचूर्णस्य तेन हि । आमन्नपाके प्रचेप स्तल्पस्य पाकमागते । 'पाक-मागते इति सम्यक् पाक ब्लार्थ । पाकलचणाच्च 'रमो गन्ध शुम पाके वित्त स्याद् गाढमर्दनात् ' इति । उदुम्बरममानिति कर्पमानान् , पत्रपट्मापकेण प्रायेण प्रचार । श्रजरकमजीर्थम् । वहुण इति मप्त वारान् । चक्रेख तु आहयन्त्यप्रगुणित मूत्र मय्हरचूर्णत इत्येव पाठा लिखित । यनो दीपिकाया मयहूरापेच्चर्यवाष्ट्रगुण-लम्, तेनायमव पत्त प्रतिमातीति वदता म्वीकृतम्, गीमूत्र मर्वचूर्णत इति तु केनापि प्रतिसस्कृत्य लिखितम् ॥ २२ ॥

पुनर्नवामग्रहूरम्

पुनर्नवात्रिवृच्छुएठी पिष्पली मरिचानि च।
विडद्गं देवकाष्ठञ्च चित्रकं पुष्कराह्मयम्॥
त्रिफलां द्वे हरिद्रे च दन्तीञ्च चिवकं तथा।
कुटजस्य फलं तिक्षा पिष्पलीमूलमुस्तकम्॥
पतानि सममागानि मएद्वरं द्विगुणं तत।
गामूत्रेऽएगुणे पक्त्वा स्थापयेत् स्निग्धमाजने॥

पार्ह्हशाथोदरानाहशूलार्श क्रिमिगुल्मनुत् ॥ २३ ॥ पुनर्नवामरुद्देरे गोमूत्रस्याष्ट्रगुखल्व मरुद्दरापेत्तयेव, सिन्नहितलाद व्यवहार राच्च भ्रत्रापि देगुरुय न व्यवहरन्ति ॥ २३ ॥

#### वज्रवटकमग्रहूरम्

पञ्चकोलं समिरचं देवदारुफलित्रकम्।
विडङ्गमुस्तयुक्ताश्च भागास्त्रिपलसिमता ॥
यावन्त्येतानि चूर्णानि मग्हूरं द्विगुणं ततः।
पक्त्वा चाएगुणे मूत्रे घनीभूते तदुद्धरेत् ॥
नतोऽसमात्रान् वटकान् पिवेत् तकेण तक्रमुक्।
पाग्हरोगं जयत्येष मन्दाग्नित्वमरोचकम् ॥
श्चर्शासि श्रहणीरोगमूरुस्तम्भमथापि वा।
क्रिमिं प्लीहानमुद्रं गलरोगञ्च नाश्येत्।
मग्हूरवस्रनामायं रोगनीकविनाशन ॥ २४॥

मगडूरवज्रवटके विडङ्गमुस्नयुक्ताश्च भागास्त्रिपलसम्मिता इति पञ्चकोलादिमागा विडङ्गमुस्तमहितास्त्रिपलसम्मिता इत्यर्थ । अत्रापि मगडूरापेक्तयैन।प्रगुणत्व मृतस्य श्रीहेगुरुवञ्च पूर्ववत् ॥ २४ ॥

## घात्र्यरिष्टम्

धात्रीफलसहस्रे द्वे पीडियत्वा रसं भिपक्।

चौद्राष्टमागं पिप्पल्याश्चर्र्णार्डकुडवान्वितम् ॥
शर्करार्डतुलोन्मिश्रं पक्वं सिग्धघटे स्थितम् ।
प्रिपेवत् पाग्हरोगातों जीगों हितमिताशन ॥
कामलापाग्हहद्रोगवातास्विषमज्वरान्।
कासहिक्कारुचिश्वासानेषोऽरिष्ट प्रणाशयेत्॥ २४॥
धात्रीफलेत्यादि—चरकस्य । चौद्राष्टमागमिति चौद्रस्याष्टमो माग , तेनामलकस्वरसस्य मप्त भागा इति सिध्यति, शर्करार्डतुला पन्नाशत् पलानि, श्रर्डपलेति
लेखकदोषात् प्रमादपाठ ॥ २५॥

#### द्राचाघृतम्

पुराणसर्पिपः प्रस्थो द्वाचार्द्धप्रस्थसाधितः । कामलागुल्मपागङ्गर्तिज्वरमेहोदरापहः ॥ २६॥

पुराखनिषय इति पुराखं दशवंगियत मिष् । जलमत्र चतुर्गुखनथात् । अन्य तु ' पिष्ट्वा गोस्तिनिकायास्तु पलान्यष्टां नमावपेत् । पुराखनिषय प्रस्थ पचेत् चीरचतुर्गुखन् इति हारीतदर्शनात् चीरमत्र चतुर्गुखमातु ।। २६ ॥

### हरिद्राष्ट्रतम्

हरिट्रात्रिफलानिम्बवलामधुकसाधितम् । सत्तीरं माहिषं सर्पिः कामलाहरमुत्तमम् ॥ २७ ॥ हन्द्रित्यार्टा—क्षारं वतुर्गुखन् ॥ २७ ॥

# मूर्वाद्यं घृतम्

मूर्वातिक्वानिशावासाकृष्णाचन्दनपर्पटे ॥ जायन्तीवत्सभूनिम्व-पटोलाम्बुद्दारुभि ॥ श्रक्तमात्रैर्धृतप्रस्थं सिद्धं ज्ञीरचतुर्गुण्म् । पाग्रह्वताज्वरविस्फोट-शोथार्शोरक्वपित्तनुत् ॥ २८॥ मूर्वार्थेतं बल्पकेन बल्पकफल ग्राह्मन् ॥ २८॥

## व्योपाद्यं घृतम्

्रव्योपं विस्वं द्विरजनी त्रिफला द्विपुनर्नवा।

√ मुस्तान्ययोरजः पाटा विडङ्गं देवटारु च॥

नृश्चिकाली च भागीं च सत्तीरस्तै श्टतं घृतम्।

सत्रीन् प्रशमयत्येतद्विकारान् मृत्तिकाञ्चतान्॥ २६॥

#### इति पाग्हरोगचिकित्सा ।

व्योषमित्यादि—नामग्टस्य । विल्न विल्नशलाष्ट्रः । श्रयोरजोऽत्र पुटादि-शोधिन प्राह्मम् । वृश्चिकाली विद्यादीति व्याता । चीरमत्र चतुर्गुरः रोध्यम्, श्रमण्यत्तु चीर वृतममम्, जलन्तु चतुर्गुणमित्यादः ॥ २६ ॥ इति पाण्डुरोगिचिकित्साविवृति ।

# रक्तिपत्त-चिकित्सा।

नोदिक्तमादौ संग्राह्यं वित्तनोऽप्यश्नतश्च यत्। हत्पाग्डग्रहणीदोषण्लीहगुल्मज्वरादिकत्। ऊद्ध्वं प्रवृत्तदोपस्य पूर्वं लोहितपित्तिनः॥ श्रद्यीणवालमांसाग्नेः कर्त्तव्यमपतर्णणम्। उद्ध्वेगे तर्पणं पूर्वं कर्त्तव्यञ्च विरेचनम्॥ प्रागधोगमने पेया वमनञ्च यथावलम्॥१॥

पाण्डुरोगवत् रक्षिपत्तस्यापि पित्तरक्षकारणत्वाव्यभिचारात् पाण्डुरोगानन्तर रक्षिपत्तमाह नोदिक्तमित्यादि—नोदिक्तमित्यादिना सीश्रुतिक्रयामाह, उदिक्रमितश्येम प्रवृत्युन्मुखम्। असत इत्यनेन सन्तर्पणोत्थितत्व दशेयति । आदी समहर्णे दोषमाह इदित्यादि । रोगशब्दस्य इदादिमि सम्बन्ध , प्रत्येकमिति रोष । ऊद्ध्वं प्रवृत्तदेषस्येति—सुश्रुतस्य । अतिप्रवृद्धदोषस्येति पाठान्तरम् । अपत्रंण लद्धनम् , चरके रक्षिपेत लङ्खनकरणोपपात्तर्दाशिता, यथा 'प्रायेण हित-मुत्तिल्य सामदोपाच वारिणा । वृद्धि प्रयाति पित्तास्क् तस्माञ्चद्धनमादित ' इति । दोषनिदानापेचया यत् कर्त्तव्य तदाह ऊद्ध्वंग इत्यादि । यदाह चरकः 'मार्ग दोषानुवन्धच निदान प्रसमीच्य च । लङ्खन रक्षित्तादी तर्पण वा प्रयोजयेत ' इति अस्यार्थ —यदि कद्ध्वंमार्गम साम पित्त कफस्थो दोष क्षिग्धोष्णञ्च निदान तदा लद्धनम् , अन्यथा तर्पणम् तर्पयतिति तर्पणमशनम्, तेन यवागृतर्पणन्त्र प्रावम् । ये तु राक्तुतर्पणे तर्पणमिति, तन्मते यवागृदानपत्ती न सगृहीत स्यादित्याह प्रागिथोवमन इति, अधोगे रक्षपित्ते प्राक् पूर्व पेयादिकमित्यर्थ ॥ १ ॥

तर्पणं सघृतचौद्रलाजचूर्णैः प्रदापयेत् ।

अद्ध्वंगं रक्षपित्तं तत् पीतं काले व्यपोद्दति ।

जलं खर्जूरमृद्धीकामधुकैः सपरूषकैः ।

श्वतशीतं प्रयोक्तव्यं तर्पणार्थं सशर्करम् ॥ २ ॥

तर्पयमिलादि — चरकस्य । स्पष्टम् । येन द्रवेश शक्तुनामालाटन कार्यं तदाइ जलमिलादि — अथ खर्जूरादिना जल पडद्गविधानन कार्य्यम् । एतच जलमलर्थं मधुरमप्यूद्धंगे कफसम्बन्धे रक्षपित्तव्याधिप्रत्यनीकतया यौगिक श्चेयम् ॥२॥

## ्र तिवृता तिफला-श्यामा पिष्पली शर्करा मधु। मोदक सिन्नपातोद्ध्वरक्षपित्तज्वरापदः॥३॥

विरेचनमाह त्रिवृतेत्यादि — त्रिवृतेति अरणमूलाः स्यामिति स्याममूला त्रिवृत् , न तु स्यामलता षृद्धदारको वा , चरके स्यामात्रिवृत कल्पस्याने पठितत्वात्। अत्र 'मोदके द्विगुणा गुढं ' इति वचनात् शर्करायाश्चुणाद् द्वैगुण्यमिच्छन्ति , मधु पुनरेकद्रव्यसम किंवा मधुशक्ररे मिलित्वा चूर्णाट् द्विगुण्यम्, उमयोरिप मोदकार्हत्वात्। अय योग सुश्रुतेऽपि पठयते, तद्दीकाकारस्तु त्रिफलाया प्रत्येक भाग , शर्करामा-चिकन्तु मोदकयोग्यमाह ॥ ३ ॥

## र्शालपर्ग्यादिना सिद्धा पेया पूर्वमधोगते । वमन मदनोन्मिश्रो मन्थः सत्तौद्रशर्करः ॥ ४॥

शालपर्यादिना मिद्धेति—शालपर्यादि स्वल्पपञ्चमूल तथातिसारे उर्का हो च स्वल्पमङ्द्रेदात् एव शालपर्यादित्रयमेव दोषायपेचया देयमित्याहु । व्यवहारन्तु प्राय स्वल्पञ्चमूलेनेति । वमनमिति—मन्थो द्वद्रव्यालोडिता शक्तव ॥ ४॥

शालिषष्टिकनीवारकोरदूषप्रशातिका ।
श्यामाकश्च प्रियक्तृश्च भोजनं रक्षपित्तिनाम् ॥
मस्रमुद्रचणका समुकुष्टाढकीफला ।
प्रशस्ताः स्रपयूषार्थे किल्पता रक्षपित्तिनाम् ॥
शाकं पटोलवेताप्रतगृडलीयादिकं हितम् ।
मांसं लावकपोतादिश्शैणहरिणादिजम् ॥ ४ ॥

रालिखादी—नीवार उडिया, कोरद्भ कोद्रव, स चेइ पुरातनी प्राध, तेन कोरद्भस्य यद्रक्तिपित्तेहतुत्व चरके निदानस्थाने प्रोक्त तदिमनवाभि-प्रायेखिति केचित्। अन्ये तु निष्पावमाषपूपादियुक्तस्यैव कोरद्भस्य सयोगमिहिम्ना रक्तिपत्तिहेत्व निदाने प्रोक्तम्, केवलस्य तु कषायमधुरलधुत्वात् रक्तिपत्तहन्तृत्व-मेवाहु । प्रशातिका रक्तश्रक्ता, रक्त उडिया इति ख्याता, सा जलमध्ये प्रायो भवति। प्रियगु कगु कायोनीति लोके । आदकी तुवरी ॥ ५॥

- ✓ विना शुग्ठी पडङ्गेन सिद्धं तोयञ्च दापयेत् ॥ ६ ॥ विना शुग्ठीमिलादि स्पष्टम् ॥ ६ ॥
- ्र चींग्रमांसवलं वालं वृद्धं शोपानुबन्धिनम् । श्रवम्यमविरेच्यञ्च स्तम्मनै समुपाचरेत् ॥ ७ ॥ निषिद्धवमनिरेचनमाह चींग्रेसादि–शोषानुबन्धिन यद्मानुबन्धयुतम् ॥७॥ वृपपत्राग्रि निष्पीड्य रसं समधुशर्करम् ।

#### 🗸 पिवेत् तेन शमं याति रक्षपित्तं सुदारुणम् ॥ 🗢 ॥

स्तम्भनयोगानाह वृषेत्यादि—वृषस्य पत्राणि पुटपाकविधिना उत्स्विच ततो रमो ग्राटा । श्रन्यथा तत्पत्रस्वरसो दुर्भहो भवति । श्रयत्र योग ऊद्ध्वेगे बोध्य दत्याहु । योगोऽय मधुरार्कराज्यातरेकेण तत्कृतकपायेणापि वेष्ध्य , यदाह वाग्मट. 'पित्तासक् रामयेत् पीतो निर्यासो वाटरूपज । रार्करामधुम्बद्धक केवलो वा श्राटोऽपि वा ' इति ॥ = ॥

## श्राटरूपकिनर्य्यूहे प्रियद्गुर्मृत्तिकाञ्जने । विनीय लोधं सत्तौद्रं रक्षपित्तहरं पिवेत् ॥ ६॥

श्राटरूपकिनर्यू इत्यादि साटड् नामक, मृतिका माराष्ट्री मृत्, नदभाव पद्गपर्यी, श्रक्षन रमाजनम्, चीद्रान्तोऽय योग । उक्त व्र वाग्भेट 'वासारमेन फिलनीमृद्दसाजनमाचिकम् । पित्तास्क् शमयेत् पीतम् ' इति । विनीय कल्कीकृत्य प्रिचिप्येति वा । प्रियग्वादीना मिलिताना कर्ष चौद्रस्य च कर्ष प्रचिप्य पिवेत्, परिभापावलात् । उक्त द्यादिवेगेन कर्षश्चर्यंस्य कल्कस्येत्यादि, तथा मात्रा चौद्रभृतादीनामिति । श्रन्ये त्वाद्य — चूर्णादोना कर्षमानत्व स्वतन्त्रप्रयोग एव भवति । यदि पुनरत्रोक्तपरिभाषानुमारेण प्रियग्वादीना प्रत्येक गृद्यते तदा मेपज-भूयस्त्व स्यात्, प्रियग्वादीनामल्पत्व युक्त भवति, व्यवहारस्तु प्रियग्वादिकल्क-चौद्रयो प्रत्येक चतु पञ्चमायक प्रचेष इति ॥ १ ॥

वासाकषायोत्पलमृत्प्रियङ्गुलोध्राञ्जनाम्मोरुद्दकेशराणि।
पीत्वा सिताज्ञोद्रयुतानि हन्यात्।
पित्त(स्त्रजो वेगमुदीर्णमाश्च॥ १०॥

वामाकषाय इत्यादि—सुश्रुतस्य । उत्पनादोना र्घाद्रान्ताना प्रचेष । निश्रनस्तु मितामधुनी प्रत्येक शाख , उत्पनादीना मिलित्वा शाख इत्याद्द ॥१०॥

तालीशचूर्णसंयुक्तः पेयः चौद्रेण वासकस्वरसः।कफिप्ततमकश्वास-स्वरभेदरक्रिपत्तहरः॥ ११॥

तालीशित्यादि—अत्र वामकस्वरमस्य पणम्, तालीशःचूर्णस्य मापकदयम्, मधु मापचतुष्टयमिति व्यवहरन्ति ॥ ११॥

श्राटरूपकमृद्वीका-पथ्याकाथ सश्करः। चौद्रादय कसनश्वासरक्षपित्तनिवर्ह्ण ॥ १२॥ श्राटरूपकेसादि—चरकस्याय योगे।ऽनार्थ इति नेज्जट , दृश्यते त्वय चन्द्रा-टाहिपु बद्दममहेष्वपीति ॥ १२॥

वासायां विद्यमानायामाशायां जीवितस्य च। रक्षपिची चयी कासी किमर्थमवसीद्ति॥१४॥ वासायामिलादि सप्टम्॥१३॥

> समात्तिक फल्गुफलोद्भवो वा पीतो रस' शोखितमाश्च हन्ति ॥ १४॥

समाचिक इत्यादि--फल्गुफल काकोडुम्बरिकाफलम् । श्रय यीगोऽधोगे मवति ॥ १४ ॥

मदयन्त्यङ्घिज काथस्तद्वत् समधुशकरः॥ १४॥
मदयन्त्यङ्घिति मदयन्ती मिल्लकामेद , तथा मृलम् ॥ १४॥
अतसीकुसुमसमङ्गावटावरोहृत्वगम्भसा पीता।
प्रशामयति रक्षपित्ते यदि मुङ्के मुद्रयूपेण्॥ १६॥
अतमीलादी—वटावरोह्लिगिति वटावरोह्स्य लक्। णतत् मर्व पिष्ट्वा
अम्ममा पेयम्॥ १६॥

कपाययोगैर्विविधैर्दीप्ताग्नौ निर्जिते कफे।

√ रक्कपित्तं न चेच्छाम्येत् तत्र वातोल्वणे पयः॥

छागं पयोऽधवा गन्यं श्रतं पञ्चगुणे जले।

श्रभ्यसेत् ससितात्तौद्रं पञ्चमूलीश्रतं पयः॥ १७॥

चीरपानविषयमाह कषाययोगैरित्यादि—नाग्मटस्य । कषायाश्चूर्णकल्का-दय । पद्ममूली स्वल्पा, चीरपाकविधानेन पद्ममूलीसाधित पय. । अत्रापि मिनाचौद्रमिति योज्यम् । उक्त हि वाग्मेट 'पद्ममूलेन लघुना श्वतंत्र ससिता-मधु ' इति ॥ १७ ॥

## द्राच्चया पर्णिनीभिर्वा वलया मधुकेन वा। श्वदंष्ट्रया शतावर्थ्या रक्षजित् साधितं पय ॥ १८॥

द्राच्चयेत्वादि — एते पड्योगा । पणिनीभिरिति शालपणीं-पृश्चिपणीं —मुद्रपर्णामापपणिभिरिति, एव सर्वत्र बहुवचनान्ते, द्विचनान्ते त्वाधे दे । एते योगा
विशेषेण मूत्रमार्गेने रक्तिपित्ते श्रेयाः । तथा घतस्य शर्कराया प्रच्नेपोऽत्र बोध्य ।
यद्रक्त वाग्मेटे 'जीवकर्षमकी द्राचावलामधुकगोद्धरै । पृथक् पृथक् श्वतं चीर
मध्त मित्रवापि वा । गोकण्टकामीरुश्वतं पणिनीभिस्तथा पय । इन्त्याशु
रक्त मरुज विशेषान्मूत्रमार्गगम् ' इति । एवद्य मजीवकं सर्वमकमित्यादि चरकेणाप्युक्तम् ॥ १ = ॥

## पक्कोह्रम्वरकाश्मर्य्य-पथ्याखर्जूरगोस्तना । मधुना व्रति संलीढा रक्कपित्तं पृथक् पृथक् ॥ १६॥

पकोडम्बरेलादि—उडुम्बरादीना फलानि पक्तानि, ततस्तेषा चूर्याना मधुना लेह । काश्मर्य्य गाम्भारीफलम्, खर्जूर पिण्डखर्जूरम्, गोस्तना द्राचा । मधुन नेलादेर्देवादप्राप्ती अनर्हत्वे वा सर्वत्र शार्कर जल वहसेनरसं कदल्यादिकुसुम-सम्भव वा ब्राह्मिलर्थ । नासाप्रवृत्तरुथिरेऽपि पकोडुम्बरफल मधुना गुडेन च दृश्यते, उक्त हि विन्दुसारे ' उडुम्बराणि पक्तानि गुडेन मधुनापि वा । उपयुक्तानि निम्नन्ति नासारक्त नृष्ण ध्रुवम् ' इति ॥ १६ ॥

भद्रशाखोटकत्वग्रसिनदुद्धितययुतो घृतद्विगुण । भूनिम्वकरक ऊद्र्ष्वगिपत्तास्रकासश्वासम्न ॥ २०॥ महेसादि—भद्रसहरू ॥ २०॥

खिद्रस्य प्रियङ्गूणां कोविदारस्य शाल्मले । पुष्पचूर्णन्तु मधुना लीद्वा चारोग्यमश्रुते ॥ २१॥ खिदरस्येलादि—चरकस्य। चरके तु पुष्पचूर्णानि मधुना लिखादा रक्षपित्त-

खदिरस्येलादि—चरकस्य। चरक तु पुष्पचूषाान मधुना लिखादा रक्षापत्त-नुदिति पाठः; टीकाकारोऽपि चूर्णानि तस्य रक्षपित्तनुदिति निरोषण नोपपद्यत इति कृत्वा पुरुषिरोपण्त्वमाह । सम्रहकारैश्च पुष्पचूर्णीनि मधुना लीढ्वा चारे। ग्य-मश्तुते इति प्रतिसस्कृत्य लिखितम् । भयन्च पुष्पचूर्णलेहो व्यस्त , मर्वत्र विभनत्य-न्तत्वेन निर्देशादिति वृन्दिटप्पणी, किन्तु चरकटीकाक्रिक् व्याख्यातोऽयमर्थ ॥२१॥

> श्रभया मधुसंयुक्ता पाचनी दीपनी मता । श्लेष्माणं रक्तपित्तञ्च हन्ति श्लंगतिसारनुत् ॥ २२ ॥

श्रभयेत्यादि---श्रथ योगो यद्यपि पक्षोडुम्बरकाश्मर्य्येत्यादियोगमध्ये पठित ध्व तथापि फलविशेषकथनार्थमिह पुनरुक्तम् ॥ २२ ॥

वासकरखरसे पथ्या सप्तधा परिभाविता।
कृष्णा वा मधुना लीढा रक्षपित्तं द्रुतं जयेत्।
भावनायां द्रवो देय सम्यगाईत्वकारकः॥ २३॥

वासकस्वरस इत्यादि—कृष्णा च वामकस्वरसे भावितेति योज्यम्, भावना च मप्ताइम्, उक्त हि चन्द्राटे 'दिवा दिवातपे शुष्क रात्री रात्री च वासयेत् । शुष्क-चूर्णीकृत द्रव्य सप्ताइ भावनाविधि । द्रवण यावता द्रव्यमेकीभूयार्द्रता त्रेजेत् । तावत्प्रमाण निर्दिष्ट भिष्ग्मिर्मावनाविधी १ इति ॥ २३ ॥

## एलागुडिका

प्लापतत्वचोऽद्धीचा पिष्पत्यर्द्धपलं तथा।

सितामधुकखर्जूरमृद्वीकाश्च पलोनिमताः॥
संचूर्ण्य मधुना युक्त्या गुडिका कारयेद्भिषक्।
श्रवमात्रां ततश्चैका भच्चयेत्तु दिने दिने॥
कासं श्वासं ज्वरं हिक्कां छिदं मूच्छीं मदं श्रमम्।
रक्तिनिष्ठीवनं तृष्णां पार्श्वश्चलमरोचकम्।
शोधभीद्दाद्यवातांश्च सरभेदं चतन्त्वयम्।
गुडिका तर्पणी वृष्या रक्तिपत्तश्च नाशयेत्॥ २४॥

प्लेत्यादि—चतचीयो चरकस्य । श्रद्धीचा इति प्रत्येक कर्पार्द्धमाना । एव मितादयश्च प्रत्येक पलोनिमता । युक्त्या इति यावता मधुना गुढिका भवति तावन्मान मधु देयम् । श्राढ्यवात वातरक्ष करुस्तम्ममित्यन्ये ॥ २४ ॥

## लोहगन्धिनि निश्वासे चोद्गारे रक्षगन्धिनि । पृथ्वीकां शाणमात्रान्तु खादेद् द्विगुणशर्कराम् ॥२४॥

पृथ्वीका शाणमात्रामिति पृथ्वीका कृष्णजीरक न तु स्हेमला, टीकाक्निद्धर-व्याख्यातत्वात् । शाणो मामचतुष्टयम् । कृष्णजीरकस्य तीच्छात्वे उष्णात्वेऽपि द्विपु-णशर्करायोगात् प्रभावादा पित्तहन्तृत्वन् ॥ २५ ॥

# ्र नासाप्रवृत्तरुधिरं घृतभृष्टं ऋत्णिपष्टमामलकम् । सेतुरिव तोयवेगं रुणद्धि मूर्भि प्रलेपेन ॥ २६ ॥

नामेत्यादि । श्रामलक धृते भृष्ट्वा काश्विके पिष्ट्वा शिरिम लेपो देय ॥२६॥

#### व्राण्यवृत्ते जलमाशु देयं सशर्करं नासिकया पयो वा। द्रानारसं चीरघृतं पियेद्वा सशर्करञ्जेज्ञरसं हितं वा॥ २०॥

व्राणप्रवृत्त इत्यादि — सुश्रुतस्य । जलादयः सरार्कराः पञ्च नस्ययोगा इति गयदासः । तथा डल्वणोऽपि व्राणप्रवृत्ते सरार्कर पानीयम्, पयोऽपि सगर्करम्, तथा द्राचारसमपि सरार्कर नासिकया पिवेत् । तथा चीरष्टत चारमथनोद्भृतष्टत तच सर्शार्कर नामिकया पिवेत् । प्विमचुरममपि नासिकया पिवेत् । वृन्दिष्टिप्पयान्तु केवल-द्राचारसस्य नस्यञ्चेच्छरमस्य च नस्यमित्युक्तम्, इदमपि सुक्तम्, यदाह चरकः 'द्राचारसस्येच्छरसस्य नस्य चीरस्य दूर्वास्वरसस्य चैव' इति । चकस्तु नामिकया इत्यत्र नस्तकयेति पिठत्वा नासापुटयोरिति विवृतवान् । केचित् तु मूर्धि लेपेनेत्यतो मूर्धि इति पदमनुवृत्य श्रत्र मूर्धि जल देयमित्यर्थमाहु । तन्न, नामाप्रवृत्तर्थरिम-त्यादि चरकवचनम्, व्राणप्रवृत्त इत्यादि सौश्रुतम्, तस्मात् दुरन्वय । हित वेत्यत्र विवृत्तवि पाठोऽपि श्रेय ॥ २७ ॥

## र्/ नस्यं दाडिमपुष्पोत्थो रसो दुर्वाभवोऽथवा । त्राम्रास्थिज पलाएडोर्वा नासिकास्रुतरक्रजित् ॥२≂॥

नस्यमित्यादि—चत्वारो योगाः चरकेऽप्युक्त 'द्राचारसस्येचुरसस्य नस्य चीरस्य दूर्वास्वरसस्य चैव । यवासंमूलानि पलाग्रहुमूल नस्यं तथा दाहिमपुष्पतीये ' इति । एव वाग्मटेऽप्युक्तम् । केचित् तु 'रसे दाडिमपुष्पस्य दूर्वारससमन्विते ' इति तन्त्रान्तरप्रदर्शनादत्रापि दूर्वारस-दाडिमरसाभ्यामेक एव योग इत्याहु ॥ २८॥

मेद्रगेऽतिप्रवृत्ते तु वस्तिरुचरसंक्षितः । श्वतं चीरं पिवेद्वापि पञ्चमूल्या तृणाह्नया ॥ २६ ॥

मेद्रग इत्यादि—पञ्चमूल्या तृयाह्यति तृयापञ्चमूल्या, यद्का द्वश्रुते 'कुरा-काशशरेच्चदर्भा ' इति । अत्र दर्भ उद्युवासः । चरके तु 'शरेच्छकाशदभाषा शालीना मूलमेव च शति । उभयमपि शस्तम् ॥ २६ ॥

# द्वीधं घृतम्

दूर्वा सोत्पलिक अल्का मिल्रष्ठा सैलवालुका। सिता शीतमुशीरश्च मुस्तं चन्दनपद्मकम्॥ विपचेत् कार्षिकैरतैः सर्पिराजं सुखान्निमा। तएइलाम्बु त्वजात्तीरं दत्वा चैव चतुर्गुणम्॥ तत्पानं वमतो एकं नावनं नासिकागते। कर्णाभ्यां यस्य गच्छेत्तु तस्य कर्णी प्रपूरयेत्॥ चत्तुः स्नाविणि एकं तु पूरयेत् तेन चत्तुषी। मेद्रपायुपवृत्ते तु विस्तकमेस्र तिस्ततम्॥ रोमकूपप्रवृत्ते तु तदस्यके प्रयोजयेत्॥ ३०॥

दूर्वाष्टते शीत श्रेतचन्दनमिति वृन्दः । अन्ये तु बहुवारलर्चं रमाअन वेलाहु । त्रयाणामेव रत्नशालादौ शीतसज्ञकलेनोक्तलात् । व्यवहारस्तु प्राय श्रेतचन्दनेनेति । तण्डुलाम्बु त्वजाचीरञ्च प्रत्येक चतुर्गुणम्, दत्वा चैवेनि चकारादिलाहु ॥ ३ ॥

#### शतावरीघृतम्

शतावरी दाडिमितिन्तिडीकं काकोलिमेदे मधुकं विदारीम्। पिष्ट्वा च मूलं फलपूरकस्य घृतं पचेत् सीरचतुर्गुणं श्रः॥

#### कासञ्चरानाहावेवनधग्रूलं

#### तद्रक्षपित्तं घृतमाशु हन्यात् ॥ ३१ ॥

रातावरीत्।दि—चरकस्य । केचिदत्र दाडिमफलम् क्रांत्तरापथिकामित्याहु । तिन्तिटीक महार्द्रकम् । काकोलायुक्ते मेदे काकोलीमेदे, मध्यपदलोपी ममाम , किंवा काकोलीशब्द प्रथमैकवचनान्तस्त्रीलिक्षशब्द , मेदे इति मेदाद्वयम् , तन्त्रान्तरप्रमा-णात् , उक्त हि 'काकोली मधुक मेदे तिन्तिटीक सदाटिमम् । शतावरी विदारीच्च वीजपूरजटान्विताम् । पिष्ट्वा चतुर्गुणे तोये पक्तमाज्य ज्वरापहम् ' इति ॥ ३१॥

#### **बृहच्छतावरी** घृतम्

शतावर्थ्यास्तु मूलानां रसप्रस्वद्वयं मतम्। तत्समञ्ज भवत् चीरं घृतप्रस्थं विपाचयेत्॥ जीवकर्षभकी मेदा महामेदा तथैव च। काकोली चीरकाकोली मृद्वीका मधुकं तथा। मुद्गपर्शी माषपर्शी विदारी रक्कचन्दनम्। शर्करामधुसंयुक्तं सिद्धं विस्नावयेद्भिषक् ॥ रक्रपित्तविकारेषु वातरक्रगदेषु च। चीणशुकेषु दातव्यं वाजीकरणमुत्तमम्॥ श्रद्गदाहं शिरोदाहं ज्वरं पित्तसमुद्भवम्। योनिश्रलञ्च दाहञ्च मूत्रकृच्छुञ्च पैत्तिकम् ॥ पतान् रोगान् निहन्त्याशु छिन्नाभ्राणीव मारुतः। शतावरीसिंपिरिदं वलवणीं ग्रिवर्द्धनम्॥ स्नेहपादः स्पृतः कल्कः कल्कवन्मधुशर्करे । इति वाक्यवलात् स्नेहे प्रक्षेप्यं पादिकं भवेत् ॥ ३२ ॥ बृहच्छतावरीष्टते - रार्करामधुमयुतिमिति मिद्धराति मधुरार्करयोमिलित्वा पादिक प्रदेष, अतएवाह सेहपाद शत्यादि ॥ ३२ ॥

वासाद्यं घृतम् √ वासां सशाखां सपलाशमूलां कृत्वा कषायं कुसुमानि चास्याः। प्रदाय करकं विपचेद् घृत तत् सत्तौद्रमाश्वेव निहन्ति रक्षम् ॥ शणस्य कोविदारस्य वृग्स्य क्षक्रमस्य च।

कलकाल्यत्वात् पुष्पकलकं प्रस्थे पलचतुष्टयम् ॥ ३३ ॥ वामामित्याडि--चरकस्य। श्रवार्हाया विधानात् काथविधाने न द्वेत्रारयम् । 'नित्यमार्दा प्रयोक्तन्या न तामा द्विगुणो मॅबेच् ' इति वचनात् । अत्राष्टगुण जल ठत्त्वा श्रष्टाशरोप तपाय कार्थ्य । उक हि वारमेटे ' ममूलमस्तक पिष्ट वृष-मष्टगुरेष इन्मिम । पक्तवाष्टाशावरीपण प्रत तेन विपाचियत् । तत् पुष्पगर्भ तच्छीत सबीद्र पित्तगोणितम् ' इत्यादि । श्रत्र वामापुष्यकत्क , श्रत प्रस्थऽपि पलचतुः ष्ट्यम् , राणस्य कोविदारस्य पृपस्येति वद्यमाखपरिमापावलात् । श्रत्रानिर्दिष्टप्रमा-णत्वात् स्नेहस्य प्रस्थ एव पक्तन्य । अतप्रवोक्तम् , ' श्रनिर्दिष्टप्रमाणाना लेहाना प्रस्थ इप्यते 'इति । यत् पुन ' लेहपाकविधी यत्र प्रमाण नेरित काचित्। केहन्य कुटन तत्र पचेत् कल्कपेलन तु 'इति परिमापया स्नेहकुडनपाकाभिधान तत् तु नस्यविषय क्रियम् । मर्ज्ञाद्रमिति कलकवन्मधुराकीरे इति वचनेन प्रतात् पादिन कत्व श्रेयम् । श्रन्य तु कल्कधर्ममधुशकीरे इत्यतिदेशवलात् कल्कस्यात्र त्वात् मधुनोऽपि चनुष्पलत्वमाहु । अत्र केचिचरके 'काम ज्वर पित्तभवज्ञ राल गुल्म यक्तत्पनीहगदाश्च हन्ति 'इति फलग्रह पठन्ति । वाग्मटेऽप्युक्त ' पित्त-गुल्मयकृच्छ्वामकासहृद्ग्रहकामला । तिभिरज्वरवीमर्प-स्वरभेदाश्च नारोयत् ? इति ॥ ३३ ॥

कामदेवघृतम्
श्रिश्वागन्धापलशतं तद्र्द्वं गोच्चरस्य च ।
श्रिश्वागन्धापलशतं तद्र्द्वं गोच्चरस्य च ।
श्रिश्वाग्वापि विदारी च शालपणीं वला तथा ॥
श्रश्वत्थस्य च श्रुद्वानि पद्मवीजं पुनर्नवा ।
काश्मरीफलमेतचु मापवीजं तथैव च ॥
पृथग्दशपलान् भागाश्चतुद्रेंशिऽम्मस पचेत्।
चतुर्भागावशेपन्तु कपायमवतारयेत् ॥
मुद्यीका पद्मकं कुष्ठं पिष्पली रक्कचन्दनम् ।
वालकं नागपुष्पश्च श्रात्मगुप्ताफलं तथा ।

निलोत्पल शारिवे द्वे जीवनीयं विशेषतः।
पृथक् कर्षसमञ्जैव शर्कराया पलद्वयम् ॥
रसस्य पौएड्रकेन्नूणामाढकं तत्र दापयेत्।
चतुर्गुणेन पयसा घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥
रक्षपितं चतन्तीणं कामलां वातशोणितम्।
हलीमकं तथा शोथं स्वरभदं बलन्तयम्।
श्ररोचकं मूत्रकृच्छं पार्श्वश्चलञ्च नाशयेत्।
पतद्राज्ञां प्रयोक्ष्वयं वह्नन्त पुरचारिणाम् ॥
श्रीणाञ्चेवानपत्यानां दुर्बलानाञ्च देहिनाम्।
श्रिष्ठं वलकरं दृद्यं वृष्यं पेयं रसायनम् ॥
श्रोजस्तेजस्करञ्चव त्रायु प्राण्विवद्यनम्।
संवर्दयति श्रक्रञ्च पुरुषं दुर्बलेन्द्रियम् ॥
सर्वरोगाविनिमुक्षस्तायसिक्षा यथा दुम ।
कामदेव इति ख्यातः सर्वर्त्तेषु च शस्यते ॥ ३४॥

श्रभगनेशरयादि—तर्रद्धमिति गोच्चरस्य पञ्चाशत् पलानिः, शतावरयोदीना बलान्तानाच्च प्रत्येक पञ्चाशत् पलानीत्यर्थं , श्रभावश्रष्ठाद्वानाच्च पञ्चाना पृथक् दश-पलानि, ततो मिलित्वा पलशतचतुष्टेयं काथ्यं प्रतिशत जलद्रोणो देय तुलाद्रव्ये जलद्रोण इत्युकेः । नागपुष्प नागकेशरम्, श्रात्मगुप्ताया, श्र्क्तशिम्ब्या फलम्, जीवनीयमिति जीवनीयदशकम्, शर्करान्त कल्कः । तेजस्करमुत्माइ-वर्द्धकम् ॥ ३४॥

#### सप्तप्रस्थघृतम्

शतावरीपयोद्राच्चा-विदारीच्वामलै रसै । सर्पिषा सह संयुक्ते सप्तप्रस्थं पचेद् घृतम् ॥ शर्करापादसंयुक्तं रक्तपित्तहरं पिवेत् । उर चते पित्तशूले चोष्णवाते अप्यसुग्दरे ॥ बल्यमूर्जस्करं वृष्यं चयहद्रोगनाशनम् ॥ ३४ ॥ शनावरीत्यादि---शतावर्थ्यादीना पर्गणा मिलित्वा रसप्रस्था पर्, धन स्पेक प्रस्थ इति मप्त प्रस्थाः ॥ ३५ ॥

#### खराडकूष्माराडकः

कृप्मार्डकात् पलशत सुस्विन्नं निष्कुलीकृतम्। पचेत् तसे घृतप्रस्थे शनैस्ताम्रमये दढे ॥ यदा मधुनिभः पाकस्तदा खएडशतं न्यसेत्। कृष्मार्खपीडनात् तोयेनाढकेन पुनः पचेत्॥ युक्रसर्पिर्यदा पश्येत् तदा सिद्धेऽत्र नित्तिपत्। पिष्पलीश्टइवेराभ्यां हे पले जीरकस्य च ॥ त्वगेलापत्रमरिचधान्यकाना पलाईकम्। न्यस्येत् चूर्णीकृतं तत्र दव्यी सङ्घट्येत् पुनः ॥ नत् पकं स्थापयेद्भागडे दच्वा त्त्रोद्रं घृताईकम्। नद् यथाशिवतं खादेद् रक्षपित्ती त्ततत्त्रयी॥ कासश्वासतमश्छर्दितृष्णाज्वरानिपीडित । वृष्यं पुनर्नवकर वलवर्णप्रसाधनम्॥ उरःसन्घानकरणं वृंहणं स्वरवर्द्धनम् । श्रश्विभ्या निर्मितं सिद्ध क्रुष्माएडकरसायनम् ॥ खएडामलकमानानुसारात् क्रूप्माएडकद्रवात् । पात्रं पाकाय दातव्यं यावान् वात्र रसो भवेत्। श्रत्रापि मुद्रया पाको निस्तवचं निष्कुलीकृतम् ॥ ३६ ॥

कूष्मायहकादिति—निष्कुलोक्नन निस्त्वगम्यीकृतम्, किश्चित् जल दस्त्वा उत्तिस्व चीमे निष्पीक्च झातेष मनाक् मशोष्य पिष्ट्वा च पलशत गृहीत्वा पक्तन्त्रम् । द्वे पले जीरकस्य चेति कणाशुर्यक्र्यो प्रत्येक पलद्वयम्, जीरकस्य च द्वे पले, तमान्तरसम्मतश्चेतत् । तद्यथा 'द्विपलाशं कणाशुर्यकीजीरकैरवचूिर्याते ' इति । वंद्यप्रमारकेऽप्येवमेवीक्तम् । न्यवहारोऽपीत्थमेव । अन्य तु पलाद्विकिमिति परेण मम्बन्थात् जीरकस्य पलाद्विमित्याह्न , तन्न तन्त्रान्तरिवरोषात् । त्वगेलादीनाञ्च

पन्चाना प्रत्यक पलार्द्धम् । श्रायुर्वेदसारेऽप्युक्त 'कृष्म। यहकाना रूढाना स्विन्न शतपल पचेत् । प्रतप्ते हिवष प्रस्थे मधुवर्थेऽत्र वीचिते । खरहाच्छत क्याजाच्यो-हिंपल नागरादिष । धान्येषया त्रिगन्धन्च पृथगर्द्धपलाशिकम् । धृतार्द्धं माचिको-पेत तत् खादेदस्रिपत्तिजित्' हति । धृतार्द्धमिति प्रस्थार्द्धमानिम्त्यर्थं ।

खरहामलकमानानुमारादित्यादि । खरहामलके कूष्मारहरसामलकरसयोः प्रत्येक प्रस्य इत्युक्त , तेन कूष्मारहरातपले पात्रमिति द्वेगुर्ययेन प्रस्यचतुष्ट्य दातव्य-मित्यर्थ । पचान्तरमाह यावान् वात्र रसो मवेदिति । खित्रकूष्मारहस्यातिपिहनेन यावान् रसो भवित तावतैव पाक इत्यर्थ । व्यवहारोऽप्यनेनैव । युक्तश्चाय पच , उक्त हि तन्त्रान्तरे 'वृद्ध पुरातनव्यापि कूष्मारह कठिन वृद्ध । त्वक्शिराभ्या विनिर्मुक्तमन्तर्वाजीविवाजितम् । खिन्न सुपिष्ट दृशदि वक्षेणव प्रपिहितम् । विशुष्क-मातपे किव्चिद् प्राह्म तत् तुलया धृतम् । श्रीहुम्बरकटाहे तु पचेत् प्रस्य च मिषव । कृत्वा चौद्रनिम तसिन् चिपेत् खरहशत भिषक् । कूष्मारहपीहनात् तोय यत् तेन विपवेत् पुन इति । मुद्रया पाक इत्यादि—श्रगुलिपीहनजन्य चिह्न मुद्रा, तया पाको क्षेय । एतचे।पलच्चण्म्, तेन।न्यदिप पक्तच्चण् क्षेयम् ॥ ३६॥

#### वासाखएडकूष्माएडकः

पञ्चाशच पलं स्विन्नं कृष्माएडात् प्रस्थमाज्यत ।

प्राह्यं पलशतं खएडं वासाकाथाढके पचेत् ॥

मुस्ताधात्रीशुमामागीत्रिद्धगन्धेश्च कार्षिकैः ।

ऐलेयविश्वधन्याक-मरिचैश्च पलांशिकैः ॥

पिप्पलीकुडवश्चैव मधुमाणीं प्रदापयेत् ।

एतच्चूणींकृतं तत्र दृर्व्या सङ्घर्येत् पुन ॥

तद् यथाग्निवलं खादेद् रक्रिपिची चतच्चयी ।

वृष्यं पुननेवकरं वलवर्षकरश्च तत् ॥

कासं श्वासं च्यं हिकां रक्षिपंचं हलीमकम् ।

हद्रोगमम्लिपेत्तश्च पीनसश्च व्यपोहति ॥ ३७ ॥

पन्वाशच पलिमत्यादि-अत्रापि पूर्ववत् स्वित्रम्, सस्कृतक्रूष्मायडात् पञ्चा-शत्पलम् । न चात्र खण्डक्रूष्मायडवत् क्रूष्मायडरसो मास्य , पाकार्थे वासाकाथस्येव उक्तत्वात् । वामायार्त्वतु पष्टि पलानि, जलस्यापि चतु पष्टि राराधा , स्याप्यनतु षोडगरारावरूपमाडकम् । गुमा वरालोचना, पेलयम् प्लवालुकम् । मधुमायीति
मधुनीऽष्टी पलानि । अत्र केचित् मायिकाया द्वगुर्थ्यमिच्छन्तिः किन्तु 'मायिकाकुडवी चिति या वा मख्या पलै कृता । आर्द्रज्ये द्रवे चैव न तत्र द्विगुष्य विदु
इति वचनात्, तथा चारपायिवचने मायिकाष्टां पलान्येवेत्यवधारणाद्यविव पलानि, न तद् द्वैगुर्थ्यात् पोडरा पलानीत्यर्थे । चरकेऽपि पूर्णं गगविमत्यत्र पूर्णपदेन राराव ईगुर्थ्यामाव स्चिन , तथाहि पूर्णपद द्वगुर्थ्यप्रिते
चेपपरम्, मन्यथा पूर्वपद व्ययं स्थात् । चकस्तु मायिकाकुटवी चेति वचनस्य
केनापि किचित्रप्यलिखितत्वादनार्पत्वमाराङ्क्य मायिकाया द्वगुर्थ्यमिच्छन् चरकोक्तल
गुनादिवृते मायिकया पोडरापलत्व व्याख्यातवान् ॥ ३७॥

#### · वासाखर**डः**

तुलामादाय वासाया पचेदएगुणे जले।
तेन पादावरोपेण पाचयेदाढकं भिपक्॥
चूर्णानामभयानाञ्च खएडाच्छुद्धाच्छुतं तथा।
द्वे पले पिप्पलीचूर्णात् सिद्धशीते च मानिकात्॥
कुडवं पलमातन्तु चातुर्जातं सुचूर्णितम्।
चिप्त्वा विलोडितं खादेद् रक्षपित्ती चतत्त्वयी।
श्वासकासपरीतश्च यदमणा च प्रपीडितः॥ ३८॥

तुलामाडायेत्यादि — श्रत्रार्डा वामा, एव नवत्र, निम्वाडिकमिष । उक्त हि वामानिम्वपटेशलेकतकवलाकृष्मायडकेन्द्रावरी । वर्षामूजुटवाश्वगन्थसिंहते हे पूर्ति-गन्थागृते । माम नागवला महाचरपुरा हिङ्ग्वादके नित्यशो आह्यास्तत्वस्वयमेव न हिंगुरियता ये चेन्नुजाता धना ' इति । श्रष्टगुर्य जल इति गरावशते, नान्न हैगुर्यम्, ' न हैगुर्यय जुलामाने पलोहिखागते तथा ' इत्युक्ते । पाठनेषाश्च पञ्चित्रातिशरावा । चूर्यानामिति इरीनकीचूर्यानामाडक चतु पष्टिपलानीत्यर्थ , प्राया न पाकश्च्यांनामिति प्राय शब्दात् पाकोऽप्यन्तीति स्वयिन, तेन चूर्यांना पाकिऽपि न विरोध । चातुर्जात पलमानमिनि प्रत्येक पलमानम्, निर्देगस्य मानप्रधानत्वात् ॥ ३ ६॥

## खरडकाद्यो लौहः

शतावरी छिन्नरुहा वृषमुारिडतिका बला । तालमूली च गायती त्रिफलायास्त्वचस्तथा। भार्गी पुष्करमूलञ्च पृथक् पञ्च पलानि च। जलद्रोणे विपक्तव्यमष्टभागावशेषितम् ॥ दिव्यौषधिहतस्यापि माचिकेण हतस्य वा । पलद्वादशकं देयं रुक्मलौहस्य चूर्शितम्॥ खराडतुल्यं घृतं देयं पलपोडशिकं बुधै । पचेत् ताम्रमये पाते गुडपाको यथा मतः॥ प्रस्थार्द्ध मधुना देयं शुभाश्मजतुकत्वच । श्रद्गी विडक्नं कृष्णा च शुग्ठ्यजाजी पतं पत्नम्॥ त्रिफला धान्यकं पत्रं द्यत्तं मरिचकेशरम्। चूर्यं दच्वा सुमाथितं स्निग्धे भारांडे निधापयेत्॥ यथाकालं प्रयुक्षीत विडालपदकं तत । गन्यचीरानुपानश्च सेन्यं मांसरसं पय । गुरुवृष्यान्नपानानि स्निग्धं मांसादि बृंहराम्॥ रक्रपित्तं स्वयं कासं पक्तिश्रलं विशेषत । वातरक्षं प्रमेहञ्च शीतिपत्तं वर्मि किमीन्॥ श्वयथु पार्हिगेगञ्च कुष्टं सीहोद्रं तथ।। श्रानाहं रक्ससंस्रावमम्लिपत्तं निहान्ति च ॥ श्रारोग्यं पुत्रदं श्रेष्ठं कामाग्निवलवर्द्धनम्। च जुष्यं बृंहणं वृष्यं माङ्गल्यं प्रीतिवर्द्धनम्॥ श्रीकरं लाघवकरं खराडकाद्यं प्रकीर्त्तितम् ॥ छागं पारावतं मांसं तितिरि क्रकराः शशाः। कुरङ्गा कृष्णसाराश्च तेषां मांसानि योजयेत्। नारिकेलपय पानं सुनिषग्ण्कचास्तुकम्। श्रुष्कमूलकजीराख्यं पटोलं वृहतीफलम् ॥

फलं वार्त्तांकु पक्षाम्नं खर्जूरं खादु दादिमम् ककारपूर्वकं यद्य मांसञ्चानूपसम्भवम् ॥ वर्जनीयं विशेषण् खण्डकाद्यं प्रकुर्वता । लोहान्तरवद्त्रापि पुटनादिक्रियप्यते ॥ ३६ ॥ यद्य पित्तज्वरे प्रोक्तं वहिरन्तस्त्र भेपजम् । रक्तपित्ते हितं तद्य ज्ञीण्यत्तिहतञ्च यत् ॥ ४० ॥ इति रक्तपित्तिविकत्सा ।

--:-0- ---

राएटाच लौहमाह शतावरीत्यादि-दिनग्हा गुहूची, पूरे वामक, मुख्डितिका मुग्हीरी, गायत्री खदिर । त्रिफलायास्त्रच इति निरम्थित्रिफलाया । दिच्योपधिर्मन शिला, कणामूल वा, माचिक स्वर्णमाचिकम्, मन शिलास्वर्ण-माज्ञिकाभ्या प्रत्येक मिलित्वा वा प्रतिष्य दग्ध्वा न लीह गारणीयम् । गएउ-तुल्यीमति च्छेदः, तेन खरहस्यापि द्वादम पलानि । केचित् तु रक्षपित्तहन्त्रत्वान् खण्डस्य प्रचुरतरमेवाधिकरोतीति प्रतपेदन सह खण्डतुल्यमिति ये।जयन्ति, नत् तु न सन्यक् लाह्योगत्वादल लाह्प्राधान्येन तन्मानापकपरयायुकत्वात्, रक्षपित्तप्रत्यनीकन्तु लें।हस्य स्वरूपत एव महाशाकिकत्वात् विशेषते। रक्षापित्तहरम्। तत् तु द्रव्य पुटादिभावितत्वेन महावीय्यंकनयोपपन्नम् । व्यवहारक्षः लीएनमत्वैव । प्रन्थार्द्धमिति पे।डरा पतानि । शुभा वराले।चना, श्ररमजतुक शिलाजनु, त्वक गुडलक्, शुभादीना जीरकान्ताना प्रत्येक पलम्, त्रिफलादीना केरारान्ताना प्रत्येक दयच कर्षद्वयमित्यर्थ । विटालपदक कर्ष , ण्तच पूर्वयुगपुरपाभिप्रायेख मानमुक्त, व्यवहारस्तु राकित्रिचतु पन्चकादारभ्य राकिद्वयपृत्थ्या मापकचतुष्टय यानत् वृद्धि । गन्यचीरानुपानमिति लीहापेचया चतु पष्टिगुखन्, लीहान्तरं तथा दर्शनात् । उक्त हि 'अनुपान चतु पष्टिगुण प्राहु सदा बुधा ' इति । जीराख्य-मिति जीराख्यशाक मारिपाकार चम्पकादी जीरेति ख्यातन् । ककारपूर्वकमिनि विहितान् क्रकरकुरक्रकृष्णसारान् विहाय, दद्यात् । क्रकारपूर्वकं क्रपोतककोटादि नत् परित्याज्यम् । श्रमृतमारलै।हबदलापि बलिमन्त्रादि देय मधुप्रतमदनादिकःच । अत्र केचित् गन्धकाश्ररससयोग कुर्वेन्ति, णतदनुकूलब्न वचन पठन्ति, ' न रसेन विना लेाह गन्धकञ्चाञ्चक विना' इति, तथा 'चपलेन दिना लाह य. करोनि पुमानिह। उदरे तस्य किट्टानि जायन्ते नाम्न सराय ' इति । प्नत् तु न व्यवहारिमद्भम् । यत रमाभ्रमिहतलौहप्रयोगस्य प्रशस्तताप्रतिपादानार्थं तथाभ्रक-गृत्यलीहे क्रिमिकिट्टादिव्यापच्छक्द्रानिवृत्त्यर्थमभ्रकस्यावश्य प्रचेपणार्थव्य फलाति-श्यप्रतिपादनार्थमिति चतु ममलोहे वावयद्यमिद पिठतम् । पुमानिहेति, इद्दशब्दात् वचनद्रयमि तत्रव वोध्य, नान्यत्र । श्रन्यथा मामान्यत एव परिमाषितिमिद स्यादिति ॥ ३६ ॥ ४० ॥

इति रक्त पित्त-चिकित्मा-विवृति ॥

# अथ यक्ष्मचिकित्सा ।

शालिपष्टिकगोधूमयवर्मुद्राद्य श्रमाः।

मद्यानि जाङ्गलाः पित्तमृगाः शस्ता विश्रुष्यताम् ॥
शुष्यतां क्षीणमांसानां किल्पतानि विधानवित्।
दद्यात् कृव्यादमांसानि वृंहणानि विशेषतः॥१॥

यद्मरूपेषु पित्तासस्य चागम इति रक्षापित्तानन्तर राजयद्मि चिकित्सितमुच्यते । शालीत्यादि — शाल्यादिक सवत्मरातिकान्त, यदाइ वाग्मटः 'शालिषष्टिकगोधूमयवमुद्ग ममातीतम्' इति । कव्यादमासानीति कव्यादा व्याघ्रगृधादयः ।
एषाच्च मासमितिशेयन् मासकर भवति । उक्ष हि 'मामेनोपिचताङ्गाना माम
मामकर परम् ।' एतच्च भद्यच्छागादिमासव्याजेन देयम् । उक्ष हि 'काकोलूकवृकद्वीपिगवाश्वनकुलोरगम् । गृध्रचासखरोष्ट्रव्च हित इस्त्योतुसहितम् ' इति ।
सुश्रुतेऽप्युक्ष 'काकानुल्कान् नकुलान् विद्यालान् गण्डूपदान् व्यालविलेशयाख्न्
गृधाश्च दद्याद्विविधैः प्रकारे समैन्धवान् सर्वपतैलभृष्टान् । देयानि मासानि च
जाङ्गलानि । मुद्रादकीस्परसाश्च हृद्या । खरोष्ट्रनागाश्वतराश्वज्ञाने देयानि मासानि
सुकिल्पतानि मासोपदशाश्च पिवेदरिष्टान् माध्वीकश्चका मदिराश्च सेन्या '
इति । सुकिल्पतानीति सदशास्रोकाविथया उपकिल्पतानि ॥ १ ॥

दोषाधिकानां वमनं शस्यते सविरेचनम्।

﴿ स्नेहस्वेदोपपन्नानां सस्नेहं यन्न कर्षणम्॥
शुद्धकोष्ठस्य युक्षीत विधि चृहण्दीपनम्।

शुकायत्तं वलं पुंसां मलायत्तं हि जीविनम् । तस्माद् यत्नेन मंरत्तेद् यन्मिणा मलरेनमी ॥ २॥

नेपाधिकानामित्यादि — नरकस्य । सरेतहमीपरेगह्म । यस कर्षण्मित्यनेन वमनविरेन्नयोरत्र मृदुनोरयलापापकपण्यो प्रयोग दशयति । सुक्रेत्यादि — वारभटस्य । शुक्रस्य मर्वधानुमारत्वात् तदर्धान शांकलत्रण्यतम्, मन्नायधारि जीवितमिति । यप्ति मर्वधान जीवित मनाधीन मन्ध्य शरारम्गम्भक्षण्य तथापि विरोपादाजयादिमण्यो जीवित मनाधीनम् । उप्र हि 'तिमान् कांभ पनत्यिर्यदेश्व कोष्ठमाधतम् । मन् वयति नत् प्राय कन्यते विदेशिकोने । तस्मात् पुरीप मरस्य विभेषादाजयदिमण्य । मर्नधातृनयाधार्य यल श्रम्य हि विद्वलम् 'इति ॥ २॥

सिपण्लीकं सयव सकुलत्थ मनागरम् । दाडिमामलकोपेत किग्धमाजग्म पियेत ॥ तेन पड् विनिवर्त्तन्ते विकाग पीनमादय । रसे द्रव्याम्यु पयावत् स्दशाववशादिह ॥ पलानि द्वादश प्रस्थे घनेऽव तनुके तु पर । मासस्य वटकं कुर्यात् पलमच्छतरे रसे ॥३॥

सिष्पलीकिमित्यादि—अत्र केचित् यवकुलत्यारन्यत्रच्यापे तथा ६ नुर्ग तथी वृपयोनित्वात्, पिप्पला शुराठी च नावना देवा वावत्या करुवसाध त्यात्, ए वमन्त्र त्वाधं दाहिमामलकवेदांनम्, एतत् मवं पिष्पत्यान्त्रित्यापेच्या दिग्रमामेन ए एकिकृत्याष्ट्यायाजले कथनाय, तत् पादम्य एतेन मग्रुत्य उपयोग्यामिति । वृद्धं वात्र पिष्पलीशुरोत्रे प्रत्येक मापकचतुष्टय यवकुलत्थयोग्त प्रत्येक यथ , त्राष्टिमामलकवोरिष प्रत्येक मापकचतुष्टय प्राप्त, समुदिनहच्योपेन्या माम दिगुण प्राप्ता, सममेकिकृत्याष्ट्यायाचे कथनीय, तरपादम्य एतेन मम्त्रच उपयाग्यासित्यातु । चक्तत्त्व स्वसत्माद्ध रस दत्यादि पद्भविष्मापया हच्य चल्या प्रश्तिवाद्धं विच्यान्यास्य प्रति । वद्यमाणस्य प्राप्तास्य पिष्टान कार्य्य, तेनाद्धं शृतकाथेन पलानि दादशप्रत्य द्वादि । वद्यमाणस्य प्राप्तास्य पिष्टान पानुमारेख परिमित पिष्ट्वा पत्रत्वा यूप कार्य दति । व्यरणस्य पुत्रांत्यक्षेप्त पानुमारेख परिमित पिष्ट्वा पत्रत्वा यूप कार्य दति । व्यरणस्य पुत्रांत्यक्षेप्त पानुमारेख परिमित पिष्ट्वा पत्रत्वा यूप कार्य दति । व्यरणस्य पुत्रांत्यक्षेप्त पार्थमान्य द्वाविष्ठाच्यानि वेध्यानि । रमे हच्याम्बुपयाविद्यादी पेयावित्यनेन यथा काथमाध्य

पेयाया पडद्मपिरभाषया द्रच्यजलये। व्यवस्था तथा मासरसेऽपात्यर्थ । मासन्तु सद-रास्तित वचनानुसारेख ग्राह्मित्याह पलानीत्यादि-श्रस्यार्थ सर्वत्रापि पिष्ट्वेति नेष । प्रस्ये द्रवं यदि धनरम कर्त्तव्यस्तदा मासस्य द्वादश पलानि पिष्ट्वा वटक कुर्य्यात् । तथा प्रस्य द्रवं यदि तनुको ऽच्छरस कर्त्तव्यस्तदा मासस्य षट्प-लानि पिष्ट्वा वटक कुर्यात्, एव प्रस्ये द्रवं यदि श्रच्छतरो रस कर्त्तव्यस्तदा मासस्य पल पिष्ट्वा वटक कुर्यादिति । षटङ्गयूषे पुन पडङ्गपरिभाषानुसारेख प्रस्यमात्र जलमर्द्धशृत सत् प्रस्थाद्धेमेव भवति, तेन तल धनरसे मामस्य पट् पलानि तनुके पलत्रयम्, श्रच्छतरेऽद्धंपलमिति ॥ ३॥

# त्रयोदशाङ्गः

धन्याकिपण्पलीविश्व-दशमूलीजलं पिवेत्।
पार्श्वेशूलज्वरश्वासपीनसादिनिवृत्तये॥४॥
धन्याकिपण्लीत्यादि—वातककोत्तरे योगोऽयम्॥४॥

न्याकोपप्पतीत्याद-वातकफोत्तरे यागाऽयम् ॥ ४ ॥ श्रश्वगन्धासृताभीरुदशमूलीवलावृषा ।

पुष्करातिचिपे झन्ति त्त्यं त्तीररसाशिन ॥ ४॥ ।
श्रथगन्थेत्यादि—श्रमीरु शतमूली, वृषे वासकः । काथेनाय योग ।
श्रसमासानदेशादिह पुष्करातिविषयो प्रेत्तपत्वामिति वृन्दिष्पणी ॥ ४॥

्दशमूलवलारास्नापुष्करसुरदारुनागरै. कथितम् । पयं पार्श्वासशिरोरुक्त्तयकासादिशान्तये सलिलम् ॥६॥ दशमूलवलेत्यादि स्पष्टम् ॥ ६ ॥

ककुमत्वङ्नागवलावानिरवीजानि चूर्णितं पर्यास । पकं मधुघृतयुक्तं ससितं यदमादिकासहरम्॥७॥ '

ककुमत्यादि — ककुमत्वक् श्रर्जुनवल्कल, नागवला गोरचतण्डुला, श्रस्या मूल मर्वत्र वोध्यम्, वानरी श्र्काशिम्वी, एषा चूर्णं प्रत्येकमकपल १, शर्करा पल१, दुग्धशराव २, सर्वमिद पक्तवा उत्कारिका कार्य्या, परिमर्जनार्थं घृतकर्ष २, सुगीते मधु किन्चित् दत्त्वा मच्यम् ॥ ७॥

> पारामतकिष्ठागकुरङ्गाणां पृथक् पृथक् । मांसचूर्णमजान्तीरं पीतं यदमहरं परम्॥ =॥

पारावतेत्यादि स्पष्टम् ॥ ८ ॥

घृतकुसुमसारलीढं स्तयं स्तयं नयति गजवलाभूलम्। दुग्धेन केवलेन तु वायसजङ्घा निपीतेव ॥ ६॥ धृतेत्यादी—कुषुममारो मधु, गजबना गोग्नतराडुलेति रुवाता। वायम-जह्या काकजह्या ॥ ६॥

कृष्णाद्वाचासितालेह चयहा चौद्रतेलवान्।
मधुसर्पिर्धुतो वाश्वगन्धाकृष्णासितोद्भव ॥
श्र भरामधुसयुक्त नवनीतं लिहन् चयी।
चीराशी लभते पुष्टिमतुल्ये चाज्यमाद्विके ॥ १०॥
कृष्णेत्यादि मितोद्भव स्त्यन्त योगहय स्पष्टम्। श्रतुल्ये चाज्यमाद्विके स्त्यिषि
योगान्तरम्, श्रत्रापि लिहन् चयी चीराशी लभते पुष्टिमिति बोन्यम् ॥ १०॥

#### सिवोपलादिलेह:

सितोपलातुगाचीरीपिप्पलीबहुलात्वच ।

श्रन्त्यादृद्ध्वं द्विगुणितं लेहयेत् चौद्रसर्पिपा॥
चूर्णितं प्राश्येदेतत् श्वासकामच्यापहम् ।

सुप्तजिह्वारोचिकिनमल्पाग्नं पार्श्वशालिनम् ।

हस्तापादांसदाहेषु ज्वरे रक्ने तथोद्ध्वंगे॥ ११॥

मितोपलेत्याटि—चरकस्य । भितोपल। रार्करा, तुनानीरी वशलीचना, वहुला एला, तक् गुडत्वक् । अन्त्याद्द्धं दिगुणितमिति अन्त्यायास्त्रच एको भाग , । एलाया द्वी, पिप्पल्याक्षत्वार , तुनाचीर्या अष्टा, मितोपलाया पोडिनेत्यथं । यद्यप्यू-द्धंशब्दोऽनागतमिभिनेत यथा 'अत कर्द्धं प्रवत्त्यामि यवाग्विविधोपथा. नियाप्य विवत्तावशादतीतमप्यभिभत्ते । चूर्णं वा प्राश्येटित्यनेन मधुष्ट्त विनापि मचण वोषयति ॥ ११॥

लवङ्गाद्यं चूर्णम् लवहककोलमुशीरचन्दनं ननं सनीलोत्पलजीरकं समम्। त्रुटिः सकृष्णागुरुभृद्गकेशरं

कणा सविश्वा नलदं सहाम्युद्म् ॥
श्रहीन्द्रजातीफलवंशलोचना
सिताष्टभागं समस्दमचूर्णितम् ।
सुरोचनं नर्पणमग्निदीपनं
वलपदं वृष्यतमं त्रिदोषजित् ॥
उरो विवद्धं तमकं गलग्रहं
सकासहिक्कारुचियन्मपीनसम् ।
श्रहण्यतीसारमगन्दरार्थुदं

प्रमेहगृत्मांश्च निहन्ति सज्वरान् ॥ १२ ॥

नवद्गमित्यादौ—नत तगरपादिका, तदमावे सियलाञ्चोपर । मलिलोतपलपत्र नीरकमिति पाठे पत्र तेन पत्रम् । त्रुटि स्दमैला, मृद्ग गुडत्वक्, नलद
मामी । सहाम्बुनेति पाठे श्रम्बु बालकम् । श्रहीन्द्रोऽनन्तमूलम् । शर्कराया एकमागापेचयाष्टां भागा श्रन्ये तु मिलितचूर्णापेचयेत्याहु । व्यवहारस्तु पूर्वेणैव ॥१२॥

तालीशाद्यं चूर्णं मोदकथ तालीशपत्रं मिरचं नागरं पिण्पली शुमा। यथोत्तरं भागवृद्ध्या त्वगेले चार्द्धभागिके॥ पिष्पल्यपृगुणा चात्र प्रदेया सितशर्करा। श्वासकासारुचिहरं तच्चूर्णं दिपनं परम्॥ हृत्पाग्हुप्रह्णीरोगण्लीहशोषज्वरापहम्। स्रृद्धितीसारश्लघ्नं मूढवातानुलोमनम्॥ अ कल्पेयद् गुडिकाश्चेतच्चूर्णं पक्त्वा सितोपलाम्। गुडिका ह्यिसंयोगाच्चूर्णाह्मधुतरा स्मृताः। पैत्तिके प्राह्यक्त्येके शुभया वंशलोचनाम्॥ १३॥ नालीगपत्रमित्यादो—शुमेति पिष्पलीविशेषण्, न तुवशलोचना, ममानतन्त्रे हारीतादावहप्टलात्। किन्तु सम्हकारा प्रवलिषेचे शुभया वशलोचना प्राह्मेति

लिखन्ति । प्रनेमवार्थ कश्चिन्निखति यथा ' तालीशमरिचनागरमागिषकावशलो-

R.

चना क्रमश । वृद्धास्त्वगेलाई कृष्णाया मिता भवेदष्टगुणा हित । रागेले चाई-मागिके इति । प्रथमभागोपेच्चया त्वगेलयो, प्रत्येकमईभागत्वम्, पिप्पल्यष्टगुणिति पिप्पलीभागापेच्चया श्रष्टगुणा सितशकेरा । गुटिकापचे मम जलेन शर्करापाक कुर्वन्ति वृद्धा ॥ १३ ॥

# शृङ्गचर्जुनाद्यचूर्णम्

श्टङ्गर्यजुनाश्वगन्धानागवलापुष्कराभयाच्छित्ररुहा । तालोशादिसमेता लेह्या मधुसर्पिभ्या यन्महराः॥ १४॥

श्वित्यादी—छिन्नरुद्दा गुड्ची । तालीशादिममेता इत्यनेन तालीशादिद्रन्य-मात्रमनुकर्षति, न तु तत्रोक्तभागवृद्धिक्रममि, यथा वस्त्यमाणचैतमवृते कल्याणग्रम्य चाङ्गेनेत्युक्तत्वेऽपि कल्याणवृतोक्तकल्कद्रन्यमात्रमिति, तेनात्र शृङ्गयादीना ममभाग-तया तालीशादयोऽपि ममभागा एव प्राह्या ॥ १४॥

#### मधुताप्यविडद्गाश्मजतुलौहघृताभयाः । झन्ति यच्माणमत्युत्र सेव्यमाना हिताशिना ॥ १४ ॥

मधुताप्येत्यादि — मधुष्टताभ्या लेह । लौहमत्रायश्चूर्यं पुटादिशोधित, न तु लौहमगुरु रसायनत्वात् । लौहमगुविति वृन्दिटिप्पणी । ताप्य स्वर्णमान्तिक, तन्चामृतमारवन्त्यमाणविधिना शोधित याह्यम् । श्रारमजतु शिलाजतु, तदिपि वन्त्यमाणशिवागुडिकाविधिना शोधित याह्यम् । श्रारमजतु मिलितेत्रचूर्णममम् ।
लोहचूर्णमत्र रमायनतया श्रेष्ठत्वात् महावीर्व्यत्वान्च महाव्याधिप्रशमनहेतुत्व युज्यत
हति ॥ १५॥

#### विन्ध्यवासियोगः

व्योपं शतावरी त्रीणि फलानि क्वे वले तथा। सर्वामयहरो योगः सोऽयं लौहरजोऽन्वित ॥ एप वज्ञ जतं हन्ति कएठजांश्च गदांस्तथा। राजयन्माणमत्युग्रं वाहुस्तम्भमथार्दितम्॥ १६॥

विन्ध्यनासियोगे त्रीिख फलानीति त्रिफला, द्वे वले इति नागवलावले, न तु येतपीतमेदात् । अत्र लौहचूर्यं रसायनतया अष्ठत्वात् यागिकत्वात् महावीर्व्य त्वाच मिलितन्योपादिचूर्येन सम आह्मम्, अतप्व व्योषादिपाठात् विच्छिष

रसेन्द्रगुडिका

कर्षं शुद्धं रसेन्द्रस्य स्वरसेन जयाद्देयो ।
शिलायां खल्वयेत् तावद् यावत् पिएढं घनं ततः॥
जलकर्णाकाकमाचीरसाभ्यां भावयेत् पुनः।
सौगन्धिकपलं भृद्गस्वरसेन विभावितम्॥
चृर्णितं रससंयुक्तमजाचीरपलद्वये।
खिलातं घनपिएडन्तु गुडीं स्विन्नकलायवत्॥
कृत्वादौ शिवमभ्यच्ये द्विजातीन् परितोष्य च।
जीर्णान्नो भन्नयेदेकां चीरमांसरसाशन ॥
सर्वक्षपं च्चयं श्वासं रक्षपित्तमगोचकम्।
श्रिपि वैद्यशतैस्त्यक्तमम्लिपत्तं नियच्छति॥ १७॥१

कपिमत्यादि—रमेन्द्र पारदस्तस्य शोधन वस्यमाणचुधावतीगुटिकाया वस्त्यमाणविधिना कार्यम् । तदनुक्रमेण जयाया जयन्त्या स्वरमेन सङ्गिशिलाया सम्मधं पिण्डाकार कुर्यात् । तदनु जलकर्णा मोग्टा तम्या रमेनासान्य प्रत्येक मप्तथा भावयेत् , ततः भीगान्थिक भद्रगन्थक तदिष चुधावत्या वस्यमाणिविधिना शोधिन पलपरिमित पारदेन मह धपणीयम् तदनन्तरमजाचीरपलद्वये सङ्गिशिला-स्थिते खिल्लत धनपिण्डतापन्ने तु स्विन्नकलायप्रमाणा गुडिका कुर्यात् , तदनु प्रत्यहमेका गुडिका जीर्णान्ने मचयेत् । श्रनुपानन्य दुग्धादिकमेव ॥ १७॥

## एलादिमन्थः

पलाजमोदामलकाभयाच्च-गायत्रिनिम्वासनशालसारान् । विडद्गमल्लातकचित्रकांश्च कटुत्रिकाम्भोदसुराष्ट्रिकाश्च ॥ पक्त्वा जले तेन पचेत्तु सर्पि-स्नस्मिन् सुसिट्डे त्ववनारिते च । त्रिशतपलान्यत्र सितोपलाया
द्यात् तुगान्नीरिपलानि पद् च ॥
प्रस्थे घृतस्य द्विगुणं च द्यात्
चौद्रं ततो मन्थहतं निदध्यात् ॥
पल पलं प्रातरतो लिहेश्च
पश्चात् पिवत् चीरमतन्द्रितश्च ।
पर्ताद्व मध्य परमं पवित्रं
चल्लुष्यमायुष्यतमं तथेव ॥
यद्माणमाशु व्यपहान्ति श्ल
पाण्ड्वामयश्चापि भगन्दरश्च ।
न चात्र किश्चित् परिवर्जनीयं
रसायने च तदुपास्यमाने ॥ १८ ॥

ण्लेत्यादि — सुश्रुतस्य । अजमीदा यमानी, अज्ञ विभीतक गायश्री सिद्दर , अमन पीतशाल , गायत्र्यादीना शालान्ताना चतुर्णा मारा ग्राल । मीराष्ट्रजा सुराष्ट्रम्द । प्लानीना मीराष्ट्रजा सुराष्ट्रम्द । प्लानीना मीराष्ट्रजा सुराष्ट्रम्द । प्लानीना मीराष्ट्रा ताना प्रथगष्टा पलानि गृह्यन्ते । जल पोष्टरागुर्ण दक्षा पोष्टराश स्थापेयत् , तेन काथेन केवलेनेन प्रतप्रस्थ पात्र्येत् । प्रतप्रस्था-पेष्ट्रमा द्विगुण मधु । मन्था मन्थानद्यव्य इत्याहु । अन्य तृक्षच्याख्यानुवादाय वाग्मटनचन पठित्तं, यथा 'प्लाजमीदात्रिफला—मीराष्ट्रीच्योपचित्रकार् । मारानिरिष्टगायत्री—शालवाजकमम्मवान् । महातक विष्टङ्गच्च पृथगष्टपलोन्मिनम् । सिर्ललं पोष्टरगार्था पोष्टरगार्था स्थित पचेत् । पुनस्तेन प्रतप्रस्थ सिद्धे चास्मिन् पलानि पट् । तुगाचीर्या चिपेत् त्रिशत मिताया द्विगुण मधु । तत्तिस्त्रजातित्रिपल तती लीढ खजाहतम् । पयोऽनुपान तत् प्राहे रमायनमयन्त्रणम् ' इत्यादि । पत्रदर्शनात् त्रिजातकमिप नोध्य सीगन्ध्यर्थम् , अत्र तु न पठित तद्वयतिरेकेणापि व्याधिष्टन्तुत्वात् । अन्य त्वाहु सुश्रुतोक्षयोगेऽस्मित्रम्भोदपाठात् त्रिजाताभावा- खोगान्तरमेनेदम् । तदा प्रतप्रस्यस्य साध्यत्वादेलादीना सप्तदशाना मिलित्वा चतु

्रिवला विदारी हस्वाच पञ्चमूली पुनर्नवा । पञ्चानां चीरिवृत्ताणां ग्रङ्गा मुष्ट्यंशिकाः पृथक् ॥

र्पाष्ट पलानि, जलस्य तु चतु पष्टि शरावा , शेपा पोढशशरावा इति ॥ १८ ॥

पणं कपाये द्विज्ञीरे विदार्याजरसांशिके ।
जीवनीये पवेत् कल्केरजमात्रेष्ट्रंताढकम् ॥
सितापलानि पूते च शीते द्वात्रिंश्यदावपेत् ।
गोध्रमिपणलीवांशी चूर्णे श्रङ्काटकस्य च ॥
समान्तिकं कौडविकं तत्सर्वे खजमूर्ज्ञितम् ।
स्त्यानं सर्पिगुंडान् कृत्वा भूर्ज्ञपत्रेण वेष्टयेत् ॥
तान् जग्ध्वा पलिकान् ज्ञीरं मद्यञ्चानुपिवेत् कफे ।
शोषे कासे जत्तिशि श्रमस्त्रीभारकर्शिते ॥
रक्कानिष्ठीवने ताप पीनसे चोरिस स्थिते ।
शस्ताः पार्श्वशिर श्रले भेदे च स्वरवर्णयो ॥
काथ्ये त्रयोदशपले द्रव्याल्पत्यभयाज्ञलम् ।
श्रष्टगुणं काथसमौ विदार्थाजरसौ पृथक् ।
केविद् यथोक्षकाथ्ये तु काथं घृतसमं जगु ॥ १६ ॥ )

वलेत्यादि—मय योगश्चरके चतचीयांचिकित्सिते उकः । चीरिवृचा सचवेतमे। इम्बराश्वरथा । शालाक्ये नु वेतमस्यांचे मध्क निर्वाप्य पम्चनीरिवृचा

त्याख्याता , यथा "उडुम्बरो वटोऽश्वतथा मध्क सच्च एव च । पम्चेते चीरियोः

वृचा. असिस्तन्त्र प्रकीरिताः" इति । असिस्तन्त्र इति वचनेन शालाक्याधिकारव्यतिरिक्ते स्याने पूर्ववृच्चा उका युक्ता । अन्ये नु वेतसस्यांच कपीतनमाडु । कपीतनों

ग्रदेभाग्छ । शुद्धा इत्यविकितितपत्रमुकुलम् । मुख्यशिकाः पलमाना । अत्र वलादिकाथ्ये त्रयोदशपले जलद्रोयो देयस्तस्य पादावशेषादष्टाविशत्यधिकशतपलमानम् ।

दिचीर इति दिप्रकार चीर यत्रेति तथा । चीरद्वयन्चात्र प्राधान्यादाज गव्यन्च

प्राह्मम् । आजरमश्वागमासरस । एषा चनुर्गुणमपि द्रवाचा काथसमत्वमेन माइ
चर्यादिति पन्चगुणपाकः । चीरानुपानन्च पित्ते श्वयम् । उक्तार्थमवादकतन्त्रान्तर

यथा 'पुनर्नवा वला हस्ता पन्चमूलीं विदारिकाम् । उडुम्बरवटाश्वरथसचेवतसशुगकान् ।

पतिकाशान् जलद्रोये पक्ता पादावशिषते । पादाशेशव्यागोचीरविदार्थ्या स्वरसैः

पृथक् । कर्षारीजीवनीयेश्व कल्कैराज्यादक पचेत् । कृष्णगोषूमश्याटवाशिचौद्रार्जील

पृथक् । सिद्धे प्रस्थौ सितायाश्च दत्त्वा खादेत् खजाहतम् । एतद् गुडीकृत सीर्पवृद्धे मूर्जान्विते स्थितम् । अनुपान पिवेत् चीर पित्ते मथ्न कक्ते हितम् । चत्वयाग्वपित्तव

ज्वरशोपप्रणाशनम् ' इति । अत्र पादांशैरिति पादस्थकाथसमभागैरिति । चक्रस्त्वाध काथ्ये त्रयोदशपले द्रव्याल्पत्वभयाज्जलम् । ऋष्टगुणः काथममी विदार्थ्यात्ररमौ पृथक् । केचित् यथोसकाथ्ये तु साथ प्रतसम जगुरिति । अस्यार्थ त्रयोदशपले साथ्येऽए-गुण जल श्रयोदशशरावपरिमित भवति, तस्य तु पादशेपात् सपादशरावश्रय काथ वदन्ति। काथममश्र विदारीरमश्रद्धांगमासरमश्र, चीरञ्च काथापेचया द्विगुणमिति मार्द षट् शरावा , एव प्रवादके पक्तव्ये त्रिशत्पलाधिक द्रवपलशतिमह भवति । एवख मति द्रव्याल्यस्य स्थादिति भयात् केचिदत्र यथोक्ष एव काथ्ये त्रयोदशपलरूपे तथा पानीय देय यथा पादशेपात् काथो प्रतसम स्यात्, तेनात्र त्रयोदशपलेऽपि काथ्ये जलद्रोण दत्वा पाद।वशिष्टकाथस्य घृतसमत्व कल्पनीयमिति जगुरुक्तवन्तः । श्रस्मिन् पंत्र चीर द्विग्रण दत्वा विदारीमासरमै। च मिलित्वा प्रतसमाविति चतुर्शणद्रवेण पाक उत्मर्गमिद्धो मवीत, चतुर्शुखद्रवेख तु स्नेह्पाकीन्सर्गत्वात् । जतुक्रखेँनापि काध्यमानमनियतमेवीक काथस्तु तथापि स्नेष्टसम एव, पञ्चप्रशृति यत्र स्युरित्युके । अपि च यथा वृश्चीर पन्चमूल बला विदारी वटादिशुगाश्च । निष्काथ्य द्विचीरे छागवि-दारिरसे च समे। तद् जीवनीयगणकरके पक्ता प्रनादकमित्यादि । अन्य तु ' द्रव्य-मापेश्वित काथ्य दक्ता पोडशिक जलम् । पादावशेष कर्त्तन्य एप काथिविधि स्मृत र इति कृष्णात्रेयपीरभाषानुमारेण क्वाध्ये पोडशगुर जल दीयमान पड्विशतिशराव मनीत, पादशेपाच मार्द्धपट्शरावक्वाथो मनीत, दिचीर इति काथोपेच्चया चीरस्य द्वैगुण्यात् त्रयोदश शरावा . मिलिती विदार्थ्याजरसाविप कपायापेस्रया दिगुणाविति, एव मिलित्वा मार्द्धाद्विशाच्छरावद्रवै पाक शित व्याचस्ते । व्यवहार पुन प्रायेख अनेनेव । खजे। मन्धानटरह । भूजैपन्ने वेष्टनन्य शक्त्युत्कर्पार्थम् ॥ १६ ॥

#### च्यवनप्राशः

्विल्वाशिमन्थश्योनाककाश्मर्थं पाटली वला।
पर्ग्यश्चतस्र पिष्पल्य श्वदंष्ट्रा वृहतीद्वयम्॥
श्रद्धी तामलकी द्राला जीवन्ती पुष्करागुरु।
श्रमया सामृता ऋद्धिजीवकषमकौ शटी॥
मुक्तं पुनर्नवामेदे सूद्दमैलोत्पलचन्दने।
विदारी वृपमूलानि काकोली काकनासिका।
एषां पलोन्मितान् भागान् शतान्यामलकस्य स्र॥

पञ्च दद्यात् तद्देकध्यं जलद्रोणे विपाचयेत् ।

श्वात्वा गतरसान्येतान्यौपधान्यथ तं रसम् ॥

तञ्चामलकमुद्धृत्य निष्कुलं तैलसर्पिषो ।

पलद्वादशके भृष्ट्वा दत्वा चाईतुलां भिपक् ॥

मत्स्यिण्डिकायाः पूतायाः लेहवत् साधु साधयेत् ।

पद्पलं मधुनश्चात्व सिद्धशीते प्रदापयेत् ॥

चतुष्पलं तुगाचीय्या पिष्पल्या द्विपलं तथा ।

पलमकं निद्ध्याच्च त्वगेलापत्रकेशरात् ॥

इत्ययं च्यवनप्राशः परमुक्तो रसायनः ।

कासश्वासहरश्चेव विशेषणोपिदश्यते ॥

चीण्चतानां वृद्धानां वालानाञ्चाद्ववर्द्धनम् ।

स्वरच्यमुरोरोगं हृद्रोगं वातशोणितम् ॥

पिपासां मूत्रशुक्षस्थान् दोषांश्चेवापकपिति ।

श्रस्य मात्रां प्रयुक्षीत योपकन्ध्यान्न भोजनम् ॥

श्रस्य मात्रां प्रयुक्षीत योपकन्ध्यान्न भोजनम् ॥

श्रस्य प्रयोगाच्च्यवन सुवृद्धोऽभृत् पुनर्युवा ॥

स्रितं काल्विपनाम्यत्वं वप प्रकर्षे वलमिन्दियाणाम

मेघां स्मृतिं कान्तिमनामयत्वं वपु प्रकर्षे वलिमिन्द्रियाणाम् । स्त्रीपु प्रहर्षे परमग्निवृद्धिं वर्णप्रसादं पवनानुलोम्यम् । रसायनस्यास्य नर प्रयोगात् लभेत जीर्णोऽपि कुटीप्रवशात्। जराकृतं पूर्वमपास्य कृषं विभर्तिं कृषं नवयौवनस्य ॥

सिता मत्स्यिएडकालाभे धाज्याश्च सदुभर्जनम् । चतुर्भागजले प्रायो द्रच्यं गतरसं भवेत् ॥ २०॥

विल्वेलादाँ — पर्ण्यक्षतस्र इति शालपणीं पृश्लीपणीं मुद्गपणीं मापपर्य । तामलकी भूम्यामलकी । जीवन्ती स्वनाम् स्थाता । पुनर्नवामेदे इति पुनर्नवा च मेदा च इति इन्द्र न तु मेदाइयम्, 'पणिन्य पिप्पली श्रृष्ती मेदा तामलकी त्रुटि ' इति वाग्मटवचनात् । उत्पल नीलोत्पल न तु कुष्ठम्, सर्विश्मिन्नव तन्त्रान्तरे कुष्ठमिति पाठस्य तृष्टीकाकौर रच्याख्यातत्वात् । काकनासिका कायुयादुटी, जेज्जटस्तु रम फलमित्याइ । शतान्यामलकस्योति श्राकृतिमानत्वात् श्रामलकांफलस्य पञ्चशतानि,

पतानि कंपेट पेष्टिमी कृत्वा अपरै: काश्यद्रव्ये मह कथनीयम्। गतरसत्वन्न द्रन्याणा चतुर्भागावशेषेण क्यायेनेति स्वयेमत बच्यितः अतण्व पादावशेष इति वाग्मटोक्तम्। अन्य त्वष्टमागावशेष इत्याद्धः, तत्तु न व्यवहारसिद्धम्। निष्कुलिभिति शिरास्थिर-हिनम्, तच्च चौमादिवर्षणेन कार्य्यम्। पलद्वादशकः इति मिलित्वा, निर्देशस्य मानप्रधानत्वात्, एव त्वगेलापत्रकेशरादिष मिलित्वेव पलम्। ये तु ममासकरण-सामर्थ्यात् मिलित्यहणमाद्धः तन्मते अगस्त्यहरीतक्यादौ दशमूलस्यापि मिलित्वा दिपलता स्यात्, दशमूलीित ममासनिर्देशादिनि द्वयम्। अत्र ममयोरिष मधुसिं-पोर्द्रव्यान्तरसयोगादेव न विकद्धत्व शयम्, किंता खामलकमर्जनेन एतस्योपचीणत्वात् समत्वमेव नास्तीित। यद्यपि मत्स्यिष्टकापेचया शर्करा विमला तथाप्युपात्तत्वादिष्ट सेव प्रशस्ता तदभावे शर्करा खण्डा वा गृह्यत, चकेण तु शर्करंवोक्ता। च्यवनस्य मुने प्राश इति धन् । योपकन्ध्यात्र स्रोजनिति या प्रथमात्रभोजनोपयुका जर्णेन दित्तीयात्रकाले भोजने।पराध न करोतीत्यर्थः, यदुकः 'रुणदि नैकमाहार या सा मात्रा जरा प्रति 'इति। कुटीप्रवेशादिति वातातपपरिहारेणत्वर्थं ॥ २०॥

## जीवन्त्याद्यं घृतम्

जीवन्तीं मधुकं द्रात्तां फलानि कुटजस्य च । शठीं पुष्करमूलञ्च व्याघीं गोजुरकं वलाम् ॥ नीलोत्पलं तामलकीं त्रायमाणां दुरालमाम् । पिष्पलीञ्च समं पिष्ट्वा घृतं वैद्यो विपाचयेत् ॥ पतद्व्याधिसमूहस्य रोगेशस्य समुत्थितम् । रूपेमकादशविधं सर्पिरय्यं व्यपोहति ॥ २१ ॥

जीवन्ती।मित्यादि—चरकस्य , अत्र जलमेव चतुर्गुग्यम् । केचितु चरके श्वदच्द्राद्यतानन्तरमय योग उक अतः प्रत्यामत्त्या पूर्वयोगोक्त छीरमेव।आधि प्रवमिच्छन्ति, किन्तु वाग्मट।दिप न दुग्धमतो जलमेव युक्तम् ॥ २१ ॥

## पिप्पली घृतम्,

पिष्पलीगुडसंसिद्धं छागत्तीरयुतं घृतम् । पतद्गिप्रवृद्धधर्थं सर्पिश्च त्तयकासिनाम् ॥ २२॥ पिष्पलीत्यादि—विष्पलीगुडी कल्की, छागत्तीर चतुर्गुणम् ॥ २२॥

#### पाराशरघृतम्

यप्टीवलागुङ्ग्चरूपपञ्चमूलीतुलां पचेत्। शूपेंऽपामष्टभागस्थे तत्र पात्रं पचेद् घृतम्॥ धात्रीविदारीज्जरसे त्रिपात्रे पयसोर्मणे। सुपिप्टेर्जीवनीयैश्च पाराशरिमदं घृतम्॥ ससैन्यं राजयन्माणुमुन्मूलयति शीलितम्॥ २३॥

यशित्यादि—नाग्भटस्य । यष्ट्यादीना मिलित्वा तुला । सर्प इति द्रोखद्दये, उक्ष इदन्तेन 'कुम्भो होखद्दय सर्पे. ' इति । चारपाणिनाप्युक्त 'द्रोखद्दयन्तु सर्पे. स्वात् कुम्भ इत्यभिधीयते ', नस्मात् द्रोणपर्याय सर्पे इति वृन्दिलिखितमत नादरणीयम् । यघि तुलाहन्ये एक एव जलद्रोण उनितस्तथापि निर्देष्टलादिद्द तोय द्रोणद्रयमेव देयमः, यथा वन्त्यमाणिदितीयच्छागलादिष्टते छागमासतुलाया जल द्रोणद्वयमिति । धाच्यादिरसाना मिलित्वा त्रिपात्रम्, पात्रमादकम्॥ २३ ॥

## छागलादं घृतम्

ह्यागमांसतुलां गृह्य साधयेन्नस्वणेऽम्भसि ।
पादशेषेण तेनैव सिपंःप्रस्थं विपाचयेत् ॥
ऋद्धिवृद्धी च मेदे द्वे जीवकर्षभकौ तथा ।
काकोलीचीरकाकोलीकरुकैः पृथक् पलोन्मितेः ॥
सम्यक् सिद्धे चावतार्थ्य शीते तस्मिन् प्रदापयेत् ।
शर्करायाः पलान्यष्टौ मधुनः कुडवं चिपेत् ॥
पलं पलं पिवेत् प्रातर्यदमाणं हन्ति दुर्जयम्।
चतच्यञ्च कासञ्च पार्श्वश्रलमरोचकम् ॥
स्वरच्यमुरोरोगं श्वासं हन्यात् सुदारुणम् ।
वस्यं मांसकरं वृष्यमश्चिसन्दीपनं परम् ॥ २४ ॥
क्षागलाचे नल्वणो होणः ॥ २४ ॥

त्रपरं छागलादं घृतम् नोयद्रोणद्वितये छागलमांसस्य पलशतं पक्त्वा। जलमण्रंशं सुकृनं तिसन् विपचेद् घृतं प्रस्थम्॥ कल्केन जीवनीयानां कुडवेन तु माससर्पिरिदम । पित्तानिलं निह्न्यात् नज्जानिप रसकयोजितं पीतम् ॥ कासश्वासाबुग्रौ यदमाणं पार्श्वहद्वजां घोराम् । श्रध्वन्यवायशोप शमयति चैवापरं किञ्चित् ॥ २४ ॥ तायेत्यादां—जीवनायाना दरााना कुडवेनेनि मिसित्वा। नत्नानिति पित्ता-

तियत्यादा---जावनायाना दशाना कुडवनात । मासत्या । तत्तानात । पत्ता निलजान् व्याधीन् । रमकयोजितमिति मासरमावचारितमित्यर्थ ॥ २५ ॥

### अजापश्चकं घृतम्

छागशरुद्रसम्बद्धीरैर्द्धा च साधितं सर्पि । सत्तार यदमहरं कासश्वासोपशान्तये परमम् ॥ २६ ॥ , अनापन्चकप्रेन मर्पिरप्यजाया एव, दिध च । यवन्नारम्याप्यत्र प्रतेपत्व-माइ ॥ २६ ॥

वलागर्भे घृतम् डिपञ्चमूलस्य पचेत् कपाये प्रस्थद्वये मांसरसस्य चैकं। कल्क वलायाः सुनियोज्य गर्भे सिद्धं पय प्रस्थयुतं घृतञ्त्र॥ , सर्वाभिघातोत्थितयसमग्रल-

चतत्त्रयोत्कासहरं प्रदिष्टम्॥ २७॥

हिपन्चमूलस्येति दशमूलस्य मिलित्वा दार्त्रिशत्पलानि, जलस्य च दार्त्रि-शच्छरावास्तत प्रस्थद्वय शेष । मामरमस्य चक इति छागमामरमस्य एकस्मिन् प्रस्थ इत्यर्थ । गर्भमित्यन्त ॥ २७॥

#### नागवलाघृतम्

पादशेषे जलङ्रोणे पचेन्नागवलातुलाम् । तेन क्राथेन तुल्यांशं घृतं त्तीरञ्च साधयेत्॥ पलार्द्धिकैश्चातिवला वलायिष्टपुनर्नचा। प्रपोण्डरीककाश्मर्थ्यपियालकपिकच्छुभिः॥ ष्रश्यगन्धासितामीरुमेदायुग्मत्रिक्त्यदकैः।
मृणालविसशाल्कश्वकाटककशेरुकै ॥
पतन्नागवलासपीं रक्षपित्तचतत्त्वयम्।
हन्ति दाहं भ्रमं तृष्णां वलपुष्टिकरं परम्॥
वल्यमोजस्यमायुष्यं वलीपलितनाशनम्।
उपयुक्षीत ष्रमाषान् बृद्धोऽपि तरुणायते॥ २८॥

पादशेषमित्वादि—वाग्भटस्य । पादशेषमित्येव पाठ । पादशेष यथा भवति तथा पचेदिति । अन्ये तु पादशेष कत्तेव्य इति व्याचक्रते । नागवला गोरक्ष-तय्डुला, अतिवला गोरक्षतय्डुलेव । मृखालविसे म्वल्पमहद्भेदात् । मृखालमुशीर विमं पद्ममूलमित्यन्वे ॥ २८॥

# निर्गुएडीघृतम्

समूलफलपताया निर्गुरङ्या खरसैर्घृतम् । ' सिद्धं पीत्वा चतचीयो निर्व्याधिर्माति देववत् ॥ २६॥ निर्गुर्ग्डाप्तमकत्कन् ॥ २६॥

#### चलाद्यं घृतम्

वलां श्वदण्ट्रां वृहतीं कलसीं धावनीं स्थिरास्।
निम्वं पर्पटकं मुस्तं तायमाणां दुरालभाम्॥
कृत्वा कषायं पेण्यार्थे दद्यात् तामलकीं शटीम्।
द्रान्नापुष्करसूलञ्च मेदामामलकानि च॥
घृतं पयश्च तित्सद्धं सर्पिर्ज्वरहरं परम्।
च्रयकासप्रशमनं शिरःपार्श्वरुजापहम्॥
चरकोदितवासाद्यघृतानन्तरमुक्तितः।
चदन्तीह घृतात् काथं पयश्च' द्विगुणं पृथक्॥ ३०॥

वलामित्यादि—चरकस्य । ध्वरचिकित्सितेऽय योग । कलसी प्रिक्षिपणी, धावनी कण्टकारिका, स्थिरा शालपणीं। चरकोहितेत्यादि—चरके हि वासाष्टतानन्त-रमय योग उक्त , तत्र च क्वाथ- पथश्च प्रत्येक ष्टताद् द्विगुणम्, तत्माहचर्यादिहापि त्रथैवेति । ष्टतमम चीरम्, क्वाथश्च विगुण इत्यन्ये ॥ ३० ॥

## चन्दनाद्यं तैलम्

चन्दनाम्बु नखं वाप्यं यष्टीशेलेयपद्मकम् ।
मिश्रष्टा सरलं दारु शट्येला पूर्तिकेशरम् ॥ ॥
पत्रं शैलं मुरामांसी कक्कोलं विनताम्बुदम् ।
हरिद्रे शारिवे तिक्का लवद्वागुरुकुडुमम् ॥
त्वश्रेणु निका चैभिस्तैलं मस्तुचतुर्गुणम् ।
लाज्ञारससमं सिद्धं श्रद्धं वलवर्णकृत् ॥
श्रपसारव्यरोन्मादकृत्यालद्मीविनाशनम् ।
श्रागुःपुष्टिकरञ्चैव वशीकरणमुत्तमम् ॥ ३१॥

चन्दनादितेल-अम्बु नालकम्, वाप्य कुष्ठम्; पूर्ति खट्टाशीः; रैाल शिलारस , वनिता प्रियतु , तिका लताकरत्तरी, रेणु रेणकम्, निलका नालुका । लाचारमा लाचानवाथ ; लाचाया पोडरापलम्, पाकार्थजल पोडशशरावम्, राप प्रम्थकम् ॥३१॥

बागं मांसं पयश्छाग छागं सर्पिः सशकेरम् । छागोपसेवा शयनं छागमध्ये तु यदमनुत्॥ षागमिलादि स्पष्टम् ॥ ३२ ॥

उरो मत्वा चतं लाचां पयसा मधुसंयुताम् । सद्य एव पिवेजीर्थे पयसाद्यात् संशर्भरम् ॥ ३३ ॥

उर्। इत्यादिना उर चतिनिकित्सामाह—उर चत मत्ना लाचा प्यमा मध्-सञ्जता पिनेदित्यर्थ । जीये प्यमा सशर्करमञ्ज मुखातेत्यन्त्र्य ॥ ३३॥

इच्वालिकाविसग्रन्थि-पद्मकेशरचन्द्नैः।

े श्रतं पयो मधुयुतं सन्धानार्थं पिवेत् त्तयी ॥ ३४॥

रत्त्वालिकेत्यादि---रत्त्वालिका वनखगरीति ख्याता, विसग्रन्थि मृग्णाल-र्यान्थ , पद्मकेरार पद्मिकेअल्कम् । सन्धानार्थमिति चतोर सन्धानार्थम् ॥ ३४ ॥

बलाश्वगन्धा श्रीपर्णीबहुपुतीपुर्ननचाः । प्यसा नित्यमभ्यस्ता चपयन्ति चतच्यम् ॥ ३४ ॥ बलेलादी—श्रीपण्यी गाम्भार्थाः फलम्, बहुपुत्ती शतावरी । बलादयो व्यस्ता. समस्ता वा बोध्या ॥ ३४ ॥

### वलाद्यघृतम्

र् घृतं वलानागवलार्जुनाम्बुसिद्धं संयष्टीमधुकल्कपादम् । हृद्रोगग्रलक्ततरक्रिपत्तकासानिलासृक्शमयत्युदीर्थम् ॥३६॥ इति यदमिविकित्सा ।

ष्ट्रतीमत्यादि स्पष्टम् ॥ ३६ ॥

ı

इति यत्त्मचिकित्साविषृति ॥

# अथ कासचिकित्सा ।

-AGOPTE

## वातकासचिकित्सा

वास्त्को वायसिशाकं मूलकं सुनिषएण्कम् ।

रिस्नेहास्तैलादयो भद्याः द्वीरेचुरसगौडिकाः ॥
दध्यारनालाम्लफलं प्रसन्नापानमेव च ॥
शस्यते वातकासेषु स्वाह्यम्ललवणानि च ॥
श्राम्यानूपोदकैः शालियवगोधूमषष्टिकान् ।
रसैमीषात्मगुप्तानां यूषवी भोजयेद्वितान् ॥ १ ॥
पञ्चमूलीकृत काथः पिष्पलीचूर्णसंयुतः ।
रसान्नमश्रतो नित्यं वातकासमुदस्यति ॥ २ ॥

यदमस्पेषु कासपाठात् कासापेचया च यदमासभवात् यदमानन्तर कास-चिकित्सामाह वास्तृक इत्यादि—वायसी काकमाची। पश्चमूलीत्यादि—पञ्चमूली महती, उष्णवीर्थ्यतया विशेषेण वातप्रत्यनीकत्वात्। श्रन्ये तु स्वल्पामाहु । रसान्न मासरसोपहिनमन्नम् ॥ १॥ २॥

## श्रपराजितलेहः

शटीश्टङ्गीकणाभागीगुडवारिदयासकैः। सतैलैर्वातकासन्नो लेहोऽयमपराजितः॥३॥ चूर्णिता विश्वहु स्पर्शाश्वद्गीता ज्ञाश्वद्गीता ।
लीदा तेलेन वातोन्यं कामं जयित दारुणम् ॥ ४ ॥
अग्गिंद्राजाश्वदीश्वद्गीपिप्पलीविश्वमेपते ।
गुडतेलयुनो लेहो हिता माचनकासिनाम् ॥ ४ ॥
शहायाति—येणबेयेऽपि कर्डतेन तेह भीत क्रुटिपर्या, किन्तु दीना
इदिनं ब्यास्यातेऽपर्य ॥ ३—४ ॥

#### पित्तकासंचिकित्सा

पित्तकासे तनुकके त्रिवृतां मधुरैर्युनाम् । दयाद्वनकफे तिक्केविरेकार्थ युनां भिषक् ॥ ६ ॥ पित्तकाम इन्यादि—वरतम्य तनुकक इन्यवनक्षेत्र । कप्यय तनुक्व वनन्व द दुःभ्योगीन,मर्च्यभाषकपस्य दर्शनादेव देवस् ॥ ६ ॥

मधुरैर्जाङ्गलरसं स्यामाकयवकोष्ठवा । मुद्दादियूपं शाकेंख तिक्षकंमोत्वया हिनाः॥७॥ मधुरिति—मधुज्येर्युमा विद्यामिति स्वन्यः । अन्ये तु मधुर्मीवनीय-दर्गकरित्यह् । मधुर्जाङ्गर्मतिया नर्धः स्वादुनि किंवा निवरीयस्मृते ॥७॥

वलाद्विवृहतीयासाद्राचामि कथितं जलम्। पिचकासापदं पेयं शर्करामधुयोजितम्॥ =॥ •नेन्यादः न्यस्य ॥ =॥

श्रादिपञ्चमृतस्य पिप्पलीद्राचयोस्तथा । कपायेण श्रतं चीरं पियेत् समधुशकेरम् ॥ ६ ॥ काकोलीवृह्दतीमेदायुग्मैः सद्युपनागरः । पित्तकासे रसचीरयूपांख्याप्युपकल्पयेत् ॥ १० ॥ गर्णायादि—वन्द्रयः। गाविषद्रमृत्तु गोद्धदंकागगान्यसंत्रा हर

गण्डान्याह—चन्द्रम् । गाहिषद्रमृतन्तु गोन्तुत्रभेदागगान्यस्त्रेषा मृत् हेण्म् । अत्र पदद्रपरिमापदा अर्दश्तनप्रदेश चतुर्गुरेन दुग्ध माध्यम् । जादो-लोन्याहि—अत्र सुर्मिरिति द्वाकोन्याहिमि सन्दर्भते हति चन्न । अन्ये तु रूहता-नेटान्या सुन्यत्र हति, सुन्दर्भतेत्, स्टाइ चनुकरा वृण्द्वाकोलीगुर्स्टोनेदाइह्दी-सुनिनिति ॥ ६॥ १०॥

## द्राचामलकखर्जूरं पिण्पलीमरिचान्वितम् । पिचकासापद्दं ह्यतिज्ञह्यान्माचिकसर्पिपा॥ ११॥ ः

द्राचेत्यादि—इद कफानुजन्धे श्रेयम्, पित्तोद्रेके तु मरिचस्थाने शर्करा श्रेया, यदाह चारपाणि 'पिप्पल्यामलके द्राचा खर्जूर शर्करा मधु। लेहोऽय सप्तो लीढः मपित्तचयजकासजित् ' इति ॥ ११॥

खर्जूरिपप्पलीद्राचासितालाजा समांशिका । मधुसर्पियुतो लेहः पित्तकासहरः परः ॥ १२ ॥ बर्जूरेलादि सप्टम् ॥ १२ ॥

शटीहीवेरबृहतीशर्कराविश्वभेषजम् । पिष्ट्वा रसं पिवेत् पूतं सघृतं पित्तकासनुत् ॥ १३ ॥ मधुना पद्मवीजानां चूर्ण पैत्तिककासनुत् ॥ १४ ॥

शटीत्यादि — नाग्मटस्य । तत्र शट्यादिक जले पिष्ट्वा तद्रम वस्त्रपूत कृत्वा घतमम्मिश्र पिवेत् । बृहती चात्र कायटकारो कामहन्त्रत्वात् । तक हि चरके ' शर्करानागरोदीच्य-कयटकारीशटीसमम् । पिष्ट्वा रस पिवेत् पूत वस्त्रेण धतमू चित्रतम् ' इति ॥ १३ ॥ १४ ॥

### कफकासचिकित्सा

वितनं वमनेनादौ शोधितं कफकासिनम्।
यवान्नैः कटुरूक्तोष्णैः कफक्नेश्चाप्युपाचरेत्॥१४॥
पिष्पलीक्तारकैर्यूषैः कौलत्यैर्मूलकस्य च।
लघून्यन्नानि भुक्षीत रसैर्वा कटुकान्वितैः॥१६॥
पञ्चकोलैः श्टतं क्तिरं कफक्नं लघु शस्यते।
श्वासकासज्वरहरं वलवर्णाश्चिवर्द्धनम्॥१७॥

वित्तनिमत्यादिना कफचिकित्सामाह । पिप्पलीचारकैरिति पिप्पलीयव-चारसरकृतैरित्यर्थ ॥ १५ ॥ १७॥

> पौष्करकद्फलभागींविश्वपिष्पलिसाधितम् । पिवेत् काथं कफोद्रेके कासे श्वासे च हृद्ग्रहे॥

स्वरसं श्टङ्गवेरस्य मान्निकेण समन्वितम् ॥ पाचयेच्छ्घासकासम्नं प्रतिश्यायकफापहम् ॥ १८॥ गैष्करीमत्यादि—कफापह पर्यन्त स्पटन् ॥ १८॥

### नवाङ्ग यूपः

मुद्रामलाभ्यां यवदाडिमाभ्यां कर्कन्धुना मूलकशुरुठकेन । शुरुठीकर्णाभ्याञ्च कुलत्थकेन

यूयो नवाइ कफरोगहन्ता ॥ १६॥

नवाङ्गयूपे यवामलकदाडिमकर्कन्धुमूलकगुण्ठके पहत्रपरिमापया मदंश्वन श्रन्ता मुद्रकुलत्यो गुक्तया प्रचुरी दत्त्वा यूप. नाघ्म, पश्चात् कहत्वार्थ गुण्ठीः पिष्पलीचूर्यदानम्, किंवा मकलमेव द्रव्य ययोचितमात्रया गृहीत्वा काथविधानेन पञ्चमुष्टिकवत् यूप. कार्य्य इत्याहु ॥ १६॥

पार्श्वश्रते ज्वेरे कासे श्वासे श्रेष्मसमुद्भवे ॥ पिप्पलीचूर्णसंयुक्तं दशमूलीजलं पिवेत् ॥ २०॥ पार्श्वरत स्वाठि सप्टन् ॥ २०॥

### **कर्फलादिः**

कर्फलं कनृणं मार्गी मुस्तं धान्यं वचामया।
श्रृङ्गी पर्पटकं श्रुण्ठी सुराह्म च जले श्रुतम् ॥
मधुर्हिगुयुतं पेयं कासे वातकफात्मके।
कएउरोगे च्ये ग्रुले श्वासिहक्काज्वरेषु च ॥ २१ ॥
कर्फ्लानित्यादौ कनृष गन्धरुण् ॥ २१ ॥
कर्टकारीकृतः काथ सकृष्णः सर्वकासहा ॥ २२ ॥
कर्टकारीत्यादि—त्यष्टम् ॥ २२ ॥
विभीतकं घृताभ्यक्तं गोशकृत्परिवोधितम् ॥ २३ ॥
विभीतकं चृताभ्यक्तं गोशकृत्परिवोधितम् ॥ २३ ॥
विभीतकं विकानित्यादि सप्टम् ॥ २३ ॥

वासकस्वरसः पेयो मधुयुक्को हिताशिना।
पित्तश्चेष्मकृते कासे रक्कपित्ते विशेषत ॥ २४ ॥
वासेकस्यादि च सप्टम् ॥ २४ ॥
मधुकं पिष्पली द्राज्ञा लाज्ञा श्ट्रक्ती शतावरी।
हिगुणा च तुगाज्ञीरी सिता सर्वैश्चतुर्गुणा ॥

तं लिह्यान्मधुसिपिभ्यां सतकासिनवृत्तये ॥ २४ ॥
मधुकमित्यादि—तुगाचीरी वशलोचना एकभागापेचया द्विग्रखा, सर्वचूर्णापेचया चतुर्गुणा सिता ॥ २४ ॥

पिष्पली पद्मकं द्राचा सम्पकं वृहतीफलम् । घृतचौद्रयुतो लेहः श्वासकासनिवर्हणः॥ २६॥

पिप्पलीत्याँदे स्पष्टम् ॥ २६ ॥

हरीतकीनागरमुस्तचूर्णे

गुडेन तुल्यं गुडिका विधेया । निवारयत्यास्यविधारितोऽयं

श्वासं प्रवृद्धं प्रवलञ्च कासम् ॥ २७ ॥ हरीतकीत्यादौ—समुदितचूर्णेच तुल्यो गुड ॥ २७ ॥

मरिचाद्यं चूर्णम्

कर्षः कर्षार्द्धमथो पलं पलद्वयमथाईकर्षश्च।
मरिचस्य पिष्पलीनां दाडिमगुडयावश्कानाम्॥
सर्वीषघैरसाध्या ये कासाः सर्ववैद्यविवर्जिताः।
श्रिप पूर्वं छुर्दयतां तेषामिदमौषधं पथ्यम्॥ २८॥

कर्षे इत्यदि—मरिचकर्षे १, पिप्पली तोलक १, श्रम्लदाविमवीज पल १, गुड पल २, ववचार तोलक १। वाग्मेटऽप्युक्त "गुडचारोषणक्या दाडिम श्राम-कासजित्। क्रमात् पलद्वयादीच-कर्षकार्द्वपलोन्मितम्" इति ॥ २८॥

## समशर्करं चूर्णम्

लवङ्गजातीफलिपण्पलीनां भागान् प्रकल्प्याच्युतानमीषाम् । पलार्द्रमेकं मरिचस्य दद्यात् पलानि चत्वारि महौषधस्य॥ सितासमं चूर्णमिदं प्रसद्य रोगानिमानाशु वर्तानिहन्यात्। कासज्वरारोचकमेह्गुल्मश्वासान्निमान्चत्रहणुपिदोपान् ॥२६॥

लवगेत्यादि-पलार्द्धमेकिमलत्र एकपद छोकपूरणार्थमेवोक्तम् । वलानिति अर्शादित्वादच्, वलवतो रागानिलर्थ । तेन प्रसद्ध श्लनेन न पौनरुक्तयम् ॥ २६॥

हरीतकीकणाशुराठीमारिचं गुडसंयुतम्। कासन्नो मोदकः प्रोक्सस्टप्णारोचकनाशन ॥ ३०॥ हरीतकीलादि—मोदकलात् गुटा दिगुण ॥ ३०॥

च्योपान्तिका गुडिका

तालीशविद्वदीप्यकचिकाम्लवेतसव्योपैः। तुल्येस्त्रिसुगन्धियुतैर्गुडेन गुडिका प्रकर्तव्या॥ कासभ्यासारोचकपीनसहत्क्एठवाड्निरोधेषु।

श्रहणीगदोद्भवेषु गुडिका व्योपान्तिका नाम ॥ ३१॥

तालीरोत्यादी—विद्वश्चित्रक , दीप्यक यमानी, त्रिम्रुगन्धियुतिरिति सर्वचूर्णा-पेचया चतुर्थोरोन मिलित त्रिम्रुगन्धिचूर्णमित्यादुः । व्योपान्तिकेति, अत्रान्तराज्य उपान्तमाह व्योपत्यान्तिस्वतित्रमुगन्धात् पूर्वमवस्थितत्वात् । किंवा तालीरादीना विरोपयप्रधानत्वादेपच्यैवान्तो क्षेय ॥ ३१ ॥

मनःशिलालमधुकमांसीमुक्तेङ्गदै पिवेत्। धूमं ज्यहञ्च तस्यानु सगुडञ्च पयः पिवेत्। एप कासान् पृथग्द्दन्द्वस्वेदोपसमुद्भवान्। शतैरपि प्रयोगाणां साधयेदप्रसाधितान्॥ ३२॥

मन शिलालेलादि — आल हरितालम्, इङ्गद पुत्रक्षीवफलमध्यम्, फलत्व-गिलम्ये, युक्तक्रेतत्, "मन शिलालमधुक मामीमुस्तेगुदीत्वच " इति वाग्मटवच-नात् । अत्र मन शिलादीनां पेषण छागमूत्रेण बोध्यम्, छागलाम्युपिष्टेरिति सुश्रुत दर्शनात् । अत्र मधुकस्थाने मरिच केचित् षठन्ति, तन्न, शिलालेगुदयष्ट्याह-मासीघूप पिनेत् त्र्यहम्" इति तन्त्रान्तरदर्शनात् । अत्र मनःशिलादिक कल्कीकृत्य श्रुत्त्यवस्त्रखयं लिम्पेत्, तत् आतेपे शोपयित्वा वार्चे विधाय शरावमम्पुटम्यवदराद्वार-वही निक्तिप्य यथोक्तनलिकया धूमपान कार्य्यम्, विश्राम्य किञ्चित् मगुडचीर पेयम्, धूमस्य तीच्यालेनोज चयादिति ॥ ३२ ॥ मनःशिलालिप्तदलं बद्र्यातपशोषितम्। सत्तीरं धृमपानञ्च सर्वकासानिवारणम्॥ ३३॥

मन शिललादौ-वदर्यातपशोषितिमिति बदर्यो मन शिलालिप्तदलम्, श्रातपे शोषितिमिति योजना । बदर्यातपेति श्रसन्धिविधेरनिलल्वात् सन्धि ॥ ३३॥

श्रक्तेच्छ्रह्माशिले तुल्ये ततो ऽर्द्धेन कद्वित्रक्तम् । चूर्णितं विद्वितिह्मां पिवेद् धूमन्तु योगवित् ॥ भच्चेयद्य ताम्वूलं पिवेद् दुग्धमधाम्बु वा । कासाः पञ्चविधा यान्ति शान्तिमाशु न संशयः ॥ ३४ ॥ श्रक्षच्छ्रह्मेत्यादि—श्रक्षच्छ्रह्म श्रक्षमूललक्, शिला मन शिला, ततोऽर्द्धेन कद्वाहिकमिति तत उभयोर्द्धेन मिलित विकटुकम् ॥ ३४ ॥

मरिचशिलार्कज्ञीरैवीर्ज्ञाकीं त्वचमाश्रभावितां शुष्काम्। कृत्वा विधिना धूमं पिबतः कासा शमं यान्ति ॥ ३४॥ मरिचेलादि स्पष्टम् ॥ ३५॥

## दशमूलघृतम्

दशमूलीकषायेण भागींकलकं पचेद् घृतम्।
दत्ततित्तिरिनियृहे तत्परं वातकासनुत् ॥ ३६ ॥
दशमूलीकषायेणेत्यादि—दत्त कुक्कुट, दत्ततित्तिरिन्या मिलित्वैव काथः।
दशमूलकाथेन दत्ततित्तिरकाथेन च मिलित्वा चातुर्गुण्यम् ॥ ३६ ॥

## दशमूलाद्यं घृतम्

दशमूलाढके प्रस्थं घृतस्यात्तसमैः पचेत्।
पुष्कराह्मशटीविल्वसुरसन्योषहिङ्गुभि ॥
पेयानुपानं तत् पयं कासे वातकफाधिके।
श्वासरोगेषु सर्वेषु कफवातात्मकेषु च ॥ ३७॥

दशमूलाढक इत्यादि—वाग्मटस्य । श्रत्र दशमूलस्य काथ्यस्याढकमानत्वम्, तेन 'काथ काथ्यसमो मत ' इति वचनात् पादावशिष्टकाथोऽप्याढकमानो मवति । विल्व विल्वमूलम्, सुरस पर्णास । पेयानुपानमित्यत्र पयोऽनुपानमिति केचित् पठान्ते, किन्त्वत्र पेयैव वातकफद्दन्दात् युक्ता ॥ ३७ ॥

## दशमृलपर्पलकं घृतम्

दशमूलीचतु-प्रस्थे रसे प्रस्थोनिमतं हिविः । सनारे- पञ्चकोलैस्तु किल्कतं साधु साधितम् ॥ कासहत्पार्थ्वग्रूलम्नं हिकाश्वासनिवारणम् । कर्ट्कं पट्पलेमवात्र प्राहयन्ति भियग्वराः ॥ ३८ ॥ दशनूतपट्पलक्ष प्रा स्टन् ॥ ३८ ॥

## कएटकारीवृतम्

क्राटकारीगुङ्क्वीभ्यां पृथक् त्रिंशत्पलाद्रसे । प्रस्थः सिद्धो घृताद्वातकासनुद्वहिद्योपन ॥ ३६॥ श्रपरं क्राटकारीघृतम्

घृतं रास्त्रावलाव्यापभ्वदंष्ट्राकल्कपाचितम् । करहकारीरसे सपिं पञ्चकासनिष्टनम् ॥ ४०॥

क्रव्यकारीत्यादि—क्रव्यकारीग्रहूच्योमिनिका पन ६०, वल गराव ६०, गव १५। मन्ये तु नल्डोच दक्ता गेप १६ इत्याहु ॥ क्रव्यकारीत्म इति क्रव्यकारीत्वरस्थतुर्गुख, क्रक्तक्ष 'निविभिषकाया त्वरसं आहेपेड् यन्त्रपीटिन्द् । क्रिप्रोचे रने तिल्लन् एश्रम्सं विपानेषेत् ' श्ल्यादि ॥ ३६—४०॥

## बृहत्कएटकारी घृतम्

समूलपत्रशाखायाः कएटकार्थ्या रसाढके । घृतप्रस्थं वलाव्योषविडङ्गग्रटीचित्रके ॥ सौवर्चलयवज्ञारविल्वामलकपुष्करेः । बृश्चीरवृहतीपथ्यायमानीदाडिमर्डिमि ॥ द्राज्ञापुनर्नवाचव्यधन्त्रयासाम्लवेतसे । श्रद्धीतामलकीभार्गीराक्षागोजुरके पचेत् ॥ कल्केस्तु सर्वकासेपु हिक्काश्वासे च शस्यते । कएटकारीघृतं सिद्धं कफव्याधिविनाशनम् ॥ ४१ ॥ चन्ने व्यादि— वर्ष वेगश्रके बाग्मेट च पश्चेत । वन वेदरहमेदात् पुन-

र्नवाइयम् ॥ ४१ ॥

## रास्नाद्यं घृतम्

द्रोणेऽपां साधयेद्रास्नां दशमूली शतावरीम् ।
पितकां माणिकांशांस्त्रीन् कुलत्थान् वदरान् यवान् ॥
तुलार्द्धं छागमांसस्य पादशेषेण् तेन च ।
घृताढकं समन्तीरं जीवनीयैः पलोन्मितैः ॥
सिद्धं तद्दशभिः कल्कैनंस्यपानानुवासने ।
समीन्य वातरोगेषु यथावस्थं प्रयोजयेत् ॥
पश्च कासान् न्तर्यं श्वासं पार्श्वशूलमरोचकम् ।
सर्वाद्वैकाद्वरोगांश्च सप्लोहोद्ध्वीनिलं जयेत् ॥
जीवन्ती मधुकश्चैव दशको जीवको गण् ॥ ४२॥

द्रोखेऽपामित्यादि—अयमि योगश्चरेक वाग्मेट च पठ्यते । पिलकामिति रास्नादित्र्येखा सम्बध्यते, दशमूलमि प्रत्येक पलागम् । पिलकानिति पाठे रास्ना-दिशतावर्यन्ताना पिलकान् भागानिति मम्बन्धः । माखिका शाख अष्टै। पलानि । अत्र रास्नादिच्छागमासान्तकाथ्ये द्रोखप्रमाख जलम् , तच्च पादावरेषादाढकम् , चीरमप्याढकम् , अतो द्विगुख पाक ॥ ४२॥

### त्रगस्त्यहरीतकी

दशमूली स्वयंगुतां शङ्खपुष्पीं शर्टी वलाम्।
हस्तिपिप्पल्यपामागिपप्पलीमूलचित्रकान्॥
भागीपुष्करमूलञ्च द्विपलांशं यवाढकम्।
हरीतकीशतञ्चेकं जले पञ्चाढके पचेत्॥
यवैः स्विन्ने कषायं तं पूतं तच्चाभयाशतम्।
पचेद् गुडतुलां दत्वा कुडवञ्च पृथग् घृतात्॥
तैलात् सिपप्पलीचूर्णात् सिद्धशीते च माचिकात्।
लिह्याद् द्वे चाभये नित्यमतः खादेदसायनात्॥
तद्वलीपलितं हन्याद्वर्णायुर्वलवर्द्धनम्॥

पञ्चकासान् च्रयं श्वासं हिकां सविपमज्वरान् । हन्यात् तथा ब्रहर्णयशेंहद्रोगारुचिपीनसान् ॥ श्रगस्त्यविहितं धन्यमिटं श्रेष्टं रसायनम् ॥ ४३ ॥

दशम्लीमित्यादि — वाग्मटेचरकयो । अत्र ग्रातिशन्या वीजमः, तदमावे मूलमिप प्राध्ममाद्व । यवाढकमिति यवहरीतक्यो पटे वद्ध्वा दातच्यो । पञ्जभिगढकेरिति इंगुण्यादशीतिशरावा मवन्ति । दरामूल्यादिहरीतक्यन्ता काथ्या एकत्र्व पक्षच्या यवे स्वित्रेरित्युपलच्ये तृतीया, तेन स्वित्रेर्यवेरुपलच्तिः कपाया यदा भवति तदा त कपाय पूत कृत्वा, तच्च हरीतकीशत गुडतुलाञ्च दस्वा पुन पचिदिनि योच्यम् । यवानाञ्च स्वित्रना चतुर्मागावशिष्टकपाय एव मवतीति कृत्वा चतुर्मागावशिष्टकपाय मनतार्थ छन-तेलयो कुडवे पृथक्, इग्रुण्याच पृथगष्टपलमाने । मजनन्तु अवयवदाद्धार्थम् । तन्त्रान्तरे चात्र मधुनश्च पलाष्टकमेवीक्षम्, तुल्यमानत्वेऽपि धनमधुनोद्धवान्नरयोगान्न विम्हत्वम् । अवतारयानमये पिप्पलीचूर्यकृष्ठव प्रचप्यम् । लिह्मादिति प्रकृतलेह लिह्मात् हे चामये खादेदिति योज्यम् । अत्र यद्यपि लेहम्य मान नोक्त तथापि मुश्रुतमवादात् कर्पमान वीष्यम् । धन्यमिति प्रभावात् किंवा धनांजनेहतु नैम्डवमाध्यस्वात् ॥ ४३॥

🥖 व्याघ्रीहरीतकी

समृत्यपुष्पच्छ्रदकग्रहकार्थ्याः
स्तुत्वां जलद्रोग्णपरिप्तुनाञ्च ।
हरीतकीनाञ्च शतं निद्ध्याः
दथात पक्त्वा चरणावशेषम् ॥
गुडस्य द्वा शतमेतदशौ
विपक्षमुत्तार्थ्य नतः सुशीते ।
कड्तिकञ्च द्विपलप्रमाण्ं
पत्नानि पद् पुष्परसस्य तत्न ॥
चिपेश्चतुर्जातपत्नं यथाग्नि
पयुज्यमानो विधिनावलेह ।

वातात्मकं पित्तकफात्मकञ्च डिदोषकासानिप यांख्रिदेषान् ॥ स्रयोद्भवञ्च स्तजञ्च ह्रन्यात् सपीनसश्वासमुरःस्तजञ्च । यदमाणमेकादशरूपमुत्रं भृगूपदिष्टं हि रसायने स्यात् ॥ ४४ ॥ इति कासचिकित्सा ।

व्याश्रीहरीतन्यां कडुत्रिक प्रत्येक पलद्भयम् । चातुर्जातमिति मिलित्वा पलम् ॥ ४४ ॥

इति कासाचिकित्साविवृति ।

# अथ हिकाश्वासचिकित्सा।

हिकाश्वासातुरे पूर्व तैलाक्ते स्वद इष्यते। । । स्त्रिग्घेर्तवणयोगैश्च मृदु वातानुलोमनम्॥ उद्ध्वीध शोधनं शक्ते दुर्वले शमनं मतम्॥ १॥

तुल्यनिदानत्वात् कासानन्तर हिक्काश्वासचिकित्सामाह हिक्काश्वासातुर इत्यादि—तैलाक इति लवणसयोगे सह तैलाक इति योज्यम्, तेन सैन्धवसयुक्तेन तैलेनाभ्यक इत्यर्थ । स्विग्धेरिति स्विग्धेर्द्रव्ये स्वेद इति योज्य वाग्भटसवादात्। मृदु वातानुलोमनमिति ऊद्ध्वीध शोधनस्य विशेषण वाग्भटसवादात्, किंवा लवणयोगैरुपलचित शोधनमिति योज्यम्॥ १॥

कोलमजाञ्जनं लाजास्तिका काञ्चनगैरिकम्।
कृष्णा धात्री सिता ग्रुगठी काशीशं द्धिनाम च ॥
पाटल्या सफलं पुष्पं कृष्णा खर्जूरमस्तकम्।
पञ्जेते पादिका लेहा हिकाझा मधुसंगुताः॥२॥
शमनमाहकोलेत्यादि—कोलमञ्जा वदरास्थिमञ्जा, अञ्चनमत्र मौनीराञ्जनम्;

तिका कडकी, काञ्चनगेरिकमिति उत्तमले। इतगैरिकम्, काशाश थातुकाशीशम्, कास्यमाचिकमित्यन्ये, दिथनाम कपित्थफलम् ॥ २ ॥

> मधुकं मधुसंयुक्त पिष्पली शर्करान्विता । नागरं गुडसंयुक्त हिकाघ्नं नावनत्रयम् ॥ ३ ॥ स्तन्येन मित्तकाविष्ठानस्यं वालक्षकाम्बुना। योज्यं हिकाभिभूताय स्तन्यं वा चन्दनान्वितम् ॥ ४ ॥ मधुसीवर्चलोपेतं मातुलुङ्गरसं पिवेत् ॥ ४ ॥ दिकार्त्तस्य पयश्ञुागं हितं नागरसाधितम् ॥ ६॥ कृष्णामलकश्चराठीनां चूर्णं मधुसितायुतम् ॥ ७ ॥ मुद्रमुद्रः प्रयोक्तव्यं हिकाश्वासनिवर्हणम् ॥ 🖛 ॥ 📑 हिकाश्वासोद्भव भागी सविश्वामुण्यवारिणा। नागरं वा सिताभागीं-सौवर्चलसमन्वितम् ॥ ६॥ मध्कामित्यादि सौवर्चलान्त स्पष्टम् ॥ ३--- ६ ॥ श्टड्गीर्क द्विकंफ लंबयक एटकारी भागीं सपुष्करजटा लवणानि पञ्च। चूर्णं पिवेद्धि शिशिरंग जलेन हिका-श्वासोद्ध्ववातकसनारुचिपीनसेषु ॥ १० ॥ श्वद्गीत्यादौ--पुष्करजटा पुष्करमूलम् ॥ १०॥ श्रभयानागरकरुकं पौष्करयवशूक्रमरिचकरुकं वा । तोयेनेप्णेन पिवेत् श्वासी हिक्की च तच्छान्त्यै ॥ ११॥ भमयेत्यादि-योगद्वय स्पष्टम् ॥११॥

## पर्गासपश्चकम्

श्रमृतानागरफञ्जी-च्याघीपणीससाधितः काथः। पीत सकणाचूर्णं कासश्वासी निहन्त्याग्र॥ १२॥ अमृतेलादी—फञ्जा ब्रह्मवृष्टिः॥ १२॥

दशमूर्लीकपायस्तु पुष्करेणावच्चूर्णितः ।

कासभ्वासप्रशमनः पार्श्वहुच्छूलनाशन ॥ १३॥ कुलत्थनागरव्याघ्रीवासाभिः कथितं जलम् । पीतं पुष्करसंयुक्तं हिकाश्वासनिवर्हणम् ॥ १४॥ गुडं कडुकतेलेन भिश्रयित्वा समं लिहेत्। विसप्ताहप्रयोगेण श्वासं निर्मूलतो जयेत्॥ १४॥

दरामृलीकपाय इत्यादि जयेदित्यन्त स्पष्टम् ॥ १३—-१५ ॥

श्रङ्गीमहौषधकणाघनपुष्कराणां चूर्ण शटीमरिचशकरया समेतम्। काथेन पीतममृतावृषपञ्चमूल्याः श्वासं ज्यहेण शमयेदतिदोषमुत्रम्॥ १६॥

श्वद्गीत्यादि--श्रयादीना चूर्णं काष्यात् पादिकम्, प्रचेपत्वात् । त्रत्र पञ्च-मूली महती, वातकफहन्तृत्वादित्याहु. 11 १६ ॥

> हरिद्रां मिरचं द्रात्तां गुडं रास्नां कणां शटीम्। जह्यात् तैलेन विलिहन् श्वासान् प्राणहरानिष ॥ १७॥ हरिद्रामिलादि—सुश्रुतस्य। स्पष्टीमदम् ॥ १७॥

हिकां हरित प्रवलां प्रवलं श्वासं च नाशयत्याशु । शिखिपुच्छभूतिपिष्पलीचूर्णे मधुमिश्रितं लीढम् ॥ १८॥ हिकामिलादौ—शिखी मयूरस्तत्पुच्छस्य भृतिभेस तथा पिष्पनीचूर्णञ्च मम मधुना लेखम् ॥ १८॥

> कर्ष कलिफलचूर्णं लीढं चात्यन्तमधुमिश्रम्। श्राचिराद्धरति श्वासं प्रवलामुद्धंसिकाञ्चेव ॥ १६॥ कर्षमिलादि—कलिफल विमोतकम्॥ १६॥

हिंस्राद्यं घृतम् हिंस्राविडद्गपूतीकत्रिफलाव्योपचित्रकैः। द्विचीरं सर्पिषः प्रस्यं चतुर्गुणजलान्वितम्॥ कोलमातैः पचेत् तद्धि श्वासकासौ व्यपोह्ति।

## श्रशींस्यरोचकं गुल्मं शक्तद्भेदं त्तयं तथा ॥ २०॥

हिस्तेत्यादि — सुश्रुतस्य । हिस्रा काला श्रोकडा, पूर्तिक लाटाकरअस्य मूलम् । कोलमाश्रैरिति यद्यपि कोलराव्येन मापकाष्टक कर्पश्रोच्यते, यदाह चारपाणि 'शाण-काभ्यान्तु जानीयात् कोल वटकद्रच्यम् । ताभ्या कर्प पिचुश्चाच स्वर्णं पाणितल तथा । विडालपदक कोल किञ्चिच्च समुदाहृतम्' इति, तथापि कर्प प्वात्र प्राद्य । अन्यथा कल्कस्यालपीयस्त्व स्थात् । वृद्धकाश्यपेनाप्येवमुक्तम्, तस्मात् माध्वीय च्याख्येति ॥ २०॥

## तेजोवत्याद्यं घृतम्

तेजोवत्यभया कुष्ठं पिष्पली कहुरोहिणी।
भृतिकं पौष्करं मूलं पलाशश्चित्तकं शटी॥
सौवर्चलन्त्वामलकी सैन्धवं विक्वपेशिका।
तालीशपत्नं जीवन्तां वचा तैरत्तसम्मितेः॥
हिङ्गुपादैर्घृतप्रस्थं पचेत् तोयचतुर्गुणे।
पतद् यथावंलं पीत्वा हिक्काश्वासी जयेन्नर॥
शोथानिलाशींग्रहणीहत्पार्श्वरुज एव च॥ २१॥

तेजोवतीत्यादि — चरकस्य । तेजोवती चिवका, भृतिक कचूणम् । हिंगु- । पादैरित्येकमागमपेच्य, तेन हिङ्गनक्षत्वारो मायका ॥ २१॥

## भागींगुड:

शतं संगृह्य भाग्यांस्तु दशमूल्यास्तथापरम्। शतं हरीतकीनाञ्च पचेत् तोयचतुर्गुण्॥ पादावशेषे तस्मिस्तु रसे वस्त्रपरिस्रते। श्रालोख्य च तुलां पूतां गुडस्य त्वभयां ततः॥ पुन पचेत्तु मृद्धशौ यावल्लेहत्वमागतम्। शीते तु मधुनश्चात षद् पलानि प्रदापयेत्॥ त्रिकदु तिसुगन्धञ्च पलिकानि पृथक् पृथक्। कर्षद्वयं यवत्तारं सञ्चूर्ण्ये प्रात्तिपेत् ततः॥ भत्तयेदमयामेकां लेहस्याईपलं लिहेत्।
श्वासं सुदारुणं हन्ति कासं पञ्चिवधं तथा।
स्वरवर्णप्रदो होष जठराग्नेश्च दीपन ॥
पलेलिखागते माने न द्वैगुण्यमिहेण्यते॥
हरीतकीशतस्यात प्रस्थत्वादाढकं जलम्॥ २२॥

<

भागीगुंड दशमूल्यि मिलित्वा । तोथे चतुर्गुण इति श्रक्वतद्वेगुण्यात् दशमूलीशत भागीशतन्त्र मिलित्वा जलस्य शरावशत देयमित्याहु । हरीतकीशतत्त्यात्र
प्रस्थत्वादाढकः जलमिति वद्यति, तेन जलस्य पोडशशरावाधिकशरावशतमित्यर्थ ।
वृन्दस्तु हरीतकीशतैकस्य वारिप्रस्थमिदाधिकमित्याह । वृद्धास्तु सम्यक् वीवर्णधानार्थमत्र द्रवस्य द्वैगुण्यमिच्छान्ति, तन्मते जलशरावशतद्वयम् । अनैनेव हरीतक्या
श्रापि पाकः । व्यवहारस्तु प्रायश्चतुर्गुण्यलेनाकृतद्वैगुण्येन ॥ २२ ॥

### कुलत्थगुड:

कुलत्थं दशमूलञ्च तथैव द्विजयष्टिका।
शतं शतञ्च संगृह्य जलद्रोणे विपाचयेत्॥
पादावशेषे तस्मिंस्तु गुडस्याईतुलां चिपेत्।
शीतीभूते च पके च मधुनोऽष्टौ पलानि च॥
पद् पलानि तुगाचीर्थ्या पिप्पल्याश्च पलद्वयम्।
तिसुगन्धि सुगन्धं तत् खादेदश्चिवलं प्रति॥
श्वासं कासं उचरं हिकां नाशयेत् तमकं तथा।
प्रतिशतं द्रोणिनियमाज्क्षेयं द्रोणित्रयन्तिवह॥ २३॥

इति हिकाश्वासाचिकित्सा।

कुलत्थिमत्यादौ--जलद्रोण इति प्रतिशतिमत्यर्थ , पतत्तु चक्रमतम्, वृन्द-स्त्वाह 'योगमन्दर्शनादत्र वृद्धवैद्योपदेशतः । जल चतुर्गुण देयमल्पत्वाद द्रोण-वारिण । मानमात्रिध्यसवादाद् द्विपल विद्यगन्धित ' इति । योगसन्दर्शनादिति समानद्रस्वप्रमाणकुलत्यगुडान्तरे चतुर्गुणजलसन्दर्शनादित्यथं , इदन्तु न गृद्धते

द्राणपदस्य साक्षादुपादानात्, तस्य चतुर्शुग्यत्वकल्पने द्रोणपदस्य वैयथ्यं न्यात्। पिप्पलीपलद्वयमान्निध्यात्, विद्युगन्धि च मिलित्वा पलद्वय तथा तन्त्रान्तरमवा-दाच्च, यथा पतज्ञातीयकुलत्थगुडान्तरे 'मधुन कुडव दचात् विद्युगन्धिपलद्वयम् ' इति ॥ २३ ॥

इति हिक्काश्वासचिकितसाविवृति ।

## अथ स्वरभेदचिकित्सा।

वाते सलवणं तैलं पित्ते सर्पि समान्तिकम्। कफे सनारकदुकं चौद्रं कवल इज्यते॥ गले तालुनि जिह्नाया दन्तमूलेषु चाश्रित। तेन निष्कृष्यते श्लेष्मा स्वरश्चास्य प्रसीद्ति॥१॥

प्राणोटानदुष्टिसाधर्म्यौत् हिक्काश्वामानन्तर स्वरभेदिचिकित्मामाह वात इत्यादि—तैलमत्र कदुष्ण कृत्वा कवल कार्य्य इत्याहु । चारो यवचार ॥ १ ॥

श्राद्ये केरणं जलं पेयं जग्ध्वा घृतगुडौदनम् । चीरान्नपानं पिचीत्थे पिवेत् सर्पिरतन्द्रितः ॥ पिष्पर्ली पिष्पलीमूलं मरिन्नं विश्वभेषजम् । पिषेनमूत्रेण मतिमान् कफजे स्वरसंद्येय ॥ २ ॥

श्राच इति वातस्वरभेदे पिवेत्। सिंपिरिति यद्यपि सामान्येनैवोक्ष तथापि सुश्रुते श्रासोक्ष वासाष्टत पित्तकासोक्ष वा विदारीगन्धोत्पलशारिवेत्यादिनोक्ष श्रेयमित्यादुः। पिप्पलीमित्यादि—पिप्पलीत्यादिचूर्णं गोमूत्रेण पेयम्। स्वरमञ्चय इति स्वरभेदे ॥ २॥

स्रोपघाते मेदोजे कफविद्धिधिरिष्यते ॥ ३ ॥ ✓ च्रयजे सर्वजे चापि प्रत्याख्याय समाचरेत् ॥ ४ ॥

स्वरोपधात इत्यादि—सुश्रुतस्य । कफवदिति कफजस्वरमेदवत् । ज्ञयजे सर्वजे चापीत्यिपशिच्द्वलात् मेदोजसङ्जयो परिग्रङ् । तन्श्रान्तरे हि श्रनयोरप्य-माध्यत्वमुक्तम्, यथा 'ज्ञीयास्य बृद्धस्य क्रशस्य चापि चिरोत्थितो यश्च सहोपजात । मेदस्विन सर्वसमुद्भवश्च स्वरामया यो न स सिद्धिमेति। ' क्रिया चात चयजे चयकामोक्ता सर्वजे तु प्रत्येकदोषोक्तंव मिलित्वा कार्य्या ॥ ३ । ४ ॥

चव्याम्लवेतसकद्विकितिन्तडीक-तालीशजीवकतुगादहने समांशः। चूर्णे गुडप्रमृदितं त्रिसुगन्धियुक्तं वैखर्य्यपीनसकपारुचिषु प्रशस्तम्॥ ४॥

चन्याम्लवेतसेत्यादौ--तिन्तिडीक महार्द्रकम्, तुगा वशलोचना, दहन-श्चित्रक । गुडोऽत्र समुदितचूर्णसम । त्रिसुगन्धि प्रत्येकमेकमागापेचया चतुर्थारानेति केचित् एकमागमम मिलितमित्यन्ये ॥ ॥ ५ ॥

तैलाक्तं खरभेदे वा खदिरं घारयेन्मुखे।
पथ्यां वा पिप्पलीयुक्तां संयुक्तां नागरेण वा ॥
श्रजमोदां निशां घातीं ज्ञारं विद्वं विचूर्णयं च।
मधुसिंपर्युतं लीढ्वा खरभेदं व्यपोहति॥६॥

तैलाक्तमित्यादि—श्लोकदय स्पष्टम् ॥ ६ ॥

कलितरुफलिसन्धुकणाचूर्णं तकेण लीडमपहरित । खरभेदं गोपयसा पीतं वामलकचूर्णञ्ज ॥ ७ ॥

कलितरुफलेत्यादि —कलितरुफल विभीतकफलम् । तक्रेग्रेत्यत्र चुकेग्रेति पाठान्तरम् ॥ ७ ॥

वद्रीपत्रकरकं वा घृतभृष्टं ससैन्धवम्। खरोपघाते कासे च लेहमेनं प्रयोजयेत्॥ =॥

बदरीपत्रकल्क वेत्यादि—वदरीपत्र समैन्धव बहुष्टते मृष्ट्वा तेनैव ष्टतेनालोड्य लिहुत्॥ मा

> शर्करामधुमिश्राणि श्रतानि मधुरै सह। पिवेत् पर्यासि यस्योचैर्वदतोऽभिहत स्वर ॥ ६॥

शर्करेत्यादि — सुश्रुतस्य । मधुरैरिति काकोल्यादिगर्गे । पथ साधनामिह

### क्रार्वारीघृतम्

व्याद्यीखरसविपकं रास्नावाट्यालगोन्तरव्योपै । सर्पि खरापघातं दृन्यात् कासञ्च पञ्चविधम् ॥ शुष्कद्रव्यमुपादाय खरसानामसम्भवे । वारिएयप्रगुणे साध्यं प्राह्यं पादावशेषितम् ॥ १०॥

व्याघीत्यादि — यद्यपि इद एत रास्नेत्यादिना कामेऽप्युक्त नथाप्यश्व स्वरभेद-इन्तुत्वप्रतिपादनार्थं पुनरप्युक्तम् । स्वरसस्यामावे काथग्रहण्यमाह शुष्कद्रव्यामत्यादि-पादस्तु चतुर्थमाग । श्रत्र केचित् स्वरसानुकल्पत्वादष्टावशिष्ट एव काथो शुक्षो गुरुत्वा-दिति । पादशब्दस्य मूलवचनत्वेनाशापि पादशब्दोऽय मूलाभूतमाधभागमाह, तेन यद्भागापेत्वया श्रष्टगुण्यत्व तावानेव भाग स्थापनीय इत्याहु । श्रन्य तु पादावशा-पितमित्यत्र मागावशापितमिति पठित्वा मागशब्दोऽत्राष्टमो भाग इत्याहु । व्यवहारस्तु चतुर्थमागेनैव ॥ १०॥

## भृद्गराजाद्यं घृतम्

भृद्गराजामृतावल्लीवासकदशमूलकासमर्दरसै । सर्पि सपिप्पलीकं सिद्धं सरभेदकासजिन्मधुना ॥११॥

मृक्षराजेत्यादि — मृक्षराजादीना काथश्चतुर्गुण , पिष्पत्या पादिक कल्क सिद्धरीति तु घनात् पादिक मधु प्रचेष्यम् ॥ ११ ॥

शति स्वरमेदाचिकित्साविवृति ।

# अथारोचकचिकित्सा।

विस्त समीरणे पित्ते विरेकं वमनं करे।
कुर्याद् हृद्यानुकूलानि हृष्णञ्च मनोझजे ॥ १ ॥
वान्तो वचाद्भिरानेले विधिवत् पिवेत्तु
स्नेहोष्णतोयमदिरान्यतमेन चूर्णम्।
कृष्णाविडह्नयत्रभसहरेखुभार्गीरास्नेलहिङ्गलवणोत्तमनागराणाम् ॥ २ ॥

अरे। चकस्य। प्यूद्ध्वंगिवकारत्वेन स्वरभेटानन्तरमरो चकमाह, बिस्तिमिलादि— मनोम्ने इति मनोवेटनो हेतुशोकादित । पतचीपलच्चण तेन कायादिजेऽपि क्षेयम् । वान्त इत्यादि—सुश्रुतस्य । विधिवत् वान्त कृतवमन , विधिवदिल्यनेन लाजपेया-दिक्रमञ्ज वोधयित तेन वान्त सन् पेयादिक्रमेण जातवलः सन् चूर्णं पिवेन्न सह-सेति । अनिल इति कारणे कार्योपचारात् श्रानेलजे, श्रानेलजेऽपि वमनिमह कफ-स्थानगतत्वाद्वोदितन्यम् । स्नेहस्तैलिमह वातहन्तृत्वादिति वृन्दिष्पणी, तम्न, वृतमेव युक्तम्, वद्यमाणवाग्भटवचनात् । यवभस्य इति यवचार । लवणोत्तम सैन्धवम् । एल एलवालुकामिति कार्त्तिकः, एलल्यन्य, युक्तञ्चेतत् वाग्भटसवादात् ॥ १ । २ ॥

पैत्ते गुडाम्बुमधुरैर्वमनं प्रशस्तं लेह ससैन्धवसितामधुसिर्पिरिष्टः। निम्वाम्बु छिदितवतः कफजे तु पानं राजद्रुमाम्बु मधुना सह दीप्यकास्त्रम्। चूर्णं यदुक्तमथवानिलंजे तदेव सर्वेश्च सर्वकृतमेवमुपक्रमेच ॥ ३॥

गुडाम्बुमधुरिति गुडाम्बुयोगान्मधुरैर्वमनयोगै; श्रत्र मदनफलयोगोऽिष श्रेय , केवलगुडोदकेन वमनस्यासम्भवात्, श्रन्ये तु मधुरशब्दनाष्टवर्गमाहु॰, श्रपरे तु मधुरै-रिखत्र मधुकैरिति पठिन्ति । निम्वाम्बुइदितवत्, श्रित श्रागमशासनमनित्यमिति श्रागमभावादत्र केवलश्लकार , तेन न छन्दोभद्गः। चन्द्राटस्तु निम्वाम्बुविमतवत शित पठिते। राजद्रुमाम्बुमधुनेति राजद्रुम श्रारग्वधस्तस्य फलकाथो मधुना सहित इत्यर्थ , काित्तकस्तु राजद्रुमशब्देन श्रारग्वधादिगणमाह, कफािषन्येऽस्यैवोचितत्वादिति, किन्तु वाग्मेट एव नोक्ष तेन श्रारग्वधादिगणमहण् न प्रमाणिमिति । दीप्यकाद्यामिति यवानीचूर्णमत्र प्रचेप्यम् । चूर्णे यद्वक्षमथवेति श्रनिलजे यत् चूर्णमुक्ष कृष्णादिनागरान्त तदेवेह राजद्रुमाम्बुना पिवेत् । श्रयञ्च विधिवीतानुबन्धे सित श्रेयः । सर्वेश्य सर्वकृतमिति प्रत्येकदोषोक्ष भेलायित्वा सर्वदोषज्ञमरीचक्रमुपाचरेदित्यर्थः ॥ ३ ॥

कुष्ठसौवर्चलाजाजी श्रकरामरिचं विडम् । धात्र्येलापद्मकोशीरपिष्पलीचन्दनोत्पलम् ॥ लोभ्रं तेजोवती पथ्या ज्यूषणं सयवायजम् । स्रार्द्रदाडिमनियीसश्चाजाजीशर्करायुतः॥ स्रोतमाज्ञिकाञ्चेते चन्तार कवत्रहाः। चतुरोऽरोचकान् हन्युर्वातायक्तर्सवज्ञान्॥४॥ न्वड्नुलमेता घान्यानि मुलनामतकानि च। न्वक् च वार्वी यमान्यञ्च पिन्यहरलेजोवत्यपि॥ यमानी विन्तिडीकञ्च पञ्चेते मुख्योयनाः। स्रोक्षपाद्यपिहिताः सर्वारोचकनाम्गाः॥४॥

हुरेक्टि-व्रक्ता। दक्षी देगा. न्यष्ट. . स्वर्टनेक्टि-न्वन् गुटलन्. देवेन्द्री वर्ष । रम क्रेन विश्ववर्षः कर्यानिकातु । दुवरीयन क्रि दुव-क्रिक्टोक्टा । ४ 7 / 1

> श्रन्तीका गुडतेयञ्च त्वगेतामरिचान्वितम् । श्रमहृष्ट्रहृत्योगेषु शस्तं कवतवारसम् ॥ ६॥

क्षम्भित्रारि-क्षमंश्च प्रशितिहोत्रम्, स्त्रव पुरतमं प्रशित्यपुः। बीमातमञ्ज सर्वमं स्थापन्य सम्म । ३ ॥

कारव्यकाजीनरित्रं द्वात्राष्ट्रकाम्तदाडिमम् । सौदर्वतं गुडं कौद्रं सर्वाग्रेचकनाशनम् ॥ ७ ॥ कार्वकवि—कार्व कृष्णकेषः । इतिका पद्रकः रमण्डमम दुवे वास्त्रेषः ॥ १०००

> त्रीत्यृपराति त्रिकता रजनीहयत्र चूर्जीकृतानि यवग्रकतिमित्रितानि । जोद्रान्त्रितानि वितरेन्मुखबाररार्थ-मन्यानि तिक्षकडुकानि च मेपजानि ॥ = ॥

होरीय हिन्दुहुत्य। सुबहारा देनित ब्हेर सुबहोजन देनित। इन्सीन दिश्हरूपी व मेण्यानीति कोलादिस हैदाने महीना, बहुई कोलासीत सर्वे बहुदिश्रमीयको। लिसाद कीहर संदुष्टनय्यानी दुनः पुनः। इति स्टार

> विद्चूर्णमधुसंयुक्तो रस्रो दाहिमसम्मवः । श्रसाच्यामपि संहन्यादृहर्षि वक्तश्यारितः ॥ ६ ॥

विट्चूर्णेत्यादि स्पष्टम् ॥ ६ ॥

### यमानीषाडवः

यमानीतिन्तिडीकञ्च नागरञ्चाम्लवेतसम् । दाडिमं वदरञ्चाम्लं कार्षिकारयुपकरुपयेत् ॥ धान्यसौवर्चलाजाजीवराङ्गञ्चार्द्धकार्षिकम् । पिष्पलीनां शतञ्चैकं द्वे शते मरिचस्य च ॥ शर्करायाश्च चत्वारि पलान्येकत्र चूर्णयेत् । जिह्वाविशोधनं हृद्यं तच्चूर्णं भक्षरोचनम् ॥ हृत्पीडापार्श्वश्चल्रां विवन्धानाहनाशनम् । कासभ्वासहरं प्राहि ग्रहर्ग्यशोविकारनुत् ॥ १०॥

यमानोषाढव. श्रम्लमिति वदराविशेषया, वराई गुडल्वक् । पिप्पलीना शतिमत्याकृतिमानात् । एव मरिचस्यापि शतद्वयम् । एतच्चूर्णं मुखे धृत्वा शनै शनैर्गलाध करणीयमित्युपदिशन्ति । षाडव इति मधुरान्नयोगस्य सन्ना, यमान्योप-लच्चित. षाडवो यमानीषाडव ॥ १०॥

## कलहंस:

श्रष्टादश शिग्रुफलानि दशमिरचानि विशितिश्च विष्पत्य । श्राद्रैकपलं गुडपलं प्रस्थत्रयमारनालस्य ॥ एतद्विडलवण्युनं खजाहतं सुरिभगन्घाट्यम् । व्यञ्जनसहस्रघाति श्रेयं कलहंसकं नाम ॥ ११ ॥

#### इत्यरोचकचिकित्सा।

श्रष्टादरोत्यादि—शिग्रुफलानि शोभाश्रनवीजानि । सुरभिगन्थाद्य चातु-र्जातकाट्यमित्यर्थे. । स्वरवद्यानाडीशुद्धिकरणत्वेन इसस्वरजनकत्वेन कलहम-सञ्चा ॥ ११ ॥

इत्यरोचकचिकित्साविवृति ॥

## अथ छर्दिचिकित्सा।

भाषायोत्क्षेशभवा हि सर्वाः श्वामाश्योत्क्षेशभवा हि सर्वाः श्वामा मता लह्वनमेव तस्मात्। प्राक् कारयेन्मारुतजां विमुच्य संशोधन वा कफापत्तहारि ॥ १॥

श्रीचकवत् पद्मविधत्वात् तथा छद्यामयेऽप्यक्ते मम्भवादरीचकानन्तरं छिदिचिकित्तितमुच्यते, श्रामाशयेत्यादि—चरकत्य । श्राम श्रामरम , तस्याशय श्रामाशयः, तत्रेतिकारः दोषाणामुदीरण, तद्भित्तकारछदेय , किंवा श्रामाशयस्यारावितेषस्योत्केश इति । हिश् इते । यस्मादामाशयोत्केशेन एते छद्येय , श्रामाशयसमुत्ये च रोगे लद्धनमुक्त, तस्मादित्यंथं । उत्सर्गमुक्ता श्रपवादमाह प्राक् कारयेदित्यादिना । यथि वातजायामप्यामशयसम्बन्धन कफीऽप्यरित लद्धन साध्यश्च तथािष वातस्य महात्ययस्याशुकारिणो लद्धनशोधनाभ्या षृद्धिन छत्ययकरो स्यादिति भाव । श्रत्र लद्धनमल्दोपविषय, शोधनग्र बहुदोपविषयमिति । सशोधनशाच्देनात्र वमनविरेचनयोरेव श्रहणम् , उत्तरम्यापि वमनस्य वद्यमाण त्वात् । श्रन्ये त्वत्र मशोधनशच्देन प्रतिमागेहरणतया श्रत्यर्थिहत विरेचनमेव वर्णयन्ति ॥ १ ॥

## हन्यात् चीरोदकं पीतं छदिं पवनसम्भवाम्। ससैन्घवं पिवेत् सर्पिर्वातच्छिदिंनिवारणम्॥ २॥

हन्यादित्यादि — सुश्रुतस्य । चारोदक्षिमस्यत्र चारश्रनमिति टल्बण पठिति, न्याचेष्ट च—चीरमथनादुद्भृत शत चीरशत चीरश्रक्ष वा शत चीरशतिमिति, किन्तु वाग्मेट पीत तुल्याम्बुना पय श्रुक्ष, तेन चीरोदकमिति पाठ । मर्मन्थव पिनेत् सर्पिरित्यत्र पक्ष श्रुनम् ॥ २॥

## मुद्रामलकयूपं वा ससर्पिष्कं ससैन्धवम् । यवाग्रं मधुमिश्रां वा पश्चमूलीकृतां पिवेत् ॥ ३ ॥

सुद्रामलकयूप वा सर्सापेष्किमिति सर्सापेरिष्ट यूपसन्तलनार्थम् । यवागू मित्यादि—सुश्रुतस्य । पञ्चमूली स्वल्पा इति चक्र , महतीति गयदाम , वात-जायामप्यामाशयसमुरिथतत्वेन।सुबन्धरूपस्य कफस्य विद्यमानत्वात् ॥ ३ ॥ पित्तात्मिकायान्त्वनुलोमनार्थं द्राज्ञाविदारीजुरसैस्त्रिवृत् स्यात्। कफाग्रयस्थन्त्वतिमात्रवृद्धं

पित्तं जयेत् स्वादुभिरूद्ध्वेमेव ॥ ४॥ अध्य शुद्धस्य काले मधुशर्कराभ्यां

लाजैश्च मन्थं यदि वापि पेयाम् । प्रदापयेन्मुद्गरसेन वापि

शाल्योदनं जाइलजै रसैर्वा ॥ ४॥ ११५५

पित्तत्यादि—चरकस्य । चूर्णाकृता त्रिष्ट्विति द्राष्ट्रादिरसै प्रत्येकमुण्योज्य-मित्याहु । कफाशयस्थमिति आमाशयोद् व्वमागस्थम । स्वादुमिरूद् ध्वमेवेति अनन्तरोक्षेद्रीष्ट्रादिभिरेव । ऊर्ध्वमिति वमनेन हरेदित्यर्थ , अत्रानुक्तमि मदनफल वमनयोग्यतया श्च्यम् , अन्य नु केवलमेव द्राष्ट्रादिरममाक्ष्य पीत्वा वमन कार्य-मित्याहु । काल इति मम्यग्नुभुद्धाकाले । यदि वापि पेयामिति मन्दाप्ति प्रति पेया श्चेया ॥ ४ ॥ ४ ॥

> चन्दनेनात्तमात्रेण संयोज्यामलकीरसम् । पिवेत् मान्तिकसंयुक्तं छुर्दिस्तेन निवर्चते ॥ ६ ॥ चन्दनञ्चामृणालञ्च बालकं नागरं वृषम् । सत्तरहुलोदकत्तोद्धः पीतः कल्को वर्षि जयेत् ॥ ७ ॥

चन्दनेत्यादि —चरकमवादात् श्वेतचन्दन श्वेयम् । चन्दनकल्कापेच्चया चामलकीरमश्चतुर्गुण , पातन्यश्च चतुर्दव इत्युक्ते । चन्दनमित्यादौ — श्रमृणाल-मुशीरम् ॥ ६ ॥ ७ ॥

> कपाया भृष्टमुद्रस्य सलाजमधुशर्करः। छुर्चतीसारतृड्दाहुज्वरघः सम्प्रकाशित ॥ = ॥

कपाय इत्यादि--- मुद्द मृष्ट्वा काथ विधिना कपाय कार्थ्यस्ततो लाज-चूर्णादिप्रचेप ॥ ८ ॥

> हरीतकीनां चूर्णन्तु लिह्यान्माचिकसंयुतम्। श्रधीभागीकृते देषि छुदिः चिष्रं निवर्तते॥ १॥

हरीतकीनामित्यादि स्पष्टम् ॥ ६ ॥
गुड्रचीत्रिफलारिष्टपटोलै कथितं पिवेत् ।
चौद्रयुक्तं निहन्त्याशु छुदिं पित्ताम्लसम्मवाम् ॥१०॥
गुड्रचीत्यादी—पित्तान्तमम्मवामिति भ्रन्तिपत्तमम्मवाम् ॥ १० ॥
काथ पर्पटजः पीत सच्चौद्रण्छिनित्रान्त ॥११॥
काथ इत्यादि स्पष्टम् ॥११॥
कफात्मिकायां वमनं प्रशस्तं
सपिष्पलीसर्पपनिम्यतायैः।
पिग्डीतके सैन्धवसंप्रयुक्तेश्लुर्द्यो कफामाश्ययशोधनार्थम् ॥१२॥

कफात्मिकायामित्यार्टी — मीपण्पनीमर्पपिनम्बतीर्थिति निम्बवत्कलस्यार्द्धश्वेत काथ पिप्पल्यादीनाँ प्रत्तेष इति वृन्दिटप्पणी, श्रन्ये तु तीयशब्देनात्र उप्णोदक- सुच्यते, तेन पिप्पल्यादिकत्कमुण्णोदकेन पिवेदित्याहु , वाग्मटेऽप्युक्त 'कफजाया वमिन्नम्बकृष्णापिण्डीतर्सपेषै । युक्तेन कोप्णतीयन ' इति, तत्रानुक्तमिष वमन- योग्यत्वेन सैन्धव वीष्यम् । पिण्टीतको मदनफलम् । कफामाणयगोधनार्थमिति कफपूर्णामाशयशोधनार्थम्, कफस्यामाणयस्य च शोधनार्थमित्यन्ये ॥ १०॥

विडङ्गित्रफलाविश्वचूर्णे मधुयुतं जयेत्। विडङ्गसवग्रुगठीनामथवा न्रेष्ठण्मजां विमम्॥ १३॥ विदेश्वाती—सर्व केवर्तमुलकम् ॥१३॥ सजाम्यवं वा वद्रस्य चूर्णे मुस्तायुतां कर्कटकस्य श्रङ्गीम्। दुरालभां वा मधुसम्प्रयुक्तां लिह्यात्कफच्छिदिंविनिग्रहार्थम्॥ १४॥

सनाम्बनित्यादि—जान्वन जन्युफलास्थि । वदरस्य चूर्णमिति बदरान्न-चूर्णमिति चरके पट्यते, तन्मते श्रन्तवदास्यैव चूर्णम्, श्रन्ये तु वदरस्य चूर्णमिनि पठित्वा वदरास्थिमव्जचूर्णमित्याहु. । मुस्तायुता कर्कटकस्य मृद्रीमिति दितीयो योग । दुरालमा वेति चुनीयो योग. योगश्रयेऽपि मश्च सन्वध्यते॥ १४॥ तर्पणं वा मधुयुतं तिसृणामि भेषजम्। गाः कृतं गुडूच्या विधिवत् कषायं हिमसंक्षितम्। '' तिसृष्वपि भवेत् पथ्यं माचिकेण समायुतम्॥ १४॥

तर्पेशात्यादि—तर्पश तोयाविष्त्रता शक्तव । तिस्रशामिति 'पृथग्वातादि-जानाम्, अन्यथा वहुवचननानुपपात्ति । एतेन तिद्रोपवच्छार्दिहरत्वमस्योक्त भवति, यत पृथग्वातादिच्छार्दिभेषजयुक्तमेव सान्निपातिकच्छदिभेषज भवति, चरके तथो-कत्वात् । कृतमित्यादि—सुश्रुतस्य । अत्रापि पूर्ववत् व्याख्येयम् ॥ १५ ॥

द्रव्यादापेधितात् तोये प्रतप्ते निशि संस्थितात्। कषायो योऽभिनियाति स शीत समुदाहृतः॥ पड्भिःपलश्चतुर्भिर्वा सलिलात् शीतफाएटयो। श्राप्ततं भेषजपलं रसाख्यायां पलद्वयम्॥ १६॥

हिमसिंजतिमिति शीतकषायसिंजत, तर्व्यमेव कृष्णात्वयपिरमाषामाह द्रव्या-दित्यादि—व्यवहारस्तु प्रायेण भेषजाद्भेपल जलपलद्वयिमिति । रसाख्याया पलदय-मिति स्वरमामावे यत्र भेषजचूर्णमुख्णोदके प्रज्ञिप्य स्वरमानुकल्प क्रियेते तस्मिन् हाथे कर्त्तव्ये भेषजस्य पलद्वय दत्त्वा स्वरसानुकल्प कार्य्ये ॥ १६॥

> श्रीफलस्य गुङ्गच्या वा कषायो मधुसंयुतः। पेयश्कुर्दित्रये शीतो मूर्वा वा तग्हलाम्बुना ॥ १७ ॥

श्रीफलस्येत्यादि श्रीफलो विल्व तस्य मूल श्राह्म, ' विल्वमूल मस्त् श्रेष्म-च्छ्रिंद्रि न च पित्तकृत्' इति गुण्पाठात्, एवमन्यत्रापि । गुहूच्या वा कषाय इति गुहूच्या काथ एव शीतल कार्य्य , न तु शीतकषाय , नागांजुनसवादे तस्योक्ष-त्वात् यथा—' छिन्नरुहाया काथ सुरतित यो नर. पिवेन्मधुना । छार्दे स वात-पित्तश्रेष्मममुत्था निवारयति ' इत्यादि ॥ १७॥

जम्बाम्रपह्मगवेधुकधान्यसेव्यं हीवेरवारि मधुना पिवताऽल्पमल्पम्। छुर्दि प्रयाति शमनं हिसुगन्धियुक्ता लीढा निद्दन्ति मधुनाथ दुरालमा वा॥ १८॥ जम्बाम्रेत्यादि—गवेधुको गुल्मम्, धान्य धान्यकम्, सेव्यमुशीरम्, वारि शीतकपाय इत्यर्थ । पुनर्दुरालमेति स्रोकानुरोधादुक त्रिसुगान्धियोगन योगान्तरस्वाह न पीनस्क्त्यस् ॥ १८ ॥

### जातीभात्री

जात्या रस कपित्थस्य पिष्पलीमरिचान्विन । चौद्रेग युक्त शमयेक्केहोऽयं छुर्दिमुल्त्रणाम् ॥ १६ ॥ अात्या क्त्यादि—जाती आमलको, कपित्थस्येति कपित्थफलम्य । एक ण्वाय

योगः ॥ १६ ॥

पिष्ट्वा धात्रीफलं टात्तां स्वर्कराश्च पलोन्मिनाम् । दत्त्वा मधुपलञ्चात्र कुडवं सलिलस्य च । वाससा गालितं पीतं हन्ति छुदिँ त्रिदंापजाम् ॥२०॥ विष्ट्वेत्यादि—४८न्तु अग्न्याधवेत्तया वेयम्, शेष त्यान्यम् ॥ २०॥

## एलादिचूर्णम्

प्लालवद्गगजकेशरकोलमजा-लाजाप्रियक्षुधनचन्दनिपण्पलीनाम् । चूर्णानि माचिकसितासिहतानि लीद्वा छदिँ निहन्ति कफमारुनिपत्तजाञ्च ॥ २१॥ .

ण्लेत्यादि स्पष्टम् ॥ २**१** ॥

कोलामलकमजानौ मिक्काविद् सिता मधु। सक्रप्णातगृहलो लेहरछर्दिमाग्रु नियच्छति॥ २२॥

कोलेत्यादि—कोल बदर तदस्थिमङ्जा आद्या । कृष्णात्यदुल पिण्पली सण्डल ॥ २२ ॥

श्रश्वतथवल्कल श्रुष्कं द्ग्ध्वा निर्वापित जले। तत्तोयपानमात्रेण छदिं जयति दुस्तराम्॥ २३॥ श्रम्यवेत्यादि स्पष्टम्॥ २३॥ यप्टचाहं चन्द्रनोपेतं सम्यक् ज्ञीरप्रपेषितम्। तेनैवाले। उच पातव्यं रुधिरच्छुर्दिनाशनम् ॥ २४॥
यध्याह्मित्यादौ—तेन इति चिरेण ॥ २४॥
लाजाकिपित्थमधुमागिवकोषणानां ।
चौद्राभयात्रिकदुधान्यकजीरकाणाम् ।
पथ्यामृतामिरचमाचिकिपिष्पलीनां
लेहास्तय सकलवम्यरुचिप्रशान्त्ये ॥ २४॥
लाजेत्यादौ—क्षित्थस्य फलम्, कषण मरिचम्, जीरकोऽजाजी ॥ २४॥

पद्मकाद्यं घृतम्

पद्मकामृतिनम्वानां धान्यचन्दनयोः पचेत्। कल्के काथे च हविषः प्रस्थं छुदिनिवारणम्॥ तृष्णारुचिप्रशमनं दाहज्वरहरं परम्॥ २६॥ इति छुदिविकित्सा॥

पद्मकष्टते काथ कल्कश्च पद्मकादिपञ्चकस्य ॥ २६ ॥ इति अदिंचिकित्साविवृति ।

# श्रथ **ृ**णाचिकित्सा।

तृष्णायां पवनोत्थायां सगुडं द्घि शस्यते । रसाश्च बृंहणाः शीता गुडूच्या रस एव च ॥ १॥ पञ्चाङ्गकाः पञ्चगणाः य उक्का-

स्तेष्वम्बु सिद्धं प्रथमे गणे वा । पिवेत् सुखोष्णं मनुजोऽल्पशो वा तृष्णोपरोघं न कदापि कुर्यात् ॥ २॥

छर्चान्तुष्योपद्रवत्वाच्छर्चनन्तर तृष्याचिकित्सामाह तृष्यायामित्यादि— वाग्भरस्य । सगुड दधीति गुड प्रचेप्यम् । पञ्चाङ्गका इत्यादि —सुश्रुतस्य । पच श्रद्भानि येषाम् एवम्भूता ये पञ्चगयाः स्वल्पबृहन्तृयवहीकरण्यकीसज्ञकानि पञ्च पज्रमूलानि सुश्रुतोक्षानि तेषु । यम्मु सिद्धमिति अन्मु काथोऽद्मश्रम वा । एत न पछ योगा , प्रत्येक काथिविधानात , प्रथमो गयो विदारीगम्पादिः मीश्रम । अपण इति स्तोक स्तोकम्, अन्य तु अल्पश इति सृष्णाविशेषण न्यास्याय अल्पशम्मपाया शमनम्, महत्यां वमनमित्याहु । तृष्णोपरीभ न कदापि पुरर्गाणित अपाडणादपः जलदानात् तृष्णाया उपरोध दु य कदापि न गुर्गात्, किया किम्भ पुनित्म मल्पाद्य जल दीयते इत्याह नृष्णित्यादि, यम्मात् तृष्णाया उपरोध भित प्राणत्याग स्यात् अत पुरुष कदापि नृष्णोपरीभ न कुर्यादित्यभ । एदवणम्तु 'पियन सुखोपण मनुजोऽन्तिरण तृषो विमुच्यत हि वातजाया ' इति पठित । कथिनु विवेद सुखोपण मनुजोऽन्तिरण तृषो विमुच्यत हि वातजाया ' इति पठित । कथिनु विवेद सुखोपण मनुजोऽन्तिरण तृषो विमुच्यत हि वातजाया ' इति पठित । कथिनु विवेद सुखोपण मनुजोऽन्त्रिरण तृषो विमुच्यत हि वातजाया ' इति पठित । कथिनु विवेद सुखोपण मनुजोऽन्त्रिरण तृषो विमुच्यत हि वातजाया ' इति पठित । कथिनु विवेद सुखोपण मनुजोऽन्त्ररसु जलेष्टिस्य नुष्य न्येव पानिर्मित ॥ । । । ।

### िष्ठोत्थिना पित्तहरैर्विपक्क निहन्ति तोयं पय एव वापि ॥ ३ ॥

पित्तात्थिताभित्यादि — सुश्रुतस्य । पित्तहर्रिति काकोल्यादिनि । उत्य-एन्तु 'पित्तवर्गेन्तु इत कप्राय मशकंर जीव्रयुत सुशोत । पीतम्नृषा पित्त द्वां निह्नि सीर श्वत वाष्यथ जीव्नीयैः' इति पठति, व्याचष्टे च पित्तप्तवर्गेरिन्युत्प-लादिभि काकोल्यादिभिक्षेति ॥ ३ ॥

## काश्मर्थ्यशर्करायुक्तं चन्दनेशिरपप्रकम्। द्राचामधुकसंयुक्तं पित्ततर्पे जलं पियेत्॥ ४॥

काष्ट्रमर्थ्यादिमधुकान्तं एको योग् । शीतकवायाऽयम् । अन्य नु ५पा कन्या जलेन पेय स्त्याहु ॥ ४ ॥

### पित्तजायान्तु तृष्णायां पकोहम्वरजो रसः। नत्काथो वा हिमस्तद्वच्छारिवादिगणाम्बु वा ॥४॥

पित्तजायामित्यादि —वाग्भटस्य । पकोडुम्यरज इत्यपपाठः सुभुनवनना ए । १६म इति शोतकषाय । तद्वदिति हिम इत्यर्थः । शारिवादिगणश्च वाग्भटोकः ॥१॥

### स्याजीवनीयसिद्ध चीरघृत वा पित्तजे तर्पे ॥६॥

म्याजीवनीयस्यादि—चरकस्य । चीरष्टतिमिनं चीरोत्थ ष्टतम । पित्तजे तर्थ इनि वातजे चेत्यर्थ , न तु भक्षगेजे, तेषामस्त्रितत्वान् . किंवा अमृत्वितानामिष उन्ह जाना गुल्मानामिष्ठाने यो न्याय म प्वात्राप्यनुमरणीय इति ॥ ६ ॥ ।

तद्दद् द्राचाचन्दनखर्जूरोशीरमधुयुतं नोयम् ॥७॥

नद्दित्यादी—नीय शीतकषायमित्याहु चक्रस्तु तद्ददित्यत्र पैत्त इति पठित, स्याचष्टे च पैत इत्यन्न तर्ष इति मम्बन्ध इति ॥७॥

सशारिवादौ तृणपञ्चमूले
तथोत्पलादौ मधुरे गणे वा ।
कुर्यात् कषायांश्च तथैव युक्कान्
मधूकपुष्पादिषु चापरेषु ॥ = ॥

मशारिवेत्यादि—सुश्रुतस्य । सप्तमी षष्ठथरें, तेन शारिवादिगणचतुष्टयस्य यथाय कुर्य्यादित्यर्थ । मधुरो गण काकोल्यादि ; मधुरो गण इत्यत्र प्रथमो गण इति इत्वर्ण पठित्वा विदारीगन्थादिगण इति व्याचष्टे, तन्न प्रामाणिक, वहुभिरस्थास्यात्वात् । अनेन गणचतुष्टयेन चत्वार कथाया कार्य्या इति चत्वार एव योगा । तथैव युक्तानिति शीतकषायविधिना कृतान्, सुश्रुते कषायप्रस्तावे अस्य वचनस्य पठितत्वाद, इत्वर्णस्तु तथैव युक्तानित्यत्र यथेरितान् वेति, प्वोंकिनिधानेन एनेन जल दत्त्वा प्रवाते निशि वासन कुर्यात् । मधूकपुष्पादिषु चापरेष्वित एषाञ्च शीतकषाय कुर्यादित्यर्थ । मधूकपुष्पादीनि तु मधूकशोमाञ्चनकोनिदारप्रियद्गपुष्पाणि चत्वारि रक्तिपत्त्रात्वेन्द पठितानि, किंवा आदिश्रव्य प्रकारन्वानी, तेन मधूकपुष्पदाचाकाश्मर्य्यकर्त्रूराणीति चत्वारि ॥ = ॥

बिल्वाढकीधातिकपञ्चकोलदभेषु सिद्धं कफजां निहन्ति ॥ ६ ॥
हितं भवेच्छद्नेमेव चात्र
तप्तेन निम्बप्रसवोदकेन ॥ १० ॥
सजीरकाएयाईकश्टक्तवेरसौवर्वलान्यर्द्धजलप्लुतानि ।

मद्यानि, हृद्यानि च गन्धवन्ति पीतानि सद्यः शमयन्ति तृष्णाम् ॥ ११ ॥

विल्वाढकीत्यादि — विल्वस्य मूलम्, श्राढकी तुवरी । सिद्धमित्यत पर जल-मिति शेष , जलमिति पढद्गविघानेनेति चक्र , श्रन्ये काथमाहु । श्रत्र सुश्रुतटी-काकृते। धातकीपञ्जकोलस्थाने धान्यकपञ्चमूलमिति पठिन्त, पञ्चमूल स्वल्पमित्याहु , मर्वासु तृष्णासु पित्तमन्मवत्वेन पञ्चकोलमनुचितमित्याहु । दर्भ चछक । निन्तप्रस्वोद्यक्तेनिति निम्तत्वगुद्भवकायेनिति चक्र । निम्दपुराकायेनैत्यक्ण निमन-पह्नवकायेनिति चेट्यट , युक्तवीतत् नन्त्रान्तरसंवादात् । स्रादेकस्टक्वेरमं।वत्त्मार्नः-त्यर्गं भादित्वात्, श्रादंकस्टक्षवेरम् भादंकमेव । जीवकादिकस्य मीरमकद्वत्वमाय-कर्षके देयम् ॥ ६ ॥ ११ ॥

> चते।ियतां रुग्विनिवारणेन जयेद्रसानामस्त्रश्च पानैः॥ १२॥ जयोत्यितां चीरजलं निहन्या-न्मांसोदकं वाय मध्दकं वा। गुर्वेत्रजामुझिसनैजेयेचु चयाहते सर्वकृताञ्च दृष्णाम्॥ १३॥

षतोत्थितानिन्दाहि—सार्दशोक मुश्रुनस्य । मीवनिवारसोनिनि व प्रवेहन'-निर्वापयेन दाग्योच्देशद् तत्नार्यस्या ददना नृष्या नामकीत्वर्थ । मान-मिति मासरकानाम् । अस्यस्य पानिरिति एए।दिरकान्य सवस्तन्य पानैरित्वर्थ प्रशासर्थगोपितवृतौ सत्या देवन् । स्रवोश्वितानिन्दादौ । सीर्टनमिति सार-मिश्रित न्नमिति, चारवनमित्यत्र चारवतिमिति टल्वयः पठिन, व्याचेष्ट न जीरेत्य एत चीरमहित वा एतिनिति । मानेदक्तिति मान्यम प्व, अस्य नु मापोटकमिति पठिन्या मापयूपमिति स्याचचेत । मध्दक नेति मधुमिश्रितसुरक-मिल्पर्थः । चटकञ्चात्र ऐन्ट तद्तुकारि मृनिष्ठनुटक वा च कसवाटात् । न 🖘 विरोष , त्रतुत्योपयोगात् - उक्त हि चुत्रुते मध्वन्तुनी मधुर्नार्पण मानतन्तुन्य नार्शामादिति । नतु चयाया वृहर्णमेवोचित मध्दकृतु रूच्छमिति तत् कथमध प्रसुक्तमिति १ नेव. घयवापि दोषत्रयेख बन्यते, यदुक ' रमवाद या चामन्यवा मा ता मित्रपातादिति केचिदाहु. ' इति । तत्र यदापि कफ्पितं वा ऋषिकं तदा मध्रक देयन् । बल्वरास्तु मध्रकमेवेति पठित्वा व्यावष्टे यष्टिमधुक्तिपिति, तत्र युक्त, नरक्षंवाटाद । रक्षिखनिगित वमनैः । न केवल गुर्वस्रज्ञामेव वर्मनवयेद किन्तर्हि, अन्दामपीत्याह चयाट्टे उन्यादि । चयोत्पन्नापि म्वंदीपाट्या, नत्या वीराषातुत्वाद् वनन न कार्यम् । संवक्तामिति छवेटोपक्तामामजामिति कार्तिक.. अन्ये हु त्रयाहते सर्वहतान्तु तृष्णा उति पटन्ति, समना विहाय अन्या. नर्वा-स्वन्या वाजपित्तक्तामगुर्वश्चे इतान्तप्या वननैजेवेदिति व्याख्यानयीन । श्रन्तिन्

पदे अवंश्रनाया पृथ्वानियानं विशेषार्थन् । १२ ॥ १३ ॥

लाजादकं मधुयुतं शीतं गुडविमर्दितम् । काश्मर्थ्यशर्करायुक्तं पिवेत् तृष्णार्दितो नरः॥ १४॥

लाजोदकिन्यादि—लाजचूर्णमानितसुदक शीतकषायो वा । काश्मर्थं गाम्भारोफलम् ॥ १४॥

श्रतिरू तुर्वलानां तर्षं शमयेन्नृणामिहाशु पयः।
छागो वा घृतभृष्टः शीतो मधुरो रसो हृद्यः॥ १४॥
अतिरू केत्यादि—मधुरगणसाधितेनात्र सन्यस्त्रधुरता ह्रेया॥ १४॥
श्राम्र जम्बुक्षषायं वा पिवेन्मास्तिकसंयुतम्।
छुदि सर्वो प्रसुद्धित तृष्णाश्चिवापकषिति॥ १६॥
श्राम्रजम्बुक्षपाय वेति श्राम्रजम्बोः फलास्य उच्यते; पह्नवक्षायोऽपि युन्यते,
'जन्वाम्रपह्नवश्वत स्त्रौद्ध दस्ता सुशीतलम्' इति पठितत्वात्॥ १६॥

वटश्चद्गसितालोध्रदाडिमं मधुकं मधु।
पिवेत् तराहलतोयेन च्छुर्दिष्टच्णानिवारणम्॥ १७॥
बटेलादा शुक्रादीना चूणम्॥ १७॥

गोस्तनेचुरसः चीरयष्टीमधुमधूत्पत्तैः। नियतं नस्यनः पानैस्तृष्णा शाम्यति दारुणा ॥ १८ ॥ चीरेचुरसमाध्वीकै. चौद्रशीधुगुडोदकैः। चुचाम्लाम्लैश्च गण्डूषास्तानुशोषनिवारणाः॥ १६॥

गोस्तनेत्यादि —गोस्तना द्राचा। एभि प्रत्येक नस्यम् । माहेश्वरे तु द्राचादित्रय द्राचायप्टिमधुनीलोस्पल कल्कीकृत्य प्रविष्य मधु च प्रक्तिप्य सर्वमालोडय प्रयमिति । तथा वक्त्यमाणकीरादिभि प्रत्येक गण्डूषा , बहुवचननिर्देशात् । यद्यपि तालुरोषि छत निषद्ध, यदुक्त 'तृष्णाच्छि ईपरीताश्च गर्भिण्यस्तालुरोषिण । न पिनेयुर्धतम्' इति तथापि चरकमवादादश्च यलवतो कृष्यान्नयुक्त छतपान नोध्यम् , श्रतो विशिष्टविधित्वाच्च विरोध , यथा वलवाश्च तालुरोषिऽपि पिनेद् छत कृष्यमन्नमभ्यस्येच्चिति, किंवा वातोल्वणावस्थायामेत्तद् छतपान नोध्यम् । तालुरोषश्च तृष्णाप्रकार एव, तेनेह सङ्गतमस्याभिधानम् ॥ १८॥ १६॥

तालुशोषे पिवेत् सर्पिर्धृतमग्डमथापि वा॥ २०॥

### मूर्च्छार्र्चतृपादाहस्त्रीमचम्रुशकर्शिताः। पिषेयु शीतलं वारि रक्तपित्ते मदास्यये॥ २१॥

श्तमराडिमिति शतस्योपिरमाग , श्रतपत शतस्यापिर स्त्यानो भाग इति काम-चिकित्सिते चेकेरणाप्युक्त । श्रीकराठस्तु शतस्योपिरच्छन्नभाग शतमगटामित्याहु । मुच्छेत्यादि—स्पष्टम् ॥ २०॥ २१॥

धान्याम्लमास्यवैरस्यमलदौर्गन्ध्यनाशनम् । तदेवालवर्षं पीतं मुखशोपहरं परम् ॥ २२ ॥ धान्याम्लमिलादि—धान्याम्ल काजिकम् ॥ २२ ॥

वैशद्यं जनयत्यास्य सन्द्रधाति मुखं व्यान् । दाहतृष्णाप्रशमनं मधुगगृङ्क्षधारणम् ॥ २३ ॥

सन्दर्भाति मुखे त्रणानिति रोपयतीत्वर्थ ॥ २३ ॥

कोलदाडिमवृत्ताम्लचुकीकाचुकिकारसः।

पश्चाम्लको मुखालेप सद्यस्टप्णां नियन्छति ॥ २४ ॥

कोलेलादौ — चुक्रीका चाहेरी, चुक्रिकेति चुकाई इति ख्याता । सुरम्रलेप इति सुखतुहरे लेप , कपोलादों लेप इति तु निश्चल ॥ २४॥

वारि शीतं मधुयुतमाकएठाद्वा पिपासितम् । प्राययेद्वामयेद्वापि तेन तृष्णा प्रशास्यति ॥ २४ ॥

नारि शीतिमित्यादि—पित्ततृष्णायामय योग । श्राकण्ठतोयपानादनु किञ्चित् मधुपानमित्युपदिशन्ति वृद्धा ॥ २५ ॥

वटशुक्तामयद्गौद्रलाजनीलोत्पलैर्इढा।
गुटिका वदनन्यस्ता चिप्रं तृष्णां नियच्छति॥ २६॥
श्रोदनं रक्तशालीनां शीतं माद्यिकसंयुतम्।
भोजयेत् तेन शाम्येजु छर्दिस्तृष्णा चिरोत्थिता॥ २७॥
वय्शुक्रेलादि—वय्शुको वट्यरोह्, श्रामव ज्ञष्टम्। मधु तु यावता

वट्युक्तस्य वट्युक्ता वटप्रराहः, श्रामय कुष्टम्। मधु तु यावता कार्ठना गुहिका भवति तावन्मात्र देयम्। श्रीदन रक्तरालीना शीतमिति मधस्क-पानीयमकम् ॥ २६॥ २७॥

पूर्वामयातुरः सन् दीनस्तृष्णार्दितो जलं याचन्।

न लभेत चेदाश्वेव मरणमामोति दीर्घरोर्ग वा ॥
तिषतो मोहमायाति मोहात् प्राणान् विभुञ्जति ।
तस्मात् सर्वोस्ववस्थासु न कविद्वारि वार्य्यते ॥ २८॥ ।
इति तृष्णाचिकित्सा ।

प्रमस्य तृष्णाया जलस्याप्रदाने दोषमाह पूर्वामयत्यादि—-पूर्वामयातुर. सन् ज्वरस्किषित्तादिरोगिकिष्ट सन्। दीन इति तृष्णापीडितत्वेनैव झान्तमना । कथ वित्रयत इत्याह तृषित इत्यादि ॥ २८ ॥

इति तृष्णाचिकित्सा-विवृति ।

# अथ मुच्छांचिकित्सा।

सेकावगाही मण्यः सहाराः

शीताः प्रदेहा व्यजनानिलश्च। शीतानि पानानि च गन्धवन्ति 'सर्वासु मूर्व्छास्वनिवारितानि॥१॥

तृष्णाया मोहो भवतीत्यनन्तर मोहचिकित्सामाह, मेकेत्यादि—सुश्रुतस्य । मण्यो मुकास्फटिकप्रभृतय ते च सहारा हारारे।पिता इत्यर्थ । पानानि च गन्धवन्तीति कर्पूरादियोगात् सुरभीणि पानीयानीत्यर्थ । मर्वासु मूर्च्छास्वनिवारि-नानीत्यनेन वातकप्रकृताया मूर्च्छायामि हेतुप्रत्यनीकचिकित्साक्षरणे वारणाहिता, एत शीतिविधयो व्याधिप्रत्यनीकतया पित्तानुवन्धाच न वारणीया इति दर्शयति ॥ १॥

सिद्धानि वर्गे मधुरे पर्यासि सदाडिमा जाङ्गलजा रसाश्च । तथा यवा लोहितशालयश्च

मूर्ज्जासु शस्ताश्च सतीनमुद्राः ॥ २ ॥

वर्गे मधुर इति काकोल्यादि । सदाडिमा इति—दाडिमाम्लमहिता इत्यर्थः। मतीनो वर्त्तुलकलाय ॥ २ ॥ यथादोषं कपायाणि ज्वरघ्रानि प्रयोजयेत्। रक्तजायान्तु मूर्च्छाया हिनः शीतिकयाविधि ॥३॥

यथादीप कपायाणि जनरद्यानि प्रयोजेथदिति वातादिमूच्छीसु यथाकम वातादि-कपायाणि यानि तानि प्रयोजेथदित्यर्थे । रक्तजायामिति रक्तदर्शनजायाम् ॥ ३॥

मद्यजायां वमेन्मद्यं निद्रां सेवेद्यथासुखम् । विपजायां विषञ्चानि भेषजानि प्रयोजयेत् ॥ ४ ॥ मद्यजायामिति मद्यसेवनजायाम् ॥ ४ ॥

कोलमज्जोषयोशिरकेशरं शीतवारिया । पीतं मूर्च्छा जयेत् लीद्वा कृष्णां वा मधुसंयुताम्॥४॥ कोलमजारी—जपण मरिवम् ॥ ४॥

महौषधामृताज्जद्रापौष्करप्रन्थिकोद्भवम् ।
पिवेत् कणायुतं काथं मूर्च्छ्रियेषु मटेषु च ॥ ६ ॥
शतावरीवलामूलद्राज्ञासिद्धं पयः पिवेत् ।
ससितं भ्रमनाशाय वीजं वाट्यालकस्य वा ॥ ७ ॥
पिवेद् दुरालभाकाथं सघृतं भ्रमशान्तये ।
त्रिफलाया प्रयोगो वा प्रयोग प्यसोऽपि वा ॥ = ॥
महौषधेत्यादां—जुद्रा करटकारो, प्रस्थिक पिष्पलीमूलम् । अम स्मृतिअशो मोहश्चकवद्भ्रान्तिश्च । प्रयोगोऽम्याम ॥ ६—== ॥

रसायनानां कौम्भस्य सर्पिषो वा प्रशस्यते ॥ ६ ॥
मधुना हन्त्युपयुक्ता त्रिफला रात्रौ गुडाईकं प्रानः ।
सप्ताहात् पथ्यभुजो मद्मूच्छोकासकामलोन्मादान् ॥१०॥
कौम्म मर्पिदंशवर्षात्मकम्, अन्य तु 'स्थिन वर्पशत श्रेष्ठ कीम्म मर्पिस्नदुच्यते '॥ ६ ॥ १० ॥

श्रक्षनान्यवपीडाश्च धूमाः प्रधमनानि च । स्वीभिस्तोद्नं शस्तं दाहः पीडा नखान्तरे ॥ ११ ॥ अक्षनानीति तीक्षान्यक्षनानि श्रपस्मारोक्षानि । श्रवपीडा नासिकाया निग्रंपट्यादिरसा श्रवपीड्य वे दीयन्ते । धूमा वैरेचनधूमा । प्रधमनं चूर्णनस्यम् । नवानित्यादी पाटा नजानार इति नजमांसयोर्भध्ये पाटनम् ॥ ११ ॥
जुञ्चनं केशरोम्णाञ्च दन्तैर्दशनमेव च ।
श्रात्मगुप्तावधर्पश्च हितास्तस्याववोधने ॥ १२ ॥
इति मूच्छांचिकित्सा ।

भात्मग्रुता श्क्रशिम्बी ॥ १२ ॥ इति मूच्छोचिकित्सा-विवृति ।

# अथ मदात्ययचिकित्सा।

मूर्च्छात्रन्मदात्ययम्यापि मद्यजन्यत्वात् मूर्च्छानन्तर मदात्ययचिकित्मामाह । मद प्वात्ययकारको मदात्यय , किंवा मदशब्देनेहे मदहेतुतया मद्यमुच्यते, तेन ज्ञनोऽत्ययो मदात्यय । मन्ध इत्यादि । द्रेनेणालोखितशक्तवो मन्धा , द्रवश्चेह वर्न्गादीना ग्राह्म । श्रम्लीका तिन्तिखीफलम् । छन्दोऽनुरोधाद् हस्व । मतीनिति मतानो वर्त्तुलकलाय । मतीनमुद्रमिश्र वेति पाठ छागरमस्य विशेषण्, चरेक हि एनइचनात् पूर्व छागरसमित्युक्षम् ॥ १ ॥

सतीनमुद्गमिश्रान् वा दाडिमामलकान्वितान्। द्राज्ञामलकखर्जूरपरूपकरसेन वा। कल्पयेत् तर्पणान् यूपान् रसांश्च विविधात्मकान्॥२॥

मयमित्यादि-सीवर्चलन्योपन्तु लवणकटुत्वमात्रकारक देयम् । किञ्चित्तल-मष्टभागिकमित्याहु ॥ २ ॥

> मद्यं सौवर्चलव्योपयुक्तं किञ्चिज्जलान्वितम् । जीर्यमद्याय दातव्यं वातपानात्ययापहम् ॥ ३ ॥ मुद्गयूप सितायुक्तः स्वादुर्वा पैशितो रसः।

णित्तणनात्यये योज्यः सर्वतश्च किया हिमाः ॥ ४ **॥** पानात्यये कफोद्भूते लहुनञ्च यथावलम् । दीपनीयौपधोपेतं पिवेन्मद्यं समाहित ॥ ४ ॥ सर्वजे सर्वमेवेदं प्रयोक्तव्यं चिकित्सितम्। श्राभि क्रियाभिर्मिश्राभि शान्ति याति मदात्यय ॥ न चेन्मद्यक्रमं मुक्त्वा ज्ञीरमस्य प्रयोजयेत् ॥ ६॥

मुद्रयूप बत्यादि-स्वादुरित्यनेन सस्कारार्थं कट्टद्रच्यापयागोऽत्र न कार्य इति दर्शयति ॥ ३---६॥

लङ्घनाचैः कफे चींगे जातदौर्वस्यलाघवे। श्रोजस्तुल्यगुर्णं चीरं विपरीतञ्च मद्यतः॥ ७॥ यस्यामनस्थाया चीरप्रयोग कर्त्तव्यस्तामाह लङ्कनाधैरिति-शावशब्दात् शोधनादीना ग्रहणम् ॥ ७ ॥

त्तीरप्रयोगं मद्यं वा क्रमे**णाल्पाल्पमाचरेत्** ॥ = ॥ चीरप्रयोगमित्यादि---एतद्रचनात् पूर्व पयसा च हते रोगे वले जाते निव-चेंबेदिति वचनयन्ति, तेनात्र चीरप्रयोगमित्यत्र, पूर्वोक्तेन निवर्त्तयेदित्यनेन सम्य-न्धात् चीरप्रयोग क्रमेण निवर्त्तयेत्, मधन्न क्रमेणाल्पाल्पमानरेदित्यर्थ ॥ = ॥

# पुनर्नवाद्यं घृतम्

पय पुनर्भवाकाथयष्टीकल्कप्रसाधितम्। घृतं पुष्टिकरं पानान्मद्यपानहतौजसः॥ ६॥ पय पुनर्नवाकाथित्यादी-चीर धतममम् , काथितगुणश्चतुर्गणी वेत्याहु 11 3 11

#### त्रप्टाङ्गलवग्रम्

सौवर्धलमजाज्यश्च वृत्ताम्लं साम्लवेतसम्। त्वेगलामरिचार्द्धाशं शर्कराभागयोजितम्॥ हितं लवणमष्टाङ्गमग्निसन्दीपनं परम्। मदात्यये कफप्राये दद्यात् स्रोतोविशोधनम् ॥ १० ॥ मीवर्चेलेत्याटि--अत्र मीवर्चलादींना समभागता, लगेलामरिचानाः मेकमागापेचया प्रत्येकमर्द्धमागिकत्वम्, शर्करामागोऽपि सीवर्चलोधकनमद्रव्य-सम ॥ १०॥

> चव्यं सौवर्चलं हिंद्गु पूरकं विश्वदीत्यकम्। चूर्णं मद्येन पातव्यं पानात्ययरुजापहम्॥११॥

चन्यभित्यादौ---पृरक वीजपूरस्य फलत्वगिति निश्चल. । दीप्यक यमानी ॥ ११ ॥

जलाप्लुतश्चन्दनरूषिताङ्गः

स्रग्वी समक्षां पिशितोपदंशाम् । पिवन् सुरां नैव लभेत रोगान् मनोमतिझञ्च मदं न याति ॥ १२ ॥

मध येन प्रकारेण विकार न जनयेत् तदाह जलेत्यादि—सुश्रुतस्य । चन्दनेन रूपित लिप्तमङ्ग यस्य । पिशित मास उपदश भक्त्यो यस्या सा तथा । मनोमिति विशेषणात् द्वितीयादिमद न प्राप्तोति, प्रथमन्तु मनोऽनुपघातक लमत एवेत्थथ ॥ १२॥

द्राचाकपित्थफलदाडिमपानकं यत् तत् पानविभ्रमहरं मधुशर्कराख्यम् ॥ १३॥

द्राचेलाटि---सुश्रुतस्य । द्राचाटिमि पानक स्दराखानुमारेख कार्यम् ॥१३॥

पथ्याक्वाथेन संसिद्धं घृतं घातीरसेन वा।
सिर्पः कल्यागुकं वापि मद्मूच्छोहरं पिवेत् ॥ १४ ॥
सच्छिद्मूच्छोतिसारं मदं पूगफलोद्भवम्।
सद्य प्रशमयेत् पीतमातृप्तेवीरि शीतलम् ॥ १४ ॥
वन्यकरीपद्रागाजलपानाञ्चवग्यस्गाद्धापि।
शाम्यति पूगफलमदश्चर्णरुजा शर्कराकवलात् ॥ १६ ॥
शङ्खचूर्णरुजोद्यागात् खल्पं मदमपोहति ॥ १७ ॥
कूप्मागडकरसः सगुड शमयति मदमाश्च मदनकोद्भवजम्॥१८॥

### धौस्तूरजञ्च दुग्धं सशर्करं पानयोगेन ॥ १६ ॥ इति मदात्ययचिकित्सा ।

पथ्येत्यादि — ष्टतद्वयमकल्कम् । श्रश्नेव मदत्वसामान्यात् पृथक् पृथक् चिकित्मा-माद्द सच्छर्दात्यादि । वन्येत्यादि — वन जल तद्भवो वन्य राष्ट्र इत्यर्थे इति केचित्, करीप इति शुष्कगोमय , श्रन्य तु वन्यकरीप वनमवकरीपमाद्ध । यते च वन्यकरीपादय पृथक् प्रयोक्तन्या । चूर्णक्जेति श्रतिमात्रचूर्णमच्यो थो रमनादि-दाह. । एतच्च सम्पूर्णक्षेत्रकानुरोधाह्मिखितम् । स्वल्प मद पूर्गमच्याजमेव । कृष्मा-यहकेत्यादि — मदन तृष्यान्यविशेष. मयनघास इति ख्यात । धौस्तुरज धुस्तूरफल-मच्याजम् ॥ १४-१६ ॥

इति मदात्ययचिकित्सा-विवृति ॥

# **अथ दाहचिकित्सा**।

यत् पित्तज्वरदाहोक्तं दाहे तत् सर्वमिण्यते ॥ १ ॥ शतधौतघृताभ्यक्तं दिखाद्वा यवशक्तुभि । कोलामलकयुक्तेर्वा धान्याम्लैरिप वुद्धिमान् ॥ २ ॥ छादयेत् तस्य सर्वाङ्गमारनालाईवाससा । लामज्जेनाथ श्रुक्तन चन्देननानुलेपयेत् ॥ ३ ॥ चन्दनाम्बुकणास्यन्दितालघृन्तोपवीजित ॥ ४ ॥ सुप्याद्वाहार्दितोऽम्मोजकदलीदलसंस्तरे ॥ ४ ॥ परिषेकावगाहेषु व्यजनानाञ्च सेवने । शस्यते शिशिरं तोयं रुष्णादाहप्रशान्तये ॥ ६ ॥

मदात्ययवदाहस्यापि मथपानजन्यत्वात् मदात्ययाधिकार एव दाहचिकित्सा । बदित्यादि—कोलत्यादि द्वितीयो योगः, श्रत्रापि दिश्वादिति योज्यम् । लामज्नमु-शार, शुक्त सन्धानविशेष , तालवृन्त तालपत्रनिर्मितन्यजनम् ॥ १–६॥

चीरैः चीरिकषायैश्च सुशीतैश्चन्दमान्वितः। श्रन्तर्दाहं प्रशमयेदेतैरन्यैश्च शीतलैः॥ ७॥ 4

कोरिकपायो, वटोडुम्बरादिकाथ । चीरादिकक्रैतत् पानपरिषेकादी योज्यम् ॥ ७॥

## कुशाद्यं तैलं घृतश्च

### कुशादिशालपर्णीभिर्जीवकार्यन साधितम् । तैलं घृतं वा दाहृष्ट्रं वातपित्तविनाशनम् ॥ ८॥

कुगादीत्यादि - कुशादिपञ्चमूल त्यापश्चमूल, तश्च सुश्रुतोक्त कुशकासनलदर्भ-कार्छ जुमूलरूपन् । श्रत्र शालपर्यादिपञ्चमूलस्य विदारीगन्थादिगयस्य श्रह्यामिति वृन्द-विदारीगन्थादिगयस्य श्रह्यामिति वृन्द-विदारीगन्थादिगयस्य श्रह्यामिति वृन्द-भावात् शालपर्यामात्रस्य श्रह्यामित्याह । जीवकायनेति जीवकायप्रवर्गेया, जीव-कायप्रवर्गश्च जीवकर्षमकमेदामहामेदाकाकोलीचिरकाकोलीच्यदिवृद्ध्या, एव सर्वत्र सुश्रुतयोगे जीवनीयाप्रकन् । चरकयोगे पुनरेव श्रादिश्विद्धारिक्षमापर्यासुद्गपर्याः जीवनती-मधुकमहित जीवनीयदशकं श्रेयम् । अत्र कुगादिशालपर्याभिः काथ , जीवकायेन कल्कः । श्रन्य तु कल्ककाथावनिदेशे गयात् नसात् समावपेत् । इति वचनात् मेंबरेव कल्ककाथाविसाहः ॥ = ॥

#### फिलनी लोधसेव्याम्बु हेमपतं क्रुटन्नटम् । कालीयकरसोपेतं वाहे शस्तं प्रलेपनम् ॥ ६॥

फिलिनीत्यादी—फिलिनी प्रियह । मेन्यमुशीरम्, अन्तु बालकः हेम नाग-केलार, पत्र तेज पत्र, कुटलट कैन्तमुस्तकः, कालीयक कालीया इति ख्यान, पीत-काष्ठ, गन्धद्रच्यविशेष , अतचन्द्रनमिति कश्चित्, कालीयककाथश्च पेपणार्थमिति वृद्गित ॥ ६ ॥

### हीवेरपद्मकोशीरचन्टनस्रोद्धारिणा। सम्पूर्णमवगाहेत द्रोणी दाहार्दितो नरः॥१०॥ इति दाहिचाकित्सा।

हानिरेत्यादी—चोद चूर्णम् । एषा चूर्णानि शीतलजलेन मिश्रयिखा अवगा-इन कार्म्यम् ॥ १०॥

इति दाइचिकित्मा-विवृति ।



# अथोन्मादचिकित्सा।

उन्मादे वातिके पूर्व स्नेहपानं विरेचनम्। पित्तज्ञे कफजे वान्तिः परो वस्त्यादिक क्रमः॥१॥ यचोपदेक्यते कि ज्ञिदपस्मारिचिकित्सते। उन्मादे तच कर्त्तव्यं सामान्याद्वेतुद्व्ययो ॥२॥

यद्यपि मदालयस्य चन्माद्रसहरात्वेन तथा पूर्वोक्षरीत्या च मदालयाननानुन्माद्रवाहादेव वकुमुचितो, तथापि स्चिकटाहन्यायेन टाहमभिषाय चन्माद्रचिकिलिनतुच्यते चन्माद दलादि—परो बल्ल्यादिकक्षम इति पश्चात् केहबितिनिक्षणशिरोविरेचनात्मकः कम कार्यः। चरकेऽप्युक्तः निल्ह्यण केहबितः शिरमश्च
विरेचनम्। तन कुर्यात् यथादेाप तेगा मृयन्त्वमाचरेत्' इति। मामान्यादेतुङ्ग्यप्रेगिरितं, उन्मादापसारयोहेतुर्मन चपवानादि दृष्यञ्च हृदय ममानमिन्यर्थः। नामान्याद्रापदृष्ययोगिति केचित् पठिनि ॥ १॥ २॥

त्राह्मीकृष्माग्डीफलषड्ग्रन्थाग्रह्मपुष्पिकाखरसा । उन्मादहतो दृष्टा पृथगेते कुष्टमघुमिश्राः ॥ ३ ॥ दशमूलाम्बु सघृनं गुक्तं मांसरसेन वा । ससिद्धार्थकचूर्णं वा पुराणं वैककं घृतम् ॥ ८ ॥ माह्मीसादयश्वतारो योगा.।कृष्माग्डीफनमत्र पुराग्य मार्घामन्याहु ॥३-८।

उप्रगन्धं पुराणं स्थाइशवर्षस्थितं घृतम् । लाज्ञारसनिभं शीतं प्रपुराणमन परम् ॥ ४ ॥

पुगण्यतत्त्वत्त्वत्त्राह स्थान्यभिलाडि--चरक्त्य । चर्क्टाकाष्ट्रतस्तु हेचिन् इम क्षेक्रमनार्थं बडन्ति, केचिटक्त्वर्षातीन घर्ने पुगण्यिति ब्रृतेत तन्त्रान्तरमनाटात् ॥ ४॥

> श्वेतोन्मचोत्तरदिङ्मूलसिद्धस्तु पायसः । गुडाज्यसंयुतो हन्ति सर्वोन्मादांस्तु दोपज्ञान् ॥ ६ ॥

स्वेत्यादि—श्वेतान्यच न्त्रतयुक्तत्त्वन्य चचरदिनि स्थिन मूल श्राह्मम । महेस्यान्तु उचरितिनियतं धवलयुरनूरमूल पिण्ड्वा पल १, जुद्रतपत्नुल पल ४, दुग्ध गराव ४, पायम माध्य, तदनुरूपे गुडधते टक्ता खाद्यमिलाह ॥ ६ ॥ उन्मादे समधुः पेय शुद्धो वा तालशाखज । रस्रो नस्येऽभ्यक्षने च सार्षपं तैलमिष्यते ॥ ७ ॥

उन्माद इत्यादि—शुद्ध इति केवल.। तालशाखन इति छान्दसत्नात् इत्व । रम इति छेद , तेन कीमलतालशाखाभवी रम मधुप्रचेपेण, शुद्धी वा मधुना विनापि ॥ ७॥

> श्रपक्रचटकीचीरपीतोन्मादविनाशिनी। वदं सार्पपतैलाक्समुत्तानञ्चातपे न्यसेत्॥ =॥

श्रपकचटकीति श्रामचटकी कल्कीकृत्य। बद्धमित्यादि । एतच स्रोतोविशुर्ध्य-थमुद्रेजनार्थे छ ॥ = ॥

सिद्धार्थको हिंद्रु वचा कर औ देवदारु च।
मिश्रिष्ठा त्रिफला श्वेता कट मीत्वक् कटु विकम् ॥
समांशानि प्रियद्गुश्च शिरीषो रजनी द्वयम्।
वस्तमूत्रेण पिष्टा अयमगद् पानमञ्जनम् ॥
नस्यमालेपनश्चेव स्नानमुद्धत्तेनं तथा।
श्रापस्मारिवषोन्माद कृत्यालदमी ज्वराषद्दः॥
भूतेभ्यश्च भयं हन्ति राज हारे च शस्यते।
सर्पिरेतेन सिद्धं वा सगो मूलं तदर्थकृत्॥ ६॥

निद्धार्थक इत्यादि - प्रव करअद्वयस्य त्वगित्याहु , स्रेता स्रेतापराजिता, क्रटमां लताफटकीति ख्याता, श्रन्ये तु करइ इत्याहु , शिरीपस्य फलम् । श्रगद इति मयोगविषहर , क्रत्या श्रमिचार, राजद्वारे त्र शस्यते वशीकरण्यत्वात् । एतेनेति निद्धार्थकादीना कल्केन ॥ ६ ॥

> त्र्यूषणाद्या वार्तः त्र्यूषणं हिद्गुलवणं वचा कटुकरोहिणी । शिरीषनक्रमालानां वीजं श्वेताश्च सर्षपाः ॥ गोमूत्विष्टेरेतैवी वर्तिनेंद्राक्षने हिता ।

चातुर्थकमण्समारमुन्मादश्च नियच्छिनि ॥ १० ॥
श्रृप्रणमित्याहि स्वष्टम् ॥ १० ॥
श्रृद्धस्याचारिव स्रंशे तीच्णं नावनमञ्जनम् ।
ताडनश्च मनोवुद्धिस्मृतिसवेजनं द्वितम् ॥
तर्जनं त्रासनं दानं सान्त्वनं हर्पणं भयम् ।
विस्मयो विस्मृतंर्देतोर्नयन्ति प्रकृतिं मनः ॥ ११ ॥
कामशोकभयकोधहर्षेष्यां लोभभसम्भवान् ।
परस्परं प्रतिद्वन्द्वेरेभिरेव शमं नयेत् ॥ १२ ॥
इष्टद्रव्यविनाशात्तु मनो यस्योपहन्यते ।
तस्य तत्सदृश्यातं सान्त्वाश्वासश्च तान् जयेत् ॥१३॥
प्रदेहोत्साद्नाभ्यद्गधृमाः पानश्च सर्पिपः ।
प्रयोक्षव्यं मनोवुद्धिस्मृतिसंक्षाप्रवाधनम् ॥
कल्याणकं महद्वापि द्याद्वा चैतस घृतम् ॥
तैलं नारायणञ्चापि महानारायणं तथा ॥ १४ ॥

शुद्धस्यत्यादि — चरकस्य । शुद्धस्यति यमितस्य आचारिविश्वशे अत्युन्माने । संवेजनसुद्देजनः, नर्जन वचसा, विम्मृतेईते।रिति उन्मादहेतुभयहपादिविस्मारकन्या प्रमावदिव मन प्रकृति स्वभाव नयन्ति । परस्परप्रतिद्वन्द्वेरिति अन्योन्यप्रत्यनीर्कः । तस्य तत्मदृशप्राप्तीरिति मावे कः , तत्मदृशप्राप्यीरित्यर्थः । सान्त्वाश्वामिरिति सान्त्व सामप्रयोग वशाभृतकर्षार्थे उपायविशेषः , आश्वाम मन्तोषवचनमः । उत्मादन चृष्णप्रंणम् । नारायर्थतेल महानारायर्थतेलक्ष वात्व्यार्थः वस्यति ॥ ११-१४॥

पानीयकल्याणकं घृतम् विशाला त्रिफला कौन्ती देवदार्वेलवालुकम्। स्थिरा नतं रजन्यौ द्वे शारिवे द्वे प्रियद्गुका॥ नीलोत्पललामि प्रावन्तीवाडिमकेशरम्। तालीशपत्रं बृहती मालत्याः कुसुमं नवम्॥ विडक्षं पृक्षिपणीं च कुष्ठं चन्दनपद्मकौ। श्रष्टाविंशतिभि कल्कैरेतंरचसमन्त्रिते। चतुर्गुणं जलं दत्वा घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥

त्रपस्मारे ज्वरे कासे शोषे मन्दानल ज्ञये ।

वातरक्ते प्रतिश्याये तृतीयकचतुर्थके ॥

वम्यशोंमूत्रकुच्छेषु विसर्पोपहतेषु च ।

क्रम्ह्रपाण्ड्वामयोन्मादे विषमेहगरेषु च ॥

मूतोपहतचित्तानां गद्भदानामरेतसाम् ॥

शस्तं स्त्रीणाञ्च वन्ध्यानामायुर्वण्वलप्रदम् ॥

श्रलदमीपापरचोद्गं सर्वप्रहविनाशनम् ।

किल्याणकमिदं सर्पिः श्रेष्ठं पुंसवनेषु च ॥ १४ ॥

विशालत्यादि—विशाला गोरचकर्कटी, कौन्तीरेणुका, पलवालुक स्वनामस्यात मुगन्धिद्रच्य, स्थिरा शालपणी, नत तगरपादुका, तदभाव शियली छोपर ,
केशरं नागेकेशर, मालती जाती, तस्या कुसुम, नविमित कुसुमविशेषस्यम् ।
प्रधाविशतित्व कल्काना पाठादेव सिद्ध, किमधंसुच्यते अष्टाविशतिभिरिति १ अत्र
यद्यीप त्रिफलाया प्रत्येकमेव मागो गृद्यते उत्सर्गसिद्धत्वात, तथापि त्रिफलाया
प्रत्येकभागग्रहणदाद्वर्यार्थम् अष्टाविशतिभिरित्युक्तम् । यद्यीप त्रिफलाशाब्देन द्राचाकाश्मर्य्यपरूपका उच्यन्ते तथापि हरीतक्यादित्रिफलाया एवात्र ग्रहण प्राधान्यादेव,
एत्रमन्यत्रापि । पुसवनेष्विति पुत्रकारकयोगेषु ॥ १३॥

चीरकल्याणकं घृतम्

द्विजलं सचतु चीरं चीरकल्याणकन्त्वदम् ॥ १६ ॥ तदेव धत यदा जलस्याष्टा शरावान्, चीरम्य पाटश शरावान् दस्ता पच्यते नटा चीरकल्याणक भवति ॥ १६ ॥

महाकल्याणकं घृतम्
एभ्य एव स्थिरादीनि जले पक्त्वैकविंशतिम्।
रसे तस्मिन् पचेत् सर्पिगृष्टिचीरं चतुर्गुणम् ॥
वीराद्विमाषकाकोलीस्वयंगुप्तर्षभिक्षिमिः।
मदया च समै कल्कैस्तत् स्यात् कल्याणकं महत् ॥
वृंहगीयं विशेषेण सिन्निपातहरं परम् ॥ १७ ॥

पन्न प्वेति क्ल्याण्कोक्षविशालादिस्य । स्थिरादीनी सुकेविंदारींगन्धादे । पन्नमूलस्यापि प्रहण स्यादत आह एकविंशतिमिति, तद्गुणमविद्यानबहुनी हिशहान् निरासार्थं वा एकविंशतिमित्युक्तम् । गृष्टिरेकवारप्रस्ता थेतु । अत्र चतुर्गुण्वारस्य निर्दिष्टत्वादुत्मगैसिद्धो द्रव एव देय , तेनानिर्दिष्टमानकाथोऽत्र सेहसम एवेति पन्नगुण पाक , वुक्तन्नेतत्, पन्नप्रमृति यत्र स्युरित्यादिपरिमापार्थनास्यार्थस्य ममानन्यायत्वादिति केचित् । अन्ये तु नीरेणैवात्र चर्तुर्गुण प्राप्तेऽय कपाय ' एकेनिपि चातुर्गुण्यम् दत्यादिपरिमापाया अविषयत्वन 'तिहात् तोय चतुर्गुण्यम् रत्यादिपरिमापाया अविषयत्वन 'तिहात् तोय चतुर्गुण्यम् दिति दवचातुर्गुण्यम् दत्यादिपरिमापाया अविषयत्वन 'तिहात् तोय चतुर्गुण्यम् विषयत्वन । विरा पश्चिपणीं, चीरविदारीत्यन्य । दिमाषत्यनेन राजमाप—केत्रमापयोप्रहण्यमिति केचित् अन्ये तु मुहपर्णीमाषपर्योग्रहणमित्याहु । अपरे तु हिशच्डस्य काको-लोत्यनेन सन्वन्थात् चीराक्तमोल्यां अपि प्रहणमित्याहु । नत्न, वाग्मटमवाद्यन्त्रमापात्रम्य तु वीरार्द्रमापेति पाठान्तरमः, आर्द्रमापोऽशुष्कमाप इति व्याचनि । बीरादीन्यपरिमितगृहीतानीत्येके, वीरार्दीना प्रत्येक्रमेकपलिति महस्यग् ॥१९॥।

# चैतसं घृतम्

पञ्चमूल्यावकाशमय्यों रास्नैरएंडत्रिवृद्धला ।
मूर्वा शतावरी चेति काथैिंडिपलिकैरिमे ॥
कल्याणकस्य चाङ्गेन तद्घृतं चैतसं स्मृतम् ॥
सर्वचेतोविकाराणां शमनं परमं मतम् ।
घृतप्रस्थाऽत्र पक्षव्यः काथो डोणाभ्मसा घृतात् ।
चतुर्गुणोऽत्र सम्पाद्यः कलक कल्याणकेरित ॥ १८॥

पञ्चमूल्याविति दशमूली गान्भारीरहिता । द्विपालिकेरिति एपा प्रत्येक द्विप-लम् । कल्यायकस्य चाक्नेनित पानीयकल्यायकोक्षकल्केन यथोक्षमानिनेत्यर्थ , अन्य तु अन्नोक्षमान परित्यल्य धनात् पादिक मान गृह्णित । यद्यपि ' द्रव्यमापा-त्यित कार्यं दस्ता षोटशिक जलम् । पादावशिष्ट कर्चन्यमेप कार्यविधि स्मृत ' इति कृष्णात्रेयपरिभाषया त्रिंशत्पले कार्थ्ये पष्टि शरावा भवन्ति जलस्य, नथापि काथस्य धनाचातुर्गुग्यार्थं द्वेश्यान्मसेति चक्रेग्योक्षम् ॥ १ = ॥

## महापेशाचिकं घृतम् अटिला प्तना केशी चारटी मर्कटी वचा।

त्रायमाणा जया वीरा चोरकः कटुरोहिणी॥
वय स्था श्रक्तरी छत्रा सातिच्छत्रा पलद्भण।
महापुरुषदन्ता च वय स्था नाकुलीद्वयम्॥
कटम्भरा वृश्चिकाली स्थिरा चैव च तैष्ट्रितम्।
सिद्धं चातुर्थकोन्माद्रग्रहापस्मारनाशनम्॥
महापैशाचिकं नाम घृतमेतद् यथासृतम्।
मेधावुद्धिस्सृतिकरं वालानाञ्चाङ्गवर्द्धनम्॥ १६॥

नहाँपैशाचिके जिटला मामी, पूतना हरीतकी, केशी भूतकेशी, चारटी कुम्मारु, पद्ममुखालिमित्यन्ये, ब्रह्मयष्टीत्यपरे, मर्कटी श्रक्तिशिम्बी, जया जयन्ती, वीरा चीरकातेली, पृश्चिपखीत्यपरे; चीरकक्षीरपुष्णी, वय स्था ब्राह्मी, गुड्ची-त्यन्ये अपरे तु निग्रंखडीत्याहु; श्रक्तरी वाराहिका, नदमावे चर्मकारालुकः, छत्रा मधुरिका, आतच्छत्रा शतपुष्पा; पलङ्कषा गुरगुल्ल, महापुरुपपदन्ता शतावरी; त्रय स्था शुकानना, ब्रह्मीत्यन्ये, नाकुलीद्वय राखाद्वय राखा गन्धराका च, कट-न्भरा कटमी प्रसारखी वा, वृश्चिकाणी वृश्चिकपत्री, विद्याटीति स्थाता, स्थिरा शालपर्णी। स्वल्पपैशाचिकत्याभावात् महच्छव्दोऽय महागुणकारकत्वादित्याहु, अन्ये तु जिटला स्थिराम्ब भूकेशीत्यादिना स्वल्पपैशाचिकत्यापि नन्त्रान्तरे पिढति-त्वात् नटपेचयास्य महत्त्वमाहु ॥ १६॥

### हिङ्ग्वाद्यं घृतम्

हिंगु सोवर्चलव्योपैर्द्धिपलांशैर्घृताढकम् । चतुर्गुणे गवां मूत्रे सिद्धमुन्मादनाशनम् ॥ २०॥ हिन्विलाजी-स्थोषस्य प्रत्येक द्विपलाशता ॥ २०॥

### लशुनाद्यं घृतम्

लग्जनस्याविनष्टस्य तुलाई निस्तुपीकृतम् । नदर्इ दशमूल्यास्तु द्वषाढकेऽपां विपाचयेत् ॥ पादशेषे घृतप्रस्थं लग्जनस्य रसं तथा । कोलमूलकवृत्ताम्लमातुलुङ्गाईकै रसैः॥ दाडिमाम्बुसुरामस्तुकाश्चिकाम्लस्तद्धिकैः।
साधयेत् त्रिफलादारुलवण्योषदीप्यकैः॥
यमानीचव्यहिङ्ग्वम्लवेतसैश्च पलार्द्धिकैः।
सिद्धमेतत् पिवेच्छूलगुल्मार्शोजठरापहम्॥
मञ्चपाण्ड्वामयण्लीह्योनिदोपिकमिज्वरान्।
वातस्रेण्मामयांश्चान्यानुनमादांश्चापकर्षति॥ २१॥

लशुनस्थेत्यादौ—श्रविनष्टस्थेति विशुद्धस्यः, तुलार्द्धं पञ्चाशत् पलानि,
नद्दं दशमूलस्थेति दशमूलस्य पञ्चाविंशति पलानि, पादशेप इत्यादके, लशुनम्य
रम तथिति प्रस्थेमव । दाविमाम्बु दाविमरस । तदिंदिकैरित्सन्न तच्छव्देन प्राधान्यात् प्रत्यासत्त्या च धतपरिमाखात् कोलादिरमै प्रत्येकमद्दंप्रस्थेरित्सर्थ , अन्य तु
नदिंदिकेरित्यत्र तच्छव्देन पादाविशिष्टकषाय परिमिष्यते, तेन लशुनस्य रमादीना
दशानामेन शरावािंदकत्वेन प्रत्येक प्रम्थमानिमत्याहु ॥ २१॥

सर्पि पानादिरागन्तोर्मन्त्रादिश्चेष्यते विधिः॥ पूजावल्युपहारेश्विहोममन्त्राञ्जनादिभि । जयेदागन्तुमुन्मादं यथाविधि श्चिमिषक्॥ २२॥

श्रागन्तुन्मादिचिकित्सामाह मपिरित्यादि—मपिरिह भूतहर चैतसादि । पूजेत्वादौ वित पूजोपकरणम्, उपहार उपढोकनम् । किंवा पूजावल्युपहार उपढोकनमेव । श्रञ्जनादिभिरिति श्रादिशब्दात् स्वस्त्ययनादिक बोध्यम्, यदुक्त 'भूगानामिषप देव्मीशान जगत प्रमुम् । पूजयन् यत्नतो नित्य नुदत्युनमाटज भयम् 'हति ॥ २२॥

> कृष्णामरिचसिन्धृत्थमधुगोपित्तनिर्मितम् । श्रञ्जनं सर्वमृतोत्थमहोन्मादविनाशनम् ॥ २३॥

ऋष्णेलादौ--गोपित्त गोरोचना ॥ २३ ॥

दावींमधुभ्यां पुष्पायां कृतञ्च गुडिकाश्चनम् । मरिचं वातपे मासं सपित्तं हितमञ्जनम् । वैकृतं पश्यतः कार्य्यं दोषभूतहतस्मृते ॥ २४॥ दानात्यादि सप्टम् । मरिचामित्यादि—मरिच गोरोचनगा भातेप मामैक मावितमजन कर्त्तन्यम् । दोषभूतहतस्मृतेरिति दोषेण भूतेन वा हता स्मृतिर्थस्यत्यर्थ ॥ २४ ॥

निम्यपत्रवचाहिंगुसर्पनिर्मोकसर्पपै । डाकिन्यादिहरो धूपो भूतोन्मादविनाशनः ॥ २४॥ <sup>निम्त्रत्यादि स्पष्टम ॥ २४ ॥</sup>

कार्पासास्थिमयूरिपच्छवृहतीनिर्माल्यिपएडीतकै-स्त्वग्वांशीवृषदंशिवद्तुषवचाकेशाहिनिर्मोककैः। गोश्टङ्गद्विपद्न्तहिङ्गुमरिचैस्तुल्यैस्तु धूपः कृतः

स्कन्दोनमाद्रिशाचराक्तससुरावेशज्वरघः स्मृतः ॥२६॥
कार्पामत्यादि—कार्पासास्थि कार्पासवीजम्, निमाल्य शिवनिर्माल्यम्, पिष्टीतक मदनफलम्, त्वग्वाशीति त्वग्रशीरम्, वाशी वशलोचना, अन्य तु त्वग्वाशी
वशस्य त्विगिखाहु । वृषदशो विढालः, तस्य विट् पुरीषम्, केशी भूतकेशी, वाल
इन्यपरे ॥ २६॥

ब्रह्मरात्त्सजिन्नस्यं पक्षेन्द्रीफलमूत्रजम् । साङ्यं भूतहरं नस्यं श्वेताज्येष्टाम्बुनिर्मितम् ॥ २७ ॥ महोसादि—पक्षेन्द्रीफल परिखनगेरत्तकर्त्वीफल गोमूवेख मह योज्य नस्य विधेयम् । माञ्यमित्यादौ भेता श्वेतापराजिता, ज्येष्टाम्बु तयडुलाम्बु ॥ २७॥

> देवर्षिपितृगन्धर्वेष्ठनमत्तस्य च वुद्धिमान् । वर्जयेदञ्जनादीनि तीन्स्सानि ऋरमेव च ॥ २८॥

देवेत्याटौ--करिमिति ताडनवन्धनादिकम् । एतच परिवर्जन वैद्यातुरोपघात-परिहारार्थम्, उक्तज्ञ 'वैद्यातुरो विनिन्नन्ति एव क्रद्धा महीजम ' इति ॥ २= ॥

> प्रसादश्चोन्द्रयार्थानां बुद्धश्वात्ममनसां तथा । धातूनां प्रकृतिस्थत्वं विगतोन्मादलच्यम् ॥ २६ ॥ इत्युन्मादचिकित्सा ।

प्रमाद उत्यादि—स्पष्टम् ॥ २६ ॥

इत्युन्मादिचिकित्साविवृति ।

# अथापस्मारचिकित्सा ।

चातिकं बस्तिभि प्राय पैत्तं प्रायो विरेचनै । ऋष्ठेष्मिकं वमनप्रायरपस्मारमुपाचरेत् ॥ १ ॥ तुल्यविकिस्सितलादुन्मादानन्तरमपसारचिकिस्सितमुच्यते, वार्तिकीमन्यादि -वमनप्रायेरिति वमनप्रधाने ॥ १ ॥

स्रवत स्रुविश्चद्धस्य सम्यगाश्वसितस्य च। त्रपसारविमोत्तार्थं योगान् संशमनान् श्रृगु ॥ २ ॥ मर्वत इत्यूद्धंमधस्य शुद्धसः। त्राश्वसितस्येति सरोधनानन्तर मनर्वनक्रमेय मजातन्त्रस्य ॥ २ ॥

मनोह्ना तार्च्यजञ्जेव शरुत् पारावतस्य च । श्रञ्जनं हन्त्यपस्मारमुन्मादञ्ज विशेषतः ॥ ३॥ मनोह्ना मन शिला, तार्च्यंव रसाजनम् ॥ ३॥

यष्टिहिङ्गुवचावक्रशिरीपलग्रुनामयैः । साजामूत्रेरपसारे सोन्मादे नावनाञ्जने ॥ ४ ॥ वद्येलादो—वक्र तगरम्, शिरीपस्य फलम्, त्रामय कुष्टम् ॥ ४ ॥

पुष्योद्धृतं ग्रुनः पित्तमपसारघ्नमञ्जनम् । नदेव सर्पिपा युक्कं धूपनं परमं स्मृतम् ॥ ४ ॥ नकुलोलूकमार्जारगृभ्रकीटाहिकाकजैः । तुएडेः पत्ते पुरीपैश्च धूपनं कारयेद्भिषक् ॥ ६ ॥

पुष्येलादि—पुष्यानचने यदृच्छया मृतकुक्तरस्य पित्तम्, श्राह्ममिलाहु , उत्त्क पेचक ,कीट पश्चिमदेशजो पृश्चिक । एषां तुरुष्ठाटिक यथामन्भव श्राह्मम् ॥ १ । ६ ॥

> कायस्थान् शारदान् मुद्गान् मुस्तोशीरयवांस्तथा । सव्योपान् वस्तमृत्नेण पिष्ट्वा वर्ती प्रकल्पेयत् ॥ श्रपसारे तथोन्मादे सर्पदेष्टे गरार्दिते । विपपीते जलमृते चैता स्युरमृतोपमा ॥ ७॥

काय्यस्थानित्यादि —कायस्थो निर्गुण्डी । शारदानिति मुद्गविशेषण ज्येष्ठ-मामोद्भवमुद्गनिरामार्थम् । वर्त्तीरित्यञ्जनवर्ती । विषपीत इति पातिविषे, गर सयोग-विषम् । जलमृत इति जलपानेन मृतप्राये, मर्वथा मृते हि भषज विफलमिति । जलमृतलचण् यथा 'विष्टम्थपायुमूर्द्धाचमाध्मातोदरमेहनम् । विद्याज्ञलमृत जन्तु गानपादकराननम्' इति ॥ ७॥

> श्रपेतरात्तसीकुष्ठपूतनाकेशिचोरकैः। उत्सादनं मूत्रपिष्टमूहोरेवावसेचनम्॥ =॥

श्रपेतरार्चसीत्यादि—श्रपेतरांचसी श्वततुलसी, तस्या स्वरम इत्यर्थ । पूतना इरीतकी, केशी भूतकेशी, चौरश्चारपुष्पी । चरकोक्षपूर्वयोगे वस्तमूत्रसन्दर्शनादत्रा-पि वस्तमृत्रमेवेत्यादुः । किंवा प्रधानकल्पतयात्र गोमूत्रमेव मूत्रशब्दवाच्यम् ॥ = ॥

जतुकाशकृता तद्वह्ग्धैर्चा वस्तरोमभि । श्रपस्मारहरा लेपो मूत्रसिद्धार्थशिग्रभिः॥ ६॥

जतुकाशकृतेति, जतुका चर्मचटक तस्या पुरीपेख तद्वदित्युत्मादनम् । दग्धैरिति वस्तरोमिमिरित्यनेन योज्यम् । अपन्मारेत्यादौ मूत्र गोमूत्रम् ॥ ६ ॥

य खादेत् चीरभक्ताशी माचिकेण वचारजः। श्रपस्मारं महाघोरं सुचिरोत्थं जयेद् ध्रुवम्॥ १०॥

य खोदादित्यादौ—माचिकेण मधुना ॥ १०॥

उल्लाम्बतनरत्रीवापाशं दग्ध्वा कृता मसी। शीताम्बुना समं पीता हन्त्यपस्मरमुद्धतम्॥११॥

उल्लम्बित उद्दन्धनमृतो नर , तस्य श्रीवापाश ग्रीवाबन्धनरञ्जुम् ॥११॥

प्रयोज्यं तैललग्रुनं पयसा वा शतावरी । ब्राह्मीरसम्ब मधुना सर्वापस्मारभेषजम् ॥ १२ ॥ प्रयोज्यमित्यादि योगत्रय स्पष्टम् ॥ १२ ॥

निर्देह्य निर्द्रवां कृत्वा छागिकामरनालिकाम् । तामम्लसाधितां खाद्ञपस्मारमुद्स्यति ॥ १३ ॥ निर्देह्यत्यादी—श्रमरनालिका श्रमराख्यस्थूलनाढी । श्रम्लसाधिनामिति काज्ञिकसाधिताम् ॥ १३ ॥ हृत्कम्पेऽिच्चिक्जा यस्य स्वेदो हस्तादिशीतता । दशमूलीजल तस्य कल्याणाज्यञ्च योजयेत् ॥ १४ ॥ इत्कम्प क्ष्यादि स्पष्टम् ॥ १४ ॥

स्वल्पपश्चगव्यं घृतम्
गोशकृद्रसद्भ्यम्लचीरमूत्रे समैर्घृतम् ।
सिद्धं चातुर्थकोन्मादग्रहापस्मारनाशनम् ॥ १४ ॥
गोशकृदित्यादी—द्रध्यम्य परिखतद्यि । समशब्दोऽत्र द्रध्यादिगिश्च सम्बन्धि ॥ १४ ॥

बृहत्पश्चगन्यं घृतम्

हे पश्चमूले त्रिफलां रजन्यो कुटजत्वचम् । सप्तपर्णमपामार्गं नीलिनीं कहरोहिणीम् ॥ शम्पाक फल्गुमूलश्च पौष्करं सहरालभम् । हिपलानि जलद्रोणे पक्त्वा पादावशिपिते ॥ भागीं पाठां त्रिक्रहुकं त्रिवृतां निचुलानि च । श्रेयसीमाढकीं मूर्वां दन्तीं भूनिम्बिचत्रकां । हे शारिवे रोहिपश्च भूतिकं मदयन्तिकाम् । चिपेत् पिष्ट्वाचमात्राणि तै प्रस्थं सर्पिप पचत् ॥ गोशकद्वसद्ध्यम्लचीरम्त्रेश्च तत्समे । पश्चगव्यमिति ख्यातं महत् तद्मृतोपमम् ॥ श्रपस्मारे ज्वेर कासे श्वयथावुदरेपु च । गुल्मार्श पाएडरोगेषु कामलायां हलीमके । श्रलच्मीशहरचोद्नं चातुर्थकिवनाशनम् ॥ १६॥

द्दे पद्ममूल इत्यादि—दे पद्ममूले विदारीगन्थादिके, रजन्याविति हरिद्रा-दयम्, वाग्मटेऽपि ' द्विपद्ममूलीत्रिफला—द्दिनिशाकुटजल्वच ' इत्युक्तम् । मप्तपर्णं सप्तपर्णस्य त्वक्, अपामार्गम् अपामार्गस्य मूल, नीलिनी स्वनामख्याता, शम्पा-क आरम्बध, फल्गु काकोडुम्बीरकाफल, उमर इति लोके, पौष्कर मूल-मित्यन्वय । मार्गी भागीमूल, त्रिष्टता त्रिष्टतामूल, निचुलानि इष्प्रलस्य फलानि, श्रेयसीं हस्ति।पेप्पलीम्, श्राटकी तुनरी, तस्या नीजः, रोहिष गन्धतृष्यमेट, मृतिक यमानीः, मदयन्तिका ननमिह्नकाम् । श्रत्र पादावशिष्टकपायश्चतुर्ग्रेष , गोशकृदिति गोशकृद्रसादयश्च धतसमा ; तेनाष्टगुषः पाक ॥ १६॥

# महाँचेतसं घृतम्।

शणिस्तवृत् तथैरण्डो दशमूली शतावरी।
रास्ना मागिधकाशिय्र काथ्यं द्विपिलकं भवेत्॥
विदारी मधुकं मेदे द्वे काकोल्यौ सिता तथा।
एभि खर्ज्रमृद्विकाभीरुयुञ्जातगोन्जुरे॥
वैतसस्य घृतस्याङ्गे पक्षव्यं घृतमुत्तमम्।
महाचैतससंद्वन्तु संवीपसारनाशनम्॥
गरोन्मादप्रतिश्यायतृतीयकचतुर्थकान्।
पापालदम्यौ जयेदेतत् सर्वप्रहाविनाशनम्॥
श्वासकासहरञ्जेव शुकार्त्तविवशोधनम्।
घृतमानं काथविधिरिह चैतसवन्मतः॥
कल्कञ्जेतसकल्कोक्षद्रव्यः सार्दञ्ज पादिकः।
नित्यं युञ्जातकाप्राप्तौ तालमस्तकमिष्यते॥ १७॥

महाचैतसे राणस्य मूल बीज वा, व्यवहारस्तु वोजेनेति । मागिषका पिप्पली ।
काथ्य द्विपलिक भवेदित्यन्तेन काथ , काथाऽपि पूर्ववत् चैतसकाथवत् द्रोणाम्भसा
कार्य्य । विदारिप्रमृति कल्क । मेदे मेदे दे, खर्जूर खर्जूरस्य फलम्,
श्रभीरु रातावरी, युआतम् श्रौत्तरपार्थक कन्द , तदमावे तालमस्तकम् । चैतमस्य
खतस्याद्गिरिति पूर्वोक्षचैतमधृतकल्कैविशालादिमिः । चैतसस्यत्यादि कल्याणकस्याइरिति वक्षव्येऽतिदेशातिदेशकरणम्, अत्रोक्षकल्कद्रव्येण सह पादिकार्थम् , श्रन्यया
कल्याणके तत्राचममन्वितिरित्युक्तत्वादत्रापि श्रचमान प्रसच्यते, श्रतो विशालात्रिफलेलादिना कल्केन सह विदारीमधुकादे कल्कस्य मिलित्वा छतात् पादिकत्व क्षेयम्।
श्रतप्व वच्यित कल्कश्रैतसकल्कोक्षद्रव्ये सार्द्वज्ञ पादिकमिति ॥ १७ ॥

कूष्माग्डकघृतम् कूष्माग्डकरसे सर्पिरष्टादशगुग्रे पचेत् । यष्ट्याह्वकर्ट्कं तत्पानमपस्मारविनाशनम् ॥ १८ ॥ कृष्मायडकप्रत स्पष्टम् ॥ १८ ॥

## त्राह्मीघृतम्

ब्राह्मीरसे वचाकुष्टशङ्खपुष्पीभिरेव च । पुराणं मेध्यमुन्मादब्रहापस्मारनुद् घृतम् ॥ १६॥ ब्राह्मीको —चतुर्रेणे ब्राह्मीरसे क्ष्तपान ॥ १६॥

## पलङ्कपाद्यं तैलम्

पलद्भपावचापथ्यात्रश्चिकात्यर्कसपंपै । जिटलापूतनोक्तशीनाकुलीहिङ्गुचोरकैः ॥ लशुनातिरसाचित्राकुष्टैर्विड्भिश्च पत्तिगाम् । मांसाशिनां यथालाभं वस्तमूत्रे चतुर्गुणे ॥ सिद्धमभ्यञ्जने तैलमपसारविनाशनम् ॥ २०॥

पलद्गेपत्यादि — पलद्गपा गुग्गुलु , जटिला मामी । पूतनाकेशी भूनकेशी इति केचित् , अन्ये तु पूतना हरीतकीमेद केशी भूतकेशीत्याहु , जतुकर्यं गोलोमी पठ्यते, न तु पूतना । नाकुली महापैशाचिका व्यवहृता । अतिरमा जलयष्टिमधु, अन्ये तु ज्योतिष्मतीत्याहु , जतुकर्ये मधुकमित । चित्रा दन्ता । मामाशिना पिच्यामिति गृधादीनाम् ॥ २०॥

श्रभ्यद्गः सार्पपं तैलं वस्तमूत्रे चतुर्गुणे। सिद्धं स्पद्गोशकुन्मूत्रे स्नानोत्साटनमेव च ॥२१॥ इत्यपसारचिकित्सा।

श्रम्यङ्ग इत्यादि—श्वनल्कामद तैलन् । गोशकृता उत्सादनमुद्रर्त्तन गोनृ-त्रेण लानमिति यथायोग्यतया बोध्यम् ॥ २१ ॥

श्र्यपरमारचिकित्साविवृति ।

# अथ वातव्याधिचिकित्सा

खाद्मम्बवणैः स्निग्धैराहारैर्वातरोगिणः। श्रम्यक्रसेद्दवस्त्याद्यैः सर्वानेवोपपादयेत्॥ १॥ वातविशेषस्य। चेपकादेरपस्मारवद्वेगकर्तृत्वात् तथा प्रायस्तुल्यिचिकित्सितत्वाचा-यसारानन्तर वातव्याधिरुच्यते । यद्यपि वातव्याधिरित्युकेरिवकृते वा यावित प्रसङ्ग , तथापि व्याधिपदमामानाधिकरय्यादिकृतो दु खकारी वातो व्याधिरित्यथौं क्षेय । ननु वातव्याधिवत् पित्तकफिनकारा अपि तुषत्तेषतृष्ट्त्यादय किमिति पृथक्षरयेन नोच्यन्ते १ नैवम् , वायोरतिबलत्वेन गरीयस्त्वात् , तदिकाराणामेव तु दुःसाध्य-त्वात् स्राश्वेवात्ययकरस्वात् विशिष्टचिकित्सिज्ञत्वाच पृथक्करयेनाभिधान युक्तम् । कफिपत्तिविकाराणान्तु यथाविधित्वात् विरेचनवमनादिकफिपित्तसामान्यचिकित्सोक्षया चिकित्सोकिति शेया । साधारणिचिकित्सामाह स्वाहम्लेत्यादि ॥ १ ॥

> विशेषतस्तु कोष्ठस्थे वाते ज्ञारं पिवेन्नरः॥२॥ त्रामाशयस्थे शुद्धस्य यथादोपहरी क्रिया॥३॥

विशेषत इत्यादी---चार यवचार किंवा ग्रहण्यथ्यायनिर्दिष्ट दीपनचारम् । श्रामाशयस्य इत्यादि---शुद्धस्य वमनविरेचनादिना शुद्धस्य ॥ २ ॥ ३ ॥

श्रामाशयगते वाते छदिताय यथाक्रमम्।
देयः षड्धरणो योग सप्तरात्रं सुखाम्बुना ॥
वित्रकेन्द्रयवाः पाठा कटुकातिविषामयाः।
महाव्याधिप्रशमनो योग षड्धरण स्मृत ॥
पलदशमांशो धरणं योगोऽयं सौश्रुतस्ततस्तस्य।
मापेण पश्चगुञ्जकमानेन प्रत्यहं देय ॥ ४॥

श्रामारायगत इत्यादि—सुश्रुतस्य । छ्दिताय यथाक्रममिति सेहस्वदेपेयादिक्रमानिक्रमेण, वातस्यापि कफस्यानगतत्वेन । यदुक्त 'स्थानात् स्थानगत दोष स्थानबत् समुपाचरेत्' इति । षड्धरणयोगे महान्याधिप्रशमन इति मेदः कफाषृतन्याधिः
महान्याधि । षड्धरण इति पण्णा चित्रकादीना प्रत्येक धरण पलदशमाशरूप मान
यत्र स तथा, पतदेवाह पलदशमाशो धरणामिति । ननु पलद्रन्यन्यवस्थापि चरकद्यशुतमतमेदेन दिघोक्ता, तदिह चरकस्य पलस्य दशमाशो धरणम्, इत्यत श्राह योगोअतमति, श्रय चित्रकेत्यादियोगः सौंश्रुत इति कृत्वा तस्य सुश्रुतस्य पञ्चगुक्रकमानेन माषेण यत् पल मवति तस्यैव पलस्य दशमो भागः प्रत्येक चित्रकादीना षण्णा
प्रत्यह सप्तदिन यावदेय इत्यर्थ । पत्रच्च पञ्चगुक्रकमानानुसारात् पलदशमाशेन
रिक्रिद्याधिकषण्मापका मवन्ति, षड्भिर्धरणैक्ष मिलित्वा पञ्चरिक्तकमापानुसारेण

सरिक्षद्वपण्मापाधिककर्षद्वय स्यात्, ण्तदेव व्यविष्यमाखेन दशरिक्षमापेख सर-किद्रवमापत्रयाधिककर्षमान भवित ताष्ट्रमानज्ञ प्रत्यएमेन महरात्र यावत् देयम् । उत्सर्गतो हि कर्पश्चूर्णस्य देयो भवित, अन्न सरिक्ष्यमापकत्रयाधिकवर्षप्राप्तार्थं विशेषवन्त्रनेमेवेति ॥ ४ ॥

> पकाशयगते वाते हितं स्नेहविरेचनम् । वस्तय शोधनीया या प्राशाध्व लवणात्तरा ॥ ४॥

वस्तय शोधनीया या इति शोधनवस्तयः, यथा 'शोधनद्रस्यनि काधाम्नत् व त्कलेहसैन्यवै । युक्ता एजेन मधिता वस्तयः शोधना मता' इति । प्राणाश्च लवणोत्तरा इति लवणप्रधाना आहारा किंवा लवणोत्तरा प्राशा स्वहलवणकस्या-णलवणात्त्य ॥ ५ ॥

स्रोहलवणम्

स्तुहीलवणावात्तीकुस्नेहारछुन्ने घटे दहेत्। गोमयैः स्नेहलवणं तत्परं वातनाशनम्॥६॥

तदेव सेहलवणमाह स्तुईत्यादि—स्त्रत्र लवणानि पत्र, वेबहाश्वसार ; छन्न इति शरावादिपिष्टिते लिप्तमुखे । गोर्मथिरिति स्तुई।पञ्चलवणवार्षाकुफलानि तदनु-ष्टततैलवमामज्जिम स्निग्धीकृत्य घटे कृत्वा मुरामालिप्य गोमयात्रिना दग्धव्यानि, स्रत कोष्ठ विभज्य उपयोज्यानि ॥ ६ ॥

> कार्यो वस्तिगते चापि विधिवस्तिविशोधनः॥ ७॥ त्वड्मांसास्क्शिराप्राप्ते कुर्याचास्रिवमोत्तणम्॥ =॥

विधिर्वस्तिविशोधन इति मूत्राधाताशमरीचिकित्माविधि । त्विगित्यादि—अत्र त्वड्मासादिगतवाते रक्षमोच्चयस्पमेकमेव चिकित्मितम् आवरकरक्षच्यपमतया बोध्यम् । अन्य स्वेद्दाभ्यक्षेपनाद्दाक्ष मर्दनालेपनानि चेति सुश्रुतवाक्यस्य त्वडमामा- सक्शिरापात इत्यनेन सह सम्बन्ध विद्धति । ततश्च त्वड्मास स्गतवाते स्वद्धाभ्य- क्षादिकम्, रक्षगतवाते स्वयंग्यतया रक्षमोच्चणोमेवेलाष्ट्र ॥ ७॥ ८॥

स्रिद्दोपनाद्दाग्निकर्मवन्धनोन्मर्दनानि च । स्नायुसन्ध्यस्थिसम्प्राप्तं कुर्य्याद्वाते विचत्त्रणः ॥ ६ ॥ केद्दोपनाद्देत्यादि—क्नायुसन्ध्यस्थिगतवातिचिकित्सामादः ॥ ६ ॥

🏑 खेदाभ्यङ्गावगाहांश्च हृद्यञ्चान्नं त्वगाश्चिते ॥ १० ॥

शिताः प्रदेहा रक्तस्ये विरेको रक्तमो च्राग्म् ॥ ११ ॥ स्वेदाभ्यक्तत्यादिना रसगतानिलचिकित्सामाह । ह्रचमित्यत्र स्पष्टमिति जेकाट पठिति, किन्त्वत्र त्वक्राच्देन त्वक्सत्वाद्भम उच्यते, त्वगाश्रयित्वच्च रमस्य सर्वगतत्वाद्भवति । श्रतप्त पातुगतकुष्ठाभिधाने त्वग्गतत्वेतैव रसगत्वमुक्तमिति कृत्वा रसगतकुष्ठलच्चण मुश्रतेनोक्तम् । श्रतो रसस्य विशेषेण हृदयाश्रितत्वाद् हृष्यमेव पाठो युक्त इत्याहु । श्रीता प्रदेहा इति शीतप्रदेहादिरूपचिकित्साकथनार्थामेह लिखितम्, तेन त्वङ्मासान्मृगित्यादिम्रश्रुतवचनेन पूर्वेकिनास्य पानक्क्तय नाशक्कृत्यम् ॥ १० ॥ ११ ॥

विरेको मांसमेद स्थे निरूहा शमनानि च ॥ १२॥ वाह्याभ्यन्तरतः स्नेहैरस्थिमज्जगतं जयेत् ॥ १३॥

मेद स्थानित्तचिकित्सामाह विरेक इत्यादि—मञ्जगतानित्तचिकित्सामाह वाह्यत्यादि ॥ १२ ॥ १३ ॥

> वर्षोऽन्नपानं शुक्रस्थे वलशुक्रकरं हितम् । 💃 विवद्धमार्ग शुक्रन्तु दृष्ट्वा दद्याद्विरेचनम् ॥ १४ ॥

शुक्रस्यानिलचि।कित्सामाह हर्प इति मनस ॥ १४॥

गर्भे शुष्के तु वातेन वालानाञ्चापि शुष्यताम्। सितामधुककाश्मर्थ्येहिंतमुत्थापने पयः॥ १४॥ शिरोगतेऽनिले वातशिरोरोगहरी क्रिया॥ १६॥

गर्भ इत्यादौ---मधुककाश्मर्थ्यफलाभ्या दुग्ध साध्य, सिता तु प्रचेपखीया, केचित् तु मित्रादिर्दुग्ध साध्यमित्याद्वः । उत्थापने पृष्टिजनने ॥ १५ ॥ १६ ॥

व्यादितास्ये हनुं सिन्नामंगुष्टाभ्यां प्रपीड्य च।
प्रदेशिनीभ्याञ्चोन्नम्य चिवुकोन्नामनं हितम् ॥ १७ ॥
प्रादिते नवनीतेन खादेन्माषेग्डरीं नरः।
च्रीरमांसरसैभुक्त्वा दशमूलीरसं पिवेत् ॥
केहाभ्यङ्गशिरोबस्तिपाननस्यपरायणः।
प्रादितं स जहेत् सर्पिः पिवेदौत्तरमिक्तकम्॥ १८ ॥

न्यादितास्य इत्यादि — न्यादितास्ये विष्टतास्ये, प्रदेशिनी अगुष्ठानन्तरागुली। उन्नन्येत्यत्र चितुकामिति शेष । माषेण्डरी माषिष्टकविकृति.। माषेण्डरीभक्षणा-

नन्तर कारमामर्रमरत्र मुक्ता ततो दगमूलीजल पिनेदित्यर्थ । श्रीचरभक्तिकमिति भोजनानन्तरकालीनम् ॥ १७ ॥ १८ ॥

पञ्चमूलीकृतः काथो दशमूलीकृतोऽथवा ।
स्ताः खेदस्तथा नस्यं मन्यास्तम्भे प्रशस्यते ॥ १६ ॥
वाताद्वाग्धमनीदुष्टौ स्नेहगण्डूपधारणम् ॥ २० ॥
पञ्चम्लीत्यादि सप्टन् । वातादित्यादी—शाधमनी वाग्वाहिनी वमनी
॥ १६ ॥ २० ॥

### कल्या गकले हः

सहरिद्रा बचा कुग्नं पिष्पली विश्वभेपजम् ।
श्रजाजी चाजमोदा च यष्टीमधुकसैन्ध्यम् ॥
पतानि सममागानि रुहण्ण्यूणानि कारयेत् ।
तच्चूणं सर्पिपालोख्य प्रत्यहं भन्नयेद्यरः ॥
पक्षविशतिरात्रेण भवेच्छुतिधरो नर ।
मेघदुन्दुभिनिधोंपो मत्तकोकिलनिस्तनः ॥
जडगद्गद्मूकत्वं लेहः कल्याणको जयेत् ॥ २१ ॥
महरिदेलादौ—श्रजाजी कृष्णजीरकम्; श्रजमोदा यमानो, याष्टिमधुकरान्देन महायदीति श्रीकरहद्तो न्याचेष्ट्र, तत्तु न व्यवहारिमद्ध नापि दीकान्तरे
दृष्टिमिनि ॥ २१ ॥

वत्तक्षिकस्कन्धगतं वायुं मन्यागतं तथा। वमनं हन्ति नस्यश्च कुशलेन प्रयोजित ॥ २२॥

वच इत्यादि-सुश्रुतस्य । त्रिकमिष्ट श्रसद्वयान्तरमन्धि , म हि श्रेष्मस्थान, तद्वन प्य बाते बमन नस्यञ्च यौगिकम् । नस्यमिष्ट शिरोविरेचनिमिति । कुरालेन प्रवोजितमिति विशेषणात् प्रतिमर्थं विना चतुर्विषमप्यत्र नम्यमित्येके ॥ २०॥

### मापवलादिः

मापवलाग्रुकशिम्त्रीकचृणरास्नाश्वागन्घोरुवृकाणाम् । काथो नस्यनिपीतो रामठलवणान्वित कोप्णः॥

### श्रपहरति पत्तवातं मन्यास्तम्भं सकर्णनादरुजम् । दुर्जयमर्दितवातं सप्ताहाज्जयति चावश्यम् ॥ २३ ॥

मापवलेत्यादि — कच्चाय गन्धत्यम् ; श्रश्वगन्धाया मूलम् । काथमात्रा चात्र मुखेन पेयकाथतुल्याः यस्तु तावन्त काथ नासिकया पातु न राक्तोनि, तेनार्खा ग्तोकस्त्याच्य । रामठ हिंगु, तस्य राक्तिकाद्वय सैन्धवस्य तु प्रापकद्वय प्रचिपन्ति गृद्धा । यस्मिन् पार्श्वे पीडा तत्पार्थनासापुटेन भोजनसमाप्ती सायकाले शक्त्यनुरूप प्रयक्षाय काथ ॥ २३ ॥

### दशमूलीवलामापकाथं तैलाज्यमिश्रितम् । सायं भुक्तवा पिवेन्नस्यं विश्वाच्यामववाहुकें ॥ २४ ॥

दरामूलीत्यादौ — तैलाज्यमिश्रितमिति तैलाज्य प्रचेपणीयम् । भुक्तेति भोज-नानन्तर सायकाले शक्त्यनुरूप नासिकया पिवेद् ॥ २४ ॥

> मूलं वलायास्त्वथ पारिभद्रात् तथातमगुप्तास्वरसं पिवेद्दा। नस्यन्तु यो मांसरसेन कुय्या नमासादसौ वजसमानवाहु ॥ २४॥

मूलमित्यादि—मूल वलाया इत्येको योग , पारिभद्राच मूलमिति दितीय , पनयो स्वरस काथो वा । आत्मगुप्तास्वरस पिनेदिति तृतीय , पानमेषा नासिकया। नम्यन्तु यो मासरमेनेति चतुर्थ । अत्र तैजसैन्थेव प्रक्तिपन्ति वृद्धा , अन्ये भैन्थवनृर्णमात्र प्रिविपन्ति । नस्यन्तु यो मासरसेनेत्यत्र तयोमीसरसेनेति पठित्वा
विशाच्यववाहकयोरिति व्याख्यानयन्त्येके ॥ २५ ॥

माषात्मगुप्तकैरग्डवाट्यालकश्वतं पिवेत्। हिड्गुसैन्थवसंयुक्तं पत्ताघातनिवारग्रम् ॥ २६॥ मापत्यादि वचन सप्टम् ॥ २६॥

वाहुशोषे पिवेत् सर्पिभुक्त्वा कल्याणकं महत्॥ २७॥ हृदि प्रकुपिते वाते चांशुमत्या पयो हितम्॥ २८॥

बाहुरोाप इत्यादी — महत् कल्यायकम् उन्मादाधिकारोक्तम् । हदीत्यादी — पशुमती ज्ञालपर्यी, तया सिद्ध पय इत्यर्थ ॥ २७॥ २८॥

इरीतकी वचा रास्ना सैन्धवञ्चाम्लवेतसम्। घृतमात्रासमायुक्तमपतानकनाशनम्॥ २६॥

हरीतकीत्यादि — काथेन चूर्णेन वाय योग । काथपचे नैन्धवष्टते प्रित्तिपत्, चृर्यपचे धनकपढेयेन, चूर्णस्याधी मापका पेया इत्यर्थ ॥ २६॥

#### खल्परसोनिपएडः

पलमर्छपलञ्जेव रस्नोनस्य सुकुद्दितम् ।
दिङ्गुजीरकसिन्धृत्थैः सौवर्चलकद्वत्रये ॥
चृिणैतैर्माषकोन्मानैरवचूर्ण्यं विलोडितम् ।
यथाग्नि भित्ततं प्राता रुवुक्ताथानुपानतः ॥
दिने दिने प्रयोक्तव्यं मासमकं निरन्तरम् ।
वातरोगं निहन्त्याग्र श्रदितं सापतन्त्रकम् ॥
एकाक्ररोगिणे चैव नथा सर्वोक्तरोगिणे ।
करस्तम्मे च गृश्रस्यां क्रिमिकोष्ठे विशेषतः ।
कटीपृष्ठामयं हन्याहुद्रञ्ज विशेषतः ॥ ३०॥

पलमर्द्धपल वेति सार्द्धपलम् ण्व वाशब्दो पूर्वयोगापेचया, इवार्ये वाशब्दो वा। पलमर्द्धपल चेवेत्यपि पाठ । त्वगादिरहितपिष्टरमानस्य किञ्चिदातेपन शुष्कस्य सार्द्ध-पलमेक, मापकाष्टक मापकदशकवा प्रतिदिन मेवनीयम् । श्रनयैय मात्रया मासमेक मेवनेपयुक्त न स्यात् श्रत पुनरिप रमानिपयह करणीय । न च वाच्य यावत्या मात्रया मान्रया मान्रया मवित तावत्येव मात्रा किमिति न दशितिति, यतस्तथा मिति वीर्यहानि स्यादित्याद्ध ॥ ३०॥

हन्ति प्राग्मोजनात् पीतं दध्यम्लं सवचोपण्म् । श्रपतानकमन्योऽपि वातव्याधिकमो हितः ॥ ३१ ॥ इन्तीत्यादौ—सवचोपणमिति वचामरिचचूर्णसितिमित्यर्थ ॥ ११ ॥ वातप्रदेशमूल्या च नवं कुब्जमुपाचरेत् । स्तदेमीसरसैर्चापि प्रवृद्धं तं विवर्जयेत् ॥ ३२ ॥ वातप्रेरिति भद्रदार्वदिगणै , दशमूला च विख्यातैव गणत्वात्, ण्तै काथसेहोपनाहादिक कुर्यात् । नवतन्तु कुम्बस्य यावत् न म्बाष्टिरिति ॥३२॥ पिष्पल्यादिरजस्त्नीप्रतित्नयो सुखाम्बुना।
पिवेद्वा स्नेहलवर्णं सघृतं ज्ञारहिङ्गु वा ॥ ३३ ॥
प्राध्माने लङ्घनं पाणितापश्च फलवर्त्तय।
दीपनं पाचनश्चेव बस्तिश्चाप्यत्र शोधन ॥ ३४ ॥

पिष्पल्यादिगयाः सौश्रुत । रजश्चूर्णम् । लेहलवण्डा स्तुई।लवणवार्ताकुलेहानित्यादिना पूर्वमुक्तम्, इदमपि सुखाम्बनैन पिनेदिति । सष्टत चारिष्कः, विति

प्रतेनैन यवचारिष्कानीश्च पानम् । प्रतस्य कर्षेकः, यवचारस्य चतुर्माषकः, विद्वन

पद्रिक्तिकिभिति दीपन पाचनञ्जेति लव्षनानन्तर दोपशेषशमनार्थं दीपन पाचनञ्च

भवज देयम् ॥ ११ ॥ १४ ॥

प्रत्याध्माने तु वमनं लह्वनं दीपनं तथा ॥ ३६ ॥
प्रत्याष्टीलाष्टीलिकयोरन्तार्वेद्गधिगुल्मवत् ॥ ३६ ॥
प्रत्याध्माने तु वमनमिति प्रत्याध्मानस्यामाशयसमुत्यत्वात् ॥ ३५ ॥ ३६ ॥
दशमूलीवलारास्नागुङ्कचीविश्वमेषज्ञम् ।
पिवेदेरएडतेलेन गृध्रसीखञ्जपङ्गुषु ॥ ३७ ॥
दशमूलीत्यादि—दशमूल्यादीना काथे परण्डतेल प्रविष्यम् ॥ ३७ ॥
शेषालिकादले काथो मृद्धशिपरिसाधित ।
दुर्वारं गृध्रसीरोगं पीतमात्रं समुद्धरेत् ॥ ३८ ॥
शेषालिकत्यादि वचन स्पष्टम् ॥ ३८ ॥
राषालिकत्यादि वचन स्पष्टम् ॥ ३८ ॥
पञ्चमूलीकषायन्तु रुव्वतेलं त्रिचृद्घृतम् ।
पञ्चमूलीकषायन्तु रुव्वतेलं त्रिचृद्घृतम् ।

त्रिवृतेवाथवा युक्तं गुप्रसीगुलमञ्जलन्त् ॥ ३६ ॥ पद्ममूलीत्यादि—पत्रमूली महती ॥ ३६ ॥

तैलं घृतं वाईकमातुलुङ्ग्यो रसं सन्तुकं सगुडं पिवेद्वा। कटधूरुपृष्ठत्रिकगुल्मग्रल-

गृध्रस्युदावर्त्तहर प्रदिष्ट ॥ ४०॥

तैल धृत वेत्यादौ--भार्द्रकरसमातुलुक्रफलर्सचुक्रगुढादीना तुल्यो भाग , नने धृत वा दस्ता पिवेदिति । पिवेदिति वा सन्दः पूर्वयोगापेच्या, किंवा नैल- मेव सचुक्रगुडिमित्येको योग , तथा एतमिष सचुक्रगुडिमिति हितीय तथा मिलि-ताईकरम मातुलुङ्गीरसोऽिष मचुक्रगुट इति तृतीया योग । मातुलुङ्गी मधु-कुनकुटी ॥ ४० ॥

> तैलमेरएडजं वापि गोमूत्रेण पिवेन्नर । मासमेकं प्रयोगोऽयं गुध्रस्यूच्य्रहापहः॥ ४१॥

तंलमेरयटजिमत्याटि—योगे।ऽय विरेचकत्वेनाल्पमात्रया प्रत्यह मास याव दुपये।ज्य । भूरिमात्रापयोगे तु वलहानि स्यात्, तेन गामूत्रस्य पल किञ्चिन्त्यून वा, तथा परयहतैलमिप मापकाष्टक किञ्चिन्त्यून वा कोष्ठाचेपेश्वया प्रत्यह मान्त्र यावदुपयोज्यम् ॥ ४१ ॥

गोमूत्रेराडतेलाभ्यां रुण्णा पीता सुचूर्णिता। दीर्घकालोत्थितां हन्ति गृष्टसीं कफवातजाम् ॥ ४२॥

गाम् त्रैरयङतैलाञ्यामित्यादि — गोम्त्रैरण्डतैलयोभितित्वा कर्षद्वयम्, विष्वली-चूणस्य मावकचतुष्टयमिति व्यवहरन्ति वृद्धाः ॥ ४२॥

श्रश्नाति यो नरः सिद्धांमरएडतैलसाधिताम् । वार्ताकुं गृधसीचीणः पूर्वामाप्नोत्यसौ गतिम् ॥४३॥ श्रश्नातीत्यादौ—परण्डतैलमाधिता सन्तिलतामित्यर्थ ॥ ४३॥ पिष्द्वैरएडफलं चीरे सिवश्वं वा फलं रुवो । पायसो मज्ञित सिद्धो गृधसीकटिश्रलजुत्॥ ४४॥

पिष्ट्वेत्यादि — त्वग्राहितमरयहवीज कर्ष किञ्चित्तरहतान् दस्वा चारेण विरेचनार्थं पायस साध्य । मिवश्य वेति पूर्वयोगोपेचया वा शब्द , अत्रापि किञ्चित्तरहतादीन् दस्वा ग्रुएक्वेरयटफलाभ्या पिष्टाम्या कर्पार्द्धं वा कर्याशुरक्वेरीत्यादित्परिमापया पायस माध्य ॥ ४४ ॥

> रास्नायास्तु पलञ्चैकं कर्पान् पञ्च च गुरंगुलो । सर्पिपा गुडिकां कृत्वा खादेद्वा गृश्रसीहराम् ॥ ४४ ॥ गृश्रस्यात्तं नरं सम्यक् पाचनाचैविंशोधितम् । श्वात्वा नरं प्रदीप्तार्थि वस्तिभिः समुपाचरेत् ॥ ४६ ॥ राक्षाया स्त्यादि—खावन्तु मापकाष्टकम्, तस्रवलमनुपानम् ॥४५॥४६॥

नादौ वस्तिविधि कुर्याद् यावदूर्ध्व न शुध्यति । स्नेहो निर्थकस्तस्य भस्मन्येवाहुतियथा ॥ ४७ ॥ नादौ वस्तिविधि कुर्यादित्यादौ—यावदूद्ध्व न शुध्यतीति, उद्ध्विमत्यत्र पकामयादिति रोपः, तेन याविद्दिकवमनाभ्या श्रामाशयो न शुध्यतीत्यर्थ ॥४७॥

गृश्वस्यार्तस्य जङ्घाया स्नेहस्वेदे कते भृशम्।
पद्भ्यां निर्मिदितायाश्च स्दममार्गेण गृश्वसीम् ॥
श्रवतार्थ्यांगुलौ सम्यक् किष्ठायां शनैः शनैः।
श्रात्वा समुन्नतं श्रान्थ कएडरायां व्यवस्थितम् ॥
तं शस्त्रेण विदार्थ्याशु प्रवालांकुरसन्निमम्।
समुद्धृत्याग्निना दग्ध्वा लिम्पेद् यष्ट्याह्वचन्दनै ॥
विध्येत् शिरामिन्द्रवस्तरधस्ताचतुरंगुले।
यदि नोपशमं गच्छेद्देत् पादकनिष्ठिकाम् ॥ ४८॥
गृश्वसीत्यादि—जद्द्याः सकाशात् गृष्ठसीं किनष्ठायामगुलौ श्रवतार्थिति
योजना। कण्डरा किनष्ठागुलिसङ्गाः स्थूलिशरा । इन्द्रवितारिह गुल्कजङ्क्योर्म-

तगरस्य शिफां साद्गी पिष्ट्वा तकेण यः पिवेत्। वङ्क्तणानिलरोगार्च स क्तणादेव मुच्यते॥ ४६॥ ' तगरम्येत्यादि—तगर पिख्डतगर ॥ ४६॥

दशमूलीकषायेण पिवेद् वा नागराम्भसा ।

'कटीश्र्लेषु सर्वेषु तैलमेरएडसम्भवम् ॥ ४० ॥

दशमूलीत्यादि—दशमूलीकाथनागरकाथी एरएडतैल प्रक्षित्व पिवेत् । नागराम्भ इति श्रत्यन्तसामताया वोध्यम् ॥ ४० ॥

विश्वाच्यां खञ्जपङ्ग्वोश्च दाहे हर्षे च पादयोः।
कोष्टुशीर्षे विकारे च विकारे वातकगटके।
शिरां यथोक्कां निर्विध्य चिकित्सा वातरोगनुत् ॥४१॥
शिराव्यघ पाददाहे वातकगटकवत् किया॥ ४२॥
शतधौतघृतोन्मिश्चेर्नागकेशरकगटकैः।
थिष्टै प्रलेपः सेकश्च दशमूल्यम्बुनेष्यते॥ ४३॥

श्रातिष्य नवनीतेन स्वेदो हस्तादिदाहहा। श्रित्रतेष्ठप्रकाखराडं काञ्जिकैः परिषिच्य तु। तद्वाष्पस्वेदनं कार्य्यं पादहर्पविनाशनम् ॥ ४४ ॥ दशमूलस्य निर्य्यूहो हिड्गुपुष्करसंयुतः। शमयेत् परिपीतस्तु वातं भिन्भिनिसंहितम् ॥ ४४ ॥

शिरा यथोक्तामिति जिराज्यधिकध्यनितक्रमेण वातकोषभयादल्पमल्पन्न रक्त स्नाज्यम् । सञ्जपन्वादौ देशो नोक्तरंतन खडादिष्यि रक्तावृतवातेवदनाया अङ्गादिन मन्धिगतंव शिरा व्यथ्या भवतीति भानुमती ॥ ५१—५५॥

गुग्गुलुं कोण्डुशीर्षे च गुडूचीत्रिफलाम्भसा। चीरेणैरण्डतेलं वा पियेद्वा वृद्धदारकम् ॥ ४६ ॥ रक्षावसेचनं कुर्यादर्भात्णं वातकण्टके। पियेदेरण्डतेलं वा दहेत् स्वीभिरेव वा ॥ ५७ ॥ ५ कुप्रसैन्धवयो कल्कश्चुकतैलसमन्वितः। सुखोष्णो मईने योज्य खल्लीश्रूलनिवारणः॥

गुग्गुलुमित्यादि-पर्यडकायेन त्रिफलाकायेन वा शोधियता गुग्गुलुर्माद्य । प्रत्य स्रव्यतिलेन पिथ्वा गुग्गुलु प्रदेष्य । चीरेणेत्यादि-चतुर्शुणेन दुन्धेन एर्यडतैल पेयम्, 'बहुदोपे विरेकार्य जीर्थे चीरान्नमोजनम् दत्यादि वाग्मट-दर्शनात् । पिवेदा वृद्धदारकमिति अन्नापि चीरेणेति योज्यम् ॥ ५६--५७॥

स्राल्ट्यां स्निग्धाम्ललवर्षे स्वेद्मदीपनाहनम् ॥ ४= ॥ मल्ट्यामित्यादी भन्तमिति काश्विकम् ॥ ५= ॥-

### श्रादित्यपाकगुगगुलुवटकः

पृथक् पलांशा त्रिफला पिष्पली चेति चूर्णितम्। दशम्लार्म्बुना भाव्यं त्वगेलार्द्धपलान्वितम्॥ दन्वा फलानि पञ्चैव गुग्गुलेवर्टकीकृतः। एप मांसरसाभ्यासाद्वातरोगान् विशेपतः। इन्ति सन्ध्यस्थिमद्धस्थान् वृत्तमिन्द्राशिर्वयथा॥ भान्यद्रन्यसमं काथ्यं काथोऽष्टांशस्तु तेन च ॥ श्रार्द्रे याविद्दनं भान्यं सप्ताहं भावनाविधिः॥ ४६॥

पृथगित्यादी—त्वगेलयोमिलित्वाद्धंपल बोध्यम्, श्रत्र त्रिफलादिगुग्गुल्वन्त सर्वमेकोक्कत्य वोध्यम्। भाव्येत्यादि काथविशेष । तेनेति श्रष्टांशरोषकाथेनाद्रं कृत्वा दिनैक यावद्भाव्यम्, भावनाविधिसमाप्तिस्तु सप्ताहादिति । इयञ्च परिभाषा वाग्मट-मतानुसारिणी, तेनास्या श्रमूलकत्व नाशद्भनीयम् । वृन्दस्तु 'लेहवद्दिगुणे-नायमालोक्य चातपे स्थित । दशमूलाम्बुना शोध्य सप्तवारञ्च गुग्गुलु ' इत्युक्त-वान्, तत् पुनरनार्थमिति निश्चल ॥ ५६॥

> त्रयोदशाङ्गगुगुजुः श्राभाश्वगन्धा ह्युषा गुडूची शतावरी गोच्चरवृद्धदारकम्। रास्ना शताहा सशटी यमानी सनागरा चेति समैश्च चूर्णम्॥ तुल्यं भवेत् कौशिकमत्र मध्ये देयं तथा सर्पिरतोऽईभागम्। श्चर्डाचमात्रन्त्वथ तत् प्रयोगात् कृत्वानुपानं सुरयाथ यूषे ॥ मद्येन वा कोष्णजलेन वाथ क्वीरेश वा मांसरसेन वापि॥ कटीग्रहे गृधसिबाहुपृष्ठे हनुष्रहे जानुनि पादयुग्मे । सन्धिस्थितं चास्थिगते च वाते मजाश्रिते सायुगते च कोष्टे॥ रोगान् जयद्वातकफानुविद्धान् वातेरितान् हृद्यहयोनिदोषान्। भग्नास्थिविद्धेष्ठ च खञ्जवाते त्रयोदशाङ्गं प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥ ६० ॥

٠,

त्रयोदशाङ्गगुलौ श्राममिति स्वनामस्यात विश्वजद्रव्यम् । इत्या म्वनामग्याता । मैमेरिति सैमेभीगैरुपलचितम् । तुल्य भेवेत् कौशिकमिति समुदितसर्वन्यंसमो गुग्गुलुरित्यर्थ । श्रतोऽर्द्धमागमिति कौशिकार्द्धमागम् । भिषजस्तु यावता
ध्रतेन गुग्गुलो पेषण भवति तावदेव ध्रत गृह्नन्ति । सुराधनुपानभेदो देषिभदापेचया ॥ ६०॥

जित्वावरकमग्रे तु वाते वातहरं हितम् ॥ ६१ ॥
श्रन्नावृते तदुन्नेस्तां दीपनं पाचनं लघु ॥ ६२ ॥
सुप्तिवाते त्वसृद्ध्योत्तं कारयद्वहुशो वुधः ।
दिह्याच्य लवणागारधूमस्तैलविमर्दिते ॥ ६३ ॥
सन्वेपादाष्ट्रतवातिकित्नामाह जिल्लेति—श्रावरक्तिति वायोरावरको यो
रेषस्तम् । तदुन्नेस्त इति श्रन्नस्य वमनम् ॥ ६१—६३ ॥

सिंप्स्तैलवसामजापानाभ्यञ्जनवस्तय ।
स्वेदा क्रिग्धा निवातञ्ज स्थानं प्रावरणांनि च ॥
रसाः पर्यासि भोज्यानि स्वाद्धम्ललवणानि च ।
यहणं यत्तु तत् सर्वे कर्चव्यं वातरोगिणाम् ॥ ६४ ॥
मिंपिरलादि क्रियास्त्र चरुकस्य ॥ ६४ ॥

पटोलफलकैर्यूपो चृष्यो वातहरो लघुः।, वाट्यालककृतो युपः परं वातविनाशन ॥ ६४॥

वाट्यालककृतों यूपः परं वातिवनाशन ॥ ६४ ॥
पटोलफलकैरित्यादी, तथा वाट्यालककृतो यूप इत्यादी—पूपयीनित्वान्मुद्रादशेऽपि वोध्या , अन्य तु केवलयोरेन पटोलफलवाट्यालकयोयूपविवेत्याहु ॥ ६५॥

वलाया पञ्चमूलस्य दशमूलस्य वा रसे। श्रजाशीर्षाम्बुजानूपकव्यादापिशितैः पृथक् ॥ साघियत्वा रसान् स्निग्धान् दध्यम्लव्योपसंस्कृतान्। भोजयद्वातरोगार्त्तं तैर्व्यक्षलक्ष्णैर्नरम्॥ ६६॥

वलाया इत्यादि—वलाविभिस्तिमि साथनद्रव्येरजाशीर्पादयस्तु चत्वार पृथक् साध्या , तेन द्वादश रसा मवन्ति । वलादिभिर्द्धश्वत कृत्वा तेन मासरम कर्ग्याय दत्याहु । अन्ये तु प्रास्थिकेऽम्मसि कर्षमान वलामूलमनुरूपमजाशीर्पमामञ्च प्रविष्य पाचनीयम् , परिशिष्टे पलचतुष्टये सित विक्षेण छानयित्वा परिमर्जनीयम् । तटनुमैन्थवाम्लदाधित्रिकटून्यनुरूपाणि दत्त्वा सस्कार्य्यम् । एव वृहत्पच्चमूलेन च माधनम् । अजाशीर्षवत् कूर्मकर्कटायम्बुजाना मामेन, तथा मिहपवराहादीनामानू-पाना मासेन, तथा क्रन्यादाना मासेन रससाधन कुर्य्यादिति ॥ ६६ ॥

पञ्चमूलीवलासिद्धं चीरं वातामय हितम् ॥ ६७ ॥ पञ्चमूलीत्यादि—स्वल्पा पञ्चमूली ॥ ६७ ॥

वाजिगन्धा वलास्तिको दशमूली महौषधम्। दे गृधनक्यौ रास्ना च गणो मारुतनाशनः॥ ६८॥

वाजिगन्धेत्यादौ--वलास्तिस्र इति वला, ऋतिवला, नागवला चेति ख्याता.। श्रत्र वला पीतपुष्पा, ऋतिवला धतपुष्पा, नागवला गोरचलगडुला । गृध्रनखीदय श्रेतरक्षपुष्पभेदात्। गणस्वादनेन सर्वा काथादिकलपना कार्या ॥ ६८॥

. कोलं कुलत्थं सुरदारु रास्ना माषातसीतैलफलानि कुष्टम्। वचाशतोह्न यवचुर्णमम्ला

न्युष्णानि वातामयिना प्रदेहः ॥ ६६ ॥

कोलिमत्यादि—कोल वदरफलम् , श्रतसी तिसीति भाषा, नैलफल र्तल-विशिष्टफलम् । एतानि समभागचूर्णानि काञ्जिकन पिष्ट्वा तर्प्ताकृत्य लेपो देयः ॥ ६६ ॥

श्रानूपवेशवारोष्णप्रदेहें। वातनाशनः । निरस्थि पिशितं पिष्टं स्विन्नं गुडघृतान्वितम् । कृष्णामारेचसंयुक्तं वेशवार इति स्मृतः ॥ ७० ॥ भानूपवेशवार इति वराहादिमामकृत । तस्य पारिभाषिकी सज्ञामाह निरस्थिति ॥ ७० ॥

### शाल्वग्रस्वेदः

काकोल्यादिः संवातम् सर्वाम्लद्रव्यसंयुतः । सानूपमांसः सुस्विन्नः सर्वस्नेहसमावृतः । सुस्रोष्णः स्पष्टलवणः शास्त्रणः परिकार्तितः॥ तेनोपनाहं कुर्वीत सर्वदा वातरोगिणाम्॥ वातम्रो भद्रदावादिः काकोल्यादिस्तु साँधृतः । मांसेनात्रापघं तुल्यं यावताम्लेन चाम्लता । पद्वी स्यात् खद्रनार्थञ्च काञ्जिकाद्यम्लभिष्यते । चतुं सेद्वोऽत्र तावान् स्यात् सुखिन्नन्तं यता भवत् ॥ समस्तं वर्गमर्ज्ञं वा यथालाभमथापि वा । प्रयुक्जीतेति वचनं सवत्र गणकर्मणि ॥ ७१ ॥

गाल्वएम्बेडमन्ह् काकोन्याडिरिरमान्-निकान्याडिरिवि काकोल्याडि-गण । बात्र इति महरावंशिकास्य नद्य । नवंत्रहत्य काश्विक सुन नीकाः न्तुपादकाहि । मानृपमान इति, श्रानृपाद्य गृत्ररादय । सर्वेन्टहाः मर्पिनंत्व-मामञ्जान । उपनाह शन उप्पादहुलप्रलेप । उक्तमेव शाल्वग्रमेव विवृद्योनि बातव इत्यादि । मीश्रुत इति विभेषात्रेन सुश्रुतोक्षकाके ल्याहिनयो बाह्य न पुनर्ष्टवर्गम्हित इति । वृद्धमाश्रुते तु काकोल्यादिर्यया 'काकोर्ल्या मधुकामेदे नीववयमकी सह । ऋ देवृदिन्तुगाची पुरडरीक नमपद्मनम् । बीवनी मामृता प्रशं मुद्दोका नेति कुत्रनित् । कानोल्यादित्य पित्तगोरितानितनागन. दित । महदार्वाहिर्यथा 'महदारु निमे मार्गी बन्दो मेपशृहिका । जटा मिएटी चाच-गनी बगगोजु तर्दुना । अर्की श्रद्धा गरिका युस्तृग्द्धारमभेदक । वरी स्थिग पाटनास्क् वर्षामुबद्धको यव । महदार्वादिनित्येष गर्यो वातविनारान. रहि । मासेनात्रीपत्र तुल्यमिति काकील्यादि महदावादिगएइयमीप्य मामेन तुल्य बाह्मम् यथानामपेद्रेडिप मान तुल्य देयम् तेन व तापहम् । मृन्द्रन्ताह भ्यन्तादिमिख म्कार्यं काकोल्यादित्रय त्रिमि ' दति। अत्यार्थ -अम्लादिमि अम्लाहेहरुव्यार्क मंत्कार कार्य । मत्कारलाटम त्रय तावन्यात्र टेय यावडम्नस्मिरधूनवरान्वमात्र न्यादित्पर्ध । काकोल्यादिन्तथा महदावादित्तथान्पुपमासम् पद्रत्रयन्तु न्स्कार्यम् । मस्कार्व्यन्वादन्य प्राधान्यम् तेन त्रयमेव मन्कार्व्यत्वात् प्रत्येक नुल्यमागमिति । दावनान्तेन चान्नता पट्वी स्गाडिति प्रुराच्डात् ईप् प्रन्यद॰ न्याडिति व्यक्तिः काञ्चिकादिशन्ताव मुरानीवारतुयोदक्य न्यान्नद्रियन्त्वन्तिकाके लादीना अद्यान 11 49 11

> अक्षगन्धाद्यं घृतम् अश्वगन्धाकषाये च कल्के चीरचतुर्गुण्म् । घृनं पक्षनतु बातम्नं बृष्यं मांसविर्वदनम् ॥ ७२॥

श्रथगन्धार्षेतं चतुर्गुगुचीरसाष्ट्रचर्यादश्वगन्धाकाथोऽपि चतुर्गुग् । कल्को-ऽप्यथगन्थाया एव ॥ ७२ ॥

> दशमूलाद्यं घृतम् दशमूलस्य निर्च्यूहे जीवनीयैः पलोन्मितै । चीरेण च घृतं पकं तर्पणं पवनार्त्तिजित् ॥ काथोऽत्र त्रिगुणः सर्पिःप्रस्थः साध्य पयःसमः॥ ७३॥

दशमृलएन दशमूलकाथोऽपि त्रिगुण, चीरन्तु सिहसममिति चक । जेज-टमन तु सिहाशतुर्गुण काथ चीर सि सममिति। श्रसित्रथें परिभाषा 'एकदिति-द्रवेद्रेश्ये कुर्यात् तिहचतुर्गुणम्। चीर तिहमम दणाचतुर्भिश्च चतुर्गुणम् 'हति। श्रस्मार्थ — यत्रको द्रव नन्न तेनैव चातुर्गुण्यम्, यत्र तु द्वी वा तत्र द्वाभ्याम्, यत्र नयस्तत्र त्रिभिरिति चातुगुण्य मिलित्वा, चीरन्तु सिहसमम्, चतुर्भिरिष् मिलित्वैव चातुर्गुण्यम्, पव मर्वत्र व्याख्येयम्। जावनीयैरित्यत्र जीवनीयदशकम्, श्रमुक्तस्व्यत्वादनेनैव कल्क ॥ ७३॥

### छागलाद्यं घृतम्

श्राजं चर्मविनिर्मुक्तं त्यक्तश्रह खुरादिकम् ।
पञ्चमूलीइयञ्चैव जलद्रोणे विपाचयेत् ।
तंन पादावशेषेण घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
जीवनीयैः सयण्ट्याहैः जीरञ्चैव शतावरीम् ॥
छागलाद्यमिदं नाम्ना सर्ववातिवकारनुत् ॥
श्रादिंते कर्णश्रले च वाधिय्ये मूकमिन्मिने ।
जडगद्रद्पंगूनां खंखे गृधसिकु ज्जयोः ।
श्रपताने ऽपतन्त्रे च सिर्पेरतत् प्रशस्यते ॥
द्रोणे द्रव्यतुलाश्रत्या स्याच्छागदशम्लयो ।
पृथक् तुलार्द्ध यण्ट्याह्मद्धयं देयं द्विधाकित ॥ ७४ ॥
श्राज वर्मविनिर्मुक्तमित्यादि — वर्मादिहीन तरुणच्छागमास द्वाविशत्यलमान
गृहांत्वा, दशम्लञ्च द्वाविशत्यलमान जलद्रोणे पक्तव्यामत्याह वृन्द । चक्रस्लाह
त्यक्तश्रह खुरादिकमिति श्रहणयोग्यतादर्शनार्थन्, न पुनगक्रतिमानश्रहणार्थेच

श्रत पञ्चाशत्पलानि मासस्य दशम्लस्य च, श्रतपत वस्यीत द्रीण इति, पत्र
मयूरादिषु धतेष्वपि । वृद्धवेद्यव्यवहारस्त्वाकृतिमानेन । केचित्तु शतावर्था कल्यन्
माहु रसस्यानुके , तदयुक्तम्, यतः कल्कद्रव्यमध्ये नीक्ष , श्रत चीरसाहचर्येण
रसी याद्यः । चीर-शतावरीरसा प्रत्येक लेहसमी । यध्याहृद्धय देय द्विभोक्षित
इति स्थलजनलजमेदेन यष्टिमधुद्धय ब्राह्ममित्यये । वृन्दस्तु ' वृत तैले च योगे च
यद्द्वय पुनरुच्यते । तज्ज्ञातव्यमिहार्थेण मागते। हिगुणन च ' इति वचनाल्
यष्टिमधुने। भागद्वय ब्राह्ममित्याहु । व्यवहारस्तु वृन्दोक्तमेतेनव ॥७४॥

## एलादितैलम्

एलामुरासरलशैल जदारकौन्तीस्रवाशटीनलद्वम्पकहेमपुष्पम् ॥
स्र्यौग्रेयगन्धरसपूतिदलामृगालश्रीवासकुन्दुरुनलाम्बुवराङ्गकुष्ठम् ॥
कालीयकं जलदककेटचन्दनश्रीजीत्याः फर्तं सविकसं सहकुङ्कुमञ्च ।
पृक्वातुरुष्कलघु लाभतया विनीय
तैलं बलाकथनदुग्धयुतञ्च दथ्ना ।
सार्द्धं पवेचु हितमेतदुदाहरन्ति
चातामयेषु वलवर्णवय प्रकारि ॥ ७४ ॥

एलत्यादि—कीन्ती रेणुकम्, चयडा चोरपुष्पी, नलद मासी, हेमपुष्प नागकेशरपुष्पम्, स्थीणय प्रन्थिपर्णम्, गन्धरसः स्वनामख्यात , पृति खट्टाशी, दल तेजपत्रम्, श्रमृणानम् जशीरम्, श्रीवासा नवनीतखे।िटः, कुन्दुरुः कुन्दुरु-खे।िटः, नख नखीः, श्रम्यु बालकम्, वराङ्ग गुडत्वक्, कर्कटः समुद्रकर्कटकः ; चन्दनश्री श्रतचन्दनम्, श्रन्य द्व श्रीः काष्ठखोदिरित्याहु , जात्याः फल जातिफलम्, सविकमीमिति विकसा मिखाष्ठा, पृक्षा पिडिकपुष्प (पिर्डि इति माषा) तुरुष्कः सिल्हक , लघु श्रगुरु । लामतयेति यथालाम द्रव्य मानञ्च प्राह्मम्, लम्यत इति लाम ,क्रमेणि धम्, नेष्ठ भावप्रत्य । विनीय-कल्कीकृत्य।तैलमुत्मर्गन प्रस्थपरिमितम्, बलाकथन बलाकाथ तस्य च प्रस्थद्वयम्, दुष्थ दिथ च प्रत्येक लेहसमम्, एव मिलित्वा चतुर्गुण पाक । अन्ये तु काथश्चतुर्गुण, दिध दुन्ध प्रत्येक लेहसममित्याहु । व्यवहार पुनरनेनैव। इदमेव तैलम् अन्ये पाकमेदेन पठिन्त, यथा, निलतेल श. ४, उपेचार्थ तिलतेल पल ४, पाकार्थ दिध श ४ दुन्ध श ४, कल्कार्थ मिलिष्ठा कर्ष १२, इति प्रथम पाक । काथार्थ वारियाला मूल पल ३२, पानीय शाः ३२, शेष श ६, कल्कार्थ रेणुका चोरहुल गन्धरस गुहन्त्वक् शठी तेजपत्र उशीर कुड मुणा पृका सरल शैलज बला ऐषा प्रत्येक कर्ष १, इति द्वितीयः पाक । तृतीयपाके तु कल्कार्थ एलाचि मुरा चम्पककालिका आढकी नागेश्वर गाठियाला खद्दाशी नवनीतखेटी कुन्दर नखी श्वतचन्दनशोधितसमुद्र-कर्कट कालीयक जातीफल कुकुम सिल्हक अगुरु मासी कुढ एतत् सर्व चूणीकृय गन्धोदकेन तैलसमेन तृतीयः पाक ॥ ७४ ॥

## बलाशैरीयतैले

वलानि काथकल्काभ्यां तैलं पकं पयोऽन्वितम् । सर्ववातविकारझमेवं शैरीयसाधितम् ॥ ७६॥

नलातेले नलाकाथस्त्रिगुण , चीरन्तु स्त्रहसमम्। अन्य तु नलाकाथश्चतुर्गुण , दुग्थन्तु भृतसममित्याहुः। एन शैरीयतैलम् ॥ ७६ ॥

## महावलातैलम्

वलामूलकषायस्य दशमूलीकृतस्य च।
यवकोलकुलत्थानां काथस्य पयसा तथा॥
श्रष्टावण्टो शुभा भागास्तैलादेकस्तदेकतः।
पचेदावाप्य मधुरं गणं सैन्धवसंयुतम्॥
तथागुरु सर्जरसं सरलं देवदारु च।
मिश्रष्टां चन्दनं कुष्ठमेलां कालानुशारिवाम्॥
मांसीं शैलेयकं पत्रं तगरं शारिवां वचाम्।
शतावरीमध्वगन्धां शतपुष्पां पुनर्नवाम्॥
तत् साधुसिद्धं सौवर्णे राजते मृरमयेऽिप वा।
प्रिचित्य कलशे सम्यक् सुनिगुतं निधापयेत्॥
वलातैलिमदं नाम्ना सर्ववातिवकारनुत्।

यथावलमतो मात्रां स्तिकाये प्रदापयेत्।
या च गर्भायिनी नारी ज्ञीणगुमश्च यः पुमान् ॥
ज्ञीणवाते मर्महतेऽभिहते मथितेऽपि वा ।
भन्ने श्रमामिपन्ने च सर्वयैवोपयोजयेत् ॥
सर्वानाचेपकादीश्च वातव्याधीन् व्यपोहति ।
हिक्काकासमधीमन्थं गुल्मश्वास सुदारुणम् ॥
पर्णमासानुपयुज्यैतदन्त्रवृद्धिगपोहति ।
प्रत्यप्रधातुः पुरुपा भवेच स्थिरयावन ॥
पतिद्ध राह्मा कर्त्तव्यं राजमात्राश्च ये नराः ।
सुखिन सुकुमाराश्च धनिनश्चेव ये नराः ॥ ७७ ॥

वलामूलकपायस्यत्यादि — मुश्रुतस्य । अत्र दशमूलम्य मिलित्वेव काथ, यत्र केलकुलत्थानास्य मिलित्वा अपरकावस्य, एव वलाक्षेत्रेन मह त्रयः काथाम्नथा पय- स्थित द्रवचतुष्टयम् । एमा चतुर्णा द्रवाणा प्रत्येक तेलप्रस्थेपचयाष्ट्रगुणा भाग एवज्र मिलित्वा तेलात् द्रात्रिशद् गुणा द्रवा भवित । तेलव्य मानविशेषानिर्दृशात् प्रस्थपरिमितमेव प्राह्मम् । एकत् इति एकाकृत्य । आवाष्य मधुर गग्मिनि काकोल्यादिगण्य कल्कोकृत्य । मैन्धवसयुतमिनि मैन्धवमगुर्वादि च कल्काकृत्य पक्तव्यम् । कालानुमारिवा तगरपादिका, तदमावे शियलाङ्घोषड । तगर पिण्य- तगरमृल, शारिवा श्यामलता, पुननवान्त कल्का । सुनिग्रुप्तमिति वातातपादिपरिष्ठा-रण मुष्टु रिवतम् । तैलियद सुश्रुते मृदगर्भे पिठत, तेन सितकाय प्रदापयेतित विशेषणीकम् । अन्त्रवृद्धिमपोहतीति अप्राप्तफलकोषामन्त्रवृद्धि व्यपोहतीति, प्राप्तफलकोषयो पुनरमाध्यत्वात् । राजमात्रा इति राज्ञ इव मात्रा परिच्छदे। येषा ने नथा । ७७॥

## विष्णुतैलम्

शालपर्णी पृश्निपर्णी चला च वहुपुतिका।
परएडस्य च मूलानि वृहत्यो पूतिकस्य च॥
गवेधुकस्य मूलानि तथा सहचरस्य च।
पपान्तु पलिकै कल्कैस्तैलप्रस्यं विपाचयेत्॥

श्राजं वा यि वा गव्यं चीरं दद्याचतुर्गुणम् ।
श्रस्य तैलस्य पकस्य श्र्णु वीर्घ्यमतः परम् ॥
श्रश्वानां वातमग्नानां कुञ्जराणां तथा नृणाम् ।
तैलमेतत् प्रयोक्तव्यं सर्वव्याधिनिवारणम् ॥
श्रायुष्मांश्च नर पीत्वा निश्चयेन दृढो भवेत् ।
गर्भमश्वतरी विन्द्यात् कि पुनर्मानुषी तथा ॥
हृज्छूलं पार्श्वश्रलञ्च तथैवाद्धीवभेदकम् ।
कामलापारहरोगमं शर्कराश्मरीनाशनम् ॥
चीर्णेन्द्रिया नष्टशुका जरया जर्जरीकृता ।
येषाञ्चव चयो व्याधिरन्तनृद्धिश्च दारुणा ॥
श्रियतं गलगरहञ्च वातशोणितमेव च ।
स्त्रियो या न प्रसूयन्ते तासाव्यव प्रयोजयेत् ॥
पतद्दं वरं तैलं विष्णुना परिकीर्त्तितम् ॥ ७८ ॥
शालपणीत्यादि—स्पष्टम् ॥७८॥

## नारायग्रतैलम्

बिल्वाग्निमन्थः श्योणाकः पाटला पारिभद्रक ।
प्रसारण्यश्वगन्धा च बृहती कण्टकारिका ॥
वला चातिवला चैव श्वदंण्ट्रा सपुर्ननवा ।
एषां दशपलान् भागांश्चतुद्रों णेऽम्भसः पचेत् ॥
पादशेषं परिस्नाव्य तैलपात्रं प्रदापयेत् ।
शतपुष्पा देवदारु मांसी शैलेयकं वचा ॥
चन्दनं तगरं कुष्ठमेला पणींचतुष्ट्यम् ।
रास्ना तुरगगन्धा च सैन्धवं सपुर्ननवम् ॥
एषां द्विपलिकान् भागान् पेषायत्वा विनिन्निपेत् ।
शतावरीरसञ्चेव तैलतुल्यं प्रदापयेत् ॥
श्राजं वा यदि वा गव्यं नीरं दत्वा चतुर्गुणम् ।
पाने वस्तौ तथाभ्यक्ते भोज्ये चैव प्रशस्यते ॥

श्रश्वो वा वातसंभग्नो गजो वा यदि वा नरः ।
पङ्गुल पीठसपीं च तैलेनानेन सिध्यति ॥
श्रधोभागे च ये श्राताः शिरोमध्यगतास्र्यं ।
दन्तग्र्ले हनुस्तम्भे मन्यास्तम्भे गलग्रहे ॥
यस्य श्रुप्यति चैकाहं गतिर्यस्य च विह्नला ।
चीथरा लक्षजिह्नास्र्य मन्दमेधस एव च ।
श्रात्पप्रजा च या नारी या च गर्भे न विन्दति ॥
वाताचीं वृपणो येपामन्त्रचृद्धिश्च टारुणा ।
पतत् तैलवरं तेषां नाम्ना नारायणं स्मृतम् ॥
तगरं नतमत्र स्थादभावे शीतली जटा ॥ ७६॥

नारायर्णतेले पारिभद्रक पालितामादार इति प्रमिद्ध , प्रसार्णा गन्धभादा-लिया इति ख्याता, ऋतिकला गेरच्यतप्हुला, तगर तगरपादिका, तदमावे शियलिछो-पड पिएटतगरम्लमित्यन्ये । आज व यदि वा गन्यमिति यद्यपि गन्याजपयमा प्राया गुण्माम्य तथा च गोचीरेण पक्ष तलमित्यनभिष्यन्दि श्रिटोपहर् अवर्तानि प्रत्येतन्यम् , अन्ये त्वाहु चीरान्तरनिवृत्त्यर्थे विशेषख्यापकमिति । नारायणमञ्जा चास्य विष्णुनिर्मितत्वाद् , शताबरीरससाधितत्वादा ॥ ७६ ॥

## महानारायखतैलम्

शतावरी चांश्रमती पृश्लिपणीं शटी वला।
परगढस्य च मूलानि चृहत्योः पृतिकस्य च।
गवेधुकस्य मूलानि तथा सहचरस्य च।
पपां दशपलान् भागान् जलद्रोणे विपाचयेत्॥
पादावरेषे पृते च गर्भञ्चनं समावपेत्।
पुनर्नवा वचा दारु शताहा चन्दनागुरु॥
शैलेयं तगरं कुष्ठमेला मांसी स्थिरा वला।
श्रश्वाहा सन्धवं रास्ना पलार्डानि च पेपयेत्॥

गन्याजपयसो प्रस्थों हो हावश्र प्रदापयेत्।
शतावरीरसप्रस्थं तैलप्रस्थं विपाचयेत्।
श्रस्य तैलस्य सिद्धस्य श्रःणु वीर्ध्यमत परम्।
श्रश्वानां वातभग्नानां कुञ्जराणां नृणां तथा।
तैलमेतत् प्रदातव्यं सर्ववातनिवारणम् ॥
शायुष्मांश्च नरः पीत्वा विश्वयेन दढो भवेत्।
गर्भमश्वतरी विन्द्यात् कि पुनर्मानुषी तथा॥
हञ्जूलं पार्श्वश्रलञ्च तथैवाद्धीवभेदकम्।
श्रप्यां गण्डमालाञ्च वातरक्तं हनुत्रहम्।
कामलां पाण्डरोगञ्च श्रश्मरीञ्चापि नाश्येत्॥
तैलमेतद् भगवता विष्णुना परिकीर्तितम्।
नारायणीमीति ख्यातं वातान्तकरणं परम्॥ ५०॥

महानारायणतेले ऋगुमता शालपणीं; पूतिकस्य नाटाकरण्य इति ख्यातस्य मूल श्राह्म; गवेषुक गोरक्ततपहुला, सहचरो क्तिपटी, शताह्वा शुल्का (सीया) इति ख्याती, चन्दन रक्तचन्दन, शेलेय रीलजं; तगर तगरपादिका, स्थिरा शालपणीं, ऋथाह्वा अश्वगन्था। एषा कल्काना प्रत्येक पलार्द्धम्। प्रस्थौ दौ द्वाविति पृथग् दौ दौ प्रस्थौ॥ ८०॥

# अश्वगन्धातैलम्

शतं पक्तवाश्वगन्घाया जलद्रोगेऽशंशेषितम्। विकाव्य विपचेत् तैलं त्तीरं दत्वा चतुर्गुग्म्। कल्केमृंगालशाल्क-विसक्षिञ्जल्कमालती-पुष्पेहींवेरमञ्जक शारिवाम्यकेशरैः॥ मेदापुर्निवादात्तामिञ्जष्ठावृहतीद्वये। पत्तैलवालुत्रिफला मुस्तचन्दनपद्मके॥ पकं रक्षाश्रयं वातं रक्षपित्तमस्म्वरम्। इन्यात् पुष्टिबलं कुर्यात् कृशानां मांसवर्दनम्॥

#### रेतोयोनिविकारझं व्रणदोषापकर्पणम्।" पण्डानिप चृपान् कुर्च्यात् पानाभ्यक्कानुवासनै ॥¤१॥

श्रश्वगन्धातिले श्रशरोपितमिति पादरोपितम् । शृणाल स्थूलशृणाल, विसन्तु स्वल्पशृणाल, विमरान्देन मृणालिनिर्गत प्रतान , किञ्चलक पद्मवराट , पद्मकेशरस्य उक्तत्वात् , श्रन्ये तु उत्पलिकन्जलकमित्याहु । मेदास्थाने सहिति पाठे सहा महा महा माषपणी ॥ ६ ।।

# मूलकाद्यं तैलम्

म्लकस्वरसं तैलं चीरद्ध्यम्लकाञ्जिकम् ।
तुल्यं विपाचयेत् कल्केंवैलाचित्रकसैन्धचे ॥
पिष्पल्यतिविषारास्ना-चिवकागुरुचित्रकै ।
मल्लातकवचाकुष्ठ-श्वदंष्ट्राविश्वभेषज्ञैः ॥
पुष्कराह्वशटीविल्वशताह्वानतद्यक्तिः ।
तत् सिद्धं पीतमत्युष्रान् हन्ति वातात्मकान् गदान् ॥=२॥

मूलकेत्यादि—चरकस्य । मूलकत्वरसादीनि चत्वारि द्रवाणि तैलममानि । बलाचित्रकमैन्धवैरित्यत्र बलाशिग्रुकमैन्धवैरित्येव पाठश्चरकेषु दृश्यते, अन्ये तु उभयत्र चित्रकदर्शनात् एकत्र चित्रकराच्डेनैरण्डमूल व्याचचते, तत्तु टीकाक्टाईनं व्याख्यातमिति ॥ ८२ ॥

# रसोनतैलम्

रसोनकल्कस्वरसेन पक्षं तैलं पिवेद् यस्त्वनिलामयार्त्त ॥ तस्याशु नश्यन्ति च वातरोगा ग्रन्था विशाला इव दुर्गृहीता ॥ द्र ॥

रमोनकल्कस्वरमेन पक्षमिति रसेानकाथकल्कान्यामित्यर्थ । श्रत्र स्वरम एव चतुर्गुख, अन्ये तु स्वरम केहमम, तोय त्रिगुखमिति । तथा वातरोगाः नस्यन्ति यथा विशाला दुर्गृहीताः अनिधगतवाक्यार्थाः असम्फूता वा अन्था शास्त्राखि ॥ ८३ ॥ केतक्याद्यं तैलम्

केतकिनागवलातिबलानां

यद् वहुलन रसेन विपक्तम्।

तैलमनल्पतुषोदकसिद्धं

मारुतमस्थिगतं विनिद्यन्ति॥

श्रनरुपवचनात् तत्र तुल्ये काथतुषोदके।

श्रल्कोऽपि भवेत् स्नेहो य साध्यः केवले द्रवे ॥ ८४ ॥

केतकीत्यादि—वाग्मटस्य । केतक्यादीनामितवलान्ताना भिलिताना काथ । बहुलेनेति घनेन, बहुलेनेति वचनात् श्रष्टभागावशिष्टत्व काथस्य, स च चतुर्रुण । श्रमन्पेति वचनात् काश्विकमिप चतुर्रुणमिति चक्र , श्रतोऽष्ट्रगुण पाक इत्यर्थ ॥ प्रश

# सैन्धवाद्यं तैलम्

द्वे पत्ते सैन्धवात् पञ्च शुगुरुवा ग्रन्थिक-चित्रकात्।
द्वे द्वे मञ्जातकास्थानि विशातिर्द्वे तथाढके ॥
श्रारनालात् पचेत् प्रस्थं तैलमतैरपत्यदम्।
गृध्रस्यूरुग्रहार्शोऽर्तिसर्ववातिवकारनुत्॥ ८५॥
सैन्थवाबे मञ्जातकास्थानि विशातिरित्याकृतिगणनात ॥ ८५॥

# स्वल्पमाषतैलम्

तैलं संकुचिते अयद्गो माषसैन्धवसाधितम् ।
वाहुशीर्षगते नस्यं पानञ्जीत्तरमक्तिकम् ॥
काथोऽत्र माषनिष्पाद्यः सैन्धवं कल्कमेव च ॥ ८६ ॥
स्वल्पमाषतैले माषसैन्धवसाधितमिति माषकस्य काथः, सैन्धवस्य द्व कल्क
इति चक्र । अन्ये द्व केवलसैन्धवस्य कुत्रापि कल्कादर्शनान्माषसैन्धवयोः कल्कः,
अनुक्षद्रवलाञ्जल चतुर्शुणमित्याद्व ॥ ८६ ॥

त्रथमं माषतैलंम्

माषात्मगुप्तातिविषोरुवूक-रास्त्राशताह्वालवणैः प्रपिष्टै । चतुर्रुणे मापवलाकपाये,

तैलं कृतं हन्ति च पत्तवातम् ॥ ८७ ॥

मापात्मगुप्तेत्यादौ श्रतिविषा मूर्नेति निक्षल , यष्टिमाध्वत्यन्य । मापवलयोश्च

मिलित्वा चतुर्गुण काय ॥ ८७ ॥

द्वितीयं मापतैलम्

माप्रस्थं संमावाण्य पचेत् सम्यग्जलाढकं ।
पादशेषे रसे तस्मिन् चीरं दत्वा चतुर्गुण्म् ॥
प्रस्थञ्च तिलतेलस्य कल्कं दत्वाचसम्मितम् ।
जीवनीयानि यान्यष्टौ शतपुष्पां ससैन्धवाम् ।
रास्नात्मगुप्तामधुकं चलाव्योपं त्रिकण्टकम् ॥
पचाघातेऽदिंते वाते कर्णश्ले सुटारुणे ।
मन्दश्रुतौ चाश्रवणे तिमिरे च त्रिदोपजे ॥
इस्तकम्पे शिरःकम्पे विश्वाच्यामववाहुकं ।
शस्तं कलायखंडे च पानाभ्यञ्जनवास्तिमि ॥
मापतेलिमदं श्रेष्ठमूद्द्वेजनुगदापहम् ॥ ८८॥
मापतेलिमदं श्रेष्ठमूद्द्वेजनुगदापहम् ॥ ८८॥
मापतेलिमदं श्रेष्ठमूद्द्वेजनुगदापहम् ॥ ८८॥

वृतीयं मापतैलम्

मापातसीयवकुरएटककएटकारीगोंकएटटुएटुकजटाकिपकच्छुतोयै ।
कार्पासकास्थिश्यायवीजकुलत्थकोलकार्थन वस्तिपिशितस्य रसेन चापि ॥
शुएट्या समागधिकया शतपुष्पया च
सेरएडमूलसपुनर्नवया सरएया ।
रास्नावलामृनलताकटुकैर्विपकं

मापाख्यमेतंद्वबाहुह्र्रञ्जतेलम् ॥ श्रद्धाङ्गरोपमपतानकमाढ्यवात- के क्रिक् मान्नेपकं सभुजकम्पशिर प्रकम्पम् ।

#### नस्येन वस्तिविधिना परिषेचनेन

हन्यात् कटीजघनजानुरुजश्च सर्वाः ॥ ८६ ॥

मापानमीत्यादी—अतसा वर्जुलकलाय , कश्चिदतिविषेत्याह , कुरय्थको
कियरी, गोकय्यको गोत्तुर , द्वयद्वकज्या श्योखाकमूल, किपक्क श्वक्ति।
शिम्बा । मापादिकिपिकच्छ्वन्तेनैकः काथ , कार्पासास्थिप्रमृतिना कोलान्तेनापर
काथ , कोलच्च शुक्तवदरम् । तथा वस्तिपिशितस्य छागमांसस्य काथस्तृतीय ।
त्रिभिद्रविभिलित्वा चातुर्गुय्यम् , 'ण्कद्वित्रद्वद्वय्ये कुर्य्यात् केष्ट चतुर्गुखम् '
दित्त वचनात् । सर्या प्रसार्या अमृतलता गुड्ची, कट्टक मरिच न तु लताकन्त्रो ॥ ८६ ॥

महामापतैलम्

मापस्याद्धिकं दत्वा तुलांद्धं दशमूलतः। '
पलानि च्छागमांसस्य त्रिंशद्द्रोणेऽम्भसं पचेत्॥
पूतशीते कपायं च चतुर्थाशावतारिते।
प्रस्थञ्च तिलतैलस्य पयो दत्वा चतुर्गुणम्॥
प्रात्मगुप्तोरुवृकश्च शताद्धा लवणत्रयम्।
जीवनीयानि मिक्षष्ठा चव्यचित्रककद्फलम्॥
सव्योपं पिष्पलीमूलं रास्नामधुकसैन्धवम्।
देवदार्वमृता कुष्ठं चाजिगन्धा वचा शटी।
पत्तरक्तमः कल्के साध्यन्मदुनाग्निना॥
पत्ताधार्तादिते वाते वाधिय्ये हनुसंग्रहे।
कर्णनादे शिरःश्ले तिमिरे च त्रिदोषजे॥
पाणिपाद्शिरोग्रीवाश्रमणे मन्दचंकमे।
कलायखञ्ज पांगुल्य गृप्रस्यामववाहुके॥
पाने वस्तौ तथाभ्यक्ते नस्यकर्णाचिपूरणे।
तैलमेतत् प्रशंसन्ति सर्ववातरुजापहम्॥ ६०॥

त्रिशतीयप्रसारणीयतेलम् समूलपत्रशाखाञ्च जातसारां प्रसारणीम् । कुट्टियत्वा पलशतं दशमूलशतं तथा ।

त्रभ्वगन्धापलशतं कटाहे समधित्रिपेत्। वारिद्रोणे पृथक् पक्तवा पादशेपावतारितम्। कषाया सममात्रास्तु तैलपात्रं प्रदापयेत्॥ द्रभस्तथाढकं दत्वा द्विगुण्ज्वापि काञ्जिकम्। चतुर्गुेशन पयसा जीवनीयैः पलोन्मिते ॥ श्वकृतेरपलान् पञ्च त्रिंशद्वज्ञातकानि च। द्वे पले पिष्पलीमूलाचित्रकस्य पलद्वयम्॥ यवत्तारपले हे चं मधुकस्य पलद्वयम्। प्रसारगीपले द्वे च सैन्धवस्य पलद्वयम्॥ सौवर्चलपले दे च मिल्लाया पलदयम्। सर्वाएयेतानि संस्कृत्य शनेमृद्धियना पचेत् ॥ पतदभ्यञ्जने श्रेष्ठं वस्तिकर्मनिस्हणे। पाने नस्ये च दातव्यं न कचित् प्रतिद्दन्यते॥ श्रशीति वातजान् रोगांश्चत्वारिंशच पैत्तिकान्। विश्रतिं श्रीध्मकांश्चेव सर्वानेतान् व्यपोहति ॥ गृप्रसीमस्थिभङ्गञ्च मन्दाग्नित्वमरोचकम्। श्रपसारमथोन्मादं विश्रमं मन्दगामिताम् ॥ त्वग्गताश्चेव ये वाता शिरासन्धिगताश्च ये। जानुसन्धिगताश्चैव पाद्पृष्ठगतास्तथा ॥ श्रश्वो वाताच सम्भग्नो गजो वा यदि वा नर । प्रसारयति यसाद्धि तसादेषा प्रसारणी॥ इन्द्रियाणां प्रजननी वृद्धानाञ्च रसायनी । पतेनान्धकचुण्णीनां कृतं पुंसवनं महत्॥ प्रसारशीतैलमिदं वलवणीयिवद्वनम्। श्रपनयति वलीपलितमुत्पाटयति पन्नाघातम्। वातस्तम्भं सर्वोङ्गगतं वातगुल्मञ्च नाशयति । एतदुपसेव्यमानः प्रसन्नवर्गेन्द्रियो भवति ॥ ६१ ॥ म।पस्यार्द्धांडकिमत्यादि — श्रद्धांडक द्वातिंशत् पलानि । श्रत्नापि पूर्वेवत् यष्टिमधुकस्य भागद्वयम् । लवणत्रयमिति सौवर्चल विड सैन्धवन्व, पुन मैन्धवमिति
बचनात् सैन्धवस्यापि भागद्वयम् । जीवनीयानि इति जीवनीयदशकम् ।
पाणिपादशरोभीवाश्रमण् इति पाणिपादादिकम्प इत्यर्थ ॥ ६०॥ ६१॥

# बृहन्माषतैलम्

माषकाथे बलाकाथे रास्नाया दशमूलजे।
यवकोलकुलत्थानां छागमांसमवे पृथक्॥
प्रस्थे तैलस्य च प्रस्थं त्तीरं दत्वा चतुर्गुण्म्।
रास्नात्मगुप्तासिन्धृत्थ-शताहैरण्डमुस्तकैः॥
जावनीयैर्वलाव्योषैः पचेदत्तसमैर्नुघः।
हस्तकम्पे शिरःकम्पे बाहुशोषेऽववाहुके॥
वाधिय्ये कण्श्रते च कण्नादे च दारुणे।
विश्वाच्यामिर्देते कुन्जे गृध्रस्यामपतानके॥
वस्त्यभ्यञ्जनपानेषु नावनेषु च दापयेत्।
माषतैलिमदं श्रेष्ठमूद्ध्वजन्नगदापहम्।
काथे प्रस्था षडेवात्र विभक्त्यन्तेन भाषिताः॥ ६२॥

मप्तप्रस्थमापतेले काथस्य प्रस्यस्थाप्यत्वान्मापादीना प्रत्येक प्रस्थो आद्यः । मिलितदशमूलप्रस्य , तथा यवकोलकुलत्थाना मिलित्वैन प्रस्यः । सर्वेत्रैन चतुर्गुर्खः अल देयम् , चतुर्मागोऽनशेष्य । श्रतप्रवाह काथप्रस्या पहेनानेत्यादि—जीवनी-वैरिति जीवनीयदशकै ॥ ६२ ॥

# महामाषतैलम्

द्विपञ्चमूर्ली नि काथ्य तैलात् षोडशभिर्युलै । माषाढकं साधियत्वा तं निर्य्यूहं चतुर्गुलम् ॥ ब्राहियत्वा तु विपचेत् तैलप्रस्थं पयःसमम् । कल्कार्थञ्च समावाण्य भिषग् द्रव्याणि बुद्धिमान् ॥ श्रश्यगन्धां शर्टा दारु वलां रास्नां प्रसारणीम् ।
कुष्ठं परूषकं भागीं हे विदाय्यों पुनर्नवाम् ॥
मातुलुङ्गफलाजाज्यो रामठं शतपुष्पिकाम् ।
शतावरीं गोचुरकं पिप्पलीमूलिवनकम् ॥
जीवनीयगणं सर्व संहृत्यैव ससैन्ध्वम् ।
तत् साधु सिद्ध विज्ञाय माषतेलिमइं महत ।
वस्त्रभ्यञ्जनपानेषु नावने च प्रयोजयेत् ॥
पद्माधाते हनुस्तम्भे श्रिदिते सापतन्त्रके ।
श्रववाहुकविश्वाच्योः सञ्जपंगुलयोरिप ।
हनुमन्याग्रहे चैव श्रधिमन्थे च वातिके ॥
श्रकत्त्रये कर्णनादे कर्णश्रले च दारुणे ।
कलायसञ्जरामने मैषज्यमिदमादिशेत् ॥
दश्मूलाढकं द्रोणे निःकाथ्य पादिकी मवेत् ।
काथश्चतुर्गुणस्तैलान्माषकाथेऽप्यं विधिः ॥ ६३ ॥

दिपन्चम्लीमित्यादि — अत्र मापस्य काथस्याढकमानत्वमुक्तम्, तत्माइ-चर्यादराम्लस्यापि काथस्याढक श्रेयम् । तैलात् पोडराभिगुंखैरिति तैलप्रस्यापच्या षोडरागुयाजलैरित्यर्थ , प्रस्य पोडरागुया सन् द्रोण मवति, तेन जलद्रोयोनत्यर्थ । मापढकन्च तैलाद्य पोडरागुर्योजेले साथियत्विति योज्यम् । त दराम्लकाथ तथा मापाकाथन्च तैलाचतुर्गुया यथा स्यात् तथा ग्राह्यित्वा तैलप्रस्य विपचेदिति योज्यम् । पय मममिति दुग्ध तुल्य तेन नवगुर्या पाक इति चंक्र । अतप्रव वच्यति दराम्लादक द्रोया इत्यादि । अन्ये तु दिपन्चम्लीं मापादकन्चैकीकृत्य जलद्रोयामान्नेया साथयित्याहु तन्मते पम्चगुर्या पाक । अपरे तु दराम्लकपायेगा तैलात् षोडरागुर्येन मापादक साथयि-त्वा तेन पादावरेषिया तैलप्रस्थपाक इत्याहु । अत्र पच्चे मिलितदश्यमुलपल २५६, जल-राराव २५६, रोषराराव ६४, किन्तु अय पच्चे चुढैर्जादियते कुत्रापि प्वविधकल्पना-या अदृष्टलात् । दे विदाय्यी विदारी कन्द चीरविदारी च, मातुलुङ्गफल मातुलुङ्गस्य फलम् । जीवनीयग्रामिति जीवनीयदराकम् ॥ ६३ ॥

## मजसेह:

प्राम्यान् पादेकानान्तु भिन्नास्थानि पर्वे ज्ञलं । तं स्नेहं दशमूलस्य कषायेण पुनः पचेत् ॥ जीवकर्षभकास्फोता विदारीकपिकच्छुभिः । वातम्रेजीवनीयेश्च कल्केर्द्वित्तीरभागिकम् ॥ तत् सिद्धं नावनाभ्यक्कात् तथा पानानुवासनात् । शिरापवीस्थिकोष्ठस्थं प्रखुदत्याशु मारुतम् ॥ ये स्यु प्रचित्तम् ज्ञानः चित्रशुक्रोजसश्च ये । वलपुष्टिकरं तेषामतत् स्याद्मृतोपमम् ॥ ६४ ॥

याम्यन्पौदकानामित्यादौ—दिग्रणचीरसाहचर्यादशम्लीक्वाथोऽपि दिग्रण पत याद्य ; अन्ये तु चतुर्श्रणिमत्यादुः । वातक्षेतिति मधुरलवणस्कन्धाद्युक्षेचीतहर-द्रन्ये मद्रदावीदिगणै । जीवकर्षमकयोः पुन पाठे भागद्वयम्बर्णार्थः । आस्फोता दाफरमालीति स्याता ॥ ६४ ॥

# चतुःस्नेहः

प्रश्च स्यात् त्रिफलायास्तु कुलत्थकुडवद्वयम् ।
कृष्णगन्धात्वगाढक्यो पृथक् पञ्चपलं भवेत् ॥
रास्नाचित्रकयोर्द्वे द्वे दशमूलं पलोन्मितम् ।
जलद्रोण पचेत् पादशेषं प्रस्थोन्मितं पृथक् ॥
सुरारनालद्ध्यम्लसीवीरकतुषोदकम् ।
कोलदाडिमवृत्ताम्लरसं तैलं घृतं वसाम् ॥
मज्जानञ्च पयध्यैव जीवनीयपलानि पट् ।
कल्कं दत्वा महासेहं सम्यगेनं विपाचयेत् ॥
शिरामजास्थिगे वाते सर्वोङ्गकाङ्गरोगिषु ।
वेपनान्तप्रतेषु तमभ्यक्ते भदापयेत् ॥ ६५ ॥

प्रस्य स्यादित्यादि—अत्र त्रिफलाया मिलित्वा प्रस्यः, कृष्णगन्धा शोभा--जनम् अस्यास्त्वक् मूलत्वक् । अन्ये तु कृष्णगन्धा शभीत्याहुः, तन्न जतूकर्णे "त्रिफ- लापम्य कुलत्थार्दं शिग्रुत्वगादकी" इत्यादि पाठात् । दशमूल पलोन्भितमिति प्रत्येक-म्। प्रन्थोन्मित पृथगिति सुरादीनां पयोऽन्तानां प्रत्येक प्रस्य इत्यर्थ । जीवनीय-पलानि पहिति मिलित्वा । मेहालेह इति चतु लेहस्य सन्ना ॥ ६४ ॥

कुब्जप्रसारगीतैलम्

प्रसारगीशत जुगगं पंचेत् तोयामेणे शुभे। पादशेषं समं तैलं दिध दद्यात् सकाञ्जिक्म् ॥ द्विगुणञ्च पयो दत्वा कल्कांन् द्विपलिकांस्तथा। चित्रकं पिष्पलीमूलं मधुकं सैन्धवं वचाम्॥ शतपुष्पां देवदारु रास्नां वारण्पिष्पलीम्। प्रसारएयाश्च मूलानि मासी भन्नातकानि च। पचेन्म्द्रिमा तैलं सर्ववातविकारनुत्॥ श्रशीति नरनारोस्थान् वातरोगान् व्यपोद्यति । कुन्जिस्तिमितपङ्गत्वं गृधसी खुडकार्दितम्।

हनुपृष्ठाशिरोत्रीवास्तम्भं वापि नियच्छति ॥ १६॥

कु व जममारणीतैले सममिति पादानारी एव नाथसमम्, आदक मित्यर्थः । दिध दद्यात् मकाश्रिकमिति दिषकाञ्जिके वैलसभे । तेन तैलदिषकाञ्जिकानां प्रत्येकमाढ-कम, द्विगुणम् पय इति भाडकद्रयमित्यर्थः । अन्य तु सकाञ्जिकमिति पयोविशेषण कृत्वा काञ्चिकस्यापि द्वेगुरायमिष्क्वन्ति, व्यवहारस्तु पूर्वेग्रैव । खुडको अन्धिवातः, मन्य त वातकण्टक इत्याहु ॥ १६॥

> त्रिशतीयप्रसारणीतैलम् प्रसारएयास्तुलामश्वगन्धाया दशमूलेत । तुलां तुलां पृथग्वारिद्रोखे पादावशेषिते ॥ तैलादकं चतु चीरं दाधितुल्यं द्विकाञ्जिकम्। द्विपलैर्प्रान्यकचारप्रसारएयक नैन्घवै । समञ्जिष्टान्नियच्ट्याहै. पत्तिकैर्जावनीयकै ॥ शुण्ठ्याः पंञ्चपलं दत्त्वा त्रिशद्भक्षातकानि च। पचेद्वस्त्यादिना वातं हन्ति सन्धिशिरास्थिगम् ॥

#### पुंस्त्वोत्साहस्मृतिप्रज्ञावलवर्णाग्निसिद्धये । प्रसारणीयं त्रिशती त्रज्ञं सौवर्चलन्त्विह ॥ ६७ ॥

प्रसार एयास्तुलामित्यादौ-दशम्लस्य मिलित्वा, तुला । पृथक् वारिद्रोण इति तिस्पु तुलासु प्रत्येक जलद्रोणदानमित्यर्थः । सैन्धवसान्निध्यादस्व मौवर्चल गृह्णित्व वृद्धाः । ग्रन्थ्यादीनां यष्ट्याह्यान्ताना प्रत्येक द्विपलम्, जीवनीयदशकन्तु प्रत्येक पलिकम् । त्रिशद् मल्लातकानीत्याकृतिमानात् ॥ ६७

# सप्तशातिकं प्रसारगीतैलम्

समूलपत्रामुत्पाट्य शरत्काले प्रसारणीम् । शतं ग्राह्यं सद्दचरात् शतावर्य्यः शतं तथा ॥ वलात्मगुप्ताश्वगन्धा-केतकीनां शतं शतम्। पचेचतुर्गुणे तोये द्रवैस्तैलाढकं भिषक् ॥ मस्तु मांसरसं चुकं पयश्चाढकमाढकम्। दध्यादकसमायुक्तं पाचयेन्यृदुनाग्निना ॥ द्रव्याणान्तु प्रदातव्या मात्रा चार्द्धपलोन्मिता। तगरं मदनं कुष्ठं केशरं मुस्तकं त्वचम्॥ रास्ना सैन्धवपिष्पत्या मांसी मञ्जिष्टयप्रिका । तथा मेदा महामेदा जीवकर्षभकौ तथा। शतपुष्पा व्याघनसं श्रुग्ठी देवाह्रमेव च। काकोली चीरकाकोली वचा भल्लातकं तथा॥ पेपयित्वा समानेतान् साधनीया प्रसारणी । नातिपकं न हीनञ्च सिद्धं पूर्तं निघापयेत्॥ यत्र यत्र प्रदात्व्या तन्मे निगदत श्रुणु ! कुञ्जानामय पङ्गूनां वामनानां तथैव च ॥ यस्य शुप्यति चैकाङ्गं ये च भग्नास्थिसन्धयः। वातशोणितदुष्टानां वातोपहतचेतसाम्॥ स्त्रीमद्यन्तीण्युकाणां वाजीकरण्युत्तमम्।

वस्तौ पाने तथाभ्यद्गे नस्ये चैव प्रदापयेत्। प्रयुक्तं शमयत्याशु वातज्ञान् विविधान् गदान्॥ध्म॥

ममूलपत्रामित्यादी—रात प्राव्यमिति प्रमारख्या इत्यर्थ । तथा शब्दात् महचराच शतमित्यन्वय । केतकी केन्नों इति ख्याता । पचेच्चतुर्गुखे तीय इत्यत्र पनोष्ट्रियागतमानत्वाचतुर्गुखतायस्य न हैगुख्यम् । अन्ये तु सम्यग् वीर्याधानार्थं हैगुख्यान् चतुर्गुखमष्टगुख गृहन्ति, इदन्तु न व्यवहारमिद्धम् । द्रवेरिति प्रमार्थ्यानी केतन्यन्ताना पादावशिष्टकाथे । चुक प्रह्ययधिकारोक्तविधिना कार्य्यमित्येके, अन्ये तु महाराजप्रसारख्या वच्यमाखेन विधिनत्याहुः । द्रव्याखामिति कत्कद्रव्याखाम् । अर्व्यपाशिका इति अर्व्यपत्रमाना । तगर पूर्ववद्याख्येयम्, केशर नागकेगरम्, मिल्रप्रयोद्या इति मिल्रप्रयाशस्यत्वाद् हस्व , यष्टिका यष्टिमधु । व्यावनया नयी, देवाह देवदान । महातकासहत्वे रक्तचन्दन देवम् ॥ ह्न ॥

एकादशशतिकं प्रसारखीतैलम्

शासामूलदलै प्रसारणितुलास्तिस्र कुरुएटात् तुले छित्रायाश्च तुले तुले रुबुकतो रास्नाशिरीपात् तुलाम्। देवाह्न इ सकेतकाद् घटशते नि क्वाथ्य कुम्भांशिके तोंये नैलघट तुपाम्बु कलसी दत्त्वाढकं मस्तुन ॥ शुक्राच्छागरसादथेज्जरसतः चीराच दःवाढकं पृक्षाकर्केटजीवकाद्यविकसाकाकोलिकाकच्छुरा-स्**दमैलाघनसारकुन्दुसरलाकाश्मीरमांसीन**सैं कालीयोत्पलपद्मकाह्मयनिशाककोलकग्रन्थिकै ॥ चाम्पेयाभयचे।चपूगकहुकाजातीफलाभीसभि श्रीवासामरदारुचन्दनवचाशैलेयसिन्धृद्भवै । तंलाम्भोदकम्टभरांघ्रिनलिकावृश्चीरकचोरके कस्त्रीदशमूलकेतकननध्यामार्थ्यगन्धाम्बुभि ॥ कौन्तीत।र्च्यजशत्तकीफललघुश्यामाशताद्वामयै महातित्रफलाव्जेकशरमहाश्यामाञ्चवङ्गान्वितैः। सव्योपैस्त्रिपलैमहीयसि पचनमन्देन पात्रे अक्षेना पानाभ्यक्षनवस्तिनस्यविधिना तन्मारुतं नाशयेत् ॥

सर्वाद्धांद्गगतं तथावयवगं सन्ध्यस्थिमज्ञाश्चितं श्रुष्मोत्थानथ पैत्तिकांश्च शमयेत्रानाविधानामयान्। धातृन् वृंहयति स्थिरञ्च कुरुते पुंसां नवं यौवनं वृद्धस्यापि वलं करोति सुमहद्धन्ध्यासु गर्भप्रदम् ॥ पीत्वा तैलमिदं जरत्यपि सुतं स्तेऽमुना भूरुहा सिक्का शोषमुपागताश्चफलिनः स्निग्धा भवन्ति स्थिरा । भग्नाङ्का सुदृढीभवन्ति मनुजा गावो हयाः कुञ्जराः ॥६६॥

शाखामूलटलरित्यादि--- श्रत्र तृतीया सहाथे विशेषणे वा । कुरुएटो नील-भिग्दी। रास्नाशिरीषयोर्मिलित्वा एका तुला। देवदारुकेतक्योरिप मिलित्वैव तुला । घटशत इति द्रोखशते, कुम्माशिक इति द्रोखद्रयशेषे, तदुक्त द्रोखद्रयन्तु र्ग्स स्याञ्जेयः कुम्मं म एव च । अन्य तु कुम्मो द्रोणिमित्याहु , 'नल्वणार्मखो-न्मानघटकुम्भकलमाः पर्य्याया इति वृद्धवाग्मटवचनात् कुम्मशब्दोऽत्र द्रोत्तु-पर्य्याय. । तेन कुम्माशिके इत्यस्य द्रोणशेषे इत्यर्थ., किन्तु व्यवहार. पूर्वेणैव । अत्र द्रव्यजलयो बहुनत्वारेकिस्मन् पात्रे काथा दुष्कर तेन द्रव्य विमन्य जल तदनुमारेख दत्त्वा कथनीयम् । तैलघट तेलद्रोखम् । तुषान्तुकलसाविति काञ्चि-कस्य द्राेणद्वयम् । शुक्तादीनाञ्च चारान्ताना प्रत्येकमादकम् । जीवकाध जीवनी-यदशकमष्टवर्गो वा, काकोल्या भागद्वय जीवनीयगणेऽप्यस्था पठितत्वात्, विकमा मिलिष्ठा, कच्छुरा ग्रुकशिन्बी, दुरालभेत्यन्ये, घनसार कर्पूरम्, कुन्दु कुन्दुरू-मज्ञकम् सुगन्धि गन्धद्रन्यम्, कुन्दुग्खेटिरिनि ख्यानम् । मरला सरलकाष्ट्रम्, न तु त्रिवृता, सुनिधद्रव्यान्त पठितत्वात् , एव अन्धिकमिष अन्धिपणीं, न तु पिप्पलीमूलम् उत्पलमप्युत्पलपुष्पं न तुं कुष्ठम् , तस्य वद्दयमाखत्वात् । चाम्पय चम्पकृतिलका, नागकेसुरो वा, अभयमुशीरम्, चीच गुडलक्, पूग पूगफलम्, प्गष्टक्तविगत्यन्य, कटुका लताकस्तूरी, अमीरु: शतमूली, श्रीवासी नवनीतखोटि चन्दन श्रेतचन्दनम्; तूल मिल्हकम्, कटम्मरा प्रमारसी वृक्षिकपन्नी वा, तस्या अधिर्मूलम् , दृक्षीर श्रेतपुनर्नवा, कच्चीरको गन्धराटी, ध्याम गन्धतृत्वम्, कौन्ती ' रेणुका, तार्स्यन रमाञ्जनम्, फल कट्फल मदनफल वा, लघु अगुरु, श्यामा प्रियगु., महाश्यामा श्यामालता, एषा प्रत्येक त्रिपलम्, न्योषस्य मिलित्वा त्रिपल याद्यम् । श्रत्र कल्कभूयस्त्वादेलादितैलवद्धमैर्गन्थद्रव्यै प्रथमः पाक , मध्यमस्तु दितीय ु उत्तर्भेन्तु तृतीय शति । अत्र गन्धवृद्धयर्थं कर्पूरकस्तूरीस्या पत्रकल्कः

कार्यः। पत्रकलकत्त्वसम्बाभे वाच्यम् । पत्रकलकस्य तु मानमत्र तैलानुरूपतः, सुगन्धितैलान्तरोक्तमानानुसागद्वा श्रेयम् ॥ ६६ ॥

# अष्टादशशतिकं प्रसारणीतैलम्

समूलदलशाखायाः प्रसारएयाः शतत्रयम् । शतमेकं शतावय्या श्रश्वगन्धाशतं तथा॥ केतकीनां शतञ्चेकं दलमूलाच्छतं शतम्। शतं वाट्यालकस्यापि शतं सहचरस्य च ॥ जलद्रोणशतं दत्वा शतभागावशेषितम् ॥ तच्छेषेण कषायेण कषायद्विगुणिन च । सुव्यक्तेनारनालेन द्घिमएडाढकेन च ॥ चीरश्रक्तेचुनिर्यासच्छागमांसरसाढकैः। तैलाद् द्रोणं समायुक्तं दढे पात्रे निघापेयत्॥ द्रन्यारि यानि पेष्याशि तानि वस्याम्यतः परम्। मज्ञातकं नतं शुरही पिप्पली चित्रकं शटी ॥ वचा पृक्का प्रसारएया पिष्पल्या मूलमेव च। देवदारु शताह्वा च स्दमैला त्वक् च वालकम्॥ कुङ्कमं मदमञ्जिष्ठा तुरुष्कं निखकागुरुः। कर्पूरकुन्दुरुनिशालवङ्गध्यामचन्दनम्॥ ककोलं नलिका मुस्तं कालीयोत्पलपत्रकम्। शटीहरेखुशैलेयश्रीवासञ्च सकेतकम्॥ त्रिफला कच्छुराभीरु सरला पद्मकेशरम्। भियंग्रशीरनलदं जीवकाद्यं पुनर्नवा ॥ दशमूल्यश्वगन्धे च नागपुष्पं रसाञ्जनम्। कडुकाजातिपूगानां फलानि शलकीरस ॥ भागांकिपत्तिकान् दत्वा शनैर्मृद्वप्निना पचेत्॥ विस्तीर्थे सुद्दढे पाते पाक्यैषा तु प्रसारणी।

प्रयोगः षड्विधश्चात रोगार्त्तानां विधीयते । भ्रभ्यक्कात् त्वग्गतं द्दन्ति पानात् कोष्ठगतं तथा ॥ पकाशयगते वस्तिर्निरूह सार्वकायिके। भोजनात् सूच्मनाडीस्थान् नस्यादृर्घ्वगतं तथा ॥ एतद्धि वडवाश्वानां किशोराणां यथामृतम्। पतदेव मनुष्याणां कुञ्जराणां गवामपि ॥ श्रनेनैव च तैलेन शुष्यमाणा महाद्रुमा सिक्का पुनः प्ररोहन्ति भवन्ति फलशालिन ॥ चुद्धोऽप्यनेन तैलेन पुनश्च तरुणायते ॥ न प्रसूते च या नारी सा च पीत्वा प्रसूयते। श्रप्रजः पुरुषो यस्तु सोऽपि पीत्वा सुतं लमेत्॥ श्रशीति वातजान् रोगान् श्रीष्मकान् पित्तजानिप । सांश्वपातसमुत्थांश्च नाशयेत् चित्रमेव तु ॥ पतेनान्धकवृष्णीनां कृतं पुंसवनं महत्। कृत्वा विष्णेर्विलञ्चापि तैलमेतत् प्रयोजयेत् ॥ काथे तुलाई रास्नायाः किलिमस्य च दीयते। भन्नातकासहत्वे तु तत् स्थाने रक्तचन्दनम् ॥ त्वक्पत्रपत्नमधुरी-कुष्टचम्पककोरिकाः । ग्रन्थिकोपौ मरुवकमधिकत्वेन दीयते॥ कर्पूरमददानब्च शुक्तगन्धोदकिकया। द्रव्यशुद्धिः पाकविधिर्भाविप्रसारगीसमः॥ १००॥

नमूलदलेत्यादि—दशमूलाच्छत शतिमिति विल्वादीनां दशाना प्रत्येक शतिमत्यर्थ. धृद्धा अत्र काथमध्ये राकादेवदारुगोरिष प्रत्येक पद्धाशत्पलानि प्रिक्षपन्ति, अत-एव चक्रोऽिष काथ तुलाईतित्यादि वच्यति। जलन्तु यथोक्तमेव देयं नत्विकम्। कषायदिगुणेनारनोलेन द्रोण्हयेनेत्यर्थ.। चीरादीना प्रत्येकमाढकम्। समायुक्तिमिति पद कषायेणेलादिभिस्तृतीयान्तैयोंच्यम्। प्रसारण्या अपि मूलिमिलन्वयः। त्वक् गुडत्वक्, मद.कस्तुरी, तुरुष्क सिल्हकः। गयदासस्तु अत्र तुरुष्क नखचोरकिमिति पठित्वा अगुरुखाने चीरपुष्प लिखित । उत्पलम् उत्पलपुष्प, ध्याम गन्धनुष्पम् । पत्र तेजपत्रम्, राटा गन्धन्याम्, श्रीवास नवनीतिखीटि । स्रकेतिकीमत्यत्र मेटगन्न भिति पठित्वा ण्डगजबीजमाह गयदाम । कच्छुरा श्कारिम्बीमूलम्, मरला मरल-काष्ठम्, पद्मिकेशर्षं पद्मिकेशल्कः, नलद मासी, जीवकाध जीवनीयदशकम्, नागपुष्प नागकेशरपुष्पचूर्णम्, कदुका लताकरत्री, फलानीति कदुकादिभिक्षिमि मम्बध्यते । राह्मकी स्वनामख्याता, रसो गन्धरमः । अत्र त्रिफलाया मिलित्वा प्रत्ययम्, ण्य जीवनीयदशम् लयोराप्, प्रत्येकन्तु त्रिपलभ्रहण् 'कल्कस्यातिवाहुल्यम् न्यादिति । अत्रापि कल्कभ्यस्त्वात् पूर्ववत् अधमे सुगन्धिद्रव्ये प्रथम पाक , मध्यमेग्तु दिन्तिय , उत्तमेरतृतीय इति । अत्रापि तृतीयपाको गन्धे। रक्षन्, केचिनु द्वितीय पाको-ऽपि गन्धोद्देने चच्छन्ति । अत्रापदेशादनुक्तमप्याधिक गन्धद्रक्य देयमित्याह त्वकपत्र-त्यादि, त्वक्पत्र तेजपत्रम्, पत्रन्तु तेजपत्रमहरामेव सुगन्धिपत्रम्, श्रीन्धयन्धिपर्णम्, कोपो जातिकोष । कर्पूरादिदानविधिमाह कर्पूरित्यादि ॥ १०० ॥

## महाराजप्रसारणीतैलम्

शतत्रयं प्रसारण्या द्वं च पातसहाचरात्।
श्रश्मगन्वैरण्डवला वरी राम्ना पुननेवा ॥
केतकी दशमूलञ्च पृथक् त्वक् पारिभद्रतः।
प्रत्यक्षमपान्तु तुला तुलाई किलिमात् तथा ॥
तुलाई स्पाच्छरीपाच्च लाज्ञायाः पच्चविशति ।
पलानि लोधाच्च तथा सर्वमेकत्न साध्येत् ॥
जलपञ्चाढकराते सपादे तत्र श्रेपयेत्।
द्रोण्डयं काञ्चिकञ्च पड्विंशत्याढकोन्मितम् ॥
जीरद्भो पृथक् प्रस्थान् दश मस्त्वाढकं तथा।
रज्जरमाढकौ चैव छागमांसतुलावये ॥
जलपञ्चचत्वारिंशत्प्रस्थान् पके तु शेपयेत्।
समदश रस-प्रस्थान् मिष्ठप्रकाथ एव च।
जडवोनाढकोन्माना द्रवेरतस्तु साध्येत्।
सुरुद्धितलतैलस्य द्रोणं प्रस्थेन संयुतम्॥

काञ्जिकं मानतो द्रेाणं शुक्तेनात्र विधीयते । श्राद्य एभिद्रवै पाक करको मल्लातकं कर्णा। नागरं मरिचञ्चैव प्रत्येकं पद्पलोन्मितम्। भन्नातकासहत्वे तु रक्षचन्दनमुच्यते ॥ पथ्याचधात्र्याः सरलं शताह्वा कर्कटो वचा । चोरपुष्पी शटी मुस्ताद्ययं पद्मब्च सोत्पलम् ॥ पिष्पलीमृलमञ्जिष्ठा साश्वगन्या पुनर्नवा । दशमूलं समुदितं चक्रमदी रसाञ्जनम्॥ गन्धतृणं हरिद्रा च जीवनीयगणस्तथा। एषां त्रिपलिकैभीगैराद्य पाका विधीयते॥ ्देवपुष्पीबोलपत्रं शत्त्वकीरसशैलजे। प्रियद्गंशीरमधुरीमांसीदारुवलाचलम्॥ श्रीवासी नलिका खोटि सूत्रमेला कुन्दुरुर्मुरा। नखीत्रयञ्च त्वक्पत्रीमपरां पृतिचम्पकम् ॥ मदनं रेखुका पृका मरुवञ्च पलत्रयम्। प्रत्येकं गन्धतोयेन द्वितीयः पाक इष्यते ॥ गन्धोदकन्तु त्वक्पत्री पत्रकोशीरमुस्तकम्। प्रत्येकं सवलामूलं पलानि पञ्चविशतिः॥ कुष्ठार्द्धभागोऽत्र जलप्रस्थास्तु पञ्चविंशति । श्रद्धीवशिष्टाः कर्त्तव्याः पाके गन्धाम्बुकर्माणि ॥ गन्धाम्बु चन्दनाम्बुभ्यां तृतीयः पाक इष्येत । कल्कोऽत्र केशरं कुष्ठं त्वक् कालीयककुड्समम्॥ भद्रश्रियं प्रन्थिपर्णं लताकस्तूरिका तथा। लवङ्गागुरुककोलजातीकोषफलानि च॥ एला लवङ्गञ्जली च प्रत्येकं त्रिपलोनिमतम्। कस्त्री पद्पलं चन्द्रात् पलं सार्द्धव्च गृह्यते ॥ वेधार्थञ्च पुनश्चन्द्रमदौ देयौ तथोन्मितौ।

महाप्रसारणी सेयं राजभोग्या प्रकार्त्तिता ॥ गुणान् प्रसारणीनान्तु वहत्येपा वलोत्तमान् । काञ्जिकं माननो द्रोणः श्रुक्षेनात्र विधीयते ॥ १०१ ॥

रातत्रयामिलादि-दरामूल पृथक् तुलेत्यन्वय , दशमूलस्य प्रत्येक शतपल आध्यम् । किलिम देवदार । लोधाच तथेति पञ्चविशति पलानीसर्थ । जलपञ्चादकशते सपाद इत्यादकशतस्य पाद पद्वविशत्यादकास्त्रेन जलस्य पत्रविशत्यादकाधिक पद्मशतादक मिलर्थ । तत्र रापयेद् द्रोणद्वयभिति तेपु द्रीलद्वय स्थाप्यमिलर्थ । यद्यपि कान्जिकस्य पटविशत्यादकास्तथापि काश्चिकद्रोणमात्रेण व्यवहार अन्यथा काञ्जिकस्येव गन्ध. स्यादिति श्रतएव चक्ता वच्यति काश्चिक मानता द्रायमिति । मश्चिष्ठाकाथ कुटवीना-दर्शात्मान इति पश्चनगरावपरिमित् । एभिद्रविरिति काथकाञ्चिकादिभि नागर शुरुठो। अत्र मञ्जानकामहत्वे तु रह चन्टन देयम् । श्वत एव वस्यति भन्नातके त्यादि। अस विभातकन् , पद्म पद्मपुष्पम् , उत्पल नीलोतपलम् दरामूल ममुदितमिनि, तेन दशमूलस्य मिलित्वा पलत्रयमित्यर्थ । चक्रमर्द एडगजनीजन् । जीवनीयी गण इति जीवनीयदराकन्। पथ्याचधात्र्य इत्यन्न त्रिफलायाश्च प्रत्येकमेव पलत्रय प्राह्मन् इह समुदितमिति पदाभावात् । हिनीयपाकमाह देवपुष्पीत्यादि-देवपुष्प्यादीना कल्क । देवपुर्मी टेबहुली, बोलो गन्धरस । शल्लकीरम शल्लक्या रम, अन्ये तु राह्मकीरसराब्देन कुन्दुकमाहु , यदुक्त शष्टार्णवे 'कुन्दुरस्तीद्यान्ध स्यात् भीषण राह्मकीरस ।' तन्मते भागदय कुन्दुर। । वला वालकम्, चल मिल्हक , खे।टि काष्ठखोटि । नर्खात्रयीमति यद्यपि पञ्चनस्या भवन्ति, यदुका <sup>।</sup>नर्खा पञ्चविधा द्येया गन्धार्थ गन्धतत्वरै । काचिद्रदरपत्रामा तथोत्पलदलाऽपरा । काचिदश्रसुरा-कारा गजकर्णसमाऽपरा । वराहकर्णमद्वाशा पद्ममी परिकीचिना' इति । तथाप्य-त्राचासु चतसपु मध्ये नखीत्रय आहाम्, वराटकार्णिकाया निषिद्धत्वात्, यथा---करिकर्ण तुरगखुर नाव प्रयुक्षात गन्थयोभेषु । घृषेषु वदरोत्पलपत्र न वराहकर्णमुम-यत्रापि ।' त्वक्पत्री नेजपत्रम्, पृति राष्ट्राणी, चम्पक चम्पककालिका, प्रत्येक पलत्रय-मिलन्वय , । गन्धीदके सक्पत्री तेजपत्रम्, पत्रन्तु सुगन्धि पत्रान्तरं तेजपत्रसदृश वाटियापत्रमिति ख्यातम् । वलामूल वाट्यालकस्य मूलम् । कुष्ठाद्वसाग इति कुष्ठस्य मर्दिद्वादरापलीमत्वर्थ । गन्थाम्बुचन्द्रनाम्बुग्यामिति गन्धाम्बु गन्धोदक तचीक्तमेव चन्दनाम्तु चन्दनमात्रेखाई शृतम्, भ्रन्ये तु सुपिष्टश्रीखरहचन्दनमिश्र वारिमात्र वदन्ति । नातीकीषफलानीति जातीकीषो रममार , तथा जातीफलकेल्थं । भद्र-

श्रिय श्वतचन्दनम्, लवङ्गछञ्जो लवङ्गवल्कलम्। चन्द्र कर्पूर्, वेषार्थं पत्रकल्कार्थम्। श्रस्य तेलस्य पत्रिका लिख्यते,--कृष्णतिलतेल श ६ =, प्रतिशत काथार्थ-गन्थ-भादालिया पल ३००, पीतिक्तस्यीमूल पल २००, ध्रमान्था १०० पल, एरएट-मूल पल १००, वारियालामूल १०० पल, शतमूली १०० पल, गस्ना १०० पल, पुर्ननवा ਾ ०० पल, केतकांमूल १०० पल, दशमूल प्रत्यक १०० पल, पालि-तमाटार छाल १०० पल, देवदारु ४० पल, शिरीधमूल ५०पल, लाचा २५ पल लोध २५ पल, पाकार्यं जल ३४३ शराव, समुदायेन तु जलशराव ८४०० द्रोखमानेन तु द्रोख १३१, श १६, सेरमानेन तु २२४००, प्रतिशत शेषश ५, पल १, तो ६, ममुदाय शेष १२८ शराव, शुक्त ६४ शराव, दुग्ध ४० शराव, दिध ४० शरान, दिधमस्तु १६ शरान, इत्तुरस ३२ शरान, छाग मास पल ३०० पल, पाकार्थ जलशराव १८०, शेष ६८ शराव, मिल्रष्टा ६० पल, पाकार्थ जल ६० शराव, शेष ग १५। कल्कार्थ-रक्षचन्दन त्रिकड एषा चतुर्णा प्रतिपल ६, हरीतकों, बहेडा, श्रामलकी, सरल, शलुफा, समुद्रकर्कट, काकडाश्रद्वीत्यन्ये वच, चोरहुली, शटी, नागरमुथा, केउंटामुथा, पद्मपुष्प, नीलोत्पल, विष्पलीमूल, मिं हा, अश्वगन्धा, पुनर्नवा, एडच्ची, रसाञ्चन, गन्धतृष्ण, हरिद्रा, जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, काकोली, चीरकाकोली, मुगानी, माधाणी, जीवन्ती, यिष्टिमधु एवा प्रत्येक पल ३, दरामूल मिलित्वा पल ३, इति प्रथम पाक । द्वितीयपाके गन्धकल्कार्थं—देवहुली, गन्धरस,तेजपत्र, राल्लकोरम, रैालज, प्रियगु, वीरणमूल, महुरी, जटामासी, देवदारु, वलामूल, मिल्हक नवनीतखोटि, नालुका, काष्ठखोटि, सूर्मला, कुन्दुरु, मुरा, बदरपत्र नखो, श्रश्रखुर-नखी, उत्पलपत्र नखी, तेजपत्र, पोयारा, खट्टाशी, चम्पककिका, मदनक, रेगुका, पिडिङ्गफूल, स्वल्पपत्र तुलसी, एषा प्रत्येक पल ३ । गन्धोदकार्थ तेजपत्र, पत्रक, वाटियापत्र, वीरखमूल, मुरा वरेलामूल एषा प्रति पल २५ कुष्ठ पल १२ तेला ४, पाकार्थ जल १०० शराव, शेष ५० शराव । अनेन गन्धोदकेन द्वितीय. पार्क तृतीयपाके कल्कार्थ-नागकेशर, कुड, गुडत्वक्, कलम्बक, कुकुम, श्रेतचन्दन, गाठियाना. लताकस्तूरी, लवड़, अगुरु, कक्षोल, रमवास, जातीफल, एलाची, लवहवाकल एषा प्रत्येक ३ पल, कस्तूरी पल ६, कर्पूर तोला १२। चन्द्रनोदकार्थ-अतचन्दन पल ५०, पाकाथ जल शराव ५०, शेप शराव २५ । श्रथवा सुपिष्टचन्दन जले गोलियेत्वा चन्दनोदक कार्यं, दिसीय-पाकोक्षगन्धोदक शराव २४ । तनस्तृतीयपाक्तवेधार्थं कर्पूर तोला १२, कस्तूरी पत ६,

ig

ण्व मिद्धे तेले कपूराहि पिष्ट्वा नच्चृर्णमन्प्रतेलञ्ज माजन हृन्वा मिश्रणीय, नदनु भिद्धोष्णमकलंतिलेन मन्यक् मिश्रायत्वा शरोवण पिवाय स्थापनायमिति वेधनविधि । गुणान् प्रमारणीनामिति पूर्वाक्षप्रमारणीतैलाना ये गुणान्नानव वलीत्तमानित्य पिकतेवन वहुत्वेनेत्यर्थ ॥ १०१॥

#### शुक्रकरणम्

श्रत्र शुक्रविधिर्मएड प्रस्थ पञ्चादकां निम्म । काञ्जिकं कुडवी दभो गुडप्रस्थोऽम्लम्लकात् ॥ पलान्यणी शोधितार्जात् पलपोडशकं तथा । कणाजीरकसिन्धृत्यहरित्रामारेचं पृथक् ॥ हिपलं भाविते भाएडे घृतेनाण्ट-दिनस्थितम् । सिदं भवति तच्छुकं यदावनार्थ्यं पृद्यते ॥ तदा देयं चतुर्जातं पृथक्षपत्रयोनिमनम् ॥ १०२॥

काक्षिकगण्डेनात्र शुक्त यात्विमत्त्रुक्तम्, अत्र यथा कर्त्तव्य तटाह् अत्रित्यादि । —
मण्टस्य मक्तमण्डम्य प्रम्थ । कुडवी द्वत्र इति द्वद्वे गुण्याच्छरावृद्वयम्। गृहरम्
प्रम्थ इति पोटग पत्नानि । अम्लम्लक कार्ष्टिकाध स्थिनमक्तिष्ठसमाग इति द्यवहर्ग्ति, अन्य तु काक्षिकम्थ मूलककन्त्रमाहु । शोधिताद्रीदिनि त्वसिहतार्द्वकात् ।
भाविने माण्डे प्रेनेनिन प्रेनेन भाविते माण्डे इत्यन्वय । इद मवं भाग्छे कृत्वा
अप्रदिन यावन् स्थित मत् शुक्त मिद्ध भविन, अप्रदिनानन्तर यदा नेले अप्युच्येन
तटा चतुर्जान दस्वा तेले देयम । अन्य तु प्रस्थ तण्डुलते।यन इत्यादिनैव शुक्त
कुवीन ॥ १०२ ॥

#### गन्धद्रव्यशुद्धिः

पञ्चपञ्चवतियेन गन्धानां ज्ञालनं नथा। शोधनञ्चापि संस्कारो विशेषश्चाव वन्यते॥ श्राम्रजम्बूकपित्थानां वीजपूरकविल्वयाः नान्यकर्मणि सर्वत्र पत्राणि पञ्चपञ्चम्॥ १०३॥ अवान्तरे गन्धद्रव्यशुद्धर्यं प्रकरणमाह पद्मपद्मवतीयेनेति॥ १०३॥

# नखीशुद्धिः

चरडीगोमयतोयेन यदि वा तिन्तिडीजलै । नखं संकाथयेदेभिरभावे मृरमयेन तु । पुनरुद्धृत्य प्रचाल्य भर्जियत्वा निषेचयेत् । गुडपथ्याम्बुना ह्येचं ग्रुघ्यते नात संशय ॥ १०४॥

नखीशुद्धिमाह चयडीत्यादि—चयडी महिषी, उक्त हि 'महिषी चाच्येत चयडी सीरभी च निगचते' इति । अस्या गोमय मलमित्यर्थ । महिषीमल सर्लि-लना नोड्य नख्या उत्स्वेदन कार्य्यमित्यर्थ , किन्तु गोमयेनाप्युत्स्वेद उक्त । 'गोविट् काञ्जितिचञ्चाम्लसुस्विन्ना' इति तिन्तिडीजलैरितिं निन्तिडीसलिले । लाभे मृयमये-नापि कृष्णमृत्तिकामिश्रितजलेनेत्यर्थ । उक्त हि 'काथयेत् करज कृष्णमृत्तिकामिश्रि-तजेल ।' समुदक्केटशुद्धिप्रकारोऽप्येव तत्रैवोक्तम् 'अनेनैव प्रकारेण शुद्धिमायाति कर्भट '॥ १०४॥

#### वचाशुद्धिः

गोमूत्रे चालम्बुषके पक्त्वा पञ्चदलादेके। पुनः सुरभितोयेन बाष्पस्तेदेन स्वेदयेत्। गन्धोत्रा ग्रुध्यते होवं रजनी च विशेषतः॥१०४॥

वचाशुद्धिमाह गोमूत्र इत्यादि — अलंग्नुषक इति अलग्नुषासिहतोदके, अल-म्नुषा च मुथिडरो । सुरिमितोय गन्धोदकम्, अनेन बाष्यसेदः कार्य्यं '। गन्धोदक स्थाल्या निचिप्य तदुपीर मच्छिद्र स्थाल्यनन्तर दक्ता मृदा स्थालीद्वयावकाशमालिप्य, मच्छिद्रस्थालीमध्ये वचा निचिप्य तत शरावेण पिधाय अधो ज्वाला देया इति वाष्यसेदिविधि । गन्धोया वचा रजनी च विशेषत इत्यनेन हरिद्राशुद्धिमपि वचा-शुद्धिविधयेव कुर्यादिति बोधयित ॥ १०५ ॥

#### . मुस्तकशुद्धिः

मुस्तकन्तु मनाक् चुएएं काञ्जिके त्रिद्विनोषितम् । पञ्चपल्लवपानीयस्त्रिनमानपशोषितम् ॥ गुड्गम्बुना सिच्यमानं भर्जयेच्चूर्णयेत् ततः । श्राजशोभाञ्जनजलैर्भावयेच्चेति शुध्यति ॥ १०६ ॥ मुस्तकशुद्धिमाह मुस्तकमित्यादि—मनाक् चुरुणमिति दरदिलतम् किञ्चिरेपि तम् अनस्य जल मूत्रम् ॥ ॥ १०६ ॥

#### शैलजशुद्धिः

काञ्जिके कथितं शैलं मृष्ट्वा पथ्यागुडाम्बुना । सिञ्चेदेवं पुनः पुण्पैविविधेरिधवासयेत्॥ १०७॥

रेशलजशुद्धिमाह काञ्जिक इत्यादि—शैलिमिति शैलज काञ्जिके विपाच्य पज-पञ्चवतीयेन चालनमित्युपदेश ॥ १०७॥

#### **ब**ङ्टाशीशुद्धिः

यथालाममपामार्गस्तुह्यादिद्यारलेपितम् । वाष्पसेदेन संसेद्य पूर्ति निर्लोमतां नयेत् ॥ दोलापकं पचेत् पश्चात् पञ्चपल्लयवारिणि । खलः साधुमिवोत्पीड्य ततो नि स्नेहतां नयेत् ॥ श्राजशोभाञ्जनजलैर्भावयेच्य पुनः पुनः । शिग्रुमूलं च केतक्याः पुष्पपत्रपुटे च तम् । पचेदेवं विग्रद्धः सन् मृगनामिसमो भवेत् ॥ १०८ ॥

खट्टारीाशुद्धिमाह यथालाभित्यादि—दोलापक्षमिति खट्टाराीगुडक वस्त्रेख पोट्टलीं वद्ध्वा पञ्चपञ्चवकाथमध्ये दोलावज्ञम्बमानां पचेत्, तत श्राकृष्य निष्पोट्ट्य नि केहता नेयत्, तदनु शोमाञ्चनादि काये वहुमा मानयत्। तदनु पिष्टशोभाञ्चन-मूलकृते पिग्डे तिश्रिषाय तदनु केतकीपुष्पपत्रवेष्टियित्वा कुरान बद्ध्वा पद्गेनालिध्य पुटपानेन पचेत्, तदनु जात्यादिनुसुमेराधिवामयेदित्युपदेश ॥ १० ॥

तुरुष्कं मधुना भाव्यं काश्मीरञ्चापि सर्पिषा।
रिधिरेणायसं प्राक्षेगोंमूत्रैश्रिन्थपर्णकम्॥
मधूदकेन मधुरीं पत्रकं तएइलाम्बुना॥ १०६॥
ईषत् चारानुगन्धा तु दग्धा याति न मस्रताम्।
पीता केतकगन्धाख्या लघुक्तिग्धा मृगोत्तमा॥ ११०॥
पक्कात् कर्प्रतः प्राहुरपकं गुणवत्तरम्।

ततापि स्याद् यदचुद्रं स्फाटिकाभं तदुत्तमम् ॥१११॥
पक्षश्च सदलं क्षिग्धं हरितद्युति चोत्तमम् ।
भङ्गे मनागपि न चेन्निपतन्ति ततः कणाः ॥११२॥
मृगोश्टक्षोपमं कुष्ठं चन्दनं रक्षपीतकम् ।
काकतुण्डाकृतिः क्षिग्धो गुरुश्चेवोत्तमोऽगुरुः ॥११३॥
क्षिग्धालपकेशरन्त्वस्रं शालिजो वृत्तमांसलः ।
मुरा पीता चरा प्रोक्षा मांसी पिक्षजटाकृतिः ॥११४॥
रेणुका मुद्गसंस्थाना शस्तमानूपजं धनम् ।
जातीफलं सशब्दश्च क्षिग्धं गुरु च शस्यते ॥११४॥
पला सुद्मफला श्रेष्ठा श्रियद्गुः श्यामपाण्डरा ।
नखमश्वखुरं हस्तिकण्डिचैव प्रशस्यते ॥
पतेषामपरेषाञ्च नवता प्रवलो गुण् ॥११६॥

सिल्हकादिशुद्धिमाह तुरुष्किमित्यादि । तुरुष्क सिल्हकम् । रुधिरैयोति कुकुः मेन श्रायसित्यगुरु, भाव्यमिति सर्वत्र योज्यम् । इटानीं गन्धद्रव्याया प्रशस्ताना लक्षणमाह ईषदिस्यादि—ईषत् चारगन्थेनानुगतो मृगो मृगमदः । रक्षपीतकिमितिः किञ्जिद्रक्षपीतसारम् । श्रस्त्रमिति कुकुमम् । शालिजः खट्टाशी॥ १०६—११६॥

## महासुगन्धि-लच्मीविलासतैले

जिङ्गीचोरकदेवदारुसरलन्याघीवचाचेलक त्वक्पत्रे सहगन्धपत्रकशटीपथ्याचघात्रीघने ॥ एते शोधितसंस्कृतेः पलयुगत्याख्यातया संख्यया तेलप्रस्थमवस्थितेः स्थिरमतिः कहके पचेद्रान्धिकैः॥ मांसीमुरामदनचम्पकसुन्द्रीत्वग्-

ग्रन्थ्यम्बुरुक्षरुवकैद्विपतैः सपृक्षैः। श्रीवासकुन्दुरुनखीनलिकामिसीनाम् प्रत्येकतः पत्तमुपार्ज्यं पुनः पचेनु॥ पत्तालवङ्गचत्वचन्दनजातिपूति- ककोलकागुरुलताघुस्योः पलार्द्धेः। कस्तूरिकाचमहितामलदीप्तियुक्तेः

पक्ता तु मन्दशिखिनैच महासुगन्धम् ॥
पञ्चिहिकेन वार्डेन मदात् कर्पूरामिण्यते ।
कर्पूरमद्योरर्द्धे पत्रकल्कादिहेण्यते ॥
पक्क्ष्त्रेऽज्युण्ण एव सम्यक् पेपणवर्त्तितम् ।
द्यितं गन्धनृद्धयर्थं पत्रकल्कं तदुच्यते ॥
प्रागुक्तौ शुद्धिसंस्कारौ गन्धानामिह तैः पुनः ।
हिगुणैर्लदमीविलासः स्याद्यं च तैलसत्तमः ॥
पञ्चपत्राम्युना चाद्यो हितीयो गन्धवारिणा ।
ततीयोऽपि च तेनैच पाका वा धूपिताम्युना ॥
तैलयुग्ममिदं त्र्णें विकारान् वातसम्भवान् ।
चपयेज्जनयेत् पुष्टि कार्नित मेधां धृतिं चियम् ॥ ११७॥

निर्द्रीत्यादि — जिङ्गी मिछा, न्याघा विह्नेति ख्यात सुगिन्यद्रव्यम्, नर्खात्य । चेलकत्वक् गुवाकश्चरय त्वक्; पत्र तेजपत्रम्, गन्धपत्र वाटियापत्रम् । पत्ययगन्तु प्रत्येकम् । गान्धिकैरिति गन्धविद्धिरित्यर्थ । पत्ते कर्त्के प्रथम पाक । दितीयपाकार्थं कर्त्कमाह मासीत्यादि — सुन्दरी प्रियगु ; त्वक् गुढत्वक्, प्रान्धि प्रान्धियाम्, अन्यु वालकम्, रुक् जुष्ठम्, निर्देशा पाक । तृतीयपाकार्थं कर्त्कमाह पत्तिकाम्, रुक् जुष्ठम्, निर्देशा पाक । तृतीयपाकार्थं कर्त्वमाह पत्तत्यादि । चतः सिरुहक्, चन्द्रन सित्यन्द्रनम्, जाति जातिफलम् पृति खट्टारी, लता लताकस्तुरी, पुस्प कुकुमम्, अचसित्ता कपपरिमितेत्यर्थं , अमलदीत चन्द्र तत्रामत्वाद् कर्प्रतित्यर्थं । पिमस्तृतीय पाकः । कर्पूर् कियन्मान प्राह्मीनत्यत साह पञ्चत्यादि — मदाद निर्दिष्टकस्तृरिका कर्पात्, पत्रधा विमकाद तत्रको मागा रिक्तकाद्द्याधिकमापत्रय भवति, तथा मानेन कर्पूरस्य ही मागा ग्राह्मानित्यर्थ । अत कर्प्रस्य रिक्तकाद्द्याधिकमापत्रय भवति, तथा मानेन कर्प्रस्य ही मागा ग्राह्मानित्यर्थ । अत कर्प्रस्य रिक्तकाच्याधिकमापत्रय सवित् तथा मानेन कर्प्रस्य ही मागा ग्राह्मानित्यर्थ । अत कर्प्रस्य रिक्तकाच्याधिकमापत्रय सवित् तथा मानेन कर्प्रस्य ही मागा ग्राह्मानित्यर्थ । अत कर्प्रस्य रिक्तकाच्याधिकमापत्रय सवित् कर्प्रस्य हित्त्वर्था । क्र्यं तेन तेन कर्तक्कि कियन्मानो कर्प्रस्य देयावित्यत आह कर्प्रस्योरित्यादि, इह तैलकन्के पत्रकरकाप पत्रकरकामानमपद्य कर्प्रमद्योरद्धिमिह तेले करकत्वेन हप्यते तेन तेल करक्करमानमोना कर्प्रमद्वा कर्प्रस्याद्धीपत्रक्ती पत्रकरके त्र तर्वेच्या दिगुर्खा कर्प्रस्तरे

देयाविति पत्रकल्कमानमि भङ्गया कथित भवित, तेन पत्रकल्के कस्तूर्या कर्षद्वम्, कर्पूरस्य तु श्रष्टरिक्तकाथिका द्वादश मापका किंवा कर्ष इति । पत्रकल्कशब्दस्यार्थ-माह पक्षपूत इत्यादि । पूर्वोक्ती गन्धाना शुद्धिमस्कारावश्रापि काय्यो तथा ते पूर्वोक्तमहासुगन्धितेलसाधनद्रव्ये जिड्ग्यादिभिद्धिंगुर्यर्यदि तैलमेतत् साध्यते, तदा इदमेव तेल लद्दमीविलाससज्ञकच्च भवतीत्याह प्रागुक्तावित्यादि ॥ पाकार्यम्भयोरिप तेलयोः क्रमात् द्रवद्रव्यमाह पञ्चपत्राम्बुनेत्यादि स्त्राष्ट्रपत्र अम्बूपत्र कपित्थपत्र विल्वपत्र वीजपूरकपत्रम्, एतत्मवमप्रगुण जल दत्त्वा चार्द्धभागावशेष पचेत् । गन्धादकेन तच्चोक्तमेव । धूपिताम्बुनेति श्रगुर्वादिधूपितजलेने-त्यर्थः ॥१२२॥

इति वातव्याधिचिकित्साविवृति ।

# ं अथ वातरक्तचिकित्सा।

वाह्यं लेपाभ्यङ्गसेकोपानाहैंर्वातशोणितम्। विरेकास्थापनस्नेहपानैर्गमभीरमाचरेत्॥ इयोर्मञ्चेदस्क् श्टङ्गसूच्यलावुजलौकसा। देशाहेशं व्रजेत् स्नाव्यं शिराभिः प्रच्छनेन वा।

वातव्याधिविशेषत्वाद्वातरक्षचिकित्सामाह वाद्यमित्यादि व्याद्यमित्युत्तान विद्यासाश्रयमित्यर्थ । गम्भीरन्तु मेद प्रमृतिधात्वाश्रय तथा चोक्ष 'त्वद्यासाश्रय-मुत्तान गम्भीरन्तवश्तराश्रयम् शहति । द्वयोरिति उत्तानगम्भीरयो । देशादेश अजोदिति त्थानान्तरप्रसर्वाशीलम्, श्रद्भग्लानाविति कार्श्ये ॥ १८॥

श्रमृतानागरघन्याक-कर्पत्रयेण पाचनं सिद्धम् । जयति सरक्तं वातं सामं कुष्टान्यशेषाणि ॥ २॥ श्रमृतेत्यादि-प्रत्येकमेकप्रर्षं गृहीता क्षंत्रयमिलर्थं ॥ २॥ वत्सादस्युद्धवः काथः पीतो गुग्गुलुसंयुतः। समीरणसमायुक्तं शोणितं सम्प्रसाधयेत्॥ २॥ । वत्सादनीत्यादौ-पीता गुग्गुलुम्युन इति शोधनार्थ प्रायेण गुग्गुली कर्षः, क्याँदै वा, मरामनार्थन्तु नापकचतुष्टयमितिः, एव मर्वत्र ॥ ३ ॥

वासागुङ्जीचतुरङ्गुलानामेरएडतैलेन पिवेत् कपायम् । क्रमेण सर्वोद्गजमप्यशेपं जयेदस्यवातभवं विकारम् ॥४॥ बामेखादी—चतुरङ्गुन शोनालुफलम् । नन्त्रान्तरमबाददिककाथ्यापेष्नया

द्वि उणमेवैर एडतेल प्रवेष्यमित्याहु ॥ ४ ॥

लीद्वा मुण्डीतिकाचूर्णं मधुसर्पि समायुतम् । छिन्नाकाथं पिवन् हन्ति वातरकं सुदुस्तरम् ॥ ४॥ लीद्वेलाडौ — मुण्डीतिका सुण्डितीन स्वाता ॥ ४॥

तिस्रोऽथवा पञ्च गुडेन पथ्या

जग्ध्वा पिवेच्छिन्नसहाकपायम्।

तद्वातरक्षं शमयत्युदीर्गः-

माजानुसम्भिन्नमपि ह्यवश्यम् ॥ ६॥

तिलोऽथवेति पुरुषमपेस्य ब्राकृतिमानात् तिल्ल पञ्च वा पथ्या. पिष्ट्वा सनगुडेन खादेत्, तदनु गुडूच्या कषायमनुपेयम् ॥ ६ ॥

> घृतेन वातं सगुडा विवन्धम् पित्तं सिताख्या मधुना कपञ्च । वातासगुग्रं रुवुतैलमिश्रा

शुरुवामवातं शमयेद् गुङ्कवी॥ ७॥——

ध्तेनेत्यादि—षद् योगा ॥ ७॥

गुडूच्याः स्वरसं करकं चूर्णं वा काथमेव वा प्रभूतकालमासेव्य मुच्यते वातशोखिनात्॥ = ॥ गुडूच्या सरमेन क्वायेन चूर्णेन वा॥ = ॥

दशमूलीश्वतं चीरं सद्य श्र्लिनवारणम् । परिपेकोऽनिलप्राये तद्वत् कोप्णेन सर्पिया ॥६॥ दशमूलीलादा —दशमूलीश्वत चीर परिषेक इति योज्यम्, न तु पेयम् ॥ श्रल वातरक्षप्रदेशे व्यथा । तद्ददिति परिषेक ॥ ६ ॥

पटोलकटुकाभीरुत्रिफलामृतसाधितम् । काथं पीत्वा जयेज्जन्तुः सदाहं वातशोणितम् ॥१०॥ पटोलेखीदी—कडुका कडुरोहिणीः, श्रमीरु शतावरी, श्रमृत गुड्ची । छान्दसत्वात् इस श्रय योग पिचोत्तरे ॥ १०॥

> गोधूमचूर्णाजपयो घृतश्च सच्छागदुग्घो रुबुवीजकल्कैः । लेपे विधेयं शतधौतसर्पिः

> > सेके पयश्चाविकमेव शस्तम्॥ ११॥ 🛶

गोधूमेलादि—गोधूमचूर्णं छागदुम्धष्टताभ्या सन्धाय कोष्ण कृत्वा वातो-त्तरे लेप , शीत रक्षोत्तरे । वृन्दे तु प्रस्मिन् योगे ष्टत न पठ्यते, तेन ष्टत विनाप्यय योग । सष्टत पुनरय चरके पठ्यते, यथा—' वाते सरके सष्टत प्रदेहो गोधूमचूर्णं छगलीपयश्च रहित । उभयमपि प्रमाण स्पृतिदेशवत् ॥ ११॥

लेपः पिष्टास्तिलास्तद्वद्भृष्टाः पयसि निर्वृताः॥ १२॥

लेप इत्यादी—निलान् दुग्धेन पिष्ट्वा तता मृष्ट्वा पुनर्दुग्धे निर्वापये-दित्यर्थ. वृद्धवाग्मटसवादात्, किन्तु खोलकभृष्टातिलान् दुग्धे निर्वापितान् तेनैव दुग्धेन पिष्ट्वा लेप इति व्यवहरन्ति वृद्धा. । तद्ददित्यनेन पूर्वोक्तयोगफलमित-दिश्यते ॥ १२ ॥

कडुकामृतयष्ट्याह्मश्रुएठीकल्कं समाचिकम् । गोमृत्रपीतं जयति सकफं वातशोखितम् ॥ १३ ॥

कटुकेलादि—कटुका कटुरोहिया। एषा चतुर्यो प्रत्येक द्विमाषक कल्की-कृत्य चतुर्माषकेस मधुना गोमूत्रपलार्द्धेन च पेयम् ॥ १३॥

धात्रीहरिद्रामुस्तानां कषायं वा कफाधिके । कोकिलाचामृताकाथे पिबेत् कृष्णां कफाधिके ॥ १४ ॥ पथ्यभोजी त्रिसप्ताहान्मुच्यते वातशोणितात् । कफरक्रप्रशमनं कच्छुवीसर्पनाशनम् ॥ वातरक्रप्रशमनं हृद्यं गुडघृतं स्मृतम् ॥ १४ ॥—— कोकिलाचे सादी — कोकिलाचमूल प्राह्मम् । हृष गुड शतिमिति श्राहार विद्याय गुड शतेनैव समभागेन सौहित्य कर्त्ते व्यमित्याहु । कच्छ्वा दृष्टफलमेतत् ॥ १४ — १५॥

संसर्गेषु यथोद्रेकं मिश्र वा प्रतिकारयेत् ॥ १६ ॥ सर्वेषु सगुडां पथ्या गुडूचीकाथमेव वा । पिष्पलीवर्द्धमानं वा शीलयेत् सुसमाहितः ॥ १७ ॥

# गुडूचीतैलम्

्र गुंडूचीकाथकल्काभ्यां पचेत् तैलं तिलस्य च । पयसा च समं पक्त्वा भिपङ्मन्देन चिह्नना ॥ हन्ति वात तथा रक्तं कुष्टं जयित दुस्तरम् । त्वग्दोपं व्रणवीसर्पकरहूदद्वविनाशनम् ॥ १८॥

ससर्गेष्विति । ससर्गेजेषु इन्द्रजेषु यथोद्रेकमित्येकदोपोल्वर्णे, मिश्रमिति सम-कुपिते ॥ १६—-१८ ॥

#### नवकार्षिकः

विफलानिम्वमिक्षिष्ठा वचा कटुकरोहिणी। वत्सीद्नी दारुनिशा कपायो नवकार्षिकः॥ वातरक्षं तथा कुष्ठं पामानं रक्षमग्डलम्। कुष्ठ कापालिकाकुष्ठ पानादेवापकपीति॥ पञ्चरिक्षकमापेण काय्योऽयं नवकार्षिकः। किन्त्वेवं साधिते काथे योग्या मात्रात्र दीयते॥ १६॥

नवकाधिके दारुनिशा दारुहरिद्रा । पद्मरिक्तकमापेया मानेन श्रिफलादीना नव कर्षान् गृहीत्वा श्रष्टगुर्योन जलेन काथ , किंवा च्यवहारिभिरेव नवकर्षे काथ कार्य । परन्तुं श्रत्र नायोग्यमात्रापेचया श्रिधक यस्त्वति तत् त्याज्यम् , एतदेवाह पन्नरिक्तकमापेयोत्यादि । श्रष्टगुर्याजलदानार्थेच वृन्देन कर्पादी तु पल यावदित्यादि परिभाषा लिखितेव ॥ १६ ॥

## गुडूचीघृतम्

गुङ्क् चीकाथकलकाभ्यां सपयस्कं श्वतं घृतम्। हन्ति वातं तथा रक्तं कुष्ठं जयति दुस्तरम्॥२०॥ गुङ्कचीष्टते काथश्रवुर्गुण, चीरन्तु स्नेहसमिति व्यवहरन्ति॥२०॥

## शतावरीघृतम्

शतावरीकल्कगर्भे रसे तस्याश्चतुर्गुणे । चीरतुल्यं घृतं पर्के वातशोणितनाशनम् ॥२१॥ एव शतावरीष्टतम् ॥ २१॥

# अमृताद्यं घृतम्

श्रमृता मधुकं द्राचा त्रिफला नागरं वला।
वासारग्वधवृश्चीर-देवदारुतिकएटकम् ॥
कटुका स्वरी कृष्णा काश्मर्थ्यस्य फलानि च।
रास्नाचुरकगन्धर्व-वृद्धदारघनोत्पत्तः॥
करुकेरेभिः समैः कृत्वा सिर्पे प्रस्थं विपावयेत्।
धातीरसं समं दत्वा वारित्रिगुणसंयुतम्॥
सम्यक्सिद्धन्तु विज्ञाय भोज्ये पाने च शस्यते।
वहुदोपान्वितं वातं रक्षेन सह मूर्विछ्नतम्।
उत्तानश्चापि गम्भीरं त्रिकजङ्घोरुजानुजम्।
कोष्टुशीर्षे महाग्रले चामवाते सुदारुणे॥
वातरोगोपसृष्टस्य वेदनाश्चातिदुक्तराम्।
मूत्रकृच्छुमुदावर्त्तं प्रमेहं विषमज्वरम्॥
एतान् सर्वान् निहन्त्याशु वातिपत्तकफोद्भवान्॥
सर्वकालोपयोगेन वर्णायुर्वलवर्द्धनम्।
श्राध्वभ्यां निर्मितं श्रेष्ठं घृतमेतदनुक्तमम्॥ २२॥

श्रमृतेत्यादी---वरी शतावरी तया सह वर्त्तमानेति सवरी । गन्धर्व, परग्रह , उत्पत्त नीलोत्पज्ञम् ॥ २२ ॥

# दशपाकबलातैलम्

वलाकपायकल्काभ्यां तैलं ज्ञीरचतुर्गुणम्। दशपाकं भवेदेतद्वातास्चग्वातिपत्तित्॥ धन्यं पुंसवनञ्चेव नराणां शुक्रवर्द्धनम्। रेतोयोनिविकारघ्रमेतद्वातिविकारन्तत्॥ २३॥

दशपाकवलातेले वलाकाथश्च तुर्गुण चतुर्गुणक्वीरसाह चर्यात् । तेलियद यथोक्तमानेन द्रवेण कल्केन च दश वारान् पक्तन्यम् वीर्थोत्कर्पार्थम् । श्रमेन पाकेन रेण्डक्रयोऽप्यत्र नात्ति, क्वारगतरोहन न्यूनमागपूरणात् । श्रयञ्च वृषुपाकोपदेश. प्रकृति
समसमवेतन्याध्यभिप्रायेण श्रेय । तेनान्यत्रापि प्रकृतिसमसमवेते न्याधी तलादिष्यनुकोऽपि बहुधा पाको वीर्थ्योत्कर्पार्थ युज्यत एव । विकृतिविषमसमवेते तु यथोदिष्टमेव
कार्थ्य मयोगराकेरिनिन्यत्वाद् । तस्मात् विकृतिविषमसमवेते न्याधिमिष्टमा व्याधिहरमेव
कार्थ्य मयोगराकेरिनिन्यत्वाद । तस्मात् विकृतिविषमसमवेते न्याधिमिष्टमा व्याधिहरमेन भेपज दीयत इति कृत्वा यथोदिष्टमेव कार्य्यम्, प्रकृतिममममवेते तु दोषज्ञयादेव
व्याधिचय इति दोषहरमेव मेपज दीयत इति, दोषप्रत्यनीकत्या श्रनुक्तमिष क्रियत
एव । नच दोपहरमेव व्याधिहरमिति वाच्यम्, वातकारिणापि खिदरेण वातिककुष्ठानुपरायप्रसक्तात्, खिटर हि वातजनकमिष कुण्डस्त्व प्रभावाद्वातिकमिष कुण्डमुपशमयिति,
न तु वातम् । किञ्च यदि दोषहरमेव व्याधिहरमिति स्वीकियते तदा प्रतिस्याधी वृष्ठ
प्रयोगकथनमिष सुनीना न्यर्थ स्थात् । तत्तहोषप्रत्यनीकभेषजगणकथनेनेवान्यथामिद्धः ।
तस्याद्वयाधिहरे सयोगस्य प्रधानत्वात् यथोक्तविध्यनुमरणमेव रारणम् । दोषहरे तु
वीर्य्योत्कर्पार्थमुक्तोऽजुको वा वृष्ठ्या पाकोऽिष दोषप्रत्यनीकतया युक्त प्रवेत्याष्ठु ।
किञ्च बहुवित्तन्ययायासमाध्यत्वात् वेदीनीयमनुगम्यते पन्या इति ॥ २३ ॥

# गुडूच्यादितैलम्

गुडूचीकाथदुग्घाभ्यां तैलं द्वाचारसेन वा। सिद्धं मधुककाश्मर्थ्यरसैर्वा वातरक्रनुत्॥ २४॥ गुडूचीलादि—गुडूचीलादि तैलत्रयमकल्कम्॥ २४॥

खुड्डाकपद्मकतैलम्

पग्नकोशीरयष्ट्याह्ररजनीकाथसाधितम् । स्यात् पिष्टै सर्जमाञ्जिष्ठावीराकाकोलिचन्दनै ।

## खुडुाकपञ्चकमिदं तैलं वातास्रदोषनुत्॥ २४॥

खुड्डाकपण्यकरेले वीरा चीरकाकोली । खुड्डाकपण्यक श्रेतपण्यम् ॥ २४ ॥

# नागबद्धातैलम्

शुद्धां पंचेन्नागबलातुलान्तु
विस्नान्य तैलाढकमत्र द्यात्।
श्रजापयस्तुल्यविमिश्रितन्तु
नतस्य यष्टीमधुकस्य कल्कम्॥
पृथक् पचेत् पञ्चपलं विपकं
तद्घातरक्षं शमयत्युदीर्णम्।
विस्तिप्रदानादिह सप्तरात्रात्
पीतं दशहात् प्रकरोत्यरोगम्॥
तुलाद्दव्ये जल्द्दोणो द्रोणे द्रव्यतुला मता॥ २६॥

नागवलातैले नागवला गोरचचाकुलियेति ख्याता। श्रजापयस्तैलतुल्य नत तगरपादिका॥ २६ ॥ \*

# पि**ए**डतैलम्

#### समधूच्छिप्टमञ्जिष्ठं ससर्जरसशारिवम्। पिगडतैलं तद्भ्यद्गाद्वातरक्षरजापहम्॥ २७॥

मध्िल्लहेलादि । मध्िल्लहं मधुसिक्थकम्; सर्जरसो धूनक , शारिषा अन-ध्तमूलम् । जलल्लात्र चतुगुग्गम् । पिग्डतेलभाषया चात्र वस्तादिप्तमेवैतए तैलं कर्त्तव्यमित्याहु ।वैद्यास्तु पूत्वैव ध्यवहरन्ति, किन्तु चरके समध्िल्लहेत्यादे । पूर्वम्, ध्रारनालाढके तेल पादसर्जरसं शृतम् । प्रभूते खिलत तोये ध्वरदाहाित्तातुत् परम् ' इत्युक्तम्, तेन श्रारनालाढकसाध्यतेल एव, सर्जरसस्थाने मध्िल्लहादीना ' प्रचेपादिप पिग्डतेलत्वमनेनोच्यते इति चन्न । जत्तुकर्गेऽप्युक्त 'कािक्षके सर्जरसश्त खिनतम् । बहुना जलेन दाहिहत विकसानन्तासिक्थकसर्जरसैर्युक्त मिथत षा हति ॥ २७॥ महापिएडतैलम्

शारिवा सर्जमिखछा यष्ट्रिसिक्थे पयोऽन्विनै । तैलं पकं विमिक्षिष्टं रुवोर्चा वातरस्तनुन् ॥ २८॥

श्रपरिपर्श्वनलक्ष्यमाह् गारिवेन्यादि—यष्टियष्टिमधुनम् । पयश्चतुर्ध्यपन्तु इहं द्रवान्तराभावात् । विमक्षिष्ठेरित्यादि तु तृनीय पिर्ण्यतनम् । विमक्षिष्ठं मिलिष्ठा-रहिते गारिवादिभि वन्के स्त्रोरेर्ण्टम्य तृष चतुरुखेन पयमा मह पक नत् श्रपर पिर्जनल भवतात्यथं । विमक्षिष्ठमिति पाठे कियाविगेषणम् ॥ २ म ॥

# कैशोरको गुग्गुलुः

,वरमहिपलोचनोटर-सिविभवर्णस्य गुगगुलो प्रस्थम्। प्रक्रिप्य नायराशौ विफलाञ्च यथोक्तपरिमाणाम् ॥ क्वार्विशच्छिन्नरुहापलानि देयानि यत्नेन । विपचेत् तदप्रमत्तो दर्व्या सङ्घट्यन् मुहुर्यावत् ॥ श्रर्द्धचयितं नायं जातं ज्वलनस्य सम्पर्कात् । श्रवतार्थ्य वस्त्रपृतं पुनरिप सम्पाचयेत् पात्रे ॥ सान्द्रीभृते तस्मिन्नवतार्थ्यं हिमोपलप्ररये। त्रिफलाचूर्णार्द्धपलं कर्प कर्प विवृहन्त्योः॥ पलमेकञ्च गुडूच्या दच्या मंमृच्छर्थ यत्नेन। उपयुज्य चानुपान यूपं तेायं सुगन्धिसलिलेन ॥ इच्छाहारविहारी भेपजमुपयुज्य मर्वकालमिटम्। तनुराधि वातशोणितमेकजमथ इन्डर्ज चिरोत्थञ्ज। जयति स्रुतं परिशुष्कं स्फुटितञ्चाजानुजञ्चापि ॥ वर्णकासकुष्टगुलमं श्वयथृहरपाग्हुमेहांश्च। मन्दाग्निञ्च विवन्धं प्रमेहपिडकाश्च नारायत्याग्र ॥ सततं निपेव्यमाण कालवशाद्धन्ति सर्वगदान्। अभिभृय जराटोपं याति हि कैशोरकं रूपम्॥ भत्येकं त्रिफलायस्था जलं तत पडाढकम्। गुडवद् गुग्गुलो पाकः सवन्धस्तु विशेपत ॥२६॥

कैशोरगुष्गुली वरमहिषलोचनोदरमन्निमवर्णस्येति लोहितवर्णस्यत्यर्थ, मत्तमहिषलीचनोदरवर्णो हि लोहित एव । त्रिफलाख यथोक्तपरिमाणामिति प्रत्येक प्रस्थामानाम् । छिन्नरुहा गुड्ची तस्या द्वात्रिशत् पलानि । एव मिलित्वा षरण्वति पलानि काथ्यानि । श्रत्र हि द्रवेद्देगुरयात् उत्मर्गमिद्ध जल दीयमान परण्वति-गरावपरिमिन भवति । षरणवातरारावैश्व पहादका भवन्ति । एतत् सर्वमिभाय वच्यति प्रत्येक त्रिफलाप्रस्थ इत्यादि-श्रन्य त्वाहु त्रिफलाञ्च यथोक्तपरिमाणा-मिति मिलित्वा प्रस्थमाना ममुदायप्रधानत्वात् निर्देशम्य । तेन गुग्गुलुप्रभृतीनि काथ्यानि मिलित्वा चतु षष्टिपलानि भवन्ति, तत्र चेात्सर्गसिद्ध जल चतु षष्टिशराव-मेव, चतु पष्टिशरावैश्व द्रोणो मवति, तेन तोयराशिशब्देनात्र द्रोण एव बोध्य इति। श्रत्र गुन्गुलु पुटक वद्ध्वा श्रपरे काथ्ये मह तोयराशो कथनीय ।पश्चात् गुन्गुल, विहाय काथ्य त्यक्त्वा सिद्धे तदुष्णकाथे पुनस्त गुग्गुलु सम्मिश्र्य पाचनीय यावत् वनीमनति, दर्वीप्रलेपेऽनतार्थ्य त्रिफलादिचूर्ण प्रचिपेदिति, ये तु गुग्गुल विहाय काथ करना पश्चात् सिद्धे कदुष्णकाथे गुग्गुल गालयन्ति, तन्न युक्त, गुग्गुली काथले-नोकत्वात । एव वच्यमाणामृताख्यगुग्गुलावि द्रष्टव्यम् । हिमोपलप्रख्य इति हिम-शिलावत् शाते । अत्र चित्थमव शक्त्युत्कर्ष वचनादुत्रीयते । अन्यत्र तु कोष्णे प्व चूर्णांना दान दृश्यते । श्रत्र त्रिफलाचूर्णार्द्धपल मिलित्वैव युज्यते, मानप्रधानत्वात् निर्देशस्य, प्रत्येकन्तु व्यवहरन्ति । त्रिकटेश्चूर्णं षडचपरिमाणमिति मिलित्वा। किामिरिपुर्विडङ्ग । यूष तोयमित्यादी वाशब्दी वोध्य । कशोरक रूपमिति किशोरी यावनोन्मखोऽधशावक ॥ २६ ॥

#### **अमृतागुग्गु**लुः

ध्रस्थमेकं गुहूच्यास्तु श्रईप्रस्थश्च गुग्गुलोः।
प्रत्येकं तिफलायाश्च तत्प्रमाणं विनिर्दिशेत्॥
सर्वमेकत्र संजुद्य साध्येत् त्वम्मेणेऽम्भिसः।
पादशेषं परिस्नाव्य पुनरसाविधश्चयेत्॥
तावत् पचेत् कपायं तं यावत् सान्द्रत्वमागतम्।
दन्तीव्योषविडद्गानि गुहूचीित्रफलात्वचः॥
ततश्चाईपलं पूतं गृह्वीयाच्च प्रति प्रति।
कर्षन्तु तिवृतायास्तु सर्वमेकत्न कारयत्॥

तिस्मन् सुसिद्धं विश्वाय कवोष्णे प्रक्तिपेद् बुधः । ततस्राग्निवलं श्वात्वा तस्य मात्रा प्रदापयेत् ॥ वातरक्षं तथा कुष्ठं गुद्जान्यग्निसादनम् । दुप्रव्रणप्रमेहांस्र सामवातं भगन्दरम् ॥ नाड्याद्यवातश्वयथून् सर्वानेतान् व्यपोहति । स्रश्विभ्या निर्मित पूर्वममृताख्यो हि गुग्गुलुः । स्रद्धप्रस्थ विफलाया प्रत्येकिमह गृह्यते ॥ ३०॥

श्रमृताख्यगुग्गुली तत्ममाणिमिति प्रस्थार्द्धम् । न्योषस्यार्द्धपलिमिति प्रत्येवम्, त्रिफलात्वच इति निरस्थित्रिफलाया प्रत्येकमर्द्धपलम् । तत्प्रमाणिमिति पदम्य।यनाद्द श्रद्धप्रम्य त्रिफलाया इत्यादि ॥ ३० ॥

# पुनर्नवागुग्गुलुः

श्रमृतायाश्च द्विप्रस्थ प्रस्थमेकञ्च गुग्गुलोः। प्रत्येक त्रिफलायस्य वर्षाभूप्रस्थमेव च ॥ सर्वमेतच संजुद्य काथयेत्रत्वेण्डम्मसि। पुनः पचेत् पादशेप यावत् सान्द्रत्वमागतम्॥ दन्तीचित्रकमूलाना कणाविश्वफलविकम्। गुद्भचीत्विग्वडद्गाना प्रत्येकार्द्धपलोनिमतम्॥ त्रिवृताकर्षमेकन्तु सर्वमेकत्र चूर्णयेत्। सिद्धे चेष्णे क्तिपेत् तत्र श्रमृतागुग्गुल्रोः परम् ॥ यथा चाग्निवलं खादेदम्लिपत्ती विशेपत । वातरक्षं तथा कुष्ठं गुदजान्यग्निसादनम् ॥ दुएव्रणप्रमेहाश्च सामवातं भगन्दरम्। नाड्याद्यवातं श्वयथून् हन्यात् सर्वामयानयम् ॥ श्रश्विभ्या निर्मितो ह्येषोऽमृताख्यो गुग्गुलुः पुरा ॥३१॥ पुनर्नवागुरगुली त्वक् गुडत्वक् । श्रमृतागुरगुली परिमत्यनन्तर भात्रामिनि शेष तेनपरिमलनन्तरममृतागुग्गुलोमीत्रा यथानहिषल खादेदिलर्थ । श्रमृतात्त्य-गुर्गुछ पुरेति श्रमृतीनर्मितत्वादमृतास्य । यद्यप्यमृतायागादमृतास्यगुरगु नुस्तथापि

पुर्नानवायोगात् पुर्नानवागुग्गुलुरिति नामान्तर, पूर्वोक्तामृताख्यगुग्गुलोर्व्यवच्छेदार्थं वा ॥ ३१ ॥

#### योगसारामृतः

शतावरी नागवला दृद्धदारकमुच्छा ।
पुनर्नवामृता रुष्णा वाजिगन्धा विकग्टकम् ॥
पृथग्दशपलान्येषां श्रुद्धचूर्णानि कारयेत् ।
तदर्द्धशर्करायुक्तं चूर्णं सम्मईयेद् बुधः ॥
स्थापयेत् सुद्धढे भागडे मध्वद्धाढकसंयुतम् ।
घृतप्रस्थेन चालोड्य विसुगन्धिपलेन तु ॥
तं खादेटिएचेएात्मा यथाविद्धवलं नरः ।
वातरक्तं च्यं कुष्ठं काश्यें पित्ताझसम्भवम् ॥
वातिपत्तकफोत्थांश्च रोगानन्यांश्च तिद्धधान् ।
इत्वा करोति पुरुषं वलीपितविजितम् ॥
योगसारामृतं नाम लच्मीकान्तिविवर्द्धनम् ॥ ३२ ॥

योगसारामृते तदर्द्वशर्करायुक्तमिति समुदितचूर्णार्द्धमाना शर्करा। त्रिसुगन्धि-पलेनेति प्रत्येकम् ॥ ३२ ॥

विवास्त्रप्राग्निसन्तापं व्यायामं मैथुनं तथा ॥
 कटूष्णगुर्वाभिष्यन्दिलवणाम्लानि वर्जयेत् ॥ ३३ ॥ ०००००
 वातरक्षे वर्जनीयान्याह—दिवास्त्रप्रेत्यादि ॥३३॥

# बृहद्गुडूचीतैलम्

तुलां पचेजालद्रोणे गुडूच्या पादशेषितम् । चरिद्रोणश्च ताभ्यान्तु पचेत् तैलाढकं शनैः ॥ कल्कैर्मधुकमिश्राजीवनीयगणस्तथा। कुष्ठैलागुरुमृद्वीका मांसी व्याघ्रीनखं नखी॥ हरेणु स्नाविणी व्योषं शताहा मृहशारिवे। त्वक्पेत्र वचविकान्ता स्थिरा चामलकी तथा॥ नतं कशरहीचेरपद्मकात्पलचन्द्रने ।
सिद्ध कर्पसमेभाग पानाभ्यद्गानुचासने ॥
पर वातास्त्रजान् हन्ति सर्वजानन्तर्गस्थितान ।
धन्य पुसवनं स्त्रीणा गर्भद वातिपत्तनुत् ।
स्वेदकराङ्करजापामा-शिर कम्पार्दितामयान ।
हन्याद् वण्कतान् दोपान् गुइचित्तसुत्तमम् ॥ ३४ ॥
इति वानरक्षचिकित्सा।

नुलामित्यादि ---म्पष्ट र् ॥३४॥ दात बातरक्षचिकित्साविष्टति ।

# ्अथोरुस्तम्भ-चिकित्सा ।

श्रेष्मणः च्चपण यत् स्यान्न च मारुनकोपनम् । नत् सर्व मर्वदा कार्य्यमूरुस्तम्भस्य भेपजम् ॥ १ ॥

्र न तस्य स्नेहनं कार्य्य न वस्तिनं विरेचनम्। ं मर्वो रूचः क्रमः कार्य्यस्तत्रादा कफनाशन ॥ पश्चाद्वातविनाशाय कृत्कः कार्य्य क्रियाकमः॥२॥

करुस्तम्भे महनादिनिषेवमाह न मस्येत्यादि—म्बहनिमिति पानान्यतान्यी किंवा केहनमिति वस्तिकमविशेषणे, तेनानुवासनिमत्यर्थ । विरन्यनगरनेनाथ वमनमपि वोध्यम्, कम्म्तम्भे वमनस्यापि निषिद्धत्वात् ॥ २ ॥

शिलाजतु गुग्गुलुं वा पिष्पलीमथ नागरम् । जन्दस्तम्भे पिवेनमूत्रैर्दशमूलिरसेन वा ॥ ३ ॥ शिलाजतुमित्यादि—शिलाजतु शोधितमेनोपयोज्याः । प्रत्येक शिलाजत्या- दीना गोमूत्रेण दशमूलीकाथेन वा पानम्॥ ३॥

मह्मातकेत्यादि — मह्मातकाादीभिर्दशम्लान्तिर्मिलित्वा काथ इत्याहु । पिप्प-लीत्यादि । पिप्पल्यादीना त्रयाणा काथो वा देय , पिप्पल्यादीना कल्क इति चूर्ण मधुसिहत वा अवलेहरूपतया देय, किंवा पिप्पल्यादीना चूर्ण, पानयोग्य मधु दत्त्वा पेयम् ॥ ४॥

त्रिफलाचव्यकदुकं श्रन्थिकं मधुना लिहेत्।
ऊरुस्तम्भविनाशाय पुर् मूत्रेण वा पिवेत्॥ ४॥
लिह्याद्वा त्रिफलाचूर्णं चौद्रेण कटुकायुतम्।
सुखाम्बुना पिवेद्वापि चूर्णं षड्धरणं नर ॥ ६॥
पिष्पलीवर्द्धमानं वा मान्निकेण गुडेन वा।
ऊरुस्तम्भे प्रशंसन्ति गएडीरारिप्टमेव वा॥ ७॥

त्रिफलेत्यादि—कडुक त्रिकडुकम् । पुरं मूत्रेण पिनेदिति । यद्यप्य योग शिलाजतु गुग्गुल नेत्यादिना पूर्वमेनोक्षस्तथापि सम्पूर्णक्षोकानुरोधात् पुनरप्यत्र लिखित । कडुकायुतिमिति त्रिकडुकयुत कडुरोहिणीयुक्त वा । षड्धरण वातन्या- वातुक्तम् । यद्यपि षड्धरण पिनेदित्येतावतेन सुखाम्बुना इति लम्मते, उष्णोदकेनैन षड्धरणपानस्य पूर्वमुक्तत्वात् , तथाप्यनन्तरोक्तचौद्रेण पानशङ्कानिरासार्थमेतदुक्त भनित । पिप्पलीवर्द्धमान नेति पिप्पलीवर्द्धमाननियमक्रमेण पिप्पली गृहीत्वा चूर्ण- वित्वा मधुना गुडेन वा महोपयुज्जीत । गण्डीरारिष्टमेनेति गण्डीर शमठः, स तु स्थलजो ग्राह्म. तीच्यालात् , तस्यारिष्ट सन्धान, तच गण्डीरशतपल जलद्रोणेन पक्ता पादावशेषे तास्मन् गुडतुलामावाप्य धातकीलोध्रालिसे कुम्मे सन्धानार्थम् , ईषदम्ल यदा मनित तदोपयोज्यम् , किंवा श्ररिष्टो निम्व । शमठनिम्बयोश्चूर्ण- मनन्तरोक्तेन मधुना गुडेन वा सहोपयोज्यम् ॥ ५—७॥

चव्याभयाग्निदारूणां समधुः स्यादृष्य्रहे । कल्को दिहेच मूत्राख्ये करञ्जफलसर्षपैः ॥न॥ चन्थेलादि-—ममधु क्षत्क पेय इति योज्यम् । दिऐदिलादि सर्पपेरिन्य त एको योग ॥=॥

> त्तौद्रस्पेपवल्मीकमृत्तिकासंयुत भिपक् । गाढमुत्साद्नं कुर्च्यादृष्ठस्तम्भे सलेपनम् ॥६॥ कफत्त्रयार्थ व्यायामेण्येनं शक्येपु योजयेत । स्थानान्याक्षामयेत् कल्यं प्रतिस्रोतो नदीं तरेत् ॥१०॥

उत्सादनमुद्वर्षनम् । स्थानानीत्युधप्रदेशात्रः, म्यलानीतिषाट म एवाथ । कल्यमिति प्रात्तः, नीम्जभित्यन्ये ॥ ६ ॥ १० ॥

# श्रष्टकद्वरं तैलम्

पलाभ्यां पिष्पलीमूलनागराद्ध्यस्य्वगः। तैलप्रस्थः समो द्धा गृधस्यूरुप्रहापदः। अष्टकद्वरतेलेऽसिस्तल सार्पपमिष्यते॥११॥

श्रष्टकट्वर्रतेल पलाभ्यामिति पिष्पलीमूलनागरादिति पिष्पलीमूलनागरथै। मिलित्ना पलदय मानप्रधानत्वाच् निर्देशस्य । चक्रोऽपि पिष्पल्यादिममुदायाच् पलाभ्यामित्याद् । दृन्दिटप्पयामिष पिष्पलीमूलनागरथे। प्रत्येकोमकपलमित्युक्तम्, निक्षलस्तु प्रत्येक पलद्वयम्, श्रथवा कत्कस्यात्यन्तमत्त्पीयस्त्व स्यादित्यादः । श्रष्टकट-त्रसिनि श्रष्टगुण कट्वर मस्नेद्दिपतिक यत्र ॥११॥

# कुष्टाद्यं तैलम्

कुप्टश्रीवेष्टकोदींच्यं सरल दारु केशरम्। श्रजगन्धाश्वगन्धा च तैलं ते सार्पपं पचेत्। सत्तोद्र मात्रया तस्मादूरस्तम्भादित पिवेत्॥१२॥

कुष्टित्यादी—वतुर्गुणजेलन पाम । श्रीवेष्टक नवनीतित्वादिः, श्रजगन्धा चत्रयमानी । सचीद्रमिति प्रचेपविधया, श्रयज्ञ स्नेष्ट्विधिरवस्यावित्रोपे वीध्य , उत्त हि चरके 'रूजाणा वातकोपश्चेशिद्रानाशार्चिपूर्वक । रेतष्ट्सेद्रक्रमस्तत्र फान्या वातामयापद् ।' इति ॥१२॥

क्ष्यवाद्यं हितं तैलं वर्षाभ्वमृतगुग्गुलुः ॥१३॥ इत्यूरुस्तम्भ-चिकित्सा ।

भेन्धवाद्यमित्यादी—सैन्धवाद्य तैल वातव्याधानुक्तम्, पुनर्नवागुग्गुलुरमृता-गुग्गुलुश्च वातरक्ते चेक्कः ॥ १३॥

इत्यूरुस्तम्मचिकित्सा-विवृति.॥

# अथामवात-चिकित्सा ।

लह्वनं सेदनं तिक्कं दीपनानि कटूनि च। विरेचनं सृहपानं वस्तयश्चाममारुते ॥ सैन्धवाद्यनानुवास्य ज्ञारवस्तिः प्रशस्यते ॥१॥ व्याप्ति । श्चामवाते पञ्चकोलसिन्दं पानान्नमिष्यते । स्त्व सेदः प्रकर्तव्यो वालुकापुटकैस्तथा ॥२॥ व्याप्ति श्चास्त्र । शटी शुग्रुव्यभया चोग्रा देवाह्वातिविषामृता । कषायमामवातस्य पाचनं स्वभोजनम् ॥३॥ ....

सामवातजन्यत्व-सामान्यादूरुस्तम्मानन्तरमामवात-चिकित्सामाह लङ्ग्वनिम्लादि विरेचनन्तु महेश्वरपत्रिकाया विशेषेणोक्तम्, उक्ष हि—' त्रिवृत्सैन्धवशुरुठीनामा-रनालेन चूरिंपतम् । पीत्वा विरेचयेष्ठन्तुमामवातहर परम् । सप्ताहञ्च त्रिवृच्चूर्णं त्रिवृत्काथेन भावितम् । काश्विकेन तु तत् पीत रेचनञ्चामवातिनाम्' इति । तत् सर्वमत्र वोध्यम् । स्रहपानमिति लङ्ग्वनादिभिरामचये जाते तदनन्तर रूचस्य वायो प्रशमनार्थं स्रेहपान किंवा सेहशच्द्रेनात्र विरेचकतया परपडतैल वोध्यम् । वस्तय इति शोधनवस्तय । रूच स्वेद इति रूचस्वेद तन्त्रान्तरोक्तः यथा—'कार्पासास्थिक्तिशातिल-यवरेरपडमूलातसी वर्षामुशाणशिगुकाश्विकश्चतेर्वो पृथक् । स्वेद स्थादथ कूर्परोदरशिर रिफक्पाणिपादाग्रिलिशीवास्कन्थकटीरुजो विजयते सामाः समस्ता रूजः' इति ॥ १ ॥ ३ ॥

शद्यीविश्वौषधीकल्कं वर्षाभूकाथसंयुतम् । सप्तरात्रं पिवेज्जन्तुरामवातविनाशनम् ॥४॥

शर्धत्यादौ---उमा वचा ॥ ४ ॥

#### रास्नादशमूलकम्

दशमूलामृतैरएड-राम्नानागरदारुभिः। काथा रुवृकतैलेन सामं दृन्त्यनिलं गुरुम् ॥४॥ दशमूलीकपायेण पिवेद्वा नागराम्भसा । कुचिवस्तिकटीशले तैलमेरएडसम्भवम् ॥ ६ ॥

रासा दशमूलेत्यादी रुवृक्तेलेनेनि शोधनार्थम् एरएडतेलस्य कप ममधिको वा। रामनार्थं पन पडशे मापका इति॥ ५॥ ६॥

रास्नापञ्चकम् रास्नां गुङ्गचीमेरगडं देवदारुमहौपधार्। पिवेत् सर्वाद्विके वाते सामे सन्ध्यस्थिमज्जगे॥ ७॥ 🗂

#### रास्नासम्बन्

- रास्नामृतारग्वधदेवदारु-त्रिकरटकैरराडपुनर्नवानाम् ।

काथं पिवेन्नागरचूर्णमिश्रं

जङ्घोरुपृष्ठत्रिकपार्श्वशूली॥ =॥

रास्तापञ्चके पिनेदिति काथरूपतया । श्रत्र योगे तथा वद्यमाख रास्तामप्तेऽ-पि यदि विरेकश्चिकीर्षिती भवति, तदा एरएडर्तल प्रच्नेप्यमिति वदन्ति ॥७-----॥

ु श्रुग्ठीगोच्चरककाथः प्रातः प्रातर्निपेवितः। सामवाते कटीशूले पाचनो रुक्प्रणाशन ॥ ६॥

शुषठीगोत्तुरककाथ इत्यादि---भत्र शुषठ्या भागमेकम् , गोत्तुरस्य भागत्रय गृहन्ति, कोष्ठेमेदे कर्तन्य यवचारमप्यत्र प्रत्तिपन्ति ॥ ६ ॥

श्रामवाते कणायुक्तं दशमूलीजलं पिवेत् । , खादेडाप्यभयाविश्वं गुहूचीं नागरेण वा॥ १०॥

अमयाविश्वमिति इरीतकीचूर्णं मा २, शुण्ठीचूर्णं मा २, पिष्ट्वा खाद तप्तनलमनुपेयम् । गुट्ट्वीं नागरेण वा इति काथेन व्यवहार । केचित्त पिष्ट्वा उष्णोदकेन मद्मयन्ति ॥ १० ॥

परएडतैलसंयुक्षां हरीतकीं भत्तयेत्ररी विधिवत् । श्रामानिलार्तियुक्षो गृधसी-वृद्धर्योर्देतो नित्यम् ॥ ११ ॥ एरपेडत्यादि — हरीतकी चूर्णस्परण्डतैलेनावलेह ॥ ११ ॥ कर्प नागरचूर्णस्य काञ्जिकेन पिवेत् सदा । श्रामवातप्रशमनं कफवातहरं परम् ॥ १२ ॥

कर्ष नागरचूर्णस्येत्यादि—शुर्षठीचूर्णलवणशुक्तस्य कांक्षिकस्य भक्तेन महोपयोग प्रचरति ॥ १२॥

पञ्चकोलकचूर्णञ्च पिवेदुष्णेन वारिणा।
मन्दाग्निर्ग्र्लगुल्माम कफारोचकनाशनम्॥ १३॥
पज्ञकोलेत्यार्दि—सममागपञ्चकोलचूर्णं मापकाष्टकमुष्णजलेन पेयम् ॥१३॥
श्रमृतानागरगोच्चरमुणिडतिकावरुणकैः कृतं चूर्णेम्।
मस्त्वारनालपीतमामानिलनाशनं ख्यातम्॥ १४॥
श्रमृतेत्यादी—वरुण वंरुणंमूलम् ॥ १४॥

# वैश्वानरं चूर्णम्

माणिमन्थस्य हो भागो यमान्यास्तहदेव तुं।
भागास्त्रयोऽजमोदाया नागराद्भागपञ्चकम् ॥
दश हो च हरीतक्याः श्रदणचूर्णीकृता श्रभाः।
मस्त्वारनालतकेण सर्पिपोष्णोदकेन वा ॥
पीतं जयत्यामवातं गुलंग हहस्तिजान् गदान्।
प्लीहानं हन्ति श्र्लादीनानाहं गुदजानि च ॥
विवन्धं जाठरान् रोगांस्तथा वै हस्तपादजान्।
वातानुलोमनिमदं चूर्णं वैश्वानरं स्मृतम्॥ १४॥

वैश्वानरचूर्णमृह माखिमन्थस्येत्यादि—माखिमन्य सैन्धवम् । यमान्यास्तद्वदिति भागद्वयम् । भागाखयोऽजमोदाया इति अजमोदा यमानी, तेन पंत्रमागो यमान्या एव, एके यमानीस्थाने यवचार पठन्ति, केचिद्रनयमानीत्युपन्यस्य यमान्या भागद्वय प्रयच्छन्ति, अन्य त्वजमोदया वनयमानी गृहन्ति, किन्त्वन्त परिमार्जने यमान्येव युका । दश दी चिति दादशमाग इत्यर्थ ॥ १५ ॥

# अलम्बुपाद्यं चूर्णम्

श्रलम्बुपां गोचुरकं गुडूचीं वृद्धदारकम्।
पिप्पलीं त्रिवृतां मुस्त वष्णं सपुनर्नवम्।
त्रिफलां नागरश्चेव श्रुच्णचूर्णानि कारयेत्।
मस्त्वारनालतकेण पयोमांसरसेन वा॥
श्रामवातं निद्धन्त्याशु श्वयशुं सिन्धसंस्थितम्।
प्लीद्दगुल्मोद्रानाद्दुनोमानि विनाशंयत्॥
श्राप्तश्च कुरुते दीतं तेजोवृद्धि वलं तथा।
वातरोगान् जयत्येप सिन्धमज्जगतानिषि॥ १६॥
श्रलम्बुपामिलादि—शलम्बुपा मुण्डितिका, वृद्धदारक वृद्धदारकमूलम्, वक्षण

शतपुष्पाद्यं चूर्णम् शतपुष्पा विडद्गश्च सैन्घवं मारिचं समम्। चूर्णमुष्णाम्बुना पीतमग्निसन्दीपनं परम्॥१७॥ शतपुष्पेलावि सप्टम्॥१७॥

हिङ्ग्वाद्यं चूर्णम्

हिङ्गु चव्यं विडं श्रुएठी कृष्णाजाजी सपौष्करम् । मागोत्तरमिदं चूर्णं पीत वातामजिद्भवेत् ॥ १८ ॥ हिन्नुचन्यमित्यादौ—कृष्णा पिप्पली । श्रजाजी सितजीरकमिति निश्चल ; कृष्णाजाजी कृष्णुजीरकमिति वृन्दिटप्पणी । भागोत्तरमिति यथोत्तर एकमागपरिवृद्ध । पीतिमिति वप्णाम्नुना ॥ १८ ॥

योगराजगुग्गुलुः

चित्रकं पिष्पलीमृतं यमानीं कारवीं तथा। विडङ्गान्यजमोदाश्च जीरकं सुरदारु च॥ चच्चेला सन्धवं कुष्टं रास्नागोचुरधान्यकम्। तिफलामुस्तकं व्योपं त्वगुशीरं यवाग्रजम् ॥
तालीशपत्रं पत्रश्च शुरुत्युर्त्यूर्णिनि कारयेत् ।
यावन्त्येतानि चूर्णिनि तावन्मात्रन्तु गुग्गुलुम् ॥
सम्मद्रश्चे सर्पिषा गाढं स्निग्धे भागडं निधापयेत् ।
ततो मात्रां प्रगुर्जीत यथेष्टाहारवानिष ॥
योगराज इति ख्यातो योगोऽयममृतोपमः ।
श्रामत्रातास्यवातादीन् किमिदुष्टव्यानिष ॥
सीहगुल्मोद्रानाह-दुर्नामानि विनाशयेत् ॥
श्राग्नश्च कुरुते दीप्तं तेजोवृद्धि वलं तथा ।
वातरोगान् जयत्येष सन्धिमज्जगतानिष ॥ १६ ॥
योगराजगुगुलो कार्मा कृष्णजीरक, श्रजमोदा यमानी, श्रन्त-परिमार्जन-

यागराजगुगुला कारवा कृष्णजारक, अजमादा यमाना, अन्त-पारमाजन-लात, एवमन्यन्नापि । सम्मर्थ सर्पिषा गाडमिति प्रथम तावत् वृत दत्त्वा केवला गुग्गुल पेषणीय , पश्चादल्पमल्प चूर्ण दस्ता पेषणीय । मम्यक् चूर्णे मिलिते तु स्विग्धमाग्रेड निधेयः । मर्दनार्थ धृतमानञ्चात्र यावता चूर्ण मिलितं भवति, अन्य तु गुग्गुलोर्द्धमानमित्यादु । ततो मात्रा प्रयुक्षीत इति, षडष्टमाषकरूपाम् । उष्णाम्बु-काक्षिकाधनुपेयमित्यादु ॥ १६॥

## सिंहनादगुग्गुलुः

पलत्रयं कषायस्य त्रिफलायाः सुचूर्णितम् ।
सौगन्धिकपलञ्चेकं कौशिकस्य पलं तथा ॥
कुडवं चित्रतेलस्य सर्वमादाय यत्ततः ।
पाचयेत् पाकविद्वैद्यः पात्रे लौहमये दृढे ॥
हिन्त वातं तथा पित्तं श्लेष्माणं खञ्जपङ्गताम् ।
श्वासं सुदुर्जयं हृन्ति कासं पञ्चविधं तथा ॥
कुष्ठानि वातरक्षानि गुल्मग्रलोदराणि च ।
श्रामवातं जयदेतदिप वैद्यविवर्जितम् ॥
पतदभ्यासयोगेन जरापलितनाशनम् ।
सर्पिस्तैलरसोपेतमश्रीयाच्छालिषष्टिकम् ॥

#### सिंहनाद् इति ख्यातो रोगवारणदर्पहा । विह्नवृद्धिकरः पुसा शाषितो टएडपाणिना ॥ २० ॥

पलन्नयमित्यादि — निफलाया काथस्य पलन्नय प्रत्येकन् । सुन्त्यिति मीर्गान्यकप्लामित्वेन सम्बध्येत । सीर्गान्यकमिति गन्यकम्, तच्च शोधित प्राह्मम् । कौशिकस्येति गुग्गुलो । चित्रकतिलामित्येरण्डतेलम्, कुडविमाल्यष्टी पलानि, अन्य त्र तैलस्य बहुलत्वेन पाक्ते दुर्ग्रह स्यात् इति कृत्वा अकृतद्वेगुर्ययमेवात्र कुडव गृह्मन्ति । त्रिफला प्रत्यक पल १, कपं २, काथाधजल शराव ४, पल ४, गप श १, पल १; शोधितगन्धकचूणं पल १, पर्यडतल पल ८ । पर्यडतल दन्ता गन्यकचूणेन सह गुग्गुल पेपणीय , तदनु निफलारसेनालोड्य लाइपात्र पक्ष-व्यम् , मनाक् तैलिन सर्थे सित सम्यक् पाको शेय । प्रथमतो मापक्ष्य, अष्टी मापकान् यावत् खाचम् ॥ २०॥

## बृहार्त्सिहनादगुग्गुलुः

पिविडता गुग्युलोर्माणीं कडुतैलपलाष्टके।
प्रत्येकं त्रिफलाप्रस्था साईद्रोणे जले पचेत्॥
पादेशेष च पृतञ्च पुनरम्नावधिश्रयेत्।
त्रिकडु त्रिफला मुस्तं विडक्गमद्रद्दारु च॥
गुडूच्यमित्रिवृद्दन्तीचवीश्ररणमानकम्।
पारदं गन्धकञ्चव प्रत्येकं श्रुक्तिसम्मितम्॥
सहस्रकानकफलं सिद्धे सञ्चूर्व्यं नििच्चित्॥
तता मापद्वयं जग्ध्वा पिवेत् तप्तजलादिकम्॥ २१॥
विविडतामित्यादि—सप्टम्॥२१॥

# श्रलम्बुपाद्यं चूर्णम्

श्रलम्बुपागोजुरक-त्रिफलानागरामृताः। यथोत्तरं मार्गवृद्धधा श्यामाचूर्णश्च तृत्समम्॥ पिवेन्मस्तुसुरातंत्र-काञ्जिकोष्णोदकेन वा। पीतं जयत्यामवातं सशोथं वातशोणितम्॥ त्रिकजान् रुसन्धिस्यं ज्वरारोचकनाशनम् ॥ -पथ्यात्तघात्र्यस्त्रिफला भागवृद्धावयं क्रमः ॥ २२ ॥

श्रलम्बुषाबचूर्णे यथोत्तर भागमृद्धधेति यद् यत् पर तत्तदेकसागनिद्धितिम-त्यर्थः । श्यामा मृद्धदारक , तत्समिमिति मिलितचूर्णसमम् । त्रिफलाया येन क्रमेण भागमृद्धिं कुर्यात् त क्रममाह पथ्याचधात्र्य इत्यादि—श्रयमेन क्रमो मृद्धनैषन्यन-हारसिद्धो मृन्देनापि लिखित ॥ २२ ॥

पथ्याविश्वयमानीभिस्तुल्याभिश्चूिर्णतं पिबेत्।
तक्रेणोप्णोदकेनापि अथवा काञ्जिकेन वा।
आमवातं निहन्त्याश्च शोथं मन्दाश्चितामपि॥ २३॥
पथ्यत्यादौ—चूर्णतभिति माने क, तेन पथ्यादिभिः कृत चूर्ण पिनेदित्यर्थ ॥ २३॥

बृहत्सैन्धवाद्यं तैलम्

सैन्धवं त्रिफला रास्ना पिष्पली गजपिष्पली।
सर्जिका मरिवं कुष्ठं श्रुएठी सौवर्चलं विडम् ॥
यमान्यौ पुष्कराजाजी मधुकं शतपुष्पिका।
पलार्द्धिकः पवेदेतैः प्रस्थमरएडतेलतः॥
प्रस्थाम्बु शतपुष्पायाः प्रत्येकं मस्तुकाञ्जिके।
दद्याद् द्विगुणिते पानवस्त्यभ्यक्तप्रयोजितम् ॥
श्रामवातहरं श्रेष्ठं सर्ववातप्रमश्चिदम् ॥
कटीजानूष्सिन्धस्ये पार्श्वहृद्धङ्क्षणाश्रये।
शस्तं वातान्त्रवृद्धौ च सैन्धवाद्यमिदं महत्॥ २४॥
सैन्धविमलादि—सप्टम्॥१४॥

## श्रजमोदाद्यवटकः

त्रजमोदामरिचपिष्पलिविडङ्गसुरदारुचित्रकशताद्धाः। सैन्धवपिष्पलिसूलं भागा नवकस्य पलिकाः स्युः॥ शुग्ठी दशपलिका स्यात्पलानि तावन्ति वृद्धदारस्य। पथ्या पञ्चपलानि च सर्वमेकत्र कारयेञ्चूर्णम् ॥
समगुडवटकान् खादतश्चूर्णं वाण्युण्णवारिणा पिवतः।
नश्यन्त्यामानिलजाः सर्वे रोगाः सुकप्रास्तु॥
विस्चिकाप्रतित्र्णीहृद्रोगाश्च गृथ्यसी चोग्रा।
कटिवस्तिगुदस्फुटनञ्जैवास्थिजद्वयोस्तीवम् ॥
श्वयश्चस्तथाद्गसन्धिषु ये चान्येऽज्यामवातसम्भूताः।
सर्वे प्रयान्ति नाशं तम इव स्ट्यांश्चविष्वस्तम्॥ २४॥

श्रनमोदाधनटके श्रनमोदा यमानी । नवकत्येति चक्ताजमोदादि नवकस्य प्रत्येक पितका मागा इत्यर्थ । पलानि तावन्तीति दशपलानीत्यर्थ । समगुडवट कानिति समेनेव गुडेन किञ्चिज्जल दत्त्वा विद्यसम्बन्धाद् द्रवीकृतेन वटका कार्च्याः। अन्यथा वटकमानोऽस्य दुष्कर । चूर्णं वेति गुडयोग विना ॥ २५॥

## शुएठीघृतम्

नागरकाथकल्काभ्यां घृतप्रस्थं विपाचयेत् । चतुर्गुणेन तेनाथ केवलेनोदकेन वा ॥ वातन्श्रेष्मप्रशमनमग्निसन्दीपनं परम् । नागरं घृतमित्युक्तं कट्यामग्रलनाशनम् ॥ २६॥

शुण्ठीष्टते चतुर्गुयोन तेनेति नागरकाथेन, केवलोदकेन वेति काथम्याने चतुर्गुण जल दत्त्वेत्यर्थे ॥ २६ ॥

## गुङ्चीघृतय्

श्रमृतायाः कषायेण कल्केन च महौपघात्। मृद्धग्निना घृतं प्रस्थं वातरक्षहरं परम्॥ श्रामवाताट्यवातादीन् क्रिमिदुप्रवणानिष। श्रशीसि गुल्मांख्य तथा नाशयत्याशु योजितम्॥ २७॥

असताया इत्यादी—कल्केन चेति पद महीपधादित्यनेन सम्बच्यते । आख्य-वाते फहस्तम्भे ॥ २७॥

## काञ्जिकषट्पलकं घृतम्

हिंगु त्रिकटुकं चव्यं माणिमन्थं तथैव च ।
कल्कान् कृत्वा च पिलकान् घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥
श्रारनालाढकं दक्वा तत्सिपिंजेठरापहम् ।
श्रूलं विवन्धमानाहमामवातं कटीप्रहम् ॥
नाशयेद् ग्रह्यादिषं मन्दाग्नेर्दीपनं परम् ॥ २८ ॥
काञ्जिक्षर्पलेके त्रिकडक प्रत्येक पिलकम् । माणिमन्य कैन्यवम् ॥ २८ ॥

पुष्टवर्थे पयसा साध्यं दश्ना विरमूत्रसंग्रहे । दीपनार्थे मतिमता मस्तुना च प्रकीर्त्तितम् ॥ २६ ॥

पुष्टयर्थिमित्यादि—उक्तमेतत् काञ्जिकषट्पलक यदि पुष्टधर्भे क्रियते, तदा काञ्जिकस्थाने पया दत्त्वा साध्य , विष्मूत्रसम्रहे कार्य्ये दथ्वा साध्य, दीपनार्थं यदि, तदा मस्तुना साध्यमित्यर्थ ॥ २६ ॥

## शुर्यठीघृतम्

सर्पिर्नागरकल्केन सौवीरकचतुर्गुण्म्। सिद्धमञ्जिकरं श्रेष्ठमामवातहरं परम्॥ ३०॥ गुरुठीष्टत स्पष्टम् ॥ ३०॥

### रसोनपिएडम्

रसोनस्य पलशतं तिलस्य कुडवं तथा।
हिंगु त्रिकदुकं चारौ द्वौ पञ्चलवणानि च ॥
शतपुष्पा तथा कुष्ठं पिष्पलीमूलिवत्रकौ।
श्रतमोदा यमानी च धन्याकञ्चापि वुद्धिमान्॥
प्रत्येकन्तु पलञ्चेषां श्रदणचूर्णानि कारयेत्।
घृतभाएंडे दढे चैतत् स्थापयेद् दिनषोडशम्॥
प्रिचय्य तैलमाणीञ्च प्रस्थार्द्धं काञ्जिकस्य च।
स्वादेत् कर्षप्रमाणन्तु तोयं मद्यं पिबेद्तु॥,
श्रामवाते तथा वाते सर्वाङ्गैकाङ्गसंश्रिते।

श्रपस्मारे अनेले मन्दे कासे श्वासे गरेषु च ॥ सोन्मादबातभग्ने च शूले जन्तुषु शस्यते ॥ ३१॥

रसोनिषयं निस्त्वचा रसोनस्यापि पिष्टस्य एव तिलस्यापि । तैलस्य मार्या-त्यनेनाष्टी पलानि, द्वैगुण्यामानात् । प्रस्थाद्धमिति षोडशपलानि जन्तुष्विति क्रिमिषु ॥ ३१ ॥

**प्रसार**गीसन्घानम्

प्रसारएयाढककाथे प्रस्थी गुडरसोनयोः ।

पकः पञ्चोषण्रजःपादः स्यादामवातहा ॥ ३२ ॥

प्रसारण्यादकमित्यादौ — प्रसारण्या काथे आदके पोडशशरावपितित इत्वर्थ । गुढरसोनयोश्च मिलित्वा प्रस्थ । पक इति कालवशात् परिणत सम्जा-तरस इत्वर्थ । कालश्च सप्ताद्द एव वच्यमाणप्रयोगदर्शनात् । पञ्चोषण्यरज इति मिलितपञ्चकोलचूर्णप्रस्थमपेच्य पादिक चतु पलमित्यर्थ । गंन्यमादाली पल ६४, पाकार्थ पानीय शराव ६४, शेषशराव १६, गुडपल ८, रसोनपल ८, सन्धानवशात् परिणते सित् प्रचेप मिलितपञ्चकोलंचूर्णं पल ४ । प्रसारणीसन्धानमेतत् ॥ ३२॥

### रसोनसुरा

वल्कलायाः सुरायास्तु सुपकायाः शतं घटे।
ततोऽर्देन रसोनन्तु संग्रदं कुद्दितं चिपेत्॥
पिप्पलीपिप्पलीमूलमजाजीकुष्ठचित्रकम्।
नागरं मिरचं चव्यं चूर्णितञ्जाचसिमतम्॥
सप्ताद्दात् परतः पेया वातरोगामनाशिनी।
क्रिमिकुष्ठचयानाद्दगुलमार्शःसीद्दमेद्दन्त्।
श्रिविस्तिन्दीपनी चैव पाग्हरोगविनाशिनी॥ ३३॥

वल्कलायाः सुराया इति वल्कलीति ख्याताया सुराया । शर्तामिति पलशत षटे घटमध्ये चिपेदित्यन्वयः । ततोऽर्द्धेन परिमित रसीनमिति पञ्चारात्पलमित्यर्थः । सशुद्धीमिति त्वक्शिरारारिहतम् ॥ ३३ ॥

> शिग्रहाकी सिद्धार्थकसलीपस्थं सुघौतं निस्तुपं जले ।

मग्डप्रस्थं विनिच्चित्य स्थापयेद्दिवसत्रयम् ॥ धान्यराशौ ततो दद्यात् सञ्चूर्ण्यं पिलकानि च । श्रलम्बुषा गोचुरकं शतपुष्पीपुननेवे । प्रसारणी वरुणत्वक् श्रुग्ठी मदनमेव च ॥ सम्यक् पाकन्तु विक्षाय सिद्धा तग्डलमिश्रिता । भृष्द्वा सर्षपतैलेन हिंगुसैन्धवसंयुता । भाचिता लवणोपेता जयेदामं महारुजम् । पक्जं द्वन्द्वजं साध्यं सान्निपातिकमेव च । कद्यूरुवातमानाहजानुजं त्रिकमागतम् । उदावत्तंहरी पेया बलवणीश्रिकारिणी ॥ ३४ ॥

सिद्धार्थकखिलप्रस्थमित्यादि — सर्षपखलीं चूर्णीकृत्य जलेनालोड्य झान-यित्वा निस्तुर्धाकृत्य झातपे संशोष्य झाहा पल १६, मण्डशरान ४, मिश्रयित्वा धान्यराशो दिनश्रय स्थाप्यम् । तत इति धान्यराशेराकृष्यालम्बुषादिचूर्णं प्रत्येक पालक दद्यात् । ततोऽम्लत्वेन सम्यक् पाक सम्यक् परिखतमिति विद्याय स्थापनी-यम् । ततः प्रत्यह् झाह्य कर्ष २, तण्डुलचूर्णं पल १, पाकार्थं जल पल ६ यवागूः पड्गुखेऽम्भसिखुके , भर्जनार्थं सर्षषतिलकर्ष १, हिंगुरत्ति ५, सैन्धन माषा २, ततः पुनरिप किञ्चिल्लवण दत्ता मच्चणीयित परिपाटी कथिता । सिद्धा तण्डुलमिश्रितेति एषा शिख्दाकी तण्डुलमिश्रिता सती सिद्धा कार्य्या पेया कार्य्यत्यर्थ । अन्य उपिष्टतण्डुलमिश्रखेन वटक कार्य्य इत्याहु । शिख्डाकीति सन्धानाविशेषस्य सद्धाः तीरस्रिकेत्रसिद्धा ॥ ३४ ॥

#### सिध्मला

त्वगादिहीना संशुद्धा प्रत्यग्राः शकुलाद्य । श्रुच्णचूर्णीकृतं तेषां शीते पलशतत्रयम् ॥ शतेन कटुतैलस्य व्योषरामठधान्यकैः । क्रिमिघ्नदीप्यकिनशा-चिकात्रान्थिकाईकैः ॥ जीरकद्वयवृश्चीरसुरसार्जकशिग्रुकैः । दशमूलात्मगुष्ताभ्यां मार्कवैर्लवणैस्त्रिभिः ॥

चूर्णिते पालेकेः सार्द्धमारनालपरिप्लुतैः। विन्यसेत स्नेहपात्रे तु धान्यराशौ पुनर्न्यसेत्॥ सप्तरात्रात् समुद्भृत्य पानमज्ञण्मोजनैः। सिध्मेलुयं प्रयोक्तव्या सामे वायौ विशेषतः॥ भग्नरुग्णारुच्युतहता कम्पिनाः पीठसर्पिण्। गृप्रसीमग्निसादश्च श्रूलगुल्मोदराणि च ॥ वलीपलितखालित्यं हत्वा स्युरमलेन्द्रिया ॥ ३४ ॥ सिध्मलाया शीत इति शीतकाल । अर्जन सुरमश्च पर्णामभेद । आरनाल

परिष्तुतैरिति तावन्मानमारनाल यावता परिष्तव सम्यक् मवति । स्नेहपात्रामेह कटु तैलपात्रमेव यौगिकम् । मचणिमिति चर्वण, मोजनमन्नादिभोजनम् ॥ ३५ ॥

🌽 - र्द्धिमत्स्यगुडचीरपोतकीमापपिष्टकम् । वर्जयदामवातार्चो गुर्वभिष्यन्दकारि यत् ॥ ३६॥ इत्यामवातचिकित्सा !

मापपिष्टकमिति मापकृत पिष्टक, किंवा मापक पिष्टकन्च । अभिष्यन्दकारि दोपधातुमलक्षेदकारि ॥ ३६ ॥

इत्यामवातिचाकित्साविवृति ।

# अथ शूलाचाकत्सा ।

वमन लङ्घनं स्वेद पाचनं फलवर्त्तयः। त्तारचूर्णानि गुडिकाः शस्यन्ते ग्रलशान्तये ॥ १ ॥ 👉 पुंस श्र्लाभिपन्नस्य स्वेद एव सुखावह । पायसैः क्रशरैः पिष्टैः स्निग्धैर्वा पिशितोत्करै ॥ २॥ भामवातनत् शूलस्याप्यामजन्यत्वेन तदनन्तर् शूलचिकित्सामाह् वमन मित्यादि-- तुशुतस्य । वमनमुह्मिष्टकफे, लङ्गनमामपाचनार्थ, स्वेद पित्त विद्याय। चार इति चारवस्ति चारप्रयोगो वा । चूर्णगुडिके इहैव वन्यमाणे पुस इत्यन नस्येति पाठान्तरम् । क्षरारिस्तलकल्कः । पायसादिभि पिएडादिसम्बन्धात् स्वेदो बोध्य , पिशितेति भेकादिमासै ।

वातशूलचिकित्सा वातात्मकं हन्त्यचिरेण श्रूलं स्नेहेन युक्तस्तु कुलत्थयूषः। ससैन्धवो व्योषयुतः सलावः सहिंगुसौवर्चलदाडिमाढ्यः॥३॥

वातात्मकिमत्यादि—यूप इति कुलत्थलावमासयोमिलित्वा पल, जल षोढशपल, पलचतुष्टयस्थिते विमर्थ वक्षेण छानयित्वा हिंगुसहितेन छतेन भर्जनीय, तदनन्तर सैन्थवादीना चूर्णं मिलित्वा कर्ष प्रचेप, पश्चादाढिमबीजरसो योज्य: ॥ ३ ॥

> वलापुनर्नवेरएडबृहतीद्वयगोजुरैः । सर्हिगुलवणं पीतं सद्यो वातरुजापहम् ॥ ४॥

वलेत्यादियोगोऽय काथविधिना । हिंगु लवगण्च प्रवेप्यम् । लवगमत्र सौवर्चल, वातशूलहरत्वादित्याहु ॥ ४ ॥

> श्रुली निरम्नकोष्ठोऽद्भिरुष्णाभिश्चूर्णिताः पिवेत्। हिंगुप्रतिविषाव्योषवचासौवर्चलाभयाः॥ ४॥ तुम्बुरूण्यभया हिंगु पौष्करं लवणत्रयम्। पिवेद् यवाम्बुना वातश्रुलगुरुमापतन्त्रकी॥ ६॥

निरम्नकोष्ठ इति अमुक्त इत्यर्थः। अन्य तु अन्नम् अजीर्याम्न तच्छ्न्यकोष्ठ इत्याहु । प्रतिविषा अतिविषा, तुम्बुरु स्वनामख्यात, यवाम्बुनेति यवकाथेन । यवैरयहाम्बुना पेयमिति तु पीठान्तर, तेन द्राभ्योमव काथ ॥ ५ ॥ ६ ॥

> श्यामा विडं शिशुफलानि पथ्या विडङ्गक्षमिपल्लकमश्वमूत्री । कल्कं समं मद्ययुतञ्च पीत्वा

शूलं निद्दन्याद्निलात्मकन्तु ॥ ७ ॥ श्यामेत्यादि --श्यामा वृद्धदारक , कम्पिल्लको गुगडारोचनी, श्रश्वमूत्री राष्ट्रकी, चारी यवचार ॥ ७ ॥

यमानीहिंगुसिन्धूत्यज्ञारसौवर्चलाभयाः । सुरामग्रेडेन पातन्या चातश्रूलनिषूद्नाः ॥ = ॥ यमानीत्यादौ—द्वरामग्रेडेनेति द्वराया उपरितनसम्बद्धद्रवमागेन, एवमन्य-भाषि ॥ = ॥

विश्वमेरएडजं मूलं काथियत्वा जलं पिवेत्।
हिंगुसौवर्चलोपेतं सद्यः ग्रूलिनव।रण्म् ॥ ६॥
विश्वमित्यादि—परण्डमूलस्य भागत्रय शुण्ठ्याश्चेको माग इत्यर्थ.॥६॥
हिंगुपुष्करमूलाभ्यां हिंगुसौवर्चलेन वा।
विश्वेरएडयवकाथः सद्यः ग्रूलिनवारणः॥ १०॥
तद्वद्वुयवकाथो हिंगुसौवर्चलान्वितः॥ ११॥

हिंगुपुष्करेत्यादि, हिंगुपुष्करमूलाम्या हिंगुसीवर्चलेन विति उमयत्र सहार्थे एतीया । तहदिति सच गूलहर इत्यर्थ ॥ १० ॥ ११ ॥

> हिंग्वम्लकृष्णालवणं यमानी-चाराभयासैन्धवतुल्यभागम् । चूर्णं पिवेद्वारुणिमणडिमश्रं ग्रुले प्रमुद्धेऽनिलंजे शिवाय ॥ १२॥

## नारिकेलखराडः

सुपक्षनारिकेलस्य शस्यं पलचतुष्टयम् । पिण्ट्वा घृतपले शृष्ट्वा चिपेत् खण्डचतुःपलम् ॥ नारिकेलस्य च प्रस्थे किञ्चिच्छस्यवतो जले । धन्याकं पिण्पली मुस्तं द्विजीरं वंशलोचनाम् ॥ शाणमानं चतुर्जातं चूर्णं शीते चिपेद् वृधः । दन्त्यम्लिपत्तमरुचि रक्षपित्तं च्यं विमम् ॥ श्रलञ्च पृष्ठश्रलञ्च पित्तरुग्झं रसायनम् । विशेपाद्दलकृद् वृष्यं पुष्टिमोजस्करं स्मृतम् ॥ १३॥ हिंग्वम्लेत्यादि—अन्लोऽम्लवेतसः इष्णा पिप्पलीः लवणिमह सौवर्चल वेशेषतः शूलहरत्वात् । क्रचित् कृष्णामलकमिति पाठः सः च निश्चलस्यासम्मतः । नेश्चलस्तु कृष्णामलकमित्यत्र कृष्णलवणिमिति पठितः, हारीतमवादात्। छन्दोभङ्गो-पि नाशङ्क्षयः, अनन्तत्वात् पद्यमार्गस्येति व्याचिष्टः ॥ १२ ॥ १३ ॥

सौवर्चलाम्लिकाजाजीमरिचैद्विगुणोत्तरः।
मातुलुङ्गरसैः पिष्ट्वा गुडिकानिलग्रलनुत्॥ १४॥
हिंग्वम्लवेतसव्योष-यमानीलवणित्रकैः।
वीजपूरसोपतेर्गुडिका वातग्रलनुत्॥ १४॥
वीजपूरकमूलञ्च घृतेन सह पाययेत्।
जयेद् वातभवं ग्रलं कर्षमेकं प्रमाणतः॥ १६॥
सावर्चलेत्यादी—-श्रम्लिका तिन्तिहो। हिगुणोर्चरेरिति उत्तरोत्तर हिगुणे-रेत्यर्थः। एषा गुडिका चतुर्माषकिमता उष्णोदकानुपानेन मन्नणीया, एव वन्य-माणा गुडिकापि। वीजपूरकेत्यादि केवलवातने॥ १४-१६॥

विल्वमूलितेलैरएडं पिष्द्वा चाम्लतुषाम्भसा।
गुडिकां आमयेदुष्णां वातग्र्लिवनाशिनीम् ॥ १७ ॥
विल्वमूलेत्यादि—अम्लतुषाम्मः अम्लकाक्षिकम् ॥ १७ ॥
तिलेश्च गुडिकां कृत्वा आमयेज्जठरोपरि ।
गुडिका शमयत्येषा ग्र्लिश्चेवाति दुःसहम् ॥ १८ ॥
तिलेरिति पिष्टं । गुहिकेय कोष्णा उदेर आमयितव्या ॥ १८ ॥
नाभीलेपाज्ययेच्छूलं मदनः काञ्जिकान्वितः ।
जीवन्तीमूलकल्केनापि लेप ॥ १६ ॥
जीवन्तीमूलकल्केनापि लेप ॥ १६ ॥

# पित्तशूलिचिकित्सा

गुडशालियवाः चीरं सिपिःपानं विरेचनम्। जाङ्गलानि च मांसानि भेषजं पित्तश्चालिनाम्॥ २०॥ सम्प्रति पित्तश्क्लिचिकित्सानाह गुढेत्यादि—गुढेाऽत्र पुरातन. उपहतमलश्च ५यः, तस्य वातपित्तहरत्वेन यौगिकत्वात्। उक्ष हि सुश्रुते—"पित्तव्रो मधुर. शुद्धे वातन्ने। इस्त्वाधिकशुण स्मृत पथ्यतमे शुद्ध '' ॥२०॥ पत्ते तु श्रुले वमनं पयोऽम्बु-रसस्तथेत्तोः सपटोलनिम्वः शीतावगाद्याः पुलिनाः सवाताः कांस्यादिपात्राणि जलप्लुतानि ॥ २१ ॥

पैते तु गुले वमनमित्यादि—पित्तजेऽपि वमनमामाशयस्थिपित्तहरणार्थम् । सपटोलिनिम्विरिति पटोलिनिम्वकल्कयुते । मदनफलयोगमप्यत्र केचिदिच्छन्ति ॥२१॥

विरेचनं पित्तहरश्च शस्तं
रसाश्च शस्ता शशलावकानाम्।
सन्तर्पणं लाजमधूपपन्नं
योगाः सुशीता मधुसंप्रयुक्ताः॥ २२॥
छुद्यी ज्वरे पित्तभवेऽपि श्रुले
घोरे विदाहे त्वतितर्षिते च।
यवस्य पेयां मधुना विमिश्नां
पिवेत् सुशीतां मनुजः सुखार्थे॥ २३॥

विरेचन पित्तहरमिति पित्तहरमधुरगयो।पिहतम्। सन्तर्पय लाजमधूपपन्नमिति लाजशाकुमधुम्यां निर्मित सन्तर्पय । यनस्य पेयामिति यनस्य यवागूम् ॥२२॥२३॥

धात्र्या रसं विदार्थ्या वा त्नायन्ती गोस्तनाम्बु वा । पिवेत् सशकेरं सद्यः पित्तशूलिनस्दनम् ॥ २४ ॥ भात्र्या रसमित्यादि योगत्रयम् । भात्र्या स्वरसं , विदार्थ्या ऋषि स्वरमं , त्रायन्तीगोन्तनयो काथ , शकेरा सर्वत्र प्रक्षेत्या ॥ २४ ॥

> शतवरीरसं सौद्रयुतं पात पिवेन्नरः। दाहयुत्तोपशान्त्यर्थं सर्वपित्तामयापहम्॥ २४॥

शतावरीरसमित्यादि स्पष्टम् ॥ २५ ॥

वृहत्यौ गौजुरैरएडकुशकाशेजुरालिकाः। पीताः पित्तभवं श्रुलं सद्यो हन्युः सुदारुण्म् ॥ २६॥ ग्रहत्यावित्यादि—इत्तुरालिका खागरभेदा ॥ २६ ॥ श्रतावरीसयण्ट्याद्ध-वाट्यालकुशगोत्तुरैः । श्रतशितं पिवेत् तोयं सत्तौद्रगुडशकरम् । पित्तासृग्दाहशूलझं सद्यो दाहज्वरापहम् ॥ २७ ॥ शतावरीत्यादौ—श्रतशीतिमिति श्रत शीतमेव व्यवनादिमि , न तु शीत-कपायम् ॥ २७ ॥

> त्रिफलानिम्बयण्ट्याह्न-कदुकारग्वधैः श्वतम् । पाययेन्मधुसंमिश्रं दाहशूलोपशान्तये ॥ २८ ॥ तैलमरगड्जं वापि मधुककाथसंयुतम् । शूलं पित्तोद्भवं हन्याद् गुरुमं पात्तिकमेव च ॥ २६॥

त्रिफलेत्यादौ —यण्ट्याह् यष्टिमधुक , कडुका कडुरोहिणी । तैलमरखडज-मिति तैल प्रक्षेप्यम् । श्रन्ये तु योगद्दयमाहु । तन्मते एरण्डज तैलमित्येक , मधु-सक्काथसंयुतमेरण्डतैलमिति द्वितीय ॥ २८ । २६ ॥

त्रिफलारग्वधकाथं सत्तौद्धं शर्करान्वितम्।
पायथेद्रक्षपित्तम् दाहशूलिनवारण्म् ॥ ३० ॥
प्रिलह्यात् पित्तशूलक्षं धात्रीचूर्णं समान्तिकम् ॥ ३१ ॥
श्रिफलेत्यादि—स्पष्टम् । श्रीलद्यादित्यादी धात्रीचूर्णं भामलकीचूर्णम्
॥ ३०—३१ ॥

#### **अपरनारिकेलख**ग्**डः**

नारिकेलपलान्यष्टौ शर्कराप्रस्थसंयुतम् । तज्जलं पात्रमेकन्तु सर्पिः पञ्च पलानि च ॥ शुग्ठीचूर्णस्य कुडवं प्रस्थार्ड्ड सीरमेव च । सर्वमेकीकृतं पात्रे शनैर्मृद्धश्चिना पचेत् ॥ तुगा त्रिकटुकं सुस्तं चतुर्जातं सघान्यकम् । द्वे कणे कर्षयुग्मञ्ज जीरकञ्च पृथक् पृथक् ॥ शुरुक्णचूर्णे विनित्तिष्य स्थापयेद्वाजने मृदः । खादेत् प्रतिदिनं शाणं यथेष्टाहारवानिए॥ सर्वदोपभवं श्र्लमामवातं विनाशयेत्।
परिणामभवं श्र्लमम्लिपत्तञ्च नाशयेत्॥
वलपुष्टिकरञ्चेव वाजीकरणमुत्तमम्।
रक्षपित्तहरं श्रेष्ठं छुर्दिहद्रोगनाशनम्।
श्रिक्षसन्दीपनकरं सर्वरोगनिवर्हणम्॥ ३२॥

त्रिफलारग्वधकाथमित्यादि स्पष्टम् ॥ ३२ ॥

#### कफशूलिचिकित्सा

श्रेष्माधिके छुर्दनलङ्घनानि शिरोविरेकं मधुशीधुपानम् । मधूनि गोधूमयवानिरिष्टान् सेवेत रूज्ञान् कटुकांश्च सर्वान् ॥३३॥

खेष्मात्मक इत्यादि—मघुना कृत शीघुर्मधुशीघु , श्रारिद्यानि सन्धानविर्शे-षान्॥ ३३॥

पिष्पलीपिष्पलीमूलचन्यचित्रकनागरैः ।

यवागूर्दीपनीया स्याच्छूलझी तोयसाधिता ॥ ३४ ॥

पिष्पलीत्यादि सपष्टम् ॥ ३४ ॥

लवण्त्रयसंयुक्तं पञ्चकोलं सरामठम् । सुखोष्णेनाम्बुना पीतं कफग्रलविनाशनम् ॥ ३४ ॥

लवणलययुतमिति लवणलय सीवर्चलसैन्धविवस् । समभागचूर्णादष्टमापक-मुप्णोदकपलेनालोट्य पेयम् । सूर्णविषये योगोऽयम् ॥ ३५ ॥

विल्वमूलमथैरगडं चित्रकं विश्वभेषज्ञम् ।
हिङ्गुसैन्घवसंयुक्तं सद्यः ग्रूलनिवारणम् ॥ ३६॥
विल्वमूलादिविश्वभेषजान्त अय योग काथविधिना ॥ ३६॥
अस्तं वचां तिक्षकरोहिणीञ्च
तथाभयां निर्दहनीञ्च तुल्याम् ।

#### ् पिवेत्तु गोमूत्रयुतां कफोत्थं श्रुलं तथामस्य च पाचनार्थम् ॥३७॥

मुस्तमिलादौ--निर्देहनी मूर्वा । मुस्तादि निर्देहन्यन्त एको योग । मुस्त-कादिक पिष्ट्वा गोमूत्रेण पेयम् ॥ ३७ ॥

वचाव्दाग्न्यभयातिक्काचूर्णं गोमूत्रसंयुतम् । सत्तारं वा पिवेत् काथं विख्वादं कफश्रूलवान् ॥ ३८॥ वचेलादौ---अभिक्षेत्रकः । सत्तारिमलादित्तुः द्वितीयो योगः विल्वादेर्दशः-मूलस्य काथ पिवेदिति ॥ ३८॥

मातुलुङ्गरसो वापि शिग्रुकाथस्तथापरः ।
सत्तारो मधुना पीतः पार्श्वहद्धस्तिशूलनुत् ॥ ३६ ॥
मातुलुङ्गरस इति मातुलुङ्गमूलकाथ । योगद्दयेऽपि मधुयवचारी प्रचिप्यौ ॥३६॥
— श्रामशूले किया कार्य्या कफशूलविनाशिनी ।
सेव्यमामहरं सर्वे यद्ग्निबलवर्द्धनम् ॥ ४० ॥
श्रामशूल इत्यादौ श्रामहर भूता यद्गिवृद्धिकर भवति पञ्चकोलादि, तत् सेव्यम्, न तु घतादि ॥ ४० ॥

# हिङ्ग्वादिः

सिंहङ्गुतुम्बुरुव्योषयमानीचित्रकाभयाः । सत्तारलवणाश्चूर्णं पिबेत् प्रात सुखाम्बुना । विगमूत्रानिलग्रलम्नं पाचनं चिह्नदीपनम् ॥ ४१ ॥ तुम्बुरु विणगृहव्यविरोष. ॥ ४१ ॥

# **धातीलौहम्**

षद्पतं श्रद्धमग्र्इरं यवस्य कुडवं तथा।
पाकाय नीरप्रस्थाई चतुर्भागावशेषितम्॥
शतमूत्तीरसस्याष्टावामलक्या रसस्तथा।
तथा दिधपयोभूमिकृष्माग्डस्य चतुःपलम्॥
चतु पतं शर्कराया घृतस्य च चतुःपलम्।

प्रक्षेपं जीरकं धान्यं विज्ञातं करिपिष्पलीम् ॥
मुस्तं हरीतकीञ्चैव श्रश्चं लौहं कहुवयम् ।
रेखुकं त्रिफलाञ्चैव तालीशं नागकेशेरम् ॥
प्रत्येकं कार्पिकं चूर्णं पेपित्वा विनिक्तिपत् ।
भोजनादो नथा मध्ये चान्ते चैव समाहितः ॥
तोलैकं भक्तयेशित्यमनुपानं पयोऽथ वा ।
श्रत्नमप्रविध हान्ति साध्यासाध्यमथापि वा ॥
वातिक पैत्तिकञ्चैव श्लेष्मिकं सान्निपातिकम् ॥
पारिणामसमुत्थांश्च श्रन्नद्रवसमुद्भवान् ।
हन्हजान् पक्षिश्यलांश्च श्रम्लिपत्त सुदारुण्म् ॥
सर्वरोगहरं श्रष्टं धात्रीलौहिमिदं स्मृतम् ॥ ४२ ॥
पदपलिमत्यादि—सप्टम् ॥ ४२ ॥

चित्रकग्रन्थिकैरएडशुर्ग्रीधान्यं जलैः श्वतम् । भूलानाद्दविवन्धेपु सर्दिगुविडसैन्धवम् ॥ ४३ ॥ चित्रकमित्यादां—ग्रन्थिक पिप्पतीमृलम् । सर्दिगुविडमैन्थवमित्यत्र मर्दिगुन

विड्याडिमीमति केचिए पठन्ति ॥ ४३ ॥

र्दाप्यक सैन्धवं पथ्या नागरञ्च चतुःपत्तम् । भृशं ग्रत्तं जयत्याग्र मन्दस्याग्नेश्च दीपनम् ॥ ४४ ॥

दीप्यक यमानी मन्दस्यातिमन्दस्य॥ ४४॥

समाचिकं वृहत्यार्दि पिवेत् पिचानिलात्मके । व्यामिश्रं वा विधि कुर्य्याच्छूले पिचानिलात्मके ॥ पिचजे कफजे वापि या किया कथिता पृथक् । एकीकृत्य प्रयुक्षीत तां कियां कफिपचेजे ॥ ४४ ॥

समाचिक ग्रहत्यादिमिति ग्रहत्यो गोच्चरैरखेहत्यादिना पूर्वमुक्तम्, अन्य ग्रमित्रपातन्वरोक्त ग्रहत्यादिकमाहु । व्यवहारस्तु पूर्वेश्येव । दन्द्रनश्लिचिकित्सा-माह व्यामिश्रीमत्यादि ॥ ४५ ॥

पटेालत्रिफलारिएकाथं मधुयुतं पिवेत्।

पित्तन्सेष्मज्वरच्छिदिंदाहशूलोपशान्तये ॥ ४६॥ पटोलेत्यादौ---भरिष्टो निम्व ॥ ४६॥

रसोनं मद्यसंमिश्रं पिवेत् प्रातः प्रकांत्तितः । वातन्रेष्ठण्मभवं शूलं निहन्तुं विह्नदीपनम् ॥ ४७॥ रमोनिमत्यादि—निस्तुषिष्टरसोन माषा ६, मद्य पल १॥ ४७॥

बृहद्भिश्वादिः

विश्वोरुवृकदशमूलयवाम्मसा तु
हित्तारिहंगुलवणत्रयपुष्कराणाम् ।
चूर्ण पिवेद् हृदयपार्श्वकटीप्रहामपकाशयांसभृशरुग्ज्वरगुल्मशूली ॥
काथेन चूर्णपानं यत् तत्र काथप्रधानता ।
प्रवर्तते न तेनात्र चूर्णपेन्नी चतुर्दव ॥ ४८ ॥ ४

विश्वीरुवृक्तेत्यादि — अम्मसेति कायेन । अत्र हिंगुमीवर्चलिमत्यादि वच्य-माणयोगे ममुदितदशमूलयवयोर्द्वयो प्रत्येक तुल्यमागेन वृद्धाना व्यवहारदर्शना-द्रत्रापि तथेव मानमाह श्रीकर्यठ । तेन विश्वीरुवृक्दशमूलाना मिलितानामेको भाग , यवस्य चापरो भाग इति व्यवहारोऽपि इत्यमेव । दिचारादयस्तु प्रचप-विषये प्रयोज्या , न तु 'पातव्यश्च चतुर्द्वै. 'इति परिभाषया पानविषये, एव वच्यमाण्यव्यपि । एतदेवाह —काथेन चूर्णपान यदित्यादि । अस्यार्थस्तु ज्वरातीसा-रचिकित्सायामेवोक ॥ ४०॥

#### रुचकादिः

चूर्णं समं रुचकहिंगुमहोषधानां शुएठ्यम्बुना कफसमीरणसम्मवासु । हत्पार्श्वपृष्ठजठरात्तिविस्चिकासु पेयं तथा यवरसेन तु विङ्विबन्धे ॥ समं शुएठ्यम्बुनत्येवं योजना क्रियते बुधैः। तेनाल्पमानमेवात्र हिंगु सम्परिदीयते ॥ ४६ ॥ चूरं सम्मिन्नाति—न्यकं संवर्षन्त । टोक्प्लेन गुट्याः कर्णकं स्वन्यन्य वा हार. । प्रदेश नीत्रेन मण १, युट्धं कृषं मण २ हिंगुचि ६ । एत यह मेनेति स्वक्रकेन । सम युट्धान्तेनि, सम्प्राप्टन्य सुन्यार्थने हिंगुनेश्वित्र नवस्त्रहीत्रस्ममान्येन स्वुमानता न्याविति सम्मिति एव सहार्षे देल्यर्थ. ॥ ४६ ॥

> हिंगु सोवर्चतं पथ्याविङ्सैन्यवतुम्दुरः । पौष्करञ्ज पिवेच्चूर्र दशम्लयवाम्मसा ॥ पार्श्वहत्कटिपृष्ठांसग्रेल तन्द्रापतानके । शोधे स्टेप्मप्रसके च कर्णरोगे च शस्यते ॥ ५०॥

हिं। ईंबवंनीन्याडी-जगनुन्यवनन्येति उगन्नावकोईती- हाये-नेन्याहु देन प्रवेद्यं उगन्त १ नामा ७ गीत, पवटाहुन १ दम पाद्ययं जन गताव १ नेम पन २ । मेडे विक्रिकेते हिङ्ग्वादीना प्रदेग ॥ ५०॥

#### एरएडनम्कम्

परग्डिवल्बहृब्रतिष्ठयमातुलुङ्ग-पापाग्मित्विक्रहुमृत्तृकृतः क्रपायः। सज्जारिह्हुलवणो रबुवैलिमिश्रः

श्रीत्यंसमेडूहदयस्तनरचु पेय ॥ ४१॥

राटेन्दाडी—मातुनुकं मनुद्धन्य मृत्म्, गणानित् राषाणेनीः विद्यो गेनु,स्तम् मृत्म्। स्वयन्त्र ईन्छवन् सानु संवर्तनम्, ईन्छवन्तः स्वकृतिने एकस्पेति सामार्नुनर्तवादः। अवं योगः अस्वति चल्नितः वित्वः। अनुन्द्रमानि सुन्देते ॥ ४१ ॥

हिष्टु त्रिकटुकं कुष्टं यवजारोऽध सैन्धवम् । मातुज्जकरसोपेतं सीहम्प्रवापदं रजः ॥ ४२ ॥ हिष्टुव्यक्तिकारो—म्द्रव्यक्तो मात्युवम्त्रस्यः । इन्दे तु सनु-द्यक्ताचनिक्ताः । ४२ ॥

द्ग्यमनिर्वतवृमं स्वाम्हर्ः गोवृतेन सह पीतम् ।

हृदयनितम्बजशृलं हरति शिखी दारुनिवह्मिव ॥४३॥ दग्धमित्यादि—मृगर्थः हरिषाशृङ्गम्, तच चूर्णाकृत्यान्तर्धूम यथा स्यात् तथा दग्धव्यमित्यर्थे ॥ ५३॥

किमिरिपुचूर्णं लीढं सहितं स्वरसेन वङ्गसेनस्य । चपयत्यचिरान्नियतं लौहाजीर्णोद्भवं ग्रलम् ॥४४॥ किमिरिपुचूर्णमत्यादौ—स्वरमेनेति वङ्गसेनपत्रस्य वकपत्रस्य स्वरसेनत्यर्थः

11 88 11

✓विदारीदाडिमरसः सक्योपलवणान्वितः। चौद्रयुक्को जयत्याश्च श्रुलं दोषत्रयोद्भवम्॥ ४४ ॥

विदारीत्यादि — विदारी-पक्षदाडिमफलयो स्वरसं, भूमिक्ष्माग्रडरस पक्ष-दाडिमफलरस प्रत्येक कर्ष र त्रिकडसैन्थव प्र०मा ११ मधु मापा ४॥ ५५॥

#### एरएडद्वादशकम्

परगडफलमूलानि वृहतिद्वयगोज्जरम्।
पर्णिन्यः सहदेवा च सिंहपुच्छीजुरालिका॥
तुल्यैरेतैः श्रृतं तोयं यवज्ञारयुतं पिवेत्।
पृथग्दोषमवं श्रूलं हन्यात् सर्वमवं तथा॥ ४६॥

एरयडद्वादशके—एरयडस्य फल मूलच्च । पर्थिन्यश्चतस्त्र । सहदेवा दयडोत्पलभेद । सिंहपुच्छी पृश्चिपर्थीभेद , सा च कलम्बुपत्रसहशदीर्वपत्रा काटवा सिंहपुच्छीति च्याता । इच्चुरालिका लटा वा नड इति नाम्ना ख्याता खग्गडी । डल्वयास्तु इच्चुरालिकास्थाने इच्चुरक पठति । एव सुश्रुतमतानुवादी चन्द्राटोऽपि ॥ ५६॥

> गोमूत्रश्चद्धमग्हूरं त्रिफलाचूर्णसंयुतम् । विलिद्दन् मधुसर्पिभ्यी शूलं हन्ति त्रिदोषजम् ॥४०॥

गोमूत्रशुद्धमित्यादि—गोमूत्रे सप्तथा निर्वापणेन शुद्ध मण्हूर मिलित-त्रिफलाचूर्णेसम पन्न-षट्-सप्तमाषकाणामन्यतममानेनोपयोज्यम् ॥ ५७ ॥

शक्क्षचूर्णे संतवणं सिंहक्नु व्योषसंयुतम् । उच्णोदकेन तत् पीतं शूलं हन्ति त्रिदोषजम् ॥४८॥ शखचूर्णेमित्यादि—मनाग् दग्धस्य शखस्य चूर्णं गृह्यन्ति । अस्य मापक-मेक किञ्चिदिधक वा, लवणच्योषयोध्य मिलित्वा मापद्रयम्, हिङ्कुनो रिक्तिद्रय त्रय वा पिनेदित्याहु । अन्ये तु मागानुक्ते सर्वमेव सर्मामिति वदन्ति । क्रेष्मोत्तरेऽय योग ॥ ५=॥

#### तीत्त्णायश्चूर्णसंयुक्तं त्रिफलार्चूर्णमुत्तमम् । प्रयोज्यं मधुसर्पिभ्यी सर्वश्रूलनिवाररणम् ॥४६॥

तीष्र्याय इत्यादि—मारितपुटितवज्ञलौहचूर्यं कर्ष १, माषा ५, त्रिफलां-चूर्यं प्रत्येक मा ५, मिलितचूर्यांच ब्रोध रित्त ४। घतमधुनी दत्त्वा लौहमुद्गरेख सम्मर्थ भचयीयम्। मात्रादिविधिश्च लोहान्तरवत् अन्ये तु त्रिफलाया एकमागसम लौहचूर्यमिति वदन्ति ॥ ५१॥

#### मूत्रान्तःपाचितां शुष्कां लौहचूर्णसमन्विताम् । सगुडामभयामद्यात् सर्वश्रुलप्रशान्तये ॥ ६० ॥

त्रिफलाकाथभावितलौहपत्रिकया श्रय योगो यदि क्रियते तदा द्वित्रिचतु-र्माषकोपयोग । मूत्रान्तःपाचिताभिति गोमूत्रेग्योत्तिवन्नाम् । लौहचूर्येन सहैव मूत्रे पाचितामित्यन्ये, शुष्काभित्यातपयोगात् । लौहचूर्यसमन्विताभिति लौहचूर्यञ्च हरीतकीचूर्यसमम् । सगुडामिति चूर्यद्वयसमगुडाम् । श्रन्ये तु लौहचूर्यगुडहरी-तकीना प्रत्येक समानत्वभित्याहु ॥ ६०॥

# दाधिकं घृतम्

पिण्पली नागरं विल्वं कारवी चव्यचित्रकम् । हिंगुदाडिमवृत्ताम्लवचात्ताराम्लवेतसम् ॥ वर्षाभूकृष्णलवणमजाजी वीजपूरकम् । दाघ त्रिंगुणितं सार्पेस्तित्सद्धं दाधिकं घृतम् ॥ गुरमाशेःसीहहृत्पार्श्वश्र्लयोनिरुजापहृम् । दोषसंशमनं श्रेष्ठ दाधिकं परमं स्मृतम् ॥

दाधिकष्टते विल्व विल्वस्य मूलम्, कृष्णलृवणन्तु सौवर्चलमेद । उक्त हिं 'न काललवणे गन्ध सीवर्चलगुणो हि स ' इति । वृज्ञाम्ल महार्द्रकम्, कृष्ण-लवण सौवर्चलविशेष, वीजपूरक वीजपूरकमूलम् । दशा त्रिगुणेनेव पाक ।

स्वरसचीरमाङ्गल्यैरित्यादि परिभाषावचनन्तु चतुर्गुणजलदानार्थमुक्तम्, किन्तु प्रायो न ममाद्रियते ॥ ६१॥

कम्वलावृतगात्रस्य प्राण्यामं प्रकुर्वतः ।—
कहतेलाक्तराक्त्वां धूपः ग्र्लहरः परः ॥ ६२ ॥
व्यायामं मैथुनं मद्यं लवणं कहु वैदलम् ।
वेगरोधं शुवं कोधं वर्जयेच्छूलवान् नरः ॥ ६३ ॥
इति श्रलचिकित्सा ।

कम्बलेत्यादि--प्राणायामामित्युच्छ्वासरोधनम्, कड्वैदलमित्यत्र ग्रुलिबैदल-मिति पाठ ग्रूल जन्यत्वेन इह अस्तीति ग्रुलि वैदलिवशेषणम् ॥ ६२ ॥ ६३ ॥ इति ग्रुलिचिकित्साविवृति ।

# अथ परिणामग्रलिचिकित्सा

वमनं तिक्रमधुरैविंरेकश्चापि शस्यते । वस्तयश्च हिताः शूले परिणामसमुद्भवे ॥ १ ॥ध्य

ग्रुलविशेषत्वात् परिणामग्र्लमाह वमनित्यादि—चकाराल्लङ्गनमपि वोध्यम्।
तथा वस्तयोऽपि माधुतैलिकादयोऽत्र श्रेयाः। चक्त हि 'लङ्गन वमन शस्त विरेकश्वानुवासनम्। निरूहो वाजिगन्धादिर्माधुतैलिकवस्तयः, इति। माधुतैलिकवस्तयश्च
मधुतैलप्रधाना सुश्रुतोक्ताः। चक्त हि 'यस्मान्मधु च तैलन्च प्राधान्येन प्रदीयते।
माधुतैलिकमित्येव भिषण्मिवस्तिरुच्यते।' वन्नामाशयस्य दोषे लङ्गनवमने, पच्चम(नाशयस्य द्व विरेक्तिन्छ्हो, पक्ताशयस्य चानुवासनमिति॥ १॥

### विडङ्गादिमोदकः

विडङ्गतराहुलव्योपं त्रिवृद्दन्तीसिवत्रकम् । सर्वारयेतानि संहत्य श्रद्याचूर्णानि कारयेत्॥ गुडेन मोदकं कृत्वा भत्तयेत् प्रातरुत्यितः। उप्णोदकानुपानन्तु दद्यादिमिविचर्डनम् ॥ जयेत् त्रिदोपजं ग्रःलं परिणामसमुद्भवम् ॥ २॥ विडङ्गेत्यादि—विडङ्गतण्डुल विडङ्गस्य निस्तुषसारमाग । मोदकत्वादत्र दिग्रुणो गुड ॥ २॥

नागरगुडतिलकस्कं पयसा संसाध्य यः पुमानद्यात् । उग्रं परिएतिग्रलं तस्यापैति सप्तरात्रेण ॥ ३ ॥

नागरत्यादि— नागरादिकल्कमुत्कारिकावत् यवागूवद् वा चीरेण साध-यित्वा भचयेत् । शुर्यठीचूण कपं १, पुरातनग्रुड कपं १, तिलचूर्ण पल १, गव्यदुग्ध शराव २ ॥ ३ ॥

भि शम्बूकजं भस्म पीतं जलेनोप्लोन तत्त्त्त्त्णात् । पक्तिजं विनिद्दन्त्यतच्छूलं विष्णुरिवासुरान् ॥ ४॥ शम्बूकजमित्यादि—निर्मासस्वल्पशम्बूकमव भस्म मापकमेक दय वा उष्णा-

म्बुना गोलवित्वा धृताम्यक्तमुखकुहरेण पेयम् । श्रय योग कफे ॥ ४॥

श्रव्याज्यसयाकृष्णाचूर्णं मधुयतं लिहेत्। द्धानूनसरेणाद्यात् सतीनयवशक्तुकान्॥ श्रविरान्मुच्यते श्रूलान्नरोऽन्नपरिवर्जनात्॥४॥ तिलनागरपथ्यानां भागं शम्बूकसस्पनाम्।

श्रक्तियादी--श्रन्नसरेखेति श्रखिरडतिक्षिण्धमागेनेत्यर्थ । श्रल्ससरेखिति पाठे स प्वार्थ सतीनो वर्त्तुलकलाय । श्रश्नपरिवर्त्तोऽश्रपरिखाम ॥ ५ ॥

> द्विभागगुडमंयुक्तां गुर्डी कृत्वात्तभागिकाम् ॥ शीताम्वुपानं पूर्वाह्वे भत्त्येत् त्त्रीरभोजन । सायाह्वे रसकं पीत्वा नरो मुच्येत दुर्जयात्। परिणामसमुत्थाच श्रुलाचिरभवादिप ॥ ६॥

तिलेत्यादि---तिलादीना राम्युकमस्मान्तानां सममाग । मिलितचूर्यापेचया च गुडस्य भागद्वयम् । रसकमिति मासरसम् ॥ ६ ॥

शम्बूकं ज्यूपण्ज्वेव पञ्चेव त्वयणानि च। समांशां गुडिकां कृत्वा कलम्बकरसेन वा॥ प्रातभों जनकाले वा भक्तेयत् तु यथावलम् । श्र्लाद्विमुच्यते जन्तु सहसा परिणामजात् ॥ यः पिवति सप्तरातं शक्र्नेकान् कलाययृषेण । स जयति परिणामरुजं चिरजामपि किमुत् नूतनजाम् ॥८॥

शम्बूक्तित्यादी—कलम्बकरसेनेति वा शब्द पूर्वयोगापेचया, शम्बूकादि-चूर्णं कलम्बकरसेन सयोज्य चतुर्माषिका गुढिका कार्य्या । अत्र केचिच्छम्बूक्तशब्देन शम्बूक्तभस्म गृह्वन्ति, युक्तज्जैतत् तथा च तन्तान्तरमवादात् । 'मपञ्चलवखन्योष-चूर्णं शम्बूक्तभम्मभि । गुढिका पिक्तशूल्झी कलम्बीस्वरसे कृता' इति । शक्त्विति यवशक्त्न । एकानिति केवलान् । कलाययूष वर्त्तुलकलाययूष । अय योग पित्तक्तमशूले युक्त ॥ ७॥ = ॥

> लौहचूर्णं वरायुक्तं विलीढ मधुसर्पिषा। परिणामश्रलं शमयेत् तन्मलं वा प्रयोजितम्॥ ६॥ स्वन्नम

लीहचूर्णमित्यादि—वरा त्रिफला । लीहचूर्णस्येको माग , त्रिफलायाश्च प्रत्येक लीहचूर्णसममागत्वम् । तन्मल वेति लीहमल, एतदि परायुक्तमिति वोध्यम् । लीहमलस्य तु मिलितित्रिफलातुल्यो भागः। मारितपुटितलीहचूर्णं माषा = त्रिफला-चूर्ण प्रत्येक माषा = । अन्य तु लीहचूर्णस्य महावीर्थ्येलात् व्याधिप्रत्यनीकत्वाच प्राधान्यमिति कृत्वा मिलितित्रिफलाचूर्णममत्वमित्यादु । तन्मते त्रिफलाचूर्णं प्र०मा =, लीहचूर्णं कर्ष १, मा =, मिलितचूर्णात् प्रथमतो रिक्तचतुष्य गृहीत्वा धत-मधुभ्या सम्मधं लेखम् । लीहान्तरवत् चीर चतुःषष्टिगुण षष्टिगुण वानुपेयम् । दिनत्रयानन्तर रिक्तद्वयेन वृद्धिमीषकद्वय यावत् । सर्वमपर लीहान्तरवत् क्रिया । तथा शोधितमण्डूर पल १, मिलितित्रिफलाचूर्णं पल १, ततो मिलितचूर्णात् = माषा मधुष्टताभ्या लेखम् ॥ ६ ॥

कृष्णाभयालौहचूर्णं गुडेन सह भन्नयेत्। पक्तिग्रुलं निहन्त्येज्जठराएयग्निमन्दताम्॥ स्रामवातविकारांश्च स्थौल्यञ्चैवापकर्षति॥१०॥

कृष्णेत्यादि-प्रत्येक सममाग इति निश्चलः । अन्ये तु मिलितसर्वेचुर्णसम लौहचूर्णमित्याहु ॥ १०॥

पथ्यालोहरजः शुग्ठीचूर्णं माचिकसर्पिषा।

#### परिणामरुजं इन्ति वातिपत्तकफात्मिकाम् ॥ ११ ॥

पथ्यत्यादि—अत्रापि हरातकोशुग्रुक्योभिलितचूर्णेन मम लेहिचूर्णे आह्मम् । प्रयोगश्च नवायमादिवदित्याहु । निश्चलस्तु पथ्यादीना त्रयाणा प्रत्यक समभागता-माह ॥ ११ ॥

# सामुद्राद्यं चूर्णम्

सामुद्र सैन्धवं चारो रुचकं रोमकं विडम्।
दन्ती लौहरजः किष्टं त्रिवृच्छूरण्क समम्॥
दिधगोमूत्रपयसा मन्दपावकपाचितम्।
तद्यथाग्निवलं चूर्ण पिवेदुण्णेन वारिणा।
जीर्णेऽजीर्णे तु भुक्षीत मांसादि घृतसाधितम्॥
नामिश्रलं यरुच्छूलं गुलमसीहरूतञ्च यत्।
विद्रध्यष्टीलिकां हन्ति कफवातोद्भवं तथा॥
श्रूलानामिप सर्वेपामीषधं नास्ति तत्परम्।
परिणामसमुत्थस्य विशेषेणान्तक्रन्मतम्॥ १२॥

सामुद्रमित्यादि—सामुद्र करकव, रूचक सौवर्चल, रोमक रुमानदीभव तदमावे साम्भरिलवणम् । लौहरज किट्टन्चेति मारित पुटित लै।हचूर्णम् । किट्टन्च गोमूत्रशोधितमण्डूरचूर्णम् । दिधगोमूत्रपथसेति दध्यादित्रय मिलित्वा चतुर्णुण मिलितचूर्णसम वा, दत्त्वा सर्वमेव चूर्णमेकीकृत्य पक्तव्यम् आचूर्णाभावात् । व्यव-हारस्तु दध्यादिना चतुर्गुणेनैव ॥ १२ ॥

नारिकेलं सतोयञ्च लवेशेन प्रपूरितम् । विपक्तमञ्जिना सम्यक् परिशामजञ्जलनुत् ॥ वातिकं पैत्तिकञ्चैव स्ट्रैष्मिकं सान्निपातिकम् ॥ १३ ॥ नारिकेलिमत्यदि—नारिकेलिमह स्वपक्षम् ॥ १३ ॥

## सप्तामृतं लोहम्

मधुकं त्रिफलाचूर्णमयोरजः समं लिहन् । मधुसर्पिर्युतं सम्यग् गव्यं चीरं पिवेदनु ॥ छुर्दि सितिमिरां शूलमम्लिपित्तं ज्वरं क्कमम् । श्रानाहं मूत्रसङ्गञ्च शोथञ्चेव निहन्ति सः ॥ १४ ॥ मधुकमित्यादि—अयारजः नमिति मिलितचूर्यसम लीहरजः । श्रन्ये त्वेकमागमम लीहरजश्चाहः। न्यवहारस्तु पूर्वेणैव ॥ १४ ॥

# गुडिपप्पलीघृतम्

सिपप्पतीगुडं सिपः पचेत् चीरचतुर्गुगे । विनिद्दन्त्यम्लिपत्तञ्च ग्रूलञ्च परिणामजम् ॥ १४ ॥ मिपपतीगुडमिति विप्पतीगुडी कल्कौ ॥ १४ ॥

# पिप्पलीघृत्म्

काथेन कल्केन च पिष्पलीनां किसं घृतं मात्तिकसंप्रयुक्तम्। किसं चृतं मात्तिकसंप्रयुक्तम्। त्रिक्तिसंप्रयुक्तम्।

रालं प्रवृद्धं परिणामसंज्ञम् ॥ १६ ॥ काथेनेत्यादौ—माज्ञिकसप्रयुक्तमिति सिद्धशीते मधु पादिक प्रचेप्यम् ॥१६॥

## कोलादिमग्डूरम्

कोलाग्रन्थिकशृद्भवेरचपलात्तारैः समं चूर्णितं मग्ह्रं सुरभीजलेऽष्टगुणिते पक्त्वाथ सान्द्रीकृतम्। तं खादेदशनादिमध्यविरतौ प्रोयेण दुग्धान्नभुग्-जेतुं वातकफामयान् परिणतौ श्रलञ्च श्रलानि च॥१७॥

कोलेत्यादौ—कोला चवी, चपला पिप्पली, चारो यवचार । सस चूर्णित मर्प्ट्रामिति मर्वचूर्णसम मर्प्ट्रस् । सुरभीजले गोमूत्रे । अष्टगुणित इति मर्प्ट्रा-पेच्या । आसन्नपाके कोलादिचूर्णं प्रचेप्यम् । समुदितचूर्णापेचयाष्ट्रगुर्ण गोमूत्रामि-त्याहुरन्ये । शूलमिति सान्निपातिक, शूलानि चेति वातजादीनि ॥ १७॥

#### भीमवटकमराहरम्

कोलाग्रन्थिकसहितैविश्वौषधमागधीयवचारैः। प्रस्थमयोरजसां पत्तिकांशैश्चूर्णितैर्मिश्रेः॥ श्रप्रगुण्मूत्रयुक्तं क्रमपाकात् पिएडतां नयेत् सर्वम् । कोलग्रमाणविटकास्तिस्रो भोज्यादिमध्यविरतौ च ॥ रससर्पिर्यूपपयोमासैरञ्जन् नरो निवारयति । श्रव्यविवर्षेनगूलं गुल्मं प्लीहाग्निसादांश्च ॥ १८ ॥

मीमवटकमण्ड्रे कोलप्रनाणा इति मिलित्वा श्रष्टमाषकमाना मापंकरेवेति तिस्रो वटिका कार्य्याः। व्यवहारस्तु द्वित्रिचतुर्मापकेरिति । मूत्रस्याष्ट्राचल पूर्ववत् । श्रन्नविवर्चनग्रूल परिखामग्र्लम् ॥ १८ ॥

चीरमगडूरम्

्रीहिकद्वपतान्यष्टौ गोमूत्राई।ढके पचेत्। चीरप्रस्थेन तत् सिद्धं पक्षिश्रलहरं नृणाम्। ी चीरमण्डूर स्पष्टम् ॥ १६ ॥

चविकादिमगृहरम्

लीहिकहपलान्यष्टी गोमूत्रेऽष्ट्रगुणे पचेत्। चविकानागरचारपिष्पलीमृलपिष्पली ॥ सञ्चूर्ण्यं निन्निपेत् तस्मिन् पलांशाः सान्द्रतां गते । गुडिका कल्पयेत् तेन पक्षिग्रलनिवारिणी ॥ २०॥ लाइकिट्टत्यार्टी चिवकाम्थाने चपलापाठेऽपि चिवकेवार्थ , इस्तिपिप्पक्षी-त्यन्ये ॥ २० ॥

मराहरं शोधितं पत्रीं लोहजां वा गुडेन तु। भक्तयेन्मुच्यते श्र्लात् परिणामसमुद्भवात् ॥ २१ ॥

मर्ट्टरमित्यार्टा — लोहजा पत्री वज्रपारस्थादिजा मामान्यलोहजा प्रत्री पुटादिगोधिना बाह्या ॥ २१ ॥

शतावरीमग्ह्रम्

संशोध्य चूर्णितं इत्वा मरहूरस्य पलाएकम् । शतावरीरसस्याष्टी दक्षस्तु पयसस्तथा ॥ पलान्यादाय चत्वारि तथा गव्यस्य सर्पिप ।

विपचेत् स्वमैकध्यं यावत् पिएडत्वमागतम् ॥
सिद्धन्तु भक्तयनमध्ये भाजनस्यात्रतोऽपि वा ।
वातात्मकं पित्तभवं शूलञ्च परिणामजम् ।
निद्धन्तेय द्वि योगोऽयं मएडूरस्य न संशयः ॥ २२ ॥
गतावरीमएडूरे—अव्रतोऽपि वेति वा शब्द ममुचवे, तेन मोजनान्ते मोजनमध्ये भोजनस्यावतक्ष मक्त्रेयत् इति ॥ २२ ॥

#### तारामग्रह्रगुड:

(विडक्नं चित्रकं चव्यं त्रिफला ज्यूषणानि च।
नवभागानि चैतानि लौहिकेष्टसमानि च॥
गोम्त्रं द्विगुणं द्वा मृतार्द्धिकगुडान्वितम्।
शनैर्मृद्वित्रना पक्त्वा सुसिद्धं पिएडतां गतम्॥
सिग्धं भाएड विनिच्चित्य भच्चयेत् कोलमात्रया।
प्राङ्मध्यान्तक्रमेणैव भोजनस्य प्रयोजितः॥
योगोऽयं शमयत्याशु पिक्तशःलं सुदावणम्।
कामलां पाएहरोगञ्च शोथं मन्दाग्नितामपि॥
प्रशांसि प्रहणिदोषं क्रिमिगुल्मोदराणि च।
नाशयदम्लिपत्तञ्च स्थौल्यञ्चेवापकषिति॥
वर्जयेच्छुष्कशाकानि विदाह्यम्लकद्रनि च।
पिक्तश्रःलान्तको होष गुडो मएह्रसंहकः॥
श्रालार्चानां कृपाहेतोस्तारया परिकीर्त्तितः॥ २३॥

तारामण्डूरे नवमागानि चतानीति विडङ्गादीना प्रत्येकमेकभागतया नव भागा ब्राह्मा , वृद्धव्यवद्यारात्, ते चामन्त्रपाके प्रक्षेप्या । लौद्दकिट्टसमानि चिति लौद्दिकिट्टस्यापि नत्रमागम् । गोमूत्र द्विगुणमिति मिलितचूर्णात् । अत्र पलोल्लेखा-गतमानत्वात् तथैव व्यवद्दारात्र द्वैगुण्यम् । मूत्राद्विकगुडान्वितमिति सर्वचूर्णसमो गुड इत्यर्थ । कोलमात्रयेति अष्टमाषकमानेन ॥ २३ ॥

> राममग्रहूरम् वशिरं श्वेतवाट्यालं मधुपर्णी मयूरकम्।

तग्रहलीयञ्च कर्षार्झं दत्वाधस्रोद्ध्वंमेव च ॥ पाक्यं सुजीर्णमग्रहर गोमूलेण दिनद्वयम् । स्रम्तर्वाष्णमद्ग्धञ्च तथा स्थाप्यं दिनतयम् ॥ विर्चूण्य द्विगुणेनैव गुडेन सुविमर्दितम् । भोजनस्यादिमध्यान्तं भक्यं कर्प त्रिभागतः ॥ तकानुपानं वर्ज्यञ्च वार्चमम्लकमत्र तु । स्रम्लापत्ते च स्र्ले च हितमेतद् यथामृतम् ॥ २४ ॥

वशिरिमित्यादि—वशिर स्व्यावर्त्त , मधुपर्या गुङ्चा, मयूरकोऽपामाग । पानय सुजीर्यमयङ्द्रिति गोमूत्रेण दिनत्रयमिति गोमूत्रमल्पमल्प दत्ता दिनद्वय पक्तव्य यथा मयङ्दर न दद्यते। गोमूत्रन्तु एकदेन वहुतर न देय तथा सत्युत्तानधारण कत्तुमशक्यमिति। त्रवतार्थ्य शरावेण पिधाय दिनद्वय स्थाप्यम्, तदनु प्रचाल्य शोधिविता ग्राह्मम् । मन्य कर्षे त्रिमागत इति कपमेन भागत्रय कृत्वा साधम्, व्यवहारस्तु मापकचतुष्टयेन । वार्चम्लकमिति वदरीन्तिडीकादिकम् । रामकृतत्वाद्राममयङ्दरमितत् ॥ २४॥

### **बृहच्छतावरीम**एडूरम्

शतावरीरसप्रशे प्रशे च सुरभीजले।
श्रजायाः पयसः प्रशे प्रशे घात्तीरसस्य च।
लौहिकदृपलान्यष्टौ शर्करायाश्च पोडश।
दत्वास्य कुडवञ्चैव पचेन्मृद्वश्निना शनैः॥
सिद्धशीते घटे नीते चूर्णानीमानि दापयत्।
विडद्गित्रफलाव्योपयमानीगजपिष्पली॥
दिजीरकघनानाञ्च श्रुक्णाग्यक्तसमानि च।
खादेदश्चिवलापेक्षी भोजनादौ विचक्तगः॥
निहन्ति पिक्तश्लाञ्च श्रम्लपिक्तं सुदाहग्रम्।
रक्षापत्तञ्च श्रलञ्च पागृहरोगं हलीमकम्॥ २४॥

रातावरीत्यादि—मुरभीजले गोमूत्रे ॥ २५ ॥

#### रसमग्ह्रम्

कुडवं पथ्याचूर्णं द्विपलं गन्धाश्म लोहिकहुक्च।
शुद्धः सस्यार्द्वपलं भृद्गस्य रसञ्च केशराजस्य।
प्रस्थोन्मितञ्च दन्वा लौहे पातेऽथ द्रग्डसङ्घृष्टम्।
शुष्कं घृतमधुयुक्तं मृदितं स्थाप्यञ्च मागडके स्निग्धे॥
उपयुक्तमेतद्विराज्ञिहन्ति कफिपत्तजान् रोगान्।
शूलं तथाम्लिपत्तं ग्रहणीञ्च कामलामुग्राम्॥ २६॥

कुटनिमत्यादौ--गन्थाशम शोधितगन्धकचूर्ण द्विपल शोधितलौहमलन्च प्रत्येक द्विपलिमत्यर्थः । रमगन्धकौ कञ्चलीकृत्य हरीतकीमण्डूरचूर्णाभ्या सह मिश्री-कृत्य भूकराजस्वरस केशराजस्वरसन्च प्रत्येक प्रस्थमान दत्ता ताबद् घर्षणीय जीहपात्रे लौहदग्ढेनेव यावच्चूर्णप्राय भनति, अत प्रथमतः रिक्षचतुष्टय गृहीत्वा धतमधुभ्या सम्मर्ध लेह्मम्, चीराटिकमनुपेयम्। धन्तर रिक्षदय कृत्वा धृद्धिमीषकद्वय यावत् ॥ २६ ॥

# त्रिफलालौहः

त्रज्ञामलकशिवानां स्वरसैः पकं सुलोहजं चूर्णम्। सगुडं यद्युपयुङ्क्षे मुञ्चति हि त्रिदोषजं शूलम् ॥२७॥

श्रज्ञामलकेत्यादौ —स्वरसैरिति मिलित्वा चतुर्गुणै., प्रत्येकमित्यन्ये । व्यवहारस्तु पूर्वेणैव स्वरसामावे काथ । सगुडमिति लौहरज समगुडम् । पाकश्चास्य मुद्रया । तदुक्त—'गुडादि प्रविशेद् यत्र तत्र पाकश्च मुद्रया ।' लौहान्तरविद्वि- धिरत्र ॥ २७ ॥

# लौहगुडिका

लोहस्य रजसो भागस्त्रिफलायास्त्रयस्तथा।
गुडस्याष्टी तथा भागा गुडान्सूत्रं चतुर्गुख्म्॥
पतत् सर्वञ्च विपचेद् गुडपाकविधानवित्।
लिहेच तद् यथाशक्ति चये शुले च पाकजे॥ २८॥
लीहस्येत्यादि—माग इत्येको मागः, त्रिफलायाक्षय इति मिलित्वा। लिहेच

रित चतुष्टयादिक्रमेणत्याहु ॥२८॥

### धात्रीलौहम्

धात्रीचूर्णस्याप्टी पलानि चत्वारि लोहचूर्णस्य ।

यप्टीमधुकरजश्च द्विपलं द्यादुपलघृष्टम् ॥

त्रमृताक्षाथेनैतच्चूर्ण भाव्यञ्च सप्ताहम् ॥

चएडातपेषु शुष्कं भूय पिष्ट्वा नवे घट स्थाप्यम् ॥

घृतमधुना सह युक्तं भक्तादौ मध्यतोऽनंत च ।

त्रीनिप वारान् खादेत् पथ्यं दोपानुवन्धेन ॥

भक्तस्यादौ नाशयित व्याधीन् पित्तानिलो द्ववान् ।

भक्तस्यादौ नाशयित व्याधीन् पित्तानिलो द्ववान् ।

पनाष्ठितान् दोपान् भक्तान्ते शीलितं जयित ।

एवं जीर्यात चान्ने शूल नृणां सुकष्टमिप ॥

हरित सहसा युक्तो योगश्चायं जरित्पत्तम् ।

चनुष्यः पितत्नाः कफापित्तसमुद्भवान् जयेद्रोगान् ।

प्रसाद्यति च रक्त पाएइत्वं कामलां जयित ॥ २६ ॥

धात्रीत्यादि—अमृताकाथेनामलकीकाथेन । अन्य लमृता गुढ्वीमाह् ।

व्यवहारस्तु पूर्वण्व । जरित्तत्तमम्लिपनम् ॥ २६ ॥

लौहामृतम्

तन्नि लोहपत्राणि तिलोत्सेघसमानि च।
कशिकामूलकल्केन संलिप्य संषपेण वा॥
विशोष्य सूर्य्याकरणैः पुनरवावलेपयेत।
तिफलाया जले ध्मातं वापयच पुनः पुनः॥
ततः सञ्ज्यूर्णितं कृत्वा कर्पटेन तु छानयत्।
मन्त्रेयन्मधुसर्पिभ्यां यथाग्न्येतत् प्रयोजयेत्॥
मापकं त्रिगुणं वाथ चतुर्गुणमथापि वा।
छागस्य पयसः कुर्याद्वपानमभावत ॥

गवां घृतेन दुग्धेन चतुःषष्टिगुणेन च।
पक्तिग्रलं निद्दन्त्येतन्मासेनैकेन निश्चितम्।
लोहामृतमिदं श्रेष्ठं ब्रह्मणा निर्मितं पुरा ।
ककारपूर्वकं यच्च यच्चाम्लं परिकीर्त्तितम्।
सेव्यं तन्न भवेदत मांसञ्चानूपसम्भवम्॥ ३०॥

तन्नीत्यादि — कशिकामूलकल्केन श्रेतार्कमूलकल्केन, तथा श्रेतसंघपकल्केन वा पुन पुनः पिरिलिप्य पुन पुनः चातपं सशोष्य, ततो दग्ध्वा त्रिफलाक्काथे निर्वापय तावत् कार्य्यं यावत् मर्वलोहस्य जारयम् मवेत् । तत प्रचाल्य मशोष्य चूर्यीकृत्य रिक्तचतुष्टयादिक्रमेया नवायसादिवदस्योपयोग । कचिच्च श्रत्र कशिकामूलकल्केनेत्यत्र श्रेतसंघपकल्केन परिलिप्य पुन पुनिरिति पाठान्तरम् ॥ ३०॥

#### खरडामलकी

स्थार्से खर्डतुल्यन्तु पचेदामलकीरसात्॥
प्रस्थार्से खर्डतुल्यन्तु पचेदामलकीरसात्॥
प्रस्थे सुस्तिन्नकृष्मार्ग्डरसप्रस्थे विघट्टयन्।
दर्ज्या पाकं गते तिसंश्चूर्णीकृत्य विनिक्तिपेत्॥
दे द्वे पले कणाजाजीश्चरठीनां मरिचस्य च
पलं तालीशघन्याकचातुर्जातकमुस्तकम्।
कर्षप्रमाणं प्रत्येकं प्रस्थार्द्धं माज्ञिकस्य च॥
﴿ पृक्षिश्चलं निहन्त्येतद्दोषत्वयभवञ्च यत्।
छर्चम्लिपत्तम् च्छिश्च कास्थ्वासावरोचकम्॥
द्विच्चूलं रक्षिपत्तञ्च पृष्ठश्चलञ्च नाशयेत्।
रसायनिमदं श्रेष्ठं खर्डामलकसंक्षितम्॥ ३१।

खग्डामलक्या खग्डतुल्यमिति खग्डस्य पश्चाशत्पत्तानि । मरिचस्य तु पत्त-मिलन्वय । तालीशादिकञ्च प्रलेक कर्षमानमिल्यर्थ ॥ ३१ ॥

#### नारिकेलखएडः

ृ कुडवमितमिह स्यान्नारिकेलं सुपिष्टं

पलपरिमितसपिं पाचितं खएडतुल्यम् ।
निजपयसि तदेतत् प्रस्थमात्रे विपकं
गुडवदथ सुशीते शाणभागान् सिपेच ॥
धन्याकपिष्पलिपयोदतुगाद्विजीरान्
शाणं त्रिजातमिभकेशरवद्विचूर्ण्यं ।
हन्त्यम्लपित्तमहर्षि स्यमस्रपित्त
शूलं वर्गि सकलपारुपकारि हारि ॥ ३२०॥

कुटबिमलादि—अन केचिन्नारिकेलस्यार्द्रतेन देशुयपमिच्छनि । अतप्याम' मटी पलानि कुटबो नारिकेल तथेव च ' इति । ये च न दंशुययिमच्छिति तेपामयमिम्रायो नारिकेलस्याष्टपलत्वे रायण्याय्यष्टपलत्व, खयण्युत्यमिति यचनात् ।
अतथात्र नारिकेलारकप्रस्यस्य द्रवत्वेनोपादानात् पाकस्य देशुयय प्रमञ्यत, चनुगुण्
स्तुत्सर्गसिद्ध किन्न तन्नान्तरे चातुश्र्ययम्प्युक्त यथा—'कुण्य नारिकेलस्य श्रदण्
दशादि पेपितम् । शुद्धखण्डस्य कुटव मर्वमेतचतुगुणे । भालोच्य नारिकेलस्य अन्
यहसिना पचेत् शति । अस्मन् वचने शकराया अपि कुण्यमुक्तम्, तम्र च न देशुय्य
'प्राह्मास्तत्त्वणमेव न दिश्रिणता ये चेन्जनात घनाः' इत्युक्ते । अत्र च राण्णतुत्यमिति प्रथते। तत नारिकेलस्य शस्यकुटवाद् देशुय्येन परमनयोनारिकेलर्गण्यये ममसा स्यात्, नान्यथिति। तेन देशुय्यामावपच पव साधीयान् । नारिकेलं तथेव चिति वाक्य
नादर्णायमार्पत्वे प्रमाणामावादित्याद्व. । तुगा वश्रलोचना। नागकेश्वरसिद्दित विज्ञात
मिलित्वा साखमात्र पुन साखमित्युके । पौरप शुक्रम् । द्वारि ननोद्वारि ॥ १२ ॥

#### कलायगुडिका

कलायचूर्णभागी द्वै। लैहिचूर्णस्य चापरः । कारवेत्तपलाशानां रसेनैव विमर्दितः ॥ कपमात्रां ततश्चैकां गुडिकां भन्नयेन्नरः । मएडानुपानाज्जयित जरिपत्तं सुदुर्जयम् ॥ ३३ ॥ कलायेलादि-कलाये वर्तुलकलाय । लीहचूर्णसापर इलेको भाग । पलाशा । नामिति पत्राणाम् । मण्डो यवमण्ट । जरिपत्तमम्लापित्तम् ॥ ३३ ॥

लिह्याद्वा त्रैफलं चूर्णमयश्चूर्णसमान्वतम्।

यिष्यूर्णेन वा युक्तं लिह्यात् चौद्रेण तद्गदे ॥ ३४॥ लिह्यादित्यादि—मिलितित्रिफलाचूर्णस्म लीहचूर्णसमत्वम् । श्रन्ये तु त्रिफलाया प्रत्येक लीहचूर्णसमोंऽश इत्याहुः । तद्गद शत जरियत्ते ॥ ३४॥

पित्तान्तं वमनं कृत्वा कफान्तञ्च विरेचनम्।
श्रश्नद्रवे च तत्कार्य्यं जरित्पत्ते यदीरितम्।
श्रामपकाशयं शुद्धे गच्छेदश्नद्रवः शमम्।
माषेग्डरी सतुषिका सिन्ना सर्पिर्श्वता हिता॥ ३४॥

पित्तान्तीमत्यादी—श्रम्नद्रव इति, "भुक्ते जीर्थिति जीर्थे वा यच्चूलमुपजा-यते" इत्यादिनोकः ग्र्लविशेषोऽन्नद्रव । माषेग्रहरी सतुषिकेति सतुषमाषकृता माषेग्रहरी माषापष्टकविकृतिर्भद्दयविशेष ॥ ३५॥

> गोधूममएडकं तत सर्पिषा गुडसंयुतम्। सितं शीतदुग्धेन मृदितं वा हितं मतम्॥ शालितएडलमएडं वा कवोष्णं सिक्थवर्जितम्। वाट्यं चीरेण संसिद्धं घृतपूरं सशकरम्॥ ३६॥

गोधूममण्डको गोधूमकृतो मस्यिवशिष पश्चिमदेशे प्रसिद्ध । मृदित वा हित मतिमिति, मृदित सयावाकृतिलेह । वाट्य यवमण्डम् । वाट्यमिव मण्डिमिति पाठे शालितण्डुलकृतमण्ड इत्यर्थ । किन्तु यवस्य सर्वथा श्क्षप्नत्वात् वाट्यमिति पाठ एव श्रेयान् । गोधूमचूर्णकृत. मृष्टो एतपूरो मस्यविशेष ॥ ३३॥

शर्करां मक्तियत्वा वा क्तिरमुत्किथितं पिवेत्। पटोलपत्रयूषेण खादेचणकशक्तुकान् ॥ ३७॥ श्रक्षद्रवे जरित्पत्ते विह्नमन्दो भवेद् यतः। तसादत्राक्षपानानि मात्राहीनानि कल्पेयत्॥ ३८॥ इति परिणामश्रक्तिविकित्सा।

पटोलेत्यादी--यूषो मुद्गादियोगात्, किंवा काथ ॥ ३०॥ ३०॥ ३०॥ ३०॥

- A CONTRACT

# अथोदावर्त्त-चिकित्सा।

विवृत्सुधापत्रतिलादिशाक-ग्राम्यादकानूपरसैर्यवान्नम् । श्रन्येश्च सृष्टानिलमूत्रविड्भि-रद्यात् प्रसन्नागुडशीधुपायी ॥ १ ॥

पवनाविनाभावित्वसाधर्म्यात् सूलानन्तरमुदावर्षे । उदावर्ते हि सर्वत्र सूल-वहवण्यम्मावा वायु । यद्गकः सुश्रुते—'मर्वेप्वेतेषु विधिवद्ददावर्षेषु कृष्कशः । वायो क्रिया विधातत्या स्वमागंप्रतिपत्त्यये' इति । उङ्गतेन वेगविधारखेनाषृतस्य निक-द्ववायोर्वर्षा वर्षेनसुदावर्ते इति निक्किरस्य । त्रिष्टित्यादि — त्रिष्टत्सुधयो पत्रम् आदिशन्दात् मत्तलादिपत्रपरिमहः । अन्यैरिति विषम्त्रायनुलोमनै चीराविधि । प्रमन्ना मदिराविश्वेषः, गुङ्कार्याधुर्गुडशिधुः ॥ १ ॥

श्रास्थापनं माठतजे स्निग्धस्तिन्नस्य शस्यते । पुरीषजे तु कर्त्तन्यो विधिरानाहिकस्तु यः ॥ २/॥

श्रास्थापनामित्यादि — सुक्षुनस्य। मारुतने इति मारुतनेगविषातजे, एव पुरापन इत्यत्रापि न्याख्येयम् । निविरानाधिक इति फलवर्त्यादिः ॥ २॥

्तारवैतरणौ वस्ती युञ्ज्यात् तत्र चिकित्सकः ॥ ३/॥ ' श्यामा दन्ती द्रवन्तीत्वक् महाश्यामा स्तुही त्रिवृत् । सप्तला शिक्षुनी श्वेता राजवृत्तः स्तित्वकः ॥ , किम्पल्लकः करञ्जश्य स्वर्णक्तीरी त्वयं गण् । सर्पिस्तैलरजःकाथकल्केष्वन्यतमेन च ॥ उदावर्त्तीदरानाहविपगुल्मविनाशनः ॥ ४॥ त्रिवृत्कृष्णाहरीतक्यो द्विचतु पश्चमागिकाः।

श्रास्पापन विष्ट्योति चार्वतरयावित्यादिना । श्यामेत्यादि — श्यामा श्याम-मूला त्रिवृत् । द्रवन्ता मूपिकपत्रा दन्ती, श्रस्यास्त्वक्, त्विगत्यत्र स्तुगिति पाठे मीजु-भेदो वा, किन्तु सुश्रुते वाग्मटे च स्तुद्दीदय न पड्यते । महाश्यामा वृद्धदारक । त्रिवृदित्यरुषमूला त्रिवृत् । सप्तला चर्मकषा, नीलबुद्धेस्ते । राङ्क्षनी श्रेतबुद्धा । होलकलन्वीत्यन्ये । श्रेता श्रेतापराजिता कटमी वा । राजवृत्तः रोगिणालुफलम् । तिल्व-कोऽत्र नावरलोध्र । कम्पिह्ला गुरुदारोचनी । देमचीरी ककुष्ठः । श्रन्यतेमेनेति मीप-रादिकन्पमध्ये चैकतमेन कल्पेन प्रयुक्त इति राष ॥ ३ ॥ ४ ॥

गुडिका गुडतुल्यास्ता विङ्विवन्धगदापहाः ॥ ४ ॥ श्रिवृदित्यादो—दिचतु पञ्चमागिका इति यथाक्रमम् । गुटतुल्या इति ममु-दितचूर्णतुल्या गुडमागः ॥ ४ ॥

> हरीतकी यवज्ञारः पीलुनी त्रिवृता तथा। घृतैश्चूर्णमिदं पेयमुदावर्त्तविनाशनम्॥६॥

हरीतकीत्यादी-पीछनीति मूर्वा, पीलूनी इति पाठान्तरे पीछ श्रीत्तरा-पथिकफलम्, इदमेव सुक्ष स्नसकत्वात्॥ ६॥

। हिंदुकुष्ठवचासर्जी विडञ्चेति द्विरुत्तरम्।
पीतं मद्येन तच्चूर्यमुदावर्त्तविनाशनम्॥ ७॥
हिन्तित्वादि—सुश्रुतस्य। सर्विः सर्जिद्यारः। दिरुत्तरमिति यथोत्तर
दिसुणम्॥ ७॥

नाराचचूर्णम्

खरडपलं त्रिवृतासममुपकुल्याकर्षचूर्णितं श्रद्याम् ।
प्राग् भोजने च समघु विडालपदकं लिहेत् प्राज्ञः ॥
पतद् गाढपुरीषे पित्ते कफे च विनियोज्यम् ।
सुस्वादुर्नृपयोग्योऽयं चूर्णी नाराचको नाम्ना ॥ = ॥
नाराचचूर्षे त्रिवृताममीमित त्रिवृच्चूर्थस्यापि पतम् । वपकुल्या पिप्पती ।
प्राग्नोजन इति मोजनपरिखाने सोजनस्त्रिधाने वा ॥ = ॥

रसोनं मद्यसम्मिश्रं पिवेत् प्रातः प्रकाङ्क्तितम् । गुल्मोदावर्त्तग्रलन्नं दीपनं वलवर्द्धनम् ॥ ६ ॥

रसानिमत्यादि—यद्यप्यं योगः ग्रलाधिकारे पूर्वमुक एव तथाप्युदावर्तेऽपि विहितत्वात् पुनरप्यत्र लिखितः ॥ ६॥

हिङ्गुमादिकसिन्धूत्थः पक्तवा वर्त्ति सुनिर्मिताम्।

घृताभ्यक्षां गुदे दद्यादुदावर्त्तविनाशिनाम् ॥ १० ॥

हिंगुमाचिकत्यादि—हिंगु माया ८, मैन्धव कर्ष १, मगु पल १, पव स्या-हाराद् गृहीत्वा पक्ता च फलवर्सि कुर्याद् । हिंगुसैन्धवे समे वर्तिकरणानित मभु देयमित्यन्ये । गुष्टपाकवदन्य पाक , तदवस्थायामेव परि कराज्या । तता प्रेना-भ्यज्य गुदे चिपेन् ॥ १० ॥

> मदनं पिष्पली कुष्ठं वचा गौराश्च सर्पपाः। गुडचारसमायुकाः फलवर्त्तः प्रशस्यते ॥ ११ ॥

मदनमित्यादी---गुजे मिलित नृष्यमम । गुटश मनाक् जल इस्या पश्या च वर्षि कुर्यादित्यथ ॥ ११ ॥

> त्रागारधमसिन्धृत्थ-तेलयुक्ताम्लमूलकम् । ज्ञुग्णं निर्गुगिडपत्रं वा स्विन्ने पायो जिपेद् बुघ ॥१२॥

श्रागारध्र्मत्यादि—श्रागारध्र्मोऽलन्ध्म , श्रम्लमूलक काशिकमूलक श्राष्ठ-त्नमम् श्रलन्ध्रममैन्धवन्त्र्यंतीले शक्षित्वा न्यित उदे प्रतिष्यम् । निगुवरी निम्धु बारः । तत्वश्रमपि नूर्णाहत्व चागारध्मादिग्रक्षित रिग्ने गुदे निदेष्यम् ॥१२॥

सौवर्चलाढ्यां मदिरां मृत्रे त्वभिद्दते पिवेत्। एला वाष्यथ मद्येन चीरवारि पिवेच सः॥ १३॥

सीवर्चलेत्याहि—सुश्रुतस्य । अत्र मिन्धृत्यज्ञरणाणान्तु शाणिका चित्यत्राहि-पटेन सगृहीतत्वात् मीवर्चलस्य मापकचतुष्ट्यम्, मिटरा चाहारप्रच्यत्वात् प्रचुग श्राद्धा । व्यवहारस्तु मिदरापलद्दयेन । ण्ला वाष्ययं मेघेनेति प्रणाचूर्णस्याष्टां मापका., मचस्य च पलद्दयमित्याहु चीरवारीति ममचारेण मिश्रित वारीत्ययः ॥ १३ ॥

> दुःस्पर्शास्वरसं वाापि कपाय ककुभस्य वा । पर्वारुवीजं तोयेन पियेद्वा लवखीकृतम् ॥ १४ ॥

दुःस्परेत्यादि — सुभुतस्य । दुःस्परों दुरालमा, दुःस्परााग्वरममिति पाठे दुःस्परों कण्टकारीत्यन्ये । ककुमोऽजुनः । ण्वागः ग्रीष्ममवा कर्षटीति उत्त्यण । भलवणीकृतमिति मैन्यवयोगादीपञ्चवणाकृतमिति। ण्वच प्रवाग्यीगमित्यनेनय नम्बन्ध्वते, न तु पूर्वेष ॥ १४ ॥

पञ्चमूलीश्वतं चीरं द्राचारसमथापि वा।

# सर्वथैवोपयुञ्जीत मूत्रकुच्छाश्मरीविधिम् ॥ १४ ॥

पञ्चमूलीति—पञ्चमूलो स्वल्पा, समानतन्त्रमोजसवादात् । यथा,— ' लघुना पञ्चमूलेन शृत चीर पिवेन्नरः'' इति । श्रीकण्ठदत्तस्तु तृखपञ्चमूलीत्याह । सर्वयैव सुश्रुतेऽपि निरवशेषित इत्युक्तम् ॥ १५ ॥

स्नेहस्वेदैरुदावर्त्तं जुम्भजं समुपाचरेत्॥ १६॥

्रश्रुमोत्तोऽश्रुजे कार्य्यः सप्तो मद्यं प्रियाः कथाः॥१७॥ त्तवजे त्तवपत्रेण घ्राणस्थेनानयेत् त्तवम्।

- 🗸 तथोद्ष्वजन्जुगोऽभ्यङ्गः खेदो घूमः सनावनः ॥
- , हितं वातझमाद्यश्च घृतश्चौत्तरभक्तिकम् ॥ १८ ॥ उद्गारजे क्रमोपेतं स्नैहिकं धूममाचरेत् ॥ १६॥

स्नेहत्यादी — जूम्भजिमिति जूम्भावेगविद्यातजम्, प्वमुत्तरत्रापि । श्रश्नुमी-चोऽश्रुनि सारखम्, तश्च तीच्छाश्चनादिविधिना । चवपत्रेणेति द्याञ्चियापत्रेण । कद्ध्वजत्रुगोऽभ्यत्त इति कद्ध्वजत्रुदेशगतोऽभ्यत्त. कार्यः । श्राद्य मच्यम् । क्रमी-पेतिमिति साहिकश्रूमपानोक्षक्रममुक्तम् ॥ १६—१६॥

छुर्घाघातं यथादोषं नस्यस्नेहादिभिजयेत्। भुक्त्वा प्रच्छदेनं धूमो लङ्घनं रक्षमोत्तरम्। रुज्ञान्नपानं व्यायामो विरेकश्चात्र शस्यते॥ २०॥

व्याधातमित्यादि — सुश्रुतस्य ख्रधीधातमिति खर्षी वेगविधातज रोग कुष्ठवि-सर्पादिकम्, कार्य्यकारणयोरमेदोपचारात्, एव चुिद्धित इत्याधीप व्याख्येयम् । यथादोषमिति यस्तत्रानुदूषको दोषश्छिदिविधातजरोगे जातस्तद्विपरीतैर्नस्यादिभिर्जये-दित्यर्थः ॥ २०॥

| विस्तिश्चिद्धिकरावापं चतुर्गुणुजलं पयः ।
| श्रावारिनाशात् कथितं पीतवन्तं प्रकामतः ॥
| रमयेयुः प्रिया नार्थ्यः श्रुक्षोदावर्त्तिनं नरम् ।
| श्रवाभ्यक्षावगाहाश्च मिद्रराश्चरणायुधाः ।
| शालिः पयोनिक्दाश्च हितं मैश्रुनमेव च ॥ २१ ॥
| जुद्धिघाते हितं क्षिग्धमुष्णमल्पश्च मोजनम् ॥ २२ ॥

तृष्णाद्याते पियेन्सन्थं ययाग्रं वापि शीतलाम् ॥ २३ ॥
विस्तिशुद्धिकरावापिमित्यादि—विस्तिशुद्धिकराटीह व्यापश्चमूलवीरनरादीनि,
आवाप इति चीरसाधनार्थं दनक म यत्र तत्त्रथा। रमेयेयु मधुने योजयेयु । अवगाही वातिपत्तिहरद्रन्यकाथे कोण्णे वीध्य । चरणायुधाः कुम्कुटा । निरूषाधिनि
निरूह चत्त्रविस्तिवेसिक्षेति चकारात्॥ २१—२३॥

रसेनाद्यात् सुविश्रान्त श्रमश्वासातुरो नरः ॥ २४ ॥

निद्राघाते पिवेत् चीरं सप्तः संवाहनानि च ॥ २४ ॥

इत्युदावर्चाविकित्सा ।

सुविश्रान्त इति विरतिकयः। निद्राधात इत्यादी—चीरिमह माहिष, निद्रा-करत्वादित्यादुः। श्रन्ये तु प्रधानकन्यनया गोचीरम्, श्रत्यव तन्त्रान्नरे—'निद्रा-षाते पिनेत् चीर गो सुप्यादय वा नर '' इति ॥ २४ ॥ २५ ॥ इत्युदावर्चनिकित्साविनृति ।

# अथानाहचिकित्सा ।

उदावर्चिक्रयानाहे सामे लहुनपाचनम् ॥ १॥
हिरुत्तरा हिड्गु वचा सक्तृष्टा
सुर्वाचेका चेति विउद्गचूर्णम् ।
सुस्नाम्बुनानाहविस्चिकार्त्तिहृद्रोगगुल्मोद्र्यंसमीरण्व्रम् ॥ २॥
वचामयाचित्रकयावश्कान्
सपिप्पलीकातिविपान् सक्तृष्टान् ।
उप्णाम्बुनानाहविमूढ्यातान्
पीत्वा जयेदाशु हितोदनाशी ॥ ३॥
भानाहविकित्मामाह उदावर्सेत्याहि—दिरुत्तग स्वाहि—यभोत्तर हिगुरा

इत्यर्थ । सुखाम्बुनेत्यनन्तर पातिमिति राष ॥ १---३॥

तिवृद्धरीतकीश्यामाः स्तुद्दीचीरेण भावयेत्। वटिका मूत्रपीतास्ताः श्रेष्ठाश्चानाहभेदिकाः॥ ४॥

त्रिवृदित्यादि—त्रिवृदित्यरुणमूला त्रिवृद्, श्यामा श्याममूला त्रिवृद् । वटि-केय माषकद्वेन व्यवद्वता । योगोऽयमतिमूरकोष्ठे ॥ ४ ॥

फलञ्च मूलञ्च विरेचनोक्तं
हिङ्ग्वर्कमूलं दशमूलमग्रथम्।
स्तुक्चित्रकौ चैव पुनर्नवा च
तुल्यानि सर्चेलवणानि पञ्च॥
स्नेहैः समूत्रैः सह जर्जराणि
शरावसन्धौ विपचेत् सुलिप्ते।
पक्तं सुपिष्टं लवणं तद्कैः
पानस्त्थानाहरुजाञ्चमग्रथम्॥ ४॥

फलक्रित्यादी—विरेचनोक्तमिति दीर्घक्रीवितीयेऽप्यमार्गतण्डुलीये वा विरेचन नकल्पे वा विरेचनकर्मणि यदुक्तम् । हिङ्गुस्थाने हिंस्नेति पाठान्तरम् । शरावसन्धा-विति अन्त स्पेमषजस्थालीशरावसन्धावित्यर्थः । विषचेदिति दहेत् । पक्तमिति दग्धम् । अअथगिति अष्ठम् ॥ ४ ॥

> राठधूमविडव्योषगुडमूँतर्विपाचिता । गुदेऽहुष्ठसमा वर्त्तिर्विधेयानादृशूलनुत् ॥ ६॥ 🚧

राठेत्यादि—राठो मदनफल, धूमा गृद्दधूम अलन्धूम इति यावत्। यावत्ना गुढेन मूत्रेण च पाकाद् वितः कर्त्तुं शक्यते तावदुमय देयमिति ॥ ६ ॥

विचित्रकद्वकसैन्धवसर्षपगृहधूमकुष्ठमदनफलैः।
मधुनि गुडे वा पक्त्वा पाय्वीरिता चाक्नुष्ठपरिमाणा॥
वर्त्तिरियं दष्टफला शनैः शनैः प्रणिहिता घृताभ्यक्ता।
श्रानाहोदावर्त्तप्रशमनी जठरगुल्मविनाशिनी॥ ७॥
भौतिरलादि—मिलिला त्रिकट्वादीनां कर्ष १, मधुपल १, ग्रह्कर्ष १

इत्येके । युक्त्या त्रिकडुकादिक गृष्टीत्वा वर्षिः कर्त्तन्येत्यन्ये । गुटे वेति वाशम्दोऽपि पूर्वयोगापेत्तया ममुच्चये वा द्रष्टन्य ॥ ७ ॥

> शुष्कमूलकाद्यं घृतम् मूलकं श्रष्कमार्द्रश्च वर्षाभूमूलपञ्चकम् । श्रारेवतफलञ्चापि पिप्ट्वा तेन पचेद् घृतम् । तत्पीयमानं शमयेदुदावर्त्तमसंशयम् ॥ ८॥

मूलकमित्यादि—सुश्रुतस्य । शुष्कमिति मूलकविशेषणम् । श्रार्द्रकमित्यार्द्र-ककन्द । टल्वणस्तु शुष्कमिति मूलकाद्रयोविशेषणमाह । मूलपज्रकमिति विल्वादि-पञ्जमूल, कफवातकृतविवन्धहन्तृत्वादिति जेकाट , स्वल्पपञ्जमूलमिति भानुमर्ता । श्रारेवतफल स्वर्णालुफलम् । श्रकल्कमिद धतम् ॥ = ॥

## स्थिराद्यं घृतम्

्रे स्थिरादिवर्गस्य पुनर्नवायाः सम्पाकपूर्तीककरञ्जयोश्च । सिद्धः कपायो द्विपलांशिकानां प्रस्थो घृतात् स्यात् प्रतिरुद्धवाते ॥ ६ ॥ इत्यानाहचिकित्सा ।

स्थिरादीत्यादि — स्थिरादिवर्गस्य शालपर्ग्यादिपन्नमूलस्य । सम्पाक शोखालु-फलम् । द्विवचनवलात् पूतिकेति करखफलिशोपण्, तेन लाटाकर्ज इत्यर्थ ॥ १ ॥ इत्यानाहचिकित्माविष्ठति ।

# अथ ग्रल्मचिकित्सा ।

र्लिष्वन्नं दीपनं स्निग्धमुष्णं वातानुलोमनम् । वृंहणं यद्भवेत् सर्वे तद्भितं सर्वगुल्मिनाम् ॥ १॥ ्रिक्यिधस्य भिषजा स्वेदः कर्त्तव्यो गुल्मशान्तये । स्रोतसां मार्दवं कृत्वा जित्वा मारुतमुल्वणम्।
भित्वा विवन्धं स्निग्धस्य स्वेदो गुल्ममपोहति ॥ २ ॥ गुल्मेऽप्यानाहो मवतीत्यानाहानन्तर गुल्म ॥ १ ॥ २ ॥
कुम्भीपिएंडप्रकास्वेदान् कारयेत् कुशलो भिषक्।
उपनाहाश्च कर्त्तव्याः सुखोष्णाः शाल्वणाद्यः ॥ ३ ॥ कुम्भीत्यादि सुश्रुतस्य । वातहरक्ताथादिमि पूर्णाभि अन्तर्गणाभि
कुम्भीभि कलसीमे स्वेदन, तथा उत्तिवन्नमाषादिपियडकेर्वस्त्रवद्धे स्वेद पियडस्वेद , इष्टकया च तप्तया वातहरक्ताथसिकया स्वेद इष्टकास्वेद । शाल्वणादय
इत्यादिशम्देन वेशवारादिपरिग्रह् ॥ ३ ॥

स्थानावसका रक्सस्य वाहुमध्ये शिराव्यधः। स्वदोऽनुलोमनञ्जैव प्रशस्तं सर्वगुल्मिनाम्॥४॥

स्थानावसेका रक्तस्वेति—स्थिरगुलेम गुल्मस्थानाद्रकावसेक । बाहुमध्ये शिराज्यभ इति वाहुमध्ये सन्धेरभस्तात् स्वल्पशिरा वेध्या, न तु मध्या न वा बृहती, तस्या ममत्तात् । शिराज्यभक्ष यस्मिन् पार्थे गुल्मस्तत्पार्थस्थवाहै । श्रयञ्च विधि दोषचिकित्सया गुल्मस्याप्रशमने स्वेदादिना च शोखितदुष्टौ सत्या बेध्य । स्वेद इत्यादिकञ्चाई पद्य सम्पूर्णक्षोकानुरोभादेवोक्तम् ॥ ४॥

पेया वातहरैः सिद्धा कौलत्था घन्वजा रसाः।
स्वडाः सपञ्चमूलाश्च गुल्मिनां भोजने हिताः॥ ४॥ ८
श्राहारविधिमाह पेयेत्यादि—वातहरैर्दशम्लादिभि । पश्चमूलश्चेह विल्वादिपश्चमूलम्, उष्णवीर्य्यत्या विशेषेण वातहरत्वात्॥ ४॥

#### वातगुल्मचिकित्सा

मातुलुङ्गरसो हिंगु दाडिमं विडसैन्घवम् । सुरामग्डेन पातव्यं वातगुल्मरुजापहम्॥ ६॥ 🔨

मातुलुङ्गेत्यादि—मातुलुङ्गरसादिक प्रचिष्य सुरामण्ड पेय सुरामण्ड-श्वाहारद्रव्यतया प्रभूतो प्राह्म , न तु चूर्याश्वतुर्श्य , एवमन्यत्रापि सुरया भेषज-पाने श्वेयम् ॥ ६ ॥

नागराईपलं पिष्टं हे पले लुञ्चितस्य च।

तिलस्यैकं गुडपलं चीरेगोप्णेन पाययेत्। वातगुरुममुदावर्त्तं योनिशलञ्च नाशयेत्॥ ७॥

नागरत्यादी—हिश्चितस्येति निस्तुपीकृनम्य । अय च भूरिमानीपभी-पयोगी न्याभिमहिन्नेन मनतीति देयम् । वाग्मटे पुनरेतदर्द्धमानेनाय योगी पटाते । यथा,—'' शुष्ट्या कर्षे गुहस्य दी भौतात् कृष्णतिलात् पलम् । सादनैतन्य सन्चूष्ये कीष्णचीरानु योजयेत् । वातहृद्दीगगुरुमाशीयानिशलशकृद्द्याराप् ' हि । अन्य तु नागराद्धंपलिमिति पुरुपस्य बलायल सुद्ध्या, दीनपुरणे तु नृशीयनानेन कर्त्तन्यिमत्याद्वः ॥ ७॥

> पिवेदेरएडतैलं चा चारुणीमएडमिश्रितम् । तदेव तैलं पयसा चात्रगुरुमी पिवेन्नरः ॥ ८॥ 🗹

पिनेदित्यादि—योगद्वयम् । पूर्वयोग कफानुबन्धवायी, दितीयस्तु पित्ता-नुगे । उक्त हि चरके—" पूर्व कफानुबन्धे च हित पित्तानुगे परम् " री, पूर्वमिति वामणीसयुक्तमेरण्डतेलम्, परमिति पय मस्कृतमेरण्डतेलम् ॥ = ॥

साधयेच्छुष्कशुद्धस्य रसोनस्य चतुःपलम् । चीरोदकेऽप्रगुणिते चीरशेपश्च पाययेत् ॥ वातगुल्ममुदावर्त्त गृधसीं विषमज्वरम् । द्वद्रोगं विद्विध शोष नाशयत्याशु तत् पयः ॥ पवन्तु साधिते चीरे स्तोकमध्यत्र दीयते ॥ ६॥

साधयेदित्यादि—निस्तुपतया शुद्ध पूर्णवीयंतया च शुष्क इत्यधं । चीरीदकेऽष्टगुणित इति चीरीदकयोश्च समासकरणान्मिलिववाष्टगुणाय हेदम्, मागानुकेश्च सममागत्वमिति । तेन रमेानचतु पलापेच्चया चीरनीरयो प्रत्येक चातुर्गुण्यान्मिलित्वा द्वाविशारपलानि स्यु । अनयेश्च द्वत्वेऽपि न द्वेगुण्यम्, रसेानपलोक्षेखेनाष्टगुण्यत्विधानात् । जलचयादवशिष्ट चीरम् । यद्यपि पोष्टरापल-त्वेन यद्व भवति तथापि दीप्ताग्रयो महाकाया इत्यादि वचनाद् गुल्मस्य महुमात्रा-भिष्कितवया पोडशपलचीरमपि न दोपावहमितिः, किवा अग्न्युपपानभयाण् स्तोक पेयम्, अत प्रवोक्तम् एवन्तु माधित इत्यादिना । दुग्धरसोनयोश्चात्र न योगविरद्धन्तवमाराङ्कनीयम्, व्याधिप्रभावान्महर्षिवचनाचेत्यर्थ ॥ ६ ॥

सर्जिकाकुष्टसद्दितः सारः केतकिजोऽपि वा ।

तैलेन पीतः शमयेद् गुल्मं पवनसम्भवम् ॥ १० ॥ 🖊

मिनिकत्यादि—सुश्रुतस्य । सिनिकाया मापकद्वयम्, एव कुष्ठस्यापि, केतकीजटाचारस्य मापकचतुष्ट्यमिति निश्चलः वारान्द पूर्वचारयोगापेचया । डल्वणस्तु
चारो यवचार । अत्र सिनिकाकुष्ठसिहिता यवचारस्तैलेनेत्येको योगः । केतिकिजोऽपि वेत्यत्र चार इति सम्बध्यते, तेन केतिकिजोऽपि चारस्तैलेनेति, दितीयो
योग । गौडास्तु सिनिकाकुष्ठसिहत केतिकिजचारस्तैलेनैकमेव योगमादुः । तैलेनिति
तिलतैलेन । अन्य तु यौगिकत्वादेरएडतैलमाहु ॥ १०॥

# पित्तगुल्मचिकित्सा

पित्ते तु रेचनं स्निग्धं रक्ते रक्तस्य मोत्त्रणम्।
स्निग्धोष्णेनोदिते गुलमे पैत्तिके संसनं दितम्॥१२॥
पित्ते लित्यादि—किग्ध विरेचनामित्येरण्डतैलादिना॥१२॥
कत्तोष्णेन तु सम्भूते सर्पिः प्रशमनं परम्।
काकोल्यादिमद्दातिक्रवासाद्यैः पित्तगुल्मिनम्।
स्नेहितं संस्थेत् पृश्चाद् योजयेद्वस्तिकमेणा॥१३॥ "
स्वोम्णेन तु सम्भूत इत्यन्नापि पैत्तिक इति शेष । काकोल्यादिमद्दातिक्तवासावैरित्यनन्तर ध्तैरिति शेष.। काकोल्यादिगणकाथकल्कसाधित धत काकोल्यादिधतम्, महातिक्षशतस्र कुष्ठोक्तम्, वासाधधतस्र रक्तिपत्तोकम्। स्रसेयेदिति विरेच-

वेत्। विस्तकर्भेणेत्यत्ववासनिक्हाभ्याम् ॥ १३ ॥
स्निग्घोष्णुजे पित्तगुल्मे काम्पित्नं मधुना लिहेत् ।
रेचनार्थी रसं वापि द्रान्तायाः सगुडं पिवेत् ॥ १४ ॥
दाहश्र्लानिलन्तोभस्वप्ननाशास्त्रिज्वरैः ।
विद्रह्मानं जानीयाद् गुल्मं तमुपनाह्येत् ॥ १४ ॥ ""
पके तु व्रण्वत् कार्य्य व्यवशोधनरोपणम् ।

स्वयमूद्ध्वमधो वापि स चेहोप प्रपद्यते ॥ द्वादशाहमुपेक्षेत रक्षप्तन्यानुपद्रवान् । परन्तु शोधनं सर्पिः श्रुद्धे समधु तिक्रकम् ॥ १६ ॥

सिग्धाष्णज इत्यादी-काम्बिल्ल ग्रण्टारीचर्ना । विद्रह्ममानमिति पच्य-मानम् । उपानाइयेदिति व्रणशोधाःकपाचनापिएडे प्रेलपयेत् । नतु सुक्षेते गुल्मस्य पाको निषिद यथा " स यस्मादात्मनि चय गच्छत्याप्त्यिव बुद्बुद । अन्त मर्रात यस्माच न पाकमुपयात्यत । अ इति । श्रात्मनीति स्वावयवे गुल्मारम्भकदे।परूपे: नतु मासन्कादौ । चयमिति वृद्धिम् । अप्तिवत नुद्बुद इति यथा जलावकद्वा वायु-रेव जले बुर्बुररूपो भवति, तथा कफपित्ताभ्यामवनदो वायुरेव क्राएटलीभृतो गुल्म इत्यर्थ । अन्त सरति यस्माच्च इत्यनेनापि रक्तादिरहितकोष्ठविवरमाद्याश्रय-लमस्य दरितम् । एतेन दोषमात्राश्रयिणि गुलेम मासरोाणितयो पाकाश्रययोर-भावादपाकित्वमुक्तम् । तत्राहु , गुल्माे यद्यपि दोपमात्राश्रय पत्र तथापि यटा कारखवशादिश्रय मामादिकमासाध कृतवास्तुपरिश्रहा भवति वातोपशमनार्थ कृत स्वेदादिभिन्नं दुष्ट रक्षं सहकारि लमते, तदा गुल्मस्यापि पाक कथ प्रेसपणीय ? केवल चरके गुल्मे इत्युच्यते सुयुत्ते तु विद्रधिसश्चयति सद्यामात्रे विवाद । श्रकृत-वास्तुपरिग्रहस्तु देापमात्राश्रयत्वान्न पच्येन इति चरकेणाप्यनुमत प्रवेति । अन्य तु भपाकार्थमुक्तहेतुदयस्य वातिक एव मजितत्वादातिक एव गुल्मा न पच्यते श्रस्थि-रत्नाद्वास्त्वभावाच । श्रन्य तु पठन्ति भद पुनग्य विद्रिधगुल्मयो ,विद्रिधरिचरका-लपाकश्चिरपाकश्च गुल्म इति । अतण्व माधवकगेऽप्याह " प्रायो न पच्यते गुल्मो वातनस्तु विशेषत । रक्षपित्तादिवृद्धत्वात् पच्यतेऽन्यो यदृच्ञ्यया" इति । स्वयमि-त्यादि स्वयमवान्तर्भिन्ने मति दोष पूयरूप ऊद्ध्वमधो वा गच्छिनि, तदा द्वाट-शाह्मुपेचत, न शोधनरोपणादिक कुर्यात् । उपद्रवान् व्वरादीन् । उपद्रवेभ्यो न्वरादिन्यश्चातुर रस्रक्षित्यर्थ । परन्तु शोधन सींपीरिति हादशाहात् पर शोधन-द्रव्यसाधित वृत पेयम् । शुद्धे समधुनिककमिति शुद्धे सति तिकद्रव्यसाधित वृत पेयम्। गुढे समधुतिककमिति शुद्धे मति तिकद्रन्यसाधित एतं समघु मधुमदित देय रोपणार्थमिति राप ॥ १४—१६॥

रोहिणी कटुका निम्वं मधुकं त्रिफलात्वचः। कर्पाशास्त्रायमाणा च पटोलत्रिचृतापले॥ द्विपलञ्च मस्राणां साध्यमष्टगुणे जले। घृताच्छेषं घृतसमं सर्पिषश्च चतुःपत्तम् ॥
पिवेत् संमूर्विछतं तेन गुल्मः शाम्यति पैत्तिकः ।
न्वरस्तृष्णा च शूलञ्च भ्रमो मूच्छाऽरितस्तथा॥१७॥
दीप्ताग्नयो महाकायाः स्नेहसात्म्या महाबताः ।
गुल्मिनः सर्पद्धाश्च विसर्पोपहताश्च ये ।
न्येष्ठां मात्रां पिवेयुस्त पत्नान्यष्टौ विशेषतः ॥ १८॥

रोहिणीत्यादि—रोहिणी कडुकेति कडुरे।हिणी । त्रिफलात्वच इति निर-म्थित्रिफलायाः । एते त्रायमाणान्ताः प्रत्येक कर्षशाः । पटोलित्रिषृतापेल इति दिवचनात् प्रत्येक पलमेकम् । श्रष्टगुणे इति प्रतादप्टगुण योज्यम् ; प्रत चतुःपल-भेवोक्तम् । तेन प्रतेन सम्मुष्टितमेकीकृतम्, एतेन काथप्रतास्या मिलित्वाष्टी पलााने । इयत्र मात्रा व्याधिमहिस्ना न दोषावहेत्येतदेवाह दीसायय इत्यादि ॥ १७॥ १०॥ १०॥

#### कफगुल्मचिकित्सा

िल्ह्वने। सेखने स्वेदे क्रतेऽश्रो सम्प्रधुचिते।

घृतं सत्तारकडुकं पातन्यं कफगुित्मना ॥

मन्दोऽशिर्वेदना मन्दा गुरुस्तिमितकोष्ठता।
सोत्क्रेशा चारुचिर्यस्य स गुल्मी वमनोपगः॥ १६॥

लङ्कोतत्यादी-धृत सत्तारकडुकमिति यवचारत्रिकडुवल्कसाधितमित्यर्थः । वमनोपग इति वमनेनोपगम्येत उपचर्यते यः स वमनोपगः । पूर्व वातिकगुल्म प्वावस्थाया वमनमुक्तम्, इह तु कफगुल्म इत्येवेति न पौनरुक्तयम् ॥ १६॥

> मन्देऽग्नावनिले मूढे ज्ञात्वा सस्नेहमाशयम् । गुडिकाचूर्णनिय्यूहाः प्रयोज्याः कफगुल्मिनाम् । ज्ञारारिष्टगण्ञ्चापि दाहशेषे विधीयते ॥ २०॥

मृद इत्यावृते । गुडिकादय इहैव हिंग्वादिप्रभृतयो वक्तव्याः । चारारिष्टगण इति प्रतिसारणीयचारस्यानुशस्त्रतया शल्यतन्त्र एव तदिभिधः न देयम् । पानीयचारा श्वात्रापि प्रह्र्ययथ्यायोक्ताश्चानुसर्त्तव्याः । भरिष्टाश्चरकप्रह्र्यशिकित्सितोक्ताः वेयाः । उक्त हि—"य एव प्रह्णीदोषे चारास्ते कफगुलिमनाम् । आरिष्टयोगाः

सिद्धाश्च ग्रहण्वरंशिकितिसते'' इति । दाहस्तु शरलोहादिभि । उक्ष हि—''नस्य दाही हते रक्ते शरलोहादिभिर्हित '' इति । दाह रोष इनि दाहस्य दामणत्वात् कियान्तरामिद्धां रोष यव कर्त्तव्यता युक्ता ॥ २०॥

पञ्चमूलीश्वतं तोयं पुराणं वाकणीरसम् ।
कफ्गुल्मी पिवेत् कालं जीर्णं माध्वीकमेव वा ॥ २१ ॥
पश्चम्लीलादि—पन्वन्ती महती कफप्रत्यनीकतात्। माध्वीक मधु॥२१॥
तिलैरएडातसीवीजसपंपैः परिलिप्य च ।
श्रेष्मगुल्मामयं पातैः सुस्तोप्णैः स्वेद्येद्भिपक् ॥ २२ ॥
यमानीचूर्णितं तक विडेन लवणीकृतम् ।
पिवेत् सन्दीपनं वातमूत्रवर्षोऽनुलोमनम् ॥ २३ ॥
व्यामिश्रदोपे व्यामिश्रः सर्व एव क्रियाक्रमः ।
श्रेस्त्रिपातोद्भवे गुल्मे तिटोपम्नो विधिर्हितः ।
स्वित्रपातोद्भवे गुल्मे तिटोपम्नो विधिर्हितः ।
स्वेदमाह तिलेत्यादि । गुल्मामयमिति गुल्मस्थानम् । विटोपन्नो विधिरिति
वाताबुक्तयोगा एव एकोकृत्य योज्या , प्रकृतिसमममवेतत्वात्, विकृतिवियमनमवेतत्य तु
चरकेऽसाच्यतोके ॥ २२—२४॥

वचाविद्याभयाशुएठीहिङ्गुकुष्ठाग्निदीप्यकाः । द्वित्रिपट्चतुरेकाष्टसप्तश्चाशिकाः क्रमात् ॥ चूर्णे मद्यादिभिः पीतं गुल्मानाहोदरापहम् । शृक्षार्थे श्वासकासभ्यं ग्रह्मणीदीपनं परम् ॥ २४॥ वेचत्यादी —भ्रमया हरीतकीः भ्रामिश्वित्रक , टीप्यको यमानी । भ्रादिशस्दा-दुष्णोदकादीना ग्रहणम् ॥ २४॥

यमानीहिङ्गुसिन्धृत्यज्ञारसौवर्चलाभयाः । सुरामगुडेन पातन्या गुल्मग्रूलनिसूदनाः ॥ २६ ॥ यमानीत्यादी--चारा यनवारः । योगोऽयग्रुज्याम्बुना प्रचरति ॥ २६ ॥

हिङ्ग्वाद्यं चूरीम् दिङ्गु त्रिकडुकं पाठां ह्युपामभयां शटीम् श्रजमोदाजगन्धं च तिन्तिडीकाम्लवेतसी॥
दाडिमं पौष्करं धान्यमजार्जी चित्रकं वचाम्।
द्यौ चारौ लवणे द्वे च चव्यश्चेकत्र चूर्णयेत्॥
चूर्णमेतत् प्रयोक्षव्यमन्नपानेष्वनत्ययम्।
पार्श्वहृद्धस्तिश्लेलु गुल्मे वाते कफात्मके।
श्रानाहे मूत्रकृष्टेले च गुद्योनिरुजासु च॥
श्रह्णयशौविकारे च सीद्धि पाण्ड्वामयेऽरुचौ।
उरोविवन्धे हिकायां कासे श्वासे गलग्रहे॥
भावितं मातुलुङ्गस्य चूर्णमेतद्रसेन वा।
वहुशोगुडिकाः कार्याः कार्मुकाः स्युस्ततोऽधिकम्॥२७

हिड्ग्वादिचूर्णे अजमोदा यमानी, अजगन्धा चेत्रयमानी, तिन्तिडीक महाईक, हो चारी यवचारसर्जिकाचारी, लवणे हे सैन्धव-सीवर्चले। प्राग्भुक्तमिति मोजनस्य प्राक् परिणामे, मोजनाव्यवहितपूर्वकाले वा। प्रकारान्तरमाह भावितामित्यादि। बहुश इति सप्ताह सप्ताह भावनाविधिरित्युक्तत्वाद। मातुलुक्करसन सप्तदिनान्यातेष भाव्य, तदनु चाष्टमापकमिता वटिका कार्य्य। एका खादित्वा तप्तजलाखनुपेयमिति। कार्मुका कर्मकारकाः॥ २७॥

पूतीकपत्रगजिविभिटिचव्यविहः
व्योषञ्च संस्तरिचतं लवणोपघानम्।
दग्ध्वा विचूर्ण्यं दिधमस्तुयुतं प्रयोज्यं
गुल्मोदरश्वयथुपारहगदोद्भवेषु ॥ २८॥

पूतीकपत्रेत्यादि—वाग्मटस्य पूर्तीको लाटाकरन्ज , गजिनिर्मिटी गोरक्ष-कर्कटो, चिहिश्चित्रक , सस्तरचितमिति सस्तरस्यतया विहितम् । लवणोपधान सैन्धवगर्मम् । सैन्धवञ्च पूर्तीकपत्रादिकमम ग्राह्मम् । सौश्रुतपत्रलवणविधौ टीका-क्राङ्किरेव व्याख्यातत्वात् । पूतीकपत्रादिसस्तरे सैन्धव दस्त्वा तदुपरि पुन पूतीक-पत्रादिक विभज्य चान्तर्भूम दग्धव्यम् ॥ २८ ॥

हिंगुपुष्करमूलानि तुम्बुरूणि हरीतकीम्।

ण्यामा विडं सैन्धवञ्च यवत्तारं महौपघम् ॥ यवकाथोडकेनैतद् घृतभृष्टन्तु पाययेत् । तेनास्य भिद्यते गुल्म सम्मानः सपरित्रहः ॥ २६॥

हिरिबत्यादी — तुम्बुक म्बनामन्यात, ग्यामा त्रिष्ठ । हिंगुप्रमृतीना चृणे प्रमृत कृत्वा स्थाप्य, ततो योग्या मात्रा गृहीत्वा यवकाथेन सावियता धूने परिनर्ध पायेषित्रत्यं । यवकाथेरकेन यवकाथेनीप्योदकेनेत्यं । याम्मिन् प्रयोगे हि वैद्यप्रमारके उप्योदकेनेरयहतैन व्याधिक पठित, तत्रयथा,—' उप्योदकेन पानव्यमेतत् मक्बुतेलकम्' इति । अन्ये तु उदक्रण्टाऽय द्रववचन , तेन यवकाथरूपेण द्रवेणित्याहु । यवनागेरकेनेनि पाठान्तरममद्भनम् , बृद्धवाग्मेट यवकाथम्योकत्वात् । विद्यते विनीयते, न तु पक्ष मन् मेद गच्छित । मपरिग्रह इति वान्तुपरिग्रहमिहेत नोपद्रव इति वा ॥ २६ ॥

## वचाद्यं चूर्णम्

वचाहरीतकीहिंगुसैन्यवं साम्लवतसम् । यवज्ञारं यमानीञ्च पिवेदुण्णेन वारिणा ॥ एतद्धि गुल्मनिचयं सग्रलं सपरिग्रहम् । भिनच्चि सप्तरात्रेण वहेर्वृद्धि करोति च ॥ ३०॥

वचेत्यादि—हारीनस्य । इन योग भोजनादिमध्यावमानेष्वि कारयन्नीनि निक्षल । तन्न, हारीते हि—'शान्यते योगराजेन त्रि प्रयुक्तेन योगनः' इसेवी-क्षम्, न तु भोजनादिमध्यावमानेष्वपीति ॥ ३०॥

पिष्पलीपिष्पलीमूलचित्रकाजाजिसैन्धवैः।
युक्का पीता सुरा हन्ति गुल्ममाश्च सुदुस्तरम्॥ ३१॥
पिष्पलीत्यादि—अय योगी वानश्च्मिण ग्रेय ॥ ३१॥
नाद्येरीकुटजाकिशिसुयुद्दनीस्तुग्विल्यम्झातक—
व्यामीकिशुकपारिमद्रकजटापामार्गनीपान्निकान्।
वासामुष्ककपाटलाः सलवणा द्रग्ध्वा जले पाचितं
हिंग्वादि प्रतिवापमेतदुदितं गुल्मोदराष्टीलिषु॥ ३२॥
नादेशीत्यादि—नादेया भूमिजन्युका, व्यान्नी कण्टकारी, किञ्चक पनारा,

पारिभद्रकजटा पारिभद्रमूलम्, श्राधिश्वित्रकः । सलवणा ससैन्धवा, लवणा ज्योतिष्मतीत्येके । नादेयीप्रमृतीन् दग्ध्वा चार. कार्य्य । अस्यादक पलरात वा पानीयचारिविधिना चतुर्गुणेन षद्गुणेन वा उन्नेन पक्ता चतुर्भागावरोषे कल्क-मपनीय, एकविंशतिवारान् परिस्राव्य स्थापयेत् । अस्य कर्षमद्भेषल ना हिंग्वादिच्यूणं पादिक दक्ता मासम्बत्तचीराणामन्यतमेषु प्रचिप्य पिवेत्, मासरसादिभिश्च मोक्त-व्यमोजोरच्चणार्थम् । अन्य त्वादु एकदा विपाच्य स्थापिते चारोदकेऽम्लत्वादिदोष-राद्धा स्यात्, अत. कृतचाराचेश्वेत्वाधिष्चया पलादिपरिमित चार गृहीत्वा प्रत्यहम्मनन्तरीक्तकाथविधिना चारादक कार्य्यमिति । हिंग्वादिप्रतिवापमिति हिंग्वादे पादिकस्य प्रतिवाप प्रचेपो यत्र तत् तथा । एतदिति काथचारजलम् । यस्य तन्त्रस्याय प्रयोगस्तचोक्तहिग्वाधपरिज्ञानात् वच्यमाणहिंग्वादरजलम् । यस्य तन्त्रस्याय प्रयोगस्तचोक्तहिग्वाधपरिज्ञानात् वच्यमाणहिंग्वादरचन्तरपठितत्वातः सग्रहकारस्याभिमतो लच्यते ॥ ३२ ॥

हिंगूग्रगन्धाविडशुरुखजाजी-हरीतकीपुष्करमूलकुष्ठम् । भागोत्तरं चूर्णितमेतिदष्टं गुल्मोदराजीर्णिवस्चिकासु ॥ ३३॥

हिंग्वादी—उग्रगन्धा वचा । भागोत्तरमिति उत्तरोत्तरमेकभागवृद्धम् । उष्णाम्बुनास्य पानसुपदिशन्ति ॥ ३३ ॥

त्रिफलाकाञ्चनसीरीसप्तलानीलिनीवचाः । त्रायन्तीद्द्वषातिक्रात्रिवृत्सैन्धविपण्यलीः ॥ पिवेद्विचूर्यं मूत्रोष्णवारिमांसरसादिभिः । सर्वगुरुमोदरप्तीद्दकुष्टार्शःशोथपीडितः ॥ ३४॥ त्रिफलेत्यादौ—काञ्चनसीय्यो स्रमावात् कद्भुष्टमाह । सप्तला वर्षक्षा,

नीलिना नीलबुद्धा । विरेकाथौंऽय योग ॥ ३४॥

# काङ्कायनगुडिका

्शर्टी पुष्करमूलञ्च दन्ती चित्रकमाढकीम् । श्रृङ्गवेरं वचाञ्चैव पलिकानि समाहरेत्॥ े त्रिवृतायाः पलञ्चैव कुर्य्यात् त्रीणि च हिंडुनः। यवज्ञारपते हे च हे पते चाम्लवेतसात्॥
यमान्यजाजीमरिच धन्याकञ्चेति कार्पिकम्।
उपकुञ्च्यज्ञमोदाभ्यां तथा चाष्टमिकामपि॥
मातुलुङ्गरसेनैव गुडिकाः कारयेद्भिपक्।
तासामेकां पिवेद् हे वा तिस्रो वापि सुखाम्बुना॥
श्रमतैश्च मद्यैयूयश्च घृतेन पयसाथवा।
पपा काङ्कायनेनोक्का गुडिका गुल्मनाशिनी॥
श्रशीहं होगशमनी किमीणाञ्च विनाशिनी।)
गोमूत्रयुक्का श्रमयेत् कफ्गुल्मं चिरोत्थितम्॥
चीरेण पित्तगुल्मञ्च मद्यरम्लैश्च वातिकम्।
श्रिकलारसम्त्रैश्च नियञ्जेत् सान्निपातिकम्।
रक्कगुल्मे च नारीणामुष्ट्रीकीरेण पाययेत्॥ ३४॥

शटीमित्यादी--यमान्यादीना प्रत्येक कर्ष । उपकुद्धी कृष्णजीरकम्, अन-मोदा यमानी, अनयो प्रत्येकम् अष्टमिकामर्द्धपलिमत्यर्थ ॥ ३५ ॥

#### हबुपाद्यं घृतम्

हवुषाव्योषपृथ्वीकाचन्यचित्रकसैन्धवैः । साजाजीपिष्पलीमृलदीष्यकैर्विपचेद् घृतम् ॥ सकोलमूलकरसं सत्तीरं दिध दाडिमम् । तत् परं वातगुल्मन्नं ग्रूलानाहिवयन्धनुत् ॥ योन्यर्शोग्रहणीदोपश्वासकासारुचिज्वरान् । पार्श्वहद्वस्तिग्रुलञ्च घृतमेतद्यपोहिति ॥ ३६ ॥

ह्रविष्यादि—ह्रवुपा स्वनामख्याता, पृथ्वीका कृष्णजीरकम्, हिङ्गपत्रिके-त्यन्ये, दीप्यको यमानी । सकोलमुलकरसमिति कोल शुष्कवदर तस्य काथ , मृलकस्यापि शुष्कस्य काथ , न पुनर्नवद्वयस्य स्वरस , तस्य ह्य गुल्मे निषिद्ध-लात । दाहिमस्याप्यत्र स्वरम , द्रवसाहचर्यात् । विश्वामित्रेणापि दाहिमरम प्रवेक्तः । एव पद्मिर्भवै प्रत्येक स्नेहममै पाक ॥ १६॥

#### पश्चपलकं घृतम्

पिष्पत्याः पिचुरध्यद्धीं दाडिमाद् हिपलं पत्तम् । धान्यत् पञ्च घृताच्छुएट्याः कषः त्तीरं चतुर्गुणम् ॥ सिद्धमेतैर्घृतं सद्यो चातगुल्मं चिकित्सित । योनिश्र्लं शिरःश्रलमशीसि विपमन्वरान् ॥ ३७ ॥

पिष्पल्या इत्यादि—पिन्तुरध्यद्वे इति सार्द्धकर्ष । पल धान्यादिति योज्यम् । पञ्च धतादिति पञ्च पलानीत्यर्थ । चीर चतुर्गुणमिति धतपञ्चपलापेन्नया चतुर्गुण विंशति पलानि चीरस्येत्यर्थः॥ ३७॥

#### च्यूषगाद्यं घृतम्

त्र्यूपणित्रफलाधान्यविडङ्गचव्यचित्रकैः । करकीकृतैर्घृतं सिद्धं सन्तीरं वातगुरुमनुत् ॥ ३८ ॥ त्र्यूपणिदेष्टते सन्तीरमिति चतुर्गुणनीरसिहत, द्रवान्तरामावात् ॥ १८ ॥

#### त्रायमाणाद्यं घृतम्

जले दशगुणे साध्यं त्रायमाणाचतुःपलम्।
पश्चभागस्थितं पूतं करकः संयोज्य कापिकः॥
रोहिणीकहकीमुस्त-त्रायमाणादुरालभाः।
करकेस्त्वामलकीवीराजीवन्तीचन्दनोत्पलैः॥
रसस्यामलकीनाश्च ज्ञीरस्य च घृतस्य च।
पलानि पृथगप्राप्टौ दःवा सम्यग्विपाचयेत्॥
पित्तगुरुमं रक्षपित्तं विसर्पे पैत्तिकं ज्वरम्।
हद्रोगं कामलां कुष्ठं हन्यादेतद् घृतोत्तमम्॥
पलोक्षखागते माने न हैगुण्यमिहेण्यते।
चत्वारिंशत्पतं तेन तोयं दशगुणं भवेत्॥ ३६॥

जल इत्यादी—पज्जभागस्थितिमिति पञ्चभागाविशिष्ट, तेन काथस्याष्टी पलानीत्यर्थः । कल्कीरित्यत्र न्यवहितैरप्यामलन्यादिभिः मम्बध्यते; न केवलमेतैः कल्कै कहरोहिण्यादयध्य कल्का इति योजना । कल्का इति क्षेकपादपूरपार्थमिति हरिचन्द्रः। वीरा चीरकाकीली । पलेक्षिखागनमानत्त्रादिह न द्वैगुण्यमित्वाह पलानीत्यादि ॥ १६ ॥

#### द्राचाद्यं घृतम्

द्रात्तामधुकखर्जूरं विदारीं सशतावरीम् ।
परूपकाणि त्रिफलां साधयेत् पलसिमताम् ॥
जलाढके पादशेषे रसमामलकस्य च ।
घृतमिन्नुरसं चीरमभयाकरकपादिकम् ॥
साधयेत तद्घृतं सिद्धं शकरात्तौद्रपादिकम् ।
प्रयोगात् पित्तगुरममं सर्वपित्तविकारनुत् ।
साहचर्यादिह पृथग्घृतादेः काथतुर्यता ॥ ४० ॥

द्राचेत्यादौ--मधुक यष्टिमधु । शंकराचौद्रपादिकमिति मिलित्वा। अत्र काथशेषस्य प्रस्थमानस्य साहचार्याद् धतादीनामपि प्रस्थमानत्विमत्याह माह-चर्यादित्यादि॥ ४०॥

#### चीरपद्पलकं घृतम्

- पिष्पलीपिष्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः।
पिलकैः सयवन्तारैः सिपैःप्रस्थं विपाचयेत्॥
नीरप्रस्थेन तत् सिपैहिन्ति गुल्मं कफात्मकम्।
प्रह्मणीपागृहरोगम्नं सिहकासज्वरापहृम्॥ ४१॥

चोरपट्पलके घते चीरप्रस्थेनैव केवलेन धनममन पाक इति अवते, अन्ये तु त्रिगुण जल दहति, तन्न, मर्वधा द्रवानुकौ हि जल द्रव मवतीत्याह चक्र.॥ ४१॥

### घात्रीपद्पलकं घृतम्

धात्रीफलानां स्वरसैः पडहं विपचेद् घृतम् । शर्करासैन्धवापेतं तद्धितं सर्वगुलिमनाम् ॥ ४२ ॥ भाशीत्यादि— ग्रुगुतस्य । भाशीफलस्वरमश्चतुर्गुयः । पडहामिति यनचार

सहितपञ्चकोलकाल्कन प्रत्येक पतिकम् । उक्त हि—" पञ्चकोलप्टत चीरै प्रत्येक

पालिकै पचेत्। क्षीरे धात्रीरसे वापि मितासैन्धवयोजितम्।'' शर्करासैन्धवोपेन-मिति शर्करासैन्धवयोमिलित्वा पादिकयो प्रचेप । श्रत्रापि शर्करापादत्रय, सैन्धव-स्थेकपाद इति वदन्ति ॥ ४२ ॥

# भागींषद्पलकं घृतम्

पड्मिः पलैर्मगधजाफलमूलचव्य-विश्वीषधज्वलनयावककल्कपकम् । प्रस्थं घृतस्य दशमूल्युख्वूकभागीं-काथेऽप्यथो पयसि दिश्च च पट्पलाख्यम् ॥ गुल्मोदराक्विभगन्दरमग्निसाद-कासज्वरत्त्रयशिरोग्रह्णीविकारान् । सद्यः शमं नयति ये च कफानिलोत्था भाग्यांख्यषद्यलमिदं प्रवदन्ति वैद्याः ॥ ४३ ॥

षड्मि पलिरित्यादि—मगथजा पिप्पली, तस्या, फल मूलञ्च; ज्वलन-श्चित्रक, यावको यवचार । यावजेति पाठ स एवार्थ अत्र चीर लेहसम, " द्रवा-न्तरेण योगे हि चीर लेहसम मनेत् " हत्युके । दिधकाथी तु मिलित्वा लेहात् त्रिप्रणी । अत चतुर्गुण पाक, एकेनापि चातुर्गुण्य त्रिमिरिप चातुगुण्य चतुर्भि सममिति वचनात् । अन्ये तु काथो दिगुण, चीर दिष च प्रत्येक लेहसममित्याहु । निश्चलस्तु काथश्चतुर्गुण, दिप च चतुर्गुण, चीरन्तु लेह-सममिति नवगुण पाक हत्याह । अन्ये तु दिष्काथी मिलित्वा चतुर्गुणी चीरन्तु लेहसममिति पञ्चगुण पाक हत्याह ॥ ४३ ॥

## भन्नातकं घृतम्

भक्षातकानां द्विपतं पश्चमूलं पत्तोन्मितम् । साध्यं विदारीगन्धात्व्यमापोथ्य सत्तिताढके । पादावशेषे पूते च पिष्पत्तीं नागरं वचाम् । विडक्तं सैन्धवं हिंगु यावश्चकं विडं शटीम् ॥ चित्रकं मधुकं राद्धां पिष्द्वा कर्षसमान् भिषक् । प्रस्थव्च पयसो द्वा घृतप्रस्थं विपाचयेत्॥

#### एतद्भन्नातकं नाम कफगुल्महरं परम्। प्लीहृपाएड्वामयश्वासत्रहर्णीकासगुरमनुत् ॥ ४४ ॥

मल्लातकप्रत दिगुरादवेरीव पक्तन्य, निर्दिष्ट तद्देव हि वचनात् । पन्नमूल स्वल्प, तदेव विदारीगन्थाढ्य प्रत्येक पत्रोन्मितम् । मल्लातक नामित्यनन्तर मर्पि-रिति शेष , चरके तु एनद्रह्मातकप्रत कफगुल्महर परिमत्येव पाठ ॥ ४४॥

#### रसोनाद्यं घृतम्

रसोनस्वरसे सर्पिः पञ्चमूल्रसान्वितम्। सुरारनालदध्यम्लमूलकस्वरसैः सह ॥ ब्योपदाडिमबृत्ताम्लयमानीवव्यसैन्धवै । हिड्ग्वम्लवेतसाजाजीदिप्यकैश्च पलांशिकैः। सिद्धं गुल्मग्रहएयशैःश्वासोन्मादत्त्वयज्वरान्। कासापस्मारमन्दाग्निप्लीहशूलानिलान् जयेत्॥ ४४॥ रमोनेत्यादी-पञ्चमूल महत् पञ्चमूल वातकफहरत्वात् , तस्य रम काथ ।

रमोनस्वरसादीना पएणा स्नहसमत्वन् । दीप्यक चेत्रयमानी ॥ ४५॥

#### दन्तीहरीतकी

जलद्रोणे विपक्तव्या विंशतिः पञ्च चाभयाः। द्न्त्याः पलानि तावन्ति चित्रकस्य तथैव च। तेनाष्टभागशेषेण पचेद्दन्तीसमं गुडम्। ताश्चाभयास्त्रिवृच्चूर्णात् तैलाचापि चतु पलम् ॥ पलमेकं कणाग्रुएट्योः सिद्धे लेहे च शीतले। चौद्रं तैलसमं दत्वा चातुर्जातपत्तं तथा ॥ ततो लेहपलं लीद्वा जग्ध्वा चैकां हरीतकीम्। सुखं विरिच्यते स्निग्धो दोपप्रस्थमनामयः ॥ प्लीहश्वयशुगुलमाशौं-हत्पाग्ह्यहणीगदाः। शाम्यन्त्युत्क्षेशविषम-ज्वरकुष्टान्यरोचकाः॥ ४६ ॥ नलद्रोण इत्यादौ--विशतिः पञ्च चामया इत्याकृतिमानात् । हर्रातर्का- फलानि कंपटे पोट्टलीं बद्ध्वा श्रगस्त्यहरीतकीवत् कथनीयानि।। तैलाईकुडविमिति पाठे च पलचतुष्ट्यमित्यर्थः। तंलमुत्त्वित्रहरीतकीभर्जनार्थं, न तु त्रिवृच्चूर्यपरि-भर्जनार्थं, भर्जनेन विरेचनशक्त्यपक्षप्रसङ्गात् । पलमक कखाशुर्य्ध्योमिलित्वा, एव चातुर्जातपलमि । प्रस्थमत्र दोपस्य साईत्रयोदशपलमानम् । उक हि मोजे—" वमने च विरेके च तथा शोखितमोक्त्ये । साईत्रयोदशपल प्रस्थमाहु र्मनीषिण " इति ॥ ४६ ॥

#### **बृश्चीराद्यरिष्टः**

वृश्चीरमुरुवृकञ्च वर्षाहं वृहतीद्वयम् । वित्रकञ्च जलद्रोणे पचेत् पादावशेषितम् ॥
मागधीचित्रकचौद्र-लिसकुम्मे निधापयेत् ।
मधुनः प्रस्थमावाण्य पथ्याचूर्णाईसंयुतम् ।
व्युषोषितं दशाहञ्च जीर्णभक्तः पिवेन्नरः ।
श्रिरिष्टोऽयं जयेद् गुल्ममविपाकं सुदुस्तरम् ॥ ४७ ॥

मृश्चीरमित्यादि—वृश्चीर सेतपुनर्नवा । वृश्चीरादीना मिलित्वा पलरातम् । 'द्रोणे द्रव्यतुला मता '' इति वचनाद्, अन्ये त्वाढकमाहु । मागधां पिप्पली । मधुन प्रस्थमिति रारावचतुष्टयम् । पथ्याचूर्णाईमयुतमिति हरीतकीचूर्णप्रस्थाईमष्टी पलानि, तेन मयुतन् । व्युपोपित तुषधान्यराशिमध्ये स्थितम् । जीर्णभक्त परिणता- हार लघुकोष्ठ इत्यर्थ । अस्य पलमईपल वा प्रातह्ययोज्यम् ॥ ४७ ॥

रौधिरस्य च गुल्मस्य गर्भकाले व्यतिक्रमे । स्निग्धस्वित्नशरीरायै दद्यात् स्निग्धं विरेचनम् ॥ ४८ ॥ 🛶

रौधिरस्येत्यादौ—गर्भकालव्यतिक्रम इति 'उचितगर्भकालस्य दशमासरूप-कालस्य व्यतिक्रमे । 'त्रयञ्च सम्यनियमा रक्तगुल्मस्यौषधाईसमयप्रदर्शनार्थमेवोक्त. ज्वरे सप्तिविक्षांत् परतः पाचनवत् । न तु गर्भकालराङ्गानिरासार्थम् , दशमासाति-क्रमेणापि गर्भावस्थादर्शनात् । जक्त हि—' त स्त्री प्रस्ते सुचिरेण गर्भ पुष्टे। यदा वर्षगणैरिप स्यात् '' इति । तथा पिण्डितस्पन्दनमस्य गर्भलच्चणात् विरुद्धलचण्यस्क 'य स्पन्दते पिण्डित एव नाङ्गे ' इति एतेन दशमामादर्वागिप शोणितगुल्माव-धारण भवत्येव । तसाद् व्याधिमहिम्ना श्रस्य दशमासातिक्रमे सत्येव सुखचिकि-त्स्यत्वप्रदर्शनार्थमिदसुक्तम् । श्रवाक् चिकित्सायान्तु शोणितातिस्रुतौ गर्भाशयोप- वातादिक स्यादिति ॥ ४८ ॥

शताह्याचिरिविल्वत्वग्दारुभार्गीकणोद्भवः। कल्कः पीतो हरेद् गुल्मं तिलकाथेन रक्षजम्॥ ४६॥

शताहित्यादि—शताहादिकणान्ताना प्रचेष । चिरिनित्वत्वक् लाटाकरञ्ज-त्वक् । तिलकाथेनेति तिलफलकाथेनेत्यर्थे , ण्वमुत्तरयोगेऽपि तिलफलस्येव काथ । केचित्तु तिलनालककाथकृतचारोदकेनापि व्यवहरन्ति । रक्षजिमत्यार्तव-रक्षजम् ॥ ४६ ॥

्रितलकाथो गुडव्योपिहंगुमार्गीयुतो भवेत् ।
पानं रक्तमवे गुल्मे नष्टे पुष्पे च योपिताम् ॥ ४० ॥
तिलकाथ स्त्यादौ—गुडादय प्रदेप्या । नष्टे पुष्पे स्त्यदृष्टात्तेवे ॥ ४० ॥
स्त्तारं त्र्यूपणं मद्यं प्रपिवेदस्रगुलिमनी ।
पलाशक्तारतोथेन सिद्धं सिर्पेः पिवेच सा ॥ ४१ ॥

सक्षारेत्यादी—कारो वयटापारुल्यादिकृत , अन्ये तु यवदार इत्याहु । पलाशाचारतिथिनेत्यादि—अकल्किमद धतम् । पलाशमस्माडकमुदकाडकं मयोज्यामी माधनीयम् । तत्राच्छपै।च्छल्यादिलक्षणोदये तृतीयमागेऽविशिष्टे त्रि सप्तवारान् परिस्नाव्य चारोदक धताचतुर्गुख माह्मम् , तेन धतस्य पाक इति चक्रः । अन्ये तु पाचीयचारिविधेना स्नावितचाराम्बुना धतपाकमुपदिशन्ति कार्तिक पुन पलाश चारतिथेनेत्यनेन स्नेहपाकोकाविधेना पलाशाचारतिथेनत्याह ॥ ४१॥

उष्णैर्वा भेद्येद्भिन्ने विधिरास्ग्दरो हितः।
न प्राभद्येत यद्येवं द्याद् योनिविशोधनम्॥
चारेण युक्तं पत्तलं सुधाचीरेण वा पुनः।
रुधिरेऽतिप्रवृत्ते तु रक्तपित्तहरी किया॥ ४२॥

वष्णैर्वेति—वष्णैरित्युष्णवीर्ये सुरासीवीरादिभि । भिन्न इति भृश स्रविति रक्षे । योनिविशोधनमिति विस्पतया योनिविशेचनमित्यर्थ । चारेणित्यादि—पलाशचारेण सद पलल तिलचूर्णं किञ्चिज्जल दत्त्वा विचि विभाय योन्यस्यन्तरे दचात् । अथवा पलाशादिचारतिलचूर्णं सिञ्जचीरेण मिश्रणीयम्, तेन स्दमवस्र अच्चित्वा वित्तं कार्यां, सा च योन्यस्यन्तरे देया । रुधिर इत्यादि स्पष्टम् ॥५२॥

भन्नातकात् कल्ककषायपकं सर्पिः पिबेच्छकरिया विमिश्रम्। तद्रक्षगुल्मं विनिहन्ति पीतं बलासगुल्मं मधुना समेतम्॥ ४३॥

महातकादित्यादि—अत्र पादिकरार्कराप्रचेपः, एव पध्वपि, 'कल्कवन्म-धुरांकरे ' हत्युक्ते । बलास कफ । कफगुल्मे रार्करास्थाने मधु देयमिलर्थ ॥५३॥ वल्लूरं मूलकं मत्स्यान् शुष्कशाकानि वैदलम्। न खादेचालुकं गुल्मी मधुराणि फलानि च ॥ ४४॥ " इति गुल्मिचिकित्सा।

वल्ल्र्सित्यादि—सुश्रुतस्य । वल्ल्र् शुष्कमासम्, शुष्कभूलकस्य वातहरत्वेन
एध्यत्वान्न तिषिद्धम् । एतच इरितवर्णोपलच्चण ग्रुत्म इरितवर्णेस्याप्यहितन्वातः ।
वैदल सुद्रादि, श्रालुक पियडालुकम् । मधुराणि फलानि चीरिवृचफलानि,
चारपाणां न्यत्रोधादिफलवर्जनस्योक्तत्वात् । चकारात् हरीतकीवर्गोपलच्चणम्, गुल्मे
हरीनकीवर्गस्याप्यहितत्वात् ॥ ५४ ॥

इति गुल्म-चिकित्सा-विवृति ।

# अथ हृद्रोग-चिकित्सा

-----

वातोपसृष्टे हृद्ये वामयेत् स्निग्धमातुरम्। द्विपञ्चमूलीकाथेन सस्नेहलवर्णेन च ॥ १ ॥ पिष्पल्येलावचाहिंगुयवत्तारोऽथ सैन्धवम्। सौवर्ञ्चलमथो ग्रुएठी श्रजमोदा च चूर्णितम्॥ फलधान्याम्ल-कौलत्थ-द्धिमद्यासवादिभिः। पाययेच्बुद्धदेहञ्च स्नेहेनान्यतमेन वा॥ २॥

गुल्मस्य हृदय स्थानमुक्तम्, अत स्थानसाम्यात् तदनन्तर हृद्रोग उच्यते ।

वातोपसृष्ट इत्यादि — सुश्रुतस्य । श्रश्नानुक्तमिष मदनफलाि चृर्णं वे।ध्यम् , वमन-योग्यत्वात् । वातजेऽपि वमनविधान दृत्रयस्य कफस्यानत्वात् , उक्त हि 'म्यानिम्या-नगत नेष म्यानिवत् समुपाचरेत् ' इति । एव पिचने वमन वोध्यम् । चर्के दृद्देशिगणी यद्यप्यवम्या उक्तान्तथापि कफोत्क्रेणे वलीयिम मर्वेश्ववमन द्ययम् । पिप्पलीत्याद्यन्यन्मेन वेत्यन्त सुश्रुतस्य । फलाम्ल मातुलुङ्ग हाटिमफलादि दृद्यत्वात् तम्य गमो य ए पानोपयागित्वात् । वाते धान्याम्ल काक्षिकम् । कालत्थ कुलत्थयूप । कोहनान्यतमेन वेति धनादीनामन्यतमेन, फलधान्याम्लादिवहुद्रवोपदर्शन मात्म्यापेनम् ॥ १ ॥ २॥ २॥

> नागरं वा पिवेदुप्ण कपायञ्चाग्निवर्द्धनम् । कासभ्वासानिलहर ग्र्लहद्रोगनाशनम् ॥ ३॥

नागरमित्यादि---नागर नागरकृतकपाय पिवेत् । वाशब्द पूर्वयोगा-पेचया ॥ ३ ॥

> श्रीपर्णीमधुकज्ञौद्र-सितागुइज्जैविमेत् । पित्तोपसृष्टे हृद्ये सेवत मधुरै श्रतम् ॥ , घृत कपायांश्चोहिष्टान् पित्तज्वरविनाशनान् ॥ ४ ॥

पैत्तिकचिकित्सामाह श्रीपणीत्यादि—सुश्रुतस्य । श्रीपणी गाम्मारी तस्या फलमत्र देयम् । जल श्रीपणामधुकयोरेव तयोरेव योग्यत्वात्, जलमत्रार्द्ध-गृत्काथ । अत्र चौद्रसितागुडान् प्रचिष्य पित्तजे वमेत् । किंना जलस्य श्रीपण्यांशिभे पञ्चिमे मम्त्रन्थात् पन्न योगा अमी । अत्राप्यनुक्तमि मद्रनफलादि पूर्ववद् वोध्यम् । डल्वणस्तु मितागुडजंलरित्यत्र मितोत्पलजंलरिति पठित्वा उत्पल कुष्ठ-मिति व्याचष्टे । मधुरै श्रुत ध्रतमिति काकोल्याद्रिगणकाथकल्कमाथित ध्रुतम् ॥४॥

शीताः प्रदेहाः परिपेचनानि
तथा विरेको हृदि पित्तदुष्टे।
हान्नासितान्नोडपरूपकै स्यात्
शुदे च पित्तापहमन्नपानम्॥
पिप्द्वा पिवेडापि सिताजलेन
यण्ट्याह्रयं तिक्षकरोहिर्फीञ्च॥४॥ '

शीना इत्यार्ट(--द्राजादिभिर्श्वेसमत्रपात्तं मग्रडवृषाटियानवमसवीरेचनशुदे

कार्य्यमित्यर्थ इति केचित् । अन्ये तु—" पित्ते द्राक्षेत्तुनिर्यामसिताचौद्रपरूषैक । युको विरेको ह्रघ स्यात् " इति तन्त्रान्तरदर्शनात् द्राद्धादिभिर्युको विरेक इत्याहु । सिता वर्लेनेति शर्करामिश्रितजलेनेत्यर्थ । मिता वर्लेनेति पाठोऽपि श्रेय । उक्त हि वाग्मेट " यष्टीमधुककल्कच्च पिनेत् ससितमम्मसा इति ॥ ५॥

श्रर्जुनस्य त्वचा सिद्धं चीरं योज्यं हृदामये । सितया पञ्चमूल्या वा वलया मधुकेन वा ॥ ६ ॥ घृतेन दुग्धेन गुडाम्भसा वा पिवन्ति चूर्णं ककुभत्वचो ये । हृद्देशिजिण्डिवररक्षपित्तं

हत्वा भवेयुश्चिरजीविनस्ते ॥ ७ ॥ ८

श्रर्जुनस्थत्यादि—चीरपरिमाषया श्रर्जुनत्वगादिभि प्रत्येक साधित सितया मह पेयमिति चत्वारो योगा । केचित्तु केवलवारिसाधितचीरे सिताप्रचेपादिति पञ्च योगानाहु । पञ्चमूली चात्र स्वल्पा । एते च योगा वातिषत्ते क्षेया ॥ ६—७ ॥

> वचानिम्वकषायाभ्यां वान्तं हृदि कफोत्थिते । वातहृद्रोगहृच्चूर्णं पिष्पल्यादि च योजयेत्॥ प्र॥

वचत्यादि—सुश्रुतस्य । वचाकषायेण निम्वकषायेण वा वमनम् , किंवी वचाकरको निम्वस्य कषाय ताम्या मिलित्वा वमनम् । हृदीति हृद्रोगे । तात्स्थ्यात् मञ्जा क्रोशन्तीतिवत् । वातह्द्रोगहुच्चूर्णं पिप्पल्यादि चेति । अत्रैव वातह्द्रोगे विप्पल्यादिना यच्चूर्णमुक्त तत् पाययेदित्यर्थः । वाग्मटेऽप्युक्तम्—कफोद्भवे वमेत् स्वित्र पिचुमर्दवचाम्मसा । कुलत्थथन्वोत्यरसर्ताच्यमथयवाशानः । पिवेच्चूर्णं वचाहिंगुलव्यहयनागरान्। सेलायमानीकक्या यवचारान् मुखाम्बुना। फलधान्याम्लक्षीलत्थयूषामृत्रासवस्तथा।" इति वातह्च्चूर्णं पिप्पल्यादिक तथा पिप्पल्यादिगया पाययेदित्याहरन्ये ॥ ८ ॥

त्रिदोषजे लङ्घनमादितः स्या-दन्नञ्च सर्वेषु हितं विधेयम् । हीनाधिमध्यत्वमवेद्य चैव कार्य्यं त्रयाणामिष कर्म शस्तम् ॥ ६॥ त्रिदोपन इत्यादि—लद्दनिवधान एदयस्य कफस्थानतया । त्रिदोपने अपि कफ प्वादी लङ्क्ष्मेन जेय इति मत्वा कृतम्। त्रिदोपने डल्वया दोषतया चिकित्मा-स्त्रमाह दीनाधात्यादि—अधिशब्दोऽधिकदोपद्दन्तृतया तत् कार्य्यमिति वाक्याथ ॥ १०॥

चूर्णं पुष्करजं लिह्यान्माचिकेण समायुतम् । दृज्ञ्चूलश्वासकासझं त्तयद्विक्कानिवारणम् ॥ १०॥ चूर्णमिलादि सप्टम् ॥ १०॥

तैलाज्यगुडविपकं चूर्णं गोधूमपार्थजं वापि।

पिवति पर्योऽनु च से भवेजितसकलहृदामयः पुरुषः ॥ ११ ॥

तैलाज्येत्यादि—तैलाज्यगुडान् मिलित्वा पादिकान् दत्त्वा गीधूमपार्थचूर्ण-स्तोकमान्नेण तोयेनोत्कारिकावद्विपाच्य भद्मम् । किंवा गीधूमपार्थचूर्णसमे गुउ , तैलाज्ये तु सस्कारार्थं स्तोकमान्नेण देये । पाथोऽर्जुनषृद्ध । वाशब्द पूर्वयोगा-पेद्यया ॥ ११॥

गोधूमककुभचूर्णं छागपयो गव्यसार्पेपा पकम् । मधुर्यकेरासमेतं रामयति हृद्रोगमुद्धतं पुंसाम् ॥१२॥ गोध्मेलादि—ककुमोऽकुंन. । अत्रापि योगे सार्पमधुरार्कराणा पूर्ववन्मान हिला झागदीरेणोलारिकावत् पाक । मधु पर सिद्धरीति देवम् ॥ १२ ॥

> मूलं नागवलायास्तु चूर्णं दुग्धेन पाययेत्। हृद्रोगश्वासकासम्नं ककुमस्य च वरकलम्॥ रसायनं परं वर्ल्यं वातजिन्मासयोजितम्। संवत्सरप्रयोगेण जीवेद्वर्पशतं भ्रवम्॥ १३॥

मूल नागवलाया इति, मूल चूर्णमिति चूर्णरूप मूलमिलर्थ । ककुमस्य बल्कलमिति ककुमस्य त्वक्चूर्णमिप दुग्धेन पेयम् । योगद्वयमेततः ॥ १३ ॥

> हिर्ग्यगन्धाविडविश्वकृष्णा कुष्टाभयाचित्रकयावश्कम् । पिवेश्व सौवर्श्वलपुष्कराद्ध्यं वचाम्भसा श्रुलहदामयप्तम् ॥ १४ ॥

दशमूलीकषायन्तु लवणक्षारसंयुतम्।
श्वासं कासश्च हृद्रोगं गुल्मं शूलश्च नाशयेत् ॥ १४ ॥
पाठां वचां यवक्षारमभयां साम्लवेतसाम्।
दुरालमां चित्रकश्च ज्यूषणश्च फलत्रयम् ॥
श्र्टीं पुष्करमूलश्च तिन्तिडीकं सदाहिमम्।
मातुलुङ्गस्य मूलानि ऋत्णृचूर्णानि कारयेत् ॥
सुखोदकेन मद्यैवां प्लुतान्येतानि पाययेत्।
श्रशीः शूलश्च हृद्रोगं गुल्मश्चाग्च व्यपोहृति ॥ १६ ॥

हिन्वित्यादि — पुष्करस्यामावात् कुष्ठस्यैव मागद्वयम् । हिन्वादिपुष्करान्तानां चूर्णं यवकाथे प्रक्तिप्य पिवेत् ॥ १४ — १६ ॥

पुटद्ग्धमश्मिष्टं हरिण्विषाण्न्तु सर्पिषा पिबतः।
हत्पृष्ठश्रलमुपशममुपयात्यचिरेण् कष्टमिप ॥ १७॥

पुटेलादि-हरिराण्डह कुरान स्वेष्ट्य मृदा प्रलिप्य च गोमयाग्नी निर्धूमाङ्गारे वा दग्ध्वा शिलापिष्ट छतेन पेयमित्यर्थ. ॥ १७ ॥

किमिहदोगिणं स्निग्धं मोजयेत् पिशितौदनम् । द्रष्टा च पललोपेतं ज्यहं पश्चाद्विरेचयेत् ॥ सुगन्धिमः सलवणैयोगे साजाजिशकीरः । विडङ्गगाढं घान्याम्लं पाययेदितमुत्तमम् ॥ १८॥

किमीलादि—अत. परमिलन्त ग्रुश्नन्त । पिशितप्रधानमोदन पिशितौदनम्, तच्च दथ्वा पललेन च सयुक्त च ज्यह मोजयेत्। पलल तिलचूर्णम्।
एतच्च पिशितौदनभो नन किमीयामुद्केशार्थम् । पश्चादिति किम्युत्केशानन्तर
विरेचयेत् । कैविरेचयेदित्याह सुगन्धिमिरित्यादि—योगैरिति विरेचनयोगै ।
कीह्रौ: सुगन्धिमि. !—चातुर्जातकयोगैरिति रोषः। सौगन्ध्यकरत्यञ्च वान्तिशङ्काभिरासार्थम् । वमनञ्च किमिह्दोगे निषद्धम्, किमिजर्जरितहृदयत्वात् । तथा
वमनेन किमिमि शिरोगतैरिन्द्रयोपघातमयाचेति । सलवयौरित्यत्र सपललेरिति
पठित्वा समृष्टतिलचूर्यौरिति व्याख्यानयन्ति केचित्। पीतविरेकस्यानुपानमाह विडङ्गगाढमिलादि—विडङ्गगाढ विडङ्गचूर्योत्कटम्; धान्याम्लमिति काजिकम् । विडङ्गगाढिरिति पाठे योगैरित्यस्य विशेषस्यम् ॥ १०॥

क्रिमिजे च पिवेन्सूजं विडहाम्यसंयुतम् । हृदि स्थिताः पतन्त्यवमधस्तात् क्रिमग्रो चुणाम् । यवान्नं वितरेचासं संविडहमतः परम्॥ १६॥

विरेचनयोगान्तरमाह किमिजे चेलाढि—विडक्षक्कष्ठचुर्णं प्रिचिष्य गेम्यूय वा विरेकार्थं पिवेत् । यद्यप्यय योगं सुश्रुते नास्ति तथापि तन्त्रान्तरीय एवाय विरेचन-प्रस्तावे सम्रहकारेण लिखित । विरेचनानन्तरमिक्षसन्धुळणार्थं परिणिष्टिकिमि-विनाशार्थश्चान्नसम्माह यवान्नमिलाढि—यवान्नमिति ययेपयाडिकम् । मिव- डक्षमिति यडक्षविथना विडक्षकपायमाधितम् । अत परिमिति विरेकानन्तरिमयथ ॥ १६॥

वल्लभघृतम्

मुख्यं शतार्द्धञ्च हरीतकानां सौवर्चलस्थापि पलइयञ्च। पक्क घृतं वक्तमकेति नाम्ना हच्छ्वासश्चलोदरमास्त्रमम्॥ २०॥

वक्षभष्टने --- मुख्यमिति श्रेष्ठम् । हरीतकी मीर्विचलन्न कन्क , धूनस्य प्रस्य , जलन च पाक ॥ २०॥

#### श्वदंष्ट्राद्यं घृतम्

श्वदंष्ट्रोशीरमिञ्जष्ठावलाकाश्मर्थ्यकनृण्म् । दर्भमूलं पृथक्पणीं पलाशपंभको स्थिरा ॥ पलिकानं साधयेत्तेषां रसे चीरे चतुर्गुणे । कल्कै स्त्रुप्तपंभक्षेत्रदाजीवन्तिजीवकैः ॥ शतावर्य्यृद्धिमृड्डीकाशर्कराश्रावणीविसैः । प्रस्थः सिद्धो घृताडातिषत्तिहृद्दोगशलनुत् ॥ मूत्रकृच्छ्रप्रमहार्शः श्वासकासत्त्वयापहः ।

ः घतुःस्त्रीमद्यभाराध्वित्वन्नानां वलमांसदः॥ २१॥

। श्रदच्यूचे-पलाश किंशुक , तस्य मूलन् । अन्ये तु पलाश शटीमाहु । एतः - स्मिन्नेकादशपले काथ्येऽष्टगुण जलमेकादशणगव दत्त्वा काथ कार्थ्य । पादशेपश्च पाडे। नशरावत्रयम्, ततश्चतुर्गुण चीरमेकादशशरावरूपिति किञ्चिद्नचतुर्गुण पाक । अन्ये तु एकादशपले काध्य एवाढकजल दत्त्वा पादशेषश्च प्रस्य इत्याहु । अतश्चतु-गुण चीरमाढक एव पञ्चगुण पाक इति । व्यवहारोऽपात्थमेव । आवणी मुण्डि-तिका । विस मृणालम् ॥ २१ ॥

बलाद्यं घृतम्

घृतं वलानागवलार्जुनाम्बु-सिद्धं सयष्टीमधु पादकल्कम् ।

**हद्रोगश्र्ल**चतरक्रपित्तं

कासानिलासक् शमयत्युदीर्शम् ॥ २२ ॥ धतमित्याद्रौ —वलाधते—नागवला गोरचतयडुला, श्रम्बु क्वाथ ॥ २२ ॥

त्रर्जुनघृतम्

पार्थस्य करुकस्वरसेन पकं शस्तं घृतं सर्वहृदामयेषु ॥ २३॥ इति हृद्रोगचिकित्सा।

श्रर्जुनप्टत स्पष्टम् ॥ २३ ॥ इति दृद्रोगचिकित्साविष्टृति ।

# अथ मूत्रकुच्छ्चिकित्सा।

वातम्त्रकुच्छ्रे-

٣

4

श्रभ्यञ्जनस्नेहिनस्स्हिवस्ति-स्वेदोपनाहोत्तरवस्तिसेकान्। स्थिरादिभिन्नातहरैश्च सिद्धान् दद्याद्रसांश्चानिलमूत्रकुच्छ्ने॥१॥

, सप्तोत्तरे मर्मशते त्रीणि मर्माणि शिरोहृदयवस्तय प्रधानानि। ततो हृद्रोगिच-कित्सामाभिधाय वस्तिरागिचिकित्सामाह अभ्यक्षनेत्यादि——स्थिरादिभिरिति शालप-एयोदिभि पञ्चमूले । वातहरैरिति वातहरत्वेनोक्तै ॥ १॥ श्रमृता नागरं धात्रीवाजिगन्धात्रिकग्टकान्। प्रिपवेद्वातरोगार्तः सग्रली मूत्रक्रच्छ्रवान्॥२॥ प्रमृतेसादि—योगोऽय कांधेन॥२॥

### पित्तमूत्रकुच्छ्रे-

सेकावगाद्याः शिशिराः प्रदेहा ग्रैष्मा विधिर्वस्तिपयोविकाराः । द्राज्ञाविदारीज्जुरसैर्घृतैश्च कृच्छ्रेषु पित्तप्रभवेषु कार्च्याः ॥ ३॥

र्यभो विधिरिति नशर्कर मन्धीमत्यादि वाग्मटस्य अशीतीयोकः । हाज्ञाविदारी-जुरमेर्धनेश्चेति महार्थे तृतीया ॥ ३ ॥

> कुशः काशः शरो दर्भ इजुश्चेति तृष्णोद्भवम् । पित्तकृष्ट्वहरं पञ्चमूलं वस्तिविशोधनम् । एतित्सदं पयः पीतं मेदृगं हन्ति शोणितम् ॥ ४॥

कुश इत्यादी -- तृयोद्भव पश्चमूलिमिति योज्यम् । दर्भ उत्तुयामूलम् ॥ ४ ॥

शतावरीकाश-कुशभ्वदंष्ट्रा विदारिशाली जुकशेरुकाणाम् । काथं सुसिद्धं मधुशकैराक्षं

पिवन् जयेत् पैत्तिकमूत्रकृच्छुम् ॥ ४ ॥

शतावरीत्यादी--शालीति शालिधान्यमूलम् ॥ ५ ॥

∕ हरीतकीगोचुरराजवृत्त-

पाषाणीभद्धन्वयवासकानाम् । काथं पिवेन्माचिकसम्प्रयुक्तं

कुञ्छे सदाहे सहजे विवन्धे ॥ ६॥

इरातकीत्यादा-राजवृत्तः शोणालुफलम्, धन्वयवासकी दुरालमा ॥ ६ ॥

गुडेनामलकं चृष्यं श्रमझं तर्पणं परम् । प्रिजासम्बाहग्रलझं मूतसम्बद्धविनाशनम् ॥ ७॥ गुडेनेति गुडामलकफले तुल्यमाने ॥ ७ ॥

एवरिवीजं मधुकञ्च दावीं
पैत्ते पिवेत् तएडुलधावनेन ।
दावीं तथैवामलकीरसेन

समाचिकां पैत्तिकमूत्रकुठ्छे ॥ ८ ॥ प्रवार कर्कटी । ममाचिकामित्यस्य दावींमित्यनेनैव सम्बन्ध , न तु पूर्वेण ॥ ८ ॥

कफमूत्रकुच्छ्रे—

स्तरोष्णतिस्णोषणमञ्जपानं
स्वदा यवान्नं वमनं निरूहा ।
तक्नं सतिक्रोषधसिद्धतैलाः

द्यभ्यद्गपानं कफमूत्रकुच्छ्रे॥ ६॥

स्रोरत्यादि—कफकुच्छुभेषज स्रारदिभिर्युक्तमत्रपानम्। जवण त्रिकटुकामिति चक्क , अतप्य श्रीवधमिति पाठोऽशुद्ध एव, वाग्मटेऽपि ''कफजे वमनस्वेदौ तीस्णो-ष्णकटुभाजनम्'' इत्युक्तत्वाद् ॥ ६ ॥

मूत्रेण सुरया वापि कदलीस्वरसेन वा । कफक्रच्छुविनाशाय स्प्रदर्ण पिष्द्वा त्रुटिं पिवेत् ॥ १० ॥

मूत्रेणित्यादौ — बुटि स्त्मेला वाग्मटसवादात् । 'पिवेन्मूत्रेण स्त्मेला धात्रीफलरसेन वा। इति ।'' श्रन्ये तु एलामात्रमाहुः । कदलीस्वरसेनेति कदलीमू- लस्वरसेन व ॥ १०॥

तक्रेण युक्तं शितिमारकस्य वीजं पिवेत् क्रच्छ्रविनाशहेतोः। पिवेत् तथा तगडुलघावनेन प्रवालचूर्णं कफमूत्रक्रच्छ्रे ॥ ११ ॥ श्वदंष्ट्रा विश्वतोयं वा कफक्रच्छ्रविनाशनम् ॥ १२ ॥ तक्रेणेत्यादौ—शितिमारं शालिश्च , प्रवालो विद्रम ॥ ११ ॥ १२ ॥

# सर्व त्रिदोपप्रभवे तु वायोः स्थानानुपूर्व्या प्रसमीदय कार्य्यम् । त्रिभ्योऽधिके प्राग्वमनं कफे स्यात् पित्ते विरेक पवने तु वस्तिः ॥ १३॥

ममकुपितदोपत्रयारक्षमूत्रकृच्छूचिकित्सामाह मर्वमित्यादि—वातजादिमूत्र- कृच्छूनिर्दिष्ट भेषज सर्व समात्रदोपजे मूत्रकृच्छू मिलित कार्थ्यम् । तच वायो स्थानानुपूर्व्यां कर्त्तच्यः, न तु त्रिदोषज्ञच्यर इव कफस्थानानुपूर्व्याः । ममित्रदोपजा- द्व्यमूत्रकृच्छूस्य वातस्थानमवत्वेन वायोरेव प्रथम चिकित्सा कार्थ्याः, चिकित्स्यत्वा- दिति माव । विषममित्रपातकृच्छूचिकित्सामाह त्रिभ्य इत्यादि—विभ्योऽधिक इति वाक्य कर्फ पित्ते वाते इत्येते क्रमेण सम्बध्यतः । प्रत्र मृत्रकृच्छू।नारम्भवमाशयान्त- रस्थ कफमप्यपेच्य मृत्रकृच्छ्यारम्भककफमागस्याधिवयमस्तीति कृत्वा त्रिभ्योऽधिक इत्यु- कम् । एव पित्तपवनयोरपि । पित्तपवनान्तरापेच्या आधिवय व्याख्येयम् । अन्ये त्रिभ्य इति छान्दसत्वात् पष्टयर्थे पण्डवमीत्याहु । तेन त्रयाणा मध्य इत्यर्थ ॥ १३॥

वृह्तीघावनीपाठायप्टीमधुकलिङ्गकाः । पाचानीयो बृहत्यादिः कृच्छुदोपत्रयापहः ॥ १४॥ बृह्तीत्यादा—धावनी कण्टकारी । कृच्छुदोपत्रयापह इति कृच्छुजनक-दोपत्रयापह इत्यर्थ ॥ १४॥

, तथाभिघातजे कुर्यात् सद्योव्रणिचिकित्सितम् ।
मूत्रकुच्छे सदा चास्य कार्या वातहरी किया ॥ १४ ॥
स्वेदचूर्णिकियाभ्यक्तवस्तयः स्युः पुरीपजे ।
काथ गोचुरवीजस्य यवज्ञारयुतं पिचेत् ।
मूत्रकुच्छ शरुज्जञ्च पीतः शीघ्रं विनाशयत् ॥ १६ ॥
वातहरी कियेति भानाहोका किया । स्वेदेत्यादा—चूर्णकियेति कुलवित् , किंवा विरेचनद्रव्यचूर्ण दस्ता गुदे निक्वा फूक्तरणम् ॥ १४ । १६ ॥

क्रिया हिता त्वश्मिरिशकेरायां
 या मूत्रकुच्छ्रे कफमारुतोत्थे ॥ १७ ॥
 लेख शुक्रविवन्धोत्थे शिलाजतु समान्तिकम् ।
 यृष्यैर्वृहितधातोश्च विधेयाः प्रमदोत्तमाः ॥ १८ ॥

श्रश्मरीशर्कराजमूत्रकृच्छ्रचिकित्सामाद क्रिया हितेत्यादि — श्रश्मरीशर्करा-भ्यामिति चरके पाठ ॥ १७ । १८ ॥

> पलाहिङ्गुयुतं चीरं सर्पिर्मिश्रं पिबेन्नरः। मूत्रदोषविश्रद्धयर्थं श्रुक्षदोषहरञ्च तत्॥ १६॥ यन्मूत्रकुच्छ्रे विहितन्तु पैते

तत्कारयेच्छोशितमूत्रक्रच्छ्रे ॥ २० ॥

ण्लेखादौ-एलाधिंगुनी प्रक्षिप्य ससर्पि चीर पिवेदिखर्थ ॥१६॥२०॥

्त्रिक**एटकारग्वधदर्भकाश**-

दुरालमापर्वतभेदपथ्याः ।

निझन्ति पीता मधुनाश्मरीश्च

सम्प्राप्तमृत्योरिप मूत्रकुच्छुम् ॥२१॥ 🗥

त्रिकरटकेत्यादौ---पर्वतमेद पाषाण्यभेद । एषा कषाये मधु प्रक्षेप्यम् ॥ २१ ॥

कषायोऽतिवलामूल-साधितोऽशेषक्रच्छ्रजित् ॥२२॥

कषाय इत्यादी-प्रातिवला श्वेतवला ॥ २२ ॥

**एलाश्मभेदकशिलाजतुपिप्पलीनां** 

चूर्णीन तग्डलजलैर्लुलितानि पीत्वा।

यद्वा गुडेन सहितान्यवलिह्य सम्यक्

श्रासन्नमृत्युरिप जीवति मूत्रकुच्छी ॥२३॥ र् एलादिचूर्णानि तर्दुलजलेन पातन्यानि, किंवा गुहेन लेह्यानीति ॥२३॥

श्रयोरजः श्रद्णिपं मधुना सह योजितम्।

मूत्रकृष्ट्रं निहन्ताशु त्रिभिलेंहैर्न संशयः ॥

सितातुल्यो यवचारः सर्वरुच्छ्रविनाशनः।

निदिग्धिकारसो वापि सत्तौद्रः कुच्छुनाशनः ॥२४॥

श्रय इत्यादि—मारितपुटितनज्ञादिलौहचूर्णं रित ४, मधुमाषेण लौहपात्रे मर्द्रियत्वा लेहा रिक्तकादिक्रमेण मापकद्वयपर्यंन्तम् । त्रिभिर्तिहेरिति दिनत्रयेखे-त्यर्थ । निदिग्धिकारस इति कण्टकारीस्वरसः । उक्त हि वाग्मटे—''स्वरस कण्टकार्थ्या वा पाययेन्माचिकान्वितम् " इति ॥ २४ ॥

शतावरीष्टृतचीरे

शतावरीकाशकुशश्वदंष्ट्रा- विदारिकेद्वामलकेषु सिद्धम् । विदारिकेद्वामलकेषु सिद्धम् । सिर्पः पयो वा सित्या विमिश्रं किन्द्रम् ॥ २४॥

शतावरीत्यादी- शतसाधनपचे शतावर्यादीना कलक जलब्र चतुर्गुणम्, शर्करा तु प्रचेप्या ॥ २५ ॥

#### त्रिकएटकाद्यं घृतम्

त्रिक्एटकैरएडक्कशाद्यमीरु-कर्कारुकेज्जस्वरसेन सिद्धम् । सर्पिग्रेडार्द्धाशयुतं प्रपेयं

कुच्छारमरीमूत्रविघातहेतोः ॥ २६॥

त्रिकपटकेत्यादौ — कुशादि तृयपञ्चमूलम् अमीरु शतावरी, कर्काकक कृष्मायटभेद कृष्मायटाकृति चत्कलदेशे प्रसिद्ध । त्रिकपटकादीना सर्वेपा स्वरम तदमावे कपाय । गुडार्द्धाशयुतमिति धृतापच्चया अर्द्धाशो सुट इति योष्टशपल इत्यर्थ । गुडश्च प्रचेप्य अन्ये तु गुड दत्त्वैव पाक इत्याहु ॥ २६ ॥

#### सुकमारकुमारकघृतम्

पुननेवासूलतुला दशसूलं शतावरी।
वला तुरगगन्धा च तृणसूलं चिकण्टकम् ॥
विदारिगन्धा नागाह्वा गुडूच्यतिवला तथा।
पृथग्दशपलान् भागान् जल्द्रोणे विपाचयेत्।
तेन पादावशेपेण घृतस्याद्धीढकं पवेत्॥
मधुकं श्रुद्भवेरञ्च द्वाचासैन्धविपण्पलीः।
दिपलिका पृथग्दद्याद् यमान्याः कुडवं तथा॥
तिंशद् गुडपलान्यत्र तैलस्यरण्डजस्य च।

प्रस्थं द्वा समालोड्य सम्यङ्मृद्वग्निना प्रचेत् ॥
एतदीश्वरपुत्राणां प्राग्मोजनमिनिद्तम् ।
राज्ञां राजसमानाञ्च बहुस्त्रीपतयश्च ये ॥
मूत्रकृष्क्षे कटीस्तम्मे तथा गाढपुरीषिणाम् ।
मेद्रवङ्चणग्रले च योनिग्रले प्रशस्यते ॥
यथोक्तानाञ्च गुल्मानां वातशोणितकाश्च ये ।
वल्यं रसायनं शीतं सुकुमारकुमारकम् ।
पुनर्नवाशते द्रोणो देयोऽन्येषु तथाऽपरः ॥२७॥

इति मूत्रकृच्छु-चिकित्सा।

पुनर्नवेत्यादौ —दशम्लस्य मिलित्वा दश पलानि त्रयम्ल त्यापञ्चम्लम् , एत-दिप मिलित्वा दशपलमानम् । विदारिगन्धा शालपर्णी । नागाह्या नागवला, गोरच-तयडुला इत्यर्थ । श्रतिवला श्रेषवला । द्राया इति द्रव्यतुलाह्ये प्रत्येक द्रोया द्रत्यर्थ । द्विपलिका इति पलद्वयमाना । गुडमेरयडतैलञ्च दन्तेव पाक । देयोऽन्येषु तथापर इति श्रन्येषु दशम्लादिष्वपरद्रोया इत्यर्थ । सुकुमोरिति सुकुमाराः सुखिन , कुमारा शिशव , एनदुभयोहितत्वात् सुकुमारकुमारकसङ्गा ॥ २७॥ इति मूत्रकुच्छ्चिकित्माविद्यति ॥

# अथ मूत्राघात-चिकित्सा।

मूत्राघातान् यथादोषं मूत्रकृच्छ्रहरैर्जयेत्। वस्तिमुत्तरवस्तिञ्च दद्यात् स्निग्धं विरेचनम् ॥ कल्क्रमेर्वारुवीज्ञानामत्तमात्रं ससैन्धवम् । द्विज धान्याम्लयुक्तं पीत्वैव मूत्रघाताद्विमुच्यते॥१॥ त्रिज

मूत्रगतविकारसाधर्म्यादनन्तर मूत्राधातचिकित्सारम्यः ।—मूत्रस्याधातो विवन्ध भूत्राधातः । मूत्राधातमूत्रक्रच्छ्रयोश्चाय भेद ,—मूत्रक्रच्छ्रे क्रच्छ्रत्वमधिकमीषद्विवन्ध , मृत्राघाते तु विवन्धो महान् कृच्छ्कत्वमल्पमिति । कल्कमित्यादि—सुश्रुतस्य । प्वोरुर्धाष्मकर्कटोति डल्वणः । धान्याम्ल काञ्जिम् ॥ १ ॥

> पाटल्या यावश्काच पारिभद्रात् तिलादिष । चारोदकेन मिटरां त्वेगलापणसंयुताम् । पिवेद् गुडोपदंशान् वा लिह्यादेतान् पृथक् पृथक् ॥२॥

पाटल्या इत्यादि—सुश्रुतस्य । तिलादिति तिलनालात् । इहापि वस्यमाण पृथक् पृथगिति सम्बन्धनीयम्, तेन पृथक् पाटल्यादीना चारस्रावीदकेन ममा मिदरा लगेलोयण प्रिचय् पिनत् । कपण मिद्वम् । अन्य तु पाटलीयावर्क्षयोर्मिलित्वा चार । केवलयवचारस्याष्ट्रप्टलात्, अतएव वाग्मेट त्रायुर्वेदमारे च "पाटलीयावर्क्षान्धान्धान्धानित मिलित्वा पट्यते" इत्याह् । अरुणदत्तोऽध्येव वाग्मर्टाकाया व्याख्यात-वान् । कार्त्विकस्तु मिदरामित्यस्य स्थाने मितमानिति पाठ स्वीकृत्य चूर्णकिमिति चाध्याह्त्य पव व्याचिष्ट,—पाटल्यादीना चूर्णं चारोदकेन मुष्ककचारवारिणा पिवेटि-ति । यदाह विश्वामित्र "पाटले पारिमद्राद् वा तिलाद् वापि यवायजात् । कर्णनात्वग् युत चूर्णं मुष्ककचारवारिणा । पिवेद् गुडेन मिश्र वा लिह्यान् मृत्रविघात-जित् ।" इति पतत् सवादात् । अत्र कषण पिप्पली । गुडोपदशान् वा लिह्यात् । विति एतान् पृथक् पृथक् पाटल्यादिचारान् गुडोपदंशान् गुडीमश्रान् वा लिह्यात् । व्यव्यस्तु मातिमानित्यत्र मदिरामिति पाठ तथा गुडेन मिश्रानित्यत्र गुटोपदशानिति पाठकानार्यमाह्याः ॥ २ ॥

#### त्रिफलाकल्कसंयुक्तं लवणं वापि पाययेत् । निदिग्घिकायाः खरसं पिवेद्या तान्तवस्रतम् ॥ ३॥

त्रिफलेत्यादि—सुम्रुतस्य । अत्रापि पान चारादकेनेत्यनुवर्चयित कार्षिक । अन्य तु ''अमयामलकाचाया कल्क बदरसिमतम् । अम्मसा लवयोपित पिवेन्मूत्र-रुजापहम्' इति वचन मूत्रकृच्छप्रतियेषे सुम्रुतेनोक्तम् । अतस्त्रहरानादत्राप्यम्ममैव पानम्, तथा मिलिलाप्टमापक मानश्चेत्यादु । त्रिफलाकल्क मावा ६, मैन्धवमापा । दित्तीययोगे तान्तवस्रुतमिति वस्त्रगालितम् । मृधुयोगादप्यय योग पेय । यदाह वाग्मदः—''स्वरस कण्टकार्थ्यां वा पाययेन्माचिकान्वितम्' इति ॥ ३॥

जले कुड्कुमकलं वा सचौद्रमुपितं निशि। सतैलं पाटलाभस चारवद्रा परिस्नुतम्॥ ४॥ जल श्लादि—सुशुतस्य। अत्र कुकुमंत्रस्य शितकपायविधिना जले पर्णुषित प्रात्वंश्रस्नुत मचीद्र पिवेत्। "पिवन् कुकुमकर्षं वा मध्दकममाण्डतम्। रात्रिपर्णुषित प्रातस्तथा सुखमवाण्नुयात्" इति पाठान्तर सुश्रुतटीकाकृत. पठिन्ति, व्याख्यानयन्ति च, —कुकुमकर्षं मध्दकाभ्यामासाव्य रात्री स्थाप्य ततः पातव्यम्" इति। सतैल-मिलादि द्वितायो योग सुश्रुतस्येव। वाशव्य पूर्वयोगायेच्या। चारवद्वा परिस्नुत-मिति, परिस्नुत पाटलाभसा। किं विशिष्ट बारवत् यवचारश्रुक्त पिवेदिति केचिद् व्याच्चते। अन्ये तु चारवत् पानीयचारामिव सप्तकृत्व परिस्नुत पाटलाभस तेन महित पिवेदिलाहु। युक्तश्रेतत्, यदाह वाग्भट —''सतैल पाटलाचार सप्तकृत्वोऽथवा स्नृतम्" इति। सुश्रुतेऽपि मूत्रकृच्छूप्रतिपेथे—''प नाशचारमाहृत्य मप्तकृत्व परिस्नतम्'' पिवेन्मूत्रविकारम सस्तष्ट तैलमात्रया।" इति पठ्यते तैलस्य मात्रया स्तोकत्तेलेनत्यर्थ इति। यथामात्रा खादेद् बुभुाचित इति॥ ४॥

खुरां सौवर्चलवर्ती मूत्राघाती पिवेन्नरः। दाडिमाम्लयुतं मुख्यमेलावीजं सनागरम्। पीत्वा सरां सलवणां मत्राघाताद्विमच्यते॥ ४

पीत्वा सुरां सलवणां मूत्राधाताद्विमुच्यते ॥ ४॥
सुरामित्यादि—सुश्रुतस्य । पिनेत्रर इत्यन्त एक प्वाय योग । वाग्मेटऽपि
'मीवांचलाद्या मिदरां पिनेन्मूत्ररुजापद्दाम्'' इत्येनोक्तम् । दाडिमेत्यादि नागरान्तो
दितीयो योगः। दाडिमाम्बुयुत्तमिति दाडिमरमयुतम् । रमामाने तु काथः। मुख्यमित्यलानीजनिशेषणम् । पीत्वा सुरा सलवणामिति तृतीयो योग । सलवणामिति सम्मन्धवाम् । वस्तुतस्तु दाष्टिमाम्लयुता मुख्यामेलाजीरकनागरैरित्यनेन सुरामिति सम्बन्यते ।
'पीत्वा सुरा सलवणाम्'' इत्येव पाठ सुश्रुते पद्यते टीकाकारिश्च न्याख्यात । तस्माद्
दाडिमाम्लादि मलवणामित्यन्त एक प्वाय योगो युक्त', दाडिमाम्लामिति दाडिमयोगादम्लाम् । मुख्या सुरामिति पैष्टिजीम् ॥ ४॥

पिवेच्छिलाजतु काथे गणे वीरतरादिके। रसं दुरालभाया वा कषायं वासकस्य घा॥६॥

पिनेदित्यादा—नीरतराटिगणकाथे शिलाजतु प्रक्षिप्य पिनेदित्यर्थ । श्रत्र •याथी शिलाजतुनोऽत्यन्तयौगिकत्वेन दुरालमाकाथे नामककाथेऽपि शिलाजतु प्रक्षिपन्ति ॥ ६ ॥

> विकएटकैरएडशतावरीभिः सिद्धं पयो वा तृग्एश्चमूलैः।

#### गुडप्रगाढं सघृतं पयो वा रोगेषु कृच्छादिषु शस्यने तत्॥७॥

त्रिकरटकेत्यादि —योगत्रयम् । गुडप्रगाढिमिति पूर्वेण योगद्वेयन मम्बध्यते । त्रिकरटकादिमिद्ध वा तृणपञ्चमूलामिद्ध वा पयो गुडप्रगाढ हितम् । मप्टत पय इति तृतीयो योग ॥ ७ ॥

नलकुशकाशेजुशिफां कथितां प्रातः सुशीतलां ससिताम्।

''' पिवतः प्रयाति नियत सूत्रग्रह इत्युवाच कचः ॥ ८॥

गोधावत्या मूलं कथितं घृततैलगोरसैर्मिश्रम्।

'' पीत निरुद्धमचिराद्धिनत्ति मूत्रस्य सङ्घातम्॥ ६॥

नलेलादां—शिफा मूलम्, तच नलादिभि प्रत्येक सम्बध्यते। कच १६
म्पते पुत्र । गोधावतौ गोहालिया इति ख्याता । गोरमोऽत्र तक्रम्॥ ८ ॥ ६॥

जलेन खिद्रीवीज मूत्राघाताश्मरीहरम् ।
मूलं रुद्रजटायाश्च तकपीतं तद्र्थकृत् ॥ १० ॥
क्लेनेत्यादी—खिदरीक्षणमरीक्षजिमत्याद्व ॥ १० ॥
मूत्रे विवन्धे कर्पूर-चूर्ण लिङ्गे प्रवेशयेत् ॥ ११ ॥
श्रुतशीतपयोऽन्नाशी चन्दनं तगृहलाम्बुना ।
पिवेत् सशर्करं श्रेष्ठमुष्णवाते सशोणिते ॥
शीतोऽवगाह श्रावस्तेरुष्णवातिनवारणः ।
कृष्माग्रहकरसञ्चापि पीतः सन्नारशर्करः ॥ १२ ॥

मूत्र इत्यादी — लिङ्ग इति लिङ्गरन्थे श्रद्धणदूर्वोकाण्डादिना च कर्पूर्रज प्रक्षेप । एव खीयोनाविष, लिङ्गवचनस्य सामान्यवचनत्वात् । श्रतेत्यादी — श्रष्ठ चन्द्रनिमिति योज्यम्, तेन श्रेतचन्द्रनिमित्यर्थे । श्रुतशातप्यसा अन्नमीजनशील. । आवस्ते द्विति विस्तिमागपर्यन्तम् । कृष्माण्डस्स कृष्माण्डमिकास्वरस् ॥११॥१२॥

्रे स्त्रीणामितप्रसङ्गेन शोणित यस्य सिच्यते ।

मैथुनोपरमध्यास्य वृंहणीयो हितो विधिः ॥ १२ ॥

गृत्रदोषप्रमङ्गेन मृत्रमार्गप्रवृत्तस्य रिक्षस्यापि विधानमुपदिशाहाह स्त्रीणामिन्
त्याहि—सुश्रुतस्य । सुश्रुतेऽमु अन्थ कार्तिककुण्डो न पठित, शुक्रचयितद्वेतेवे।
करवाद । जेक्बरस्तु प्रकरणान्तरत्वाद शिष्यहितैषितया पठित ॥ १३ ॥

स्वगुप्ताफलमृद्वीकाकृष्णेजुरसितारजः। समांशमर्द्वभागानि चीरचौद्रघृतानि च॥ सर्वे सम्यग्विमथ्याचमानं लीद्वा पयः पिवेत्। इन्ति शुक्राशयोत्थांश्च दोषान् वन्ध्यासुतप्रदम्॥१४॥

स्वगुप्तेलादी—स्वगुप्ताफल श्किशिम्बीबीजम् | मृद्दीका द्राचा । कृष्णा पिप्पली, न तु कृष्णिति श्चुरकविशेषस्यम् सुश्रुते पिप्पलीपाठात् । श्चुरक कोकिलाच तस्य वीजम् । सिता शर्करा । रजश्चूर्णम् । श्रुर्द्धमागानि चीरचौद्रपृतानि चेति समुदितचूर्णात् चीरादीनि प्रत्येकमर्द्धमागानि । सुश्रुते पुनरय योगोऽन्यथा पठ्यते,—चौद्रार्द्धभाग कर्चन्यो माग स्यात् चीरसिपेषो । शर्करायाश्च चूर्णानि द्राचा-चूर्णञ्च तत्समम् । स्वयगुप्ताफलन्वैष तथेवच्चरकस्य च । पिप्पलीना तथा चूर्णमर्द्ध-माग प्रदापयेत्। तदैकथ्य समानीय स्रेजनामिप्रमथ्य च । तस्य पाणितल चूर्ण लिह्यात् चीर तत्त पिवेत्। "१ इति ॥ १४॥

## चित्रकाद्यं घृतम्

वित्रकं शारिवा वैव वला कालानुशारिवा।

द्राज्ञाविशालापिष्पल्यस्तथा चित्रफला भवेत्॥

तथैव मधुकं दद्याद् दद्यादामलकानि च।

घृताढकं पचेदेभिः कत्कैरज्ञसमन्वितः॥

त्रीरद्रेाणे जलद्रेाणे तत् सिद्धमवतारयेत्।

श्रीतं परिस्रुतञ्चैव शर्कराप्रस्थसंयुतम्॥

तुगान्नीद्ध्यांश्च तत् सर्च मितमान् प्रतिमिश्रयेत्।

ततो मितं पिवेत् काले यथादोषं यथावलम्॥

वातरेताः पित्तरेताः श्रेष्मरेताश्च यो भवेत्।

रक्षरेता प्रन्थिरेताः पिवेदिच्छुन्नरोगिताम्॥

जीवनीयञ्च वृष्यञ्च सर्पिरेतन्महागुण्म्।

प्रजाहितञ्च धन्यञ्च सर्वरोगापहं शिवम्॥

सर्पिरेतत् प्रयुक्षाना स्त्री गर्भ लभतेऽचिरात्।

#### ग्रस्ग्टोपान् जयेचापि योनिटोपांश्च संहतान् । भूत्रदोपेषु सर्वेषु कुर्यादेतिष्विकित्सितम् ॥१४॥ इति मूत्राघातिचिकित्सा ।

~~

चित्रकामित्यादि—सुश्रुतस्य । कालानुसारिवा तगरपाविका । विशाला गोरचकर्क्या । विशालिति पाठे काष्टपाटला व्यवहारस्तु विशालयेव । चित्रफला गोडु न्यानक्योभेद । तुगाचीच्या इत्यत्र प्रम्थसयुतमित्येतत् समासप्रविष्टमप्याकृष्य सम्ब-भ्यनीयम् । काले जीर्णाञ्चलक्ष्ये । यथादोष यथायलमिति मिलितदेहाधिवलानुरूपन् नुश्रुने प्नद् धतात् पूर्वमतिवल नाम धतमुक्षम् । तेन सपिरेतन्महाबलिभत्यपि एनम्यास्य नामिति टीकाकृत ॥ १५ ॥

इति मूत्राघानिचिकित्माविवृतिः ।

## अथाइमरी-चिकित्सा।

वरुणस्य त्वचं श्रेष्ठां श्रुग्ठीगोक्चरसंयुताम्।
यवक्तारगुडं द्वा काथित्वा पिथेद्धिताम्।
श्रश्मरीं वातजां हन्ति चिरकालानुवन्धिनीम्॥१॥
मूत्रविरोधित्वसामान्यादरमरीचिकित्सितमुच्यते वरुणस्थेत्यादि —श्रेष्ठामिति
कीटावनुषदताम्। यवनारगुडी प्रतेष्यां॥१॥

### वीरतरादिगणः

वीरतरः सहचरौ दभीं चृत्तादनी नतः।
गुन्द्राकाशकुशावश्मभेदमोरटहुएहुकाः॥
कुरुिएटका च विशरो वसुकः साग्निमन्थकः।
इन्दीवरी श्वदंष्ट्रा च तथा कपोतवक्षत्रकः॥
वीरतरादिरित्येप गणो वातविकारनुत्। \
अश्मरीशर्करामूत्रकुच्छाघातरुजापहः॥२॥
वीरतर इत्यादी—वीरतर शरः, महचरी भिष्टीइय पीतनीलपुष्पमेदात्

दर्भ उलयातृयाः, वृत्तादनी वन्दाकः, गुन्द्रा गुलुञ्चः, मोरटामित्तुमूलः, द्वग्दुकः श्रयोयाकः, कुरुपिटकाः श्रीहरितनी, ब्रह्मदत्तस्तु कृष्णस्त्तमफला मस्तकमक्षरी दिन्तयः देशे नितचराख्येत्याहः । इन्दीवरः चुँत्राकः । वशिरः स्य्यावर्त्तभेदः, वसुको वसुहरः, कपोतवववकः कडई इति ख्यातः, स च शिरीषसदृशः स्वल्पपत्रः. स्वल्पपत्रः विट्यः । गण्यत्वादनेन सर्वकल्पनाः ॥ २ ॥

शुरुष्टियग्निमन्थपाषाणशिष्ठवरुणगोच्चरैः । श्रभयारग्वधफलैः काथं कुर्य्योद्विचत्त्रणः ॥ रामठक्तारलवणचूर्णं दन्ता पिवेन्नरः । श्रश्मरीसूत्रकृञ्ज्ञं पाचनं दीपनं परम् । हन्यात् कोष्ठाश्चितं वातं कट्यूरुगुद्मेद्रगम् ॥ ३॥ शुरुशत्यादी—पाषायः पाषयभेदी ॥ ३॥

## पाषाणभेदाद्यं घृतम्

पापाणभेदो वसुको विशरोऽश्मन्तकस्तथा।
शतावरी शवदंष्ट्रा च बृहती कएटकारिका ॥
कपोतवक्त्रार्चगलकाञ्चनोशीरगुल्मकाः ॥
बृज्ञादनी भल्जुकस्य वरुणः शाकजं फलम् ॥
यवाः कुलत्थाः कोलानि कतकस्य फलानि च ।
ऊपकादिप्रतीवापमेषां काथे श्टतं घृतम् ॥
भिनत्ति वातसम्भूतामश्मरीं ज्ञिप्रमेव तु ।
ज्ञारान् यवागूः पेयानि कषायाणि पयांसि च ।
भोजनानि च कुर्वीत वर्गेऽस्मिन् वातनाशने ॥ ४॥

पाषायभेद इत्यादि—सुश्रुतस्य। अर्मन्तकोऽन्ललोटक कोविदारसदृशपत्रः आर्त्तगल आगढा इति ख्यात । होगल इत्यन्ये । काञ्चनो जलजो विटपश्चीरित-पत्र । गुल्मको गुलु । मल्लूक. श्योनाकशाक कर्कशमस्र अप्रेष्ट पत्रः आयो मस्देशे भवति तस्य फलम् । कतक तोयप्रसादनफल प्रायो मग्धे भवति । कष-कादिप्रतिवापिमिति जषकादिर्पे वस्यमायस्तत्कलक । पषाभिति पाषायभेदादीनाम् एतसाधनीषधवर्गेय द्वारादयोऽपि साध्या इत्याह द्वारानिति पानीयद्वारान् । यदि

चूर्यरूप द्वार पीयते, तदा विस्तरोषिनद्रवेख मस्त्वादिना । ह्यारेदकपानपचे तु हारस्य कर्षद्रय कर्षत्रय वा पद्गुखेन जलेन वहुण परिस्नाव्य श्वत वेयम् । पेयानीति यूपरमादीनि, पेयाश्विति पाठेऽपि यूपाडीनित्वर्थ । यूपाश्चेत्वपि पाठान्त रम् । पेयाश्विति तु पाठ सुश्रुतपुरनकेषु न दृश्यते, तट्टीकाक्विद्धश्च न व्याख्यात । भोजनानीति विशेषेभकत्त्पलेख्यानि, यवाग्वश्च पृथगुपादान विशेषेण मूत्रप्रवर्तकत्त्वा प्राधान्यख्यापनार्थम् । वर्गेऽस्मिन् वातनाश्चन इति पापाखमेदादिकत्तकान्त-काथ्यस्य द्रव्यवर्गे । कपकादिकन्तु प्रतीवापद्रव्य कफहरिमति राक्तिविशेषसाधनार्थं सयोज्यमान ह्यादिष्वेव प्रत्वपविषया देयमित्याहु । भ्रयमर्थो वृन्देनाप्युक्त यथा,—" कुर्थात् ज्ञारादिक काव्यस्तरिमन् ज्ञुपमवापकं " इति । छपमिति प्रद्यपम्, आवार्यकरिति आवापरूपे कल्कद्रव्यरित्यर्थ , छन्दोभङ्गानुरोधाद् हस्वत्वम्। एव वर्गेऽस्मिन् पित्तनाशन इत्याटाविप व्याख्येयम् ॥ ४॥

#### **ऊपकादिः**

ऊपकं सैन्धवं हिङ्गु काशीशद्वयगुग्गुलुः। शिलाजतु तुत्थकञ्च ऊपकादिरुदाहृतः॥ ऊपकादिः कफं हृन्ति गणी मेदोविशोधन । श्रश्मरीशर्करामूत्रश्रलद्गः कफगुल्मजुत्॥ ४॥

कपकादिवर्गमाह कपकमित्यादि—द्वश्रुतस्य । कपक चारमृत्तिका । तद्भव लवस्यमित्यन्ये । काशीशद्दयमिति धातुकाणीण पुष्पकाशीशद्व, तत्राद्य मम्म मदृश किञ्चिदम्ल, लवस्यरसञ्च, दितीयन्त्वीपत्पीत कषायरमम्, तुत्थक तृतिया दति प्रसिद्धम् ॥ ५ ॥

### कुशाद्यं घृतम्

, कुशः काशः शरो गुस्म उत्करो मोरटो श्मिभ्त्। दभों विदारी वाराही शालिम्लं त्रिक्त्हकः॥ मल्लूकः पाटली पाठा पत्त्रोऽथ कुरएटकः॥ पुनर्नवे शिरीपश्च कथितास्तेषु साधितम्॥ घृतं शिलाह्ममधुकवीजैरिन्दीवरस्य च। त्रपुपैर्वारुकादीनां वीजैश्चावापितं श्टतम्॥ भिनत्ति पित्तसम्भूतामश्मरीं ज्ञिप्रमेव च।

#### त्तारान् यवागुः पेयाश्च कषायाणि पर्यासि च । भोजनानि प्रकुर्वीत वर्गेऽस्मिन् पित्तनाशने ॥ ६॥

कुरा इत्यादौ — सुश्रुतस्य । मोरट इतुमूल; गुल्म गुलुञ्च , दर्भ उलुया, वाराही वाराहीकन्द , नदमावे चर्मकारालुक, मल्लूक रयोनाक , पत्तरः शालिञ्च ; पुनर्नवे पुर्ननवाद्धयम् ; पषा सर्वेषा काथ । शिलाह्वादीना कल्क । शिलाह्वमधुकन्वीजैरित्यत्र वीजपद समासप्रविष्टमपि इन्दीवरस्थेत्यनेन मह सम्बन्धनीय, न तु बोजो वीजक पातराल , वाग्मटमवादात् । यथा, — पिष्टेन त्रपुषादीना बीजेनेनन्दीवरस्य च । मधुकेन शिलाजेन तत् पित्ताशमिरनाशनम् " इति । इन्दीवरञ्च नुत्राक । पतेन " मधुक कृतहस्वत्वाद् वीजो बीजक उच्यते, इत्यपि वृन्दवचन-मबोधिवन्यस्तमेव । अस्यार्थः — हस्वमधुकशब्देन यष्टिमधुकमेवोच्यते, न तु तस्य बीजेनाव्यवहारात् वीजो बीजक इति । आवापित किल्कनम् ॥ ६ ॥

## वरुणाद्यं घृतम्

गणे वरुणकादौ च गुग्गुल्वेलाहरेणुभिः।
कुष्ठमुस्ताह्मिरिचचित्रकैः ससुराह्नयैः॥
एतैः सिद्धमजासिर्फिषकादिगणेन च।
भिनत्ति कफसम्भूतामश्मरीं चित्रमेव तु॥
चारान् यवागूः पेयाश्च कषायाणि पयांसि च।
भोजनानि प्रकुर्वीत वर्गेऽस्मिन् कफनाशने॥ ७॥
गण स्लादि—सुश्रुतस्य। अत्र वरुणादिगणेन काथ, शेषेण च कल्क,
कषकादिगणेन कल्करुपेण निद्धमित्यर्थ। अजासीपिरित्यत्र वाग्मटे तु एतिमित्येवोक्तम्॥७

### वरुणादिगणः

वरुणेऽर्त्तगलः शिम्रुतकारीमधुशिम्रुकाः । मेषश्रक्षी करश्ची च विम्ब्यग्निमन्थमोरटाः ॥ शैरीयौ वशिरो दमी वरी वसुकचित्रकौ । विल्वञ्चेवाजश्रक्षी च वृहतीह्यमेव च ॥ वरुणादिगणो ह्येष कफमेदोनिवारणः । विनिहन्ति शिर्श्सलं गुल्माचन्तरविद्रघीन् ॥ = ॥ वरुण्त्वक्कपायस्तु पीतस्तु गुडसंयुनः। श्रश्मरी पातयत्याशु वस्तिग्र्लविनाशनः ॥ ६ ॥

' तथा '' मिनित्त कफजामाशु साधित घतमश्मीरम् '' इति वरुणादिगणे प्रत्तेगल खग्गह, होगल इत्यन्ये, मर्जुन इति तु मानुमती । तर्कारी जयन्ती, तन्मूल, मधुशियु रक्तशोभाक्षन, करको करक्षलाटाकरकी, विम्वी तेलाकुचा, मेरिट इन्तुमूलम्, अङ्गोलपुष्पमिति भानुमती, हस्तिकर्णप्रलाश इत्यन्ये । शिरीयो पीतनीलपुष्पिमण्टीह्र्यं, दर्भ फुश उन्तुया, वरी शतावरी, वसुको वसुहरु इति ख्यात, अजन्द्रकी आवर्त्तीलेका ॥ ५॥ ६॥

थवत्तारं गुडोपेतं पिवेत् पुष्पफलोद्भवम् । रसं मूत्रविवन्धम्नं शर्कराश्मरिनाशनम् ॥ १० ॥ पुष्पफ्लोद्भव रक्षमिति पुराणकृष्माय्डरसम् ॥ १० ॥

पिबेद्दरुणमूलत्वक् काथं तत् कल्कसंयुतम् ।
काथश्च शिग्रुमूलोत्थः कदुष्णोऽश्मरिनाशनः ॥११ ॥
नागरवरुणगोच्चरपाषाणभेदकपोतवक्त्रजः काथः ।
गुडयावश्कमिश्रः पीतो हन्त्यश्मरीमुग्राम् ॥१२ ॥
वरुणत्वक्शिलाभेदश्चएठीगोच्चरकैः कृतः।
कषायः चारसंयुक्षः शर्कराश्च भिनन्यपि ॥१३ ॥
श्वदंष्ट्रैरएडपत्राणि नागरं वरुणत्वचम् ।
पतत् काथवरं प्रातः पिवेदश्मरिभेदनम् ॥१४ ॥
पिवेदित्यादि—पिवेदश्मरीभेदनमित्यन्त स्पष्टम् ॥१४—१४ ॥

मूलं श्वदंण्ट्रेचुरुकोरुवूकात् ज्ञीरेण पिष्टं वृहतीद्वयाच । श्रालोड्य दश्ना मधुरेण पेयं

दिनानि सप्ताश्मिरिभेदनार्थम् ॥ १४ ॥

मूलमित्यादि यहतीद्रयान्त एको योग । इत्तुरकः कोकिलाच । सर्व मिलित्ना मापकचतुष्टय दुग्धेन पिष्ट्वा श्रमम्लदङ्गा पेयम् ॥ १४॥

पकेच्वाकुरसः ज्ञारः सितायुक्तोऽक्ष्युरीहरः ॥

पाषाण्योगपीडां सौवर्चलयुक्ता सुरा जयति । तद्धन्मधुदुग्धयुता त्रिरात्रं तिलनालभूतिश्च ॥ १६ ॥ पक्षत्यादी—श्द्वाकुस्तिकालायूनस्या मिक्षकास्वरम । पाषाण्योगोऽम्मरी । तिलनालभूतिस्तिलनालस्रार ॥ १६ ॥

एलादिः

पत्तोपकुल्यामधुकाश्मभेदः
कौन्तिश्वदंष्ट्रावृषकोरुवृकैः।
कार्थं पिवेदश्मजतुप्रगाढं
सशर्करे चाश्मिरमूत्रकुच्छ्रे॥१७॥

एलेत्यादी--उनकुल्या पिप्पली । अत्र शोधितशिलाजतुनी मापकत्रय चतु-ष्टय वा प्रचेप्पित्याहु. ॥ १७ ॥

त्रिकरटकस्य वीजानां चूर्णं मान्तिकसंयुतम् । श्रविद्यारेण सप्ताहं पिवेदश्मरिनाशनम् ॥ १८ ॥ " श्रुकाश्मर्थ्यान्तु सामान्यो विधिरश्मरिनाशनः ॥ १६ ॥ श्रुकाश्मर्थान्तु सामान्यो विधिरिति श्रश्मरीमात्रसाधारणनिधि ॥१८॥

पाषाणभेदाद्यं चूर्णं घृतश्च

पाषाण्मेदो वृषकः श्वदंष्ट्रा पाठामयान्योषशटीनिकुम्भाः।

हिंसाखराश्वा सितमारकाणा-

मेर्वारुकाच त्रपुषाच वीजम् ॥ उपकुञ्चिका हिह्न सवेतसाम्लं

स्याद् से वृहत्यौ हबुषा वचा च। चूर्ण पिवेदश्मरिभेदि पकं

स्पिश्च गोमूत्रचतुर्गुणं तैः ॥ २० ॥

पापाणमेद इत्यादौ—निकुम्मा दन्ता, खरामा स्नममोदा, मितमारक
शालिञ्चः, उपकुञ्चिका कृष्णजीरकम् । चूर्णं पिनेदिति निशेषानभिधानाज्ञलेनैन।
तैः पाषाणभेदादिभिरेन कल्करूपे. पक सर्पिश्च पेयमित्यन्त्रय ॥ २० ॥

#### कुलत्थाद्यं घृतम्

कुलत्थिसिन्धूत्थिविडक्षसारं
संशर्करं शीतिलयावग्रकम् ।
वीजानि कृष्माएडकगोजुराभ्यां
धृतं पचेन्ना वरुणस्य ताये ॥
दुःसाध्यसर्वाश्मिरमूत्रकृष्कुं
मूत्राभिघातञ्च समूत्रवन्धम् ।
एतानि सर्वाणि निहृन्ति शीघं

प्रस्टबृज्ञानिव वज्रपातः ॥ २१ ॥

कुलत्थष्टते शीतली शियलीब्रीपड , तथाच रत्नकोष, "शीयली शातकुम्मी च शुक्रपुष्पा जलोद्भवा। कालानुशारिवा तस्याः परोचे नतवद्गुणै । " इति। श्रन्ये तु शीतलीयावग्रक्त शियतियवचार , स तु रफाटिकसैन्धवसङ्गाश इत्याहु , व्यवहा-रस्तु पूर्वेणैव । शर्करापि कल्करूपा ॥ २१ ॥

#### शरादिपश्चमूलघृतम्

शरादिपञ्चमूल्या वा कषायेण पचेद् घृतम्। प्रस्थं गोचुरक्त्केन सिद्धमद्यात् संशक्तरम्॥ श्रश्मरीमूत्रकृच्छुन्नं रेतोमार्गक्जापहम्॥ २२॥

शरादिपञ्चमूलामित्यत्र शरादीति विशेषणात् चरकोक तृषपञ्चमूल झाझ, वथा,—''शरेजुदर्मकाशाना शालीना मूलेमव च '' इति । अत्र शर्करा प्रदेष्या । वा शब्दः पूर्वयोगायेवया ॥ २२ ॥

#### वरुणघृतम्

बरुणस्य तुलां चुएणां जलद्रोणे विपाचयेत्। पादशेषं परिस्नाव्य घृतप्रस्थं विपाचयेत्॥ घरुणं कदली विद्वं एण्जं पश्चमूलकम्। श्रमृता चाश्मजं देयं बीजञ्च अपुषोद्भवम्। श्रतपर्वा तिल्हारं पलाशहारमेव च। यूथिकायाश्च मूलानि कार्षिकाणि समावपेत्॥ श्रस्य मात्रां पिवेज्जन्तुर्देशकालाचपेत्तया । जीर्णे तस्मिन् पिवेत् पूर्वे गुडं जीर्णन्तु मस्तुना । श्रश्मरीं शर्कराञ्चेव मूत्रकृच्छुश्च नाशयेत् ॥ २३ ॥

वनगादिष्टते—कदल्याः फलमाम मूल वा, अश्मज शिलाजतु, त्रपुष माया-म्नुफलम्, शनपर्वा वशस्तस्य नली मूल वा। तस्मित्रिति ष्टतेः, पूर्वमिति भोजनात् पूर्वम् ॥ २३ ॥

## वीरतराद्यं तैलम्

ब्रध्नाधिकारे यत् तैलं सैन्धवाद्यं प्रकीर्तितम्।
तत् तैलं द्विगुणं चीरं पचेत् वीरतरादिना ॥
काथेन पूर्वकल्केन साधितन्तु मिषग्वरेः।
एतत् तैलवरं श्रेष्ठमश्मरीणां विनाशनम् ॥
मूत्राघाते मूत्रकृच्छ्रे पिचिते मिथतेऽपि वा।
भन्ने श्रमाभिपने च सर्वथैव प्रशस्यते॥ २४॥

व्रधापिकार इत्यादि—तत् तेलमिति व्रधापिकारोक्तविधिना सिद्ध तेल पुनरिष द्विगुण चीर दत्त्वा वीरतरादिकाथेन चतुर्गुंखेन द्विगुखन वा, पूर्वकल्केनिति सैन्थवा षकल्केन पचेत्। अन्य तु केवल तेलमेव द्विगुखन्तोरादिना पचेदिनि वदन्ति, तन्तु न न्यवहारासिद्धम् । यद्यपि सैन्थवायतेले तिलतेलमेरखडतेले खोक्त तथाप्यत्र उत्तर-वस्त्यादी तिलतेलस्येव स्त्मस्रोतोऽनुमारित्वेन योगिकत्वाद् ग्रहखमित्याहु । पिखिन इत्यागन्तुकव्यविशेषे, मिथत इति चूर्खिताख्यमग्ने ॥ २४॥

## वरुणाद्यं तैलम्

त्वक्पत्रपुष्पमूलस्य वरुणात् सित्रकण्टकात्। कषायेण पचेत् तैलं बस्तिनास्थापनेन च । शकेराश्मीरश्लक्षं मूत्रकुच्छ्रविनाशनम् ॥ २४ ॥ शल्यवित् तामशाम्यन्तीं प्रत्याख्याय समुद्धरेत् ॥ २६ ॥ त्वक्पत्रेत्यादि—काथार्थं वरुणस्य यथालाम त्वक्पत्रमूलपुष्प पल ३२, गोच्चर पल ३२, जल श ६४, शेष श १६ । भक्तकामिद्र तेलम् ॥ २४ ॥ २६ ॥ पायुक्तिसङ्गुलिभ्यान्तु गुद्मेद्रान्तरीकृताम् ।
सेवन्याः संव्यपार्थे च यवमातं विमुच्य तु ।
व्रणं कृत्वाश्मरीमातं कंपेत् तां श्रस्नकमेवित् ॥
मिन्नेऽपि वस्तौ त्वज्ञानान्मृत्युः स्यादश्मरीं विना ।
नि शेषामश्मरीं कुर्यात् वस्तौ रक्षञ्च निर्देत् ॥
हताश्मरीकमुष्णाम्बु गाहयेद्गोजयेच तम् ।
गुडं मूत्रविश्चद्धर्थं मध्वाज्याक्ष व्रणं ततः ॥
द्यात् साज्यां व्यदं पेयां साधितां मूत्रशोधिभिः ।
श्रावशाह ततो द्यात् पयसा मृदुभोजनम् ॥
स्वेदयेद् यवमध्वाद्य कषायैः चालेयद् व्रणम् ॥
प्रपौण्डरीकमञ्जिष्ठायप्रीलोष्ट्रेश्च लेपयेत् ॥
प्रतेश्च सनिशे सिद्धं घृतमभ्यञ्जने हितम् ।
श्रप्रशान्ते तु सप्ताहाद् व्रणे दाहोऽपि चेष्यते ।
दैवान्नाडे तु या लग्ना तां विपाट्यापकर्षयेत् ॥ २७॥

#### इत्यश्मरीचिकित्सा।

#### - ARRENBUS

सन्वपार्श्व इति वामपार्श्व । नि शपामशमरी कुर्य्यादिति सरीपायान्तु पुनरप्यश्मवृद्धिसम्मवात् । वृत्ती रक्षञ्च निर्देरिति विस्तगतरक्षमित्यर्थ । तथा सित विस्तरसञ्ज्ञा
न प्रपूर्वित इति माव । हताशमरीमित्यादी गुड मोजंयदित्यन्वय । मूत्रशोधिभिरिति तृत्वपञ्चमूलादिभि । तत इति न्यहादूर्भ्वम्, श्रादशाह दशाहपर्यन्तम् ।
प्रमा दुग्वेन मृदु भोजन कोमल मक्ष दणातः, तथा स्वदेयन्त, श्रादशाहमित्यनेन
दशाहाभ्यन्तर एव स्वेदोऽप्युक्ष, जक्ष हि दशराश्रञ्चेनमप्रमत्त स्वदेयेत् " इति । स च
लह एव स्वेदः रक्षपित्तानुगतत्वादायोरिति गयदास । भोजेऽप्युक्षम् "लेहस्वद
विधिवस्तु कुर्याद् वातम्जापहम्" इति यवमध्वाद्ध्यमिति मृदुभोजनिमत्यस्य विशेषणम्, यवकृत मन्त्यप्रथान मधुप्रधानञ्चेत्यर्थ, । कपाये ज्ञालयद् वर्णामिति दशाहादूर्ष्वमेव वीरिवृत्तकषाय ज्ञालन वीध्य मोजसवादात् । सिन्शैरित्येनन मृतसाथनद्रव्य मम्बद्धते, न तु लेप इति सुश्रुतसवादात् ॥ २७॥

इत्यश्मरीचिक्तिसाविष्टति ॥

# अथ प्रमेहचिकित्सा ।

## कुशावलेहः

वीरणश्च कुशः काशः कृष्णेचुः खागडस्तथा । एषां दशपलान् भागान् जलद्रोखे विपाचयेत्॥ श्रष्टभागावशेषन्तु कषायमवतारयेत्। श्रवतार्थ्य ततः पश्चाच्चूर्णानीमानि दापयेत्। मधुकं कर्कटीबीजं कर्कांचे त्रपुषं तथों॥ शुभामलकपत्राणि एलात्वङ्नागकेशरम् । वरुणामृतप्रियङ्गणां प्रत्येकञ्चाच्तसम्मितम्॥ प्रमेहान् विंशतिञ्चेन मूत्राघातं तथाश्मरीम्। वातिकं पैत्तिकञ्चेव रेष्ठिमकं सान्निपातिकम्। हन्त्यरे।चक्मेवायं तुष्टिपुष्टिकरस्तथा ॥ १ ॥ √श्यामाककोद्भवोद्दालगोधूमचणकाढकी। कुलत्थाश्च हिता भोज्ये पुराणा मेहिनां सदा। 🚜 जाङ्गलं तिक्रशाकानि यवात्रश्च श्रमो मधु ॥२॥ पारिजातजयानिम्बवह्निगायत्रीखां पृथक्। पाठायाः सागुरोः पीताद्वयस्य शारदस्य च ॥ जेलचुमद्यसिकताशनेर्लवणपिष्ट्कान् । सान्द्रमहान् क्रमाद् झन्ति चाष्टौ काथाः समाज्ञिकाः ॥३॥ १

अश्मर्थ्यनन्तर वस्तिविक्कतिसाम्याद प्रमिष्कपितकार उच्यते श्यामाकेत्यादि— उदालो वनकोहव, आढकी तुवरी, यवाश्रमिति यवशक्त्वादिकम् । पारिजात-त्यादि—पारिजात पारिभद्रः, जया जयन्तीः, विक्किश्चित्रक , गायत्री खिद्ररः, पाठायाः सागुरे।रित्येकः काथः । पीताद्वय हरिद्राद्वयम् । अयमप्येक । शारद सप्तपर्णे । पारिभद्रेत्यादयाऽष्टी काथाः । जलाधष्टी मेहान् क्रमाद् झन्तीत्यन्वय ॥ १—३॥ दुर्वाकेशरुपूर्तीककुम्मीकस्रवशैवलम् । जलेन कथितं पीतं शुक्रमेहहरं परम् ॥ त्रिफलारम्बघद्राचाकपायो मधुसंयुतः । पीतो निहन्ति फेनाख्यं प्रमेहं नियतं चृणाम् ॥ ४ ॥ लोभ्रामयाकद्फलमुस्तकानां विडङ्गपाटार्जुनघन्वनानाम् फद्म्बशालार्जुनदीप्यकानां विडङ्गधात्रीवहुशल्यकानाम् । चत्वार पते मधुना कपायाः कफ्रमेहेषु निषेवणीयाः ॥ ४ ॥

द्रेंत्यादी—पृतिक करं तस्य तक्। कुन्मीक पाहा; सव कैवर्तमुम्तकम् । वागेऽत्र मधु प्रतिपन्ति वृद्धा सुश्रुतमवादात् । विफलेखादि स्पष्टम् । लोगेत्सादि । योगद्वय वाग्मटस्य, कदम्बेखादि योगद्वय वाग्मस्य, चक्रेण प्रतिसस्कृत्य लिखितम्। धन्वनी धामनी, दीव्यको यमानी, गल्यक खिदर, बहुशल्य इति खिदरस्य मछा, उक्त हि "वहुशल्यश्च मम्प्रोक्तो याश्चिक कुष्ठनाशन" इति । तेनैकदेशोऽिष मिलिन गमयिन यथा मीमो मीमसेन । उक्त हि चरके "दावी विडङ्ग खिदरो धवश्च" इति । वाग्मटेऽप्युक्त— "गायत्रीदावींकिमिजिद्धवानाम्" इति । धन्ये तु शल्यक मटनफल-माह् ॥ ४ ॥ ४ ॥

स्रश्वत्थाचतुरकुलान्त्यप्रोधादे फलत्रयात्।
सिजक्षीरक्षसाराच काथाः पञ्च समाविकाः ॥
नीलहारिद्रश्रक्षाख्यक्तारमञ्जिष्ठकाह्मयान् ।
मेहान् हन्युः क्रमोदेते सत्तौद्रो रक्षमेहजित् ।
काथः खर्जूरकाश्मर्यातिन्दुकास्थ्यमृताकृतः ॥ ६ ॥
लोध्राजुनेशिरकुचन्द्रनानामरिष्टसेन्यामलकाभयानाम् ।
धात्र्यजुनारिष्टकवत्सकानां
नीलोत्पलानां तिनिशार्जुनानाम् ॥

#### चत्वार एते विहिताः कषायाः पित्तप्रमेहे मधुसम्प्रयुक्ताः॥ ७॥

पित्तमेहस्य याप्यत्वेन यापनार्थं चिकित्सामाह अश्वत्थादित्यादि—नीलादिषु पञ्च मेहेषु क्रमेण पने पञ्च योगा वोध्याः । श्रव्त अश्वत्थकाथनेको योग , चतुर्द्व लादिति द्विनाय , न्यप्रोधोडुन्वराश्वत्थस्वमधुकककुमजन्द्द्वयियालमधुकरोष्टिणी-वन्जुलकदम्बदरितन्दुकशह्नकोलोधमहातकपलाशनन्दीवृद्धाक्षिति, श्रत्र सच पाकि । ककुमोऽजुनः।नन्दीवृत्तो गन्धमुण्ड । श्रन्ये तु न्यप्रोधादिशन्देन पञ्चवत्कलमाहु. । फलत्रयादिति चतुर्थ । साजिहीरकसारादिति—जिही मिष्ठिष्टा। रक्तसारो रक्तचन्द-नम्। श्रयन्तु पञ्चमः। हन्युरिति यापयेयुरित्यर्थ । किंवा 'श्रनत्यन्तुष्टमेदि पिष्य-जानामिप साध्यत्व 'साध्यास्तु मेदो यदि न प्रदुष्टम्' इति चरकवचनात् । श्रुक्ता-स्थाने 'श्रव्यत्तेष्ट । सुश्रुते निदान-स्थाने 'श्रव्यत्तेष्ट । सुश्रुते कालेमहस्थाने श्रन्यने। एक हि सुश्रुते निदान-स्थाने 'श्रव्यतेष्टिन न्यप्रोधादिकषाय वा पाययेत्' इति । रक्तमेहांचिकत्सामाह मचौद्द इत्यादिना कृत इत्यन्तेन । श्रत्र खर्जूत्वाश्वर्यः फलः, तिन्दुकस्य च फला-स्थि । श्रमृता गुद्धची । सुश्रुतेऽि 'शोखितमहिन गुद्धचीतिन्दुकास्थिकाश्वर्यवर्जू-रक्षाय मधुमधुर पाययेद्' इति । लोधेलादौ—कुचन्दन रक्तचन्दन, श्रुरिष्टो निम्व , सेन्यमुशार; नीलोत्यलानामित्यत्र नीलोत्यलेला इति पाठान्तर, किन्त्वार्ष न दृष्ट, तिनिश श्र हुक. ॥ ६ ॥ ७ ॥

खिन्नाचित्तकषायेण पाठाकुट जरामठम् ।
तिक्कां कुछञ्च सञ्चूर्ण्यं सार्पिमेहे पिवेन्नरः ॥ = ॥
कदरखिद्रपूगकाथं सौद्राह्मये पिवेत् ॥ ६ ॥
श्रिमन्थकषायन्तु वसामेहे प्रयोजयेत् ॥ १० ॥
पाठाशिरीपदुःस्पर्शमूर्वीकिशुकितन्दुकम् ।
किपित्थानां भिषक् काथं हिस्तिमेहे प्रयोजयेत् ॥ ११ ॥ ४

किम्पल्लसप्तच्छदशालजानि वैभीतरौहितककौटजानि । किपत्थपुष्पाणि च चूर्णितानि चौद्रेण लिह्यात् कफिपत्तमेही ॥ १२॥

इदानीमसाध्येष्वपि वातिकमेहेषु यापनार्थ योगानाए छिन्नेत्यादि—वहि-

श्चित्रक । पाठादिकुष्ठान्ताना चूर्णं गुडूचीचित्रककपाये प्रक्षिप्य पिनेत् । कदरो विट खिटर, खिदरन्तु तिटतरः, पूग पूगफलम् । पाठचादो—ितन्दुककापित्थां फल, तिन्दुकक्च तेन्दुफलम् । पाठादिकिपित्थान्तमकोमन पदम् । वातमेहेष्वमाध्येष्विप चि- कित्माविधानिमेद महाना चिरानुविन्थित्वेन किब्चिद्दिशेषलामेन यापनाथम् । सुश्चेनेऽप्युक्तम् "अन उद्ध्वमसाध्येष्विप योगान् यापनार्थं वस्त्याम् " इति । किम्पिल्लेखां चूर्णानीति विशेष्यपद द्रष्टव्यम्, एव वैमीतकत्यादावपीति केचित् अन्य तु किपत्थपु- विपाणि चेति चकारात् किम्पिल्लादीनामीप कुसुममेव बाह्यमिलाह् । युक्कन्नेतत् । उक्त विषयप् "शालसप्ताह्मकिम्पल्लवृत्तकात्तकपित्थनम् । रोहोतज च कुसुम मधुना- वात् मुश्करत् " इति । एव वृद्धवाग्मेटेऽपि शालादीनामिति कुसुमित्येवोक्तम् । कफ्पित्तमेहीति कफ्मेर्ही पित्तमेही चेत्यर्थ ॥ ध—१०॥

सर्वमेहहरो घाज्या रसः चौद्रनिशायुतः। कपायस्त्रिफलदारुमुस्तकैरथवा कृत ॥ १३॥

मर्वमेहेत्यादि-स्थय योगो वान्तिविरेकादिशुद्धे श्रेय सुश्रुतमवादात् । भाज्या रम स्वरस , स्वरस एव व्यवहारात् न तु काथ इत्याहु । कपाय इत्यादि-दिनीययोगेऽपि चौद्रनिशायुत इति सम्बन्धनीयम् ॥ १३ ॥

फलित्रकं टारुनिशां विशालां

मुस्तञ्च निःकाथ्य निशांशकरकम्।

पिवेत् कपायं मधुसम्मयुक्तं

सर्वप्रमेहेपु समुत्यितेषु ॥ १४ ॥ /

कटद्वेटरीमधुकत्रिफलाचित्रकैः समैः।

सिद्धः कपायः पातव्य प्रमेहाणां विनाशनः॥ १४ ॥

त्रिफलाद्। वद्वव्यव्दक्षाथ चौद्रेण मेहहा॥ १६ ॥

फुटजाशनदार्व्यव्दफलत्रयक्रते। ८थवा॥ १७ ॥

फलात्रिकीमत्यादी—दारुनिशा दारुहरिद्रा, विशाला गोरच्नकंटी । र्गिराशकरूकिमिति—निशामागकरूक तत्मिहितमेव त्रिफलाहिद्रव्य नि काथ्य कषाय पिनेदित्येके । अन्य तु अशराब्दोऽद्धीमिधायी, तेन फलत्रिकादीना समुदितानामेको भाग , निशायाश्चापरो माग एतद्भागद्ध्य नि काथ्य कषाय पिनेदित्यर्थ । अपरे तु निशाया अशब्दार्थो माग समुदितकाथ्यापेचया म एव कल्क प्रक्षेपरूप- श्चुणो यत्र तत्त्रधेति व्याचत्तते । व्यवहारस्त्वनेनैव । कटह्नदेरी दारुहरिद्रा । कुटबारानेत्यादाविष चौद्रणेत्यनुवर्तते । श्रशनः पीतशाल । दावा ढारुहरिद्रा । श्रश्ने मुस्तकम् । निश्चलस्तु श्रश्चरस्थाने श्रशीति पठित । व्यवहारस्तु मुस्तकेनैव ॥ १४ —१७॥

त्रिफलालौहशिलाजतुपथ्याचूर्णश्च लीढमेकैकम्।
मधुनामरास्वरस इव सर्वान् महान् निवारयति ॥१८॥
शालमुष्कककिम्पल्लकरमत्तसमं पिवेत्।
धात्रीरसेन सत्तौद्दं सर्वमेहहरं परम्॥ १६॥

त्रिफलत्यादि — समुदितित्रिफलयैवैको योग , तेन चत्वारे। योगा । अमग गुड्नी, अयझ पद्ममो योग । लोइच्च मारितपुटितवजादिलाइचूर्णम् । शाल-त्यादे। —शालम्य मार. । मुष्कको परदापाकली तस्या मूलम् । वास्पिल्लम्य त्वक् ॥ १=॥ १६॥

## न्यग्रोधाद्यं चूर्णम्

न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थश्योगाकारग्वधाशनम्।
ग्राम्रजम्बूकिपत्थञ्च पियालं ककुमं धवम् ॥
मधूको मधुकं लोधं वरुगः पारिभद्रकम् ॥
पटोलं मेषश्रद्धी च दन्ती चित्रकमाढकी ॥
करञ्जिक्रलाशक्रमहातकफलानि च।
पतानि समभागानि श्रद्याचूर्णानि कारयेत्।
न्यग्रोधाद्यमिदं चूर्णं मधुना सह लेहयेत्।
फलत्रयरसाञ्चाद्यपिवेन्मूत्रं विशुध्यति ॥
पतेन चिश्रतिर्मेहा मूत्रकच्छ्राणि यानि च।
प्रशमं यान्ति योगेन पिडका न च जायते।
न्यग्रोधाद्यमिदन्त्वत्र चाम्रजम्ब्वस्थि गृह्यते ॥ २०॥

न्यग्रोधादिचूर्ये — न्यग्रोधो वट , श्रशन पीतशाल । श्राझंजम्बूकिपित्ध-श्रिति श्राझजम्बूफलास्थि कपित्थस्य तु फलिमित्याहु । ककुमोऽर्जुन । धव स्वनाम-ख्यात । मधूको मधूकमार । श्राहकी तुपरी । करश्रस्य फलम् । शक्र कुटज ॥ २०॥

#### त्रिकएटकाद्यं घृतं तैलं यमकश्च

त्रिकएटकाश्मन्तकसोमवल्कैभेज्ञातकैः सातिविषे सलोधैः।
वचापटोलार्जुनिनम्बमुस्तैईरिद्रया दीप्यकपद्मकेश्च॥
मिश्रिष्ठपाठागुरुचन्दनैश्च
सर्वे समस्तैः कफवातजेषु।
मेहेषु तैलं विपवेद् घृतन्तु
पितेषु मिश्रं त्रिषु लच्चेषु॥ २१॥

त्रिकरहेकत्यादी—अश्मन्तको मानुआक इति ख्यात । मोमवल्क खिटर , न तु कट्फल जतुकर्णमवादार । सर्वेरिरयुक्ते पृथगि सर्वे लेहसाधन स्यादत आह ममस्तौरिति मिलितैरित्यर्थ , यथालामपरिहारार्थामिति वा । कफजेपु वातजेपु च महेपु तैलम् , पैचिकेषु घतम् , मिश्र त्रिपु लच्चपेष्विति देषत्रयलच्चयापादुर्मावे मित्र मिश्र तैलघतयमक पन्नेदित्यर्थ । त्रिदोषजल्ब कफपिचमेहेष्वेवानुबन्ध्यानुबन्धकृत मनन्यम् । किंवा सर्वेषामेव मेहाना त्रिदोषजल्बादुद्मृतदोषाविर्माव कटाचिइवतीति जयम् ॥२१॥

> कफमेहहरकाथसिद्धं सर्पिः कफे हितम् । पित्तमेहझनिर्य्यूहसिद्धं पित्ते हितं घृतम् ॥२२॥ कफमेहत्यादी काथनिर्यूहेति पदीपादानादकल्कत्व नोध्यम् ॥ २२ ॥

## धान्वन्तरं घृतस्

दशमूलं करक्षो द्वो देवदारु हरीतकी।
वर्णभूर्वरुणे दन्ती चित्रकं सपुनर्नवम् ॥
सुधानीपकदम्वाश्च विल्वभल्लातक।नि च।
शटीपुष्करमूलञ्च पिष्पलीमूलमेव च॥
पृथम्दशपलान् भागान् ततस्तीयामेणे पचेत्॥
यवकोलकुलत्थानां प्रस्थं प्रस्थञ्च दापयेत्॥

तेन पादावशेषेण घृतप्रस्थं विपाचयेत्।
निचुलं त्रिफला भागीं रोहिपं गजपिष्पली ॥
शृक्षेवरं विडक्गानि वचा किम्पलकं तथा।
गर्भेणानेन तिसद्धं पाययेत्तु यथावलम् ॥
पतद्धान्वन्तरं नाम विख्यातं सर्पिक्तमम्।
कुष्ठं गुरुमप्रमेहांश्च श्वयथु वातशोणितम् ॥
भीहोदरं तथाशींसि विद्विधं पिडकाश्च याः।
श्रापसारं तथोन्मादं सर्पिरेतिश्चयच्छति ॥
।
श्यक् तीयार्मणे तत्र पचेत् द्रव्याच्छतं शतम् ॥
शतत्रयाधिके तोयमुत्सर्गक्रमतो मतम् ॥२३॥

दशमूलित्यादी—करक्षयो फल न तु मूलम्, फलस्येन मेहहरत्वात् यदुक्तम्—'करक्षिक्युकारिष्टफल जन्तुप्रमेहनुत्' इति । सुधा स्तुही तस्या मूलम् तन्त्रान्तरे मूलपाठात् । नीपकदम्बी स्वलपद्यहत्कदम्बी, किंवा कदम्बो मूकदम्ब म चालम्बुप , तन्त्रान्तरे भूमिकदम्बपाठात्, नीपस्थानं कापि निम्च पठ्यते । पृथग्दग-पलान् मागानिति दशमूलमपि प्रत्येक दशपलम्, तत्र प्रतिशत तीयामंखदानम् । शतत्रयधिके द्रव्ये पुनरुत्सर्गसिद्धमप्टगुखमेव जल देयम् । एनदेव वस्यति ' पृथक् तोयामंखे' इत्यादि । श्रमंखो द्रोख , वृन्दस्त्वाह ' पाठान्तरे मत तीय काव्यादप्टगुखन्त्रदह' इति । श्रस्यार्थ एतदेव घत तन्त्रान्तरेऽन्यथा पठ्यते । तत्र च कार्थार्थम-प्रगुखन्त्रीयमुक्तम्, तत्प्रामाख्यादिहाप्यप्टगुख तोय देयम् । तन्त्रान्तरीयपाठान्तर यथा 'दशमूल हरीतको देवदारु करक्षद्वय वर्षाभूद्वय दन्ती भूमिकदम्ब महातक पुष्कर-मूलाकंमूल स्तुहोमूल वर्मखमूल पिप्पलीमूलमिति प्रत्येक दशपले।निमतानि । यवकोल-कुलत्यप्रस्थद्वय चाष्टगुखेऽन्मित पादशेष कषायमवतारयेत्' इत्यादि । श्रमंखणब्दश्चेह भूरिजलोपलच्य इति वृन्दस्याशय । व्यवहारस्त्वधुना चक्रमतेनैव । निचुल इज्जल , रोहिष गन्धनृत्यम् ॥ २३ ॥

## दाडिमाद्यं घृतम्

दाडिमस्य फलप्रस्थं यवप्रस्थौ तथैव च । कुलत्थकुडवञ्चापि काथयित्वा यथाविधि ।

तेन पादावशेषेण घृतप्रस्थं विपाचयेत्। चतु पष्टिपलं चीरं चीरतुल्यं वरीरसम्॥ दत्वा मृहश्निना कल्कैरनमात्रायुनै सह। द्राचाखर्जूरकाकोलीवन्तीवाडिमजीरकै।। तथा मेटामहामेदात्रिफलादारुरेखुकैः। विशालारजनीदारुहरिद्राविकपाम्यैः। क्रिमिन्नभूमिकूष्माराडश्यामैलाभिर्भिपग्वरः। पाने भोल्ये प्रदातव्य सर्वेतुषु च मात्रया॥ प्रमेहान् विशतिञ्चैव मूत्राघातास्तथाश्मरीम्। कुच्छं सुटारुणञ्जैव हन्योदेतद्वसायनम् । श्रूलमप्रविधं दृन्ति ज्वरमप्रविधं तथा। कामला पाएइरोगांश्च हलीमकमथारुचिम्॥ श्हीपरञ्च विशेषेण घृतेनानेन नश्यति। इदमायुष्यमोजस्यं सर्वरोगहरं परम्। वाडिमाद्यमिदं नाम अश्विभ्यां निर्मितं महत्॥२४॥ दाडिमस्पेत्वाटि —स्पष्टम् ॥ २४॥

## त्र्यूप**णादिगु**डिका

त्रिकटुत्रिफलाचूर्णं तुल्यगुग्गुलुना युतम् ।
गोलुरकाथसयुक्तं गुडिका कारयेद्भिपक् ॥
गोपकालवलापेची भद्मयेद्यानुलोमिकीम् ।
न चात्र परिद्वाराऽस्ति कर्म कुर्य्याद् यथेप्सितम् ॥
प्रमहान् सूत्रघातांश्च चातरोगोद्दं जयेत् ॥ २४ ॥
त्रिकडित्रिफलेल्यादि—त्रिकडित्रिफलाचूर्णेन तुल्य ग्रग्गुल, कि विशिष्टम्—
युक्त मित्रितम्, पुन कीद्दराम्—गोल्लरकोथन सम्यग्युत मावितम्, एव इत्वा
गुडिका कारयेदित्यर्थ । मिलितित्रिकटुचूर्णं पल १, मिलितित्रिफलाचूर्णं पन १,
युग्गुल पत २, चूर्णयुक्तगुग्गुलमावनार्थं गोलुर पल ४, काथार्थं जल ग ४, एवं
मत्राहमात्रे सावयेत्, तदनु पट्टमापकमिता विटेका कार्या ॥ २४ ॥

#### शिलाजतुप्रयोगः

शालसारादितोयेन भावितं यच्छिलाजतु।

पिवेत् तेनैव संशुद्धदेद्दः पिष्टं यथावलम्॥

जाद्गलानां रसैः सार्द्धं तिस्मिन् जीर्णे च भोजनम्।

कुर्यादेवं तुलां यावदुपयुक्षीत मानवः॥

मधुमेद्दं विद्यायासौ शर्करामश्मरीं तथा।

वपुर्वणेवलोपेतः शतं जीवत्यनामयः॥ २६॥

माज्ञिकं धातुमप्येवं युञ्ज्यादस्याप्ययं गुणः॥ २७॥

शालसारादिवर्गस्य काथे तु धनतां गते॥

दन्तीलोध्रशिवाकान्तलौहताम्ररजः चिपेत्।

धनीभूतमद्ग्धञ्च प्राश्य मेद्दान् व्यपोद्दति॥

व्यायामजातमिखलं भजन् मेद्दान् व्यपोद्दति॥ २०॥

पादत्रच्छत्ररिद्दतो भिन्ताशी मुनिवद् यतः।

योजनानां शतं गच्छेद्धिकं वा निरन्तरम्॥

मेद्दान् जेतुं वने वापि नीवारामलकाशनः॥ २६॥

शालसारादितोयेनेत्यादि सालसारादि सीश्रुता गर्य तस्य तोय. काथ ।
तिद्वान '' तुल्यं गिरिजेन जले चतुर्शुये भावनौषध काथ्यम् '' इत्यादि रसायनवच्यमायाविधिना क्षेयम् । तेनैवेति शालसारादितोयेनैव पिवेत् । सशुद्धदेष्ट्
इति वमनादिना । पिष्टमिति चूर्णितम् । तुला यावदुपयुक्तीतेति प्रतिदिनमर्द्धकर्गादिमात्रया तावानुपयोगोऽस्य यावता तुला न पूर्व्यते न तु पिप्पलीवर्द्धमानवत् ।
मशुमेद्द विद्ययिति जत्पन्नमात्र मधुमेद्द जित्वा इत्यर्थः । चिरजस्य असाध्यत्वात्
किंवा मद्दाप्रभावत्वात् । योगोऽयमसाध्यमपि मधुमेद्द माध्यति । चक्तविधि
स्वर्णमान्निकेऽप्यतिदिशति मान्निक धातुमंप्येविमिति । शालसारादिवगंस्येत्यादि—
शालसारादिगणस्य चतुर्थमागाविशष्टे काथे पुन पाकाद् वनीमृते दन्त्यादीना मिलिताना चूर्णे पादिक प्रचप्य कुटजलेद्दवत् । शिवा द्रितिकी । कान्तेति—मारितपुटितकान्तलोहादिचूर्णम् , अस्य सवौ विधिलीदान्तरवत् । व्यायामजनितमिति
प्रझयुद्धादिजनितम् । नीवारेत्युपलचण्यम् , तेन श्यामाकादिकमिप बोध्य यदाह

मुत्रुतः — " महावने वा ज्यामाक-नीवारामलक्रकीप थानिन्दुकाज्यन्नककलन् ना-हारो मूर्ग नह बनेत " इति ॥ २६--- २६ ॥

> शराविकाद्याः पिडकाः साधयेच्छोथवद्गिपक् । पकाश्चिकित्सेद् व्रणवत् तासां पाने प्रशस्यते । कार्यं वनस्पतेवीस्नं मूत्रञ्च वर्णशोधनम् । पलादिकेन कुर्वीत नैलञ्च त्रणरोपणम् ॥ श्रारन्वधादिना कुर्यात् काथमुद्धत्तेनानि च। शालसारादिसेकञ्च भोज्यादिञ्च कणादिना ॥ २० ॥ सोवीरकं सुरां शुक्तं तैलं चीरं घृतं गुडम्। श्रम्तेज्ञुरसपिष्टान्नानूपमांसानि वर्जयेत् ॥ ३१ ॥ 🗹 प्रमेहिणां यदा मूत्रमनाविलमपिच्छिलम्। विश्वं कट्ट तिक्षञ्च तवारोग्यं प्रचन्नते ॥ ३२॥

इति प्रमेहचिकित्सा ।

प्रमेहपिटकाचिकि मामाह गराविकाचा इत्यादि-शायवदिति व्रप्रोधिवद् । बनस्पेतरिति बटादे , बास्त मूत्र छा न्यूत्रन् । एलाडिकेनेत्यादि--एलाडिगएस नौश्रुत , " कत्ककाथावनिर्देशे गयाचन्नाव् समावेषव् " इति वन्ननाव् दलादि-गणन्य काय कन्त्रथ । अन्य तु एनादिगयस्य कन्को नलञ्च चतुर्राणिनत्याह । त्रारम्बद्यादिरिप सीश्रुतो उए । कार्यामिति पानार्थं परिपेकार्थञ्च । सीञ्चादिनित्यादि गन्दात् पानमपि बोध्यम् । क्याहिनेति पिप्पल्याहिनखेन मौध्रुनेन । निटानर्ण--व ननाह संविद्यमित्वादि ॥ ३०---३२ ॥

इति प्रमेइ-प्रमहिपडका-चिकिन्सा-विवृति ।

# अथ स्थौल्यचिकित्सा ।

थमिनतान्यवायाध्वकौद्रजागर्णाप्रयः। इन्त्यवश्यमतिस्थाल्यं यवश्यामाकभोजनः॥ श्रसप्रन्च व्यवायञ्च व्यायामं चिन्तनानि च । स्राल्यमिच्छन् परित्यक्तुं क्रमेणातिप्रवर्द्धयेत्॥१॥ प्रातमेधुयुतं वारि सेवितं स्थौल्यनाशनम्। उष्णमन्नस्य मण्डञ्च पिवन् कृशतनुभेवेत् ॥ २ ॥ । सचव्यजीरकव्योषिंधुसौवर्चलानलाः। मस्तुना शक्कवः पीता मेदोझा विह्नदीपनाः॥ ३॥

प्रमेहवत् स्थील्यस्यापि व्यायामसाध्यत्वात् तथा दुष्टमेदोजन्यत्वाच प्रमेहा-नन्तर स्थील्यचिकित्सामाह श्रमेत्यादि—मधुयुत वारीति श्रत्र सचारत्वेन कर्षणत्वात् कोप जलमेव यौगिकिमिति वृद्धा । सच्चेत्यादी—श्रनलिश्चत्रक । शक्तव इह वद्द्यमाण्व्योषादिशक्षुप्रयोगन्यायात् मर्वचूर्णात् षोडशगुणा । श्रनेन एकवार नेजनमाहाररूपत्वादित्याहु ॥ १—३॥

## विडड़ाद्यं चूर्णम्

विडङ्गनागररज्ञारकाललोहरज्ञेामधु । यवामलकचूर्णन्तु प्रयोगः स्थोल्यनाशनः ॥ ४॥

विडक्केत्यादौ—चारो यवचारः, काललोहा वजादि अस्य चूर्ण मारण-पुटनिनणत्र ब्राह्मम्। अत्र सर्वचूर्णानामेव सममाग ब्राह्यन्ति, किन्तु लौहस्य महावीर्थात्वेन प्राधान्यादितरामिलतचूर्णममत्वम् । लोहस्याधिको माग मधुना चात्रावलेह इत्यप्याह ॥ ४॥

## विडङ्गाद्यं लौहम्

विडक्षित्रफलामुस्तैः कणानागरकेण च।
विल्वचन्दनहीवेरपाठोशीरं तथा बला ॥
एषां सर्वसमं लौहं जलेन विटकां कुरु।
घृतयोगेन कर्चव्या माषैका विटका ग्रमा ॥
घ्रमुपानं प्रयोक्षव्यं लौहस्याष्ट्रगुणं पयः।
स्विमेहहरं बल्यं कान्त्यायुर्वलवर्द्धनम् ॥
घ्रिश्चसन्दीपनकरं वाजीकरणमुत्तमम्।
सोमरोगं निहन्त्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥
विडक्षाद्यमिदं लौहं सर्वरोगनिस्द्रनम् ॥ ४ ॥
विडक्षेत्यादि—स्पष्टम् ॥ ४ ॥

#### च्योपाद्यशक्तुप्रयोगः

व्योपं विडङ्गिशृश्ण त्रिफलां कहरोहिणीम् ।
वृहत्यौ हे हरिद्धे हे पाठामतिविणां स्थिराम् ॥
हिंगुकेबुकम्लानि यमानीधान्यवित्रकम् ।
व्योणं विडङ्गिशृश्ण त्रिक्तां कहरोहिणीम् ।
वृहत्यौ हे हरिद्धे हे पाठामतिविणां स्थिराम् ॥
हिंगुकेबुकम्लानि यमानीधान्यवित्रकम् ।
सौवधलमजाजीञ्च हवुपाञ्चेति चूणियेत् ॥
चूर्णतेलघृतचौद्रभागाः स्युमानतः समाः ।
शक्त्नां पोडशगुणो भागः सन्तर्पणे पिवेत् ॥
प्रयोगात् तस्य शाम्यन्ति रोगाः सन्तर्पणोत्थिताः ।
प्रमेहा मूढवाताश्च कुष्ठान्यशिस कामलाः ॥
प्रमेहा मूढवाताश्च कुष्ठान्यशिस कामलाः ॥
प्रमेहा ग्रहवाताश्च कुष्ठान्यशिस कामलाः ॥
हदोगो राजयदमा च कासश्वासौ गलग्रहः ॥
किमयो ग्रहणीदोपाः श्वैञ्चं स्थील्यमतीव च ।
नराणा दिप्यते चाग्निः स्मृतिवृद्धिश्च वर्दते ॥ ६॥

न्योषमित्यादी—तैलप्टतर्चाद्राणा प्रत्येक मिलितचूर्णममत्वम्, राक्तूनाञ्च भोडरागुणो माग ममुदितचूर्णापेचया । मन्नपंणमिति जलालोडितराकुस्तरूपनया । नेन सन्वर्षयसग्वस्याप्यसन्तर्पेणता श्रेया । मात्रा चास्य श्राहारद्रन्यप्रधानत्वात् भूयमा । मृदवातो वाताप्रवृत्ति । श्रेष्ठय श्वित्रत्वम् । श्रीत्यामिति पाठे रवेतावमामना, मा च कफकृता ॥ ६ ॥

वद्रीपत्रकल्केन पेया काञ्जिकसाधिता। स्थौल्यनुत् स्यात् साग्निमन्यरसं वापि शिलाजतु ॥ ७॥ दरीलादि—वदरीपत्रपल पिष्ट्वा काञ्जिकद्रवेख पेया माध्या। माग्निमन्थ-लादि—दिनीयो योग । रस काथः। शिलाजतु प्रवेष्यम् ॥ ७॥

#### श्रमृताद्यगुगुलुः

#### *श्रि*मृतात्रुटिवेल्लवत्सकं

कलिङ्गपथ्यामलकानि गुग्गुलुः।

क्रमचूद्धिमदं मघुप्लुतं

पिडका स्थील्यभगन्दरं जयेत्॥ 🖛 ॥ 🍍

' अमृतेलादौ-त्रुटि स्दमैलाः, वेह्नो विडङ्गः, किलङ्ग इन्द्रयवः, केचिच्छन्दो-भङ्गभिया किलपाठ कुर्वन्ति, तन्मेत किलिविभीतकः किन्तु महेश्वरिषत्रक यामिष इन्द्रयव एव व्याख्यात । तसादनन्तत्वाच्छन्दोमार्गाशामत्र छन्दोमह्नदोषे। नाशङ्गनीय । क्रममृद्धमिति अमृताया एको भाग , ही त्रुटेरिलादि । मधुना श्रालोड्य पेयम् ॥=॥

#### नवकगुग्गुलु:

व्योपाग्नित्रिफलामुस्तविडङ्गैर्गुलुं समम्। खादन् सर्वान् जयद्वश्याधीन् मदःश्लेष्मामवातजान्॥॥ व्योपेलादी—शक्षित्रकः॥ ॥॥

## लौहरसायनम्

गुग्गुलुस्तालमूली च त्रिफला खिद्रं वृषम् ।
त्रिवृतालम्बुपा स्नुक् च निर्गुएडी चित्रकं शटी ।
एषां दशपलान् भागांस्तोये पञ्चाढके पर्वत् ।
पादशेषं ततः कृत्वा कषायमवतारयेत् ॥
पलं द्वादशकं देयं तीक्णलौहं सुचूर्णितम् ।
पुराण्सिपंषः प्रस्थं शकराष्ट्रपलोन्मितम् ॥
पचेत् ताम्रमये पात्रे सुशीते चावतारिते ।
प्रस्थार्द्धं मान्तिकं देयं शिलाजतुपलद्वयम् ।
पलात्वचोः पलार्द्धञ्च विडक्कानि पलत्रयम् ।
मरिचञ्चाञ्जनं कृष्णा द्विपलं त्रिफलान्वितम् ॥
पलद्वयन्तु काशीशं स्रुक्ण्यूर्णीकृतं वुधैः ।
चूर्णं दत्वा सुमिथतं सिग्धे भाएडे निधापयेत् ॥

ततः संग्रुद्धेद्दस्तु भच्येद्वमात्रकम्।
श्रमुपानं पिवेत् चीरं जाङ्गलानां रसं तथा ॥
वातन्रेरुपाद्दं श्रेष्ठं कुष्ठमेद्दोदराप्टम्।
कामलां पाग्रुरोगञ्च श्वयथु सभगन्दरम् ॥
मूर्व्वामोद्द्विपोन्मादगराणि विविधानि च।
स्थूलानां कर्षणं श्रेष्ठं मेदुरे परमौपधम् ॥
कर्षयेद्वातिमात्रेण कुचि पातालसन्निभम्।
वल्य रसायन मेध्य वाजीकरण्मुत्तमम् ॥
श्रीकरं पुत्रजननं वलीपलितनाशनम्।
नाश्रीयात् कदलीं कन्दं काञ्जिकं करमर्दकम्।
करीरं कारवेह्यञ्च पद ककाराणि वर्जयेत्॥ १०॥

गुग्गुलुरित्सादि—अत्र पिणिडतस्य न गुग्गुलो शोधितस्य च काथकरणममय पव काथमध्ये प्रचेष । अलम्नुपा मुण्डिरी । पुराण सिपिर्शवर्षभ्यितम्, यदुक्तम्, "उग्रमन्थ पुराण स्याद् दशवर्षभ्यित एतम्। लाचारसनिम शीत प्रपुराणमन परम्" इति । पलालचीर्मिलित्वा पलाईम्, मरिचादीना त्रिफलान्तानां प्रत्यक पलद्भयम्, अक्षन रसाक्षनम्; शिलानतुपलद्भयच्च शोधित मानितन्न ग्राह्मम्। एपा चृणाना पाणिसहत्वमात्रोष्णवर्शाया प्रचेष , मधुनस्तु दिनान्तरे । मधुन प्रसाद्धं पोटश-पलानि । खण्डरााथलीहवदस्य पाक । लीहान्तरवदस्य मर्दनाटिकिया नोभ्या ॥१०॥

## त्रिफलाद्यं तैलम्

त्रिफलातिविपासूर्वातिवृधित्रकवासकैः।
निम्वारग्वधपड्त्रत्थासप्तपर्णेनिशाद्वयेः॥
गुद्ध्वीन्द्रसुराकृष्णाकुष्ठसर्पपनागरैः।
तेलमेभिः समं पकं सुरसादिरसाप्तुतम्॥
पानाभ्यक्षनगगद्धपनस्यवस्तिषु योजितम्।
स्थूलतालस्यकगर्द्धपादीन् जयेत् कफकृतान् गद्दान्॥११॥
श्रिकताषतेले इन्द्रसुरा गोरचकंकिय निग्रंपद्यी वा । सुरमादिरसाप्तुतिमिति
सुस्रुतोक्षसुरमादिगगस काथश्रतुर्गुण ॥ ११॥

शिरीपलामज्जकहेमलोधे-

स्त्वग्दोषसंस्वेदहरः प्रघर्षः।

पत्राम्यु लौहाभयचन्दनानि

शरीरदौर्गन्ध्यहर प्रदेह-॥ १२॥ 🗸

मेदोदोषजन्ययोः स्वेददौर्गन्ध्ययोश्चिकित्सामाह, शिरीषत्यादि —लामज्जक-सुन्नीरम्, हेम नागकेशरचूर्णम्, पत्र तेजपत्र तमालपत्रमित्यन्ये, श्रम्बु वालकम्, लोहमगुरु, चन्दन श्वेतचन्द्रनम् ॥ १२ ॥

> वासादलरसो लेपाच्छह्वचूर्णेन संयुतः। विल्वपत्ररसो वापि गात्रदौर्गन्ध्यनाशनः॥ १३॥

वासेत्य।दि---शङ्कचूर्येन सयुत्त इति दग्धशङ्कचूर्येन मिश्रित । एव विल्वपत्ररमोऽपि ॥ १३ ॥

हरीतकीलोधमरिष्टपत्रं

चूतत्वचो दाडिमवल्कलञ्च।

एषाऽङ्गरागः कथितोऽङ्गनानां

जङ्घाकपायश्च नराधिपाणाम् ॥ १४ ॥

हरीतकीत्यादौ - अरिष्टपत्र निम्नपत्र, दाडिमनल्कल वृत्तस्य फलस्य वा, अङ्गाकरागा वर्णप्रसाद । अङ्गाकपाय इति गजनाजिनाहनेन विवर्णयोर्जङ्गयोर्वर्ण-प्रमादनार्थ कषायो विलेपनम् । यदुक्त, मेदनीकरकोषे 'कष यो रसभेदे च निर्यासे च विलेपने ' इति ॥ १४॥

> गोमूत्रिषष्टं विनिहान्ति कुष्ठं वर्णोज्ज्वलं गोपयसा च युक्तम् । कत्तादिदौर्गन्ध्यहरं पयोामः शस्तं वशीकृद्रजनीद्वयेन ॥ १४॥

गोमूत्रपिष्टमित्यादि योगान्तरम् १ वर्णोञ्ज्वल हरिताल गन्धक इत्यन्य । हरिताल गोमूत्रपिष्ट सद् कुछ निहन्ति । गोपयसा युक्तमिति पिष्ट तदेव दौर्गन्ध्य- हर, तथा रजनीह्रयेन संहित तदेव हरिताल प्यमा चीरेण पिष्ट्वा निलकदोनन वशीकरण भवतीत्यथं ॥ १५॥

चिञ्चापत्रस्वरसम्रक्तितं कत्तादियोजितं जयित । पुटदग्धहरिद्रोद्वर्त्तनमचिराहेहदौर्गन्ध्यम् ॥ १६ ॥

चिद्रीत्यादि—चिद्रापत्रम्बरमेनादौ त्रचय कच्चयोस्तदनन्तर पुटदग्धहरिद्रां पिप्ट्वा उदर्चन कार्य्यामित्यर्थ ॥ १६ ॥

दलजललघुमलयाभयविलेपनं हरित देहदौर्गन्ध्यम् । विमलारनालसहितं पीतिमिवालम्बुपाचूर्णम् ॥ हस्तपादस्रुतौ योज्यो गुग्गुलु पाञ्चतिक्षक । श्रथवा पञ्चतिक्षाख्यं घृतं खादेदतिकदः ॥ १७ ॥ इति स्थाल्याचिकित्सा ।

दलेत्यादि---दल तेजपत्र, जल बालक, लघु श्राुरु, मलयज श्रेतचन्दर्न, श्रभयमुगाः, श्रलम्बुषा मुख्डिरी ॥ १७ ॥ इति स्थैल्याचाकत्साविष्ठति ॥

# अथोदर-चिकित्सा ।

्रवंदरे दोपसम्पूर्णे कुत्तौ मन्दो यतोऽनल । तस्माङ्गोज्यानि योज्यानि दीपनानि लघूनि च ॥ १ ॥ रक्तशालीन् यवान् मुद्रान् जाद्गलांश्च मृगान् द्विजान् । पयोम्त्रासवारिष्टमधुशीधु तथा पिवेत् ॥ २ ॥ बररोत्नेषमाधर्माद स्थील्याननारमुदरविकित्मामाह वहर इत्यादि—उदर श्ते वदररोगे ॥ १—२ ॥

> वातोदरं वलवत पूर्व स्नेहैरुपाचरेत् । स्निग्धाय स्वेदिताङ्गाय दद्यात् स्नेहिवरेचनम् ॥ इते दोपे परिस्लानं वेष्टयेद्वाससोदरम् । तथास्यानवकाशत्वाद्वायुर्नाध्मापयेत् पुनः॥ ३॥ ४

वातीदरिमत्यादि—ननु ' विवर्जयेत् सेहपानमजीणां चोदरी ज्वरी ' इति वचनात् सेहपान निषिद्ध, तथा ' नोदरी नातिसारी च ' इत्यादिना च स्वेदोऽपि निषिद्धः, तत् कथमत्र सेहस्वेदोपदेश उच्यते श स्वतन्त्रयोनिषेथो बोध्यः न तु शोधनाक्षभूतयोः, अन्यथा दोषहरणस्य दुष्करत्वात् । परिम्लानिभिति चीणम् । तथिति वस्त्वेष्टनेन ।। ३॥

> दोषातिमात्रोपचयात् स्रोतोमार्गनिरोधनात् । सम्भवत्युद्रं तस्मान्नित्यमेनं विरेचयेत् ॥ विरिक्ते च यथादोपहरैः पेया श्रुता हिता ॥ ४॥

उदरे पुन पुनः शोधनायोपपत्तिमाह दोषातिमान्नेत्यादि—स्रोतोमार्गः स्रोतोमुख, मार्गशब्दोऽन मुखरूपमार्गनाची । यथादोपहरैरिति यस्मिन्नुदरे यो दोष उद्भूतस्तन्न तहोषपत्यनांनैर्दशम्ल्यादिभिः ॥ ४ ॥

वातोदरी पिवेत् तकं पिण्पलीलवणान्वितम् । शर्करामरिचोपेतं स्वादु पिचोदरी पिवेत् ॥ ४॥ वातोदरीलादि—सप्टम् ॥ ४॥

यमानीसैन्धवाजाजिव्योषयुक्तं कफोदरी। - "
पिवेन्मधुयुतं तक्तं व्यक्ताम्लं नातिपेलवम्॥६॥

यमानीत्यादि नातिपेलविमत्यन्तेनैको योगः, नातिपेलव नातितनु । अन्ये तु कफोदरीत्यन्त एको योग एवेत्याहु. । तन्न, 'यमानीसैन्थवाजाजीमधुम्योष. कफोदरे' इति वान्मटविरोषात् ॥ ६ ॥

> मधुतैलववाशुएठीशताह्नाकुष्ठसैन्धवैः । युक्तं सीहोदरी जातं सन्योषन्तु दकोदरी ॥ वद्धोदरी तु हवुषादीण्यकाजाजिसैन्धवैः । पिवेच्छिद्रोदरी तक्तं पिष्पलीचौद्रसंयुतम् ॥ ज्यूषण्जारलवणैर्युक्तन्तु निचयोदरी ॥ ७॥

मधुतैलेत्यादी-जातिमिति च्छ्रेदः, ग्रुजातदिधभविमत्यर्थः । सन्योष्न्तु दक्षोदरीति-दक्षोदरी तु सन्योष तक पिवेदित्यर्थः । दीप्यक यमानी । निचयोदरी सिवपतिदरी ॥ ७॥

गौरवारोचकार्त्तानां समन्दाग्न्यतिसारिणाम् । तकं वातकफार्त्तानाममृतत्वाय कलपते ॥ = ॥ गौरवेलादौ-अमस्कृतस्य केवलतकस्याय ग्रण इति व्ययम् ॥ = ॥ वातोदरे पयोऽभ्यासो निस्तहो दाशमूलिकः । सोदावर्षे वात्रग्राम्लश्यतैरएडानुवासनः ॥ ६॥

वातोदर इत्यादि—पयोऽभ्यास इति क्रमेण, वलार्थ, वलजननानन्तर पवो निवर्त्तनीयम्। निरुद्दो दाशमूलिक इति दशमूलकाथन निरुद्ध कार्य्य इत्यर्थ । किवा 'द्विपञ्चमूलस्य रमोऽम्लयुक्त सच्छागमासस्य सपूर्वकल्क । त्रिकेष्द्युक्त प्रवरो निरुद्ध सर्वानिलव्याधिहर प्रदिष्ट दिति । अयञ्च तीच्यविरेचनद्रव्ययुक्त कार्य्यः, चरकप्रामाययात् । सोदावर्त्ते वातोदर इत्यन्वय । वातन्नाम्लश्वतरयहानु-वासन इति वातन्निर्देव्यस्तथा अम्लैश्च काजिकादिमि श्वतमेर्यद्धमित्यरयहत्तेलमनु-वामन यस्य वस्ते म तथा इति । अनुवासनस्य क्षेष्ट्ररूपत्वात् पर्यद्धपदेनैरयहनैल-मुच्यते ॥ ६ ॥

## सामुद्राद्यं चूर्णम्

सामुद्रसौवर्चलसैन्धवानि

हारं यमानीमजमोद्कञ्च।
सिपण्पलीचित्रकर्श्यक्तंरं
हिंगुविंडञ्चेति समानि कुर्यात्॥
पतानि चूर्णानि धृतप्तुतानि

भुक्षीत पूर्वं कवलं प्रशस्तम्।
वातोदरं गुल्ममजीर्णभुक्तं

वायुपकोपं श्रह्मणीञ्च दुष्टाम्।
श्रशीसि दुष्टानि च पाग्हरोगं

भगन्दरञ्चेति निहन्ति सद्य ॥ १०॥

सामुद्रेत्वादि-यवाना चारो यवचार । श्रस्य हिड्ग्वष्टकवदुपयोग । चूर्या-नीत्यनन्तर सिम्मश्र्येति रोप ॥ १०॥ पित्तोदरेषु वितनं पूर्वमेव विरेचयेत्। श्रनुवास्यावलं त्तीरवस्तिशुद्धं विरेचयेत्॥ पयसा सत्रिवृत्कल्केनोरुवृकश्यतेन वा॥ सातलात्रायमाणाभ्यां श्यतेनारम्बधेन वा॥ ११॥

पित्तोदरे त्वित्यादि—चीरप्रधानी बस्ति चीरवस्ति । अत्र बलिन पुरुष पूर्वमिति अनुवासनमञ्ज्वैन विरेचयेत् । अनुवासनव्यतिरिक्तस्तु खेह कर्तव्य एव । अत्रएवोक्त वाग्मटे—'बलिन स्वादुसिद्धेन पैत्ते सक्केद्य सिंपा । श्यामान्त्रिभण्डीत्रिफलाविपकेन विरेचयेत् 'इति । अवल पुनरादी अनुवास्य तत चीरविस्तशुद्ध विरेचयेत् । विरेकोऽत्राग्निवलजननानन्तरमेव कार्यः । अक्त हि वाग्मटे—'दुवेल त्वनुवास्यादौ शोधयेत् चीरवस्तिभि । जाते चाग्निवले खिग्धे भूयो भूयो विरेचयेत् 'इति । केन विरेचयेदित्याह पयसेत्यादि । अत्र तु वरुवृक्तस्य फल ग्राह्य विरेचयेत् , एवमारग्वधस्यापि फलम् । सातला चर्मकथा । पयसेति सर्वत्र सम्बध्यते । सित्रवृत्कल्केन पयसेत्योको योग , उरुवृक्तश्रतेनिते दितीय , सातला-दिरारग्वधान्तस्त्वपर , जत्कर्णसवादात् । अन्ये तु सित्रवृत्कल्केनोरुवृक्तश्रतेनेत्येको योग , तथा सित्रवृत्कल्केन सातलारग्वधान्तेन नु द्वितियो योग इत्याहुः ॥ ११ ॥

# कफादुदरिणं शुद्धं कटुक्ताराश्रमोजितम्। मूत्रारिप्टायस्कृतिभियोजयेच कफापहें ॥ १२॥ 🛩

कफादित्यादि — गुद्धमिति वमनव्यतिरिक्षशोधनेन विशुद्धमित्यर्थ , वमनस्यो-दरे निषिद्धत्वाद । कडुचारात्रभोजितमिति कडुचारयुक्कैरन्ने. पेयादिभिः कृतसर्धन-मित्यर्थ । श्रयस्कृतिनेवायमादिः, किंवा श्रयस्कृतयो रमायनोक्कलौष्ट्रपयोगाक्ष-रक्तोक्ता श्रेयाः ॥ १२॥

सिपातोदरे सर्वा यथोक्का कारयेत् क्रियाः ॥ १३ ॥ 🛩 सिपातोदर इत्यादौ सर्वा यथोक्का इति प्रत्येक वातोदरादिविहिता. सर्वा एव सिवपातोदरे कार्यो ॥ १३ ॥

प्लीहोदरे प्लीइहरं कर्मोदरहरं तथा॥ १४॥ 🦟

सीहोदर इत्यादौ--सीहहर कर्म वच्चमाख तथोदरहर कर्मेति सीहोदर-हरम् । सीहोदरिचिकित्सा च वाच्या ॥ १४ ॥

स्विन्नाय वद्धोदरिणे मूत्रं तीव्णौषधान्वितम्।

सतैललवर्णं दद्यान्निरूहं सानुवासनम् ॥ परिस्नंसीणि चान्नानि तीन्णञ्जेव विरेचनम् ॥ १४ ॥

स्वित्रायेत्यादि—निरुद्दस्य उत्सर्गत एव सर्तललवण्ये सिद्धे मतैललवण-मिति पद तैललवण्योरत्राधिकदाने।पदरानार्थम् । वद्धिच्छिटदकोदराणाञ्च यद्यप्या स्थापन निषिद्ध तथापि तदेकमाध्यायामवस्थायां निरुद्दानामिष्ठ शेयम् । परिस्नमी-णीत्यनुलोमनानि ॥ १५॥

> छिट्रोदरमृते स्वेदात् ऋष्मोटरवदाचरेत् ॥ १६ ॥ अ जातं जातं जलं स्नाव्यं शास्त्रोक्तं शस्त्रकर्म च । जलोदरे विशेषेण द्रवसेवां विवर्जयेत् ॥ १७ ॥

छिद्रोदरिमत्यादि—नाग्भटस्य । 'यद्यीप प्राया मनत्यभानाय छिद्राच्य-श्रोदर नृष्णम् ' इत्यनेन छिद्रोदरममाध्यमुक्त तथापि प्राय राग्देन तथामाध्यता-व्यभिचारस्य दिशतत्वाद् चिकित्सतमिद यापनार्थम् । ' तथा इन्नि सर्नोदरायये-तच्चूर्णं जातोटकान्यपि ' इत्यनेन मर्नोदरिचिकित्सैव बेध्या । श्रन्ये तु सर्नोदर-इन्त्यत्वकथन न पारमाधिक किन्तु न्तुतिरित्याहु । ऋते स्वेदादित्यनेन स्वेदस्य छिद्रोदरे केदयुक्तेऽत्यर्थकेदकरतया निषध । शास्त्रोक्तमिति—शल्यशास्त्रोकम् ॥ १६—१७॥

देवदारुपलाशार्कहस्तिपिष्पलिशिशुकैः ।
साध्वगन्धेः सगोसूत्रैः प्रदिद्यादुवरं श्रातैः ॥
सूत्राएयप्रावुद्दिणां सके पाने च योजयेत् ।
स्तुद्दीपयोभावितानां पिष्पलीनां पयोऽशन ॥
सहस्रञ्च प्रयुजीत शक्तितो जठरामयी ॥ १८॥

देनदानित्यादी—पलाश किंगुकस्तस्य फल आह्य उदरह्र-तृत्वात् । स्नुही-पय रत्यादि—माननमंत्रैकिनिशतिवारान् यदाह ज्ञारपाणि । व्यवहारस्तु नप्त-वारमावनया । पतान् पिप्पलीगुहिकाम्त्रीक्षतुर पद्म वा कोष्ठानुरूप प्रत्यहमेका-न्तर बन्तर वा निरेचनार्थं चीरेण पिनेत् । महस्रन्तु प्रयुक्षीतेति उपयुक्तपिप्पली-गणनया यावता कालेन सहस्र पूर्यंत इत्यंय । पत्रचीत्सर्गनचनम्, तेन महस्रा-दर्नागिप निधिनोंस्य ॥ १८॥

#### शिलाजत्नां मूत्राणां गुग्गुलोस्त्रेफलस्य च । स्तुहीत्तीरप्रयोगश्च शमयत्युदरामयम् ॥ १६ ॥

शिलाजतूनामित्यादौ—समासान्तर्गतमि प्रयोग इति पद चकाराच्छिला-जत्वादिमि सह प्रत्येक सम्बन्धनीयम् । प्रयोगोऽभ्यामः । त्रैफलस्य गुग्गुलेरिति त्रिफलागुग्गुलोरित्यर्थः ॥ १६ ॥

> स्तुद्दीपय परिभाविततग्रह्जन्त्रू ग्रीविंनिर्मित पूप । उदरमुदारं हिंस्याद् योगोऽयं सप्तरात्रेण ॥ २० ॥ पिष्पलिवर्द्धमानं वा कल्पद्दष्टं प्रयोजयेत् । जठराणां विनाशाय नास्ति तेन समं भुवि ॥ २१ ॥

स्तुद्दीपय इत्यादौ—पूपः पिष्टकम्, रत्तुद्दीवृज्ञचीरेख त्रि सप्तकृत्व पिष्पली-भावियत्वा एका दे तिस्रो वा प्रयच्छेत् विरेकार्थामिति । उदारमिति प्रवृद्धम् । कल्पदृष्टमिति चरकोक्तरसायनविधिदृष्टम्, तम्र विधि सीद्दयक्षचिकित्मते दर्शयि-ष्याम ॥ २०—२१॥

## पटोलाद्यं चूर्णम्

पटोलमूलं रजनी विडक्नं त्रिफलात्वचम्।
किम्पल्लकं नीलिनी्ञ्च त्रिचृताञ्चेति चूर्णयेत्॥
पडाद्यान् कार्पिकानन्त्यांस्त्रींश्च द्वित्रिचतुर्गुणान्।
कृत्वा चूर्णे ततो मुप्टिं गवां मूत्रेण वै पिवेत्॥
विरिक्को जाङ्गलरसभ्जीत मृदुमोदनम्।
मग्डं पेयाञ्च पीत्वा च सन्योपं पडहं पय॥
श्वतं पिवेत् तन्त्रूर्णं पिवेदेवं पुन पुन।
हन्ति सर्वोदराण्येतच्चूर्णं जातोदकान्यपि।
कामलां पाग्रहरोगञ्च श्वयथुञ्चापकर्षति॥ २२॥

• पटोलमूलमित्यादी—त्वच इति निरिश्चित्रिफलाग्रह्णार्थम् । षडाधान् कार्षि-कानिति पटोलमूलादीना त्रिफलान्ताना षण्णा प्रत्येक कर्षमागानित्यर्थ । सिंध दित्रिचतुर्गुणानिति कम्पिल्लकादयस्त्रय कमात् कार्षिकमागापेच्या दित्रिचतुर्गुणा-नित्यर्थ । नीलिनी नीलवुह्वा, तस्यास्त्रात्र फल वृद्धवाग्भटसवादात् । मुधिरिति पलम् । विरिक्तो जाङ्गलरसैरित्सादि—विरेचनिदने जीर्थे भेषने मृद्धोदनमयद्वपेया-नामन्यतममिश्रवलापेचया उपयोक्तन्यम् । तत ऊर्द्भे पद्यह यथोक्तपयोष्टित्तना भिषतन्यम् । तन पुन सप्तमेऽइनि पटोलादिचूर्थं पेयम्, प्व पुन. पुन: कार्थम् ॥ २२ ॥

## नारायणचूर्णम्

यमानी हबुपा धान्यं विफला सोपकुञ्चिका। कारवी पिष्पलीमूलमजगन्धा शटी वचा॥ शनाह्वा जीरकं व्योपं स्वर्णकीरी सचित्रका। ह्री चारी पौष्कर मूल कुष्ठं लवणपञ्चकम् ॥ विडङ्गञ्च समांशानि दन्त्या भागवयं तथा। त्रिवृद्धिशाले द्विगुणे सातला स्थाचतुर्गुणा ॥ एष नारायणो नाम चूर्णो रोगगणापहः। नैन प्राप्याभिवर्द्धन्ते रोगा विष्णुमिवासुराः॥ तके खोदिसि । पेयो गुलिमिर्वदराम्बुना । श्रानद्भवाते सुरया वातरोगे प्रसन्नया ॥ द्धिमग्रडेन विद्सङ्गे दाडिमाम्बुभिरशैसि। परिकर्ते च बृत्ताम्लैरुष्णाम्बुभिरजीर्शके॥ भगन्दरे पाग्डुरोगे कासे श्वासे गलप्रहे। हृद्रोगे प्रह्णीद्रोपे कुष्ठे मन्दानले ज्वरे ॥ दण्ट्राचिषे मूलविषे सगरे कृत्रिमे विषे। यथाई स्निग्धकोष्ठेन पेयमेतद्विरेचनम् ॥ २३ ॥

यमानीत्यादौ — उपकुष्टिका कृष्णजीरक , कारवी खल्पप्रमाण जीरकमीपत् कृष्ण, जीरकशब्देन च प्रसिद्ध महक्जीरकम् । श्रजगन्था श्रजमीदा, म्वर्णचीरी कङ्कुष्ठः, दन्त्या मागश्रयमाधभागापेचया प्रव त्रिष्टद्विशालयोरप्याधमागापेचया प्रत्येक द्वेगुप्यम् । सातला चर्मकपा । नारायणमञ्जानिमित्तमाह नैनिमत्यादि । प्रतेन नारायणमर्थमत्वान्नारायणसञ्चेत्युक्त भवति । गराऽविपद्रव्यसयोगज विप कालान्तरफलदायि, कृत्रिमन्तु स्थावरजङ्गमविपनयोगादुत्कृष्टशक्तिक विप तत्कालफल- त्रायि । यथार्हमिति वचनादन्यरिप दोपच्याधिविपरातैर्द्रच्ये पानमिति दरायि । यथारिखम्धकोष्ठेनेति पाठे यो यस्योचित रेतहस्तेन स्विग्धकोष्ठेन पेयामदम्॥ २३॥

दन्ती वचा गवाची च शिक्ष्वनी तिल्वकं तिवृत्।
गोमूत्रेण पियेदेतत् कल्कं जठरनाशनम्॥ २४॥
सचीरं माहिषं मूत्रं निराहारः पिवेन्नरः।
शाम्यत्यनेन जठरं सप्ताहादिति निश्चयः॥ २४॥
गवाचीशिक्ष्वनीदन्तीनीलिनीकल्कसंयुतम्।
सर्वोदरविनाशाय गोमूत्रं पातुमाचरेत्॥ २६॥

दन्तीत्यादी—गवाची गोरचकर्कटी । शङ्खिनी श्रेतवुद्धा । सच्चिरमित्यादी— माहिषमूत्रपलेमक दय वा पीत्वा विरेके मित गोचीरमेन पीत्वा स्थातव्यमित्युपदि-शिन्त । वाग्मेटेऽप्युक्त ''गव्य मूत्र माहिषमेन वा पिनेद् गोचीरमुक् स्थाद्धा करमी-चारवर्तन " इति । गोचीरमुगिति गोचीरमात्रमोजी । श्रत एव माहिष मृत्र पीत्वा तत्वीराहार एव नर " इति निश्चलन यद्धक्त तदपास्तम्, उक्तवाग्मटवन्वन-विरोधात् ॥ २४-२६॥

श्रकेपत्रं सलवणमन्तर्धूमं दहेत् ततः।
मस्तुना तत् पिवेत् चीरं गुल्ममीहोदरायहम्॥२७॥
पीतः सीहोदरं हन्यात् पिष्पलीमिरिचान्वित ।
श्रम्लेवतससंयुक्त शिश्रुकाथः ससैन्थव ॥२८॥
गृहीत्वा यस्य सज्ञा पाटियत्वेन्द्रवारुणीमूलम्।
प्रिच्यते सुदूरे शाम्येत् सीहोदरं तस्य॥२६॥

श्रर्भपत्र सलवस्मिति मैन्धवेन तुल्य परिस्तार्कपत्र मृह्वन्ति । पीन इत्यार्टी—पिप्पत्यादिद्रव्यचतुष्ट्य प्रक्षेप्यम् ॥ २७-२६ ॥

> रोहीतकाभयाचोद-भावितं मूत्रमम्बु वा । पीतं सर्थीद्रप्रीहमेहार्श क्रिमिगुल्मनुत् ॥ ३०॥

रोधीतकेत्यादी—रोधीतकहरीतक्याश्चूर्णकक्षपेंख पलढयपरिमित गोमूझमम्ब वा मान्यमिति केचित्, श्रन्य तु रोधीतकहरीतक्यो चोदै. खरङखरङस्पे शिलाया किञ्चिदवच्चरखैः सप्ताह मावित मूचमम्ब वेत्याहु. वाग्भटप्रामाख्यात्, यथा, " राष्ट्रीतकलता. क्नृप्ता रायडश सामगानले । मूत्रे वा सुनुपाचच मप्तरात्र-स्थित पिवेत् " इति । सुनुयादिति भावयेत् ॥ ३० ॥

> देवद्रमं शिष्ठ मयूरकञ्च गोस्त्रपिष्टामथवाश्वगन्धाम्। पीत्वाशु हन्यादुदरं प्रवृद्धं

क्रिमीन् संशोधानुदरञ्च दूष्यम् ॥ ३१ ॥

एवोपद्रवभूतप्रभूतरोश्यसम्बन्धे सति चिकित्माविशेषमाह, टेवहुमित्यादि -- मयूरकमपामार्गमूलम् । मूत्रमत्र योगद्वयेऽपि, मूत्रेण पेषण पानद्वित्याहु वृत्दिटिप्पिकायान्तु देवद्रुमादिरश्वगन्धान्त एको योग , श्रथरान्डो-ऽपि पूर्वयोगापेच्चया इत्युक्तम्, व्यवहारस्तु योगद्वयेनेति ॥ ३१ ॥

दशमूलदारुनागरिञ्जन्नरहापुरर्नवाभयाकाथ । जयित जलोदरशोथऋीपद्गलगएडवातरागांश्च ॥३२॥ दशमूलेत्यादी-काथ इत्यन युक्त इति पाठे काथ इति रोषः ॥ ३२ ॥

हरीतकीनागरदेवदारु-

पुनर्नवाच्छित्रहहाकपायः। सगुग्गुलुर्मूत्रयुतस्तु पेय

शोथोदराणां प्रवर प्रयोगः॥ ३३॥

हरीतकीत्यादी-प्रितिदेनोपयोगे गुग्गुलोमीपकचतुष्टय गोमृत्रस्यार्द्धपल कर्पा वा प्रचेप्यः, विरेचेन तु कर्तन्ये प्रचुरत्वमनयो , श्रत्यन्तवद्धकेष्ठि तु मामृत्रेथैव काथ कृत्वा गुग्गुलुमात्र प्रविष्य वृद्धा व्यवहरन्ति ॥ ३३ ॥

परएडतैलं दशमूलिमश्रं

गोमूत्रयुक्तस्त्रिफलारसो वा। निहन्ति चातोटरशोथश्रलं

काथः समूत्रो दशमूलजश्च ॥ ३४ ॥

परयष्टतेलिमत्यादि--एरयडतैलप्रचेपादरामूलकाथ इत्येकी योग , गोमृत-प्रचेपात् त्रिफलाकाथ इति दितीयः, अत्यन्तवद्धकोष्ठे तु गोमूत्रेतीय त्रिफलाकाथ कार्य्य इति वदन्ति । एव गोमूत्रप्रचेपाद्गोमूत्रेख वा दशमूलकाथोऽपीत्याहु: ॥३४॥

पुनर्नवानिम्वपटोलशुएठी-

तिक्रामृतादावभयाकपाय ।

सर्वाद्गशोयोद्रकासग्रल-

श्वासान्वितं पाएडगदं निहन्ति ॥ ३४ ॥

पुनर्नवेत्यादि-स्पष्टम् ॥ ३५ ॥

पुनर्नवां दार्वभयां गुडूचीं

पिवेत् समूत्रां महिपात्तयुक्ताम्।

त्वग्दोपशोथोद्रपाग्हरोग-

स्थौल्यप्रसेकोद्ध्वंकफामयेषु ॥ ३६॥

पुनर्नवामित्यादि — पुनर्नवादीना चूर्ण गुग्गुलुसयुक्त गोमूत्रेण पेयम्, तथा च तन्त्रान्तरम् — गोमूत्रेणाथवा दारुवर्णाभूचेतकीरजः । पिवेद् गुग्गुलुसयुक्त शोथो- दरविनाशनम् " ६ति । अत्र चेतकी हरीतकी । गुग्गुलुश्च मिलितचूर्णमम इत्याहु । अन्य तु पुनर्नवादीना काथ गोमूत्र गुग्गुलुश्च प्रक्षिप्य व्यवहरन्ति ॥ ६६ ॥

गोसूत्रयुक्तं महिपीपयो वा चीरं गवां वा त्रिफलाविमिश्रम्।

त्तीरान्नभुक् केवलमेव गव्यं मूत्रं पिवेद्वा श्वयथूद्रेपु ॥ ३७॥

गोमूत्रत्यादा—चीर गवा वा त्रिफलाविमित्रामिति त्रिफलाया काथः कल्को वा। चोरान्नमुगिति चीरमात्रेणात्रमुक्॥ ३७॥

पुनर्नवा दार्वमृता पाठा विल्वं श्वदंष्ट्रिका।
वृहत्यौ द्वे रजन्यौ द्वे पिष्पल्यश्चित्रकं वृषम्॥
समभागानि चूर्णानि गवां मूत्रेण वा पिवेत्।
वहुप्रकारं श्वयशुं सर्वगात्रविसारिणम्॥
हन्ति शोथोदराण्यष्टौ व्रणांश्चेवोद्धतानपि॥ ३८॥

पुनर्नवेत्यादी--विल्वस्य मूलम् । शोथोदराख्यष्टाविति सशोधान्यष्टा-चुन्रराणीत्यर्थः ॥ ३ ॥ पुराणं माणकं पिण्ट्वा द्विगुणीकृततएडलम्।
साधितं चीरतोयाभ्यामभ्यसेत् पायसन्तु तत्॥
हन्ति वातोद्दरं शोथं त्रहणीं पाएडतामपि।
सिद्धो भिषम्मिराख्यातः प्रयोगोऽयं निरत्यय ॥ ३६॥

पुराणिमत्यादि —पुराणमाणवस्य मूल पलमात्र दरदिनतितग्डुलस्य पलद्वय चीरतीयाच्या समाम्या साधीयत्वा पायम कार्य्यः । श्रत्युपयोगेऽपरम-श्रव्यक्तन नाश्रीयादित्याहु । योगोऽय शोथमात्रेऽपि प्रमवति ॥३६॥

#### दशमूलपद्पलकं घृतम्

दशमूलतुलार्द्वरसे सत्तारैः पश्चकोलकैः पलिकैः । सिद्धं घृतार्द्वपात्रं द्विर्मस्तुकमुद्रगुल्मझम् ॥ ४० ॥

दशमूलपट्पलके दशमूलस्य तुलाई पञ्चाशत्पलानि, तस्य काथ इत्यर्थः। धनन्याईपात्रमर्द्रावक प्रस्थवयित्यथः । द्विमंन्तुकमिति धतमेपच्य द्विगुण मित्त्वत्यर्थं । चरकोक्तदशमूलपट्पलकेऽपि द्वि शष्ट प्रस्थेन तथाईपालकेरित्यनेन च योज्य । तेन पिप्पल्यादीना द्विगुणाईपर्ल पट्पलानि मवन्ति तथा प्रस्थेन च दिःशब्दसम्बन्धात् प्रस्थदय मवतीति एकवाक्यता वोध्या । ननु क्रियाभ्यावृत्तानेन सुच्प्रस्थये हश्यते न तु अभ्यावृत्तिमान्नेणैन, दिर्ष्टमवत्सरवारसुन्दरीत्यादी क्रियाभ्यावृत्ति विनापि सुच्प्रस्थयस्य दर्शनात्॥ ४०॥

#### चित्रकघृतम्

चतुर्गुणे जले मूत्रे डिगुणे चित्रकात् पले। कल्के सिद्धं घृतप्रस्थं सत्तारं जठरी पिवेत्॥ ४१॥

चतुर्गुण इत्यादि — अत्र मचारमित्यनेन यवचारस्यापि चित्रकवत् पलमेक देयम्, अत्रार्थे तन्त्रान्तर् यथा 'अग्निचारपलाम्या द्विर्मूत्र चतुर्जलञ्च एतप्रस्थम्' इति ॥ ४१॥

#### विन्दुघृतम्

श्रकेचीरपले द्वे च स्तुहीचीरपलानि पट्। पथ्या कम्पिक्षक श्यामा सम्पाकं गिरिकर्णिका॥ नीलिनी त्रिवृता दन्ती शिक्क्षनी चित्रकन्तथा।
पतेषां पिलकैर्भागिर्धृतप्रस्थ विपाचयेत्॥
त्राथास्य मिलने कोष्ठे विन्दुमात्रं प्रदापयेत्।
यावतोऽस्य पिवेद्विन्दूंस्तावद्वारान् विरिच्यते॥
कुष्ठं गुलममुदावर्त्तं श्वयेथुं सभगन्दरम्।
शमयत्युदराग्यप्रौ वृत्तमिन्द्राशनिर्थथा॥
पतद्विन्दुघृतं नाम येनाभ्यक्को विरिच्यते॥ ४२॥

श्रक्तेचीरेत्यादि—श्यामा श्याममूला त्रिवृत् । गिरिकार्यिका श्वतापराजिता, नीलिनी नीलवृद्धा, शिक्षनी श्वेतवृद्धा । श्रत्र पाकार्थं जल चतुर्रेण देयम्, श्रतपन काचित् वृन्दसग्रहे दृश्येत 'स्नुद्धक्रयोस्तु पयसा पाकस्यानुपपितः । जल चतु-र्गुण देय पाकार्थं विन्दुसिपिषि ' इति । मात्रा तु श्रस्य कोष्ठानुरूपा, माषकमेक दय वा प्रचरति । मलिन इति मलवहुते ॥ ४२ ॥

## द्धिमण्डाद्यं घृतम्

द्धिमग्डाढके सिद्धात् स्तुक्क्षीरपरिकाल्कितात्। घृतप्रस्थात् पिवेन्मात्रां तद्धज्जठरशान्तये ॥ तथासिद्धं घृतप्रस्थं पयस्यष्टगुग्गे पचेत्। स्तुक्क्षीरपलकल्केन त्रिवृताषट्पलेन च ॥ ४३॥

दिधमण्डेत्यादि—तद्दिति पूर्वोक्तप्रकारेणोथिताद् धतात् । चरेक हि 'चीरद्रोण सुधाचीरप्रसार्द्धमहित दिध' हत्यादि । पूर्वयोगे चीरद्रोणे सुधाचीर-प्रसार्द्ध प्रचिप्य दिध करणीयं, ततस्तदिध मिथेत्वा धत सम्पादनीयमिति प्रकार उक्त इति । तथा सिद्धमित्यादि—श्रत्रापि पूर्वोक्तप्रकारिनिष्पादितदिधमन्थनसिद्ध धतिमिति तथा शन्दार्थ । एतयोर्धतयोरनुपान तथा विरेकान्तरीयो विधिश्च चरकोक्त स्वानुसरणीय इति ॥ ४३ ॥

#### नाराचघृतम्

स्तुक्ज्ञीरदन्तीत्रिफलाविडङ्ग-सिंहीत्रिवृश्चित्रककरकयुक्तम् । घृतं विपकं कुडवप्रमाणं तोयेन तस्याद्ममथाईकर्षम् ॥ पीत्वोण्णमम्मोऽनुपिवेद्विरिक्ते पेयां सुखोण्णां वितरेद्विधिश्च । नाराचमेतज्जठरामयाणां ' युक्त्योपयुक्तं शमनं प्रदिप्टम् ॥ ४४ ॥ इत्युदर-चिकित्सा ।

स्तुक्चीरेलादौ--सिंही करटकारी, युक्त्योपयुक्तमिति कोष्ठाविभवलापेचव इलर्थ ॥ ४४॥

इत्युदरचिकित्साविवृति ।

# अथ प्रीह-यक्तचिकित्सा

यमानिकाचित्रकयावशूक-

पड्यन्थिदन्तीमगधोद्भवानाम् । सीहानमेतद्विनिहन्ति चूर्ण-

मुज्णाम्बुना मस्तुसुरासवैर्वा ॥ १ ॥ 🖌

सीइवृद्धथा उदरस्य सम्मवादनन्तर सीइचिकित्सामाइ यमानिकेत्याहि— षट्मन्यि पिप्पलीमूल उक्त हि रत्नकोपे—' ग्रन्थिक पिप्पलीमूल पट्मन्थि चटका शिर 'इति ॥ १ ॥

पिष्पर्ली किंशुकचारभावितां सम्प्रयोजयेत्। गुल्मप्तीद्वापद्वां विद्विदीपनीश्च रसायनीम् ॥ २ ॥ पिषलीमित्यादि—किंशुक पलाशस्तत्वारोदके सप्तधा भाविता पिष्पल पिष्पलीवर्द्वमानक्रमेण प्रयोजयेत, दुग्धपानमप्यत्रोपदिशन्ति वृद्धा ॥ २ ॥

विडङ्गाज्याग्निसिन्धृत्थशक्त्न् दग्ध्वा वचान्वितान् । पिवेत् सीरेण सञ्चूर्ण्य गुल्मप्लीहोदरापहान् ॥ ३॥ विडेक्कत्यादि —विडक्कादीना चूर्णं धताक कृत्वा अन्तर्भूम दाहयेत्। तत मञ्चूर्ण्यं चीरेण सह पिवेत्। अन्ये तु कपाले कृत्वा एवमेव देहेत् न पुनरन्तर्भूम-मित्यादु । व्यवहारः पूर्वेणव॥ ३॥

> तालपुष्पमवः चारः सगुडः प्लीहनाशनः। रोहीतकाभयाकाथः कणाचारसमन्वितः॥ ४॥

तालपुष्पेत्यादानाप्यन्तर्भूमचार — सयुद्ध इति समगुद्ध । ज्ञारस्य च माषक-चतुष्टयेन व्यवहारः ॥ ४ ॥

चारं वा विडरुष्णाभ्यां पूतिकस्याम्लनिस्नुतम्। प्लीहयरुत्प्रशान्त्यर्थं पिवेत् प्रातर्यथावलम्॥ ४॥

चार वेत्यादि—पृतिकस्य लाटाकरअमूलस्य चारम् । अम्लनिस्नुतमिति अम्ले काञ्जिके निस्नुत सप्तथा परिस्नुत पृतिकरअचार विडलवणिपपलीचूर्णप्रचेपेण पिवेत् । वाग्मेट्टप्युक्तम् ' अम्लस्नुत विडकणाचूर्णां व्याख्यातम् । द्वान्ने वाग्मेट्टीका-यामिप अम्ले काञ्जिकादिभि परिस्नुतमिति व्याख्यातम् । द्वानुते ५ अम्लस्नुत पृत्रीकाश्वतार विडलवणिपपलीप्रगाढ पाययेत् ' इत्युक्तम् । तेन अम्बुनि जले निस्नुतमित्यसदर्थं एव । वाशब्द पूर्वयोगापेच्चया ॥ ५ ॥

पातव्यो युक्तितः चारः चीरेगोदधिशुक्तिजः। पयसा वा प्रयोक्तव्याः पिष्पल्यः प्लीहशान्तये ॥ ६॥

पातव्य इत्यादी—उद्धिशुक्तिमुक्तास्फोट । युक्तित इति वयोवलाखेपस्या । ययसा वत्यादि श्लोकार्क्षं वृन्दे पठ्यते, तद्दर्शनाच्यक्तमग्रहेऽपि केचित् पठिन्त, किन्तु वृन्दे पिप्पलीवर्द्धमान न पठ्यते, तेन तत्र तत्पाठो युज्यत एव, इह तु अग्रे पिप्पलीवर्द्धमान वक्तव्यमेविन पयसा वेत्यादि श्लोकार्द्धमत्र न पठनीयमेव । अतएव निश्चलेनापि नोपन्यस्तमिति ॥ ६॥

भन्नातकामयाजाजीगुडेन सह मोर्दकः। सप्तारात्राजिहन्त्याशु प्लीहानमतिदार्वग्रम्॥७॥, भक्षातेकत्यादि—स्पष्टम्।

शोभाञ्जनकनिर्य्यूहं सैन्ध्वाग्निकणान्वितम्॥ 🖛 ॥ पलाशज्ञारयुक्तं वा यवज्ञारं प्रयोजयेत्॥ ६॥ 🗇 शोभाक्षनेत्यादौ—िनर्यूद्दः काथ, अप्रिक्षित्रकः । पलाशचारयुक्तः विति पलाशचारोदकयुक्तम्, उक्तः हि सुश्रुते 'प्रस्नुतेन वा पलाशचारेण यवचारम् ' इति ॥ ८—६ ॥

तिलान् सलवणांश्चेव घृतं षट्पलकं तथा ॥ १० ॥ प्लीहोदिएां कियां सर्वा यकत सम्प्रयोजयेत् ॥ ११ ॥

तिलान् मलवयानिति कृष्णतिला एव ससैन्धवा मस्याः, भ्रान्य तु तिल-नालचारोदक सलवय पेयमित्याहु । न्यवहारस्तु पूर्वेथैव । एत पट्पलकमिति न्वरोक्तम् ॥ १०—-११॥

> त्तशुनं पिष्पलीमूलमभयाञ्चेव भक्तयेत्। पिवेद्गोमूत्रगण्डूषं प्लीहरोगविमुक्तये॥ १२॥ प्लीहजिच्छरपुङ्खाया कल्कस्तकेण सेवितः। शरपुङ्कीय सञ्चर्य जग्धा पेयासुजाथवा॥ १३॥

लशुनिमित्यादी--गोमूत्रगयङ्क्षेयानुपानम् । शरपुक्षाया इति शरपुखा मूलस्य ॥ १२---१३ ॥

> रोहीतकाभयाचोदभावितं सूत्रमम्बु वा । पीतं सर्वोदरप्लीहमहार्शःक्रिमगुल्मनुत् ॥ १४ ॥

रोहितकेत्यादी—सोर्दरचूर्षम्, गोमृत्र विरेकार्यम्, अम्बु तु शमनार्थमिति व्यवस्था ॥ १५ ॥

द्धा भुक्तवतो वामवाहुमध्ये शिरां भिपक् । विध्येत् प्लीहविनाशाय यक्तन्नाशाय दित्तेणे । प्लीहानं मर्दयेद्गाढं दुष्टरक्तप्रवृत्तये ॥ १६ ॥

दिशत्यादौ —दिभमोजन शोखितोत्केशनार्थम् । वामवाहुमध्य इति कूर्परसन्धे-रथसात् । के इस्वेदावप्यत्र कार्यी सुशुतमवादात् । सीद्दान मर्दयेदिति शिराया विद्धाया, तेन सीहो दुष्टरक निःसरीत ॥ १६ ॥

### मागाद्यगुडिका

माण्मार्गामृतावासास्थिरा चित्रकसैन्धवम् । नागरं तालखण्डश्च प्रत्यव्रन्तु तिकार्षिकम् ॥ विडसौवर्चलचारिषण्ण्यश्चापि कार्षिकाः । 'पतच्चूर्णीकृतं सर्वं गोमूलस्याढके पचेत् ॥ सान्द्रीभूते गुडीं कुर्याद्द्वा तिपलमाद्धिकम् । यत्कृष्लीहोदरहरो गुल्मार्शोग्रहणीहर.॥ योग परिकरो नाम्ना श्रश्चिसन्दीपन. पर ॥ १७॥

माखेलादी—मार्गोऽपामार्गः, स्थिरा शालपणी प्रत्ययमिलभिनवम् । त्रिकापिकामिति प्रत्येक । परिकरो नाम्नेति परिकरो विरेकस्तत्कारकत्वात् परिकरो योग , उक्त हि "भवेत् परिकर. सङ्के समारम्भविरेकयोः" इति ॥ १७॥

पिष्पली नागरं दन्ती समांशं द्विगुणाभयम् । चूर्णे पीतं विडाद्धींशं सीहन्नमुष्णवारिणा ॥ १८ ॥

पिप्पलीलादौ---द्विगुणामया इलेकभागापेचया द्वेगुरवर् । प्व विङ्लव-णस्याप्येकभागोपचयाद्वभागत्व क्रेयम् ॥ १८ ॥

## पिप्पलीवर्द्धमानानि

क्रमबृद्ध्या दशाहानि दशिपण्पलिकं दिनम् । वर्द्धयेत् पयसा सार्द्धे तथैवापनयेत् पुनः ॥ जीर्गेऽजीर्गे च भुक्षीत षष्टिकं जीरसार्पेषा । पिण्पलीनां सहस्रस्य प्रयोगोऽयं रसायनः ॥ दशपैष्पलिकः श्रेष्ठो मध्यमः पद् प्रकीर्तितः । यित्रिपण्पिलपर्थ्यन्तः प्रयोग सोऽवरः स्मृतः ॥ बृंह्णं वृष्यमायुष्यं सीहोदरिवनाशनम् । वयस स्थापनं मेध्यं पिष्पलीनां रसायनम् ॥ पश्चिपण्पलिकश्चापि दृश्यते वर्द्धमानकः ॥

ŧ

पिष्टास्ता विलिभिः पेया श्टना मध्यवलैर्नरैः । शीतीकृता हस्ववलैर्देहदोषामयान् प्रति ॥ १६ ॥ /

दशिम. पिप्पलीवर्द्धमानमाह क्रमेत्यादि—दश पिष्पल्य: यत्र वर्द्धन्ते तिहन दशिष्पिलिकम्, तेन दश पिष्पल्य: प्रत्यह वर्द्धनीया इत्यर्थ: । उतः हि 'दशिभर्द-शिमः शश्वद पिष्पलीभिस्तु वर्द्धयेत्'' इति । श्रतश्चीनिवरतिदिनेषृद्धिहानिकमेण पतेनैव सहस्र पूर्ण मवित । पयसा सार्द्धमित्यनेन पयमोऽपि वृद्धिरित्याहु, । केचित्तु चृणिक्तता इत्यत्र शीतिष्ठता इति पठित्वा शीतकपायीक्तता इति व्याख्यानयन्ति । पिष्पलीवर्द्धमानस्य त्रैविध्यमाह दशपैष्पालिक इत्यादि । पट्प्रकीर्तित इति पड्वृद्धश्चा आचार्य्येरक इत्यर्थ । त्रिपिष्पालिपर्य्यन्त इति तिस्रः पिष्पल्य पर्य्यन्ते यस्य स तथा तेन पिष्पलीत्रयेण यत्र वृद्धि स प्रयोग उच्यते, तत्रैव प्रयोगसमाप्ती पिष्पलीत्रयाव-स्थानम् । पद्मिमे. पद्मिमें पिष्पली।भवृद्धिस्तु व्यविष्यते इति प्रतिपादियतु चकः स्ववचनसुपन्यस्यति पद्मपिष्पलिक इत्यादि । विदेहे प्रसुक्तम्—''दशिभर्दशिमें शक्षत् पिष्पली।भित्तु वर्द्धयेत् । पत्रिभै पद्मिवंपि शतादवतरेत् पुन '' इति ॥ १ हि

## पिप्पलीचित्रकघृतम्

पिष्पर्ली चित्रकान्सूलं पिष्ट्वा सम्यग्विपाचयेत् । घृतं चतुर्गुण्चीरं यकृत्सीहोदरापहम् ॥ २० ॥

पिप्पलीत्यादि—अत्र पिप्पली च चित्रकन्चेति समासी न कार्यः, तथा सित पिप्पलीमूलस्थेन ग्रहण स्यात्, तच न व्यवहारसिद्धम् ॥ २०॥

#### लोकनाथरसः

्र ग्रन्थतं द्विधा गन्धं जल्वे कुर्याध कज्जलीम् । स्ततुल्यं जारिताभं सम्मर्ध कन्यकाम्बुना ॥ गोलं कुर्यात् ततो लोहं ताम्रश्च द्विगुणीस्तम् । काकमाचीरसैः पिष्ट्वा गोलं ताभ्याञ्च वेष्टयेत् ॥ वराटिकाया भसाथ रसतस्त्रिगुणं क्षिपेत् । ततक्ष सम्पुटं स्तवा मूपायुग्मं प्रकल्पयेत् ॥ तन्मध्ये गोलकं स्तवा श्ररावेण पिधत्रिप्य । पुटेद् गजपुटे विद्वान् स्वाइशीतं समुद्धरेत् ॥
शित्रं सम्पूज्य यत्नेन द्विजांश्च परितोषयेत् ।
खादेद्रक्षिद्धयं चूर्णं सूत्रश्चापि पिवेदनु ॥
मधुना पिष्पलीचूर्णं सगुडाम्बुद्दरीतकीम् ।
श्रजाजीं वा गुडेनैव भन्नयेदस्य मानतः ॥

यकृद्गुल्मोद्दर्पलीदृश्वयथुज्वरनाशनम् ।

विद्यान्यप्रमनं सर्वोन् व्याधीन् नियच्छति ॥ २१ ॥ / लोकनाथरसे—शुद्धस्त विशुद्धपारद, रसशास्त्रोक्तमर्दनाषष्टसस्कारसस्कृतमिति यावत् । उक्ष च " विशुद्धो रसराजस्तु सत्य पीयूपसोदर रसो वैधैर्यमोऽयमपरः स्मृतः "॥ इति रसतरिकष्याम् । विशुद्धिश्च सप्तकन्तुक-परिहाराय नैस्मिकदोषापहरणाय च कियते ॥ अष्टी सस्कारास्तु रसशास्त्रे द्रष्टन्या । श्रथवा जम्बरिरसमर्दितात् हिङ्गुलात् कर्ध्वपातनेन रसा ग्राह्यः। स च विशुद्ध एव। दिथा गन्धमिति पारदस्यैकी मागः, गन्धकस्य चं ही मागी बाह्यी । गन्धकमि नवनीताख्य ग्राह्म यद्धि 'श्रामलासार' इति नाम्ना ख्यातम् । तचापि सम्यग्विशुद्ध रसायने प्रयुज्यते । गन्धकशोधनविधिर्यथा—साज्य माएडे पयः चिप्त्वा मुख वस्नेगा वन्धरेत् । तत्पृष्ठे गन्धक चिप्त्वा शरावेगा पिधापयेत् ॥ भाग्ड निचिप्य भूम्यन्तरूष्वे देय पुट लघु । ततः चीरे द्वत गन्थ शुद्ध योगेषु योजयेष् ॥ श्रथवा---लौहपात्रे विनिच्चिप्य प्रतमग्नौ प्रतापयेत् । तप्ते प्रते तत्समान चिपेद् गन्थकज रजः । विद्रत गन्धक दृष्ट्वा दुग्धमध्ये विनिद्धिपेत् । एव गन्धकशुद्धि स्यात् सर्वरोगेषु योजयत् ॥ सत् गन्थ च पापाखमये खल्वे एकत्र सम्मर्ध कज्जलीं कुर्यात् । सत्-तुल्यमिति पारदतुल्य, पक्तभागमित्यर्थः । जारिताम्र यथावच्छोधनपुटननिष्पन्नं श्रम्रकम् । कञ्जली श्रम्रकञ्च एकत्र कन्यकाम्बुना कुमारीरसेन सम्मर्घ गोल कुर्यात् । ततम्ब लीहमिति, लीहं भस्म, नाम्रमिति अमृतीकृत नाम्रमस्म । द्विगुणितमिति पृथक् पृथक् स्ताद्द्रिगुश्वितम् । ताम्यामिति लौहताम्राभ्या एकत्र काकमाचीरसिपष्टाभ्याम्। रसतासिगुण वरादिकामसम गृहीत्वा, यन्थान्तरदर्शनात् जम्मीरनीरेण मर्दयेत्। ततश्च सम्पुटमिति सम्पुटाकार कृत्वा मूपायुग्म प्रकलपेयत् । शरावेथिति शरावसम्पुटेन । तन्त्रान्तरेष्यय वृहल्लोकनाथ इति नाम्ना प्रासिद्ध । पर तत्र तत्र वराटिकाभस्मनो माने भेदो दृश्येत । रमेन्द्रसारसम्रहे तु-स्ताच द्विगुख गन्ध वराटीसम्भव रज । पिष्टवा जम्बरिनीरेख मूषायुग्म प्रकल्पयेदित्युक्तम् । अत्र द्विग्रयमिति । अत्र गन्ध-

मिति पाठोऽमाधुर्नान्यत्रोपलन्मात् । तत्साने देय, कार्यं वा पठनीयम् । मैपज्य-रत्नावल्या "स्तान्नवगुण् देय वराटीमम्भव रजः" इति पाठ समुपलम्यते श्रधुना तु भेपज्यरत्नावलीकारमतमनुस्त्यंव व्यवहार प्रचरित । तथा च वराटीपर्यन्ताना भेपजाना एकत्र कन्याम्बुना काकमाचीरमेन च क्रमश सम्मार्दिनाना गोलक क्रियते । नच शरावसम्पुट निरुद्धथ प्रचरित । पाचनन्न लघुपुटेनैव । श्रतप्वास्मामि सस्कृताया भेपज्यरत्नावल्या गजपुटे इत्यत्र लघुपुटे इति पाठः स्वीकृत इति । "श्रस्य मानत" इत्यत्र ' तुल्ययोगतः ' " श्रनुपान्त " इति च पाठान्तरद्वयमुपलम्यते । ॥२ १॥

## पिप्पलीघृतम्

पिष्पलीकल्कसंयुक्तं घृतं ज्ञीरचतुर्गुगम्। पचेत् प्लीहाग्निसाटाद्-यकृद्रोगहरं परम्॥.२२॥ पिष्पलीध्त--स्पष्टम्॥ २२॥

## चित्रकघृतम्

वित्रकस्य तुलाकाथे घृतप्रस्थं विपाचयेत्।
ग्रारनालं तद्दिगुणं द्धिमण्डं चतुर्गुण्म्॥
पञ्चकोलकतालीश्वारेलेवणसंयुतैः।
द्विजीरकनिशायुग्मैमीरचं तत्र दापयेत्॥
प्लीहगुल्मोदराध्मान-पाण्डरोगारुचिज्वरान्।
वास्तिहत्पार्श्वकटख्रुलोदावर्त्तपीनसान्॥
हन्यात् पीतं तद्शोंधं शोधधं विह्नदीपनम्।
वलवर्णकरञ्जापि मसकञ्च नियच्छति॥ २३॥

चित्रकष्टते-तुलाकाथ इति पष्टीतत्पुरुष । आरनाल तद्दिगुणमिति धता-पेचया, ण्व दिषमग्रहस्यापि चातुर्गुण्यम् । दिषमग्रहो दिषमस्तु, चारी यवकार , लक्य सैन्धवम्, अन्ये तु यवकार माचिकार , लक्षण पञ्चलक्णमाहु ॥ २३॥

र अस्य टीकाकारकृता टीका नास्त्यत सशोधकेन स्वकृता टीकात्र सन्तिविशिता ॥

## रोहीतकघृतम्

रोहीतकत्वचः श्रेष्ठाः पलानां पञ्चविंशतिः। कोलद्विप्रश्यसंयुक्तं कषायमुपकल्पयेत्॥ पलिकैः पञ्चकोलैश्च तैः सर्वेश्चापि तुल्यया। रोहीतकत्वचा पिष्टैष्ट्रेतप्रश्चं विपाचयेत्॥ प्लीहाभिवृद्धं शमयेदेतदाशु प्रयोजितम्।

तथा गुल्मज्वरश्वास-क्रिमिपार्इत्वकामलाः ॥ २४ ॥
रोहातकेत्यादि—वाग्मटस्य । अष्ठा इत्वच कृत्वेति वाग्मटे पद्धाते । रोहीतको रोहर इति ख्यातस्तरस्तस्य पञ्चिवरातिपले कोलप्रस्थद्वयेन मिलित्वा
मप्तपञ्चारारपलानि काथ्यानि स्यु, तेष्वष्टगुण जलमुत्सर्गसिद्ध देयम् । पादरोषध्य
कषायो द्विपलाधिकचतुर्दरारारावा । वंद्यप्रसारके तु षोडरागुण जलमुक्तम् । अन्य
तु जलद्रोण दस्ता रापमाडक कपायमिलाहु । ते सर्वधापि तुल्ययेति पञ्चकोलैस्तुल्यया पञ्चपलमानया इत्यर्थ । रोहीतकत्वचा पिष्टयेति योज्यम् ॥ २४ ॥

### महारोहीतकघृतम्

रोहीतकात् पलशतं चोदयेद्वदराहकम्।
साधियत्वा जलद्रोणे चतुर्भागावशेषिते ॥
तिसान् द्यादिमान् कल्कान् सर्वास्तानच्यामितान्॥
व्योषं फलित्रकं हिंगु यमानीं तुम्वरु विडम्।
प्रजाजीं कृष्णलवणं दाडिमं देवदारु च॥
पुर्नवां विशालाञ्च यवचारं सपौष्करम्।
विडद्गं विश्वकञ्चेव हवुणं चिवकां वचाम्॥
पतैर्घृतं विपकन्तु स्थापयेद्गाजने ग्रुभे।
पाययेत् त्रिपलां मात्रां व्याधि चलमवेदय च॥
रसकेनाथ यूषेण पयसा वापि भोजयेत्।
उपयुक्ते घृते तिसान् व्याधीन् हन्यादिमान् बहून्॥
यक्तरिहोद्रञ्चेव पार्श्वश्रलमरोचकम्।
विवन्धश्रलं शमयेत् पाएहरोगं सकामलम्॥

ŧ.

छुर्घतीसारशमनं तन्द्राज्वरिवनाशनम् । महारोहीतकं नाम्ना प्लीहमन्तु विशेषतः॥ २४॥ इति प्लीह-यक्तचिकित्सा।

~

महारोहीतकप्रते—वदरचूर्णस्य श्राढक चतु पष्टिपलानि, अत्र पेकेनेव जल-द्रोग्येन वदरचूर्णाढकसिहतस्य रोहीतकपलशतस्य काथ करणीय, तथैव निर्दिष्ट त्वात् । तन्त्रान्तरेऽपि—'रोहीतकशत चुरुण्य कीलचूर्णाढकान्वितम् । नि काथ्य सिललद्रोग्ये चतुर्मागस्थिते रस ' इति । अन्ये तु जलस्याल्पत्वमाशद्दश्य द्रोग्यपदमा-वृत्त्या रोहीतकपलशतिमत्यनेन तथा वदराढकमित्यनेन च प्रत्येक योज्यम् । पतेनैकेन जलद्रोग्येन रोहीतकपलशतस्य काथ, अपरेण वदराढकस्येत्याहु, व्यवहारोऽप्यनेनैव । कृष्णलवण्य सीवर्चलमत्र आयुर्वेदसारे रुचकपाठात् ॥ २५ ॥

इति सोहयकृश्चिकित्सा-विषृति ।

# अथ शोथचिकित्सा।

शुरुठीपुनर्नवैरएड-पञ्चमूलश्वतं जलम्। वातिके श्वयथौ शस्तं पानाद्वारपरिग्रहे। र् दशमूलं सर्वथा च चातशोथे विशेषत ॥ १,॥

न्तेथसाथर्म्याद्दनन्तर शोथिविकित्सामाइ । शुग्ठीत्यादी--पद्ममूल महत् वृद्धव्यवहारात् । पानाहारपरियह इति श्रव्यपानमस्कारे । सर्वेथेति कल्ककाथादि-विथया ॥ १ ॥

त्तीराशन पित्तकृतेऽथ शोथे निवृद्गुङ्गचीत्रिफलाकृषायम्। पिवृद्ग्वां मूत्राविमिश्रतं वा

प्रिपणींघनोदीच्य-शुण्डीसिखन्तु, पौत्तिके ॥ ३॥ •

श्रभया दारु मधुकं तिक्का दन्ती सिपिष्पती।
पटोलं चन्दनं दावीं त्रायमाणेन्द्रवारुणी ॥
एषां क्वाथः ससिपिष्कः श्वयथुज्वरदाहृहा।
विसर्पतृष्णासन्ताप-सिन्निपातविषापहा ॥ ४॥

पृक्षिपर्यात्यादि—स्पष्टम् । श्रमयत्यादी—सपि. प्रेच्चव्यमः ॥ ३ ॥ ४ ॥ शीतवीर्व्येहिमजलैरभ्यद्गादीश्च कारयेत् ४ ॥

शीतवीर्थेरिति शीतवीर्था काकील्यादिशारिवाचुत्पलादिगणाः तत्कृते केहादिभिरभ्यङ्गादीन् कल्पयेत् । हिमजलैरिति शीतलजलैः ॥५ ॥

पुनर्नवाविश्वात्रिष्टुद्गुङ्क्ची-

सम्पाकपथ्यामरदारुकल्कम् ।

शोथे कफोत्थे महिषाच्चयुक्तं

मूत्रं पिवेद्वा सलिलं तथैषाम् ॥ ६॥ 🎺

कैं भिक्तशोथिनिकित्सामाह पुनर्नवेत्यादि — पुनर्नवादीना कल्क गुग्गुलुयुक्त गोमूत्रेण विवेद । पिवेदा सलिल तथेषामिति एषा पुनर्नवादीना काथ वा गुग्गुल गोमूत्रे प्रसिप्य पिवेद । महिषाची गुग्गुल ॥ ६॥

> कफे तु रुष्णासिकतापुराण-पिगयाकशिग्रत्वगुमाप्रलेप । कुलत्थश्चगढीजलमूत्रसेक-

श्चग्डागुरुभ्यामनुलेपनञ्च ॥ ७ ॥

कफे लित्यादी सिकता बाह्यका, पुराणिषयाकः पुराणसर्षपत्वाले , छमा अतसी, एमिमूंत्रिपटेलेंगः । उक्त ज्ञ वाग्मेट ''कृष्णापुराणिषयाकशिमुत्वक्सिक-तातसी । प्रलेपोन्मर्दने युञ्ज्यात् सुखोष्णा मूत्रकिल्कता ''। कुलत्यशुरिठिकाथेन तथा गोमूत्रेण च कुलत्यशुरिठीसिक्रेन सेकः कार्यः । उक्त हिं वाग्मेट ''स्नान मूत्राम्मिस सिक्के कुष्ठनकारिचित्रकै । कुलत्यनागराभ्या वा'' इति । चर्ण्डा चोर-पुष्पी । अनुलेपन स्नानानन्तरमेव लेपनिति चक्रः ॥ ७॥

श्रजाजिपाठाघनपश्चकोल∸

व्याच्रीरजन्यः सुखतोयपीताः।

#### शोथं त्रिरोपं चिरजं प्रवृद्धं निघ्नितः भूनिम्बमहौपघे च ॥ ८ ॥

श्रजाजीत्यादि—वाग्मटन्य । तेषा चूर्णमुप्णादिकन पेयम् । एव भूनिन्यमहीपधरीतिष । यद्यपि चरकेऽलिन् योगे चिवकारथाने गजिपप्रती पठ्यते, तथापि
तत्र चिवकते त्राचा, गजिपप्रतीशस्देन चिवकारथा अप्यभिधानात्, यदुक्त
निधर्ण्टा—'चिवका कोलवही च हन्तिपिप्रत्यपीष्यते 'हित । जत्कर्णादाविष
चिवकत पठ्यते, तस्मात् चन्येव युक्ता । एनेन 'पिप्पत्यादिगजो नाम्ना चरके
पठ्यते त्वयम् । योगेऽत्र चिवकारथाने प्राह्मा मातद्गिप्पत्नी 'हित वृन्दोक्तमतमपास्त्रम् । ननु चरके त्रिदोप नशोधस्यामाध्यत्वे नोक्तत्वात् कथ त्रिदोप शोध
प्रम्नीत्युक्तम् । नेवम् । चरके अहीनमामस्यत्यादिना ग्रन्थे नेकदोपस्य तथा नवस्य
च मुक्तमाध्यत्वाभिषानेन द्विदोप नात्रिदोपत्रयोस्त्या चिरजस्य च कृत्स्त्रमाध्यत्ववेवन न पुनरमाध्यत्विमिति ॥ ८॥

पुनर्नवानिम्वपटोलशुग्ठी-तिक्षामृताटार्वभयाकपाय । सर्वोद्दशोथोटरकासगृत-

श्वासान्वितं पार्डुगदं निहन्ति ॥ ६॥

पुनर्नवेत्यादि--तिक्ना कडकी, दारु टेवटारु, वृन्दे त्वय योग शोधोदरे पठयेते ॥ ६ ॥

श्रार्टकस्य रसः पीतः पुराणगुडमिश्रितः । श्रजाजीराशिनां शीव्रं सर्वशोधहरो भवेत् ॥ १० ॥ भारकस्थेत्यादि—त्पष्टन् ॥ १० ॥ पुनर्नवादारुश्चरुजिकाथे मूत्रे च केवले ।

टशमूलरसे वापि गुग्गुलुः शोधनाशन ॥ ११॥ प्रनंतित्यादि—स्पष्टम् ॥ ११॥

विल्वपत्ररसं पृतं सोपणं श्वयथौ त्रिजे । विद्सहे चैव दुर्नाम्नि विद्ध्यात् कामलाखिप ॥ १२ ॥ गुडिपिष्पीलशुएठीनां चूर्णं श्वयथुनारानम् । त्रामाजीर्णप्रशमनं श्र्लझं वस्तिशोधनम् ॥ १३ ॥ पुरे। मूत्रेण सेव्येत पिष्पली वा पयोऽन्विता। गुडेन वाभया तुल्या विश्वं वा शोधरोगिणाम् ॥ १४ ॥

सोषणमिति समरिचम् । गुडेत्यादौ--गुड एकभागनमः । पुर इति-पुर गुग्गुजु: । पिप्पली वा पयोऽन्वितेति पिप्पलीवर्धमानन्यायेन इतरकल्कवद्वा पिप्पली-कल्कः पयसा सेच्य । विश्व वेति गुडेन तुल्यमित्यत्रापि योज्यम् ॥ १२-१४॥

> गुडार्द्रकं वा गुडनागरं वा गुडाभयां वा गुडिपप्पत्तीं वा । कर्षाभिवृद्धया त्रिपत्तप्रमाणं खादेकरः पद्मभथापि मासम् ॥ शेथिप्रतिश्यायगत्तास्यरोगान् सभ्वासकासारुविपीनसादीन् । जीर्णेज्वराशेंग्रहणीविकारान् हन्यात् तथान्यान् कफवातरोगान् ॥ १४ ॥

गुढाईक वेलादि—गुडाईकादयश्चत्वारो योगा एते तुल्यमागा सन्तः प्रितिदन मिलित्वा कर्षेण कर्षेण वर्द्धायितन्याः। एव द्वादशिभिदिनैकिपल पूर्णते। ततिकिपल कृत्वा प्रत्यद्व पद्म मास वा यावत् खादेत्। किंवा प्रथमदिने कर्षमेक खादेत्, ततः कितिचिदिनानि कर्षस्यैवाभ्यास , तत परमपरकर्ष वर्द्धयेत्, तसापि पुनरभ्यासः। एव कर्षेण कर्षेणाभिवृद्धया यथा पद्मेण मासेन वा त्रिपल भवति तथा कार्यम् । श्रन्य तु बुवते पद्मपरोऽप्यथापिशन्दो मासमित्यनन्तर श्चय , स च समुच्चयार्थः, तेन पद्म मासद्भ न्याप्य सार्द्धमास न्याप्यत्यर्थः। सार्द्धमासेन च त्रिपल कर्षोपयोगात् प्रभृति प्रत्यद्व माषचतुष्टयाधिकाविधिना मवति । श्वसिन् न्याख्याने कर्षादारभ्य माषकचतुष्टयभेव वृद्धिनाधिका। न्यवहारोऽपीत्थमेव॥ १४॥

स्थलपद्ममयं कल्कं पयसालोड्य पाययेत्। सीहामयहरञ्जैव सर्वाङ्गैकाङ्गशोथजित्॥ १६॥

स्थलपद्ममय कल्कमिति — स्थलपद्म मायकन्दः, स च पुरायो आहाः । कल्कमिति चूर्यम् ॥ १६॥ दारुगुनुलुशुगुठीनां करको मूत्रेण शोथिजित् ॥ १७ ॥
वर्षाभूश्द्रक्षेराभ्यां करको चा सर्वशोथिजित् ॥ १८ ॥ ७
दाविलादी-वर्षाभ्विलादी-च योगे गोमूत्रेणैव पान हेयम् ॥ १७-१८ ॥
सिंहास्यामृतभग्टाकीकार्थं छत्वा समान्तिकम् ।
पीत्वा शोथं जयेज्जन्तुः कासं श्वासं ज्वरं विमम् ॥१६॥
मिहास्येति—सिंहास्य वामकमूलम् । मण्टाकी कण्टकारी ॥ १६ ॥
भूनिम्वविश्वकरुकं जग्ध्वा पेयः पुनर्नवाक्काथः ।
श्रपहरति नियतमाश्र शोथं सर्वोद्गगं नृगाम् ॥ २० ॥
भूनिम्वेलादी—पेय पुनर्नवाकाथ इत्यनुपानिष्वम् । एतच पुनर्नवामूल-कर्षं निःकाथ्य कार्य्यम् । स्रतोऽधिकमात्रया तु करणे भूरिभेपजलेनाग्निवधादिदोप स्थादिति । एव मर्वत्र कार्थनानुपान हेयम् ॥ २० ॥

शोधनुत् के किलाज्ञस्य भस्म मूत्रेण वाम्भसा । जीरं शोधहरं दारुवर्षाभूनागरैः श्वतम् । पेयं वा चित्रकट्योप त्रिबृह्गरूप्रसाधितम् ॥ २१॥ शोधनुदित्यादि—अम्मसेत्यन्त एको योगः, मूत्रेण कर्षे, अम्मसेति पिते । श्वामित्यन्तो दितायः । चित्रकेत्यादिरनुतायः । अत्रापि चीरमिति योज्यम् ॥ २१

पुनर्नवामूलकापित्थदारु-

च्छिन्नोद्भवाचित्रकमूलसिद्धाः। रसा यवाग्वश्च पयासि यूपाः शोथे प्रदेया दशमूलगर्भाः॥ २२॥

पुनर्नवेत्यादी-किपत्थस्य फलम् । पुनर्नवादीनामर्द्धश्वतः कृत्वा दशमूलस्यानु-रूप कल्क दत्त्वा रमादय साध्या इत्यर्थः ॥ २२ ॥

ł

द्वारादिगुडिका चारद्वयं स्याञ्जवणानि चत्वा-र्य्ययोरजोब्योपफलत्रिके च । सिपप्पलीमूलविडक्ससारं मुस्ताजमोदामरदारुविल्वम्॥ कलिइकश्चित्रकमूलपाठे

यष्ट्याह्नयं सातिविष पलांशम् ।
सिहङ्गुकर्षे तनुशुष्कचूर्ण
द्रोणं तथा मृलकशुग्ठकानाम् ॥
स्याद्मसनस्तत्सालेलेन साध्यमालोड्य यावद्धनमप्यद्ग्धम् ।
स्त्यानं ततः कोलसमाश्च मात्रां
कृत्वा सुशुष्कां विधिना प्रयुञ्ज्यात् ॥
सीहोद्रिश्वत्रह्वलीमकारीःपाग्ड्वामयारोचकशोधशोषान् ।
विस्चिकागुल्मगराश्मरीश्च
सश्वासकासान् प्रसुदेत् सकुष्ठान् ॥
सौवर्ष्वेलं सैन्धवश्च विडमौद्भिद्मेव च ॥
चतुर्लवग्मत्र स्याज्जलमष्टगुणं भवेत् ॥ २३॥

चारेत्यादि-चारह्यं यवचारमाजिकाचारौ । लवणानि चत्वारीति सामुद्रवर्नितानि । अयोरजो लोह्चपूर्णं मारितपुटिन याद्यन् । पलाशमिति प्रत्येकम् । अणुगुष्कचूर्णमिति गुष्कच्छमचूर्णमित्यर्थः तत्सिलिलेनेति, चारसिलिलेन चारद्वयादिचूर्णपेचया चतुर्- ग्रंणन, अन्ये त्वष्टगुणमाहुः । अत्र मृतकभस्मद्रोणे षड्द्रोणं वा जल दत्ता त्रिमागाविशिष्टमर्कंभागाविशिष्ट वा कार्य्यम्, ततः परिस्नाच्यम् ततः चारद्वयादिचूर्णापेचया चतुर्गुरं चारजल गृहीत्वा वक्तच्यम् । पाकाच धनीमावे जाते चारद्वयादिचूर्णाप्तेचय इत्याहुः ॥ २३॥

पुनर्नवाद्यं घृतम्

पुनर्नवाचित्रकदेवदारु-पञ्चोपणज्ञारहरीतकीनाम् । कल्केन पक्कं दशमूलतोये घृतोत्तमं शोधनिस्दनञ्च॥२४॥ पुनर्नवेत्यादौ-पञ्चोषणं पश्चकोलम् ॥ २४॥

## खल्पपुनर्नवाघृतम्

पुनर्नवाकाथकल्कसिद्धं शोथहरं घृतम् ॥ २४ ॥ पुनर्नवेत्यादि—स्पष्टम् ॥ २४ ॥

पश्चकोलाद्यं घृतम्

रसे विपाचयेत् सर्पि पञ्चकोलकुलत्थयोः। पुनर्नवाया कल्केन घृतं शोथविनाशनम्॥ २६॥

रस इत्यादि—रस काथ इत्यर्थः। पञ्चकोलकुलत्थयोरिति दिवचननिर्देशात. पञ्चकोलस्य मिलित्वा एको भाग , भपरश्च कुलत्थानामिति वदन्ति ॥ २६ ॥

#### शुगठीघृतम्

विश्वीषधस्य कल्केन दशमूलजले श्टतम् । घृतं निह्नयाच्छ्लयथुं प्रहर्णी पार्व्हतामयम् ॥ २७ ॥ शुरुठीचृते—पार्व्हतामयमिति पार्व्हरोगम् ॥ २७ ॥

## चित्रकाद्यं घृतम्

सचित्रका धान्ययमानिपाठाः
सदीप्यक्तत्रयूषण्वेतसाम्ला ।
विल्वात् फलं दाडिमयावश्कं
सपिप्पलीमूलमथापि चन्यम् ॥
पिष्ट्वाक्तमात्राणि जलाढकेन
पक्त्वा घृतप्रस्थमथोपयुञ्ज्यात् ।
श्रशींसि गुल्मं श्वयथुञ्च कुच्छुं
निहन्ति वहिञ्च करोति दीतम् ॥ २८ ॥

े सचित्रकेत्यादौ —दोप्यक जीरकमिति निश्चल , तन्न, 'यनानक यनचार यमाची पद्मकोलकम् , इति नाग्मटनचननिरोधात्। तस्मादीप्यक्मजमोदा। नेतसा-म्लोऽम्लेनेतस । निल्नात् फलमित्यत्र निल्नात् पलमिति न पाठ , नाग्मटे 'वाल-निल्नञ्च कर्षाशम् ' इत्युक्तत्वात् ॥ २८॥

### चित्रकषृतम्

चीरं घटे चित्रककरकालिते
दध्यागतं साधु विमध्य तेन।
तज्ञं घृतं चित्रकमूलकरकं
तक्रेण सिद्धं श्वयश्रुव्रमग्र्यम्॥
प्रशोंऽतिसारानिलगुरुममेहां-

स्तद्धन्ति संवर्द्धयते च वहिम्॥ २६॥ 🤟

क्षीरमित्यादी--द्रम्यागतमिति दिधमावेन परिखतम् । तेनेति यथोक्तदिध-मथनजातेन तकेखेत्यन्वयः । तब्ज प्रतमिति यथोक्तदिधमव प्रतमिति ॥ २६ ॥

#### माग्यकपृतम्

माणककाथकरुकाभ्यां घृतप्रस्थं विपाचयेत्। एकजं द्वन्द्वजं शोथं त्रिदोषञ्च व्यपोद्दति ॥ ३०॥

माणकष्टते माणककाथार्थमष्टगुण जल देय न तु मृदुत्वाचतुर्गुंखम्, तथा सित यवागृवत् काथ स्यादिति । अन्ये तु तन्त्रान्तरदर्शनात् माणककन्दस्य पल-शत तोयद्रोणे पक्त्वा गृह्णन्ति । न्यवहारस्तु पूर्वेणैव । माणकन्द चाईमेव गृह्णन्ति चृद्धा ॥ ३०॥

#### **खलपद्म**घृतम्

स्थलपद्मपलान्यष्टौ त्रयूषण्स्य चतुःपलम् । घृतप्रस्थं पचेदेभिः क्षीरं दत्वा चतुःपलम् । पञ्च कासान् हरेच्छीघं शोधञ्चेव सुदुस्तरम् ॥ ३१ ॥ स्थलपद्मष्टते स्थलपद्म माणमूलमेव । त्र्यूषण्स्य च मिलित्वा चतुः-पलम् ॥ ३१ ॥

> शैलेयाधं तैलम् शैलेयकुष्ठागुरुदारुकौन्ती-त्वक्पदाकैलाम्बुपलाशमुस्तैः। प्रियङ्गुथौखेयकहेममांसी-

तालीशपत्रप्तवपत्रधान्येः॥ श्रीवेष्टकध्यामकापिष्पलीभि पृक्कानखैर्वापि यथोपलाभम्। वातान्वितेऽभ्यक्तमुशन्ति तैलं सिद्धं सुपिष्टैरपि च प्रदेहम्॥ ३२॥

रैलियेलादी—कीन्ती रेणुका, पलारा राटी, थीणयक अन्धिवर्णम्, झान्दस-त्वादत्र सकार्लोप । हेम नागकेरारम्, सव कैवर्चमुस्तकम्, श्रीवेष्टको नवनीतखोटी, ध्यामक गन्धत्रणम् पपा कल्क, जल चतुर्गुणमर्थात् । यथोपलाममिति यथा-लाभम् । तैल सिद्ध सुपिष्टिरिति—शैलेयादिभिः सुपिष्टैस्तैल सिद्धमुशन्ति, तथा तेरेव मुपिष्टै अदेष्टक्कोशन्ति कथयन्ति इच्छन्ति वा ॥ ३२॥

> शुष्कमूलाद्यं तैलम् शुष्कमूलकवर्णाभू-दाहरास्नामद्वीषधे । पक्षमभ्यञ्जनात् तैल सग्रलं श्वयशुं जयेत् ॥ ३३ ॥ । शुष्कमूलकेत्यादि—स्पष्टम् ॥ ३३ ॥

> > पुनर्नवावलेहः

पुनर्नवामृतादारु-दरामृत्तरसाढके ।
श्रार्द्रकस्वरसप्रस्थे गुडस्य तु तुलां पचेत् ॥
तत् सिद्धं व्योपपत्रेला-त्वक्चव्यैः कार्पिकै पृथक् ।
चूर्णीकृतै चिपेच्छिति मधुन कुडवं लिहेत् ॥
लेहः पौनर्नवो नाम शोथशूलिनसूद्नः ।
श्वासकासारुचिहरो चलवर्णामिवर्द्धनः ॥ ३४ ॥
पुनर्नवेत्यादौ—पुनर्नवादीना दराम्लान्ताना मिलिला चतु पष्टिपलानि,
जलस्य चतु पष्टिशरावा , शेषस्तु श्राहक । व्योपत्यादौ—सहाथे उपलच्चे वा
छतीया । मधुन कुडवमष्टी पलानि । शूलशोथनिसदन इति पाठान्तरम्, श्रायुवेंदसोरेऽिष कफ्शोथनिनारान इत्युक्त ॥ ३४ ॥

दशमूलहरतिकी दशमूलकपायस्य कंसे पथ्याशतं पचेत्। तुलां गुडाद् घने दद्याद्योपत्तारं चतु पत्तम् ॥
त्रिसुगन्धं सुवर्णाशं प्रस्थार्द्धं मधुनो हिमे।
दशमूलीहरीतक्य शोथान् हन्यु सुदारुणान् ॥
ज्वरारोचकगुल्मार्शो-मेहपागृहदरामयान्।
प्रत्येकमेव कर्पाशं त्रिसुगन्धमितो भवेत्॥
कंसहरीतकी चैपा चरके पठ्यते अन्यथा।
पतन्मानेन तुल्यत्वं तेन तन्नापि वर्णयेते॥ ३४॥

दरामूलत्यादो—कस इत्यादक । अत्र कपायस्य कसमानतानिर्देशेन अनुक्तमिष काथ्यजलयोर्मानमनुमोयते, यतः काथ कसश्चतुःषाष्ट्रपले काथे जलद्रोख-दानाश्चतुर्मागावरोषे सित भवति । पथ्याशतमाकृतिमानात् । व्योषश्चारचतु पलिगित मिलित्वा, निर्देशस्य मानप्रधानत्वात् । त्रिसुगन्धन्तु प्रत्येक सुवर्णाश कर्षाशम् , निर्देशस्य द्रव्यप्रधानत्वात् । प्रस्थार्द्धं मधुन इति षोडशपलानि । एतत्प्रयोगोक्तमान-सवादाश्चरकोक्तकसहरीतक्यामिष प्रश्चेप्यद्रव्यमान कल्पनीयमित्याह प्रत्येकमित्यादि । इत इति मप्तम्यन्तात् तसि अत्रेत्वर्थं । चरके पद्ध्यतेऽन्यथेति एतेन पाठमेद , पर न तु योगभेद इत्यर्थः । एतेन मानभेदाद् योगभेद इति वृन्दोक्तमपास्तम् ॥३५॥

कंसहरीतकी

द्विपञ्चमूलस्य पचेत् कपाये
कंसेऽभयानाञ्च शतं गुडाच।
लेहे सुसिद्धे च विनीय चूर्णं
व्योपित्रसौगन्ध्यमुपास्थिते च
प्रस्थार्द्धमात्रं मधुन सुशीते
किञ्चिच चूर्णादिपि यावश्कात
एकाभयां प्राश्य ततश्च लेहाच्छुक्तिं निहन्ति श्वयथुं प्रवृद्धम
कासज्वरारोचकमेहगुल्मान्
सीहित्रदोषोद्दपागृहरोगान्।
काश्यीमवातावसृगम्लापेत्तं

#### वैवर्ण्यमूत्रानिलशुक्रदोषान् ॥ श्रत्र व्याख्यान्तरं नोक्षं व्याख्या पूर्वेव यत् कृता ॥ ३६॥

चरके प्रक्षितऽन्यथेत्युक्तम् अतस्तमेष पाठमेद दर्शयितु चरकोक्तकसहरितकीमाइ ।दिपञ्चमूलस्येत्यादि —लेहाच शुक्तिमित्यद्भपल प्राश्येति योज्यम् । न्योपत्रिसुगन्धयो र्थवप्यत्र मान नोक्तम् , तथापि पूर्वोक्तदशम्लहरीतनयनुसोरेणात्रापि कल्पनीयम् । एव यवचारस्थापि । किञ्चिन्छन्देऽत्राप्यल्पवचनः, तेन व्यापचारयो.मिलिला चतुःपलग्रहग्येऽपि व्योपभागापेचया यवचारस्य किन्चिन्न्यूनता कल्पनियेर्द्यः । वृन्दस्त्वाह—"किन्चिच कर्षपर्यायः शुक्तिर्द्धपल तथा । सान्निध्यान्मधुनो मान व्योषादेभितितस्य च " इति ॥ ३६ ॥

लेपोऽरुष्करशोथं निहन्ति तिलदुग्धमधुनवनीते । तत्तरुतलमृद्धिर्वा शालदलैर्वापि न चिरेण । शोथे विपनिमित्ते तु विपोक्ता सम्मता किया ॥ ३७ ॥ लेप स्वादि—गोगत्रवम् ॥ ३० ॥ श्राम्याञ्जानूप पिशितलवणं शुष्कशाकं नवान्नं गौडं पिष्टान्नं दिध सक्तशरं निर्जलं मद्यमम्लम् । धाना वल्ल्रं समशनमयो गुर्वसात्म्यं विदाहि स्वप्रश्चारान्ने। श्वयथुगद्वान् वर्जयेन्मेथुनश्च ॥ ३८ ॥ ५ इति शोथिचिकित्सा ।

याम्यत्यादी—पिशितज्ञ लवण्छेति समाहार , तस्य विशेषण याम्यावनान्प्रीमिति । तत्र छागादिमास ग्राम्यम् , लवण्छ यत् पाकेनामिनिवृत्त तद् ग्राम्यम् । अव्ज कच्छपादिमासम्, लवण्छ सामुद्र करकचिति स्थात तदव्जम् । श्रानूप शक्त-रादिमासम्, लवण्ज समुद्रतीरज साम्मरीति ख्यातम्, तदप्यानूपम् । गीद गुढ-विकारम् । थाना अङ्कुरितमृष्टयवाः । वल्तूर शुष्कमासम् । समशन पथ्यापथ्य-सैकत्र भोजनम् । श्ररात्राविति दिने ॥ ३८ ॥

इति शोथचिकित्सा-विवृतिः।

# अथ रुद्धिव्रध्नचिंकित्सा।

गुग्गुलुं रुवुतैलं वा गोमूत्रेण पिवन् नर ।
वातवृद्धिं निहन्त्याशु चिरकालानुवन्धिनीम् ॥१॥ ६
पूर्वोक्तसद्गत्येव शोथानन्तर वृद्धिनप्तिकितिस्तमुच्यते । वृद्धि कुरण्ड ।
गुग्गुलुमित्यादि—गोमूत्रपलद्भये परण्डतैलिपिण्डितगुग्गुलुमाषकाष्टक प्रविष्य

पयम् । तथा गोमूत्रपलद्भये परण्डतैलक्षेमक प्रविष्य पिनेत् । हमी योगी कमात

सत्तीरं वा पिवेत् तैलं मासमेरएडसम्भवम् । पुनर्नवायास्तैलं वा तैलं नारायणं तथा । पाने वस्तौ रुवोस्तैलं पेयं वा दशकाम्भसा ॥ औ

सचीरमित्यादि — सुश्रुतस्य । गन्यदुग्ध पल २, परण्डतैल कर्ष १, श्रय योग पित्तानुवन्ध इत्याद्व । पुनर्नवातैलन्तु पुनर्नवाकाधकलकाभ्या साध्यीमत्याद्व । पान वत्ताविति पूर्वेण सद्द सम्बध्यते । रुवोस्तैलमेरण्डतैलम् । दशकस्य दशमूलस्था-म्मसा न्वाथेन पेयम् ॥ २ ॥

कफानुबन्धं बाते च योज्याविलाहु ॥ १ ॥

चन्दनं मधुकं पद्ममुशीरं नीलमुत्पलम्। चीरिपष्टे प्रदेह स्यादाहशोथरुजापहः॥३॥ पञ्चवल्कलकल्केन सघृतेन प्रलेपनम्॥४॥ सर्वे पित्तहरं कार्य्य रक्कजे रक्कमोत्तरणम्॥४॥

वैत्तिकवृद्धिमेषनमाह चन्दनामित्यादि---पद्म पद्मनेशरम् । रक्तजे रक्तमोत्त-ग्रामिति अपकरकञ्चद्धौ रक्तमोत्त्रण जलौकोमि कार्य्य, सुश्रुतमवादात् ॥ ३-४ ॥

> श्लेष्मवृद्धिन्तूष्णवीय्यैर्भूत्रिषष्टे प्रलेपयेत्। पीतदारुकषायञ्च पिवेद्वा सूत्रसंयुतम् ॥४६॥

क्षेत्रेत्यादौ — चन्यावीय्येरिति श्रजगन्धादिमि. मिश्रकोकै: । पातदारु देव-दारु, गोमूत्रेयैव देवदारुकाथ: कार्य्यमत्याहुः । व्यवहारस्तु प्रचेपविधया । वाग्मेट तु-'गोमूत्रेय पिनेत् कल्कं कैन्मिके पीतदारुजम्'' इत्युक्तम् ॥ ६ ॥

खिन्नं मेदःसमुत्थन्तु लेपयेत् सुरसादिना । शिरोविरेकद्रव्यैर्वा सुस्रोष्णैर्मूत्रसंयुते ॥ ७ ॥ स्वित्रमित्यादि—सुश्रुतस्य । गोमयपिषटादिना मृदु स्वित्रम् । चरके 'स्ट्रिय वृषणी दृष्टी स्वेदेयेन्मृदु वा न वा'' इत्युक्तत्वात् । स्ररसादिना सुरसादिगयोन शिरोविरेचनद्रन्थे पिप्पलीमरिचविढङ्गापामागीदिभिः सशोधनसशमनीयोकैः मूत्रम-युतीरिति मूत्रपिष्टैलेपयेदिति पूर्वेषान्वय ॥ ७ ॥

संखेद्य मूत्रप्रभवां वस्त्रपट्टेन वेष्टयेत्। सीवन्या पार्श्वतोऽधस्ताद्विध्येद् त्रीहिमुखेन वै॥ ८॥

मूत्रजबृद्धिचिकित्सामाइ, संस्वेधेसादि—सुश्रुतस्य । मूत्रप्रभवामिति मूत्रवेग-मन्धारणजा, संस्वदन कर्त्तच्य, शस्त्रकमेवेदनानिवारणार्थ त्वगादिमृदुकरणार्थञ्ज, वस्त्रपट्टेन घटिकाकृतिवस्त्रण वेष्टन कर्त्तच्य, शस्त्रकमेण सौक्रच्यार्थ मीदिमुदेन शस्त्रविशेषेण वेध्यः । व्यधक्ष मूत्रस्रावणार्थम् । एतदनन्तर यदाइ सुश्रुत —''अथात्र दिमुखीं नार्डी दत्वा विस्नावयोद्भिषक् । मूत्र नाडीमथोद्भृत्य स्थिगकावन्धमा-चरेत्'' इति ॥ म ॥

श्रह्वोपिर च कर्णान्ते त्यक्त्वा सेवनिमादरात्।
 ब्यत्यासाद्वा शिरा विध्येदन्त्रवृद्धिनिवृत्त्ये॥ ६॥

श्रप्राप्तफलकोषान्त्रवृद्धिचिकित्सामाह, शहित्यादि — सुश्रुतस्य । त्यक्तवा मेवनीमिति केशान्तसेवनीं मर्मत्वात् परित्यंच्य, श्रुतप्ति वाग्मेट 'पट् कृषी मप्त मेवन्यो मेवृजिह्नाशिरोगता । शक्षेण ता परिद्येत् ' इति । व्यत्यामादिति वाम-कोषभृद्धौ दिचिणे, दिचिणकोषभृद्धौ तु वामे, यदि तु पुनरूमयतो वृद्धिस्तदोभयमागे । वाशब्दो विध्यन्तरापेचया ॥ ६ ॥

#### म्रङ्गुष्टमध्ये त्वक् छित्वा दहेदद्गविपर्य्यये॥ १०॥

श्रह्गुष्ठेत्यादि—सुश्रुतस्य । इस्तस्य वृद्धागुष्ठमध्ये लङ्मात्र छित्त्वा देहेत् न तु वातकफवृद्धिवत् स्नायुमपि । त्वक्रान्दस्य नपुग्नकलिङ्गता ममाधेया छान्दसत्वात् । श्रङ्गविपृत्र्ययं इति विपर्य्ययार्थ पूर्ववदिति ॥ १०॥

रास्नायण्ट्यमृतैरएंड-वलागोच्चरसाधित । काथोऽन्त्रवृद्धिं हन्त्याशु रुवुतैलेन मिथित ॥ ११ ॥ रास्तेत्यादि—सप्टम् ॥ ११ ॥

्र तेलमेरहडजं पीत्वा वलासिद्धपयोऽन्वितम् । त्रप्रध्मानश्रुलोपचितामन्त्रवृद्धि जयेन्नर ॥ १२॥ वलामिद्धपयोऽन्वितमिति । इद चीरसाधनपारिमाषया वलामूलसाधिते चीरे एर एटतेल प्रक्षिप्य पेयमित्यर्थ ॥ १२ ॥

हरीतकीं मूत्रसिद्धां सतैलां लवणान्विताम्। प्रातः प्रातश्च सेवेत कफवातामयापहाम्॥ १३॥

हरीतकीमित्यादी—तैलमरपडतैलमित्याहु । श्रस्य योगस्य विरेचनत्वान्मूत्रे-णव पानमिच्छन्ति, श्रन्ये तु उष्णोदकेन पानमित्याहु ॥ १३॥

> गोसूत्रसिद्धां रुबुतैलशृष्टां हरीतकीं सैन्धवचूर्णयुक्ताम् । खादेन्नरः कोष्णजलाचुपानां निहन्ति वृद्धिं चिरजां प्रवृद्धाम् ॥ १४॥

गोमूचेत्यादि-पूर्वयोगापेचया, मृष्टामिति विशेष । कोष्यजलानुपानामिति पाठपचे क्रियाविशेषयाम् ॥ १४ ॥

त्रिफलाकाथगोमूत्रं पिवेत् प्रातरतिन्द्रत ।
कफवातोद्भवं हन्ति श्वयथुं वृपणोत्थितम् ॥ १४ ॥
किफलेत्यादौ—गोमूत्र प्रकेष्यम् ॥ १४ ॥
सरलागुरुकुष्टानि देवदारुमहौषधम् ।
मूत्रारनालसम्पिष्टं शोथमं कफवातनुत् ॥ १६-॥

सरकत्यादी—मरल सरलकाष्ठ, लेपोऽय योग ॥ १६ ॥
भृष्टो रुबुकतेलेन कल्कः पथ्यासमुद्भवः ।
कृष्णासैन्धवसंयुक्तो वृद्धिरोगहरः परः ॥ १७ ॥
भृष्ट हत्यादियोगो मलग्गविधया ॥ १७ ॥

गव्यं घृतं सैन्धवसम्प्रयुक्तं शम्बूकभाएंड निहितं प्रयत्नात्। सप्ताहमादित्यकरैविंपकं

हन्यात् कुरग्डं चिरजं प्रवृद्धम् ॥ १८ ॥ शम्बूकमाण्ड इति—शम्बूकरूपमाण्डे, शम्बूकमाण्डच सबस्क प्राद्य, न तु पुराणमित्याद्व । धतात् पादिकञ्च सैन्धविमति च वदन्ति । लेपविधया योज्यमेतत् ॥ १८ ॥

पेन्द्रीमूलमवं चूर्णं रुबुतैलेन मर्दितम्।

त्रयहाद्गोपयसा पीतं सर्ववृद्धिनिवारणम् ॥ १६ ॥

रुद्रजटामूललिप्ता करटन्यङ्कचर्मणा।

वद्धा वृद्धि शमं याति चिरजापि न संशय ॥ २० ॥

निष्पिष्टमारनालेन रूपिकामूलवल्कलम्।

लेपो वृद्ध्यामयं हन्ति बद्धमूलमपि हढम् ॥ २१ ॥

पेन्द्रीत्यादि—पेन्द्री गोरचकर्कटी । रुद्रजटेति रुद्रजटा रुजड इति ख्याता । आदौ रुद्रजटामूलकल्केन लिप्त्वा तदनु करटवी कटा इति ख्याता नकुलाकारा प्रायशो षृचोपरि तिष्ठति, तस्या अङ्कचर्मणा कोडचर्मणा वद्धा वृद्धिरित्यर्थ । निष्पिष्टिमित्यादि—रूपिका अर्कपर्ण ॥ १६—२१॥

वचासर्पपकत्केन प्रलेपो दृद्धिनाशन ॥२२॥ वचत्यादि—स्पष्टम्॥ २२॥

लजागृधमलाभ्याञ्च लेपो वृद्धिहरः पर ॥ २३ ॥ लजेत्यादौ—लज्जा वराहकान्ता, गृप्रपत्तियो मल विट्॥ २३॥

मूलं विस्वकिपत्थयोररलुकस्याग्नेर्वृहत्योर्द्वयोः श्यामापूतिकरञ्जशिग्रुकतरोर्विश्वीषघारुष्करम् । कृष्णाग्रन्थिकचव्यपञ्चलवण्जाराजमोदान्वितं पीतं काञ्जिककोष्णतोयमथितं चूर्णीकृतं वक्षजित् २४

सम्प्रति व्रष्ट्रचिकित्सामाइ । व्रध्नलद्याण्य्य यद्यपि रुग्विनिक्षये नास्ति तथापि तन्त्रान्तरादनुसर्त्तं व्यम्, यथा, 'श्रत्यभिष्यन्त्रिगुर्वन्नसेवनान्निचय गत । करोति प्रात्यच्छोथ दोषो वङ्चणसन्धिषु । ज्वरस्ताङ्गदाहाद्य त व्रक्षमिति निर्दिशेष् १ इति । व्रवस्तु लोके माडुभीति नाम्ना ख्यातः । मूलमित्यादि—वाग्म-टस्य । मूलमिति पष्ठयन्तैः सर्वेयोज्यम् । श्ररद्धकः श्योनाक श्रश्निश्चत्रकः, श्यामा वृद्धदारकः, पूतिकरक्षो लाटाकरकः, काञ्जिककोष्णतोयमार्थतानामन्यतमेन पान प्रकृत्याद्यपेद्वया द्वेयम् ॥ २४ ॥

श्रवीत्तीरेण गोधूमकरकं कुन्दुरुकस्य वा। प्रलेपनं सुखोष्णं स्याद् ब्रध्नश्रूलहरं परम्॥ २४॥

श्रवीक्षीरेखेत्यादि—वाग्मटस्य । श्रवीक्षीरेख गोधूमकुन्दुरुखी पिष्ट्वा लष् कार्य्य , एक एवाय योग । वाशस्य पूर्वयोगापेचया । श्रतएव वाग्मटे वाशस्य-स्थाने चकार पट्यते । श्रपरे तु योगद्वयमाहुः । कुन्दुरु स्वनामख्यातम् ॥ २५ ॥

> मृतमात्रे तु वै काके विशस्ते सम्प्रवेशयेत्। वधं मुद्दर्त्ते मेघावी तत्त्रणाद्रुजं भवेत्॥ २६॥

मृतमात्र इत्यपि वाग्भटस्य। मृतमात्र इति संयोमारिते। विशस्त इति पाटिते। काकस्य कोड पाटियत्वा तत्र कोष्णे क्रभ प्रवेशनीय ततो वन्धः कार्य्यः ॥२६॥

श्रजाजी हञ्जुषां कुष्ठं गोधूमं वदराणि च। काञ्जिकेन समं पिष्द्वा कुर्य्याद् ब्रध्नमलेपनम् ॥ २७॥ भजाजीत्यादि—स्पष्टम् ॥ २७॥

## चहत्सैन्धवाद्यं तैलम्

सैन्धवं मदनं कुष्ठं शताह्वां निचुलं वचाम्।
हीवेरं मधुकं भागीं देवदारु सनागरम्॥
कट्फलं पौष्करं मेदां चिवकां चित्रकं शटीम्।
विडङ्गातिविषे श्यामां रेणुकां नीलिनीं स्थिराम्॥
विल्वाजमोदे कृष्णाञ्च दन्तीरास्ने प्रिष्य च।
साध्यमेरएडजं तैलं तैलं वा कफवातनुत्॥
व्रश्लोदावर्त्तगुल्मार्शः ज्लीहमहाख्यमारुतान्।
श्रानाहमश्मरीञ्चैव हन्यात् तदनुवासनात्॥२८॥

सैन्धवाधतेल---निचुलो वेतसः, श्यामा त्रिवृतेति वैद्यप्रसारकसवादात्। नीलिनी नीलबुद्धा । चतुर्गुणजलेन पाकः । तेल वेति तिलतेल वा ॥ २८ ॥

## शतपुष्पाद्यं भृतेम्

शतपुष्पामृतादारु चन्दनं रजनीद्वयम् । जीरके द्वे वचानाग त्रिफलागुग्गुलुत्वचः॥ मांसी कुष्ठं पत्रकैलारान्ताश्टद्धीः सचित्रका ।
किमिन्नमध्यगन्धश्च शैलेय कहुरोहिणीम् ॥
सैन्धवं तगरं पिष्द्वा कुटजातिविये समे ।
एतैश्च कार्षिकै कर्क्केष्ट्रेतप्रस्थं विपाचयेत् ॥
चृपमुण्डितिकैग्ण्ड निम्वपत्रभव रसम् ।
कण्टकार्य्यास्तथा चीरं प्रस्थं प्रस्थं विनिधिपेन् ॥
सिद्धमेतद् घृतं पीतमन्त्रवृद्धिमपोहति ।
वातवृद्धि पित्तवृद्धि मेदोवृद्धिञ्च टारुणाम् ।
मूत्रवृद्धि स्रीपटं वा यकुरुष्तीहानमेव च ।
शतपुष्पाघृतं रोगान् हन्यांदव नं संश्वयः ॥ २६ ॥
शतपुष्पाण् सहन् ॥ २६ ॥
घृतं सारेश्वरं योज्यं न्रभवृद्धिनिवृत्तये ॥ ३० ॥
इति वृद्धिन्नभ्र-चिकित्सा

सीरेश्वरष्टत वस्यमाणम् ॥ ३०॥ इति गृद्धिमधन्त्रितमाविष्ट्ति ।

# अथ गलगण्डगण्डमालापची-ग्रन्थ्यर्बुदचिकित्सा।

यवसुद्गपटोलानि कट्ट रूच्च्च भोजनम् ।
छर्दि सरक्षमुक्तिञ्च गलगएडे प्रयोजयेत् ॥ १ ॥
तएडलोदकपिष्टेन मूलेन परिलेपित ।
हस्तिकर्णपलाशस्य गलगएडः प्रशाम्यति ॥ २ ॥
सर्पपान् शिष्रुवीजानि श्रण्वीजातसीःयवान् ।
मूलकस्य च वीजानि तकेणाम्लेन पेपयेत् ॥

'गएडानि प्रन्थयश्चापि गलगएडाः सुद्राह्याः।
प्रलेपात् तेन शाम्यन्ति विलयं यान्ति चाचिरात्॥३॥
जीर्णकर्कारुकरसो विडसैन्धवसंयुत ।
नस्येन हन्ति तरुणं गलगएडं न संशय ॥ ४॥
जलकुम्भीकजं भस्म पक्कं गोमूत्रगालितम्।
पिवेत् कोद्रवमक्काशी गलगएडप्रशान्तथे॥ ४॥
स्ट्यावर्त्तरसोनाभ्यां गलगएडोपनाहने।
स्फाटास्रावे शमं याति गलगएडो न संशय ॥६॥
तिक्कालावुफले पक्कं सप्ताहमुपित जलम्।
मद्यं चा गलगएडमं पानात् पथ्यानुसेविन ॥ ७॥
कद्फलचूर्णान्तर्गलघर्षे गलगएडमपहरति।
घृतमिश्रं पीतामिव श्वेतिगिरिकर्णिकामूलम् ॥ ६॥

उक्तसप्तस्येव गलगण्डादयोऽभिधीयन्ते । तण्डुलोदकेत्यादि । हस्तिकर्ण, पलाशस्य मूलेनेत्यन्वय सर्वेऽपि गलगण्डाः वातकफमेदोभिरारभ्यन्ते, न तु पित्तेन व्याधिस्वभावाद । श्रतो गलगण्डोक्षलेपा कोष्णा एव देया इत्याहु । जीणकक्षिर परिण्यतितिकालावुः, श्रन्य तु कूष्माण्डभेद इत्याहु , व्यवहारस्तु पूर्वेणैव । तरुण्मित्यविरजातम् । जलकुम्भी पाह्मा, तस्या भस्म पानीयक्षारविधिना गोमूत्रेण विपाच्य परिस्नाच्य च पिवेत् । उपनाहनसुष्णवहलेलपः । स्फोटास्रावरुष्णेपनाह-कृतं । श्रेतिति—श्रेतगिरिकर्णिका श्रेतापद्माजिता ॥ १-८ ॥

महिपीमूत्रविमिश्रं लौहमलं संस्थितं घटे मासम्।
" श्रन्तर्धूमविदग्धं लिह्यान्मधुनाथ गलगएड ॥ ६ ॥
जिह्वायाः पार्श्वतोऽधस्तिच्छरा द्वादश कीर्तिताः।
तासां स्थूलशिरे कृष्णे छिन्द्याद् द्वे च शनैः शनैः॥
विडिशनैव संगृह्य कुशपत्रण बुद्धिमान्।
स्रुते रक्ते व्रणे तस्मिन् द्यात् सगुडमार्द्रकम्।
भाजनञ्चात्तभिष्यन्दि यूषं कौलत्थ इष्यते॥ १०॥

कर्ण्युग्मविहःसन्धिमध्याभ्यासे स्थितञ्च यत्। उपय्युपरि तञ्जिन्द्यात् गलगएडे शिरात्रयम् ॥ ११ ॥ महिषीतादी-पुरायलौहमल महिषीमूत्रे मास सापित्वा त्रनार्ष्म दग्धा

मधुना लिझादित्यथे: । जिझाया इत्यादी—कृष्णे स्थूलिशिरे विदिशेन शने शनेः समुद्रा कुशपत्रेण शक्तिवेशिण जिन्यादित्यन्वय । तिसन् मणे सृतरिक सित मणुड-माईकमधाद्रस्थयेत् । अन्य तु द्यादिति पठिन्ति, तन्मते भच्याधिमिति शेष । कर्णेयुग्मविह सिन्धिमध्यास्यास इति—कर्णयो पृष्ठममीपे उपर्य्युपरिस्तिमित्यन्वयः ॥ ६—११ ॥

## तुम्बीतैलम्

विडक्षकारसिन्धू प्रारास्नाभिन्योपदास्तिः।
कडुतुम्बीफलरसे कडुतैलं विपाचितम्॥
विरोत्थमपि नस्येन गलगगडं विनाशयेत्॥ १२॥
तुम्बीतैले—स्या वचा। कडुतुम्बीफलरम इति परियतिकितुम्बीफलस्य
चतुग्रंथे खरसे इत्यर्थः। स्क हि वाग्येट-स्दायास्तिकतुम्बाश्च रसे तैलाद्यतुर्गुणे"
इति ॥ १२॥

## अमृताद्यं तैलम्

तैलं पिवेचामृतविज्ञिनिम्व-

हंसाह्यावृत्तकिपण्लीभिः।

सिद्धं वलाभ्याञ्च सदेवदारु

हिताय नित्यं गलगएडरोगी ॥ १३॥

तैलिमिलादि—सुश्रुतस्य । अमृतविद्धी गुद्ध्ची, वृष्ठक कुटज , हमाह्या हमपादी, यदाह वाग्मटः "गुद्ध्चीनिम्बकुटजहसपादीवलाइय । साधित पायये-चैल सकृष्णादेवदाक्षिः" इति । अन्य तु हिस्राह्येति पठित्वा कालाकड व्याख्या-नवन्ति । अमृतवल्ल्यादिभिः काथकल्करूपेरिति चन्द्रिका । अन्य तु एभि मर्वे करक वल चतुर्गुणमिलाहु ॥ १३॥

माक्षिकाढ्यः सकृत् पीत काथो वरुणमूलज । गण्डमाला हरत्याग्र चिरकालानुवन्धिनीम् ॥ पिष्ट्वा ज्येष्ठाम्बुना पेयाः काञ्चनारत्वचः श्रुभाः। विश्वभेषजसंयुक्ता गर्डमालाहराः पराः ॥
श्रारम्वधिशकां चित्रं पिष्ट्वा तर्हलवारिणा ।
सम्यङ्नस्पत्रलेपाभ्यां गर्डमालां समुद्धरेत् ॥
गर्हमालामयात्तीनां नस्यकमीण योजयेत् ।
निर्गुड्याश्च शिफां सम्यग्वारिणा परिपेपिताम् ॥ १४॥
कोषातकीनां सरसेन नस्यं

तुम्ब्यास्तु वा पिष्पत्तिसंयुतेन । तैलेन वारिष्टभवेन कुर्य्याद्

वचोपकुल्ये सह माज्ञिकेण ॥ १४ ॥
पेन्द्रचा वा गिरिक्रण्या वा मूनं गोसूत्रयोगत ।
गएडमालां हरेत् पीतं चिरकालोत्थितामपि ॥ १६ ॥
श्रमचुषाद्वोद्भतात् स्वरसाद् द्वे पत्ते पिवेत् ।
श्रपच्या गएडमोलायाः कामलायाश्च नाशनः ॥ १७ ॥
गलगएडं गएडमालां कुरएडांश्च विनाशयेत् ।
पिष्टं ज्येष्ठाम्बुना मूलं लेपाद् ब्राह्मण्याप्टिजम् ॥ १८ ॥
श्रत पर गएडमालिचिकत्सामाइ—माज्ञिकाळा इत्यादि । मक्चित्येकवार

श्रत पर गण्डमालाचिकित्सामाइ—माचिकाढ्य इत्यादि । मक्कदित्येकवार पीतः स्तुतिवादोऽयम् । ज्येष्ठाम्त्रु तण्डुलोदकम् । काश्रनारः काञ्चनः । श्रार्व्यथस्य शिफा मूलम् । कोषातकीत्यादि चत्वारो योगाः । निष्पलीसयुतेनिति पद कोषातकीना स्वरसेनत्योननापि सम्बध्यते । कोषातकी घोषक , तस्याः फलस्य स्वरमः, एव तिकतुम्न्या श्रीप । श्रिरष्टभवेन निम्बफलजेन तैलेन तृतियो योग । श्रिरष्टभवस्येति पाठान्तरे श्रिरष्टभलस्येत्यर्थः । वचोपकुल्य इति—वचोपकुल्य पिष्ट्वा मधुना नस्य विधेयमित्यर्थः । पेन्द्री गोरचकर्कटी, गिरिकर्णी श्रेतापराजिता, श्रलम्नुषा मुण्डितिका श्रलम्नुषो वा ॥ १४-१८॥

# 

श्रभ्यद्गान्नाशयेन्नॄणां गगडमालां सुदारुणाम्। जुच्छुन्दर्था विपकन्तु च्रणात् तेलवरं भ्रवम् ॥ १६॥ श्रभ्यक्षादिलादौ—छुच्छुन्दरी छुद्धया शति स्याता मूषिकाकृति., तस्याः कस्को जल चतुर्गुणम् ॥ १६॥

## शाखोटकविम्व्याचे तैले

गएडमालापहं तेल सिद्धं शाखोटकत्वचा।

विम्ब्यश्वमारनिर्गुएडी-साधितञ्चापि नावनम् ॥ २० ॥
गण्डमालापहिमचादि —शाखीटकत्वचा खरमकरूकरूपया, सुश्रुतेऽप्युक्त
"शाखीटकत्कखरमेन सिद्ध तैल हित नस्पविरेचनेपु" हित । विम्बीसादि योगान्तरम् । विम्बी डिम्बिरिति ख्याता, तेलाकुचा इसन्ये। अधमार करवीर । विम्ब्यादीना मूलस्य कल्को जल चतुर्गुयमिति गयदास ॥ २० ॥

# निगुगडीतैलम्

निर्गुएडीखरसेनाथ लाङ्गलीमूलकाटिकतम् । तैल नस्यान्निद्दन्त्याश्च गएडमालां सुदारुणाम् ॥ २१ ॥ निर्गुएडीलारी—निर्गुएडीखरसश्चतुर्गुण ॥ २१ ॥

निर्गुण्डीलादी—निर्गुण्डीलरसम्बद्धग्रंण ॥ २१ ॥
वनकापीसिकामूलं तग्रहलैः सह योजितम् ।
पक्त्वा तु पृषिकां खादेदपचीनासनाय च ॥
शोभाञ्जनं देवदारु काञ्जिकेन तु पेषितम् ।
कोष्णं प्रलेपतो हन्यादपचीमतिदुस्तराम् ॥
सर्पपारिप्रपत्राणि दम्धा भल्लातकः सह।
छागमूत्रेण सम्पिप्रमपचीकं प्रलेपनम् ॥ २२ ॥
अपनीविकित्सामाह बनेसादि—त्रयो मागासग्रहलाना भेपनस्वैकः ॥२२॥

श्रश्वत्थकाष्ठ निचुलं गवां दन्तञ्च दाहयेत् । वराहमज्जसंयुक्तं भसा हन्त्यपचीव्रणान् ॥ २३ ॥ ः भरतयेलादो—वराहमक्तयोगाष्ठेषः ॥ २१ ॥

> पार्षिण प्रति द्वादश चाङ्गुलानि मिन्वेन्द्रवर्सित परिवर्ज्य सम्यक्। विदार्ज्य मत्स्यागडीनभानि वैद्यो

, निष्कृष्य जालान्यनलं विद्ध्यात् ॥ २४ ॥ पार्मेण प्रतीलादि—सुश्रुतस्य । पाष्टिणर्गुल्मस्याधोदेश , पार्टिणमारम्य कद्ष्वं द्वादशाङ्गुलानि मित्ता परिमाय इन्द्रवर्सित द्वगुल परिसन्य विदार्थ्य जालानि मेदोजालानि मत्स्याय्डेन सष्ट्रशान्याकृष्याशिमनचारयेदित्यर्थ । एनमण्या मूलोच्छदात् प्रशम ; यदाष्ट् भोजः—'नातिषत्तकफा वृद्धा मेदश्चापि समाचितम् । जद्वयोः कण्डरा प्राप्य मत्स्याय्डसदृशान् नहून् । कुर्वन्तीत्यादि ॥ २४॥

### मणिवन्धोपरिष्टाद्वा कुर्य्याद्वेखात्तयं भिषक् म्रङ्गुल्यन्तरितं सम्यगपचीनां प्रशान्तये॥ २४॥

कचाकूपरसिन्यगतापचिषु वाहुगतमेव कमीह, मिखवन्धेत्यादि—सुश्रुतस्य । मिखिवन्धो हस्तवाहुसान्धि, श्रत्र मिखिवन्धादड्गुलमेक द्वयं वा परित्यज्य दाहः कार्य्यः ॥ २५ ॥

> द्रग्डोत्पलाभवं सूलं बद्धं पुष्येऽपर्ची जयेत् श्रपामार्गस्य वा च्छिन्द्याजिह्वातलगते शिरे ॥ २६॥

दराडीत्पलेत्यादि—दराडीत्पला स्तनामख्याता। श्रपामार्गस्य वा मूलमिति योज्यम् । श्रपचीप्रदेश एव भेषजवन्धनम् । श्रत्रैव रास्नकर्मान्तरमाइ छिन्धादि-त्यादि ॥ २६ ॥

# न्योषाद्यं तैलम्

व्योषं विडक्षं मधुकं सैन्धवं देवदारु च । तैलमिभिः श्रतं नस्यात् कुच्छामप्यपर्ची जयेत् ॥२७॥ न्योपमित्यादो—जल चतुर्गुणम् ॥ २७॥

# चन्दनाद्यं तैलम्

चन्दनं साभया लाजा वचा च कहरोहिणी।

एभिस्तेलं श्रतं पीतं समूलामपर्ची जयेत्॥ २८॥

चन्दनिमत्यादी—अभया हरीतकी, न तु अभयभुशीर, ' वचाहरीतकीलाचाकहरोहिणिचन्दनै.। तैल प्रसाधिते पीत समूलामपर्ची जयेत् ' इति वाग्भटसवादात्॥ २८॥

# गुज्जाद्यं तैलम्

गुञ्जाहयारिश्यामार्क-सर्पपैर्मूत्रसाधितम् । तैलन्तु दशधा पश्चात् कणालवणापञ्चकः मरिचैश्चूर्णितेर्युक्त सर्वावस्थागतां जयेत्। श्रभ्यद्वादपर्ची नाडीं वल्मीकार्शोऽर्वुदवणान् ॥ २६॥

गुक्तत्यादी—ह्यारि क्रावीरः तस्य मूलम् । श्यामा वृद्धदारकः । अर्कस्य द्वीरम् । गोमृत्र चतुर्गुण दत्वा दशभा पाकः । ततः कणापञ्चलवणचूर्णं मारेचचूर्णः प्रक्षित्य प्रयोज्यम् । कणालवणपञ्चकमारिचैग्त्यिकपदम् , ' वृत्ततैलवसामञ्जवेशवार-पयो दिशः। मासधावनतोयामम् ' इतिवत् ॥ २६ ॥

ग्रन्थिष्वामेषु कुर्वीत भिषक् शोधप्रतिकियाम् । पक्कानापाट्य संशोध्य रोपयेद् व्रण्भेपजे ॥ ३०॥ ग्रन्थिचिकित्सामाह श्रन्थिष्वत्यादि—शोधप्रतिक्रियामिति—व्रणशोधाचिकि-त्मितम्, तच सौश्रुतिद्ववर्णोयोक्तमपतर्पणादिविरेचनान्तमेकादशविधम् ॥ ३०॥

हिसा सरोहिएयमृता च भागीं

श्योनाकविल्वागुरुक्तप्णगन्धाः।

गोवित्तविष्टाः सह तालपर्या

ग्रन्थौ विधयोऽनिलंजे प्रलेप ॥ ३१ ॥

हिसेत्यादि—सुश्रुतस्य । हिसा कालाकडा । कृष्णगन्या शोभाजनः । गोषित्तिष्टा इत्यत्र गोजीश्च पिष्ट्वेति पाठान्तरे गोजी शास्त्रोटक , किन्तु गोजीपाठो युक्त आयुर्वेदसारप्रामाय्यात् तथा सुश्रुतटीकाक्चाक्रिन्यांख्यातत्वान्च । तालपर्यां तालमूली । ३१॥

> जलायुका पित्तकृते हितास्तु स्नीरोदकाभ्यां परिषेचनञ्च। काकोलिवर्गस्य तु शीतलानि

पिवेत् कपायाणि सशकराणि ॥ ३२ ॥ जलायुका श्त्यादि--विद्वानित्यन्त सुश्रुतस्य । काकोलिवर्गस्यिति काकोल्या-दिगणस्य ॥ ३२ ॥

> द्राज्ञारसेनेज्ञुरसेन वापि वृर्णे पिवेद्वापि हरीतकीनाम् । मधूकजम्ब्र्जुनवेतसानां त्वग्भि प्रदेहानवतारयेखः ॥ ३३॥

द्राचारसेनेत्यादि-स्पष्टम् ॥ ३३ ॥

हतेपु दोपेषु यथानुपूर्व्या

त्रन्थौ भिषक् स्राप्मसमुरिथते च।

स्विन्ने च विम्लापनमेव कुर्या-

दंगुष्ठवेखुदशदीसुतैश्च ॥ ३४॥

हतेपु दोषेष्वित्यादि—नमनादिभिः तथा रक्तमोच्च्येन दोषेषु कफादि-रक्तान्तेपु हतेपु सत्स्र । यथानुपूर्वेति—रनेहरेनदादिकम क्रतेत्यर्थः । वृशदीस्रतः शिलापुत्रकः । श्रत्र छन्दोभङ्गभय नाशङ्कनीयम् , श्रनन्तत्वाच्छन्दोमार्गायाम् । कचित्तु सुश्रुतपुत्तके श्रगुष्ठलोहोपलनेग्रुदयहैरिति प्रस्रते, कचित्तु नेग्रुदृशदीस्रतै-रिति ॥ ३४॥

विकद्वतारग्वधकाकण्नती-

काकादनीतापसवृत्तमूलैः।

श्रालेपयेदेनमलावुभार्गी-

करञ्जकालामदनैश्च विद्वान् ॥ ३४ ॥

विकङ्कतेत्यादिमदनान्त—एको लेप इति चन्द्रिका । विकङ्कतो वयङ्कलिरिति ख्यात. । काकरणन्ती गुजा श्रस्या मूलम् , काकादनी काकितन्दुकः, तापसमृद्ध पुत्रजीवकः, श्रलावु बद्धतुम्बी, काला कालाकडा मिजिष्टा वा ॥ ३४ ॥

दन्तीचित्रकमूलत्वक्स्तुद्यर्कपयसी गुडः।

भल्लातकास्थि काशीशं लेपो भिन्दाच्छिलामपि ॥३६॥ स्तुद्यक्तपयसीति स्तुद्यकंथोः चीरम् । भल्लातकास्थि मल्लातकवीजमः । काशीश धातुकाशीशम् ॥ ३६॥

ग्रन्थ्यर्वुदादिजिल्लेपो मातृवाहककीटजः ॥ ३७ ॥

ग्रन्थीत्यादि—मातृवाहककीट सुखाशादिभवपदकीट इति ख्यातः ॥ ३७॥

स्वर्जिकामूलकचारः शङ्खचूर्णसमन्वित ।

प्रेलेपो विहितस्तीद्द्यो हान्ति ग्रन्थ्यर्वुदादिकान् ॥३८॥

स्विकित्यादि—स्पष्टम् ॥ ३८ ॥

ग्रन्थीनमर्मप्रभवानपका-नुद्भृत्य वाग्नि विद्धीत वैद्य । चीरेण वैतान् प्रतिसारयेतु

संलिख्य संलिख्य यथोपदेशम् ॥ ३६ ॥

यन्थीनित्यादि — सुश्रुतस्य । चारेण वेति विकल्पो दोषापेच्चया, तेन वाते वानकफेडियः, पित्ते च चार इति । पतिमारयेदिति प्रलेपयेत् । यथोपदेशमिति यथारास्त्रम् । एनच व्यक्ति विदर्भतित्यनेनापि सम्बध्यते, तेनाग्निकमंविधिना प्रति-मारणायचारविधिना चित्यर्थः ॥ ३६ ॥

प्रन्थ्यर्बुदानाञ्च यतोऽविशेषः

प्रदेशहेत्वाकृतिदोपदूष्यैः।

ततिथिकित्सेद्भिपगर्वुदानि

विधानविद् ग्रन्थिचिकित्सितेन ॥ ४० ॥

1 70

1

त्रवंदे यान्यिचिकित्मिते मोपपत्तिकमतिदिशति यन्थ्यबुदानामित्यादि—अवि-राप स्वाविराप इह शयः, तेन सुश्रुतोक्तभेदोऽपि भवत्युक्तः । सुश्रुते हि पृथक् प्रन्यिकलद्यणमुक्ता अर्बुदलद्याच्च मात्रप्रदेश स्त्यादिना पृथगवोक्नम्, तस्मात् स्तोक-विरोपे मत्यपि प्रायणाविरोपादिह य्रन्थिचिकित्मैवातिदिश्यतेऽर्बुदे । विधानविदिति दाहादिविधिशः ॥ ४०॥

> वार्ताबुदे चाप्युपनाहनानि स्निग्धेश्च मासैरथ वेशवारैः।

सदं विदध्यात् कुशलस्तु नाड्या

श्रृक्षेण रक्षं,यहुशो हरेच ॥ ४१॥

बातार्द्द इत्यादी — नाडेचिति नाडीस्वेदविधिना ॥ ४१ ॥

खेदोपनाहा मृद्वस्तु पथ्याः

पित्तार्धुदे कायविरेचनश्च॥ ४२॥

स्वेदोपनाहा मृदव इति—मृदुम्वेदो द्रवस्वेद , मृदुरुपनाहस्तु काकोल्यादि-रदुरुव्यकृतः । कायविरेचनमित्यन कायमहण् शिरोविरेचनन्युदासार्थम् ॥ ४२ ॥

विघृष्य,चोडुम्बरशाकगोजी-

पत्रैर्भृशं चौद्रयुतैः प्रतिम्पेत् । रुच्णीकृतैः सर्जरसप्रियंगुः-

पत्तद्गलोधार्जुनयप्रिकाद्धैः॥ ४३॥

विश्चेत्यादौ—उडुम्बर फल्गु. कर्कशपत्रत्यात्। शाको मरुजस्तरु. कर्कश-पत्र । गोजी दार्विशाक शाखोटको वा । चौद्रयुतैरिति सर्जरसादिभि सम्बध्यत । पत्तरु रक्तचन्द्रनम् । ऋजुनम्थानेऽज्ञन इति पाठे श्रजन स्नेतोऽज्ञनम् । यष्टिकाह्य यष्टिमधु ॥ ४३ ॥

लेपनं शङ्खचूर्रेन सह मूलकभसना।
कफार्बुदापहं कुर्य्याद् ग्रन्थ्यादिष्ठ विशेषतः॥
लेपनित्यादि—स्पष्टम् ॥ ४४ ॥
निष्पाविपित्याककुल्तत्थकल्कैमीसे प्रगाहैर्द्धमिदितेश्व।
लेपं विद्ध्यात् क्रिमयो यथात्र
मुञ्चन्त्यपत्यान्यथं मित्तका वा ॥
श्रत्याविश्णं किमिभिः प्रजन्धं
लिखेत् ततोऽग्निं विद्धीत पश्चात्।
यदल्पमूलं त्रपुताम्रसीसैः
संवष्ट्य पत्रैरथवायसैर्वा ॥ ४४ ॥

निष्पावेत्यादि — मुश्रुतस्य । निष्पाव श्रेतिशान्व । पिण्याकस्तिलकलक किमयो यथात्रत्यतः परम् उत्यवन्त इति रेष । मुञ्जन्तीत्यत्र मूर्ण्डन्तीति पाठे अपन्त्यान्यथ माण्ठिका वेत्यत पर मुञ्जन्तीति रेष । पतत्कर्मण फलमाह, अल्पावाशिष्ट- मित्यादि मुश्रुतस्य । किमिमिर्मण्चणादल्पावाशिष्टत्वम् । लिखेदिति अल्पावाशिष्ट प्तिमास राक्षेण जिन्दात्, अल्पावाशिष्टस्य च छदनेन आतुरस्य महान् केश इति तात्पर्यम् । तनोऽभि विदर्भतिति—राज्यञ्जेदनानन्तरञ्जावशिष्ट र्पुदम्लस्य सम्यगुच्छेन्दाय अभि विदर्भति तप्तरालाक्या दहेत् । अभिकर्मणि क्षतेऽपि यद्यर्वदस्य मूल तिष्ठेत् तदा कि कर्त्तव्यमित्याह यदल्पमूलभित्यादि । अर्वुदस्य यदल्पमूल तत्त त्रप्तावानामन्यतमेन रचितै पत्रै सवेष्ट्य स्थापयेदिति व्याख्येयम् , न तु जारायवचरणपित्रया त्रप्तादिपत्रसवेष्टनस्य पूर्वभावित्वमित्याहु । त्रप्तादिपत्रवेष्टनेन च ततुमूलस्यार्चुदस्य महुर्पणात् स्वयमवोपशमो मविष्यतीति भावः । त्रपु रङ्ग ॥ ४५ ॥

त्ताराग्निशस्त्राएयवतारयेच मुहुर्मुहु प्राणमवेत्तमाणुॱ।

#### यदच्छ्या चोपगतानि पार्क पाकक्रमेणोपचरेद् यथोक्रम् ॥ ४६॥

विध्यन्तरमाह चारामीत्यादि—यद्यपि सुश्रुते '' सकृदेवीपहरेच्छ्रस्म् '
इत्युक्त तथापि अर्नुदस्य महामूलत्वात् न तत्र चारादयः सकृदवचारणीया इत्याह
सुद्रुमुद्रुदिति । प्राणमेवचमाण इति यथा न वलहानिः स्यात् तथा कालविप्रकर्ष कृत्वा सुद्रुमुद्रु चारादीनवचारयोदित्यथेः । अपकत्यानुद्रस्य चिकित्मामिभधाय
पक्तस्य चिकित्सामाह, यवुच्छयेति कारणाप्रतिनियमेन अनियतमिभघातादिपाककारण प्राप्येत्यथं, यन्नु निदाने 'न पाकमायान्ति ' इत्युक्त तत् प्रायिकमिति
इयम् । पाकक्रमेणिति पाकोक्तपाटनशोधनादिकमेण । यथोक्तमित्युपचारिकवाविशेपणम् । सुन्नते तु यथोक्तमित्यत्र विधिद्य इति पाठः ॥ ४६॥

सशेषदोषाणि हि यो उर्वुदानि करोति तस्याशु पुनर्भवन्ति । तस्मादशेषाणि समुद्धरेत्तु हन्यु सशेपाणि यथा विपाशी ॥ ४७॥

मरोपेत्यादि--स्पष्टम् ॥४७॥

उपोदिकारसाभ्यक्नास्तत्पत्रपरिवेष्टिताः । प्रणश्यन्त्यचिरान्नुणां पिडकार्बुदजातय ॥ ४⊏ ॥

चपेदिकेत्यादी—पिडकार्श्वदजातथ इति पिडकार्श्वदमकारा इत्यर्थ ॥ ४**८** ॥

उपोदिका काञ्जिकतकपिष्टा

तयोपनाहो लवरोन मिश्र ।

हप्टें। उर्वुदानां प्रश्माय काश्चिद्

दिने दिने रात्रिपु मर्मजानाम्॥ ४६॥

चपोदिकेत्यादि-स्पष्टम् ॥ ४६ ॥

त्तेषोऽर्वुद्जिद्रम्भामोचकभस्मतुषशङ्खचूर्यकृतः । शरटरुधिरार्द्रगन्धकथवजविडङ्गनागरैर्वाथ ॥ ४०॥

लेप स्त्यादी—रम्मामोचकः कदलीकाग्रहक , तस्य भस्म जार इत्यर्थः । शरटः कृकलास । यनको यनजार ॥ ४०॥ स्तुद्दीगरडीरिकास्वेदो नाश्येदर्वुदानि व । सीसकेनाथ लवर्णे पिराडारकफलन वा ॥ ४१ ॥ स्तुद्दीत्यादि चलार स्वेदा । स्तुद्दीगरडीरिका स्तुद्दीकारड । तप्तसांजुद-रहेन तथा तप्तसीसकेन तथा तप्तलवर्णेन तथा पिराडारकफलमुत्रास्विष पोष्ट्रिलिका वद्धा स्वद कार्यं इत्यर्थ ॥ ४१॥

हरिद्रालोध्रपत्तक्षगृहधूममनःशिलाः।
मधुप्रगाढो लेपोऽयं मेदोऽर्वदहर परः॥ ४२॥
पतामेव कियां कुर्य्यादशेषां शर्करावुदे॥ ४३॥
इति गलगग्ड-गग्डमालापचीय्रन्थ्यर्वुद्विकित्सा।

हरिद्रेत्यादौ--पत्तङ्ग रक्षचन्दनम् ॥ ५२--५३ ॥ इति गलगण्डगण्डमालापचीयन्थ्यर्वुदचिकित्सा-विष्टति ।

# अथ श्ठीपदिचिकित्सा।

लहुनालेपनस्वेदरेचनै रक्तमोत्त्रणैः।
प्रायः श्रेष्णहरैकष्णै श्रीपदं समुपाचरेत्॥१॥
पूर्वोक्तसङ्गत्वेन श्रीपदिचिकित्तित्रमुच्यते। लहुनत्यादि—न्पष्टम्।
धुस्तूरेरएडिनिगुर्गडीवर्षामूशिग्रुसर्षपैः।
प्रलेप श्लीपदं हन्ति चिरोत्थमतिदाक्णम्॥२॥
धुस्तूरत्यादि—सप्टम्॥२॥
निष्पिष्टमारनालेन रूपिकामूलवरुकलम्।
प्रलेपात् श्रीपदं हन्ति वद्धमूलमपि दृढम्॥३॥
निष्पिष्टमित्यादौ—रूपिका अर्कमूलम्॥३॥
पिराडारकतरुसम्भववन्दाकशिफा
जयित सर्पिषा पीता।

" श्ठीपदमुत्रं नियतं बद्धा स्त्रेण जह्वायाम् ॥ ४ ॥

पिएटारकतक स्वनामख्यात । बद्धा स्त्रेखिति श्रशापि बन्दाकशिफेति । (श्रय-मर्थ वन्दाकशिफा मा ८ एत तो २ पेयम् । श्रश्रवा श्रीपदाश्रयज्ञवाया रक्तस्त्रेख वन्धनीया ॥ ४ ॥

हितश्चालेपने नित्यं चित्रको देवदारु वा ।
सिद्धार्थिशियुक्तरुको वा सुखोष्णमूत्रपेपित ॥ ४॥
हितश्चेत्यादि—गोमूत्रपिष्टास्त्रयो लेपा बोध्या । सिद्धार्थः श्वेतसर्पे ॥ ४॥
सिद्धस्येदोपनाहांश्च श्कीपदेऽनिलं भिपक् ।
कृत्वा गुल्फोपरि शिरां विध्येत चतुरंगुले ॥ ६॥
सेदेत्यादि—सुश्रनस्य । सेद्धेन्दिशिह शिराण्यधाहमूती, न हु स्वतन्त्रतया
सेते देयः मंबर्शपदाना कफप्रधानतया विरूक्णियत्वाद् । श्रयद्य गुल्फोपरि
शिराज्यथो रक्तदर्शं मत्योमेव कार्य्य प्रचाद्वागे ॥ ६॥

गुल्फस्याघ शिरां विध्येत् ऋीपदे पित्तसम्भवे । पित्तन्नीञ्च क्रियां कुर्य्यात् पित्तार्बुदविसर्पवत् ॥ ७ ॥

पैत्तिकशीपदिचिकित्सामाह, गुल्फस्याथ इत्यादि—सुश्रतस्य । पित्तन्नेश्वेति चकाराद कफन्नोच क्रिया कुर्योदिति शेयम्, श्रीपदाना कफप्रधानत्वात् ॥ ७ ॥

मिंडियां मधुकं रास्नां सिंहस्नां सपुनर्नवाम्।
पिष्ट्वारनालैंतेपोऽयं पित्तश्रीपद्शान्तये॥ =॥
शिरा सुविदितां विध्येदंगुष्ठे श्रेष्मश्रीपदे।
मधुयुक्तानि चार्भादणं कप्मयाणि पिवेन्नर ॥ ६॥
पिवेत् सर्पपतेलेन श्रीपदानां निवृत्तये।
पूर्तीकरञ्जव्दं रसं वापि यथावलम्॥ १०॥
श्रनेनेव विधानेन पुत्रज्ञीवक्तं रसम्।
फाञ्जिकेन पिवेच्चूणं मूत्रेवी वृद्धदारजम्॥ ११॥
रजनीं गुडसंयुक्ता गोमूत्रेण पिवेन्नर ।
वर्षोत्यं श्रीपद हन्ति दृहुकुष्टं विशेषतः॥ १२॥
गन्धवंतैलशृष्टां हरीतकीं गोजलेन य पिवति।
श्रीपदवन्धनमुक्तो भवत्यसौ सप्तरात्रेण॥ १३॥

घान्याम्लं तैलसंयुक्तं कफत्रातविनाशनम्। दीपनश्चामदोषप्रमेतत् श्रीपदनाशनम्॥१४॥ गोधावतीमूलयुक्तां खादेन्माषेग्डरीं नर । जयेत् श्रीपदकोपोत्यं ज्वरं सद्यो न संशय ॥१४॥

मिश्रिष्टितामिति व्यक्षाम् । अङ्गष्ट इति पादाङ्गष्टमित्रिष्टी । विप्रमर्मण उपरि द्वयङ्गले शिरान्यध कार्यः , चिप्रमर्मन्यधाद्धि मरण स्यात् । तद्दक्त सुश्रते "पादाङ्गष्टाङ्गल्यो-र्मध्ये चिप्र नाम मर्म, तत्र विद्धस्याचेपकेन मरणम्" इति । कषायणिति कफहरार-वधादिगणसुष्ककादिगणकृनानि । पूतीकरअच्छन्दनमिति कण्टकिकरअपत्रस्वरस्य प्रवमान कहतैलाच प्रचिप्य पिवेष् । अनेनैव विधाननिति कहतैलम् । गोधावती गाद्यविः एरण्डः । गोजल गोमूत्रम् । तैलसयुक्तमित्यत्र कहतैलम् । गोधावती गोहालियालता एतन्मूलहयैका भागः, माषकलायस्य तु मागत्रयम् ॥ ५-१५॥

ऋीपद्ञो रसोऽभ्यासाद् गुद्धच्यास्तैलसंयुतः ॥ १६ ॥ श्रीपदम्न इत्यादा-गुद्धच्या रस इति खरस काथा वा । तैलमत्र कटुतैलम् ॥१६॥

## **बृद्धदारकचूर्णम्**

विकटु त्रिफला चन्यं दार्वीवरुणगोलुरम्।
त्रलम्बुषां गुहूचीश्च समभागानि चूणयेत्॥
सर्वेषां चूणमाहृत्य वृद्धदारस्य तत्समम्।
काञ्जिकेन च तत् पेयमत्तमात्रं प्रमाणतः॥
जीर्णे चापिदृहारं स्याद्भोजनं सार्वकामिकम्।
नाशयेत् स्ठीपदं स्थाल्यमामवातश्च दारुणम्।
कुष्ठगुल्मानिलहरं वातस्रेष्मज्वरापहृम्॥ १७॥

त्रिकट्वित्यादी-श्रलम्बुषा मुण्डिरो। वृद्धदारस्य तत्सममिति-त्रिकट्वादिसर्व-चूर्णसम वृद्धदारस्य चूर्णमित्यर्थः । सार्वकामिकमिति यथेच्छमित्यर्थः ॥१७॥

पिष्पलीतिफलादारु नागरं सपुनर्नवम् । भागैर्द्विपलिकेरेषां तत्समं वृद्धदारकम् ॥ काञ्जिकेन पिवेच्चूर्णं कर्षमात्रं प्रमाणतः । जीर्णे चापरिहारं स्याद्भोजन सार्वकामिकम् ॥ श्ठीपदं वातरोगांश्च हन्यात् मीहानमेव च । श्रीमञ्ज कुरुते घोरं भसकञ्ज नियच्छति ॥ १८॥ भिप्पलीत्यादी—श्रमञ्ज कुरूत हति विरेकेण भिचहरणात् । श्रन्ये तु यसा-

विष्युतात्यादा—आश्चश्च कुरुत शत विरक्षण विषये । अन्य प्र दिम्न चीर कुरुते झतो भसक नियन्छति प्रयन्छतीत्यादु ॥ १८ ॥

#### कृष्णाद्यमोदकः

कृष्णाचित्रकदन्तीनां कर्षमद्भपलं पलम् । विंशतिश्च हरीतक्यो गुडस्य तु पलद्वयम् । मधुना मोदकं खादेत् श्ठीपदं हन्ति दुस्तरम् ॥ १६ ॥ कृष्णेलादौ—कृष्णादीना कर्णादिमान यथाकम क्षेयम् । विंशतिश्च हरीतक्य इलाकृतिमानात् । मध्वल मोदककरणोचित देयम् ॥ १६ ॥

# सौरेश्वरष्टतम्

सुरसो देवकाष्ठञ्च तिकद्वितिफले तथा।
लवणान्यथ सर्वाणि विडद्गान्यथ चित्रकम् ॥
चिवका पिष्पलीमूलं गुग्गुलुईवुषा वचा।
यवाप्रजञ्च पाठा च शृट्येला वृद्धदारकम् ॥
कल्कैञ्च कार्षिकैरेमिष्टृतप्रस्थं विपाचयेत्।
दशमूलीकषायेण धान्ययूषद्रवेण च ॥
दिधमण्डसमायुक्तं प्रस्थं पृथक् पृथक्।
पक्तं स्यादुकृतं कल्कात् पिवेत् कर्षद्वयं हवि ॥
श्रीपदं कफवातोत्थं मांसरक्ताश्रितञ्च यत्।
मेदःश्रितञ्च पित्तोत्यं हन्यादेव न संशयः॥
श्रपचीं गण्डमालाञ्च श्रन्तवृद्धि तथावुद्म्।
नाशयद् ग्रहणीदीषं श्वयशुं गुदजानि च ॥
परमश्चिकरं हद्य कोष्ठिकिमिविनाशनम् ।
घृतं सौरेश्वर नाम श्रीपदं हन्ति सोवितम्॥

#### जीवकेन कृतं हातद्रागानीकविनाशनम् ॥ २०॥

मारेश्वरष्टते—सुरम पर्णासः वृन्दिलिखिततन्त्रान्तरसवादात् निर्गुयङी वा । [दशमूलीकषायस्य मिलित्वा प्रस्यम्, जल चतुर्गुयम्, रोष प्रस्येमकम् । ] धान्य-यूपद्रव काञ्जिकं न तु धन्याककाथः, धान्याम्लेति तन्त्रान्तरपाठात् व्यवहारामावाच ननु कर्याद्रवयोः कियन्मान याह्यीमत्याह प्रस्थमित्यादि । सौरेश्वरिमिति—इन्द्राणी निर्गुयङीपय्यायः, तेन सुरेश्वरा निर्गुयङी, तत्कृतत्वात् सौरेश्वरिमिति सजा । जीव-केनित जोवो वृहस्पीतः, स्वार्थे कः । श्रन्यलाप्युक्तम्—"द्राचा तुरालमा कृष्णा तुगा कर्कटकी जया । एषा श्रन्त्यानि मूर्णानि योजयेन्मष्ठसपिषा । कासश्वासञ्वर- हर विरोषात् तमक जयतः । निर्मित जीवकेनेद कुमाराया सुखावहम्" इति ॥२०॥

## विडङ्गाद्यतैलम्

विडद्गमरिचार्केषु नागरे चित्रके तथा।
भद्रदार्वेलकाख्येषु सर्वेषु लवणेषु च।
तैलं पर्क पिवेद्यापि श्रीपदानां निवृत्तये॥ २१॥
इति श्रीपद-चिकित्सा॥

विडड्राधतेले--- मद्रदारु देवदारु, पलकाख्यो होगलः पलवालुक इत्यन्ये, पेटिकेल्पपरे । विडड्रादाना कल्को द्रवन्तु जल चर्तुगुणम् ॥ २१ ॥ इति शोपदिचिकित्सा विद्यतिः ।

# अथ विद्रधि-चिकित्सा।

जलाकापातनं शस्तं सर्वसिन्नेच विद्वधौ ।
मृदुर्विरेको लघ्यन्नं स्वेदः पित्तोद्भवं विना ॥ १ ॥
प्रागुक्तसम्बन्धादेव विद्रिषिरुच्यते । मृदुर्विरेक शति—अयञ्च मृदुर्विरेको
बहुधा कार्यः । गम्भीरधातुगतदोषकृतत्वाद विद्रिषिरिति वदन्ति ॥ १ ॥

ţ

वातझमूलकल्केस्तु वसातैलघृताप्लुतैः।
सुखोष्णो वहलो लेपः प्रयोज्यो वातविद्रधौ ॥ २ ॥
वातझेलाहि—सुश्रुतस्य। वातझमूल दरामूलम । वातझसाने सुरङ्गीति पाठे
सरङ्गी शोभाजनक ॥ २ ॥

खेदोपनाहा कर्नच्याः शिग्रमूलसमन्विता । यवगोधूममुद्गैश्च सिद्धिपष्टैः प्रलेपयेत् । विलीयते च्लोनवमपकश्चैव विद्धि ॥ ३॥

स्वेदेलादी—स्वेदो वेशवारादिभिःः । यदाह सुम्रुत —वेशवारे सक्तर्शर-पयोमि पायसैस्तथा । स्वेदयेश्वापि सनतम्" इति । उपनाहोऽपि तवैवोकः, यथा "श्रान्पौदकमासन्तु काकोल्यादि सत्तर्पणः । कोहाम्निसदो सवण प्रयोज्यश्चोप-नाहने" इति । सिद्धिपिष्टैरिति उत्स्विश्वपिष्टै ॥ ३॥

पुनर्नवादारुविश्व-दशमूलाभयाम्भसा । गुग्गुलुं रुवुतैलं वा पिवेन्मारुतविद्रधौ ॥ ४ ॥ पुननेवलादौ—अम्मसा काथेन॥ ४ ॥

पैत्तिकं शर्करालाजा-मधुकैः शारिवायुतैः। प्रदिह्यात् चीरिपप्टैर्वा पयस्योशीरचन्दनैः॥ ४॥

पैत्तिकीमत्यादि - सुश्रुतस्य । योगद्वयेऽपि चीर पेपयार्थम् । शारिवा श्रनन्तमूलम् । पयस्या चीरकाकोली ॥ ४ ॥

पिवेद्वा तिफलाकाथं तिवृत्कल्कात्तसंयुतम्। पञ्चवल्कलकल्केन घृतमिश्रेग लेपनम्॥६॥ पिवेदेति—स्पष्टम्॥६॥

यष्ट्याद्वशारिवादूर्वानलमूलै सचन्द्नैः। चीरिपष्टै प्रलेपस्तु पिचविद्रधिशान्तये॥॥॥

यष्ट्योह्नि--स्पष्टम् ॥ ७ ॥

इएकासिकतालेख गोराकृतुष्पांग्रिभ । मूत्रिपष्टेश्च सततं सेद्येत् श्लेष्मविद्रिधम् ॥ = ॥

इष्टकेत्यादि — सुश्रतस्य । श्रत मूलिपेष्टैरिति प्रमादपाठ । किन्तु मूत्रेरुष्णै-रित्येव पाठ सुश्रते पट्ट्यते । उष्णैश्च मूर्तिदेवसेवद इति टीकाकृता व्याख्या । श्रम्ये तु लोह लोहचूर्णम्, गोशकृत् गोमयम्, एभिरिष्टकाचूर्णादिभिर्मूत्रिपिष्टेरेरग्रह-पत्तवदै, स्वेद इति व्याख्याय मूलिपेष्टेरिति पाठमेव स्वीकुंवनित ॥ म ॥ दशमूलीकषायेण सस्नेहेन रसेन वा। शोथं वर्णं वा कोण्णेन सशूलं परिषेचयेत्॥ ६॥ दशमूलीलादी-संबोहेनेति पूर्वेण परेण व सम्बध्यते। रसेनेति मास-रमेन॥ ६॥

त्रिफलाशियुवरुण-दशमूलाम्भसा पिवेत्। गुग्गुलुं मूतयुक्तं वा विद्रधा कफसम्भवे ॥ १०॥ त्रिफलेलादि—स्पष्टम् ॥ १०॥

पित्तविद्रधिवत् सर्वी कियां निरवशेषतः।

विद्रध्योः कुशल कुर्याद्रक्षागन्तुनिमित्तयोः॥ ११॥ पित्तेलादि—सुष्रतस्य। विपुलवचनस्यापि सर्वशब्दस्य दृष्टत्वात् पुन-

निरवरोषत इत्युक्तं कुत्स्नलेपादिविध्यतिदेशार्थम् ॥ ,११ ॥

शोभाञ्जनकिर्यूहो हिङ्गुसैन्धवसंयुतः । श्रीचराद्विद्रधीन् हन्ति प्रातः प्रातर्निषेवितः ॥ १२ ॥ शोभान्त्रनवेसादि—स्पष्टम् ॥ १२ ॥

शियुमूलं ,जले धौतं दरिषष्टं प्रगालयेत् । तद्रसं मधुना पीत्वा हन्त्यन्तर्विद्रिधि नरः ॥ १३ ॥ शिवृमूलमित्वादो—दरिष्टम्। पित्र ॥ १ ॥

श्वेतवर्पाभुवो मूलं मूलं वरुणकस्य च । जलेन क्षांथतं पीतमपकं विद्राधि जयेत् ॥ १४॥ स्वेतेत्यादि—स्पष्टम् ॥ १४॥

वरुणादिगणकाथमपकेऽभ्यन्तरोतिथते ।

ऊषकादिप्रतीवापं पिवेत् संशमनाय वै ॥ १४ ॥ वरुणेत्यादि — मुश्रतस्य । वरुणाचूषकादिगर्यो सौश्रतौ ॥ १५ ॥

शमयति पाठामूलं सौद्रयुतं तग्डलाम्बुना पीतम्। श्रन्तभूतं विद्रधिमुद्धतमाश्वेव मनुजस्य॥ १६ ॥ श्रपके त्वेतदुद्दिएं पके तु वणवत् किया॥ १७॥

शमयतीत्यादि ---स्पष्टम् ॥ १६-१७ ॥

सुते अप्यूद्धं मध्केष मेरेयाम्लसुरासनैः ।

पेयो वरुणकादिस्तु मधुशिष्ट्रास्तो अथ वा ॥ १८ ॥

सुते अप्रतिस्य । अद्धंत्रस्य । अद्धंत्रस्य तामापि कादा चिकिः

त्साभिधानादनुमन्तव्या । मधुशियुद्धम इति रक्तशो भाक्षनवृत्तस्य मूलम् । मेरेय मधविशेषम् । श्रम्ल काजिकम् ॥ १८ ॥

वियङ्गुधातकीलोधं कद्फलं तिनिशत्वचम्।
एतैस्तैलं विपक्षव्यं विद्वधौ रोपणं परम्॥ १६॥
इति विद्वधि-चिकित्सा॥

प्रियड्ग्वित्यादि—सुश्रतस्य । तिनिशोऽतिमुक्तकः । त्वचिमिति निर्देशास्त्व-शब्दोऽकारान्तो नपुसकलिङ्गोऽप्यस्तीति गम्यते । चन्द्राटे तु तिनिश धवमिति पाठो दृश्यते । तिनिमन्थवमिति पाठान्तरे तिनिस्तिनिश ण्व । प्रियड्ग्वादिभि कल्क , अ द्रव जल चतुर्गुग्रम् । प्रतश्च तैल मज्जमवविद्रभी सुश्रते प्रत्यते ॥ १६ ॥

इति विद्रिधिचिकित्मा-विवृति ।

# अथ व्रणशोथ-चिकित्सा

श्रादौ विम्लापनं कुर्याद् द्वितीयमवसेचनम् । तृतीयमुपनाहञ्च चतुर्थी पाटनिक्तयाम् ॥ पञ्चमं शोधनञ्चैव पष्ठं रोपणमिष्यते । एते क्रमा वणस्योक्षा सप्तमो वैकृतापह ॥१॥

विद्रध्युक्तसवादात् प्रायेण तुल्योपक्रमत्वाचानन्तर व्रख्योध उच्यते । आदी विम्लापनित्यादि—सुअतस्य । अनेन च वाक्येन चिकित्मितस्थानवच्यमाण-पष्ट्युपक्रमाणामन्तर्भावेण सप्तत्व सुखावकीषार्थं स्त्रस्थाने सुअतेनीच्यते, तेन विम्लापनिषद्ध न केवलमगुष्ठादिमर्दनमात्रे परिमाणित बाध्मम्, किन्तु विम्लाप्यते ऽनेनिति व्युत्पत्या वृद्धि परिमार्जनरूपे शमने शोधविलयनकरे प्रलेपपरिपेकाम्यक्षा-दाविष वर्षते । अवसेचनमपि शोधनरूपऽन्त परिमार्जने वमनविरेक्दस्तमोच्चणादी

वर्तते । उपनाहोऽपि स्वेदे पाचनिष्येहे च वर्त्तते । एवमपरेऽप्युपक्रमा शेषेषु थयायोगमन्तर्भाव्याः, किंवा पष्ट्युपक्रमेषु प्राधान्यात् सप्त विम्लापनादय कथ्यन्ते । विम्लापनादयो माविज्ञणविधातप्रयोजकतया ज्ञणस्येख्युक्तम् ॥ १ ॥

मातुलुद्गाग्निमन्थौ च भद्रदारु महौषधम् । श्राहिस्रा चैव रास्ना च प्रलेपो वातशोथहा ॥ २ ॥

मातुलुङ्गेत्यादि—सुश्रतस्य—मातुलुङ्गस्य मृतम् । श्राहिसा कुडकरातिः कालाकडाभेद ॥ २ ॥

करक काञ्जिकसम्पिष्टः स्तिग्ध शाखोटकत्वचः।
सुपर्ण इव नागानां वातशोथविनाशन ॥ ३॥
करक इत्यादी—क्रिष्य इति इतेन ॥ ३॥

दूर्वा च नलमूलञ्च मधुकं चन्दनं तथा।
शीतलाश्च गणा सर्वे प्रलेपः पित्तशोथद्दा॥ ४॥
दूर्वेत्यादौ–शीतलाश्च गणा इति काकील्यादुललादिन्यग्रेभाषाः सौस्रताः॥४

न्यग्रोधोद्धम्बराश्वत्थ-सत्त्वेतसवत्कते । ससर्पिष्कः प्रतेप स्याच्छ्रोथनिर्वापण पर । श्रागन्तौ शोणितोत्थे च एष एव क्रियाक्रमः॥ ४॥ न्यग्रोषेत्यादि—शोथनिर्वापण इति शोधशमन । एष ऐवित पैत्तिकव्रणशोध-

विहित ॥ ५॥

श्रजगन्धाश्वगन्धा च काला सरलया सह।
एकेशिकाजश्रङ्गी च प्रलेपः स्टेष्मशोथहा॥६॥

श्रजगन्थेत्यादौ—श्रजगन्था छागलगन्थेति मानुमती, श्रन्ये यमानिकामाहु । काला श्राहिस्रा कालाकडाभेद । सरला मरल एव, एकेशिका त्रिष्टदिति मानुमती, श्रन्ये तु सरला त्रिवृत् एकेशिका पाठेत्याहु । श्रजश्रद्भी कर्कटश्रद्भीति मानुमती चन्द्रिका च ॥ ६ ॥

पुनर्नवादारुशिम्रु-दशमूलमहौषधैः। कफवातकृते शोथे लेपः कोष्णो विघीयते॥ ७॥ पुनर्नवेत्यादि—रपष्टम्॥ ७॥

### न रात्रौ लेपनं दद्याद्द्यश्च पतित तथा। न च पर्स्युपितं ग्रुष्यमाण नैवावधारयेत्॥ ८॥

न रात्रावित्यादि-न रात्री लेपन दधादित्यादिना निषेधमुद्रेन विध्युपदर्शन रात्री लेपनस्य सर्वथा निषेधार्थ, प्रलेपनिषेधेन प्रदेहादिविधान रात्राविष स्ट्येत, तेन य प्रदेही वातकफाविषय स रात्राविष देयोऽविरुद्धत्वात्, पाचनलेपस्तु पाचक-त्वादेव दातम्य । तथा पित्तेज वातपित्तेज च रातधीतप्रताम्यद्गस्नथा चीरशीत-जलादिसेकश्च निर्वापणतया दीयत एव । तथा मणकल्कोऽप्यद्वोरात्रस्थायिवन्ध विहित पत । उनतञ्ज वैतरखे-'सर्वशस्तु निशा प्राप्य लेपनन्तु निवर्त्तथेत् । चीरसिं -प्रलेपन्त हित्वा प्रच्छादनन्तथा' इति । रात्री लेपदाने पुन सुश्रतेन दीप उक्त., यथा 'न चालेप रात्री प्रयुक्षीत माभूच्छैत्यपिहितोष्मणस्तदनिर्गमाद्विकारप्रयुद्धिः, इति । रात्रिस्वाभाविकशैत्यात् सवृतरोमकृपत्वाच पुनरालेपनेनापि वर्योष्मा वहि-रनिर्गच्छन्नवरुद्धो विवृद्ध सन्नितरा त्रणे त्रणशोधे वा दाइपाकी क्रुर्यादिति भावः । प्रलेपप्रदेहयोस्त भेद सुश्रतेन प्रदर्शितो यथा 'प्रलेप शीतस्तनुरविशोपी विशोपी च। विशोषीति पीडियतन्त्रे विशोषीत्यर्थ । 'प्रदेहस्तूष्ण शीतो वा यहलो बहुर-विशोपी च। वहल इति मार्द्रमहिषचमैप्रमाणोत्मेथ प्रलेप:। प्रदेहस्त प्रलेपापेच्या नहतः। शोथे लेपश्च लोमाभिमुख देय । यदाह सुश्रनः--''तत्र प्रतिलोममानि-म्पेत् न चानुलोम, प्रतिलोमे हि सम्पगीपथमवतिष्ठते अनुप्रविशाति च लोमकूपै स्वेदवाहिभिः शिरामुखैर्शर्थं प्राप्ताति " इति । प्रतिज्ञामभिति लोमाभिमुखम् । न च नैनेति-प्रतिपेधद्वेयन अवधीरयदेनेत्यर्थ । अवधीरणद्य दूरीकरणम् । तन्त्रान्तरेऽप्युक्त,—" तेपश्चीद्धृत्य दातन्यो न यावच्छुष्कता वजेत् । गुणवान्न मेवेच्छको मुथा दोप करोति सः" इति ॥ = ॥

शुष्यमाणमुपेत्तेत प्रदेहं पीडनं प्रति।

न चापि मुखमालिम्पेत् तेन दोपः प्रसिच्यते ॥ ६ ॥
श्रस्यैनापनादमाह—शुष्यमाणामित्यादि—एपेचेतेति यानच्छुष्कता प्रयानि
तानत् न दूरीकुर्योदित्यर्थ । पीडन प्रतीति व्रणपीडनमुद्दिश्य यो लेप इत्यर्थ ।
व्रणपीडनेलपत्तु स एन यः शुष्कः सन् व्रणमुख पीडियत्वा पूय स्नानयि । तनेति
मुखेन । दोप इति पूष ॥ ६॥

स्थिरान् मन्दरुजः शोथान् स्नेहैर्वातकफापहै । श्रम्यज्य खेदयित्वा च वेखुनाड्या तत. शनैः। विम्लापनार्थे सृद्गीयात् तलेनाङ्गुष्ठकेन वा ॥ १० ॥
कठिनशेथे पारिमाधिकाविम्लापनमाह स्थिरानित्यादि—सुष्ठतस्य । वेणुनाह्या वेणुदर्णडेन, तलेन करतलेन ॥ १० ॥

रक्षावसेचनं कुर्याद्रादावेव विचन्नणः। शोथे महति संरब्धे वेदनावति च वर्णे॥ निवारणाय पाकस्य वेदनोपशमाय च। श्रविरोत्पतिते शोथे कार्य्यं शोणितमोन्नणम्॥११॥

रक्षावसेचनिमत्यादि — श्रादाववेति उत्पन्नमात्रे । सुश्रुतेऽप्युक्त — श्रचिरा-त्पितिते शोथे कार्य्य शोषितमोचणम् " इति । शोथ इति त्रणपूर्वक्तपशोथे । नरव्य इति शोथे, पतव्च त्रण इत्यनेन योज्यम् । शोथे इत्युक्तवापि पुन. सरव्य इति वचनम् एताइशसशोथे त्रणे विशेषण रक्षस्नावविधानार्थे, सुश्रुतेऽप्युक्त — "सशोथे कठिने चामे सरके वेदनावति । सिवषे च विशेषण त्रणे विस्नावण हितम् । श्रन्ये तु पच्यमानावस्थत्रणविषयक मरव्य इत्यादिवचन श्रेयमित्याहु ॥११॥

यो न याति शमं लेपस्वदसकापतर्पणैः । सोऽपि नाशं व्रजत्याशु शोथ शोणितमोत्त्वणात् ॥१२॥ उपक्रमान्तरोपत्तया रक्षमोत्त्रणस्य प्रकर्षमाह यो न यातीत्यादि ॥ १२॥

एकतश्च कियाः सर्वा रक्तमोत्तर्यमेकतः ।
रक्तं हि व्यम्लतां याति तच्च नास्ति न चास्ति रक् ॥१३॥
रक्तमित्यादी—व्यम्लता विदग्धताम् ॥ १३॥

स चेदेवमुकान्तः शोथा न प्रशमं वजेत् तस्योपनाद्यैः पकस्य पाटनं हितमुच्यते ॥ १४ ॥

सचिदित्यादि--उपनाहैरिति सोष्णवहलवन्धलेपे. । पक्रस्य पाटनमिति दारगोषधे. शस्त्रैर्वा ॥ १४ ॥

तैलेन सर्पिषा वापि ताभ्यां वा शक्नुपिरिडका।
सुखोष्णा शोथपाकार्थमुपनाहः प्रशस्यते ॥ १४॥

तानेनोपनाद्दानाह तैलेनेत्यादि—तैलेन पात, कफे च सिंपण, पित्ते रक्ते च ताम्या नेति तैलसिंपम्या मिलिताभ्याम् । चर्तुष्टेंनेति देशभेदेन विकल्पो श्रेय इत्याहु ॥ १५.॥ सितला सातसीवीजा दध्यम्ला शक्तुपिणिडका ।
सिक्ष्वकुष्ठलवणा शस्ता स्यादुपनाहने ॥ १६ ॥
सित्तिलादी—किण्व स्रावीजम् ॥ १६ ॥
गवां दन्तं जले घृष्टं विन्दुमात्रं प्रलेपनात् ।
श्रत्यर्थकिटिने वापि शोथे पावनभेदनम् ॥ १८ ॥
यालवृद्धासहज्ञीण-भीक्षणां योपितामपि ।
मर्मोपिरे च जाते तु पके शोथे च दारुणे ॥ १७ ॥
वालेलादि—स्पष्टम् ॥ १७-१८ ॥
कद्वतेलान्वितेलेपात् सर्पानिम्मोकिभस्मभि ।
चय शाम्यति गएडस्य प्रकोपः स्फुटति द्वतम् ॥१६॥
कद्वतेलावि—वय हत्युपनय । गएडस्य प्रणस्य । प्रकोप इति प्रकोप-

हेतुपूयरूपदोप ॥१६॥

चिरविल्वाग्निकौ दन्ती चित्रको हयमारकः। कपोतकद्वग्रध्नाणां पुरीपाणि च दारणम्॥ २०॥ ज्ञारद्रव्याणि वा यानि ज्ञारो वा दारणः पर ॥ २१॥

द्रव्याणा पिच्छिलानान्तु त्वङ्मूलानि निपीडनम्। यवगोधूममापाणां चूर्णानि च समासत ॥ २२॥ पीडनद्रव्याखाद्द द्रव्याखामित्यादि—पिच्छित्रानामिति रेखिशालमलीप्रभृती-नाम्। रदश्च पीडन ममीदिनमोपस्यस्त्रममुखन्नखनिषय श्रेयम्। उक्त हि नाग्मटे— ''पूर्यगर्भानगुद्वारान् सोत्मद्वान् मर्मगानि । नि स्नेष्टे, पीडनद्रव्यैः समन्तात् परिपीटेयत्' इति ॥ २२ ॥

तत प्रचालनं काथ पटे।लीनिम्बपत्रजः।
श्रिविशुद्धे विशुद्धे च न्यप्रोधादित्वगुद्भव ॥ २३ ॥
तन इत्यादि—पटे।लीपत्र पटोलपत्रमेन श्रिवशुद्ध इति चेवद ॥ २३ ॥
पञ्चमूलद्वयं वाते न्यग्रोधादिश्च पैत्तिके ॥ २४ ॥
श्रारम्बधादिको योज्य कफज सर्वकमसु ॥ २४ ॥

पञ्चमूलेत्यादि-न्यमोधादिगण सौश्रत । सर्वकर्भसु प्रचालनेलपनादिपु

#### तिलाष्ट्रकः

तिलकलक सलवणो हे हिरिद्रे त्रिवृद् घृतम्।
मधूकं निम्वपत्राणि लेप स्याद् व्रणशोधनः॥२६॥
निम्वपत्रं तिला दन्ती त्रिवृत्सैन्धवमािक्तम्।
दुप्रव्रणप्रशमनो लेप शोधनकेशरी॥२७॥
एकं वा सारिवामूलं सर्वव्रणविशोधनम्॥२०॥
पटोलीतिलयण्ड्याह्वत्रिवृद्दन्तीनिशाद्वयम्॥
निम्वपत्राणि चालेपः सपद्वव्रणशोधनः॥२६॥

तिलकस्क इत्यादि वचन स्पष्टम् । शारिवामूलमनन्तमूलम् । पटोली पटोल-पन्नम् । पट्ट श्रन्न सैन्धवलवणम् ॥ २६—२६ ॥

> त्रिफला खिद्रो दार्वी न्यप्रोधादिवलाकुशा । निम्वकोलकपत्राणि कषाय शोधने हितः॥ ३०॥

त्रिफलेत्यादी—न्यग्रेषादीति न्यभेषिाडुम्बराश्रत्थ-सदम्बस्य-वेतसा । कर-वीरार्ककुटजाः कषायाः त्रखरोपयाः" इत्यनेन शोधहरोपक्रमे चरकोक्त ग्राह्मम्। श्रस्य योगस्य चरकोक्तत्वात्, किंवा पन्चवल्कलमेव ग्राह्मम् । निम्बकोलकपत्राणि कोमल-निम्बपत्राणीत्यर्थ इति दीपिका । श्रन्य तु कोलको बदर इत्याहु , श्रुक्तमिद वाग्मट-प्रमायात् । श्रन्ये तु कुलकपत्राणीति पठित्वा पटोलपत्राणीति व्याचन्नते ॥ ३०॥ श्रपेतपूर्तिमांसानां मांसस्थानगमरोहताम् । कल्क संरापण् कार्यस्तिलानां मधुकान्वितः ॥ ३१ ॥ श्रपेतित्यादि—नाग्मटस्य । मधुकान्विता यष्टिमधुयुक्त । श्रत्र तिलजो मधु-सयुत इति पाठ सुश्रते बहुपुस्तके च दृश्येत, नाग्मेट तु सर्वेत्रैन मधुकान्वित इति, उभयक्षपि प्रमाण् स्मृतिदैधनत् ॥ ३१ ॥

निम्वपत्रमधुभ्यान्तु युक्त संशोधनः स्मृत ॥ २॥
पूर्वाभ्यां सर्पिपा वापि युक्तश्चाप्युपरोपणः ॥ ३३॥
निम्वपेत्रसादि—पूर्वेक्तर्योष्टमधुयुक्तस्तिनकल्क एव निम्वपत्रमधुभ्या मिषपा
च युक्ता रोषण , अपिशच्दात् शोधनोऽपि भवतीर्स्थ ॥ ३२-३३॥

निम्यपत्रतिले कल्को मधुना त्ततरोधिन । रोपण सर्पिपा युक्तो यवकल्केऽप्ययं विधि ॥३४॥ निम्वपेत्रलादि—उक्ततिलकन्कविधि यवकल्केऽप्यातिदिशति यवकल्केऽप्यय विधिरिति ॥ ३४॥

निम्यपत्रघृतचौद्र-दार्व्वीमधुकसंयुता । वर्त्तिस्तिलानां कल्को चा शोधयेद्रोपयेद् व्यणान् ॥ ३४॥ निम्नपत्रघतेलादि—एभिद्रव्येवस्मालिप्य वर्त्ति कार्यो । वर्तिदानाविषये। वण सुश्रेते यथा—"श्रन्त पूयानणुसुदान् गम्मीरान् मामसिशतान्। शोधनद्रव्य-सुक्षाभिवीत्तिभि ससुपाचरेत् इति । तिलाना कल्को वेति तेपविधया ॥ ३४॥

सप्तरलदुग्धकलकः शमयति दुप्रवर्ण प्रलेपेन ॥ ३६ ॥
मधुयुक्का शर्रपुद्धा सर्ववरणरोपणी कथिता ॥ ३० ॥
सप्तरल इत्यादि—सप्तरल मप्पर्णसस्य चीरम् ॥३६-३० ॥
मानुपशिरःकपालं तदस्थि वा लेपनं मूत्रेण ।
रोपण्मिद चतानां योगशतैरप्यसाध्यानाम् ॥ ३८ ॥
मानुपशिर कपालमिति पुराण माद्यामिलर्थ । मूत्रेणिति गोम्नेण ॥ ३८ ॥
वणान् विशोधयेद् वत्यी स्टमास्यान् सन्धिमर्मगान् ।
प्रभया त्रिवृत्ता दन्ती-लाङ्गलीमधुसैन्धवैः ॥ ३६ ॥
वणानित्यादि—नाग्मटस्य । अमयेत्यस्य स्थाने कृतयेत्येव पाठो वाग्मटवहुपुरत्वेषु हुश्यते ॥ ३६ ॥

सुपवीपत्रपत्त्र कर्णमोटकुठारिकाः। पृथगेते प्रलेपेन गम्भीरव्यणरोपणा ॥ ४०॥

सुपनीत्यादि—सुपनी कारवेरलः, पत्त्रः शालिखः, कर्यमोट स्वनाम-स्यात । कुठारिका कुठारिया, कुठेरक इति पाठे कुठेरक पर्यात ॥ ४०॥ पञ्चवरकलचूर्येवी शुक्तिचूर्यसमायुते । धातकीचूर्यलोधेर्वा तथा रोहान्ति ते व्या ॥ ४१॥

पन्चनत्कलेत्यादि—चरकस्य । शुक्तिवंदरी तस्यास्त्वक् । शुक्तिचूर्णसमा-युतिरिति पञ्चनत्कलचूर्णैरित्यस्य विशेषणम् ॥ ४१ ॥

सदाहा वेदनावन्तो ये व्रणा मारुतोत्तरा ।
तेषां तिलानुमाश्चेव भृष्टान् पयसि निर्वृतान् ॥
तेनैव पयसा पिष्द्वा दद्यादालेपनं भिषक् ॥ ४२ ॥
मदाह इत्यादि—उमा अतमी । पयसि निर्वृतानिति दुग्धे निर्वापितान् ॥४२॥
वाताभिभूतान् सास्रावान् धूपयेदुग्रवेदनान् ।
यवाज्यभूर्जमदनश्चीवेष्टकसुराह्यैः॥ ४३॥

वातामिभृतानित्यादि--वाग्भटस्य । सास्रावान् श्रल्पस्रावान् । भूजों भूजं-'श्रन्थि ।' मदनः सिक्थक इति वृन्दिटप्पणी । श्रीवेष्टको नर्वनीतखोटी, सुराह्य देवदारु ॥ ४३ ॥

> श्रीवासगुग्गुल्वगुरु-शालनिर्यासधूपिता । कठिनत्वं त्रणा यान्ति नश्यन्त्यास्राववेदना ॥ ४४ ॥

श्रीवासेत्यादौ--श्रीवासो नवनीतखोटी । न च पूर्वोक्तेन पौनरुक्त्यम्, श्रस्य वचनस्य तन्त्रान्तरीयत्वात् । षृन्दिटिप्पणिकायान्तु पौनरुक्त्यमाशङ्कय पूर्वोक्तश्री-वेष्टकशब्देन कुन्दुरुरिति व्याख्यातम् । शालिनियामो धूनक ॥ ४४ ॥

तिलाः पय. सिता चौद्रं तैलं मधुकचन्दनम् । लेपेन शोथरुग्दाह-रक्तं निर्वापयेद् व्रणात् ॥ ४४ ॥ तिला इत्यादी---पय पेपणार्थम् । मिता शर्करा । चौद्रतैलाभ्या सन्धाय लेपो देव: ॥ ४५ ॥ पित्तविद्धिवीसपेशमनं लेपनादिकम् ।
श्रिप्तद्रिधेवीसपेशमनं लेपनादिकम् ।
श्रिप्तद्रये वर्षे सम्यक् प्रयुद्धीत चिकित्सक ॥ ४६ ॥
द्रानी शारीरव्रण्विकित्नामिश्राय व्रणसामान्यादिसम्बेन व्रणाधिकारे
शागन्तुव्रण्विकित्नामिश्रानार्थे प्रकरणमारन्यने । श्रव प्रथममिवद्यव्यण्विकित्सान्माह पित्तत्यादि ॥ ४६ ॥

महाराष्ट्रीजटालेपो दग्धिपष्टावचूर्णनम् । जीर्पोगेहतुणाच्चूर्ण दग्धव्रणहरं परम् ॥ ४७ ॥ महाराष्ट्रीजटा महाराष्ट्रीमूलन् । अयमेको योगः । पिष्ट पिष्टकमेव । उन्ध-पिष्टकचूर्णेनावचूर्णनमिति दितीय ॥ ४७ ॥

## जीरकाद्यं घृतम्

जीरकपकं पश्चात् सिक्थकसर्जरसमिश्रितं हरित । घृतमभ्यद्गात् पावकदग्धनदु खं ज्ञणार्द्धेन ॥ ४८ ॥

जीरकेत्यादि—नीरकस्य कन्क , जल चतुर्रुणम्, पश्चात् मिद्धे च मिक्थ-मर्जरमयोः प्रेनेप ॥ ४=॥

अन्तर्देग्यकुठारको दहनजं लेपानिहन्ति व्रण्म् । अभ्वत्थस्य विशुद्धवल्कलकृतं चूर्णे तथा गुरहनात् ॥४६॥ भनित्यादा —कुठारक कुडालिया, म च स्थालीमध्ये अन्तर्भृम दग्यन्य । उपटनादित्ययचूर्णनात्॥ ४६॥

श्रभ्यद्गाहिनिहन्ति तैलमाखिलं गराङ्कपदै साधितम् । पिष्ट्वा शालमलित्लकेजलगता लेपात् तथा वालुका॥४०॥ गरह्पदे किञ्चुले करक , जल चतुर्गुषमनुकत्वादिति निश्चल । जल विता चटचटाविष पाक इत्यन्ये । शालमलीत्लकेरिति सहार्थे तृतीया ॥ ५०॥

सद्य ज्ञतवर्ण वैद्य सम्रतं परिपेचयेत्। यष्टीमधुककरकेन नातिशीतेन सर्पिपा ॥ ४१॥

रदानी मध स्त्यादिना सचोत्रणीचिकत्मामाह सथ इति सप्ताहाम्यन्तरे । पित्रमुक्त कुक्तेनित-यष्टिमभुकं कल्कीष्टत्य चतुर्ग्रेयज्ञेलन यथाविधि ग्रत माधनीयम्। यदि पुनस्त्वर्या यथाविधि ग्रतीमद पक्षु न शक्यते, तदा ग्रतात् पलइय, जलात् चतु पल यष्टिमधुकस्य कर्पद्रय किञ्चित् पक्तावतार्थ व्या सचेयिदत्याह । नाति-शोतेनेति कदुष्णेनेत्यर्थः, किञ्चिदनुष्णेनेति पाठान्तरम् ॥ ५१ ॥

> वुद्ध्वागन्तुवणं वैद्यो घृतचौद्रसमायुतम् । शीतां क्रियां प्रयुक्षीत पित्तरक्षोष्मनाशिनीम् ॥ ४२ ॥

बुद्भ्वेत्यादि — चन्द्राटस्य । बुद्भ्वेत्यत्र वद्भ्वेति पाठ साधु । वन्धे हि सचोव्रणेषु छित्रभिन्नादिषु सन्धानजनकत्या प्रधानम्, उक्त हि—"वन्ध प्रधान तेन शुद्धिवर्णरोपणमाश्यसन्धिसीयं त्रे" इति । चन्द्राटादावयमेव पाठे। दृश्येत । बुद्भ्वेत्यादिपाठे छत्तचीद्रसमायुतिमत्यनन्तर कृत्वेति शेष , कि वा प्रयुक्तीतिति किया विशेषणम् ॥ ५२ ॥

कान्तकामकोमकं सुश्रदणं गव्यसर्पिषा पीतम्। शमयति लेपान्नियतं व्रणमागन्तुजं न सन्देहः ॥ ४३ ॥ कान्तित्यादौ कान्तकामक मद्रमुक्तकम्। ष्टतमत्र शतधौतिमित्युपदिशन्ति, एव वद्यमाणेऽपि ॥ ४३ ॥

श्रपामांगस्य संसिक्षं पत्रोत्थेन रसेन वा । सद्योव्रगेषु रक्षन्तु प्रवृत्तं परितिष्ठति ॥ ४४ ॥ श्रपामांगेसेलादि—सप्टम् ॥ ५४ ॥ कर्पूरपूरितं वद्धं सघृतं सम्प्ररोहति । सद्यःशस्त्रत्ततं पुसां व्यथापाकविवर्जितम् ॥ ४४ ॥

कंपूरेत्यादि — सघृत यथा स्यात्तथा कपूरप्रितम् , तेन कपूरचूर्येन शत-धौतघृतिभिश्रेण खङ्गादिस्त प्रपूर्व बधीयादित्यर्थ ॥ ५५॥

शरपुङ्का काकजङ्घा प्रथमं महिषीसुत— मलं लज्जा च सद्यस्क-व्रण्वं पृथगेव तु ॥ ४६॥

शरपुरेत्यादि—महिषीसुतस्य मलम् । घततैलवसामज्जेवसवारपयोदिधिमास भावनतोयामिमितिवत् श्रय प्रयोग समर्थनीय । श्रमिनवजातमिहषीवत्सस्य प्रथम मलिमत्यर्थ । लज्जा लाजालु श्रन्ये तु वराहकाता श्र्याहु. ॥ ५६ ॥

शुनो जिह्वाकृतश्चूर्णः सद्यः ज्ञतविरोह्य ॥ ४७॥ चक्रतेलं ज्ञते विद्धे रोपणं परमं मतम् ॥ ४८॥ गुन इति कुनकुरस्य तन्त्रान्तरमन्त्राशन् मर्नाद्रकृष्णकुनकुरीनिहेत्यन्ये । वक्तेतेल तत्कालचकोब्दृतमनुष्टमपपतेलम्। अन्ये तु चक्रकाष्ठेक्कितंलमाहु ॥५७ ५०॥

यवत्तारं भक्तयित्वा पिएडं द्दाद् व्रणोपरि । श्रुगालकोलिमूलेन नष्टशल्यं चिनि सरेत्॥ ४६॥ लाङ्गलीमूललेपाडा गवात्तीमूलतस्तथा ॥ ६०॥

श्रन्त गल्यचिकित्नामाह यवचारिमत्यादिना तथेत्यन्तेन । यवनार कर्ष १, उण्याजल पल २, श्रालोड्य पीत्वा नष्टगल्यत्रणापिर श्वगालकोलिन्ल पिष्ट्वा पिण्टो देय । श्वगालकोली शेयाकुन शित ख्यात ददरीभेद । एव लाक्नलीयामूनगी-रचकर्कटीमूलाम्बामपि ॥ ५६-६०॥

त्ततोष्मणो नित्रहार्थं तत्कालं विस्तस्य च । कपायशीतमधुर-स्निग्धा लेपादयो हिता ॥ ६१ ॥

चनेत्यादि—नाग्मयस्य । कषाय इति रम ॥ ६१ ॥ श्रामारायस्थे रुघिरे वमनं पथ्यमुच्यते । पकाशयस्थे देयञ्च विरेचनमसंशयम् ॥ ६२ ॥

श्रामारायस्य इति सुश्रुतस्य—श्रामागयस्यमपकारायस्यम् । अत्र पकारायस्य रक्ष विरेचनेन मुखेन निर्दर्भु राक्यत इत्यभित्रायेण विरेचनिवधान न तु पिचप्रत्य-नीकतया पकाशयम्य वानस्थानत्वात्। श्रन्ये तु पकराय्टेन पाक उच्यते न पकाशयः, तेन पकारायस्य इत्यभ्यमानारायस्य इत्यभं , व्यत्र हि पिचस्थानत्वेन विरेचन-सुपयोगिकमित्यादु ॥ ६२ ॥

काथो वंशत्वगेरएड-श्वदंष्ट्राश्माभेदा कृत । सिंदुक्रसैन्यव पीत कोष्टस्य स्नावयेदस्क् ॥ ६३॥

काथ इत्यादी--वरात्वक् वरानली, अश्मिमत् पाषायोभदी । हिङ्गुमैन्धवन्तु प्रवेष्यन् । अय योग प्रमावात् रक्ष स्नावयति ॥ ६३ ॥

यवकोलकुलत्थानां नि स्नेहेन रसेन च। भुद्यीतान्नं यवाग्ं वा पिवेत्सैन्घवसंयुताम्॥ ६४॥ क्षेत्वादि—स्वष्टः॥ ६४॥ श्रत्यर्थमस्रं स्रवति प्रायशो यत्र विचते ततो रक्षचयद्वायौ कुपितेऽतिरुजाकरे ॥ स्रोहपानं परिषेकं स्रोहलेपोपनाहनम् । स्रोहवस्तिश्च कुर्वीत वातन्नौपधसाधितम् ॥ ६४॥

श्रत्यर्थामित्यादि — वाग्भटस्य । विज्ञत इति विविधज्ञेत छित्रमित्रादौ । छिट्ट लेपोपनाहनमिति स्नेहयुको लेप स्नेहयुक्तसुपनाहस्र; किग्तु वाग्भेट स्वेदलेपोपनाहन-मिति पाठ । तन्मंत स्वेदो धान्यस्वेद ,उक्तस्र सुश्रते—"धान्यस्वेदाश्च कुर्वात स्निग्धा-न्यालेपनानि च" इति । वातद्गीषध भद्रदार्वादि ॥ ६५ ॥

इति साप्ताहिक प्रोक्तः सद्योवणहितो विधिः।
सप्ताहात्परत कुर्याच्छारीरवण्यत् कियाम्॥ ६६॥
मधोव्रणचिकित्तामुपमहरति इति साप्ताहिक इत्यदि—वाग्मदस्य ॥ ६६॥
करञ्जारिष्टनिर्गुगडीरसो हन्याद् वर्णाकिमन् ॥ ६७॥
करञ्जारिष्टविर्गुगडीरसो हन्याद् वर्णाकिमन् ॥ ६७॥
करञ्जादिपत्रस्वरस् ॥ ६७॥
कलायविद्लीपत्रकोशाम्रास्थि च पूरणात्।
सुरसादिरसैः सेको लेपनं स्वरसेन वा॥ ६८॥

कलायविदली स्वनामख्याता लता, कोशात्र कुसुम्म इति ख्यात , तस्य फलास्थि त्राभ्या मन्पिष्टाभ्या प्रत्येक त्रणावकाशपूर्णम् । सुरसादिगण सौश्रुतः । सुरसेनेति पर्णासेन ॥ ६८ ॥

> निम्वसम्पाकजात्यर्कसप्तपणार्श्वमारका । क्रिमिन्ना मूत्रसंयुक्ताः संकालेपनधावनैः॥ ६६॥

निम्नेत्यादी-जात्या पत्रम्, निम्नादीनान्तु त्वक्। एते च निम्नादयो यथालाम मूत्रिपष्टा सेकादौ प्रयोज्या.॥ ६६॥

प्रच्छाद्य मांसपेश्या वा किमीनपहरेद् त्रणात्। लशुनेनाथवा दद्यान्नेपनं क्रिमिनाशनम्॥ ७०॥

प्रच्छाघेत्यादौ--मासखण्ड., अत्रामिषगन्थात् किमय उपर्य्युपरि सञ्चरन्ति इति माव.॥ ७० ॥

#### त्रिफलागुगगुलु:

ये क्लेदपाकस्त्रतिगन्धवन्तो

वणा महान्त सरुजा सर्गोथा ।
प्रयान्ति ते गुग्गुलुमिश्रितेन

पीतेन शानित त्रिफलारसेन ॥ ७१॥

विष्ट परिमार्कनसुक्तवा अन्त परिमार्कनमाष्ट्र य इत्यादि—कोधानुरूपे।ऽत्र गुग्गुलुः प्रचेप्य ॥ ७१ ॥

#### वटिकागुग्मुलुः

त्रिफला चूर्णसंयुक्तो गुग्गुलुर्वटकीकृत । निर्यन्त्रणो विवन्धमो व्रणशोधनरोपण ॥ श्रमृतागुग्गुलु शस्तो हितं तैलञ्ज वज्रकम् ॥ ७२ ॥

त्रिफलाचूर्णसयुक्त इति त्रिफलाचूर्णन समेन युक्ती गुग्गुलु , प्रनमनुरूप देखा विसुर्य चूर्णेच प्रविष्य वटिका कर्तेच्या । एव सर्वेत्र वटकविधाने । यन्त्रणा आहाराचारिनयमश्च । श्रमृतागुग्गुलुर्वातरक्तोक्त । वज्रकतैलन्च कुछ वस्यमा- यम् ॥ ७२ ॥

# विडङ्गादिवंटिकागुग्गुलुः

विडङ्गत्रिफलाव्योपचूर्णं गुग्गुलुना समम् । सर्पिपा विटकां कृत्वा खादेद्वा हितमोजन । दुप्त्रखापचीमेह-कुप्रनाडीत्रखापह ॥ ७३ ॥ विकागुग्गुली गुग्गुलुना सममिति विडङ्गादिचूर्णसमेन ॥ ७३ ॥

## श्रमृतावटिकागुग्गुलुः

श्रमृतापटोलसूल-त्रिफलात्रिकडुकिमिन्नानाम् । समभागानां चूर्णं सर्वसमो गुग्गुलोभीग ॥ प्रतिवासरमेकैकां गुडिकां खादेदच्चपरिमाणाञ्च । जेतुं व्रणवातास्त्रगुल्मोद्रश्वयथुपागृहरोगांश्च ॥ ७४॥ श्रम्याविकागुग्गुल् स्पष्ट ॥ ७४॥

## जातिकाद्यं घृतम्

जातीनिम्वपटोलपत्रकद्धकादार्वीनिशासारिवा-मञ्जिष्टाभयसिक्थतुत्थमधुकैर्नक्ताह्ववीजै. समै । सर्पि सिद्धमनेन सूदमबद्ना मर्माश्रिता स्नाविणो गस्भीरा. सरुजो व्रणा सगतिका शुष्यन्ति रोहन्ति च ७४ जातीत्यादि-नाग्मटस्य । जात्यादीना त्रयाणा पत्रम् । दावी दारुहरिद्राः

निशा हरिद्रा, अभयमुशीरम् , नक्ताह्मवीज करजनीजम् । गतिर्नाही ॥ ७५ ॥

# गौराद्यं घृतम्

गौरा हरिद्रा मिल्रष्टा मांसी मधुकमेव च । प्रपौराडरीकं हीवेरं भद्रमुस्तं सचन्दनम्॥ जातीनिम्वपटोलञ्च करखं कटुरोहिणी। मधूच्छिएं मधूकश्च महामेदा तथैव च ॥ पञ्चवल्कलतोयेन घृतप्रस्थं विपाचयेत्। एप गौरो महावीर्य सर्वव्रणविशोधन ॥ श्रागन्तुः सहजश्चैव सुचिरोत्थाश्च ये व्रणाः। विषमामपि नाडीञ्च शोघयेच्छीघ्रमेव च ॥ ७६॥

गौराधं घृते---गौरा हरिद्रा प्रियगुर्वा । व्यवहारस्तु हरिद्रयैव हरिद्रा दारुहरिद्रा। जातीनिम्वपटोलाना पत्रम् , करअस्य फलम् , मधूक मधूकपुष्पम् । मधूकव्चेत्यस्य स्थाने समधुकमिति पाठे यीष्टमधुकस्य मागद्वय द्वि पाठात् । पञ्चवल्कलस्य तीयेन कांथेन । एव गौर इति भीमा मीमसेन इतिवत्, गौराबोऽय महावीर्य इत्यीप पाठ ॥ ७६ ॥

गोरांच जातिकाचञ्च तैलमेवं प्रसाध्यते। तैलं सूदमानेन दुष्टे त्रणे गम्भीर एव च ॥ ७७ ॥ जक्त वृतद्वयविधिना तेलद्वयमि साध्यमित्याह गौराधमित्यादि—तेलविषय-

माह तैलिमत्यादि ॥ ७७ ॥

#### करज्ञायं घृतम्

नक्समालस्य पत्राणि तरुणानि फलानि च। सुमनायाश्च पत्राणि पटोलारिप्रयोस्तया ॥ हें हरिदें मधूच्छिए मधुकं तिक्ररोहिणी। मिंखिष्टा चन्दनोशीरमुत्पलं सारिवे त्रिवृत्। एतेपां कार्षिकैर्मागैर्घृतप्रस्थं विपाचायेत् ॥ दुप्रव्रणप्रशमन तथा नाडीविशोधनम्। -सद्यश्छित्रवणानाञ्च करञ्जाद्यमिर्व ग्रुमम् ॥ ७८ ॥ नक्तमालस्थेत्यादी—नरुणानि पत्राणीत्यन्त्रय । द्वमना जातं।• उत्पन्त

नीलीत्पलम्, शारिवे श्रनन्तमूलश्यामलते ॥ ७= ॥

प्रपौराडरीकादं घृतम् प्रपोएडरीकमञ्जिष्टामधुकोशीरपद्मकै । सहरिद्धे कृतः सर्वैः सन्तीरं वणरोपणम् ॥ ७= ॥ प्रवीरवरीक्रमित्यादी-चोरमेव चतुर्राणम् ॥ ७६ ॥

#### तिक्रकाद्यं घृतम्

तिक्वासिक्थनिशायप्रीनक्वाहफलपत्नवै । पटोलमालतीनिम्व-पत्रैर्वण्यं घृतं स्मृतम्॥ ८०॥ तिकत्यादी-पत्रराष्ट्र त्रिभि सम्बद्धते जलम्च चतुर्रुपम् ॥ =०॥ सिन्दूरहिद्गविपकुष्ठरसोनचित्र-

वाणाड्डिलाइलिककरकविपकतेलम्। प्रा**सादमन्त्रयुत्रपूत्कृतनु**न्नफेनो दुप्रवर्णप्रशमनो विपरीतमञ्जः॥ **खड्गाभिघातगुरुगएडमहोपदंश-**नाडीवणवणिचर्चिककुष्टपामा । एतान् निहन्ति विपरीतकमञ्जनाम तैलं यथेष्टशयनासनभोजनस्य ॥ =१॥ तैलान्याह सिन्द्रेरियादि—चित्रको रक्षचित्रक , वाणािक्ष् रारपुहामूलम्, न तु भिष्टीमूलम्; जल चतुर्गुराम्, तैलब्च सार्षपं तन्त्रान्तरमवादात् । उक्षब्च " मिन्द्रहिङ्गविषकुष्ठरसोनवाणपुद्धारुणानलहलाह्यमूलक्के । पत्तचतुर्गुराजले विधिवत्सुमिद्ध मिद्धार्थतैलमिति सिद्धफल प्रदिष्टम् " इति । प्रामादमन्त्रा महेश्वरमन्त्र , नुन्नोऽपसारित ॐ हा ही हु है ही है शिवाय स्वाहेनि पठित्वा फूल्कारिण फेनमालोड्यम् ॥ ६१ ॥

अङ्गारकं तैलम्

कुठारकात् पलशतं काथयेक्वर्ये अम्मि । तेन पादावशेषेण तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ कल्कै कुठारापामार्ग प्रोष्टिकामिक्कायुतै । एतदङ्कारकं तैलं व्याशोधनरोपणम् । नाडीषु परमभ्यद्गो निजास्वागन्तुकीषु च ॥ ८२ ॥

कुठारकादित्यादि — कुठारक: कुडालिया । नल्वणो द्रोण: । प्रोष्ठिका राफरीमत्स्य पोठियानाम्ना ख्याता, विटपीत्यन्य । मंचिका कीटविशेष प्राप्तिद्ध एव, पञ्चाखियामत्स्य इत्यन्ये ॥ ८२ ॥

प्रपौराहरीकाद्यं तैलम्
प्रपौराहरीकं मधुकं काकोल्यों द्वे सचन्दने।
सिद्धमेतेः समस्तेत्वं तत्परं व्रणरोपणम्॥ ८३॥
प्रपौराहरीकमित्यादि—स्पष्टम्॥ ८३॥

दूर्वाद्यं तैलं घृतश्च दूर्वास्त्रसासिद्धं वा तैलं किम्पल्लकेन च। दार्वीत्वचश्च कल्केन प्रधानं व्रण्रोपण्म्॥ येनैव विधिना तैलं घृतं तेनैव साधयेत्। रक्षितोत्तरं ज्ञात्वा सिंपरेवावचारयेत्॥ ५४॥

दूर्वत्यादि —योगदयम् । अत्र द्वैन कल्को बोध्यः, वकारदयात् किष्णः कदावीत्वचोर्मिलित्वा कल्कः, पाकश्च जलेन चारपाणिसवादात् । अन्ये तु दूर्वास्वर-सेन अकल्कमेव तैल साध्यम् कम्पिष्लकेन वा दावीकल्केन वा जलेन द्रवेणापर

तंनद्वयमिलाहुः । तैलभाधनविधि छ्तेऽप्यतिदिशति येनेलादि—अयञ्च मर्वतैलविध्य-तिदेश , अन्ये तु द्वीदितैलविध्यतिदेश इत्याहु ॥ ५४ ॥

#### मिडिष्ठाद्यं घृतम्

मिश्रिष्ठां चन्दनं मूर्वो पिष्द्वा सिर्पिविपाचयेत्। सर्वेपामग्निद्ग्धानामेतद्रोपणिष्यते ॥ ८४ ॥ मिश्रिष्ठामिलादौ—अल चतुर्गुणम् ॥ ८५ ॥

## पाटलीतैलस्

सिद्धं कल्ककषायाभ्यां पाटल्या कहुतैलकम् । दग्धवण्ठजास्रावदाद्दविस्फोटनाशनम् ॥ ८६॥ <sub>पाटलीतैलम्—स्पष्टम् ॥ ८६ ॥</sub>

## चन्दनाद्यं यमकम्

चन्दनं वटशुङ्गञ्च मिश्रिष्ठा मधुकं तथा।
प्रपौर्हरीकं दूर्वा च पत्तकं धातकी तथा॥
पिस्तैल विपक्षव्यं सिर्पं ज्ञीरसमायुतम्।
श्रिश्वदाह्मणे श्रेष्ठं प्रज्ञणाद्यो प्रिकृत्य प्रस्ता

चन्दनाध्यमके — तैलप्रताभ्या समाभ्यां मिलित्वा प्रस्थः । पत्तक्ष रक्षचन्द-नम् । चीरमेवात्र चतुर्गुणम् । तैलमिति तिलभवमेव सर्वत्र विशेषोक्ति विमा ॥=७॥

मन शिलाले मिक्षिष्ठा सलाक्षा रजनीद्वयम् । प्रलेपः सघृतकौद्रस्त्विग्वश्चिकरः परः ॥ ८८॥ श्रयोरज सकाशीशं त्रिफलाकुसुमानि च । प्रलेप कुरुते काप्यं सद्य एव नवत्विच ॥ ८६॥

मनःशिलेखादिना—मावयर्थां ख्यमुपक्रममाह । अयोरज इत्यादा-काशोश धातुकाशीशम् । त्रिफलाकुसुमानि इरातक्यादितरुकुसुमानि । कुसुमाभावे फलेन व्यवहार ॥ ८८-८६॥

कालीयकलताम्रास्थिहेमकालारसोत्तमै । तिप सगोमयरसः सवर्णकरण पर ॥६०॥ कालीयकेखादी-कालीयक कालीयाकाष्ठम्, लता प्रियङ्गः दूर्वेखन्ये, हेम नागेकेशरचूर्णम्, काला मिश्रष्ठाः, रसोत्तमं पारद प्रतीमत्यन्ये । गोमयरस पेष-णार्थम् ॥ ६० ॥

> चतुष्पदां हि त्वग्रोमखुरश्रुङ्गास्थिभसाना । तैलाक्ता चूर्णिता मूमिभेवद्रोमवती पुन ॥ ६१ ॥ व्रणग्रन्थि ग्रन्थिवच जयेत् चारेण वा भिषक् ॥ ६२ ॥ इति व्रणग्रोथिचिकित्सा ।

चतुष्पदामिलादि-सुगमम् । व्रयाव्यन्थिमिति-दुरूढतया सञ्चात मास-प्रन्थिमिलर्थः ॥ ६१-६२॥

इति ज्ञणशाथसधाजणचिकित्साविष्टति ।

# अथ नाडीव्रण-चिकित्सा।

नाडीनां गतिमन्विष्य शस्त्रेणापाट्य कर्मवित्। सर्वव्रणक्रमं कुर्य्याच्छोधनं रोपणादिकम्॥ नाडीं वातकृतां साधुपाटितां लेपयेद्भिषक्। प्रत्यक्पुष्पीफलयुतैस्तिलैः पिष्टैः प्रलेपयेत्॥१॥

त्रणत्वसाजात्याक्षाढीत्रणचिकित्सामाह नाडीनामित्यादि—गतिमिति । पूय-गातिम् । श्रादिशब्देनोत्सादनावसादनसवर्णकरणादयो गृद्धन्ते । साधुपाटनसुपनाह-पूर्वकम् । तदुकः वाग्मटे ''उपनाद्यानिलान्नाडीं पाटिता साधु लेपयेत् । प्रत्यक्पुण्पी-फलयुतैक्तिलैः पिष्टैः ससैन्थवै " इति । श्रतपव वचनात् सैन्थवयोगादप्यय लेपो बोध्य. । प्रत्यक्पुण्पी श्रपामागैः तस्य बीजम् । लेखयेदिति चारेण प्रतिसार-यदित्यर्थ । पतच लेखनयोग्यव्रण प्रति बोध्यम् । उक्त हि ''उद्वृत्तान् स्थूलपर्य्यन्तानुत्सन्नान् कठिनान् व्रणान् । किलासानि सकुष्ठानि लिखेहेल्यानि बुद्धिमान् " इति ॥ १ ॥

पैत्तिकीं तिलमञ्जिष्ठानागदन्तीनिशाद्वयै. ॥ २ ॥ पैत्तिकीमित्यादि—नागदन्ती स्थूलमूला दन्त्येव । "पित्तजा निशिमार्क्षण्ठा- नागदन्तातिर्लं ममै " इत्यापुर्वडमाग्डर्शनान्निशाइयौरित्यक्ष निशायुतैरिति केचित्त् पठिन्न, तन्न, विशेष्यस्याश्रवणात् निशिद्यब्देन हरिदाया श्रनिभानाच्च, किन्तु निर्मात्येष तत्र पाठ इति योगान्तरमेतत् । तथा वाग्मटेऽपि निशाइयैरित्येव पठ्यते । कृन्देऽपि तथा । सुश्रुते हरिद्राइयब्यतिग्केणाप्यय योग ॥ २ ॥

#### र्र्फणिकी विलयण्ट्याह्मनिकुम्मारिप्रसैन्धवै ॥ ३॥

र्कण्मिकीभित्यादौ—निकुन्भो दन्ती, श्रिरिश निम्म , श्रत्र यप्ट्याह्रम्थाने मीराष्ट्रियोगादप्यय योग । उक्त हि वाग्मटे—" र्व्वीप्मकी तिलसीराष्ट्रीनिकुन्मा-रिष्टमैन्थवं " इति ॥ ३ ॥

## शल्यजां तिलमध्वाज्येर्लेपयेच्छिन्नशोधिताम् ॥ ४॥

रात्यज्ञामित्यादि—नाग्मटस्य । हिन्नरोधिनामिति आदी हिन्नामिति पाटिता पक्षात् रात्य निर्हत्य रोधिनामित्यर्थे । सुशुतेऽप्युक्त—" नाटीन्तु रात्य-प्रमवा विदार्थ्य निर्हत्य शत्य प्रविशोध्य मार्गम् । बन्धेद् व्रण चीद्रप्रतप्रगाढ दत्त्वा निनान् शोध्यवरोपयेच " रिन ॥ ४ ॥

### श्रारम्बधनिशाकालाचूर्णाज्यक्तौद्रसंयुता। मूबवर्त्तिर्वशे योज्या शोधनी गतिनाशिनी ॥ ४॥

मारन्वेधत्यादी—आरन्वधन्य पस्न, काला कालाकडामृल न तु मिलिष्ठा अर्रवक्त्यैव दुष्टवण्डन्नृत्वात् । नृत्ववीचिरिति गोमृतकृता वर्षि । शोनालुपात् , इलिंड, कालाकडामृल पपा प्रत्येक चूर्णं मा ८, एत कर्ष १, मधु कर्ष १, गोमृत्र पण १, पतत् मर्व पक्त्वा मधुनैन्धवयोवीचिवद् वर्षि कार्य्यत्याहु , पाकमन्नेन्य वर्षिकन्यस्याराक्यत्वात् । सूत्रविधिरिति पाठे एमिलिप्ता स्वविधिरित्यर्थ वृद्धान्तु पूर्वेणव व्यवहरिति ॥ ५॥

### घोण्टाफलत्वक् लवणं सलाचं पूगात् फलञ्चालवणञ्च पत्नम् । स्तुह्यर्कदुग्धान्त्रित एप कल्को वर्चीकृतो हन्त्यचिरेण नाडीम् ॥ ६॥

योख्टेत्यादि—सुश्रुतस्य । घोण्टा ऋरण्यनदर, अस्या फल त्वक् च । लवण सैन्धवम् । लाचा प्रसिद्धव । पूगात् फलमिति ग्रुप्कपृगकनम् । श्रालवणञ्च पत्रमिति अनवराा च्योतिष्मती, अस्या पत्यमालवणम् । वाग्मटेऽप्युक्त—"घोण्टा- फलत्वनलन्य सलाच पूगात् फलञ्चालन्यञ्च पत्नम् । स्नुद्यकेतुग्धान्वित एष कल्को वर्ताकृतो इन्त्यचिरेय नाडीम्'' इति । अन्य तु लाचा च्योतिष्मतीपत्रञ्च न पठित्ति, मदनफलञ्च पठिन्ति, यथा,—''धोयटाफलत्वद्धाः नात् फलानि पूगस्य च त्वग्लन्यण्ञ मुख्यम् । स्नुद्यकेदुग्धेन सहैप कल्को वर्त्तीकृतो इन्त्यचिरेय नाडीम्" इति । एतत् सर्व समभाग कृत्वा किव्चित सैन्धव दत्त्वा स्नुद्दीचीराकेचीरजलैरासाच्य पक्ता वर्त्ति कार्य्या ॥ ६ ॥

वर्त्तीकृतं माज्ञिकसम्प्रयुक्तं नाडीघ्रमुक्तं लवणोत्तमं वा । दुष्टवणे यद्विहितश्च तैलं

तत् सेव्यमानं गतिमाशु हन्ति ॥ ७ ॥

वर्त्ताकृतिमत्यादि — सुश्रुतस्य । लवणोत्तमिति सैन्धव, वर्त्तिकरणम्ब मधु-मैन्धवयोरमी पाकात् , भ्रन्यथा बन्धा न स्यात् । दुष्टवर्णे यदिहितम्ब तैलिमिति सुश्रुतोक्तारम्वधादितैलादि ॥ ७॥

जात्यर्कसम्पाककरञ्जदंन्ती-

सिन्धृत्थसीवर्भेलयावश्र्के ।

वर्ति कृता हन्त्यचिरेण नाडीं

स्तुक्तीरिषष्टा सह चित्रकेण ॥ ८॥

जातीत्यादि — जातीपल्लवाः, श्रकंस्य मूल, सम्पाक श्रारम्बध तस्यापि पलः, करश्रस्य बीजं, दन्ती दन्तीमूल, श्रत्र स्तुष्टीचीरेथैव सष्ट किञ्चिष्णल दस्वा पनत्वा च वित्त कार्योत्याहः॥ ८॥

माहिषद्धिकोद्रवान्निमश्चं हरति चिरविरूढाञ्च।

भुक्तं कगुङ्निकामूलचूर्णमितदारुणां नाडीम्॥ ६॥

माहिषत्यादि—कोद्रवस्त्रणथान्यविशेष., तस्य मक्तम्। कह्निका कार्याने ;

पतन्मूलचूर्णं माहिषदिधिकोद्रवसकास्या मिश्रित कृत्वा मुक्तः सदित्यर्थः॥६॥

क्रशदुर्वत्तभीरूणां गतिर्ममीश्रिता च या । ज्ञारस्त्रेण तां छिन्द्यात्र शस्त्रेण कदाचन ॥ १० ॥ एषरया गतिमन्विष्य ज्ञारस्त्रानुसारिणीम् । सूचीं निद्ध्याद् गत्यन्ते चोन्नाम्य चाश्च निर्हरेत्॥ स्तस्यान्तं समानीय गाढं यन्धनमाचेरत्।
तन क्षारवतं वीदय स्त्रमन्यत् प्रवेशयेत् ॥
क्षाराक्षं मितमान् वैद्यो यावन्न छिद्यते गितः।
भगन्दरेऽप्येप विधि कार्यो वैद्येन जानता॥
श्रर्बुदादिषु चोत्किप्य मूले स्त्रं निधापयेत्।
स्वीभियववक्त्राभिराचितं वा समन्ततः।
मूले स्त्रेण वधीयाच्छिने चोपचरेद् व्रणम्॥ ११॥

क्रित्यादि—सुमुतस्य। कृश चीयमास, दुर्वलो हीनवल । चारस्त्रेय हदत्तिविधिमाह, एपण्येत्यादि । चारस्त्रेण सह अनुसर्च शील यस्या एतादृशीं स्त्रीमुत्राम्य उत्विष्य स्व्यभेण गतिप्रान्त विद्ध्वा स्त्री निर्हरिति भाव. । अत्र यदि अतिदीर्घा भवति तदा द्वयाले त्र्याले चतुरगुले वा वद्ध्वा क्रमेण छेदयेत् । व पुनरेकदेव गतिप्रमाणेन वध्वा छेद कार्य्य स्त्रच्छेदमयात् पीडातिश्यजनकल्लाच स्त्याहु । चाराक्तमिति स्त्रविशेषणम् । अर्बुदादिषु वन्यविशेषमाह, अर्बु-दादिष्वित्यादि—अर्बुदादिक यदि तनुमूल भवति तदा उत्तिष्येव मूले स्त्रेण वधौयात् । स्यूलमूलेषु तु स्त्ररथेर्यार्थं मृल समन्तत स्वीभिराचित यथा स्यान्तथा वधीयात् । यवववत्रामिरिति यववनमध्यस्यूलवक्त्रामि , यवववत्रत्वन्च स्वीनां दार्ड्यार्थम् । छिन्ने चोयचरेद्व्ययमिति दिव्यायोक्तविधिनेति शेष ॥१०॥११॥

#### सप्ताङ्गगुग्गुलुः

गुग्गुलुस्तिफलाब्योपै समांशैराज्ययोजित । नाडीदुष्टवणग्रलभगन्दरविनाशनः॥ १२॥

गुग्गुलुरित्यादौ--श्रिफलान्योपैरिति विशेषणे तृतीया । त्रिफलादीनान्तु मिलित्वा गुग्गुलंसमत्वम् , आज्ययोजित इति एतिपिष्टित , एतन्च ताबेदेय यावता वटकीभवति ॥ १२॥

सर्जिकाद्यं तैलम् सर्जिकासिन्धुदन्त्यग्निरूपिकानलनीलिका । खरमञ्जरिवीजेषु तैलं गोमृत्नपाचितम् । दुष्टवणप्रशमनं कफनाडीवणापद्दम् ॥ १३ ॥ सर्जिकेत्यादी-माशिश्रित्रकः, रूपिका श्वेतार्कः, नलश्च स्वनामख्यातः, नीलिका नीलीतिं प्रसिद्धा नीलवुष्टत्यन्ये, खरमञ्जरी श्रपामार्गः, गोमूत्र पाकार्थं चतुर्गुख्यः, सुश्रुतेऽप्युक्तः 'सुवर्चिकासैन्थवित्रकेषु निकुम्भनीलीनलक्षिकासु । फलेष्वपामार्गभवेषु चैव कुर्यात समूत्रेषु हिताय तैलम् 'इति ॥ १३॥

# क्रम्भीकाद्यं तैलम्

कुम्भीकसर्जूरकिपत्थिविस्ववनस्पतीनान्तु शलादुवर्गैः।
कृत्वा कषायं विपचेत्तु तैलमावाप्य मुस्तासरलिप्रयङ्गु ॥
सौगन्धिकामोचरसिहिषुष्पलोधाणि दन्वा सलु घातकीश्च।
पतेन शल्यप्रभवा हि नाडी
रोहेद् वणो वै सुंखमाशु चैव ॥ १४ ॥

कुम्मीकेत्यादि-सुशुतस्य । कुम्भीक, कुम्माडुतता दाडिमसमानफला स्थूलदन्तीत्यन्येः वनस्पतयो वटादय एषा शलाद्धः कोमलफलम्, सौगन्धिका भनन्तमूलम्, मोचरमः शाल्मलीनिर्यास , श्राष्ट्रपुष्प नागकेशरम् ॥ १४ ॥

## भन्नातकाद्यं तैलम्

भल्लातकार्कमिरिचैर्लवणात्तमेन सिद्धं विडङ्गरजनीद्वयिचत्रकेश्च । स्यान्मार्कवस्य च रसेन निद्धान्ति तैलं नाडीं कफानिलकृतामपचीं वर्णाश्च ॥ १४ ॥ महातकेत्यादि—प्रश्रुतस्य । मार्कवो मृक्षराजस्तस्य स्वरस्थतुर्गुण ॥ १४ ॥

# निर्गुएडीतैलम्

समूलपतां निर्गुएडीं पीडियत्वा रसेन तु। तेन सिद्धं समं तैलं नाडीदुष्टवणापहम्॥ हितं पामापचीनान्तु पानाभ्यञ्जननावनैः। विविधेषु च स्फोटेषु तथा सर्ववरेषु च ॥ १६ ॥

ं निर्गुयडीतैले—सममिति सहार्ये, तेन निर्गुयडोस्वरमश्चतुर्गुय एव आह्य । चक्रस्तु समराच्द तुल्यार्थमित्याह । अक्लकमिद तैलम् ॥ १६॥

हंसपादीतेलम्

हंसपाद्यरिष्टपतं जातीपत्रं ततो रसै । तत्कल्केश्च पचेत् तैलं नाडीव्यणविशोधनम् ॥ १७॥

इति नाडीवणिचिकित्सा ॥

इसपादीतैले—इसपादी स्वनामख्याता, श्ररिष्टपत्र निम्वपत्रम्, तत इति तेपामित्यर्थ पष्ट्यन्तात्तिसिरिति, त्रयाणा रसो मिलित्वा तैलाचतुर्गुण ॥१७॥

इति नाडीव्रणचिकित्सा-विवृति ।

# अथ भगन्दर-चिकित्सा ।

गुदस्य श्वयथुं दृष्ट्वा विशोष्य शोघयेत्तः। रक्तावसेचनं कुर्च्याद् यथा पाकं न गच्छति ॥ १ ॥ नाडीव्रणलसामान्याद् सख्यासामान्याच भगन्दरमाह, गुदस्यत्यादि—वि-रोष्येत्युपनासादिना । शोधयेदिति विरेचयेत् न शोधितमोच्चणदिभिः ॥ १ ॥

वटपतेष्टकाशुर्तिगुड्च्यः सपुर्वनवाः। सुपिष्टा पिडकारम्भे लेपः शस्तो भगन्दरे॥ पिडकानामपकानामपत्रपंगपूर्वकम्।

कर्म कुर्याद्विरेकान्तं भिन्नानां वद्यते किया ॥ २ ॥
वय्पर्नेत्यादी—वटस्य कोमलपत्रम्, इष्टका च पानीवे चिरमुधिता ब्राह्मेति
वृद्धन्यवद्दार । अपतर्पेखपूर्वक कर्म कुर्यादिरेकान्तमिति अपतर्पेखादया विरेकान्ता
वृद्धन्यवद्दार । इपतर्पेखपूर्वक कर्पेक्या इत्ययै: ॥ २ ॥

पपणीपाटनकार चित्रदाहादिकं क्रमम् । विधाय वणवत् कार्य्यं यथादोषं यथाक्रमम् ॥ ३ ॥ ण्पणीत्यादौ—कार्यामित्यत्र चिकित्सितिमिति शेषः ॥ ३ ॥ तिवृत्तिला नागदन्ती मञ्जिष्ठा सह सर्पिपा। उत्सादनं भवेदेतत् सैन्धवचौद्रसंयुतम् ॥ ४ ॥ निवृदित्यादि—सुश्रतस्य। नागदन्ती स्यूलमूला दन्ती, उत्सादनिति

रो। धनम्, न तु निम्नवणोत्थापनरूपमुत्सादनिमह व्याख्येयम्, विवृदादीना तोच्छा-द्रव्यत्वाद्, उत्मादनस्य तु मृदुमधुरद्रव्यसम्पाद्यत्वाद्; उक्त हि चरके 'स्तन्यानि जीवनीयानि वृह्दणीयानि यानि च । उत्मादनार्थे ,निम्नाना व्रह्मान तत्र कल्पेयत्' इति । पन्ये तु सयोगमहिम्ना विवृदादीनामप्युत्मादनत्विमह बोध्यीमत्याहु ॥४॥

रसाञ्जनं हरिद्रे द्वे मञ्जिष्ठानिम्वपल्लवाः।

तिवृत्तेजोवतीद्न्तीकत्को नाडीव्रणापह ॥ ४॥ रसान्जनित्यादि—चुश्रुतस्य । तेजोवती ज्योतिष्मती भ्रन्य तु चवीत्याहः । शोधनरेषिणोऽय कल्कः ॥ ४॥

कुष्ठं त्रिवृत्तिलादन्तीमागध्यः सैन्धवं मधु । रजनी त्रिफला तुत्थं हितं वर्णविशोधनम् ॥ ६ ॥ कुष्ठमित्वादि—स्पष्टम् ॥ ६ ॥

स्तुह्यकेदुग्धदार्वीभिवित्ति कृत्वा विचच्चण । भगन्दरगति ज्ञात्वा पूरयेत्तां प्रयत्नत । एपा सर्वशरीरस्थां नार्डी हन्याद्संशयम् ॥ ७ ॥ स्तुहीत्यादि—स्तुद्यकंयोः कीरेण दारहारिद्राचूर्णं पक्ता वार्षेः कार्ये

त्यर्थः ॥ ७ ॥

तिलाभयालोध्रमरिष्टपतं

निशे वचा कुष्ठमगारधूम । भगन्दरे नाड्युपदंशयोश्च

दुष्टवरो शोधनरोपगोऽयम्॥ 🗷॥

तिलेलादी---कुष्ठस्थाने लोधपाठे लोधदय शानरपट्टिकाख्यभेदाद् श्राद्यम् । निशे हरिदे दे ॥ = ॥

> खरास्त्रपक्षभूनागचूर्णलेपो भगन्दरम् । हन्ति दन्त्यग्न्यतिविषालेपस्तद्वन्छुनोऽस्थि वा॥

विफलारससंयुक्तं विडालास्थिप्रलेपनम् । भगन्दरं निहन्त्याशु दुप्रवगहरं परम् ॥ ६ ॥

रारेखाडी---गर्दभरक्षपकगण्ड्पदच्चूंणेलप इत्थर्थ । दन्तीत्यादिहितीययोगे श्रामिश्रितक । गुनोऽस्थि वा कुक्कुरस्यास्थीत्यत्र तृतीययोगे त्रिफलारसे।ऽपि पेपणार्थ शेय, उक्त हि "शुनोऽस्थि वा विडालासि त्रिफलारसभावितम्" इति,॥ ह ॥

# नवकार्षिकगुग्गुलुः

तिफलापुरकृष्णानां तिपञ्चिकांशयोजिता। गुडिका शोधगुरुमार्शोभगन्द्रचतां हिता॥ १०॥

नवकार्षिके-विषविकाशयीजिता इति अश इह कर्षरूपी मागः, तेन त्रिफलाया प्रयेक कर्ष, गुग्गुलोः पद्म कर्षा, क्रम्याया एकः इति नवकार्षि-कत्वम् ॥ १०॥

## सप्तविंशतिगुग्गुलुः

तिकडितिफलामुस्तिविडङ्गामृतिचित्रकम् ।
शक्येलािपण्णिमृलं द्वुणा सुरद्गारु च ॥
तुम्बुरु पुष्करं चव्यं विशाला रजनिद्वयम् ।
विदं सौर्वर्चलं सारौ सैन्धवं गजिपण्णली ॥
यावन्त्येतािन चूर्णािन तावद् द्विगुणगुग्गुलु ।
कोलप्रमाणां गुडिकां भस्तयेन्मधुना सह ॥
कासं श्वासं तथा शोथमशींसि च भगन्दरम् ।
दृष्कृलं पार्श्वग्र्लञ्च कुत्तिविस्तगुदे रुजम् ॥
श्रश्मरीं मूतसञ्ज्ञुञ्च श्रन्त्रवृद्धिं तथा क्रिमीन् ।
चिरज्वरोपसृशानां स्योपद्दतचेतसाम् ॥
श्रानाद्दञ्च तथान्मादं कुष्ठािन चोद्रािण् च ।
नार्डोद्धप्रवणान् सर्वान् प्रमेहं श्रीपदं तथा ।
सप्तार्वेशितिको होष सर्वरोगिनस्दन ॥
जम्बुकमांसं भस्तयेच प्रकारैव्यंञ्जनादिभि ।
श्रजीर्णवर्जी मासेन मुच्यते ना भगन्दरात् ॥ ११ ॥

#### भगन्दर चिकित्सा।

४५३

विकट्विलादी-सारी यवसारस्विकासारी। प्रतेन गुग्गुल विना सप्तविंशति-द्रव्याणीति निश्चलः। ये तु सौवर्चलसाराविति पठन्ति, तन्मते गुग्गुलना सर्हेव सप्तविंशतिरिति ॥ ११॥

पञ्चितिक्रं घृतं शस्तं पञ्चितिक्रश्च गुग्गुलु ।
न्यग्रोधादिगणो यस्तु हितः शोधनरोपण ।
तैलं घृतं वा तत्पक्तं मगन्द्रिवनाशनम् ॥ १२॥
न्यग्रोधादीत्मादि — सुश्रुतस्य । कल्कोऽयम् । तत्पक्तमिति न्यग्रोधादे काथकरकाभ्या पक्तम् ॥ १२॥

# विष्यन्दनतैलम्

चित्रकाकों त्रिवृत्पाठे मलपृहयमारको । सुघां वचां लाक्किकीं हरितालं सुवार्चेकाम् ॥ ज्योतिष्मतीञ्च संहृत्य तैलं घीरा विपाचयेत् । एतद्विष्यन्दनं नाम तैलं द्याद्भगन्दरे । शोधनं रोपण्ञचैव सवर्णकरणं तथा ॥ १३॥

चित्रकेत्यादि—सुश्रुतत्य । चित्रकादीना कत्को वल चतुर्गुणम् । मलप्-काष्ठोडुन्दरं , तस्य मूलं रक्षपितादौ तु फलम् । विष्यन्दयति पूर्य स्नावयति इति विष्यन्दन शोधनन् ॥ १३ ॥

# करवीराद्यं तैलम्

करवीरनिशादन्तीलाङ्गलीलवणाशिभि । मातुलुङ्गार्कवत्साह्वै पचेत्तैलं भगन्दरे ॥ १४ ॥ करवीराथे-मातुलुङ्गस्य मूलन् , वन्साह् जुटजल्लस्य लक् , अन्ये तु तत्क-लमाहुः ॥ १४ ॥

# निशाद्यं तैलम्

निशार्केच्चरिसिन्ध्वग्निपुराश्वहनवत्सकै ॥ सिद्धमभ्यञ्जने तैलं भगन्दरविनाशनम् ॥ १४॥ निशेत्यादौ—पुरो गुग्गुछ ; भवहन. करवीरस्वस्य मूलम् ॥ १४॥ व्यायामो मैथुनं युद्ध पृष्ठयानं गुरूणि च । संवत्सरं परिहरेदुपरूढवणो नर ॥ १६॥ इति भगन्दराचिकित्सा ।

भगन्दरेऽपथ्यान्याह—न्यायाम इत्यादि ॥ १६॥

इति भगन्दराचिकित्सा-विद्वित ।

\_\_\_0\_\_\_

# - CY51825-

# अथोपदंशचिकित्सा ।

स्निग्धिसिन्नश्ररीरस्य ध्वजमध्ये शिराव्यघ । जलैकापातनं वा स्यादृद्ध्वधि शोधनं तथा । सद्यो निर्हृतदोपस्य रुक्शोथाबुपशाम्यत । पाको रुद्य प्रयत्नेन शिश्चचयकरो हि स ॥१॥ म्यानप्रत्यामस्या उपदशाविकित्सितगुच्यते—ध्वजमध्ये मेद्रमध्ये । शिरा-व्यथश्च रक्षदुष्टी महत्याम् , भ्रत्पायान्तु जलैकिया रक्षपातनम् ॥१॥

> पटोलिन्नात्रफलागुङ्खी-कार्थ पिवेद्वा खदिराशनाभ्याम् । सगुगालुं वा त्रिफलायुतं वा सर्वोपदंशापहर प्रयोग ॥२॥

पटोलेत्यादि—पटोलादिकाथे गुग्गुल तिफलाचूर्णं वा प्रचिप्य पिवेत् , एव पादिरासनकाथमपि, अशन पीतशाल । अन्ये तु काथद्वये यथासख्य गुग्गुलानिफ-लाचूर्णयो प्रचेप स्त्याहु'। अपरे तु केवलकाथन योगद्वयम्, तदेव गुग्गुलोश्चिफला-चूर्णस्य वा प्रचेपेणापि योगद्वयमिति वदन्ति । व्यवहारस्तु पूर्वेणैव ॥ २ ॥

प्रपोगडीरकं मधुकं रास्ना कुष्टं पुननेवा। सरलागुरुभद्राहेर्वातिके लेपसेचने ॥ ३॥ प्रपोग्टरीकमित्यादि—द्वश्रुतस्य। भद्राख्य देवदारु ॥ ३॥ गैरिकाञ्जनमञ्जिष्ठामधुकोशीरपद्मकैः। सचन्द्रनोत्पलै: क्षिग्धै पैत्तिकं सम्प्रलेपयेत्॥४॥ गैरिकेत्यादि च तत्थैव-स्निग्वैरिति शत्वधोतप्रते ॥४॥

निम्वार्जुनाश्वत्थकदम्बशाल-जम्बूवटोहम्बरवेतसेषु । प्रचालनालेपघृतानि कुर्य्या च्चूर्णानि पित्तास्त्रमवे(पदंशे ॥ ४॥

निम्नेत्यादी-पृतसाधनपत्ते निम्नादिकाथकल्काभ्यामिति वदन्ति ॥ ५ ॥

त्रिफलाया कषायेण भृद्गराजरसेन वा। व्रणप्रज्ञालनं कुर्यादुपदंशप्रशान्तये॥६॥

त्रिफलाया इत्यादि-स्पष्टम् ॥ ६ ॥

देहत् कटाहे त्रिफलां सा मसी मधुसंयुता। उपदंशे प्रलेपोऽयं सद्या रोपयति व्रणम्॥७॥

दहेदित्यादि-स्पष्टम् ॥ ७ ॥

रसाञ्जनं शिरीषेण पथ्यया वा समन्वितम्। सत्तौद्रं वा प्रलेपेन सर्वेलिङ्गगदापहम्॥ =॥ वन्त्र्लद्लच्यूर्णेन दाडिमत्वग्भवेन वा। गुग्डनं व्रस्थिचूर्णेन उपदंशहरं परम्॥ ६॥

रसाजनीमत्यादि योगत्रयम् । अत्र पथ्या गुङ्ची । बन्दूलेति-बन्दूलस्य दल पत्र, गुग्डनमबचूर्णन, त्रस्थीति मानुषकपालास्थि, चन्द्रोटऽपि नृकपालास्थीत्यु-कत्वात् ॥ ५-६ ॥

लेप. पूगफलेनाश्वमारमूलेन वा तथा।
सेविज्ञित्यं यवान्नञ्च पानीयं कौपमेव च ॥ १०॥
लेप इत्यादी—अश्वमार करवीरस्तस्य मूलेन ॥ १०॥
जयाजात्यश्वमारार्क-सम्पाकानां दले. पृथक्।
कृतं प्रचालेने काथं मेद्रपाके प्रयोजयेत्॥ ११॥
बेयत्यादी—दलैः पत्रे ॥ ११॥

# भूनिम्वाद्यं घृतम्

भृतिम्यनिम्यत्रिफलापटोल-करञ्जजातीखदिराशनानाम्। सतोयकल्केषृतमाशु पक सर्वोपदंशापद्वरं प्रदिष्टम् ॥ १२॥

मृनिम्देत्यादि—स्पष्टन् ॥ १० ॥

करञ्जनिम्वार्जुनशालजम्बू

वटादिभि कल्ककपायसिद्धम्।

सर्पिनिंहन्यादुपदंशदोषं

सदाहपाकं स्रुतिरागयुक्तम् ॥ १३ ॥

करञ्जावपृते-करञ्जस्य मूलन् । वटादिभिरिति वटोडुम्वराश्वत्थसत्तकपीतनै पद्मभि. । कपीतनो गन्धमुण्ड । पृतस्याम्य पानम्, ऋत्तणञ्चीनन कार्व्यम् ॥१३॥

## श्रागारध्माद्यं तैलम्

श्रागारधूमरजनीसुराकिएवञ्च तैस्त्रिमि । भागोत्तरै पचेत्तैलं कएडूशोथरुजापद्दम् । शोधनं रोपण्डचेव सर्वण्करणं परम् ॥ १४ ॥

आगारभूमिति---आगारभूमे। जिन्मूम.। किएव सुरावाजम् । भागोत्तरेरिति तैलप्रम्ये आगरभूम पल १ कर्ष १ मापा ५ रति ३ । हरिद्रा पल २ कर्ष २ मापा १० रति ६ । सुरावीज पल ३ कर्ष ३ मापा १५ रति ६ । एव लेह-पादिकर्यं कन्कस्य, पाकस्तु जलेनैव ॥ १४॥

> श्रर्शसां छिन्नदग्धानां किया कार्य्योपदंशवत् ॥ १४ ॥ इत्युपदंश-चिकित्सा ॥

चिकित्सामामान्यादलैव लिङ्गाशंमा चिकित्मामाह, त्रशंसामिति लिङ्गाशंमा-कित्वर्थ ॥ १५॥

रत्युपदरााचिकित्माः ।

# अथ ग्रुकदोष-चिकित्सा।

हितञ्च सर्पिष पानं पथ्यञ्चापि विरेचनम्। हितः शोखितमोत्तश्च यचापि लघुभोजनम्॥१॥

प्राग्रक्तमङ्गत्यैव स्क्रदोषाचिकित्सितमुच्यते । स्क्री जलस्क सविषजन्तु तत् कृतो दोषः स्क्रदोष । हितामित्यादि—सुश्रुनस्य । सर्पिष इति यथादोष सस्कृतस्य । विरेचनमपि पथ्य हितमित्यर्थः ॥ १ ॥

> सर्वर्पी लिखितां स्त्मैः कषायैरवच्चूर्णयेत्। तैरेवाभ्यक्षनं तैलं साधयेद् वणरोपणम् ॥ २॥ क्रियेयमधिमन्थेऽपि रक्नं साव्यं तथोभयो ॥ ३॥

सर्वपीमित्यादि—वाग्मटस्य । कषायैरिति रसमेदीये कषायवर्गोक्तै पथ्यावि-भीतकशिरीपादिमि शोधनादिगणसम्बद्दोक्तन्यमोधादिमि । स्द्भैरिति स्दमचू-चौंकृते । सुश्रुते तु स्दमैरित्यत्र सम्यगिति पाठ । तैरेवेति पूर्वोक्तकषाये काथ-कल्कै । उमयोरिति सर्वप्यधिमन्थयो ॥ २—३॥

त्रष्ठीलायां हते रक्ते केष्मग्रन्थिवदाचरेत् ॥ ४ ॥ कुम्भीकायां हरेद्रक्तं पकायां शोधिते वर्षे । तिन्दुकित्रफलालेष्ट्रेर्लेपस्तैलञ्च रोपणम् ॥ ४ ॥ श्रात्वज्यां हतरक्तायामयमेव कियाकमः ॥ ६ ॥

श्रष्ठीलायामित्यादि—नाग्मटस्य । नातनायामप्यष्ठीलाया स्त्रद्धितरक्तस्या नरकस्य निर्देश्य जलौकादिभिरुचितमेन । कुम्मीकाया हरेद्रक्तमित्यामानस्यायाम्। तैलब्र रोपण्मिति चक्ततिन्दुकादिकल्कासिद्धम् । सुश्रुते तु—कुम्मीका पाकमापन्ना भिन्ना सशोध्य रोपयेत् । तैलेन लोधित्रफलातिन्दुकाश्रक्तेन नां रत्युक्तम् । तिन्दुकाश्रयो फलास्थीति च तद्दीकाकृत । श्रलच्यामित्यादि—नाग्मटस्य । श्रयम्मेनेति कुम्मीकोक्तः ॥ ४-६॥

स्वेद्येद् प्रथितं स्निग्धं नाडीस्वेदेन बुद्धिमान् । सुस्नोप्णैरुपनाहैस्र सुस्निग्धेरुपनाह्येत् ॥ ७ ॥ स्वेदयेदिति—सुमृतस्य । अथितमिति प्रथितास्य एकदोषम् । स्निग्धमिति

तैलयोगात् । स्वेदेनेति स्वेदनद्रव्याणि चरकोक्तानि यथा 'वारणागृतकैररएशियु-मूलकसभी । वासावराकरवाकिपत्रैरश्मन्तकस्य च । शोभाज्जनकशरीयमालतीसुर साजैके । प्रनेष्वकाथ्य सिलल नाढीरवेद प्रयोजयत , रित । सुखाध्यारपनाहै रिनि कफहरद्रन्यक्वतैः, द्यथितस्य कफ्रज्ञतत्वादः । द्वस्तिन्धेरिति तैलयोगात् ॥ ७ ॥

<sup>डत्तमाख्यान्तु विडकां सङ्ख्रिय</sup> वडिशोज़्ताम्। कल्कैश्चूर्यं कषायाणां चाद्रगुक्रैरुपाचरेत्॥ =॥

चत्तमाख्यामित्यादि—याग्मटस्य । कपायाणामिति कपायवर्गपटिताना पथ्यादीना न्ययोधादीना वा । उपचरेदिति प्रलेपन ॥ ८॥ कम पित्तविसपीकः पुष्क्रीमूहयोहित ।

त्वक्षाके स्परीहान्याञ्च सेवयेनमृदित पुनः। वलातैलेन कोण्योन मधुरैक्षोपनाह्येत्॥ ६॥

क्रम इत्यादि—वाग्भटस्य । पुष्करीमूहयोरिति पुष्करिकाममूहापेष्टकयो । त्वकृषाक स्पर्शहान्याञ्चिति पूर्वेण सम्बध्यते । तेनैतयोरिष पिचितसपाँकत मम कार्य । मुहित पुनर्वलातेलेन सेचयेदिति योज्यम् । मध्रेरिति काकोल्यादिभि , किंवा जीवनीयगर्थे , वाग्मेट जीवनीयगर्थास्योवतत्वात् । बलातैलञ्ज वाग्मेट वात-न्याधानुनतम् ॥ १ ॥

रसिकया विधातन्या (लिखिते रातपोनके॥ पृथक्षण्यादिसिद्धः तैलं देयमनन्तरम्। रक्षविद्धधिवचापि क्रिया शोणितजेऽबुँदे। कषायतेलसर्पापि कल्के चूर्ण रसिक्याम्॥

शोधने रोपणे चैव वीत्य वीत्यावतारयेत्॥१०॥ रसिक्रियत्यादि सुश्रुतस्य । रसिक्रिया ज अवस्था वीच्य शोधनीया रीपणीया

वा देवा । तत्र शोधनीया यथा, — शालसारादिसारेषु पटोसित्रफलाच्च च । रस-किया विधातन्या शोधनी शोधनेषु च १ हति । रोपखीया यथा, — त्वा न्यां। प्र द्द्यस्य त्रिफलायास्त्रथेव च । रसिक्रिया रोपणार्थे विद्रभति यथाविधि । रति ।

ध्यक्षययोदीत्यादि—ध्यक्षययोदि मित्रकोनग्रधतसाधनहन्त्रम्, तङ्ग्या,-्रथक्षपर्यात्मात्मात्र च हरिद्रे मालती सिता । काकोल्यादिश्च योज्य त्याद्रियना रोषणे धते । इति । अञ्च सिता सर्करीते चक्र , अतहूर्वेति ता क्रसदेव । एतस यत

तैल वा पृथक्षप्रक्यंदिना कायकल्करूपेण साध्यमिति वदन्ति । शर्करा तु कल्करूपे-यैव देया काथानईत्वात् । श्रनन्तरमिति रसिक्षयादानस्यानन्तरिमत्यर्थः । रक्तविद्रिधि-वदित्यादौ—वीद्य वीद्येति द्विवयीयोक्तामवस्या निरूप्य यदि शोधन कर्त्तव्य भवति तदा शोधनानि कषायादीन्यवचारयेत्; यदा तु रोपण कर्त्तव्य भवति तदा रोपणानीत्यर्थ ॥ १०॥

> श्रर्वुदं मांसपाकञ्च विद्विध तिलकालकम् । प्रत्याख्याय प्रकुर्वीत भिषक् तेषां प्रतिक्रियाम् ॥११॥ इति शूकदोषचिकित्सा ।

श्रर्बुदिमित्यादि— असाध्यत्वेनोक्तेष्वप्यर्बुदादिषु कदाचिदसम्पूर्णेलिङ्गत्वादिना साध्यता याप्यता वा सम्मवतीति प्रलाख्याय तत्र किया कार्य्येति श्रेयम् ॥११॥ इति शुक्तदोषिक्तिसा-विवृति ।

# अथ भग्न-चिकित्सा।

श्रादौ भग्नं विदित्वा तु सेचयेच्छीतलाम्बुना । पङ्केनालेपनं कार्य्यं वन्धनञ्ज कुशान्वितम् । सुश्रुतोक्षञ्ज भग्नेषु वीद्य वन्धादिमाचरेत् ॥१॥

श्रागन्तुजल्वसामान्याद् भग्नचिकित्सामाह—श्रादी भग्नीमत्यादि । कुशा-न्वितमित्यत्र कुशिति भग्नास्थिबन्धसाधनकदम्बादित्वच सज्ञा, उक्त हि वाग्भेट— "कटम्बोडुम्बराश्राथसर्जार्जुनपलाशजै.। वशोद्भवैर्वा पृथुमिस्ततु।भे सुनिवेशित । सुश्रक्षे सुप्रतिष्टम्मैर्वल्कलै शक्लैरिप । कुशाह्रयै सम बन्ध पट्टस्ये।पिर योजयेत् " इति ॥ १ ॥

> श्रवनामितमुत्रह्येदुन्नतञ्चावनामयेत् । श्राञ्छेदतिचित्तमधोगतञ्चोपरिवर्त्तयेत् ॥ श्रालेपनार्थं मञ्जिष्ठामधुकञ्चाम्लऐषितम् । श्रतधौतघृतोिन्मश्रं शालिपिएञ्च लेपनम् ॥२॥

अवनामितमित्यादि <u>सुश्र</u>तस्य । अवनामित अवनत कर्कटक वक्क स्थ भेष उन्नामयेष, उन्नतमश्रक्तणांदि श्रवपीहयेष । श्रातिहित श्रथ छत्। श्रीति निर्गतम् । आहेन्द्रिति प्रमारथेत्, श्राक्ति धायामे स्त्यस्य रूपम् । अधीगतमध विमादि वपरि वत्तवेत् आक्षंवेत् । आलेपनार्थमित्यादि - स्थातस्य । अम्लपित-मिति काब्निकविष्टम् । शतथौतष्टतोिन्मश्रमिति पूर्वेण परेण च योज्यमिति चक्रः ॥२॥ सप्तरात्रात् सारात्रात् सौम्यण्तृतुषु मोन्नणम्। कर्तव्यं स्यात् त्रिरात्राच्च तथान्नेयेषु जानता । काले च समशीतोष्णे पश्चरात्राद्धिमोत्तयेत्॥ ३॥ न्यत्रोधादिकपायश्च खुशीत परिषेचने। पश्चम्लीविपकन्तु चीर द्यात् संवदने। सुकोष्णामवतारमें वा चक्रतंतं विज्ञानता ॥ ४॥

सप्ताशादित्यादि ए इश्वतस्य । सोम्येष्ट्रतिष्विति सीते । आद्वेये यीष्ये, वाग्भटेडासुमान्-" त्र्यहात् व्यव्याहती वर्भ सप्ताहान्मी च्योद्धमे । साधारते ज पद्माहाद् अन्तदोषवरीन वा ॥ इति । जानता वैद्येनेति राम । समर्शातीच्छे साले चेति सारद्वमन्तकाले । न्यांग्रेथित्यादि - प्रथ्नतस्य । प्रामूलीत्यादि - पद्ममूली नात्र स्वल्पेति वदन्ति । एतत् पक्षम् चीर वातिष्ठीतरे भन्ने, श्रमाषि परिषेचने इति वीज्यम् । चक्रतेलिमिति सद्य पीहित तेल किंवा सुअतवातन्याधिचिकात्तितीकत तैलिविधानगृहीत तैलम् । शीतोपचारो चितेऽपि ममे सखोष्णस्य विधानमिनेले वलीयसीति हैयम्, श्रतएव विज्ञानतेखुक्तम् ॥ ३—४॥

मांस मासरस, सिंद चीरं यूपः सतीनजः।

वृहण्यान्नपानद्य देशं भन्ने विजानता ॥ ४ ॥

भम्महितमन्नपानमाह, मासीमत्यादि - सुश्रतस्य । भीरिमहानेसे मने सन्धानीयतथा हितम् । यत् प्रनिनवधान्यादिवम् वीर् निषिद्धं तद् नस्मिष्य प्रवेति न विरोध । अन्य त चीरसिंगरिति पठित्वा चीराहुत्थित सिंपरिति व्याचस्रते। मतीनो वर्त्तुंसकलाय , स च यद्यपि वातजनकत्त्त्वयापि सन्धानीयत्वादिहोक्त रिते॥ ४॥

गृष्टिचीरं ससिंपका मधुरीपधसाधितम्। शीतलं लाल्या युक्तं पातर्भयाः विवेधरः ॥ ६॥ सघृतेनास्थिसंहारं लानां गोधूममर्जुनम्।
सन्धियुक्तेऽस्थिभग्ने च पिवेत् नीरेण मानव ॥ ७ ॥
रसोनमधुलानाज्यसिताकलकं समश्रताम्।
छिन्नभिन्नच्युतास्थीनां सन्धानमचिराद्भवेत् ॥ ८ ॥
पीतवराटिकाचूर्णं द्विगुञ्जं वा त्रिगुञ्जकम्।
अपकन्नीरपीतं स्यादास्थमग्नप्रशराहण्यम् ॥ ६ ॥

गृष्टिचीरिमित्यादि—सुश्रुतस्य । गृष्टिरेकवारप्रस्ता धेनु , तस्या चीरम् , मधुरौषघ काकोल्यादिगया , तेन चीरपिरिमाषामाधितम् । मर्पिलीचे प्रेचिप्ये । सप्टनेनेत्यादि सप्टतेन चीरेयास्थिसहारादिक व्यक्त समस्तन्य पिनेदित्याहु ॥६-६॥

चीरं सलाज्ञामधुकं ससर्पि
स्याज्जीवनीयञ्च सुखावहञ्च।
भग्न पिवेत् त्वक्पयसार्ज्जनस्य
गोधूमचूर्णं सघृतेन वाथ॥१०॥

चीरमिलादौ —जीवनीयमिनि श्रारोग्यहेतुत्वात् प्रायधारणम् । त्वक्पयमा-र्जुनस्येति । श्रर्जुनस्य त्वचा साधित पयस्त्वक्पयः, श्रर्जुनत्वक्पयसा सप्टेतन गोधूम-चूर्णं पिवेदिति योज्यम् । श्रन्थ तु त्वक्शब्दो नपुमकतिङ्गोऽप्यस्तीति श्रर्जुनस्य त्वच पिवेदित्याहु. ॥ १०॥

#### **लाचागुग्गु**लुः

लात्तास्थिसंहत्ककुभाश्वगन्धाश्चूर्णीकृता नागबला पुरश्च ।
सम्भग्नयुक्कास्थिरुजं निहन्यादक्कानि कुर्व्यात् कुलिशोपमानि ।
तत्रान्यतोऽपि दप्रत्वात् तुल्यश्चूर्णेन गुग्गुलु ॥ ११ ॥

लाचेत्यादै।—श्रस्थिसहत् श्रस्थिसहारः। ककुमोऽर्जुन । नागवला गोरच-तण्डुला । पुरो गुग्गुल , स च मिलितलाचादिचूर्णसम । वच्यमाणामादिगुग्गुलो हप्टत्वादिति चक्र ॥११॥

#### श्राभागुगगुलुः

श्राभाफलिनकैट्योंपे सर्वेराम समीकृतेः।
तुल्या गुग्गुलुरायोज्यो भग्नसन्धिप्रसादकः॥ १२॥
सम्रणस्य तु भग्नस्य व्रणं सिपंभिधूत्तरे ।
प्रतिसार्य्य कपायश्च शेपं भग्नवदाचरेत्॥ १३॥
भग्नं नैति यथा पाकं प्रयतेत तथा भिषक्।
वातव्याधिविनिर्दिप्रान् स्तेहानत्र प्रयोजयेत्॥ १४॥
एतदेवाह मामेलादि—श्रामा श्राहेति स्याता। सम्याभग्नविकित्मामाह,
सम्रणसेलादि—ग्रुश्तस्य। प्रतिसार्य्य कपायिरिति न्यग्रीभादिकपायदृष्यकृत्यक्तैः
प्रतिसार्य्य प्रतिप्य, कानिकस्त कपायिरिति मधुरीप्रधकाथैः प्रतिमार्य्य प्रसिच्येति
व्याच्ये धातनामेनकार्यस्य। शिपमिलाहारादिकम् ॥ १२-१४॥

### गन्धतैलम्

रात्रौ रात्रौ तिलान् कृष्णान् वासंयद्स्थिर जले।
दिवा दिवैव संशोष्य चीरेण परिभावयेत्॥
ततः चीरं पुन पीतान् सुशुष्काम्बुना।
ततः चीरं पुन पीतान् सुशुष्काम्बुणियद्भिपक्॥
काकोल्यादि स्वद्प्ट्राह्म मिल्लप्टां शारियां तथा।
कुष्टं सर्जरसं मांसीं सुरदारु सचन्दनम्॥
शतपुष्पाञ्च सञ्चूर्ण्य तिलचूर्णेन योजयेत्।
पीडनार्थञ्च कर्चव्यं सर्वगन्धः श्रतं पयः।
चतुर्गुणेन पयसा तत्तैलं विपचेत् पुन ।
पतामश्चमतीं पतं जीरकं तगरं तथा ॥
लोग्नं प्रपीएडरीकं च तथा कालानुशारिवाम्।
शैलेयकं चीरश्कामनन्तां समधूलिकाम्॥
पिष्ट्वा श्रहाटकञ्चेव प्रागुक्तान्योपधानि च।
पिमस्तिद्विपचेत्तं शास्त्रविन्मृदुनाश्निना॥

पतत्तैलं सदा पथ्यं भग्नानां सर्वकर्मसु ।

श्राचेपके पच्चाते चाङ्गशोषे तथादिते ॥

मन्यास्तम्मे शिरोरोगे कर्णश्रले हनुग्रहे ।

वाधिय्ये तिमिरे चैव ये च स्त्रीषु च्यं गताः ॥

पथ्यं पाने तथाभ्यक्ने नस्ये बस्तिषु योजयेत् ।

ग्रीवास्कन्धोरसां वृद्धिरनेनैवोपजायते ॥

मुखञ्च पद्मप्रतिमं स्यात् सुगन्धसमीरणम् ।

गन्धतैलिमदं नाम्ना सर्ववातिवकारनुत् ।

राजाहमेतत् कर्तव्यं राज्ञामेव विचच्चणैः ।

तिलच्चूर्णात् चतुर्थाशं मिलितं चूर्णमिष्यते ॥ १४ ॥

लवणं कटुकं चारमम्लं मैथुनमातपम् ।

व्यायामञ्च न सेवेत भग्नो क्वान्नमेव च ॥ १६ ॥

#### इति भग्न-चिकित्सा

रात्नाविखादि—सुश्रुतस्य। श्रीस्थरे जल इति स्नोतोजले चतुःशरावतैलोचितकृष्णातिलान् गृहीत्वा वस्नेण पोट्टलीं बद्ध्वा स्नोतोजले प्रचिप्य रास्नो स्थाप्यम्। ततो
दिवसे श्रातेष शोषरेत्, एव सप्तदिनानि यावत्, तदनु तिलतुल्यपरिमाणगन्यद्वीर
रात्नौ तिलान् निर्चिप्य दिवा प्रसार्थ्यातपे शोषयेत्, एव सप्तदिनानि यावत्, तदनु
"भान्यद्रन्यसम काथ्यम्" इत्यादिवचनवलात् तिलतुल्यपरिमाण यष्टिमधु गृहीत्वा
श्रष्टगुण जल दत्त्वा पक्त्वा श्रष्टमभागवशिष्टजले तिलान् रात्रौ प्रचिप्य दिवातपे
शोषयेत्, एव सप्तदिनानि यावत्, एव गन्यद्वीरेऽपि सप्ताहम् (पुनरिष तिलतुल्यपरिमाणे गन्यद्वीरे रात्रौ तिलान् निष्विप्य दिवा स्यौतपे शोषयेत् एव सप्त दिनानि
यावदित्यर्थः) । तदनु तिलान् निष्तुषिक्तत्य चूर्णयेत् । ततश्च तेषा तिजचूर्णानां
चत्वारो मागाः, भागश्चेक काकोल्यादिशतपुष्पान्तमिलितचूर्णस्य, वद्त्यति च
'तिलन्तूर्णाचतुर्थम्' इत्यादि । एतस्यैव चूर्णस्य पिडनार्थमुत्त्वेदने कर्त्तेव्य शार्देनारकरणार्थं सर्वगन्यश्त द्वीर तावन्मान प्राध्य यावता द्वीरेण चूर्णमार्द्र भवति ।
सर्वगन्थिरिलेलादिगणेन, द्वीरपरिभाषयैव दुग्ध साध्यम् । एलादिगणश्च सौश्रतः।
एवमुक्तप्रकारेण गृहीततैलस्य चत्वारः शरावाः, एतत्पाकार्थञ्च गन्यदुग्धस्य षोडश-

रारावा आह्या इत्थर्थ । श्रशुमती शालपर्थी, कालानुशारिवा तगरम्, चीरशुका चीरिविदारी, श्रनन्ता श्रनन्तम्ल, मध्लिका मर्कटहस्ततृष्ण श्रन्ये तु गोधूममेद इत्याहु । प्रागुक्तानीति काकोल्यादिशतपुष्पान्तानि । पिभिरिति कल्कैरित्यर्थः । श्रदिमस्तु पाठ सुश्रुतदोकासु व्याख्यातः । श्रिस्ततु पाठ यद्यमधुनी मागद्वयम्, काकोल्यादिगणमध्येऽपि यद्यमधुपाठात् ॥ १५ ॥ १६ ॥

शति मझिचाकित्सा विवृति ।

# अथ कुष्ठ-चिकित्सा

वात्तोत्तरेषु सर्पिर्वमनं श्लेष्मोत्तरेषु कुष्टेषु । पित्तोत्तरेषु मोन्तो रक्षस्य विरेत्वनञ्चात्रम् ॥ प्रच्छनमलेष कुष्ठे महति च शस्तं शिराव्यधनम् ॥ वहुदोप संशोध्य कुष्ठी वहुशोऽनुरत्तता प्राणान् ॥१॥

रक्षदुष्टलग्गतत्वसाधर्मात् कुष्टचिकित्सितमुच्यते । वातोचरिष्वित्यादि—सिंपरित्युपलक्षय तेन तैलाम्यक्नोऽपि बोध्य , उक्त हि वाग्मटे 'तत्र वातोचरे तेल धत
वा साधित हितम् ' इति । अग्रमिति सिंपरिदिषु योज्यम् , तेन वातोचरादिषु सिंपरादि प्रथम कार्य्यम् , तदनु वच्यमाणा चिकित्सा कार्य्येत्यर्थ । अग्र्यमिति पाठे
प्रधानमित्यर्थ । बहुरा इति वलरक्षार्थ स्तोक स्तोक दोपनिर्हर्ये पुन पुन शोध्य ,
एकदा हि स्रिदोपहर्येन वलक्यो महात्ययश्च स्यादिति । अत्यव एतदनन्तरमुक्त
चरकेण 'दोप द्यातमात्रकृते वार्युद्धन्यादवलमाशु' इति ॥ १ ॥

#### पश्चकपायः

वचावासापटोलानां निम्वस्य फलिनीत्वचः।

कपायो मधुना पीतो वान्तिकृत्मद्नान्वितः ॥ २॥ वचत्यादी—वचादीना त्रयाणा मृलम् । फलिनी प्रियगु । वमनार्थञ्च काय- विभी परिमापा यथा,—'काव्यद्रव्यस्य कुढव अपित्वा जलाढके । चतुर्मागावशि- एन्तु वमनेप्ववचारयेत्' इति ॥ २॥

विरेचनन्तु कर्त्तव्यं त्रिवृद्दन्तीफलत्रिकै ॥ ३ ॥

विरेचनमिति—शिफलाक्वाथे त्रिवृह्न्तीमूले प्रचिप्य श्रथवा दन्तीमूलित्रवृता-लताचूर्णं प्रति मा २ त्रिफलाकाथेन पेयम् ॥ ३ ॥

ये लेपाः कुष्ठानां प्रयुज्यन्ते निर्गतास्रदोषाणाम् । संशोधिताशयानां सद्यः सिद्धिर्भवति तेषाम् ॥ ४ ॥ ये लेपा इत्यादि—निर्गतोऽस्रगतो दोषो येषा ते तथा निर्गतास्रदोषा ॥४॥

मन शिलाले मरिचानि तैल-

मार्क पय कुष्ठहर प्रतेप ॥ ४॥ करञ्जवीजैडगजः सकुष्ठो

गोसूत्रपिष्टश्च वरः प्रदेहः॥६॥

मन शिलेत्यादौ---श्राल हरितालम् । तैलन्न सार्षेप कुष्टहरत्वात् । श्रार्क पयोऽर्कचीरम् ॥ ५ ॥ ६ ॥

> पर्णानि पिष्ट्वा चतुरंगुलस्य तकेण पर्णान्यथ काकमाच्या । तैलाक्तगात्रस्य नरस्य कुष्ठा-न्युद्धर्त्तयेदश्यहनच्छदेश्च ॥ ७ ॥

पर्णानीत्यादौ—चतुरगुल श्योनालु, श्रश्वहनच्छद करवरिपत्रम्, एतदन्त एक एव योग । योगत्रित्वे चरकोक्तद्वात्रिंशत्प्रदेहसख्यावृद्धि स्यादिति ॥ ७ ॥

श्रारग्वधः सैडगजः करञ्जो

वासागुङ्गची्मदनं हरिद्रे ।

श्र्याह सुराह खदिरो धवश्च निम्बो विडङ्गं करवीरकत्वक्॥

त्रिध्ध भौजों लशुन शिरीषः

सलोमशो गुग्गुलुकुष्णगन्धे।

फागिज्भको वत्सकसप्तपगर्यौ

पीलूनि कुष्ठं सुमन प्रवाला ।

वचा हरेग्रुस्त्रिवृता निकुम्भो

भन्नातकं गैरिकमञ्जनञ्ज ।

मन-शिलाले गृहधूम एलाकाशीशले।धार्जुनमुस्तसर्जाः॥
इत्यर्द्धरूपैविंहिता पडेते
गोपित्तपीता पुनरेव पिष्टाः।
सिद्धाः परं सर्पपतैलयुकाश्चूर्णभदेहा भिपजा प्रयोज्याः॥
कुष्टानि कृञ्क्याणि नवं किलासं
सुरेन्द्रलुतं किटिमं सददु।
भगन्दराशीस्यपर्ची सपामां

हन्यु प्रयुक्ता श्रचिरान्तराणाम् ॥ = ॥

श्रारम्थ इत्यादिना पट्भिः क्षेत्रार्दे, पट्योगा । भारम्थस्य पत्रम्, श्याह्य
नवनीतखाटि, करवीरस्य त्वक्, अध्यिश्च भौजं इति भूजंपत्रअन्यि, लोमशो धातुकाशीश तमालपत्र वा, कृष्णगन्या शोभाजनक , फाणिज्मक पर्णासेभेद , पीछ श्राचरापथिक फलम्, सुमन प्रवाला चातीपल्लवाः, निकुम्भो दन्ती, श्रव्यन रसाञ्चनम्,
श्रद्धस्पैरिति श्रद्धक्षेकै , गोपिचपीता इति गोपिचभावनया पीता पीतवर्णा, मावना
च सप्ताहम ॥ = ॥

मन शिला त्वक् कुटजात् सकुष्ठात् सलोमश सैडगजः करञ्ज । प्रन्थिश्च भौजः करवीरमूल चूर्णानि साध्यानि तुपोदकेन ॥ पलाशनिद्दाहरसेन वापि कर्पोद्घृतान्याहकसाम्मितेन । द्वींप्रलेपं प्रवदन्ति लेप-

मेतत् परं कुष्ठविनाशनाय ॥ ६॥

मन शिलत्यादी—त्वक् कुटजादिति कुटजस्य त्वक् । लोमशो धातुकाशीशम्।
तुपोदक सतुपर्यवे सन्धानिवेशपाद् कृत काशिकम् । पलाशानिदौहरसेनेति पलाशावृचस्य प्रधानमूल द्वित्वा तदध कुम्म स्थापियता उपरि वृचदाहाद् यो गलति
स्वरसः स पलाशानिदाहरमः, श्रन्ये तु पलाशकारोदकमाहु ॥ १ ॥

कुष्ठाद्यम् कुष्ठं हरिद्रे सुरसं पटोलं निम्बाश्वगन्धे सुरदारुशियु । ससर्षपं तुम्बुरुधान्यवन्यम् चएडाञ्च दूर्वाञ्च समानि कुर्यात् ॥ तैस्तकपिष्टैः प्रथमं शरीरं तैसाक्षमुद्धत्तियतुं यतेत । तथास्य कराङ्कः पिडकाः सकोठाः कुष्ठानि शोफाश्च शमं प्रयान्ति ॥ १०॥

कुष्ठमित्यादी—सुरम पर्णासः, तुम्तुरु स्वनामख्यातम्, वन्यं कैवर्तमुस्तकम्, चरदा चोरपुष्पी, प्रथम तैलाक्षमिति योज्यम् । तेलब्र इह मार्पप्रम् ॥ १०॥ धाज्यत्त्रप्रथ्याकिमिशञ्जवह्निभन्नातकावल्गुजलौहर्भृद्धैः। भागाभिवृद्धैस्तिलृतैलिभिश्रे सर्वाणि कुष्ठानि निहन्ति लेपः॥११॥

धात्रीत्यादी—अव विभीतकम्, क्रिमिरात्रुविंडङ्ग, विहिश्चित्रक, लाह इति वजाधयश्चूर्णं न त्वगुरु । मृङ्ग इति मृङ्गराजस्य चूर्णं न तु गुडत्वक्, उक्त हि विन्त्यवासिना—''त्रिफलाथ विटङ्गानि चित्रकोऽरुष्करस्तथा। इन्दुरेखा श्रयश्चूर्णं मृङ्गराजरजाऽपि च । क्रमाभिवृद्धया सयुकं सेलेन सुपरिष्ठुतम्। नवायमभिद्ध नाम रमायनमनुत्तमम् '' इति । तथा लेप इति प्रमादपाठ किन्तु लेह इति, उक्त हि तन्त्रान्तरे- '' धात्री विभीतक पथ्या विडङ्गाग्निमरुक्तरम् । वागुजीलोहमुङ्गच्च सचूर्यं क्रमविंदतम् । तिलतेलान्वित् लिह्नात् श्रेष्ठेमेतद्रमायनम् '' इति । तेनाय योगः शशाङ्ग- लेखेल्याद्यनन्तर वोध्यः, लेखकदोषात्तु लेपप्रकरेण पठित इति ॥ ११ ॥

विडद्गसैन्धवशिवाशशिरेखासपंपकरञ्जरजनीभि ।
गोजलपिष्ठो लेप कुष्ठहरो दिवसनाथसमः ॥ १२ ॥
विडद्गैडगजाकुष्ठविशासिन्ध्त्यसप्पैः ।
धान्याम्लपिष्टैलेपोऽयं दृद्रुकुष्ठरुजापहः ॥ १३ ॥

दूर्वाभयासैन्धवचक्रमर्दैकुठेरकाः काञ्जिकतक्रिप्धाः। ृ तिभिः प्रलेपेर्रिप वर्द्धमूलं ददुर्ख्व कगृङ्ख्य रुजाश्च हन्यात् ॥१४॥ विडक्केत्यादी—शिरोखा सोमरानीबीजम्, गोजल गोमूत्रम्, दिवसनाथः स्ट्यं. । दूर्वेत्यादी—चक्कमंद एडगजः; क्रुठेरक पर्यास । काजिकतक्रिपष्टा इति काजिकतक्रयोरन्यतरेख पिष्टा इति वदन्ति । त्रिभिः प्रतिपैरित्यनेन शीव्रप्रशम-कारितां दर्शयति, न तु नियमोऽयम् ॥ १२-१४ ॥

तुल्या रस शालतरोस्तुषेणसचक्रमर्दोऽप्यभयाविमिश्रः। पानीययमक्केन तदम्बु पिप्टोलेपः कृतो दद्रगजेन्द्रुसिंहः॥१४॥

तुल्य इत्यादि—शालतरो रसो घूनक , तुपेणिति धान्यत्वचा, धूनकादीनां पानीयमक्तान्ताना समे। भाग । तदम्बुपिष्ट इति पानीयमक्तजलेन पिष्ट ॥१४॥

प्रपुन्नाडस्य वीजानि धात्रीसर्जरसस्तुहा । सौवीरिपष्टं दद्र्णामेतदुद्वर्त्तनं परम्॥ १६॥ चक्रमर्दकवीजानि जीरकञ्च समांशिकम्। स्तोकं सुदर्शनाम् लं दद्रकुष्ठविनाशनम् ॥ १७॥ लेपनाद्भच्याच्चैव त्यकं दृद्रनाशनम् ॥ १८ ॥ यूथीपुन्नागमृलञ्च लेपात् काञ्जिकपेपितम्। कासमदंकमूलञ्च सीवीरेण च पेषितम्। द्द्रकिटिमकुष्ठानि जयेदेतत् प्रलेपनात्॥ १६॥ शिजरिरसेन सुपिष्टं मूलकवीजं प्रलेपत ।सिध्म । न्तारेण वा कदल्या रजनीमिश्रेण नाशयति ॥ २०॥ गन्धपापाण्चूर्णेन.यवज्ञारेण पेषितम् । सिध्म नाशं वजत्याशु कद्वतैलयुतेन वा ॥ २१ ॥ कासमईकवीजानि मूलकानां तथैव च। गन्धपाषाणमिश्राणि सिध्मानां परमौषघम् ॥ २२ ॥ घात्रीरस सर्जरसः सपाक्य सौर्वारिषष्टश्च तथा युतश्च। भवन्ति सिध्मानि यथा न भूय-स्तथैवमद्वर्चनकं करोति॥ २३॥

प्रपुत्ताहस्येति—प्रपुत्ताहः पडगजः। स्नुहाया चीरमन्ये तु मूलमाहुः। सौवीरं कािककम्। स्तोक सुदर्शनामूलमिति मिलितचक्रमदंजीरकािपचया पादिकनिलाहः। त्यक चिनाधास इति नाम्ना ख्यातम्। यूथीपुत्तागमूलम् स्वनामख्यानम् । कासमर्दकः कालकासुन्दा पतन्मूल कािककिन पिष्ट्वा रात्री स्थाप्य प्रातिधानकाकरिते लेपो विषेय इत्युपदिशन्ति। शिखरिरसेन अपामार्गस्वरसेन चारेख वा कदल्या इति कदलीचारोदकेन पिष्टमित्यथं, पेषण प्रति विकल्पेनास्य प्रण्यात्। गन्धपाषाणो गन्धकम्, मूलकानान्तथैव चेति मूलकाना वीजानीत्यर्थः। धात्रीरसः आमलकीस्वरसः, पानयो यवचार विड्लवणमित्यन्ये। तथा युत इति सौवीरेखैव दिनमय मानितः, 'प्तीकृत दिवसम्रयम्' इति योगान्तरदर्शनात् । धात्रीरसस्थाने धात्रीफलमिति चन्द्राट पठति॥ १६—२३॥

कुष्ठं मूलकवीजं त्रियङ्गव सर्षपास्तथा रजनी।
पतत् केशरषष्ठं निहन्ति बहुवार्षिकं सिध्म ॥ २४॥
नीलकुरुएटकपत्रं स्वरसेनालिप्य गात्रमतिबहुशः।
लिम्पेन्मूलकवीजैः पिष्टैस्तकेण सिध्मनाशाय ॥ २४॥
चक्राह्मयं स्नुहीचीरमावितं मूत्रसंयुतम्।
रिवतसं हि किञ्चित्तु लेपनात् किटिमापहम् ॥ २६॥
श्रारम्वधस्य पत्राणि श्रारनालेन पेषयेत्।
दहुकिटिमकुष्ठानि हन्ति सिध्मानमेव च ॥ २७॥

कुष्ठमित्यादौ—केशर नागकेशरम् । नीलकुरुग्टको नीलिभिग्टी । चक्राह्रय-मेडगजाबीनम् । 'रिवितप्त सिक्रियन्श्च' इत्यपि पाठान्तरम् ॥२४—२७॥

> वीजानि वा मूलकसर्षपाणां लाज्ञारजन्यौ प्रपुनाडवीजम् । श्रीवेष्टकव्योषविडङ्गकुष्ठं पिष्ट्वा च मूत्रेण तु लेपनं स्यात्॥ दद्वृणि सिष्मं किटिमानि पामां

कपालकुष्ठं विषमञ्च हन्यात् ॥ २८॥ भोजानीत्यादी—लाचारजन्याविति इन्द्रः न तु हरिद्राह्वमित्याहुः । श्रीवेष्टको नवनीतखोटिः ॥ २८॥ विडक्केत्यादी—राशिरेखा सोमराजीवीअम् , गोजल गोमूत्रम् , दिवसनाथ स्र्यं । दूर्वेत्यादी—चक्रमंद एडगज., कुठेरक पर्यास । काजिकतक्रिण इति काजिकतक्रयोरन्यतेरण पिष्टा इति वदन्ति । त्रिभिः प्रतेपैरित्यनेन शीष्टप्रशम-कारिता दर्शयति, न तु नियमोऽयम् ॥ १२-१४ ॥

तुल्या रस शालतरोस्तुषेणसचकमर्दोऽप्यभयाविमिश्र । पानीययमक्केन तदम्बु पिष्टोलेपः कृतो दद्रगजेन्द्रुसिंहः ॥१४॥

तुल्य इत्यादि--शालतरो रसो धूनक , तुपेयोति धान्यत्त्रचा, धूनकादीना धानीयमक्तान्ताना समा भाग । तदम्बुपिष्ट इति पानीयमक्तजलेन पिष्ट ॥ १ ॥।

प्रवृत्ताडस्य वीजानि घात्रीसर्जरसस्तुहाः। सौवीरिपछं दद्गृणामेतदुद्वर्त्तनं परम्॥ १६॥ चक्रमर्दकवीजानि जीरकञ्च समांशिकम्। स्तोकं सुदर्शनाम्लं द्द्रकुष्ठविनाशनम् ॥ १७ ॥ लेपनाद्भक्तणाञ्चैच त्रणंकं द्द्रनाशनम् ॥ १८ ॥ यूथीपुन्नागमृलञ्च लेपात् काञ्जिकपेषितम्। कासमदंकमूलञ्च सीवीरेण च पेषितम्। दद्रिकिटिमकुष्टानि जयेदेतत् प्रलेपनात्॥ १६॥ शिखरिरसेन सुपिष्टं मूलकवीजं प्रलेपत सिध्म। क्तारेण वा कदल्या रजनीमिश्रेण नाशयति॥ २०॥ गन्धपापाण्यमूर्णेन यवद्यारेण पेषितम्। सिध्म नाशं त्रजत्याशु कहुतैलयुतेन वा ॥ २१ ॥ कासमईकवीजानि मूलकानां तथैव च। गन्धपापासिश्चासि सिध्मानां परमौषधम् ॥ २२ ॥ घात्रीरसः सर्जरसः सपाक्य सौवीरिपष्टश्च तथा युतश्च। भवन्ति सिध्मानि यथा न भूय-स्तथैवमुद्धर्त्तनकं करोति॥ २३॥

Į

प्रपुत्राहस्येति—प्रपुत्राह एडगजः। स्नुद्दाया चीरमन्ये तु मूलमाहु । सौवीरं कािककम्। स्तोक सुदर्शनामूलमिति मिलितचक्रमदं नीरकापेचया पादिक-मित्याहुः! त्रणक चिनाधास इति नाम्ना ख्यातम्। यूथीपुत्रागमूलम् स्वनामख्या-तम्। कासमर्दक कालकासुन्दा पतन्मूल कािककिन पिष्ट्वा रात्री स्थाप्य प्रातश्चा-काकरुदिते लेपो विधेय इत्युपदिशन्ति । शिखरिरसेन अपामार्गस्वरसेन खारेण वा कदल्या इति कदलीचारोदकेन पिष्टमित्यर्थ, पेषण प्रति विकल्पेनास्य प्रणयात्। गन्थपापाणो गन्थकम्, मूलकानान्तथैव चेति मूलकाना वीजानीत्यर्थ.। धात्रीरस आमलकीस्वरसः, पाक्यो यवचार विद्वलवणमित्यन्ये। तथा युत इति सौवीरेणैव दिनत्रय मावित , 'पूतीकृत दिवसत्रयम्' इति योगान्तरदर्शनात् । धात्रीरसस्थाने धात्रीफलमिति चन्द्राट पठति ॥ १६—२३॥

कुष्ठं मूलकवीजं प्रियक्षव. सर्षपास्तथा रजनी।

एतत् केशरषष्ठं निहन्ति बहुवार्षिकं सिध्म ॥ २४॥
नीलकुरुगटकपत्रं स्वरसेनालिष्य गात्रमतिबहुशः।
लिम्पेन्मूलकवीजे पिष्टैस्तकेण सिध्मनाशाय ॥ २४॥
वकाह्रयं स्नुहीज्ञीरमावितं मूत्रसंयुतम्।
रिवतसं हि किञ्चिनु लेपनात् किटिमापहम् ॥ २६॥
श्रारम्बघस्य पत्राणि श्रारनालेन पेषयेत्।
दद्रुकिटिमकुष्ठानि हन्ति सिध्मानमेव च ॥ २७॥

कुष्ठमित्यादौ—केशर नागकेशरम् । नीलकुरुपटको नीलिफायटी । चक्राष्ट्रय-मेडगजावीजम् । 'रावितप्त सकियवञ्च' इत्यपि पाठान्तरम् ॥२४—-२७॥

> वीजानि वा मूलकसर्षपाणां लाजारजन्यौ प्रपुनाडवीजम् । श्रीवेष्टकव्योषविडङ्गकुष्ठं पिष्ट्वा च मूत्रेण तु लेपनं स्यात् ॥ दद्वाणि सिध्मं किटिमानि पामां

कपालकुष्ठं विषमञ्च हन्यात् ॥ २८॥ भीजानीत्यादी--लाचारजन्याविति इन्द्रः न तु हरिद्राह्मित्याहुः । श्रीवेष्टको नवनीतखोटिः ॥ २८॥ एडगर्जकुष्ठसौवीर-सैन्धवसर्पपैः किमिन्नेश्च । किमिसिध्मदद्गमगडलकुष्ठानां नाशनो लपः ॥ २६ ॥

पडगजत्यादी — मीबीरक मीवीराञ्चनम् , श्रत्र विशिष्टद्रन्यस्यानुकत्वात् । गोमूत्रमेव कुष्ठहर्दतया पेपणार्थं याद्यमिति वदन्ति । श्रपरे तु सीवीरराज्यस्य काञ्जिकार्थता परिकल्प्य तनेव पेपणमित्याहु ॥ २६ ॥ १

स्तुक्काएडे सर्पपात् कल्कः कुकूलानल्पाचितः । 🛴 🥫

म्जुक्कायह इत्यादि—नाग्मटस्य। कुक्लानलः क्ररीपाधि । स्नुक्कायह-,
मध्य गर्न कृत्वा पिष्टश्वेतस्पियेय तत् प्रपूच्य स्नुहीकायहीन्तरेयाच्छाय कुगादिमिर्वद्ध्वा मृत्तिकया प्रलिप्य गोमयाभिना देहत्। ततः स्राक्तव्य तेन कल्केन लेप ॥
॥ ३०॥

स्तुक्काराहे श्रिषिरे दग्ध्या गृह्यूमं ससैन्धवम् । , श्रन्तर्धूम तैलयुक्तं लेपाद्धान्त विचर्धिकाम् ॥ ३१ ॥ एडगजातिलस्विपकुष्ठ-मागधिकालवर्णत्रयमस्तु । पूतिकृतं दिवसत्रयमेतद्धीन्त विचर्धिकदृ सकुष्ठम् ॥ उन्मत्तकस्य वीजेन मार्गकत्तारवारिका। । कडुतैलं विपक्षव्यं शीघ्र हन्याहिपादिकाम् ॥ ३२ ॥

स्तुक्तायडे शुपिर इत्याद्री—दीजुपर्व कीरियत्वा तदिवर गृहधूममैन्धवचूर्या-म्या पूरिविता स्थालीमध्ये तिन्नीचप्य उपिर शराव दस्या मित्तकया शरावमित्ध्र पिधायान्तवृप दहेर , तदनु कडुतैलेन मिमश्य लेप । एडगजेल्यादी—लव्यात्रय सीवर्चलैमन्धविवद्लवयाम् , उन्मत्तक्रम्य धुर्त्त्रप्रकस्य वीर्ज कटुक , मार्यकद्वारपिर-स्तुतजल चत्रुग्रेय पाकार्थम् , विपादिका पादस्सोटनम् ॥ ११ ॥ ३२ ॥

नारिकेलोदके न्यस्तस्तगृहल पूर्तिकां गत । लेपादिपादिकां हन्ति चिरकालानुवन्धिनीम् ॥ सर्जरसित्मधुसम्भव-गुडमधुमद्दिपालगौरिकं संघृतम् । सिक्थकमेत्रत् पकं पादस्फुटनापहं सिद्धम् ॥ ३३॥ 'भारिकेलोदक हत्यादि नारिकेलब्रं सर्वस्तिरियं ग्रीक्षम् । सर्वरसित्यादी-सिन्ध कुष्ठ-चिकिस्मा

सम्भव सैन्धवम् । महिपाच् इति गुग्गुख । पूर्वित् सर्व सममागमेकीकृत्य मनाक् पक्तव्य यथा मिक्थकाकृति भूत्वा लेपयाग्य मनेति ॥ हि ॥

श्रवत्गुजं कासमर्दे चक्रमर्दे निशायुतेम् । माणिमन्थेन तुल्यांशं मस्तुकाञ्जिकपेषितम् ॥ कच्छूं कण्डूं जयत्युग्रां सिद्ध एष प्रयोगराद् ॥ ३४ ॥ कोमलसिंहास्यदलं सनिशं सुरभीजलेन सम्पिष्टम् । दिवसत्रयेण नियतं च्रयपति कच्छूं विलेपनतः ॥ ३४॥

प्रवत्गुजिमित्यादी-अवत्गुज सोमराजीवीजम्, माणिमन्थ सन्धवम्, मस्तुकाश्चिकपेपितिमिति मस्तुकाश्चिकयोरन्यतरेण । कोमेलेत्यादी-सिंहास्यो वासकः तस्य पत्रम्, सुरमीजल गोमूत्रम् ॥ ३४ ॥ ३४ ॥

हरिद्राकल्कसंयुक्तं गे।मूत्रस्य पलद्वयम् । 'पिबेन्नर्र' कामचारी कच्छूपामाविनाशनम् ॥ ३६॥ शोधपाराङ्वामयहरी गुल्ममेहकफापहा। कच्छूपामाहरी चैव पथ्या गोमूत्रसाधिता॥ ३७॥

हरिद्रेत्यादी—शास्त्रयुक्त्या हरिद्राकलकर्षस्य प्रतेषः, कर्षश्चूर्णस्य कलक-स्येति वचनात्, व्यवहारस्तु हरिद्राकलकस्याष्टी माषका , गोमूत्रस्य प्रत्मेकमिति । गोमूत्रसाधितेति गोमूत्रो।त्स्वत्रा ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

पिवति सकंदुतैलं गन्धपाषाणचूर्णे रिवकिरणसुत्तसं पामलो यं पलाईम् । त्रिदिनतद्वुसिक्षः जीरभोजी च शीव्रं भवति कनकदीप्त्या कामयुक्को मनुष्यः ॥ ३८॥

्रिवृत्तित्यादी—प्लार्द्धमिति उत्तमवलानल प्रति प्रात्यिहिकी मात्रा किंवा प्रलार्द्ध त्रिद्धिन् यः पिवतीति योज्य, त्रिदिनेत्यत्रातुस्वारलोपश्कान्दसत्वात् । तेन प्रलार्द्ध दिनत्रय विभज्य बोज्य, तेन किश्चिदिभकदशमापका प्रत्यह भवन्ति । व्यवहारस्त्र शोधितगन्धकर्च्योस्य मापकचतुष्ट्य कदुतैलस्य तु कर्ष, एक इति । तदनुसिक इति तेन सतैलगन्धकच्योनाभ्यकग्रात्र, के चीन्मोधाति चौदिसिह्ने मग्देन व्यवहार । दिनत्रय-सप्ताह वा प्रयोगिति वातातप्रवर्जनञ्जति । कनेक्

दीप्त्येति उपलच्चेय तृतीया । कनकगौर इति च पाठः । कामयुक्त इति उपचित-शुक्रथातुः, कामतुल्य इत्यपि पाठः ॥ ३८ ॥

निशासुधारग्वधकाकमाचीपत्रैः सदावींप्रपुनाइवीजैः । तक्रेण पिष्टैः कटुतैलिमिश्रेः पामादिपृद्धत्तेनमेतदिष्टम् ॥ ३६ ॥ निरात्यादी—निशादिचतुष्टयस्य पत्राणि, श्रन्ये तु निशा हरिदैव द्युषा-दीनोमेव पत्राणीत्यादु ॥ ३६ ॥

सिन्द्रमिरवच्युर्णं महिपीनवनीतसंयुतं वहुशः । लेपान्निहन्ति पामां तैलं करवीरसिद्धं वा ॥ ४० ॥ मांक्षीचन्दनसम्पाक करक्षारिष्टसपपम् । यष्टीकुटजदार्व्यव्दं हन्ति करडूमयं गणः ॥४१॥

सिन्द्रेत्यादी—करवारकाथकल्काभ्यां सिद्ध कडतैलमित्यर्थः। मामीत्यादी सम्पा-कस्य पत्र, करजस्य फल, अरिष्टो निम्व , तस्य पत्र, यष्टीति यष्टीमधु । करङ्क्षमित्यत्र कुष्ठमिति कचित् पाठ । किन्तु चरकेऽप्यस्मिन् गणे दशेमानि कयङ्क्षमानीत्यु-कम् ॥ ४० ॥ ४१ ॥

भल्लातकं द्वीपिसुघार्कमूलं
गुञ्जाफलं त्र्यूपण्शह्वचूर्णम्।
तुत्थं सकुष्ठं लवणानि पञ्च
चारद्वयं लाङ्गलिकाञ्च पक्त्वा।
स्तृद्यकंदुग्घे घनमायसस्थं
शलाकया तं विद्घीत लेपम्।
कुष्ठे किलासे तिलकालके तु
अश्रेपदुर्नामसु चर्मकीले॥ ४२॥

महातकेत्यादि — नाग्मटस्य । द्दीपि चित्रकः, अत्र महातकावकांन्तानां मूलमिति केचित्, अन्य तु महातकस्य नीज तस्यन सर्वत्रोपयोगादित्यादुः । चित्र-कादित्यस्य मूलम्, एपा मल्लातकादिलाङ्गलिकांतानां चूर्णं स्तुखकंचीराभ्या मिलिन्ता चूर्णमेषस्य चतुर्गुणाभ्या लोहपात्रे लेपयोग्यता यात्रत् पाक इत्यादुः ॥४२॥

विषवरुण्हरिदाचित्रकागारधूम-मनलमरिचदूर्वाः चीरमर्कस्तुहीभ्याम् ।

## दहति पतितमात्रात् कुष्ठजातीरशेषाः कुलिशमिव सरोषाच्छक्रहस्ताद्विमुक्तम् ॥४३॥

विषेत्यादौ--विष स्थावरविषम्, श्रनल महातकम् । श्रत्रापि पूर्वेचूर्णादि-मानम् श्रर्कस्तुहीचीराभ्या पाकविधिक्षेति वदन्ति ॥४३॥

> शशाङ्कतेखा सविडङ्गसारा सपिष्पलीका सद्धताशमूला। सायोमला सामलका सतैला सर्वाणि कुष्ठानि निद्दन्ति लीढा॥ ४४॥

शशाद्गलेखेत्यादि—वाग्मटस्य। शशाद्गेलखा स्रोमराजी, हुताशक्षित्रक, श्रयोमल शापितमण्डूरचूर्णम् । अस्मान्मिलितचूर्णान्माषकत्रय चतुष्टय वा गृहीत्वा तिलतैलेन लेखम् ॥ ४४॥

तीवेण कुष्ठेन परीतदेहों
य सोमराजी नियमेन खादेत्।
संवत्सरं कृष्णतिलद्वितीयां
स सोमराजी वपुषातिशेते॥ ४४॥

तीव्रेगेत्यादौ—नियमेनेत्येनन प्रात्याहिकत्व पथ्याशित्वच्च गमयति । सोमराजी कृष्णतिलयोस्तु प्रत्येक माषकत्रय माषकचतुष्टय वा व्यवहरन्ति । सोमराजीमिति चन्द्रश्रेगीम् ॥४४॥

घर्मसेवी कदुष्णेन वारिणा वागुर्जी पिवेत्। चीरभोजी त्रिसप्ताहात् कुष्ठरोगाद्विमुच्यते ॥ ४६ ॥ एकस्तिलस्य भागौ द्वौ सोमराज्यास्तथैव च। भच्यमाण्मिदं प्रातगृद्धद्दुविनाशनम् ॥ ४७ ॥ श्रवल्गुजाद्वीजकर्षं पीत्वा कोष्णेन वारिणा। भोजनं सर्पिषा कार्य्यं सर्वकुष्ठप्रणाशनम् ॥४=॥

धर्मेत्यादि—धर्ममेनी आतपसेनी वागुजी सोमराजीवीजम् , अस्य च मायक-चतुष्टयमुण्योदकेनालोड्य पिनेत्। एक इत्यादानपि चण्योदकमनुपेयम् ॥४६-४८॥

#### नवकषायः

त्रिफलापटोलरजनी-मिक्षिष्ठारोहिगीवचानिम्वैः। एप कपायोऽभ्यस्ता निहन्ति क्फ़ांपित्तजं कुष्ठम्॥ ४६॥ त्रिफ्केलादि—स्पष्टम् ॥ ४६॥

छिन्नाया स्वरमो वापि सेव्यमाना यथावलम् । जीर्षे घृतेन भुजीत स्वरूपं यूपोदकेन वा । श्रातपूतिशरीराऽपि दिव्यक्षपी भवेन्नर ॥ ४०॥ पटोलखदिरारिष्ट-त्रिफलाकृष्णवेत्रजम् । तिक्राशनः पिवेत् काथं कुष्ठी कुष्ठ व्यपोहति ॥ ४१॥

श्चित्राया इत्यादौ — श्चित्रा गुड्ची । पटोलेत्यादी — कृष्णवेत्रं कालियाल-तेति च्यातम् । तिकारान इति तिकभूयिष्ठाहारः ॥ ५० ॥ ५१ ॥

## सप्तसमो योगः

तिलाज्यंत्रिफलाचौद्र-च्योषभञ्चातशर्कराः ।

वृष्य सप्तसमो मेध्यः कुष्ठहा कामचारिण ॥ ४२ ॥
विडद्गत्रिफलाकृष्णाचूर्ण लीढं समाद्यिकम् ।
हिन्त कुष्ठं किमीन् महान् नाडीव्रणभगन्दरान् ॥४३॥
तिलत्यादौ सप्तसम इति सज्ञाबलात् मिलितत्रिफलेव तिलाधेकुमागसमा एव
न्योषमिष ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

इन्द्राशनं समादायं प्रशस्ते उहानि चोद्धृतम्।
तच्चुर्णं मधुसर्पिम्यां लिहेत् चीरघृताशनः।
हत्वा चं सर्वकुष्ठानि जीवेद्धर्पशतद्वयम्॥ ४४॥
यः खाँदद्मयारिष्टमरिष्टामलकानि वाः।
स जयेत् सर्वेकुष्ठानि मासादृद्ध्वं न संशय ॥ ४४॥
दद्यमानाच्च्युत कुम्मे मूलगे खेदिराद् रस ।

साज्यधात्रीरसंचौद्रो हिन्यात् कुष्ठं रसायनम्॥ ४६॥
स्नाशनमित्यादौ—चूर्णेमिति मापकद्वय त्रथाना देवम्। यः खोदिदित्यादौ

श्रिरिष्टो निम्व । दद्यमानादित्यादौ खिदररसधात्रीरसौ तुल्यौ । ष्टतचौद्रे तुप्रचेप्ये इत्याहु.॥ ५४-५६॥

वायस्येडगजाकुष्ठ-कृष्णाभिगुडिका कता।
वस्तमूत्रेण सम्पिष्टा लेपात्श्वित्रविनाशिनी॥ ४७॥
प्रतिकार्कस्तुङ्नरेन्द्रद्भमाणां
मूत्रे पिष्टाः पञ्चवाः सौमनाश्च।
लेपात् श्वित्रं झन्ति दुद्रव्रणांश्च

कुष्ठान्यशीस्युग्रनाडीवर्णाश्च ॥ ४८ ॥ .
गजिवविव्याव्यक्षेमसीतैलिविलेपनात् ।
श्वित्रं नाशं वजेत् किंवा पूर्तिकीटिविलेपनात् ॥४६॥
कुडवे अवल्गुजवीजाद्धरितालश्चतुर्थभागसमिश्रः ।
मूत्रेण गवां पिष्टः सवर्णकरणः पर श्वित्रे ॥ ६०॥
धात्रीखिद्रियोः काथं पीत्वावल्गुजसंयुतम् ।
शङ्खेन्दुधवलं श्वित्रं तूर्णं हन्ति न संशयः ॥ ६१॥

वायसोत्यादी—वायसी काकमाची । पूर्तीकेत्यादि—सुश्रुतस्य । पूर्तिको लाटाकरुः, नरेन्द्रद्वम श्रारग्वभ , एषा पल्लवा इत्यन्वयः । तथा सोमनाश्च पल्लवा जातीपल्लवा इत्यर्थ । गजेत्यादी—चित्रव्याघ । केवलगजर्चममसीलेपश्च श्चित्रहर्रे त्वेनोको यथा—धेतजयन्त्यड्धिमूल चीर श्वित्रविनाशनम् । गजर्चममसीलेपो लेपा वा पूर्तिकीटज " इति । पूर्तिकीटः पादुकाकीट (पादकुरा) इति लोके ख्यातः॥ ५७-६१॥

त्तारं सुदग्धे गजालिएडजे च
गजस्य मूत्रेण वहुस्रुते च।
द्रीणप्रमाणं दशमागयुक्तं
दत्वा पचेद्वीजमवत्गुजस्य ॥
पतद् यदा चिक्कणतामुपति
तदा सुसिद्धां गुडिकां प्रयुक्त्यात्।

### श्वित्रं विलिम्पेद्थ तेन घृष्टं तदा वजत्याशु सवर्णभावम् ॥ ६२ ॥

चार इत्यादि—सुश्रुतस्य । गजालेग्रह गजपुरीष, जलगग्रहजेति पाठे जलग्यह. शमठ । गजस्य मूत्रेण इत्यनन्तर पक्ष इति शेष । वहुन्तुत इति एकविराति-वार मण्नवार वा परिस्तेत । दशमाग्युक्तमिनि द्राखम्य दशमारोन युक्तमवल्युजिमिन्दर्थ । एतस्य कियापरिपाटी लिख्येत । प्रथमतो गजलिग्रहचारस्य द्रोखमेक २५६ पल याद्यम् । वतस्तत्याकार्थं गजमूत्र चारपरिमापया पट्गुख टीयमान द्रवेद्देगुख्यन द्वादश द्रोखो भवति, श्रद्धिगुखगण्यनया तु पट्टोखानि स्यु, तेन मूत्र शराव १६२ " प्रायक्तिमागावशिष्ठिस्तिन् " इति वचनन वृत्तीयमागावशिषद्वी द्रिगुख्यन द्वादश द्रोखोमक श्राद्य तत्व शाव ६४ । ततस्तृतीयमागावशिष्ठचारिदकद्रोखापेचया दशमान्रेशावलगुजवीज पिष्ट्व तत्व शिचप्य पचेत् । तेनावलगुजवीजस्य किञ्चिन्त्यूनत्रयोवस्यामायकाधिकैकपन्नाशत्यलानि भवन्ति, पल ५१, तोला १, मापा ६, श्रन्य तु पट्पन्नाशादिषकपलशतदयस्पचारद्रोखापेचया दशमाशानावलगुजवीज गृहन्ति, तेन तन्मते श्रवलगुजवीजस्य पल २५, तर्ष २, मापा ६, रति ४ एतन्मान भवति, किन्तु व्यवहार पूर्वयेव । ततोऽवताय्यं शिलाया पिष्ट्व चिक्तणतामुवगते सित गृहिका. कार्यो । ष्टिमिति फलगुपत्रकरीपादिना ॥ ६२ ॥

श्वेतजयन्तीमूलं पिष्टं पीतञ्च गव्यपयसैव । श्वित्रं निहन्ति नियतं रविवारं वैद्यनाथाञ्चा ॥ ६३ ॥ श्वजयन्तीत्यादी—गोपरीस पिष्ट पीतन्नेत्यं: ॥ ६३ ॥

#### पञ्चनिम्बः

पुष्पकाले च पुष्पाणि फलकाले फलानि च।
सञ्चूर्णये पिचुमर्दस्य त्वद्धालानि दलानि च।
द्विरंशानि समाद्दत्य भागिकानि प्रकल्पयेत्॥
त्रिफलात्र्यूपण्नाद्धीश्वदंष्ट्रारुष्कराग्निकाः।
विद्वद्वसारवाराद्दीलौहचूर्णमृता समा॥
दिरिद्राद्वयवागुजीव्याधिघाता सशर्करा।
कुष्टेन्द्रयवपाठाश्च हत्वा चूर्ण सुसंयुतम्॥

खिद्राशनिम्वानां घनकाथेन भावयेत्। सप्तधा पञ्चिनम्वन्तु मार्कवस्वरसेन तु। स्निग्धशुद्धतनुर्धीमान् योजयेच शुभे दिने॥ मधुना तिक्रहविपा खिद्राशनवारिणा। लह्यमुष्णाम्बुना वापि कोलवृद्धश्वा पलं पिवेत्। जीर्णे च भोजनं कार्य्यं स्निग्धं लघु हितञ्च यत्॥

विचर्चिकौहम्वरपुरहरीककपालदृह्किटिमालसादि।
शतारुविस्फोटविस्पपामां कफप्रकापं त्रिविधं किलासम्॥
भगन्दरश्रीपद्वातरक्तं जातान्ध्यनाडीव्रणशीर्षरोगान्।
सर्वान् प्रमेहान् प्रदर्शश्च सर्वान् दंष्ट्राविपं मूलविपं निहन्ति।
स्थूलोदर सिंहकृशोदरश्च सुश्चिष्टसन्धिमधुनापयोगात्॥
समोपयोगाद्पि ये दशन्ति सर्पाद्यो यान्ति विनाशमाग्च।
जीवेचिरं व्याधिजराविमुक्तः शुभेरतश्चन्द्रसमानकान्तिः॥६४॥

पुष्पकाल इत्यादौ—पञ्चितम्त्राना प्रत्येक भागद्वय त्रिफलादीनाम्तु प्रत्येकमेको भाग । त्रिफलात्र्यूषण्यरिष प्रत्येक भाग । श्राप्तिश्चित्रकः । वाराही वाराहीकन्द । व्याधिघातः स्वर्णालुः । खिदराशनिनम्वाना घनकाथेनीत खिदरादीना प्रत्येकमप्ट-भागाविशिष्टेन काथेन भावना । श्रात्रन पीतशालः । तिक्षहिविषेति वन्त्यमाणितिक-पट्पलकादिना । खिदराशनवारिणेति खिदराशनकाथेन । कोलवृद्धथेति कोल कर्षार्द्धम् । समोपयोगादिति वर्षोपयोगात् ॥६४॥

## एकविंशतिको गुग्गुलुः

चित्रकत्रिफलाव्योपमजाजीं कारवीं वचाम्।
सैन्धवातिविषे कुष्ठं चव्येलायावश्क्रजम्॥
विडङ्गान्यजमोदांश्च मुस्तान्यमरदारु च।
यावन्त्येतानि सर्वाणि तावनमात्रन्तु गुगगुलम्॥
सङ्जुद्य सर्पिषा सार्द्धं गुडिकां कारयेद्भिषक्।
प्रातमीजनकाले वा भचयेत्र यथायलम्॥
हन्त्यष्टादशकुष्ठानि क्रिमीन् दुष्टवणानिषः।

ग्रह्म्यश्रोविकारांश्च मुखामयगलग्रहान् ॥
गृश्रसीमथ भग्नद्रच गुल्मञ्चापि नियच्छति ।
व्याधीन् कोष्ठगतांश्चान्यान् जयेद्विष्णुरिवासुरान् ॥६४॥
पञ्च मल्लातकांशिङ्खा साध्येद्विधिवज्जले ।
कपायं तं पिवेच्छीतं घृतेनाक्षौष्ठतालुकः ॥
पद्मचृद्ध्या पिवेद् यावत् सप्तिं हासयेचतः ।
जीर्णेऽचादोदनं शीत घृतचीरोपसंहितम् ॥
पतद्मसायनं मेध्यं चलीपिलतनाशनम् ।
कुष्टाशे किमिदोपमं दुएशुकविशोधनम् ॥६६॥

चित्रकेत्यादि —स्पष्टम् । पञ्चेत्यादी —विधिवदिति काथविधिना विष्पलीवर्द्ध-मानवदत्र ष्ट्रदिष्ठामी ॥६५ —६६॥

तैलं भन्नातकानाञ्च पिवेन्मासं यथावलम् । सर्वोपतापनिर्मुक्तो जीवेद्वपशतं दृढः ॥६७॥ प्रलेपोद्धर्कनस्नानपानभोजनकर्माणि । शीलितं खादिरं वारि सर्वत्वग्दोपनाशनम् ॥६८॥ तैलिमत्यादी—मन्नातकतेल मूयन्त्रण प्राह्मम् ॥६७—६४॥

#### तिक्रपट्पलकं घृतम्

निम्वपटोलकदावीं दुरालमां तिक्करोहिणीं श्रिफलाम्। '
कुर्य्यादर् पलांगान् पर्पटकं त्रायमाणाञ्च ॥
सिललाढकसिद्धानां रसेऽप्रमागस्थिते चिपेत् पूते ।
चन्दनिकरातिक्ककमागधिकात्रायमाणाञ्च ॥
मुस्तकवत्सकवीं कल्कीकृतमर्खकार्पिकान् भागान् ।
नव सर्पिपश्च षद्पलमेतत् सिद्धं घृतं पेयम् ॥
कुष्ठज्वरगुल्मार्शोत्रहणीपाण्ड्वामयश्वयथून् हन्ति ॥
पामाविसपेपिडकाकण्डूमद्गण्डनुत् सिद्धम् ॥ ६६ ॥
निम्तेत्यादी—यद्यपि "सर्पिक्षाप्यनव हित्य" हित वचनात पुराणसर्पिम एव

म वेत्रीपयोगिकल, तथाप्यत्र योगमिक्सा नवसिष्यः एवं प्रयोजनवस्वमिति वचनादेवोन्नीयते । सिष्प इति पद षट्पलमानयहर्णार्थम् । दितीयन्तु प्रतमिति पद पेयत्वोपदर्शनार्थम् । तथा प्रथम सिद्धमिति पक्, दितीयन्तु प्रमिद्धिख्यापकम् । अनेन च षट्पलाभिधानेन कुछ ज्येष्ठा षट्पली केहमात्रा एकाद्देषयोज्या दिशितत्याहु. ॥ ६६ ॥

## पश्चतिक्षष्टतम्

निम्बं पटोलं ब्याब्रीक्व गुडूचीं वासकं तथा।
कुर्याद्दशपलान् भागानेकैकस्य सुकुहितान्॥
जलद्रोणे विपक्तव्यं यावत् पादावशेषितम्।
घृतप्रस्थं पचेत्तेन त्रिफलागर्भसंयुतम्॥
पञ्चतिक्रमिदं ख्यातं सर्पिः कुष्ठविनाशनम्।
श्रशीतिं वातजान् रोगांश्चत्वारिशच्च पैत्तिकान्॥
विशतिं श्रौष्मिकांश्चेव पानादेवापकर्षति ॥ ७०॥
पद्मतिक्रे—चलारिशच पैरिकानिति चलारिशद्रोगास्तानपकर्षति कास्ता-

पञ्चातिक--चलारिशच पित्रकानिति चलारिशद्दागास्तानपक्षति कास्ता-नित्याकाङ्क्षायामुक्त पैत्तिकानिति । एव भेदयित्वा योजना कार्य्या, भन्यथा चत्वा-रिशतमिति द्वितीया स्यात् ॥ ७० ॥

## तिक्ककष्टतम्

त्रिफलाद्विनिशावासायासपर्पटक् लकान् ।

त्रायन्तिक दुकानिम्वान् प्रत्येकं द्विपलोन्मितान् ॥

काथियत्वा जलद्रोणे पादशेषेण तेन तु ।

घृतप्रस्थं पचेत् द्यन्तेः पिप्पलीधनचन्दनैः ॥

त्रायन्तीशक्रभूनिम्बैस्तत् पीतं तिक्ककं घृतम् ।

हन्ति कुछज्वराशींसि श्वयशुं प्रहणीगदम् ।

पाग्रहरोगं विसर्पञ्च क्लीवानामिष शस्यते ॥ ७१ ॥

त्रिफलत्यादी—कुलक पटोलपत्रम्, शक कुटजस्तस्य फलम् ॥ ७१ ॥

महातिक्षकं घृतम् सप्तच्छदं प्रतिविषां सम्पाकं तिक्करोहिणीं पाटाम्। मुस्तमुशीरं त्रिफलां पटोलिपचुमईपर्पटकम् ॥
धन्ययवासं चन्दनमुपकुल्ये पद्मकं रजन्यो च ।
पड्मन्थां सित्रशालां शतावरीशारिवे चोभे ॥
वत्सकवीजं वासां मूर्वाममृतां किरातितकतञ्च ।
कल्काम् कुर्य्यान्मतिमान् यएखाइं त्रायमाणाञ्च ॥
कल्कस्य चतुर्भागो जलमएगुणं रसोऽमृतफलानाम् ।
द्विगुणो घृतात् प्रदेयस्तत् सिर्पं पाययेत्सिद्धम् ॥
कुष्टानि रक्षापत्तं प्रवलान्यर्शासि रक्षवाहीनि ।
वीसर्पमम्लिपचं वातासुक् पाग्रहरोगञ्च ॥
विस्फोटकान् सपामानुन्मादान् कामलां ज्वरं कग्रह्म् ।
हृद्रोगगुल्मिपडकामस्पद्रं गग्रहमालाञ्च ॥
हन्यादेतत् सद्य पीतं काले यथावलं सिर्पं ।
योगशतैरप्यजितान् महाविकारान् महातिक्तम् ॥७२॥

महातिकके—उपकुल्यत्येकवचनपाठो न युक्त । श्रायुर्वेदसारवाग्मटादौ पिप्पली-ह्रयपाठाद । कल्कस्य चतुर्माग इति छताश्चतुर्यो भागः। एतश्च मामान्यपरिमापासिद्ध-मपि स्पष्टार्थमुच्यते पङ्ग्रन्था वचा, श्रीक्रयठस्तु पिप्पलीमूलमित्याह, तन्न, वाग्मट वचापठाद । श्रमृतफलानामित्यामलक्फलानाम् । श्रन्नाप्येक सिपं पद कल्कादिविभा गार्थम्, द्वितीय पेयत्वोपदर्शनार्थम्, तृताय महातिककसकार्थम् ॥ ७२ ॥

# महाखादिरकं घृतम्

खदिरस्य तुलाः पञ्च शिशपासनयोस्तुले ।
तुलाईं सर्व एवैते करञ्जारिष्टवेतसाः ॥
पर्पट कुटजञ्जेव वृषः क्रिमिहरस्तथा ।
हरिद्रे कृतमालश्च गुङ्कचीं त्रिफला त्रिवृत् ॥
सप्तर्णस्तु संज्ञुरणो दशद्रोणे च चारिगः ।
श्रप्टभागावशेपन्तु कपायमवतारयेत् ॥
धात्रीरसश्च तुल्यांशं सर्पिपश्चाढकं पचेत् ।

महातिक्रककल्कैश्च यथोक्कैः पलसम्मितैः॥ निहृन्ति सर्वकुष्ठानि पानाभ्यक्किवेचणात्। महाखदिरमित्येतत् परं कुष्ठविनाशनम्॥

महाखदिरघते—शिशपा इति ख्यातस्तरः, श्रशन स्वनामख्यात, न तु पीतशाल इत्याहु, एतयोस्तुलाइय मिलित्वा। तुलाईः सर्व प्येत इति करशादि-मप्तपर्णान्ताः प्रत्येक तुलाईं। दशद्रोणे च वारिण इत्यनन्तर पचेदिति शेष । तुल्याशमित्याढकमानमित्यर्थः। चक्रस्तु ''धात्रीरसञ्च तुल्याश सिपिश्चाढक पचेत्'' इति अन्य न पठिति। तथा ''यथीकौ पलसम्मितैः'' इत्यत्र यथोकौस्तेस्तु साधयेदिति पठित व्याचष्टे च । साधयेदित्यत्र सिपिरिति शेषः। श्रत्र यथि प्रतमान नोक्ष तथापि काथशेपस्याढकाधिकद्रोणस्य नियतत्वात् तत्काथचतुर्थाश प्रस्थाधिकाढकमान प्रतस्यार्थापत्तितन्त्रयुक्त्या सिद्ध भवतीति। कल्कस्य लेष्ट्पादिकत्व सामान्यपरिभाषा-मिद्धमेवित। केचिन्महाखदिरप्रतमिदमनार्षमित्याहुः ॥७३॥

पश्चतिक्च-घृतगुग्गुलुः

निम्वासृतावृपपटोलिनिदिग्धिकानां
भागान् पृथग्दशपलान् विपचेद् घटेऽपाम् ।
श्रष्टांशशेषितजलेन सुनिःस्तेन
प्रस्थं घृतस्य विपचेत् पिचुमागकल्कैः ॥
पाठाविडङ्गसुरदारुगजोपकुल्याद्वित्तारनागरिनशामिषिचव्यकुष्टैः ।
तेजोवतीमिरचवत्सकदीप्यकाशिरोहिएयरुष्करवचाकण्मूलयुक्कैः ॥
माञ्जष्यातिविषया वरया यमान्या
संश्रद्धगुग्गुलुपलेरिप पञ्चसंख्यैः।
तत् सेवितं विपमति प्रवलं समीरं
सन्ध्यस्थिमज्ञगतमप्यथ कुष्ठमीहक् ॥
नाडीव्रणार्वुद्मगन्दरगएडमालां
जत्रुद्ध्वेसवेगद्गुलमगुदोत्थमेहान् ।

### यच्मारुचिश्वसनपीनसकासशोप-हृत्पागृहुरोगगलविद्गधिवातरक्रम् ॥७४॥

निम्नामृतित्यादि — वाग्मटस्य । घट इति द्रोणे । पिचु कर्षरूपे भागो येपा कल्काना ते । मिपिः शतपुष्पा, न तु मधुरिका चृद्धन्यनहारात् । तेजोवती ज्योति-ध्यती । दीप्यक जीरकम् । वत्सक कुटनफलम् । श्रामिश्चन्रकः । कणमूल पिष्पली-मृतम् । वरया त्रिफलया ॥७४॥

### वज्रकं घृतम्

वासागुद्धचीत्रिफलापटोलं : करञ्जनिम्वाशनकृष्णवेत्रम्। तत्काथकरुकेन घृतं विपक्तं तद्वज्ञवत् कुष्ठहरं प्रदिष्टम् ॥ विशीर्णकर्णाङ्गुलिहस्तपादः किम्यर्दितो भिन्नगलोऽपि मर्त्यं। पौराणिकीं कान्तिसवाप्य जीवेदव्याहतो वर्षशतञ्च कुष्टी ॥७४॥

वासेत्यादी—कृप्णवेत्र कालियालता । वज्रकमिति वज्रवदव्यर्थशिक-कत्वात् ॥७४॥

# ञ्चारग्वधाद्यं तैलस्

श्रारग्वधं धवं कुष्टं हरितालं मनःशिलाम् । रजनीहयसंयुक्तं पचेत्तेलं विधानवित् । एतेनाभ्यक्षयेत् थित्री ज्ञित्रं थ्वित्रं विनश्यति ॥७६॥

आरग्वधिमत्यादी—तैलिमिति सार्पपाधन्यतम कुष्ठहितत्वात्, उक्त हि चरके 'तैलानि सर्पपाया करअकोषातकीङ्गुदादीनाम् । कुछेपु हितान्याहुस्तैलं यश्वापि खिदरस्य' इति। अन्ये तु सामान्यश्रुती अधानकल्पत्वेन तिलंतलमेन याद्यम्। यत्र तु सार्पपादिविशेषोक्तिस्तत्रीय सार्पपादियद्दयमित्याहु । एवमन्यत्रापि एवजातीये हेयम् ॥७६॥

## त्यकं तैलम्

मिंखिष्ठारुड्निशाचक्रमद्रिग्वधपत्नवै । एणकस्वरसे सिद्धं तैलं कुष्टहरं कहु ॥ ७७ ॥ मिंधेष्टलादो—रुक् कुष्टम्, तृष्यक गन्यतृष्टम् ॥ ७७ ॥

# महातृ एकं तेलम्

हरिद्रातिफलादारु-हयमारकिचत्रकम्।
सप्तच्छदश्च निम्वत्वक्-करक्षौ वालकं नखी॥
कुष्ठमेडगजावीजं लाङ्गली गणिकारिका।
जातीपत्रञ्च दार्वी च हरितालं मनःशिला॥
किल्ज्जितिलपत्रञ्च श्रकेचीरञ्च गुग्गुलुः।
गुडत्वङ्मरिचञ्चैव कुंकुमं ग्रन्थिपर्णकम्॥
सर्जपणीसखिद्दं विडइं पिष्पली वचा।
घनरेणवमृतायष्टिकेशरं ध्यामकं विपम्॥
विश्वकद्फलमञ्जिष्ठा वोलस्तुम्वीफलं तथा।
स्नुद्दीसम्पाकयो पत्रं वागुजीवीजमांसिके॥
पला ज्योतिष्मतीमूलं शिरीषो गोमयाद्रसाः।
चन्दने कुष्ठनिर्गुगर्डीविशालामिक्षकाद्वयम्॥
वासाश्वकर्णी ब्रह्मी च श्र्याद्वचम्पककुड्मलम्।
पतैः कल्कैः पचेचैलं तृणकस्वरसद्वम्।
सर्वत्वग्दोपहरणं महातृणकसंज्ञितम्॥ ७५॥

हरिद्रेत्यादौ-लाङ्गली विषलाङ्गलीति ख्याता, कलिङ्ग इन्द्रयव , चीरा चीरपुष्पी, य्रिन्थपर्यं गेठेला, ध्यामक गन्धत्यम्, वोलो गन्धरसः, तुम्बीफल पक्षतिकालातु ; मिल्लकाह्य मिल्लका हाफरमिल्लका च, अयाह्यो नवनीतखोटि, चम्पककुड्मल चम्पक-किल्का। त्यक्तस्वरसो द्रव पाकमाधन जल यस्य तत्त्रथा। श्रत्रान्तरे सीमराजी-तेल केचित् पठन्ति तत्तु न टीकासम्मतमिति॥ ७८॥

# वज्रकतैलम्

सप्तपर्शकरञ्जार्कमालतीकरवीरजम् । मूलं स्तुहीशिरीपाभ्यां चित्रकास्फोतयोरिप ॥ करञ्जवीजं त्रिफलां त्रिकद्धं रजनीद्वयम्। सिद्धार्थकं विडङ्गञ्च प्रपुन्नाडञ्च संहरेत्॥ सूत्रिपष्टे पचेत्तेलमेभिः कुष्टविनाशनम् । श्रभ्यद्गाद्वज्रकं नाम नाडीदुष्ट्रत्रणापद्दम् ॥ ७६ ॥

सन्तपर्येत्यादि—सुयुतस्य । मूत्रपिष्टः पचेत्तलिमिति पाकोऽपि गोमूत्रेयैव । श्रास्फोता श्रेतार्फमूलिमिति केचित् । श्रत्र तिलंतलमेव देयमः "तेल तेल साधित ते समूत्रं " इति वाग्मटसवादात् । तेलमत्र मार्पपमिति केचित् ॥ ७६ ॥

## मरिचाद्यं तैलम्

मिरचालशिलाव्दार्कपयोऽश्वारिजदात्रिवृत्। शक्रद्रसिवशालारुड्निशायुग्दारुचन्दनैः॥ कटुतैलात् पचेत् प्रस्थं द्यत्तिर्विपपलान्वितैः। सगोमुत्रं तद्भ्यद्गाद्ददुश्वित्रविनाशनम्॥ सर्वेष्वपि च कुष्ठेषु तैलमेतत् प्रशस्यते॥ ८०॥

स्तल्पमिरचार्यतेले — आल हरितालम्, शिला मन शिला, अर्कपयोऽर्क-चीरम्, अश्वारि करवीर , जटा जटामासी, चन्द्राटादिपिठतमिरिचाये मासीदर्शनान् व्यवहाराच, शक्कद्रसो गोमयरस , अयमिष कल्क , विशाला गोरचकर्कटी, रक् कुष्ठम् , निशायुक् हरिद्राद्वयम् । प्रस्थमिति प्रस्थपरिमित तेन सामानाथिकरण्य न विरुच्यते । गोमूत्रमत्र चतुर्युण वीष्यम् ॥ =०॥

## बृहन्मरिचाद्यं तैलम्

मिर्च त्रिनृता दन्ती ज्ञीरमार्क शरुष्टस ।
देवदारु हरिद्रे हे मांसी कुष्ठं सचन्द्रनम् ॥
विशाला करवीरञ्च हरितालं मन शिला।
चित्रको लाङ्गलाख्या च विडङ्गं चक्रमर्दकम् ॥
शिरीपं कुटजो निम्यः सप्तपर्णः स्तुहामृताः।
सम्पाको नक्तमालोऽद्यः खिद्रं पिप्पली वचा ॥
ज्योतिष्मती च पिलका विषस्य हिपलं भवेत्।
श्राहकं कडतेलस्य गोमृत्रन्तु चतुर्गुणम् ॥
मृत्पात्रे लौहपात्रे वा शनैर्मृहिशना पचेत्।
पक्तवा तेलवरं होतन्म्रस्येत् कौष्ठिकान् वणान ॥

पामाविचर्षिकाद्युक्ण्डूविस्फोटकानि च। वलयः पितं छायानीलिन्यः तथैव च॥ श्रभ्यक्षेन प्रणश्यन्ति सौकुमार्थ्यञ्च जायते। प्रथमे वयसि स्त्रीणां यासां नस्यन्तु दीयते॥ परामपि जरां पाप्य न स्तना यान्ति नम्रताम्। वलीवर्दस्तुरक्षो वा गजो वा वायुपीडितः। एभिरभ्यक्षनैगीढं भवेन्मारुतविक्रमः॥ द१॥

बृहन्मरिचाधि—शक्त्रस पूर्ववत्, कुटजस्य च फलमाहु'। स्तुहायारतु द्वीरम्। प्रथमे वयसीति वयःसन्धी ॥ ८१॥

## विषतैलम्

नक्तमालं हरिद्धे हे श्रर्क तगरमेव च।
करवीरं वचा कुष्ठमास्फोता रक्तचन्दनम् ॥
मालती सप्तपर्णञ्च मिल्रष्ठा सिन्धुवारिका।
एपामर्द्वपलान् भागान् विषस्यापि पलं भवेत् ॥
चतुर्गुणे गवां मूत्रे तैलप्रस्थं विपाचयेत्।
श्वित्रविस्फोटिकिटिमकीटल्ताविचिक्वाः॥
कर्ण्ड्रकच्छ्विकाराश्च ये व्रणा विषदृषिताः।
विषतैलिमदं नाम्ना सर्वव्रणविशोधनम्॥ ८२॥

विषतेले-नक्तमाल करअवीजम्; अर्कस्य चीरम्, तगर तगरपादुका, मालती जानी तस्या पत्रम्, सिन्धुवारिका निर्गुषढी ॥ ८२ ॥

# करवीराद्यं तैलम्

श्वेतकरवीररसो गोमूत्रं चित्रकं विडक्ग्रन्व । कुष्ठेषु तैलयोगः सिद्धोऽयं सम्मतो भिषजाम् ॥ ८३॥

श्रेतकरवीरेत्यादी —करवीररसगोमूत्रयोर्मिलित्वा चातुर्गुग्यम् । शेषस्य तु कल्कत्वम् ॥ = ३ ॥

## श्वेतकरवीराद्यं तैलम्

श्वेतकरवीरमूल विपांशसाधित गर्वा मूत्रे । चर्मदलसिष्मपामाविस्फोटक्रिमिकिटिमजित्तेलम् ॥ ८४॥

श्वेतकरवीरमूलिमत्यादी-धेतकरवीरस्य मूल यम, स्वेत करवीरस्य मूल यम्नेति वा विगृद्धा तैलविशेषणता छेया। विषाशसाधितमिति विषस्याशश्वतुर्थो माग स च करवीरमूलापेष्ठया इति केचित्। श्रान्ये तु गतविषतिले विषस्य पलमुक्त तद-पेष्ठया कर्षमाहु, तम्न तन्त्रान्तरीयवावयत्वात्। श्रान्ये पुनरशो भाग, तेन विषकर-वीरमूलयो सममागयोरेव कल्कत्व, व्यवहारोऽप्योननेव ॥ ८४ ॥

# सिन्द्राद्यं तैलम्

सिन्दूराईपलात् पिष्ट्वा जीरकस्य पलं तथा। कद्वतेल पचेन्मानी सद्य पामाहरं परम्॥ ८४॥

स्वल्पसिन्दूराध-मानीमित्वष्टी पलानि । घृन्दे तु ''क्डतेल पचेदाभ्या सब पामाहर परम्'' इति पठयते । तन्मतेऽपि घृडवैद्यन्यवहारादेव पलाष्टक माह्मम् ॥=५॥

महासिन्द्राद्यं तैलम्

सिन्द्रं चन्द्नं मांसीविडक्षं रजनीव्यम् ।
प्रियक्षुपमकं कुष्ठं मिल्लां खिद्रं वचाम् ॥
जात्यकंत्रिवृतानिम्वकरः विषमेव च ।
कृष्ण्वेत्रकलोध्रञ्च प्रपुत्राडञ्च संहरेत् ॥
श्रुरुण्पिएति सर्वाणि योजयेत्तलमात्रया ।
श्रभ्यक्षेन प्रयुञ्जीत सर्वकुष्ठिवनाशनम् ॥
पामाविचर्चिचकाकराङ्क्ष्विसपीदिविनाशनम् ।
रक्षपिचोत्थितान् हन्ति रोगानेवंविधान् वहून् ॥ ५६॥
महातिन्द्राथे—जात्याः पत्र, श्रकंत्य चीर, जिरक्षस्य फलम् । तैलमात्रया
प्रस्यरुप्याः॥ ६६॥

श्रादित्यपाकं तैलम् मिष्ठात्रिफलालाचानियाशिलालगन्धकै ।

## चूर्णितैस्तैलमादित्यपाकं पामाह्दं परम् ॥ ५७ ॥

श्रादित्यपाकतेले—जल तैलसम दत्त्वा जलशोषपर्य्यन्तमातपे स्थाप्य जल विना पाकानुपपत्तेः । श्रतप्व इन्द्रलुप्तोकादित्यपाकेऽपि गुङ्क्चीरसमेव तैलसम व्यवहरन्ति वृद्धाः । श्रन्ये तु द्रवानुकावद्रवमेवादित्यपाकमाहुः ॥ ८७ ॥

# द्वींद्यं तैलम्

स्वरसेन च दूर्वायाः पचेत्तेलं चतुर्गुणम् । कच्छूविचर्चिकापामा श्रभ्यङ्गादेव नाशयेत् ॥ ८८ ॥

दूर्वातेल-चर्तुगुण यथा स्यात्तथा दूर्वास्वरसेन पचेत् । दूर्वास्वरसेन चतुर्गु-योन तैल पचेदित्यर्थ । वृन्देऽपि ''स्वरसेऽपि च दूर्वायाः पचेत्तैल चतुर्गुये'' इति पाठ ॥ == ॥

## श्रर्कमनःशिलातैले

श्रकेपत्रसे पकं कद्वंतैलं निशायुतम्।

मनःशिलायुतं वापि पामाकंगड्वादिनाशनम्॥ ८६॥

श्रकंतैले—कल्कभेदात् योगद्दय, स्वरसश्चतुर्ग्रेयः, कल्कश्चाद्यश एव स्वरससाध्यत्वात्॥ ८६॥

## गएडीरिकाद्यं तैलम्

गगडीरिकाचित्रकमार्कवार्ककुष्ठद्रुमत्वग्लवणैः समूत्रे.। तैलं पचेन्मगडलकुष्ठदद्रुदुष्टवणाच किटिमापहारि ॥६०॥

गण्डीरिकेत्यादौ—गण्डीरिका स्त्रही, तस्याः श्वीरः, एवमर्कस्यापि, द्रुम स्वर्णालुस्तस्य त्वक्ः, लवण सैन्धव, यदुक्तमायुर्वेदसारे "पक कर्ण्यर्कतिसन्धृत्यकुष्ठ- स्तुग्विह्मार्कवै । समूत्रैस्तैलमाहन्ति दद्गूणि किटिमानि च" इति । अत्र कर्णा स्वर्णालुः । तथा च द्रव्यावती "आरेवतस्तथा कर्णी कर्णिकारोऽथ रैवत. इति । अत्र तु गण्डीरिका मिश्रिष्ठा, द्रुमः कुटजस्तस्य त्विगत्यादुः ॥ ६०॥

# पृथ्वीसारतैलम्

चित्रकस्याथ निर्शुएड्या हयमारस्य मूलतः। नाडीचबीजाद्विषतः काञ्जिपिष्टं पलं पलम्॥ करञ्जतैलाप्टपलं काञ्जिकस्य पतं पुनः । मिश्रितं सूर्य्यसम्पकं तैतं कुप्टवणास्त्रजित् ॥ ६१ ॥ चित्रकेति—श्रत्यन्तोत्कृष्टगुणलात् पृथ्वीसार इति मद्या ॥ ६१ ॥

सोमराजीतैलम्

सोमराजी हरिद्धे हे सर्पपारग्वधं गदम् ।
करञ्जेडगजावीजं पत्रमारग्वधस्य चं ॥
चतुर्गुणं जलं दत्त्वा गोमूत्रप्रस्थसंयुतम् ।
विपचेत् सार्पप तैलं नाडीदुष्टत्रणापहम् ।
श्रनेनाश्च प्रणश्यन्ति कुष्ठान्यष्टादशैव तु ॥
नीलिका पिप्तवो व्यद्गा गम्भीरं वातशोणितम् ।
कराहुन्यच्छप्रशमनं कच्छूपामाविनाशनम् ॥ ६२ ॥

सोमराजीत्यादी ---गद कुष्ठम् ॥ ६२ ॥

पत्तात् पत्ताच्छर्दनान्येभ्युपयाः ' न्मासान्मासात् स्नंसनञ्चाप्यधस्तात् । त्र्यहात् त्र्यहान्नस्ततश्चावपीडान् मासेप्वसङ्मोत्त्रयेत् पद्सु पद्सु ॥ ६३॥

पत्तादित्यादि - मुश्रुतस्य । स्नमन निरेचनम् । नस्तत इति नासपुटयोरव-पाडानस्यविशेषान् दचात् । श्रवपीडशब्देन वहुमात्रसिंपःप्रयोगोऽप्युच्यते तिन्नरा-सार्थ नस्तत इत्युक्तम् ॥ ६३ ॥

योपिन्मांससुरात्याग शालिमुद्गयवादय । पुराणास्तिक्षशाकञ्च जाङ्गलं कुछिनां हितम् ॥ ६४॥ व इति कुछचिकित्सा ॥

योपिदित्यादी—मासमानूपज निपिद्ध जाङ्गलस्य विधानात् ॥ ६४ ॥ द्रित कुछन्विकत्साविवृति ।

# अथोदर्द-कोठ-शीतिपत्त-चिकित्सा।

श्रभ्यद्गः कहुतैलेन सेकश्चोष्णाम्बुभिस्ततः। उद्दे वमनं कार्य्य पटोलारिप्रवारिणा ॥१॥

प्रायस्तुल्याचिकित्सितत्वात् उददीदिचिकित्सितमुच्यते। श्रम्यङ्ग इत्यादी—मेक इत्यत्र स्वेद इत्यपि पाठ । श्रत एवोक्तमन्यत्र "श्रम्यङ्गः कहतैलेन स्वेदन कोष्ण-वारिणा" इति पटोलारिष्टवारिणेत्यत्रानुक्तमिष मदनफलकल्क प्रचेप्यम् । त्रिफला-पुरक्षणाभिरिति त्रिफलायाः कपाय गुग्गुखपिप्पल्यौ प्रचेप्ये, प्रचेपश्च व्यवहाराद् गुग्गुलोर्दशमापका पिष्कल्यास्तु षणमापका इति ॥१॥

> त्रिफलापुरकृष्णाभिर्विरेकश्चात्र शस्यते । त्रिफलां चौद्रसहितां पिवेद्या नवकार्षिकम् । विसर्पोक्तममृतार्दि भिषगत्रापि योजयेत् ॥२॥

त्रिफला चौद्रसिहतामिति-त्रिफलाया काथ, चौद्रन्तु प्रचेप्यम् । नवकार्षिकं वातरकोक्तम् । विसर्पोक्तममृतादिमिति अमृतवृषपटोलं मुस्तकमित्यादिनोक्तम् । तस्यैव शीतिपत्तहन्तृत्वेनोक्तस्वात्, न पुनरमृतवृषपटोलं निन्वकल्कैरुपेतिमित्यादिकम् । सिता मधुकसंयुक्तामित्यत्र सिता कटुकया युक्तामिति केचित् पठन्ति ॥२॥

सितां मधुकसंयुक्तां गुडमामलकैः सह ॥३॥ सगुडं दीप्यकं यस्तु खादेत् पथ्यान्नमुङ् नर । तस्य नश्यति सप्ताहादुददेः सर्वदेहज ॥४॥ सिद्धार्थरजनीकल्कै प्रपुन्नाडतिलैः सह । कहुतैलेन सम्मिश्रमेतदुद्धत्तं परम् ॥४॥ दूर्वानिशायुतो लेपः कच्छूपामाविनाशनः । किमिददुहरश्चेव शीतिपत्तापहः स्मृतः ॥६॥ श्राश्चिमन्थमवं मूलं पिष्टं पीतञ्च सर्पिषा । शीतिपत्तोदर्दकोठान् सप्ताहादेव नाश्येत् ॥७॥

सगुडिमत्यादौ—दीप्यक यमानिकाम् ॥३—॥ कुछोक्तञ्च क्रमं कुटयीद्मलिपत्तव्रमेव च । उद्दोंक्षां कियाञ्चापि कोठरोगे समासतः । सर्षिः पीत्वा महातिक्कं कार्य्यं शोगितमोत्त्रग्रम् ॥=॥ कुष्ठे।क्रमित्यादि—उददंचिकित्सा कोठरोगेऽप्यतिदिशति । उददेत्यादि— महातिक सर्षि कुष्ठे।क्रम् ॥=॥

निम्वस्य पत्राणिसदा घृतेन धात्रीविमिश्राण्यथवोपयुञ्ज्यात्। विस्फोटकोठज्ञतशीतिपत्तं कण्ड्वस्रपित्तं रकसा च द्वन्यात्॥६

निम्नस्थेत्यादि-योगद्रयम्, भ्रन्ये तु एकमेव योग नदन्ति । रकसा चुद्रकुछमेद इति श्रीकण्ठ ॥१॥

चारसिन्धृत्थतेलेश्च गात्राभ्यहं प्रयोजयेत्। गाम्मारिकाफलं पकं शुष्कमुत्स्वेदितं पुनः। चीरेण शीतिपित्तद्मं खादितं पथ्यसेविना ॥१०॥ घोरत्यादी—चारो यवचार, तेलब कडतेल वदन्ति। गाम्मारिकेत्यादि— सुपकशुष्कगाम्मारीफल गन्य दुग्ध दत्त्वा अस्तिव सावम् ॥१०॥

तैलोद्धर्त्तनयोगेन योज्य प्लादिको गणः।

शुप्तम्लकयूपेण कौलत्थेन रसेन वा॥

भोजनं सर्वदा कार्य्य लावतिचिरिजेन वा।

शीतलान्यन्नपानि षुद्ध्वा दोपगति भिषक्।

उप्णानि वा यथाकालं शीतिपित्ते प्रयोजयेत्॥११॥,

इत्युदर्द-कोट-शीतिपत्त-चिकित्सा।

तैलेत्यादि-सुश्रुतोक्त प्लादिको गणस्तैलयोगेन उद्दर्शनयोगेन च योज्य हत्यर्थ ॥११॥

इत्युदद्धिचिकित्सा-विवृति.।

# अथाम्लपित्तचिकित्सा ।

प्रागम्लिपत्तरोगार्त्तं कुलकारिष्टवारिभिः। सराठचौद्रासिन्धृत्थैर्वमनं कारयेद् भिषक्॥१॥ वान्ति कृत्वाम्लिपत्ते तु विरेकं मृदु कारयेत्। सम्यग्वान्तविरिक्षस्य सुक्षिग्धस्यासुवासनम्। श्रास्थापनं विरोद्धते देयं देषाग्न्यपेच्चया ॥२॥

उक्तमद्गर्थेव श्रम्लिपत्तिचिकित्सितमुच्यते । वान्ति कृत्वेति—वमनस्र श्रिरिष्टा-दिभि श्रत्र तन्त्रान्तर यथा—''प्रागम्लिपत्तरागार्त्ते कुलकारिष्टवारिमि । सराठचौद्र-सिन्धूत्थैर्वमन कारयिद्भिषक्' इति । राठ मदनफलम् ॥१——२॥

कियाग्रद्धस्य शमनी ह्यनुषन्धव्यपेत्तया। दोपसंसर्गजे कार्य्या भेषजाहारकल्पना॥ ऊद्ध्वंगं वमनैर्धीमानधोगं रेचनैर्हरेत्॥३॥

क्रियेत्यादि —दोषससर्गजे अनुवन्धव्यपेत्तया अनुवन्धभूतदोषाविरोधेन शमनी मशमनरूपा भेषजाहारकल्पना क्रिया कार्य्येत्यर्थ । उक्तवमनविरेकयोर्वि-पयमाह ऊद्ध्वंगमित्यादि — ऊद्ध्वंगे वहुकफे वमन, अधोगे तु अम्लपित्ते नविवन्धे विरेचनम् ॥ ३ ॥

तिक्रभूयिष्ठमाहारं पानं वापि प्रकल्पयेत्। यवगोधूमिक्ठतींस्तीक्णसंस्कारवार्जितान्। यथास्वं लाजशक्तून् वा सितामधुयुतान् पिवेत्॥ ४॥

यवगोधूमेति—र्यवगोधूमी हि मरत्वमधुरत्वादिना श्रम्लिपत्तिहिती, तयो पेयादिरूपान् विकारान् । तीच्यासस्कारवर्जितान् इति कट्वम्ललवणादिसस्कारसयोग-रिहतान् । यथास्वमिति पिवेदित्यनेन योज्यम्, तेन दोपससर्गाद्यपेच्चया तत्तद्दोप-प्रत्यनीकेन द्रवेण पिवेदित्यर्थ ॥ ४॥

निस्तुषयववृषधात्रीकाथस्त्रिसुगन्धिमधुयुतः पीतः। श्रपनयति चाम्लपित्तं यदि भुङ्क्ते मुद्गयूषेण्॥४॥

निस्तुषेत्यादौ-- त्रिसुगन्धिमधुयुतं इति त्रिसुगन्धि त्वगेलापत्रम्, तच्च सीगन्ध्यमात्रकारकम्, मधु तु प्रचेपन्यायेन योज्यम् ॥ ५ ॥ कफिल्तवमीकग्रह्र-ज्वरिवस्फोटदाहहा।
पाचना दीपन काथः श्रंगवेरपटालयो ॥६॥
पटोलं नागरं धान्यं काथियत्वा जलं पिवेत्।
कग्रह्रपामार्त्तिग्रलमं कफिपत्ताग्निमान्यजित्॥७॥
पटोलविश्वामृतरोहिणीस्त्रतं जलं पिवेत् पित्तकफोच्छुये तु।
ग्रतस्त्रमारोचकविद्गमान्यदाहज्वरच्छिदिनिवारणं तत्॥ ॥॥
यवस्रण्णपटोलानां काथं चौद्रयुतं पिवेत्।
नाशयेदम्लपित्तञ्च श्ररुचिञ्च वीम तथा॥६॥
कोलादी—श्वतेर शुग्री॥६—६॥

#### दशाङ्गः

वासामृतापर्पटकिनम्वभृनिम्वमार्कवे । त्रिफलाकुलकैः क्वायः सत्तौद्रश्चाम्लिपत्तद्दा॥ १०॥ दराह्य-मार्कवे महराज ॥ १०॥ फलित्रकं पटोलञ्च तिक्काकाथः सितायुतः। पीत क्कीतकमध्याक्को ज्वरच्छर्चम्लिपत्तित्॥ ११॥

फलिनिसित्यादी--तिक्षेत्यतः परमेषामिति शेष , तेन फलिनिसादीनि यान्येतानि एषां काथ इत्पर्धः फलित । क्षीतक यष्टीमधु, सिताकीतकमधूनीह प्रवेष्याणि ॥ ११॥

पथ्याभृद्गरजश्चूर्ण युक्तं जीर्यगुडेन तु । जयेदम्लिपत्तजन्यां छिदिमश्रविदाहजाम् ॥ १२ ॥ पथ्येत्यादौ—मृहरजश्चूर्णं मृहराजस्य चूर्णम् ॥ १२ ॥

#### वासागुगगुलुः

र्वासानिम्वपटोलित्रफलाशनयासयोजितो जयति । श्रीधककफमम्लिपत्तं प्रयोजितो गुग्गुलुः क्रमशः॥ १३॥ वासेत्यादी-श्रशन पीतशाल', यासी दुरालमा, वासादीना चूर्य गुग्गु-छुमम गुग्गुलो प्रधानत्वात् । क्रमश इत्यभ्यासेन ॥ १३ ॥

छिन्नाखदिरयण्ट्याद्धदार्वम्मो वा मधुद्रवम् । सद्राचामभयां खादेत् सचौद्रां सगुडाञ्च ताम् ॥ १४॥

छिन्नेत्यादौ----मधुद्रवीमीत वहुनीहि , तेनाम्भ इत्यस्य विशेषण्, मध्वत्र प्रचेषेण् । साद्राचामित्यादि---योगत्रयमेतत् ॥ १४ ॥

कदुका सिता च लेह्या पटोलविश्वश्च मधुयुक्तम् ॥ १४ ॥ रक्तस्रुतौ च युक्त्या खराडं कूष्माराडकं श्रेष्ठम् ॥ १६ ॥ पटोलधन्याकमहोषधाब्दै कृतः कषायो विनिहन्ति शीव्रम् । मन्दानलं पित्तवलासदाहुच्छुर्दिज्वरामानिलश्चलरोगान् ॥१७॥

कडका सिता चिति—कडका कडरोहियो सितया लेखित्यर्थः। पटोलविश्वच्च मधुयुक्तमिति पटोलविश्वयोः काथ मधु प्रक्षिप्य पिवेदित्याङ्क त कृष्मायङ-खण्डक रक्तपित्तोक्तम्॥ १५–१६॥

छिन्नोद्भवानिम्बपटोलपत्रं फलिनिकं सुकथितं सुशीतम्। चौद्भान्वितं पीतमनेकरूपं सुदारुणं द्दन्ति तद्मलिपत्तम्॥१८॥ तन्त्रान्तरे पटोलधन्याकेत्यादियोगस्तथा छिन्नोद्भवानिम्बेत्यादियोगश्च कचित्र पुस्तके दृश्येत, तो च निश्चलेन इन्देन च धृतौ ॥१७॥१८॥

पटोलित्रफलानिम्बश्टतं मधुयुतं पिवेत्।
पित्तश्रेष्मज्वरच्छिदिंदाहश्र्लोपशान्तये ॥ १६ ॥
सिंहास्यामृतभग्टाकीकाथं पीत्वा समान्तिकम् ।
श्रम्लिपत्तं जयेज्जन्तुः कासं श्वासं ज्वरं विमम् ॥ २० ॥
पटोलित्रफलेत्यादौ—श्रिष्टो निम्व. । सिंहास्थेत्यादौ सिंहास्थो वासक ,
भग्टाको कण्टकारी ॥ १६—२० ॥

वासाघृतं तिक्षघृतं पिष्पलीघृतमेव च । श्रम्लंपित्ते प्रयोक्षव्यं गुडकूष्माएडकं तथा। पिक्षश्रुलापद्दा योगास्तथा खएडामलक्यपि॥ २१॥ वासावृतं रक्तापेचोक्तम् । तिनतवत कुछोक्तमहातिक्तक नत्रेव अम्लिपित्तहरत्व-श्रुते । पिप्पलिवतन्तु परियामग्रज्ञोक्तम्, एतच यद्यपि "पिकिश्लापहा योगाः" इत्यन्तैव लम्यते तथापि विशेषार्यमुक्तः, यथा खरडामलकी । पिप्पलीमधुमयुक्तिति अवलेहिविधया ॥ २१ ॥

पिष्पत्ती मधुसंयुक्ता चाम्लिपचिवनाशिनी ।
जम्बीरस्वरसः पीतः सायं हन्त्यम्लिपचकम् ॥
गुडिपिष्पत्तिपथ्याभिस्तुल्याभिर्मोदकीकृतः ।
पित्तन्धेष्मापद्द श्रोक्तो मन्दमक्षिञ्च दीपयेत् ॥ २२ ॥
जम्बीरत्यादी—पक्तनम्बीरफलस्वरसं , श्रयन्त्र योगे वातीत्वेणऽम्लिपच

हिङ्गु च कतकफलानि चिञ्चात्वचो घृतञ्च पुरद्ग्धम्। शमयति तदम्लिपित्तमम्लभुजो यदि यथात्तरं द्विगुणम् ॥२३॥

हिङ्ग्वित्यादी—कतकफल जलप्रसादनफल प्रायो मगेध भवति । यथोत्तर दिगुणिमिति हिङ्ग्वपेचया कनकफल दिगुणे, कतकफलापेचया तिन्तिडीतरुत्वग्-दिगुणा, तिन्तिडीतरुत्वगेपचया च घत दिगुणिमिति । यतद सर्व स्थालीमध्ये निचिप्य शरावेण पिधायान्तर्भूम दग्ध्वा माषकचतुष्टयमुपयोज्य तप्तजलज्ञानुरेय, तन्त्रान्तर-सवादात् ॥ २३ ॥

> कान्तपात्रे वराकरको व्युपितोऽभ्यासयोगत । सितासौद्रसमायुक्त कफित्तहरः स्मृतः॥ २४॥

कान्तपात्र इति—कान्ताख्यलीहिनरापपात्र प्रीच्य्य स्थापितत्रिफलाकल्क इत्यर्थ । शर्करामधुनी प्रेच्चये ॥ २४ ॥

> पर्कोऽशः पञ्चनिम्वानां द्विगुणो वृद्धदारकः । शक्तुर्दशगुणा देय शर्करामघुरीकृत ॥ श्रीतेन वारिणा पीत श्रूलं पित्तकफोरिथतम् । निहन्ति चूर्ण सज्जौद्रम्लिपत्तं सुदारुणम् ॥ २४॥ एकोऽश इत्यादी—पन्चनिम्बानामिति निम्बस्य लक्षत्रपुम्पफलंमूलानां

पन्चाना मिलितानामेको भाग । शक्तुर्दशगुण इति निम्वभागापेच्चया, मात्रास्य पलमर्द्धपल वा त्राहारद्रव्यशक्तुवाहुल्यात् ॥ २५ ॥

## **अभ्रशुद्धिः**

श्राशुभक्तोद्कै पिएमभ्रकं तत्र संस्थितम्।
कन्दमाणास्थिसंहारखण्डकण्रसरय ॥
तण्डलीयकशालिश्चकालमारिषजेन च।
वृश्चीरवृहतीभृङ्गलच्चणाकेशराजकै।॥
पेषणं भावनं कुर्यात् पुटश्चानेकशो भिषक्।
याविश्चश्चरकं तत् स्याच्छुद्धिरेवं विहायसः॥ २६॥

सम्प्रति चुषावती वाच्या । तत्र प्रथमाशुभक्तेत्यादिना श्रञ्जकशुद्धिमाह । श्राशुर्थान्यमेद । श्रत्राञ्चक कृष्णाञ्चक ग्राह्य श्रेष्ठत्वात् । तत्रेकपत्रीकृत्य उदूखलादिषु सञ्चूर्य्य श्राशुभक्तकार्श्वके श्रहोरात्र स्थापयित्वा तेनैव कार्श्विक पेषणीयम् । तत कन्दादीना व्यस्तसमस्तानां स्वरसेन पुन. पेषण भावन पुटमञ्च वहुषा कुर्वीत यावित्रश्चान्द्रिकत्वमञ्चस्य स्यादित्यर्थ. । तत्र कन्दो वन्य श्रोल , ख्रण्डकर्ण खायडकानः (खारकोन ) इति ख्यात । तयडुलीयकालमारिषयोः स्वल्पपत्रवृहत्पत्रभेदेन मेद । वृश्चीरः पुनर्नवा, सङ्गो सङ्गराज , लक्षणा स्वनामख्याता । विहायस इत्यञ्जकस्य ॥ २६ ॥

## लौहशुद्धिः

स्वर्णमाचिकशालिश्चध्मातं निर्वािपतं जले।
त्रैफलेऽथ विचूएर्यैवं लोहं कान्तादिकं पुनः॥
वृहत्पत्रकरीकर्णत्रिफलावृद्धदारकैः।
माणकन्दास्थिसंहारश्टक्षेवरमवै रसैः॥
दशमूलीमुण्डितिकातालमूलिसमुद्भवः।
पुटितं साधु यलेन शुद्धिमेवमयो व्रजेत्॥ २७॥

लौहशुद्धिमाह स्वर्णमाचिकेत्यादि—पिष्टाभ्या स्वर्णमाचिकशालिश्चाभ्या कान्तादिलौह लिप्त्वा ततो भस्त्रया वहीं ध्मात ततोऽसृतसारवच्यमाखिविधिकथित- त्रिफलाकाथे निर्वापितमित्यर्थे । त्रेफले जल इति त्रिफलाकाथ इत्यर्थे । तदेव निरुत्थमारितलीहन्तूर्णं प्रचालयन् भानुपाकादिशोधित वृहत्पत्रकरिकर्णपलाशादि-स्वरसे पुटित कुर्यादित्याह वृहत्पत्रेत्यादि—वृहत्पत्रे। वढवढ इति ख्यात , अत्र वृहत्पत्रकरिकर्णाचेकादशपुटनद्रव्येषु मध्ये येपा स्वरसप्राप्तिस्तेपा स्वरसो प्राद्य , येपान्तु स्वरसो न लम्यते तेपा पुटनीयलाहसमानामष्टगुण जल दत्त्वा अष्टमभागाध-रेपफायेन पुटन कर्त्तव्यमिति ॥ २७॥

#### मग्ह्रशुद्धिः

विशरं श्वेतवाट्यालं मधुपर्णीमयूरकम् । तर्ह्डलीयञ्च वर्षाभूं दःवाघश्चोद्ध्वेमेव च ॥ पाक्यं सुजीर्णमर्हूरं गोमूत्रेण दिनत्रयम् । श्रन्तर्वाष्पमद्ग्घञ्च तथा स्थाप्यं दिनत्रयम् । विचृर्णितं शुद्धिरियं लौहिकट्टस्य दर्शिता ॥२०॥

विशर्गमत्यादिना—लीहमलशुद्धिमाह । वशिर श्रेतसूर्यावर्तः । मधुपर्थी गुहूची । मयूरकोऽपामार्ग । तयदुलीय चुद्रमारिप । वर्षीम् पुनर्नवा । सुर्जार्थः मय्हर पुरायमयदूरम् । वशिरादीना मूलत्वक्फलपह्नवान् स्थालीमध्ये पातियत्वा तदुपरि जीयमयदूर दत्त्वा तैरेव पह्नवादिमिराच्छाध गोमूत्र दत्त्वा दिवसत्रय व्याप्य अदग्य यथा स्यात्त्रथा पाको विषेय । तदनु शरावेया पिधायान्तर्वाण्य यथा स्यात्त्रथा स्थाप्यम् । तदनु प्रचाल्यातपे शोपयित्वा चूर्ययदिति मयहरशुद्धि ॥२८॥

# रसशुद्धिः

जयन्त्या वर्द्धमानस्य श्रार्टकस्वरसेन च । वायस्याश्चानुपूर्व्येवं मर्दनं रसशोधनम् ॥ २६ ॥ श्रथ रसशुद्धिमाह जयन्त्या इत्यादि—वर्द्धमान परण्ड । वायसी काकमाची ॥ २६ ॥

#### गन्धकशुद्धिः

गन्धकं नवनीताय्यं चुद्रितं लौहभाजने। त्रिघा चएडातपे ग्रुष्कं भृक्षराजरसाप्तुतम्॥

## ततों वह्नौ द्रवीभूतं त्वरितं वस्त्रगालितम्। यत्नाद् भृहरसे चिण्तं पुन शुष्कं विशुध्यति॥ ३०॥

गन्धकशुद्धिमाह, गन्धकिमत्यादि—चुद्रितिमिति तय्डुलकणपरिमाण कृत्वा लोह-भाजने स्थापित्वा भृद्गराजस्वरसेनासाव्य चयडातेष शोषयत, एवमपरवारद्वयमि । तदनु प्रचाल्यातेष सशोष्य लीहपात्रमध्य स्थापित्वा ज्वलद्वदाङ्गारोपिर दत्त्वा दिख-कया सद्याल्य यदा तैलवद् द्रवीभवति तदा भृद्गराजस्वरसपरिपूरितपात्रे धृताक्षसूद्दम-वस्त्रेण पिहितमुखे गन्धक त्वरया ढालियत्वा पात्रान्तरेण पिदध्यात् । तदनु प्रचाल्य श्रातेष शोषियत्वा चूर्णयेदिति गन्धकशुद्धि ॥ ३०॥

## ज्ञुधावती गुडिका

गगनाद् द्विपलं चूर्णे लौहस्य पलमात्रकम्। लौहिक हुं पलाई क्व सर्वमेकत्र संस्थितम्॥ मराङ्कपर्णीवशिर-तालमूलीरसैः पुन । वरीभृद्गकेशराज-कालमारिषजैरथ॥ त्रिफलाभद्रमुस्ताभि स्थालीपाकाद्विचूर्णितम्। रसगन्धकयोः कर्षौ प्रत्येकं ग्राह्यमेकतः॥ तन्मनाक् च शिलाखत्ने यत्नतः कज्जलीकृतम्। वचा चव्यं यमानी च जीरके शतपुष्पिका॥ व्योपं मुस्तं विडङ्गञ्च प्रन्थिकं खरमञ्जरी। तिवृता चित्रको दन्ती स्र्र्यावर्त सितस्तथा॥ मृद्गमाण्यकनन्दी च खरडकर्णक एव च। द्गडोत्पला केशराज-कालावकडकोऽपि च॥ एपामईपलं त्राह्यं पटघृष्टं सुचूर्गितम्। प्रत्येकं विफलायाश्च पलाई पलेमच च ॥ एतत् सर्वं समालोड्य लौहपाते तु भावयेत्। त्रातपे दग्रसंघृष्टमाईकस्य रसैस्त्रिधा ॥ तद्रसेन शिलापिष्टां गुडिकां कारयेद्भिषक्। वदरास्थिनिमां ग्रुष्कां सुनिगुप्तां निधापयेत्॥

तत् प्रातमींजनादौ च सेवितं गुडिकात्वयम् ।
श्रम्लोदकानुपानञ्च हितं मधुरवार्जितम् ॥
हुग्धञ्च नारिकेलञ्च वर्जनीयं विशेषत ।
मोर्ज्यं यथेएमिएञ्च वारिभक्ताम्लकाञ्जिकम् ॥
हन्त्यम्लपित्तं विविधं श्र्लञ्च परिणामजम् ।
पाण्हरोगञ्च सर्वञ्च शोथोदरगुदामयान् ॥
यदमाणं पञ्च कासांश्च मन्दाशित्वमरीचकम् ।
श्रीहानं श्वासमानाहमामवातं सुदारुणम् ।
गुडी सुधावती सेयं विख्याता रेगनाशिनी ॥ ३१ ॥

शय शोधिताम्रकलीहलोहमलचूर्यांना मिलित्वा स्थालीपाकमाह,गगनादित्यादिगगनादित्यभ्रक्षात् । मण्डूकपण्यांदितालमूल्यन्तस्य रसेनाम्रकलीहतन्मलिमिलितचूर्यंसमेनेक स्थालापाक । वरीति शतावरी । तत शतावय्यादिकालमारिपान्तरसेन च
द्वितीय स्थालापाक ।तदनु त्रिफलामद्रमुस्नामिरप्यनन्तरोक्षकाथविधिकृतकाथेन तथेव

एतीय स्थालीपाक इति । निश्चलस्तु मण्डूकपण्यांदितालमूल्यन्तरसेन पुटदानमाह ।

तत्तु न सम्यक्, पुटदानाश्चेत , प्र्वपुटदानस्य तु रसशोधनादियन्थेन व्यवधानाचित ।
स्थालीपाकाद्विच्ितमिति—स्थालीपाकानन्तर पुनलोहशिलायां चूर्याकत्तव्यमित्यर्थ ।

एत्तदनन्तर यद्विभेय तदाह, रमगन्थकयोः कर्यावित्यादि—रसगन्धकयो कर्षा प्रत्येकमिति च्छेदः । तिन्मिलितरसगन्धककर्यचतुष्टयमेकत इत्येकीकृत्य कब्जलीकृत माह्यमिति

योज्यम् । वचा चव्यमित्यादिना प्रचिप्यचूर्यकृत्वयाण्याद्य । खरमञ्जरी अपामार्ग ।

स्र्यावर्षो जामानुस्र्यावर्षः , स च भत । माण्यककन्दो माण्यकन्द । एपाच्च

वचादोना चूर्यं प्रत्येकमद्वपलम् त्रिफलाया मिलित्वा नार्द्वपलेमकम् । तेन त्रिफलाया

प्रत्यकमद्वपलमिति फलित । वदरास्थिमिता इति अत्रोपदेशात् कलायपरिमाणा

इत्याह् । अत्र चीरादिवर्जन वारिमकाम्लकाविवयानस्य प्रयोगसात्म्यत्वात् ।

श्विन्त्या हि योगशिकिरिति ॥ ३१ ॥

## जीरकाद्यं घृतम्

पिण्ड्वाजाजीं सधन्याकं घृतप्रस्थं विपाचयेत्। कफपित्तारुचिहरं मन्दानलवर्मि जयेत्॥ ३२॥ पिष्ट्रत्यादी-जल चतुर्गुणम् ॥ ३२ ॥

## पटोलशुगठीघृते

पटोलशुण्ठ्योः कल्काभ्यां केवलं कुलकेन वा। घृतप्रस्यं विपक्षव्यं कफिपत्तहरं परम्॥ ३३॥ पटोलेत्यादि— स्पष्टम्॥ ३३॥

### पिप्पलिष्टितम्

पिष्पलीकाथकल्केन घृतं सिद्धं मधुष्तुतम् । पियेच प्रातरुत्थाय श्रम्लिपत्तिनृत्तये ॥ ३४ ॥ विष्पलीष्टते—मधुष्तुतमिति सिद्धे धते धत्वपादिकमधुगुक्तम् ॥ ३४ ॥

## द्राचाद्यं घृतम्

द्राचामृताशत्रुपटोलपत्रे.

सोशीरघात्रीघनचन्दनैश्च।

त्रायन्तिकापद्मकिरातधान्यैः

करकैः पचेत् सर्पिरुपतमेभिः॥

युजीत मात्रां सह भोजनेन

सर्वत्र पानेऽपि भिषग्विद्ध्यात्।

वलासपित्तं ग्रहर्णी प्रवृद्धां

कासाग्निसाद्ज्वरमम्लपित्तम्।

सर्वे निहन्याद् घृतमेतदाशु

सम्यक् प्रयुक्तं ह्यमृतोपमञ्च ॥ ३४ ॥

द्राचेत्यादौ-राकः कुटज., तस्य फलमिति वदन्ति। पद्म पद्मकाष्ठम् ॥३४॥

## शतावरीघृतम्

शतावरीमूलकल्कं घृतप्रस्थं पय समम्। पचेन्मृद्वित्रना सम्यक् ज्ञीरं दक्वा चतुर्गुणम्॥

#### नाश्येद्रम्लिपत्तञ्च वातिपत्तोत्तरान् गदान् । रक्षपित्तं तृपां मूर्च्छां श्वासं सन्तापमेव च ॥ ३६ ॥ इत्यम्लिपत्त-चिकित्सा ।

शतावरीष्ट्रते पय समिति पय शब्देनेह पय साधर्म्यात् शतावर्थ्या रसो आह्य , न तु द्वीर, तस्य पृथगुपात्तत्वाद् समिति ष्टतेन सह तुल्यम् ॥ ३६ ॥ इत्यम्लिपत्त-चिकित्सा-विष्टृति ।

# अथ विसर्प-विस्फोट-चिकित्सा।

विरेकवमनालेप-सेचनास्गिवमोत्त्र्णे । उपाचरेद् यथादोपं विसर्पानविदाहिभिः॥१॥

श्रम्लिपत्तविद्वमिर्पेऽपि पित्तसम्बन्धम्यावश्यम्भावात् प्रायस्तुल्यचिकित्स्यत्वाचा-म्लिपित्तानन्तर् विसर्पाचिकित्सितसुच्यते । श्रविदादिभारत्यत्राश्वपानिरिति शेष ॥१॥

> पेटोलिपचुमद्भियां पिष्पल्या मदनेन च । विसर्पे वमनं शस्तं तथैवेन्द्रयवैः सह ॥ २ ॥

पटोलेत्यादि--पटोलिपचुमदान्यामित्येको योग । पिप्पत्या मदोनन चेति दितीय । इन्द्रयवस्तु योगद्वयेऽपि सम्बध्यते इति केचित् । श्रन्ये तु पटोलिनम्बयो। काथ पिप्पत्यादित्रय प्रचेप्यमित्येक योगमाहु । व्यवहार. पुनरेनेनेव ॥ २॥

त्रिफलारससंयुक्तं सर्पिस्त्रिवृतया सह प्रयोक्तन्यं विरेकार्थं विसर्पन्वरशान्तये ॥ रसमामलकानां वा घृतमिश्रं प्रदापयेत् ॥ ३॥

त्रिफोलत्यादि — त्रिफलाकाथ सपिस्तिवृते प्रस्निष्य पेय । रममित्यादाविप विरेकार्थमिति सम्बध्यते ॥ ३ ॥

> रणवर्जं प्रयोक्तव्यं पञ्चमूलचतुप्रयम् । परेहसेकसर्पिभिविंसपें वातसम्भवे ॥ ४॥

त्यवर्जिमिति त्यपम्रमूल वर्जियत्वा पत्रमूलचतुष्टयम् । तत्र स्वत्पमहत्पन्चमूल-दय प्रसिद्धमेव । कयटिकपञ्चमूल विद्वीपञ्चमूलन्च यथा,—"मेपम्प्रद्वी हरिद्रा च विदारी शारिवाऽमृता । वल्ल्याख्य कर्ण्यव्याख्यन्तु श्रदष्टाऽमीरुशैर्य्यकैः । श्रिहिसा-करमेर्दश्च सर्वदोपहराश्च ते ।" श्रत्र श्रमीरु. शतमूली, शैर्य्यको किएटी, श्रिहिसा कालाकडः, करमर्दः स्वल्पमधुरफल चीरीति लोके इति सुश्रुत्तटीका । तृणपञ्च-मूलस्य वर्जनमिष्ट पित्तहरत्वेन वातेऽयौगिकत्वात् ॥ ४॥

कुष्ठं शताह्वासुरदारुमुस्ता वाराहिक्कस्तुम्बुरुकुष्णगन्धाः। वातेऽर्कवंशार्त्तगलाश्च योज्या सेकेपु लेपेपुतथा घृतेषु॥४॥

कुष्टामिलादि—सुष्रुतस्य । वाराही वाराहीकन्द , प्तर्दमावे चर्मकारालुक । कुस्तुम्वरु धनीयकम् , कृष्णगन्धा शोभाक्षनमूल, अन्ये तु वीज, अर्कोऽर्कमूल, वशो वंशनाली, आर्त्तगल आगडामूल अर्जुनवल्कल वा ॥ ४॥

प्रपौराडरोकमिक्षिष्ठापद्मकोशीरचन्द्नैः। सयप्रीन्दीवरैः पित्ते चीरपिष्टैः प्रलेपनम्॥६॥ प्रपौराडरीकेलादी—इन्दीवर नीलोत्पलम्॥६॥

कशेरुश्रद्गाटकपद्मगुन्द्राः सरीवलाः सोत्पलकर्दभाश्च । वस्त्रान्तराः पित्तकृते विसर्पे लेपा विधेयाः सघृताः सुंशीताः॥७

करोवित्यादि-सुश्रतस्य । पद्म पद्मकाष्ठ, गुन्द्रा गुल्लच , चत्पल नीलोत्पल, कर्दमः पद्मिनीत्थानगतकर्दम , वस्त्रान्तरा वस्त्रेणान्तरिता , एव सित्त पित्तविसर्पेऽति-मृदौ त्वगाद्यप्रवातो न स्यात्, लेप स्फोटनम्न सुकर भवतीति । लेपा इति वहुव चननिर्देशादेकैकशोऽप्येते लेपा योज्या इति वदन्ति ॥ ७॥

प्रदेहा परिषेकाश्च शस्यन्ते पञ्चवल्कलेः। पद्मकोशीरमधुकचन्दनैर्वो प्रशस्यते॥ ८॥

प्रदेहा इत्यादि--पन्चवल्कलैरिति कपीतनवटाश्वत्थसचीडुम्बरवल्कलै । प्रशस्यत इत्यत्र वचनपरिणामेन प्रदेह इति योज्यम् ॥ ८ ॥

> पिचे तु पश्चिनीपङ्कं पिष्टं वा शङ्खरौवलम् । गुन्द्रामूलन्तु शुक्तिर्वा गैरिकं वा घृतान्वितम् ॥ ६॥

पित्ते त्वित्यादौ-स्थानपादैश्वत्वारो योगा , शङ्कन्च रैवलञ्चिति समाद्दारः । गुन्द्रा गुल्लञ्चः, शुक्तिर्मुक्तोत्पत्तिभाग्यः, शीतवीर्य्यत्वात् मौकिन्नपपीति केचित् । धृतान्वितमिति योगचतुष्टयेऽपि योज्यम् ॥ ६ ॥

न्यत्रोघपादाः गुन्द्रा च कदलीगर्भ एव च । विसन्निश्च लेपः स्याच्छतधौतघृताल्पुतः ॥ १० ॥ हरेण्वो मसूराञ्च मुद्राञ्चेव सशालयः । पृथक् पृथक् प्रदेहाः स्यु सर्वेद्यां सर्पिपा सह ॥ ११ ॥ न्यत्रोधेत्यादि—वाग्मटत्य । न्यत्रोधस्य पादा प्ररोधा अन्ये तु मूलानी-त्याहु । तरुणा इत्यमिनवा । तरुणा इत्यत्र गुन्द्रेति न पाठ वाग्मटे चरके च तरुणा इति पाठात् । कदलीगर्मो गर्मस्था कदलीमजरी, विसन्निश्चणालन्निय , हरेण्यो वर्त्तलकलाया ॥१०—११॥

> द्राज्ञारग्वधकाश्मर्थ्यत्रिफलामग्रङपीलुभिः। त्रिवृद्धरीतकीभिश्च विसर्पे शोधनं हितम् ॥१२॥

दाचेत्यादी—आरग्वधस्य फलम्, अमग्रड परग्रडस्तस्य नीज विरेचकत्वात्, पीछ श्रीत्तरापथिक फलम् । काथेन कल्केन वा योगद्वयमिदम् । तत्र पील्वन्त एक , इरीतक्यन्तश्च दितीय इति ॥१२॥

> गायत्रीसप्तपर्णाव्दवासारग्वधदारुभि.। कुटन्नटैभेवेन्नेपो विसर्पे स्टेप्नसम्भवे ॥१३॥

गायत्रीत्यादी—अत्र श्रारम्बधस्य पत्र, कुटन्नट कैवर्त्तमुस्तकम् । श्रय योगो वासास्थाने धवस्य कुटन्नटस्थाने कुरुय्टकस्य प्रचेपादिष वोध्य । यदाद्द चरक — " खदिर सप्तपर्णेश्च मुस्तमारम्बध धवम् । कुरुय्टक देवदारु दधादालेपन भिपक्" इति ॥१३॥

श्रजाश्वगन्धासरणाथ काला सैकेशिका वाप्यथवाजश्रङ्की । गोमूत्रपिष्टो विहिम प्रदेहो हन्याद्विसंपै कफजं सुशीव्रम् ॥ मदनं मधुकं निम्बं वत्सकस्य फलानि च । वमनश्च विधातव्यं विसपे कफसम्भवे ॥१४॥

श्रजित्यादि — मुश्रुतस्य । श्रजगन्धा फोकान्धी, श्रश्वगन्धा ख्यातैव । सरणा त्रिष्ठत, काला कालाकड , प्रकेशिका पाठा, श्रजश्वती मेपश्वती कर्कटश्वती वा । श्रजगन्धादिरजश्वक्यन्त एको योग । उक्त हि बाग्मटे—कालाजश्वती सरणा वस्तगन्धा हयाह्या । प्रकेशिका च लेप. स्यात् श्रयथाविकगात्रजे" । विद्दिम इति दिमविपरीत, कोष्ण इत्यर्थ ॥१४॥

त्रिफलापद्मकोशीरसमद्गाकरवीरकम् ।
नलमूलमनन्ता च लेपः श्लेष्मविसर्पद्दा ॥
श्रारग्वधस्य पत्राणि त्वचः श्लेष्मातकोद्भवाः ।
शिरीपपुष्पं कामाची दिता लेपावचूर्णनैः ॥
मुस्तारिष्टपटोलानां काथः सर्वविसर्पनुत् ॥
धात्रीपटोलमुद्गानामथवा घृतसंप्लुतः ॥१८॥

त्रिफलेत्यादि — वाग्भटस्य । समङ्गा वराहकान्ता, करवीरकामित्यत्र करवीरजन्मिति पाठे मूलम् । श्रनन्ता श्रनन्तमूलम् । श्रय लेपस्तथा वच्यमायोऽप्यारग्वधादिः वल्पपृतयोगेन स्निग्धः कार्य्य । एतदनन्तर प्रदेहाः सर्वत्रैन एते देया । स्वल्पपृताप्तुत इति चरकेयोक्तत्वाद । रेष्पातको वहुवार । कामाची काकमाची । सर्वविसर्पनुदिति प्रत्येकदोपजसर्वविमर्पनुद सन्निपातविसर्पस्यासाध्यत्वाद ॥१५॥

#### नवकषायगुग्गुलुः

श्रमृतवृषपटोलं निम्वकल्कैरुपेतं त्रिफलखदिरसारं व्याधिघातञ्च तुल्यम् । कथितमिद्मशेषं गुग्गुलोर्भागयुक्कं जयति विपविसर्पान् कुष्ठमष्टादशाख्यम् ॥१६॥

श्रमृतेत्यादौ—शिफल त्रिफला, व्याधिघात स्वर्णाद्धफलम् । गुग्गुलोर्माग युक्तमिति प्रत्यहोपयोगे प्रचेपपरिभाषयैव देयम् । विरेके कर्त्तव्ये प्रचेपमानापेच्चया द्वैगुरुयेनेत्याहु ॥१६॥

#### श्रमृतादिः

श्रमृतवृषपटोलं मुस्तकं सप्तपर्णं खिद्रमिसतवेत्रं निम्वपत्रं हरिद्रे । विविधविपविसपीन् कुष्टविस्फोटकग्डू-रपनयति मसूरीं शीतिपत्तं ज्वरश्च ॥१७॥

त्रमृतेलादौ-असितवेत्र कालियालताम्लम्, श्रत्रापि विरेके कर्तव्ये गुग्गुल प्रश्चिपन्ति वृद्धाः ॥१७॥ पटोलामृतभूनिम्ववासकारिप्टपर्पटैः । खदिराव्दयुतै काथो विस्फोटार्चिज्वरापदः ॥१८॥

पटोलेस्यादिना विस्फोटिचिकित्सामाह ॥१८॥

पटेालित्रफलारिष्टगुङ्चीमुस्तचन्दनैः । समूर्वा रोहिकी पाठा रजनी सदुरालमा ॥ कषायं पाययदेतत् पित्तश्लेष्मज्वरापहम् । कराङ्कत्वग्दोषविस्फोटविषवीसपनाशनम् ॥१६॥ भृतिम्ववासाकटुकापटेालफलित्रकाचन्दनिम्चसिद्धः ।

भानम्बनासाकरुकापटालफलात्रकाचन्द्नानम्बासद्धः। विसर्पदाहज्वरवक्त्रशोपविस्फोटतृष्णावमिनुत् कपाय ॥२०॥

सकफे पित्तयुक्ते तु त्रिफलां योजयेत् पुरैः ॥२१॥ दुरालमां पर्पटकं पटोलं कटुकां तथा । सोष्णं गुग्गुलुसंयुक्तं पिवेद्दा खदिराप्टकम् ॥२२॥

पटोलित्रफलेत्यादी—समूर्वी रोहिणी पाठा रजनी सदुरालभेखत पर पिमरिति रोष , तेन एभि कृत कषाय पाययेदित्यर्थसङ्गित कार्य्या । त्रिफला योजयेद पुरैरिति त्रिफलाकांथ गुग्गुल प्रचेप्य इत्यर्थ । दुरालमामित्यादावि दुरालमा-दीना कार्या गुग्गुलप्रचेपसहित । सोष्णमिति सहशब्द ईपदर्थे । खिदराष्टक मस्दर्या वद्यमाण्यम् , इदमि गुग्गुलुगुक्तमेव पिवेत् ॥१६—-२॥

कुरडलीपिचुमर्दाम्बु खदिरेन्द्रयवाम्बु वा । विस्फोटान् नाशयत्याशु वायुर्जलघरानिव ॥२३॥ कुर्ण्डलीत्यादि—योगद्धयम् । कुर्ण्डली गुडूची, अम्बु काथ ॥२३॥ चन्दनं नागपुष्पञ्च तर्र्ह्डलीयकशारिवे । शिरीपवल्कलं जाती लेपः स्याद्द्वनाशनः ॥२४॥ चन्दनीमलादी—शारिवा अनन्तमूल, जात्यास्तु पत्रम् ॥२४॥ शुक्रतरुनते च मांसी रजनी पद्मा च तुल्यानि । पिष्टानि शीततोयेन लेप स्यात् सर्वविस्फोटे ॥२४॥

युक्तवित्पादि—नाग्भटस्य । शुक्तकः शिरीपः, नतः तगरपादिका । पद्मा बाह्मण्यपिका । नाग्मेटे तुः "शक्तक्नते च मासी" इत्यत्र "शुक्तक्नतमाचीका" इति पाठ, माचीकञ्च देवदाविंति तट्टीका, तेन सम्रहे मासीति पाठी लेखक-दोपात् ॥२५॥

> शिरीपमूलमिखछाचव्यामलकयष्टिकाः। सजातीपल्लवलौद्रा विस्फोटे कवडग्रहाः॥२६॥ शिरीपोडम्बरौ जम्बुः सेकालेपनयोर्हिताः। श्रेष्मातकत्वचो वापि प्रलेपाश्च्योतने हिताः॥२०॥

शिरीपेत्यादी —शिरीपमूलेत्यत्र शिरीपपूर्गेति पाठे पूर्गस्य फलम् । अत्र वहु-वचननिर्देशात् प्रत्येकमप्येते कवडे योज्या इति वदन्ति । जातीपत्रचौद्रयोगश्च सर्वत्र विज्ञेय । आश्च्योतन मर्वत्र चच्चिप द्रवौपधिदानम् ॥२६—-२७॥

#### दशाङ्गः

| श्रारीपयप्रीनतचन्द्नैलामांसीहरिद्राद्वयकुष्ठवाले | लेपां दशाङ्गः सघृतः प्रदिष्टो विसर्पकगडून्वरशोथहारी | | २८|| श्रिरीपेलादी—यधी यधीमधु, वाल हीनेरम् ॥ २८ ॥

#### चतुःसमम्

शिरीपोशीरनागाह्वाहिंस्नाभिर्लेपनाद् द्रुतम्। चिसपेविपविस्फोटाः प्रशाम्यन्ति न संशयः॥ २६॥ शिरीपेलादौ—नागाह्न नागकेशरचुर्णम्, हिंसा कालाकडः॥ २६॥

### वृषाद्यं घृतम्

चृषखादेरपटोलपत्रनिम्वत्वगमृतामलकीकषायकल्कैः। घृतमभिनवमेतदाशुपकं जयति विसर्पगदान् सकुष्ठगुल्मान् ॥३०

वृषाधष्टते—निम्बत्वगमृतामलकीकषायकल्कैरित्यस्य स्थाने छन्द् पूर्णार्थं निम्बत्वगमृताधात्रीकषायकल्कयुक्तमिति केचित् पठन्ति । श्रन्ये तु त्वगमृतकामल-कीति पठन्ति, क्वचित्तु तामलकीति पाठ, तन्न, व्यवहारामावात् ॥ ३० ॥

## पञ्चतिक्ककृष्टतम्

पटोलसप्तच्छदनिम्वावासाफलत्रिकाच्छन्नरुहाविपकम् । तत् पञ्चतिक्तं घृतमाशु हान्त त्रिदेषाविस्फोटाविसर्पकराडूः॥३१ पश्चतिक्षघृते त्रिफलाया कल्क , शेषाणाञ्च कषाय शति न्यवहरान्ति वृद्ध-वैद्याः ॥ ३१ ॥

#### महापद्मकघृतम्

पद्मकं मधुकं लोभ्रं नागपुष्पस्य केशरम् ।

हे हरिद्रे विडङ्गानि सूदमेला तगरं तथा ॥

कुष्ठं लाक्षा पत्रकञ्च सिक्थकं तुत्थमेव च ।

यहुवारः शिरीपश्च किष्त्थफलमेव च ॥

तोयेनालोड्य तत् सर्व घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।

यांश्च रोगान् निहन्त्याशु तान्निवोध महामुने !॥

सर्पकीटाखुद्रेषु लूतामूत्रकृतेषु च ।

विविधेषु स्फोटकेषु तथा दुष्टविसर्पिषु ॥

नाडीषु गएडमालासु प्रभिन्नासु विशेषतः ।

श्रगस्त्यविहितं धन्यं पद्मकन्तु महाघृतम् ॥ ३२॥

पक्षकको—नागपुष्पस्य केशरमिति नागकेशरन्त्यंभित्यर्थ ॥ ३२॥

#### स्नायुकचिकित्सा ।

रोगस्तु स्नायुकाख्याे यः किया तत्र विसर्पवत् । गन्यं सर्पिस्त्र्यहं पीत्वा निर्गुएडीस्वरसं त्र्यहम् ॥ पिवन् स्नायुकमत्युगं हन्त्यवश्यं न संशयः। शोभाञ्जनमृत्वद्तै काञ्जिकपिष्टेः सत्तवगौर्तेपः। हन्ति स्नायुकरोगं यहा मोचत्वचो लेपः॥ ३३॥ इति विसर्प-विस्फोटचिकित्सा।

क्षायुकरोगिचिकित्सामाह, रोगास्त्रिसादि। स्तायुकरोगो नारुया नाम्ना पश्चि-भदेशे ख्यात अथव्च रोगे। रुग्विनिक्षये नोक्षः। षृत्देन पुनरुक्तः, यथा,— 'शाखासु कुपितो वायु शोध कृत्वा विसर्पवत्। भिस्तैव त स्रते तत्र सोष्मा मास विशोध्य च। कुर्याचन्तुनिम स्त्र तत् पिग्रहैस्तकशकुनै । लिप्त शनै। स्रतोदिति स्विदासत् कोपमाषदेत्। तत्पाताच्छोधशान्ति स्यात् पुन स्थानान्तरे मवेत्। रोग.

#### मसूरिका चिकित्सा

स सायुको नाम्ना तन्तुकश्च प्रकीर्तित ," इति । शाखास्विति जङ्घादिषु, तदिति स्त्रम् , तकशक्तुजै पियङेकिंप्त सद् चतादेति नि सरित । कदाचिदिमिषातादिना स्त्रच्छेदात् । तत्पातादिति तस्य स्त्रस्य स्वयमेव पतनात् । पिवित्रत्यत्र पीत इति पाठे कर्त्तरि क्ता । मोचलचो लेप इति मोच कदलीफल कोयटक वा तस्य त्वक् ॥ ३३॥

इति विसर्पविस्फोटाधिकारविष्टति ।

# ् अथ मसूरिकाचिकित्सा ।

सर्वासां वमनं पथ्यं पटोलारिष्ट्वासकै ।
कषायैश्च वचावत्सयष्ट्याह्वफलकितिः॥१॥
, सत्तौद्रं पाययेद् ब्रह्म्या रसं वा हैलमोचिकम् ।
वान्तस्य रेचनं देयं शमनञ्चावले नरे ॥२॥
सुषवीपत्रनिर्यासं हरिद्राचूर्णसंयुतम् ।
रोमान्तीज्वरविस्फोटमस्रीशान्तये पिवेत् ॥३॥
उसाभ्यां हतदोषस्य विश्वध्यन्ति मस्ररिकाः।
निर्विकाराश्चालपप्याः पच्यन्ते चालपवेदनाः॥४॥

विस्फोटेभदत्वात् प्रायस्तुल्यचिकित्मितत्वाच मस्रीचिकित्सामाई, सर्वासा-मिखादि । वासकौरित्यत्र कृतैरिति शेष । तेन कषायैरित्येनन सामानाधिकरण्य न विरुध्यते । वत्स इन्द्रयव । फल मदनफलम् । सचौद्रमित्यादि—रसमिति स्वरसम्, पतच वामक विरेचकञ्च। सुषवी कारवेल्लकः, पतद्रसोऽप्युमयमागदोषहर । उमाभ्यामिति वमनविरेचनाभ्याम् ॥ १ । ४ ॥

कएटाकुम्भाह्यमूलं कथनविधिकृतं हिद्गुमाषेकयुक्तं पीतं वीजं जयाया सघृतमुषितवाः पीतमङ्किः शिकट्याः।
मध्या मूलं शिफा वा मदनकुसुमजा सोषणा वाथ पूतिः
योगा वास्यम्बुनैते प्रथममघगदे दृश्यमाने प्रयोज्याः॥॥॥
मुध्योगमाह। कप्टाकुम्माहुमूलिमत्यादि कप्टाकुम्माहुलता स्वनामख्याता।

हिंगुमापैकयुक्तं पीतिमिति पूर्वेणिव सम्बच्यते । वीज ज्याया सघृतसुपितवा. पीतमिति द्वितीयो योगः । जया जयन्ती, अस्याश्च वीजसुपेश्यादेकाधिकपङ्गण्डक
सम्रत पर्युपितजलेन पीतिमित्याहुः । ये तु उपितवाः पीतिमिति पद जयाबी जमित्यनेन
सह न योजयन्ति, तन्मते पीतिमिति नपुसकिति निर्देशो नोपपचेते इति,
मामान्यिवरापमावेन योजनापि कष्टकल्पनैवेति । अहि शिकट्या इति तृतीयो योग ।
अत्राप्युपितवा पीतिमिति लिङ्गविपरिणामेन सम्बन्धते । अहिरिति मूलम् । शिकटी
स्वनामख्यतिव । मध्या अपि तथैव च । [ मधी गुवाकस्तस्य मूलम् । ] सोषणा
ममित्वा । एतच पूर्तिरित्यनेनैव सम्बन्धते । पूर्ति खट्टाशिकाण्डम् । अन्ये तु मदनकुसुमजा शिफा सोषणा, प्रतिनीटाकरञ्जे। इपि सोषण इति वदन्ति । अत्रापि मारिचमेकाधिकषड्गण्डकमित्युपदिशन्ति । अधन्त पापरेगो मस्री पर्याय एव ॥ ४ ॥

उद्घृत्य मुष्टिनाच्छाद्य भेषजं यत् प्रयुज्यते । तन्मुष्टियोगमित्याहुर्मुष्टियोगपरायणाः ॥ उष्ट्रकराटकमूलं वाष्यनन्तामूलमेव वा । विधिगृहीतं ज्येष्ठाम्बुपीतं हुन्ति मस्रिकाम् । तद्वच्छुगालकराटकमूलञ्च च्युपिताम्मसा ॥ ६॥

मुष्टियोगस्वरूपमाह उद्धतेलादि --- उष्टकपटक स्वनामख्यातम् । ( डखुर इति केचित् ) अनन्ताम्लमनन्तम् नम्, ज्येष्ठाम्बु तप्रडुलोदकम् । श्वगालक्ष्टकमपि स्वनामख्यातम् ॥ ६॥

मसूरीं मूर्चिछ्तो इन्ति गन्धकार्द्धस्तु पारदः । निशाचिञ्चाच्छदे शीतवारिपीते तथैव तु॥ ७॥

मू चिद्यत इति कज्जलाकृत । शोधितगन्धक कर्ष १, शोधितरस मा ६, कञ्जला कर्त्त व्या अतो मापकचतुष्टय पट्क वा पर्णे कृत्वा खाद्यमिति व्यवहार । 'रुद्राच मिरेचेंशुक्तम्' इत्यादियोग सम्रहे नास्ति ॥ निरात्यादौ — इद पत्र इदः राष्ट्रस्य नपुसक्षिगता झान्दसत्वात, किंवा निशाचिष्ठाच्छदाविति पाठ, दिवचन दर्शनात् पत्रदय माद्यमित्यन्ये ॥ ७॥

यावत्संख्या मस्ट्यंहे तावद्धि- शेलुजैर्दलै-। छिन्नेरातुरनाम्ना तुं गुर्खां ख्येति न वर्दते ॥ व्युपितं वारि संज्ञौद्रं पीतं दाहगुणीहरम्। शेलुत्वक्कृतशीताम्भःसेकं वा कायशोषणे॥ =॥

याविदिखादौ—शिद्धवंदुवार, मस्रिका गण्यित्वा तावत्मख्यया आतुरनाम्ना पत्राणि छिन्धादित्यर्थे। गुणी मस्रिकेर्ल्थ ॥ शिद्धत्विगित्यादि—शीताम्म शीत-कषाय , कायशोषण इति उच्छूनगात्रप्रदेशशोषण्यनिमित्तिमत्यादु । कायशोधन-मिति पाठ शरीरमलक्षेदिनरासार्थमित्यर्थं , किंवा कायशब्देनोपचारान्मस्रिके वाच्यते ॥ द ॥

उत्राज्यवंशनीलिं यववृषकापीसकीकसब्रह्मी।
सुरसमयूरकलाचाधूपो रोमान्तिकाविहरः॥ ६॥
तर्पणं वातजायां प्राग् लाजचूर्णैः सशर्करैः॥
भोजनं तिक्रयूषेश्च प्रतुदानां रसेन वा॥ १०॥

्यः । उमेलादी—उम्रा वचा, भाज्य प्रत नृषस्य वासकस्य भूत, कार्पासकीकम कार्पासास्थि, सुरसं पर्णास , मयूरकोऽपामार्गः । तर्पणिमिति द्रवेणालोडिता शक्तव । तिक्तयूपरिति तिक्तद्रव्यकृतयूषे । प्रतुदा पारावतादय ॥६ । १०॥

हिपञ्चमूलं रास्ना च दाञ्जुंशीरं दुरालमा।
सामृतं धान्यकं मुस्तं जयेद्वातसमुत्थिताम्॥
गुद्धचीं मधुकं रास्नां पञ्चमूलं किनष्ठकम्।
चन्दनं काश्मर्थ्यफलं वलाम्लं विकद्वतम्॥
पाककाले मस्य्योन्तु वातजायां प्रयोजयेत्॥ ११॥
दिपञ्चमूलमिलादियोग काथन, एव गुद्धचीलादिकमि।॥ ११॥
द्राचाकाश्मर्य्यखर्जूरपटोलारिष्ट्यासके।
लाजामलकद्वःस्थरीं सितायुक्तेश्च पैत्तिके॥ १२॥
शिरीषोडुम्बराश्वत्थ-शेलुन्ययोधवल्कलेः।
प्रतिप सघृतः शीघं वृण्विस्फोटदाहृहा॥ १३॥
दुरालमां पर्यटकं भूनिम्वं कुरुरोहिणीम्।
श्रीष्मक्यां पित्तजायां वा पान निःकाथ्य दापयेत्॥ १४॥

द्राचित्यादी—सितायुकामित्यनन्तर कपार्यामिति शेष ॥१२---१४॥

#### निम्बादिः

निम्बं पर्पटकं पाठां पटोलं कदुरोहिणीम् । वासां दुरालमां धात्रीमुशीरं चन्दनद्वयम् ॥ एप निम्वादिकः ख्यातः पीत शर्करया युत । हन्ति त्रिदोषमसूरीं ज्वरवीसपंसम्भवाम् ॥ उत्थिता प्रविशेद् या तु पुनस्तां वाह्यतो नयेत् ॥ १४ ॥ पटोलकुगडलीमुस्तवृपधन्वयवासकैः । भूनिम्वनिम्वकदुकापपंटैश्च श्टतं जलम् ॥ मसूरीं शमयेदामां पकाञ्चैव विशोपयेत् । नातः परतरं किञ्चिद्धिस्फोटज्वरशान्तये ॥ १६ ॥

निम्नादि काथविषया देय । पटोलेलादी—कुण्डला गुडूची ॥१५ । १६॥ पटोलमूलारुणतग्हलीयकं पिवेद्धरिद्धामलकल्कसंयुतम् । मस्रिचिस्फोटविदाह्यान्तये तदेव रोमान्तिविधनवरापहम् ॥ पटोलमूलारुणतग्हलीयकं तथेव धात्रीखिदरेण संयुतम् । पिवेडजलं सुक्कथितं सुशीतं मस्रिकारोगविनाशनं परम् ॥१७॥

पटोलमूलेलादि—काथे हरिद्रामलकचूर्ण प्रज्ञिप्य अनुलोमनार्थ पिवेद । अरुण लोहित तण्डुलीयकम् । थाशीखदिरेण सयुतमिति धाशीखदिराविप पटोलमूला- रुणतण्डुलीयकाम्या सह क्षथनाया ॥ १७॥

#### खदिराष्टकः

खिद्रिक्रसारिष्ट्रपटोलामृतवासकै ।
काथाऽष्टकाख्यो जयित रामान्तिकमसूरिकाः ।
कुष्टवीसपैविस्फोट-कराङ्ग्वादीनपि पानत ॥ १८॥
बिदरेलादी—अध्काख्य इति खिदराष्टकसङ् । अत्र शोधने कर्त्तस्थे
उग्ग्रह्णमि प्रिचपन्ति ॥ १८॥

श्रमृतादिकपायस्तु जयेत् पित्तकफात्मिकाम् । सौवीरेण तु सम्पिष्टं मातुलुङ्गस्य केशरम् । प्रतेपात् पातयात्यशु दाहञ्चाशु नियच्छति ॥ १६ ॥ पाददाहं प्रकुरुते पिडका पादसम्भवा । तत्र सेकं प्रशंसन्ति चहुशस्तगृहलाम्बुना ॥ २०॥

श्रमृतादिकषायो विमर्योक्तो दशद्रव्यस्तस्यैव मस्रीहरत्वश्रुते , न तु ज्वराधि कारोक्तोऽमृतादिरिति । सौवीरेखेति काञ्जिक ॥ १६ ॥ २० ॥

पाककाले तु सर्वास्ता विशोषयति माठतः। तस्मात् संबृंहणं कार्य्यं न तु पथ्यं विशोषण्म्॥ २१॥ पाककाले वायुपरामनार्थं बृहणाहारमाह पाकेलादि—विशोषणेन पाकोन्मु-खस्य दोषस्यान्त प्रवेशाद्रजाधिक्य स्यादिति माव ॥ २१॥

गुडूची मधुकं द्राह्मा मोरटं दाडिमैः सह।
पाककाले तु दातव्यं भेपजं गुडसंयुतम्।
तेन पाकं व्रजत्याशु न च वायु प्रकुप्यति॥ २२॥
लिहेद्वा वादरं चूर्णं पाचनार्थ गुडेन तु।
श्रनेनाशु विपच्यन्ते वातापेत्तकफात्मिकाः॥ २३॥
गुडूचीलादौ—मोरटिम छुमूलम्। एषा काथ । गुडस्त प्रवेष्य ॥ २२।२३॥
श्रलाध्मानपरीतस्य कम्पमानस्य वायुना।

शूलाध्मानपरीतस्य कम्पमानस्य वायुना । धन्वमांसरसाः शस्ता ईपत्सैन्धवसंयुताः ॥ २४॥ धन्वमासरसा शते जाद्गलपित्तमासरसाः ॥ २४॥

दाडिमाम्लरसैर्युक्ता यूषाः स्युरहचौ हिताः। पिवेदममस्तप्तशीतं भावितं खदिरासनै ॥ २४॥

पिवेदम्मस्तप्तशातिमिलाई शत शातञ्च, एव वत्त्यमाणयोगेऽपि । मावित खदिरा-सैनीरिति खदिरासनै । साधितं काथमिलार्थ । असन पीतशाल , अशन एव इत्यन्ये ॥ २५॥

शौचे वारि प्रयुक्षीत गायत्रीवहुवारजम् । जातीपत्रं समञ्जिष्ठं दार्वीपूगफलं शमीम्॥ धात्रीफलं समधुकं कथितं मधुसंयुतम् ।
मुखरोगे कर्रहरोगे गर्हूपार्थे प्रशस्यते ॥ , ,
प्रक्रियोः सेकं प्रशंसन्ति गवेधुमधुकाम्बुना ॥ २६ ॥
शौच इत्यादौ—गायत्री खदिर । गवेधुमधुकाम्बुनिति—गवेधुको गुलुन्न ।
अनयो कल्क कपंटे वद्ध्वा प्रपोद्याधिसेक कार्यः ॥ २६ ॥

अनयान कल्क कपट वर्द्धा प्रपाद्याविकक काव्यहा रे प्राः मधुकं त्रिफला मूर्वा दार्वीत्वद्धनीलमुत्पलम् । उशीरलोधमिश्रिष्ठाः प्रलेपाश्च्योतने दिता । नश्यन्त्येनन दग्जाता मस्य्यो न भवन्ति च,॥ २७॥ मधुकमिलादौ—हिता इति वद्ववचनिर्देशाद व्यस्तै नमस्तेर्मधुकादिमि प्रलेप । श्रद्धश्तिश्च तैराश्च्योतनिमलाहु । श्राश्च्योतन परिपेक ॥ २७॥ पश्चवत्कलचूर्णेन क्लेदिनीमवचूर्णयेत् । भस्मना केचिदिच्छन्ति कोचिद्दोमयरेखना॥

भस्मना केचिदिच्छन्ति केचिद्रोमयरेखुना॥
किमिपातभयाचेऽपि धूपयेत् सरलादिना।
वेदनादाहशान्त्यर्थे स्नुतानाञ्च विशुद्धये॥ २०॥

पश्चवल्कलेत्यादी—केदिनी केदयुक्ता मस्रीम् । भरमनेति शुष्कगोमयभरमना। गोमयरेग्रुनेति गोमयचूर्येन वस्त्रच्छानितेन । सरलादिमिरिति सरलाग्रुक्गुग्गुन्तप्रभृ-तिमि ॥ २८॥

सगुग्गुलुं वराकार्थं युञ्ज्याद्वा खदिराप्टकम् ।

कृष्णाभर्यारको लिह्यान्मधुना कर्यद्रशुद्धये ॥ २६ ॥

सगुग्गुलुभिलादि, सगुग्गुलुभित्युभयत्रापि सम्बन्धते ॥ २६ ॥

अथाप्टाङ्गावलेद्दो वा कवडश्चाईकादिभि ।

पञ्चातिकं प्रयुक्षीत पानाभ्यक्षनभोजनैः ॥ ३० ॥

कुर्याद् व्रगाविधानञ्च तैलादिन् वर्जयेष्टिरम् ।

विषद्म सिद्धमन्त्रश्च प्रमुज्यान्तु, पुन पुन ।

तथा शोणितसंस्प्टा काश्चिच्छोगितमोन्तर्गे ॥ ३१ ॥

अधाक्षावलेद्दाईकादिकवडी ज्वराधिकारोको । पञ्चतिककथ्त कुष्टोकम्

निशाह्योशीरशिरीषमुस्तकै सलोधभद्रश्रियनागकेशरैः।
सस्वेदविस्फोटविसर्पकुष्ठदौर्गन्ध्यरोमान्तिहर प्रदेह ॥
विम्न्यतिमुक्तकाशोक सत्त्वेतसपह्नवैः।
निशि पर्य्युषित काथा मस्र्रीभयनाशन ॥ ३२ ॥
मस्र्रीस्फोटयोरन्ते कूर्परे मिणवन्धके।
मुखांसफलके शोथो जायते य सुदारुणः॥ ३३ ॥
व्रणशोथहरैर्योगैर्वातद्वेश्च जलौकसा।
हत्तेव्यस्तैलभृष्टस्य वृश्चिकस्य विलेपनैः॥ ३४ ॥
इति मस्रीः चिकित्सा॥

निशाह्रयेत्यादी-भद्रश्रिय श्वेतचन्दनम् । विम्वीत्यादि-विम्बी डुमरीति श्रीकण्ठः । श्रितिमुक्तको माधवीलता । योगेऽयमनागतमस्रीनिवारणार्थ चैत्रे मासि पेय ॥ ३२-३४,॥

चैत्रासिनभूतिदने रक्षपताकाविन्ता स्नुही भवने । धवलितकलसन्यस्ता पापरुजो दूरते धत्ते ॥ ३४॥ चैत्रासितभूतदिन इति चैत्रकृष्णचतुर्दश्याम् ॥ ३४॥

इति मस्रोचिकित्साविष्टति ।

# अथ श्रुद्ररोगचिकित्सा ।

तत्राजगाल्लिकामामां जलौकोभिरुपाचरेत्। शुक्तिसौराष्ट्रिकाचार-कल्कैश्चालेपयेन्मुहुः॥१॥ नवीना कर्यटकार्य्यास्तु कर्यटकैर्वेधमात्रतः। किमाश्चर्य्ये विपच्याशु प्रशास्यत्यजगल्लिका॥२॥

विसर्पादीनामचुद्रहेतुलचणिनिकित्मितानामिभधानेन चुद्रहेतुलचणिनिकित्सिताना रोगाणा पारिशेष्याद चुद्ररोगिचिकित्सितमुक्तम् । ननु यदिः चुद्रत्वमेषा हेतुलचणिनिकित्सिताल्पत्वेन तिहं अग्निरोहिणीवल्मीकादीना त्रिदेष्यज्ञत्वेन हेत्वादि- बाहुल्याद् तद् कथ् चुद्रत्वम् १ नैव, वाहुल्येन तच्छन्दाद् चत्रिणा गच्छन्तीतिवद् ।

किंवा श्रवान्तरभेदिवरहत्व चुद्रत्व, येनात्र वक्तव्यानामजगिह्वकादीना न दोयद्ष्या-दिक्तनभूरिसस्याभेदेन व्याजादिवित्रिदेशः, किन्तु प्रत्येक स्तोकसख्ययाभिधान तेषाम् । श्रजगिह्वका श्राचलीति लोके । श्रामामित्यपका, वाग्भटेऽपि श्रपकामित्युक्तम् । शुक्ती-त्यादि—शुक्तिमुंक्तीत्पिचमायड, सौराष्ट्रिका सौराष्ट्रम् , सुश्रते तु सौराष्ट्रोस्थामे श्रविका प्रश्रोत, श्रविका सर्जिक्तार । द्वारो यवकार इति ॥ १ ॥ २ ॥

कितां चारयोगैश्च द्रावयेदजगिस्तकाम् ।

रेख्याविद्रधिकलेक जयेदग्रशर्यी भिपक् ॥
विवृतामिन्द्रवृद्धाञ्च गर्दभीं जालगर्दभम् ।

इरिवेस्तिं गन्धमालां जयेत् पित्तविसर्पवत् ॥

मधुरौपधिसद्धेन सर्पिषा शमयेद् व्रणान् ।

रक्तावसेकैर्वद्वभि स्वेदनैरपर्तपेण ॥

जयेद्विद्वारिकां लेपै शिशुदेवद्रमोद्भवै ।

पनसिकां कञ्जपिकामनेन विधिना भिषक् ॥

श्रन्त्रालजीं कञ्जपिकां तथा पापणगर्दभम् ।

साधयेत् कितानन्यान् शोथान् दोपसमुद्भवान् ॥

सुरदाकशिलाकुष्ठे स्वेदियत्वा प्रलेपयेत् ।

कपमारुतशोथन्नो लेप पाषाणगर्दभे ॥ ३॥

चारयोगैरिति घयटापारुल्यादियोगै । मधुरीपथ काकोल्यादिगण । त्रणानिति विवतादीनेव गन्धमालान्तान् पाकेन मधुरीपथिसिद्धेन सिपपा रामयेदित्यर्थ । सुश्रुतेऽ-प्युक्त—विवतामिन्द्रवृद्धा गर्दाभिका जालगर्दभामिरिवेद्धिकां गन्धमाला विस्फोटकञ्च पिचविसपीविधानेनोपान्तरेत्। पक्षाश्च मधुरीपधिसद्धेन सिपपा" इति । रक्षावसेकै-रित्यादिना विदारिकाचिकित्सा । श्रनेन विधानेनेति विदारिकोक्षेन । श्रन्यान् रो।यानिति पापाणगर्दभादीन् । दोपसम्भवानिति योग्यतया कफवातजान् माधयेत् । पापाणगर्दभा "गाणठाहुया" इति ख्यात् ॥ ३॥

शक्षेणेत्कृत्य वरुमीकं चाराशिभ्यां प्रसाधयेत् । मन-शिलालभङ्कातस्क्षमेलागुरुचन्द्ने ॥ जातीपञ्जवकरुकेश्च निम्वतैलं विपाचयेत्।

1 .

वर्तमीकं नाशयेत् तद्धि वहुच्छिद्धं वहुस्रवम् ॥ पाददारीषु च शिरां व्यधयेत्तलशोधनीम् । स्निहस्वेदोपपन्नौ तु पादौ चालेपयेन्मुहु ॥ मध्चिछ्यवसामज्ज-घृतज्ञारैविंमिश्रितः । सर्जाख्यसिन्धूद्भवयोशचूर्ण मधुघृताप्जुतम् ॥ निर्मथ्य कटुतैलाक्नं हितं पादप्रमार्जनम् ॥॥

मन शिलेत्यादी—श्राल हरितालम् । निम्नतैलमिति निम्नवीजमनतैलम् । वहस्रवमिति वहस्रावम् । सुश्रुते श्रालस्थाने थिप्पलीयोगादप्यय योग पठित. । तलशोधनीमिति पादतलगामिनीम् । लेहस्वेदोपपन्नावित्यनन्तर कृत्वेति शेष । श्रन्ये तु शिरान्यधाद्गीभृतलेहस्वेदौ कृत्वा शिरा न्यधयदिति वोध्यम् । एवमन्तरेण शिरान्यधस्यापवृत्तौ लेहस्वेदोपपन्नावित्यादिना तु पश्चात् कर्मोपदेश दोषचयार्थ रक्ता-कृष्टिजनितवातचयार्थं वेति । श्रालेपयेन्मधृन्विष्टाटिभिरित्यन्वय । श्रन्न चीरविमि-श्रितेरित्यपपाठ , सुश्रते यवचौरिरित पाठात् । सर्जेत्यादी—सर्जो धूनक । कद्व-रैतलाक्तमिति कहुतेलयुक्त यथा स्यात् तथा पादप्रमार्जनार्थं किंवा चूर्णविशेषणम्॥४॥

# उपोदिकाचारतैलम्

उपोदिकासर्पपनिम्बमोचकर्कारुकैर्वारुक्यस्मतोये। तैलं विपकं लवणांशयुक्तं तत्पाददारीं विनिद्दन्ति लेपात् ॥४॥

उपोदिकेत्यादि- उपोदिकानाल श्राह्मम् । मोचक कदलीकगट॰ । कर्कारु कृष्मागडभेद , पर्वारु कर्कटी, अनयोर्नाडी । एषा जारोदके चतुर्गुणे सैन्थवकल्केन तैलं पक्तव्यम् । लेपोदित्यितिधनत्वात् ॥५॥

> श्रलसेऽम्लैश्विरं सिक्कौ चरणौ परिलेपयेत्। पटोल।रिष्टकाशीश-त्रिफलाभिर्मुहुर्मुहुः॥६॥ करञ्जवीजं रजनी काशीशं मधुकं मधु। रोचना हरितालञ्च लेपोऽयमलसे हित ॥७॥

श्रलसः 'पाकोश्राना ' इति ख्यातः । श्रम्लिरिति काञ्चितः । श्रारिष्टो निम्व ॥६— ७॥ लाचाभयारसालेपः कार्य्य दा रक्षमोत्तरणम्। जातीपत्रश्च सम्मर्ध दद्यादलसके भिपक्॥=॥

लाचेत्यादी--रसा गन्धरस ॥=॥

वृहतीरसिखेन तेलेनाभ्यन्य बुद्धिमान् । शिलारोचनकाशीशचूर्णैर्वा प्रतिसारयेत्॥६॥

यहतीत्यादि-यहती कारदकारी तस्या स्वरमः तेलश्च मापप्, सुश्रतमयादात्। प्रतिसारयेदिति वर्षयेत् ॥६॥

दहेत् कद्रमुद्धृत्य तैलेन दहनेन वा ॥१०॥
दहेदित्यादि—कदर शक्तेखोद्धृत्य तप्ततिलेन दहनेन वा दहदित्यर्थ । दहनेनेत्यत्र मदनेनेति पोठ मदन सिनयक तेनापि तप्तेन ॥१०॥

चिष्पमुष्णाम्बुना स्विन्नमुद्धृत्याभ्यज्य तं व्रणम् । दत्वा सर्जरस चूर्णं वद्ध्वा व्रण्वदाचरेत् ॥ स्वरसेन हरिद्राया पात्रे कृष्णायसेऽभयाम् । घृष्द्वा तज्जेन कल्केन लिम्पेचिष्पं पुन पुन ॥११॥

चिष्पमिति—चिष्पमिष्ट कुनखमिमेष्रत न त्वगुलीवेष्टनम्, उक्तरूपचिकित्मा-यास्तत्रानंहत्वादिति केचित् । उप्णाग्नुना स्वेदनमिष्ट मार्दवजननार्थ, मृदुत्वे सत्येव कुनखोत्कर्त्तन कर्तुं शक्यमिति । वद्ष्वेति व्रणोक्तवन्थनविधिना, व्रणवदाचरेदिति व्रणष्टितराचारादिभिरित्यर्थ । कृष्णायसे कान्तर्लाष्ट्रपात्र ॥११॥

चिष्पे सटङ्गणास्फोतामूललेपो नखप्रद । निम्वोद्केन वमनं पिद्मनीकग्रटके दितम् ॥१२॥ निम्वोद्कृतं सर्पि सत्तौद्धं पानमिष्यते । पद्मनालकृतः ज्ञार पिद्मनीं हन्ति लेपतः ॥१३॥

चिष्य इत्यादी—श्रारफोता हाफरमाली । थोगेऽय व्यस्तसमस्ततया व्यवहियते वृद्धे । निम्बोदकेन निम्बक्षाथेन मदनफलादियुक्तेनेत्याहु ॥१२—१३॥

निम्बारम्बधकल्कैर्वा मुहुरुद्धर्त्तनं हितम् । नीलीपटोलमूलाभ्या साज्याभ्यां लेपन हितम् ॥ जालगर्दभरोगे तु सद्यो हिन्त च वेदनाम् ॥१४॥ निम्बत्यादि---निम्बारग्वधकषायञ्चोत्माद्रन इति यत् सुश्रुतेनोक्तम् श्रृत्रापि कषायशब्दस्य कल्क एवार्थ । नीली नीलबुद्धा ॥१४॥

> श्रहिपूतनके धात्र्याः पूर्व स्तन्यं विशोधयेत् । त्रिफलाखदिरकाथैर्त्रणानां धावनं सदा ॥१४॥

स्तन्य विशोधयेदिति । पित्तश्रेष्महरे स्तन्यशोधनद्रव्यैरित्यर्थ । उक्त हि—"तत्र धात्र्याः पय शोध्य पित्तश्रेष्महरीष्धं " इति ॥१४॥

> करञ्जिकतातिक्के सर्पि सिद्धं शिशोर्हितम्। रसाञ्जनं विशेषेण पानालेपनयोर्हितम्॥१६॥

करजेलादी-तिकश्चरकोकिस्तिककगणः। श्रन्ये तु पटोलपत्रमाहु ॥१६॥

गुदभंशे गुदं स्नेहैरभ्यज्याशु प्रवेशयेत्। प्रविष्ट स्वेदयेचापि वद्धं गोष्फण्या दृढम् ॥१७॥ कोमलं पिद्मनीपत्रं यः खादेच्छर्करान्वितम्। एतन्निश्चित्य निर्दिष्ट न तस्य गुदनिर्गमः॥१८॥

गुदभ्रश इत्यादौ—केहैरिति वहुवचनात् चतुभिरेव केहैरित्यर्थं, किंवा गव्य-वमया अच्चेदिति वच्यमाणयोगदर्शनादश्रापि केहराव्देन गव्यवसैव आद्या।गोष्फणा वन्धविशेष, स हि सुअते अण्लेपवन्धविधौ व्यक्त । उक्त हि 'वचेगिमनार्थं सिन्छद्वेण चर्मणास्य काँगीनवन्ध कार्यः' इति ॥१७—१८॥

> वृत्ताम्लानलचाङ्गरीविल्वपाठायवात्रजम् । तक्रेण शीलयत् पायुभ्रंशान्तीऽनलदीपनम् ॥१६॥ गुदञ्च गव्यवसया म्रक्तयेदविशङ्कित्,। दुष्प्रवेशो विश्वत्याशु गुदभ्रंशो न संशयः॥२०॥

वृत्तान्ल महाईकम् । अनलिथित्रक । एषा कल्क तक्रेरा पिनेत्॥१६—२०॥

मूषिकाणां वसाभिर्वा गुदे सम्यक् प्रकेपनम्। स्विन्नमूषिकमांसेन चाथवा स्वेदयेद् गुदम्॥२१॥

स्वित्रमूपिकमासेनेत्यत्र काञ्जिकेन रिवत प्रतेन मृष्टमित्याहु ॥२१॥

#### चाङ्गेरीषृतम्

चाहेरीकोलद्ध्यम्लनागरचारसंयुतम् । घृतमुत्काथितं पेयं गुद्धंशरुजापदम् ॥ शुग्ठीचारावत्र कल्कौ शिप्टन्तु द्रवमिष्यते ॥२०॥

चाङ्गरीष्टते चाङ्गेर्यां स्वरम , कोलस्य शुष्कवदरस्य काथ , श्रम्ल दिध दध्य-म्लम्। एभिस्त्रिभिद्रविमिलित्वा चालुर्युष्यम् । किंवा चाङ्गरीस्वरमः स्निष्टमम , स्वरम चौरविद्विधिरिति वचनात्, दिधिकोलरमी तु मिलित्वा त्रिगुणी । पूर्वेरा व्यवहार । नागरचारी कल्की ॥ २२ ॥

## मूपिकाद्यं तैलम्

चीरे महत् पञ्चमूलं मूपिकामन्त्रवर्जिताम् । पक्त्वा तस्मिन् पचेचैल वातद्गोपयसाधितम् ॥ गुद्भशमिदं तैलं पानाभ्यद्गात् प्रसाधयेत् ॥२३॥

चीर इत्यादी -मूपिकागुडकमे आध्यम्, पश्चम्लस्य मिलित्वा प्रस्थ एक चीर-स्यापि एक ,तीयस्य प्रस्थद्वयम्। एव नि काथ्य शेष चीरप्रस्थ स्थाप्य , श्रेनेन तैल-कुडन साध्य इति कश्चित्। श्रन्ये तु "द्रन्यादएगुण चीर माधियत्वा चतुर्गुणम्।" चीरिमित्यादिपरिमापया चीर साधियत्वा चतुर्गुणम्।" चीरिमित्यादिपरिमापया चीर साधियत्वा चतुर्गुणेन तैनकुटन साध्य इत्याहु । चक्तस्त्राह श्रन्त्रविकतामिति श्रहणयोग्यतोपदर्शनाथम् ,तेन मूपिकमासस्य पलान्यष्टी, पश्चमृत्तन्यापि चीरस्य प्रस्थ ,तोयस्य प्रस्थत्रयम् ,शेष चीरप्रस्थ ,तेन कुडन साध्य , एवमन्यत्रापि, पक्केन चीरेण लहमाधने एपन व्यवस्थिति। व्यवहार प्राय प्रथमव्याख्ययैन। वातद्वीषध मद्रदावीदिगण स च कत्क ॥ २३॥

स्वेदोपनाद्दौपरिकर्निकायां छत्वा समभ्यज्य घृतेन पश्चात्। प्रवेशयेच्चम शनै प्रविष्टेमीसै सुखोष्णुरुपनाहयेच्च॥ स्नेहस्वेदैस्तथैवैनां चिकित्सेद्वपाटिकाम्। निरुद्धप्रकशे नाडीं द्विमुखीं कनकादिजाम्॥ विष्त्वाभ्यक्त्वा सुलक्यादिस्नोहेन परिपेचयेत्। तैलेन या वचादारुकल्कै सिद्धेन च ऽयहात्॥ पुन स्थूलतरा नाडी देया स्रोतोविश्च स्ये । शस्त्रेण सेवनीं त्यक्त्वा भिन्वा त्रणवदाचरेत् । स्निग्धश्च भोजनं वद्धगुदेऽज्येप कियाकम ॥२४॥

स्वेदेलादौ- परिकित्तिकाया सिष्धा अभ्यज्य अनन्तर वातिप्तर्माणादिमि स्वेद कृत्वा शाल्वणादिना च उपनाहन कृत्वा परिकित्तित चर्म यथोक्तस्वेदादिना चृद्भूत प्रवेशयेत् सम्यगानयेदिलर्थ । प्रविष्टे च सुखोर्ष्ण्मांसिरुपनाहयेत् । सुश्रुतेऽप्येवमेवोक्तम् । तथेवनामिल्यनेनावपाटिकायामप्युपनाह चर्मानयनस्रातिदिशति निरुद्धेलादौ-कनका-दीलादिना शस्त्रपूत्रभृतीना यहण्य । चुलकी शुर्ग्रहति ख्यातो जलजन्तु. । आदि-गव्दात् वराहादय । व्यहादिल्यत्र वीप्मा वोध्या, तेन व्यहात् व्यहात् प्रागुक्त-नाड्ययेद्यया पुन पुन स्थूलतरा नाडी देया । स्रोतोविशुद्धय इत्यत्र स्रोतोविशुद्धय इति पाठ । यदाह सुश्रुत प्रवमस्य स्रोतोद्वार वर्द्धयेदिति । व्रणविदिति सचीव्रणवत् । स्थिमध्य भोजनमाचरेदित्यनेन सम्बन्यते । सुश्रुतेऽपि "निरुद्धपकरो स्विग्धन्नाहार-सुपमेवत" इत्युक्तम् । एष क्रम इति निरुद्धप्रकरोक्तविधि ॥२४॥

चर्मकीलं जतुमणि मशकांस्तिलकालकान्।
उद्धृत्य शस्त्रेण दहेत् चाराग्निभ्यामशेषतः ॥२४॥
जतुमिणर्जरुः । चाराग्निभ्यामिति श्रनवगाढकारेण, श्रवगाढे त्विमिना ॥२४॥
रुखुनालस्य चूर्णेन घर्षो मशकनाशनः।
निर्मोक्सस्मघर्षाद्या सश्र शान्ति वजेत् सदा ॥२६॥

रुदुरिरगडस्तस्य नालेन गृहीत यच्चूर्णमिति शङ्खचूर्णम्,तेन घर्षो धर्षणमित्यर्थ । निर्मोक हीत कृष्णमर्पनिर्मोक ॥२६॥

युवानिषडकान्यच्छनीतिकाव्यद्गशर्कराः । शिराव्यधेः प्रतेषेश्च जयेद्भ्यञ्जनेस्तथा ॥ लोध्रधान्यवचालेपस्ताक्ययपिडकापदः । तद्वद्गोरोचनायुक्तं मरिचं मुखलेपनात् ॥२७॥ सिद्धार्थकवचालोध्रसेन्ध्रचेश्च प्रतेपनम् । वमनश्च निद्दन्याशु पिडकां यौवनोद्भवाम् ॥२८॥ पिडका यूनामाननापिडका युवानापिटका वर्णागम इत्यादिनिरुक्षविधिन। वर्ण लोप । धान्य धनीयकम् ॥२७—-२८॥

व्यक्केषु चार्जुनत्वग्वा मश्चिष्ठा वा समाधिका । लेपः सनवनीतो वा श्येताश्यखुरजा मसी ॥२६॥

व्यक्तेष्टित्यादि—वाग्मटस्य । समाधिकेति श्रर्जुनत्वक् चापि सम्बध्यते । श्रर्जुन-त्वक् वृत्तमम्बन्धादेव स्वय शुष्का याद्या । श्रेता श्रेतापराजिता, श्रश्रखुर श्रश्वस्य घोटकस्य खुर तयोर्मसी भस्म, श्रन्ये तु धवलघोटऋदुरमसीलाहु ॥२६॥

रक्रचन्दनमिक्षष्ठा कुष्ठलोधिष्ठयद्भवः।
वटाङ्कुरमस्राश्च व्यद्भमा मुखकान्तिदा ॥
व्यक्षिनां लेपनं शस्तं रुधिरेण् शशस्य च।
केवलान् पयसा पिष्ट्वा तीद्ग्णान् शाल्मिलकण्टकान्।
श्रालिप्तं त्र्यहमेतेन भवेत् पद्मोपमं मुखम् ॥३०॥

रक्षचन्दनेत्यादौ----वहुवचनात् व्यस्नममस्तमिति वदन्ति । वटाड्कुरा श्रामि नवपत्रमुकुला । तीद्रणानित्यभिन्नान् ॥३०॥

मस्रै सर्पिषा पिष्टैर्लिप्तमास्यं पयोऽन्विते । सप्तरात्राद्भवेद्दक्त्रं पुरुडरीकद्लोपमम् ॥३१॥

मस्रोरित्यादी—मिपेपेति विशेषणे तृतीया । पिष्टैरित्यर्थात् पयमेव पिप्टैरित्यर्थ । पिष्टैरित्यर्थ मृष्टेरित्यपि केचित् पठिनत । वाग्मेटऽप्युक्त ''क्षीरिपष्टा धतचीद्रयुक्ता वा मृष्टिनिस्तुपा मस्रा '' इति ॥३१॥

मातुलुङ्गजटा सिंपः शिला गोशकतो रसः।
मुखकान्तिकरो लपः पिडकातिलकालजित्॥
नवनीतगुडकोद्र-कोलमज्जप्रलेपनम्।
व्यङ्गजिद्वरुणत्वग्वा छागीक्तीरप्रपेपिता॥
जातीफलकक्कलेपो नीलीव्यद्गीदिनाशनः।
सायश्च करुतैलेनाभ्यङ्गो वक्त्रप्रसादनः॥३२॥

मातुलक्षस्य जटा मूलम्, शिला मन शिला, कीलमञ्जा वदरमञ्जा । वरुणत्व ् विति दितीथी योग ॥ १२॥ कालीयकोत्पलामयद्धिसरवद्रास्थिमध्यफिलनीभिः। लिप्तं भवति च वदनं शशिप्रभं सप्तरात्रेण ॥३३॥ कालीयकेत्यादौ—उत्पल नीलोत्पलम्, श्रामय कुष्ठम्, वदरास्थिमध्य मञ्जा

कालीयकेत्यादौ--उत्पल नीलोत्पलम्, श्रामय कुष्ठम्, वदरास्थिमध्य मज्जा, फलिनी प्रियगु. ॥३३॥

तुपरहितमस्णयवचूर्णसयष्टीमधुकलोध्रलेपेन। मविति मुखं परिनिर्जितचामीकरचारुसौभाग्यम् ॥ रक्षोध्रश्वरीद्वयं मिक्षष्टागैरिकाज्यवस्तपयः। सिद्धेन लिप्तमाननमुद्यद्विधुविम्ववद्गाति॥ ३४॥

रचोझ श्वतसर्षप , श्राज्य ष्टतम् । स्तपयव सिद्धेनेति समासपदम् , रचो-झादिमिद्धेन लेपेनेत्यर्थः ॥ ३४॥

परिण्तद्धिशरपुङ्क्षे कुवलयद्लकुष्ठचन्द्नोशीरैः।
मुखकमलकान्तिकारी भुकुटीतिलकालकान् जयति॥३४
परिण्रतेलादि—परिण्तद्धिमसृतिभिर्तेष । भुकुटी ललाटे वलीरूपा॥ ३५॥

# हरिद्राद्यं तैलम्

हरिद्राह्मययष्ट्याह्न-कालीयककुचन्दनैः।
प्रपौग्डरीकमिश्रष्टा-पद्मपद्मककुङ्कुमैः॥
किपत्यितन्दुकस्त्व-चटपत्रैः पयोऽन्वितैः।
लेपयत् कल्कितैरोभिस्तैलं वाभ्यक्षनं चरेत्॥
पिस्नवं नीलिकाव्यद्गांस्तिलकान् मुखदूषिकान्।
नित्यसेवी जयेत् न्तिप्रं मुखं कुर्यान्मनोरमम्॥ ३६॥

हरिद्रादी--कुचन्दन चन्दनभेद , पद्म पद्मपुष्पम् । पत्रशब्द किपित्थादिभि प्रत्येक सम्बध्यते । लेपपचे पयसैव पेषणम् । तैलपाकपचे हरिद्रादीना कल्क', चीरन्तु चतुर्गुणम् । पिप्तविमिति जडलम् ॥ ३६ ॥

कनक-तैलम्

मधुकस्य कपायेण तैलस्य कुडवं पचेत्। कल्कैः प्रियङ्गुमञ्जिष्ठा-चन्दनोत्पलकेशरैः॥ कनकं नाम तत्तेलं मुखकान्तिकरं परम्। अभीक्रनीलिकाव्यङ्गशोधनं परमार्चेतम्॥ ३७॥ मधुकस्येलाटी—केशर नागेकशरम्। अभीक जटुलम्॥ ३७॥

### मिडिछाद्यं तैलम्

माञ्जा मधुकं लाजा मातुलुहं सयप्रिकम्।
कर्षप्रमाणेरेतेस्तु तेलस्य कुडवं तथा ॥
श्राजं पयस्तद्द्विगुणं शनैमृद्धिया पचेत्।
नीलिकापिडकाव्यद्वानभ्यद्वादेव नारायेत्॥
मुखं प्रसन्नोपचिनं चलीपलितचर्जितम्।
सप्तरात्रप्रयोगेण भवेत् कनकसन्निभम् ॥ ३८॥

माञ्जिष्ठलादौ —मातुल्जहस्य मूलम् । मधुक मयष्टिकमिति पदद्वयोपादानातः जलस्थलभेदेन यष्टिमधुद्वयमिह श्राव्यमिनि श्रेयम् ॥ ३८ ॥

# कुङ्कमाद्यं तैलम्

कुद्धुमं चन्दनं लाज्ञा मिल्लाग्ना मध्यण्यिका ।
कालीयकमुशीरश्च पद्मकं नीलमुत्पलम् ॥
न्यश्रोधपादाः सन्दय श्रद्धाः पद्मस्य केशरम् ।
द्विपश्चमूलसिंदै क्षायैः पिलकै पृथक् ॥
जलाढकं विपक्षव्यं पादशेपमथोद्धरेत् ।
मिल्लिश मधुके लाज्ञा पत्तकं मधुयण्यिका ॥
कर्षप्रमाणैरेतैस्तु तेलस्य कुडवं पचेत् ।
श्रज्ञाज्ञीरं तद्द्विगुणं शनैर्मृद्धिना पचत् ।
सम्यक् पकं परं ह्यतन्मुखवर्णप्रसादनम् ।
नीलिकापिडकाव्यद्वानभ्यक्वादेव नाशयेत् ॥
सप्तरात्रप्रयोगेण भवेत् काश्चनसिंद्यम् ।
कुद्धमाद्यमिदं तेलमितं पुरा ॥ ३६ ॥

कुड्कुमित्सादी—न्यमोधस्य वटस्य पादाः शुङ्गा , सत्तः पाकुडी । कषायै-रिति कषायमाधने कुङ्कुमरक्तचन्दनादिभि , पञ्चवल्कलैरित्यन्य । पत्तङ्ग रक्त-चन्दनम् । दिपञ्चमूलसिहतैरित्यत्र पद्मिक्षल्कसिहतैरिति केचित् पठिन्ति, वाग्भेटेऽपि दरामूल विना योगोऽय दृश्येते, पवं चन्द्राटेऽपि, तेनापि योगान्तरत्वम् ॥ ३६ ॥

# कुङ्कुमाद्यं तैलम्

कुडुमं चन्दनं लाजा मिक्षिष्ठा मधुयप्रिका।
कर्पप्रमाणैरेतैस्तु तैलस्य कुडवं पचेत्।
श्रजाक्तीरं तद्द्रिगुणं शनैर्मृद्वग्निना पचेत्॥
सम्यक् पकं परं ह्येतन्मुखकान्तिप्रसादनम्।
नीलिकापिडकाव्यक्तानभ्यद्वादेव नाशयेत्॥
सप्तरात्रप्रयोगेण भवेत् काश्चनसन्निमम्॥४०॥
दितीयकुड्कुमाष तैलमाह कुड्कुमामित्यादि —स्पष्टम्॥४०॥

# कुङ्कुमाद्यं तैलम्

कुडुमं किंशुकं लाजा मिल्रिष्ठा रक्तचन्दनम् ।
कालीयकं पद्मकञ्च मातुलुइं सकेशरम् ॥
कुसुम्मं मधुयप्रीकं फिलिनी मदयन्तिका ।
निशे द्वे रोचनापद्ममुत्पलञ्च मन शिला ॥
काकोल्यादिसमायुक्तेरेतैरत्तसमैभिषक् ।
लाज्ञारसपयोभ्याञ्च तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥
कुड्रुमाद्यमिदं तैलञ्चाभ्यक्षात् काञ्चनोपमम् ।
करोति वदनं सम्यक् पुष्टं लावएयकान्तिदम् ॥
सौभाग्यलद्मीजननं वशीकरणमुत्तमम् ॥४१॥

तृतीयकुड्कुमाधतैले किंग्रुकः पलाशस्तस्य पुष्पं माद्यम् । माद्यछङ्ग सकेशर-मिति मातुछङ्गस्य मूल केशरक्रेत्याहुः । मदयन्ती मिहिकामेदः । काकोल्यादि. सौ-श्रुतगख, श्रष्टवर्ग इत्यन्ये । लाचारसपयसी मिलित्वा तैलाचतुर्गुये ॥ ४१ ॥

## वर्णकं घृतम्

मधुकं चन्दनं कहु सपैपं पद्मकं तथा।
कालेयकं हरिद्रा च लोधमेभिश्च किततेः॥
विपचेद्धि घृतं वैद्यस्तत्पकं वस्त्रगालितम्।
पादांशं कुद्धुमं सिक्थं जिप्त्वा मन्द्रानले पचेत्॥
तत् सिद्धं शिशिरे नीरे प्रक्षिप्याकपयेचतः।
तदेतद्वर्णकं नाम घृतं वर्णप्रसादनम्॥
श्रनेनाभ्यासलिप्तं हि वलीपलितनाशनम्।
निष्कलद्वेन्द्विस्वामं स्यादिलासवतीमुखम्॥४२॥

मधुकीमत्वादी—क्यः कायोनीमद्यक द्याधान्यम् । वक्तगातित्विनिति किञ्चिन्
जलनम्बन्धे नत्वेव वस्त्रेय गालनीयम् , तनी मिलित्वा ध्वात् पादाम कुकुम न्निधकञ्च बल्क प्रश्चिष्य मृद्द्विना पुनरप्यवधानेन जलज्ञयपर्य्यन्त पक्षन्य यथा निवधकद्राह्ये न स्यात् , निद्धे च तद्धतपात गीवतजने निविष्य गीनीभून झाक्षेयेत् ,
तथा निव निवधकस्य दाह्ये न स्यादिनि माव ॥ ४२ ॥

श्ररूपिकायां रुधिरेऽवसिक्के शिराव्यधेनाथ जलौकसा वा। निम्वाम्बुसिक्के शिरसि प्रलेपो देयोऽध्ववर्चोरससैन्थवाभ्याम्।४३।

भरूपिकायामित्यादी—निन्नान्तु भर्द्रशृतो निन्नकाथ, ॥४॥।

पुराणमिप पिएयाकं पुरीपं कुक्कुटस्य वा । सूत्रपिष्टं प्रलेपोऽथं शीवं हन्यादक्षंपिकास्॥ श्रक्षंपिवं भृष्टकुष्टचूर्णं तैलेन संयुतम्॥४४॥

पुरायित्वादि-योगद्वयम् , भतप्त वाशस्य । पिरवाकस्तिलखली, एक-योगताप्यायुर्वेदमवादात् । नृष्टकुष्ठचूर्णामिति कपाले मृष्ट्वा दग्व्वा चूर्णं कर्सव्य-मित्वर्थः ॥ ४४ ॥

हरिद्राद्यं तैलम्

हरिद्राद्वयभूनिम्व-त्रिफलारिष्टचन्द्नैः।

पतत् तैलमरंपीणां सिद्धमभ्यञ्जने हितम् ॥४४॥ हरिद्रेत्यादि—स्पष्टम् ॥४४॥

दारणे तु शिरां विध्येत् स्निग्धां स्वन्नां ललाटजाम् । श्रवपीडान् शिरोवस्तीनभ्यद्गांश्चावचारयेत् ॥ कोद्रवाणां तृण्ज्ञारपानीयं परिधावने । कार्यो दारणके मूर्धि प्रलेपो मधुसंयुतः॥ पियालवीजमधुक-कुष्ठमिश्रैः ससैन्धवैः। काञ्जिकस्थाः त्रिसप्ताहं मापा दारणकापहाः॥४६॥

दारण इति उक्धिकायाम् । श्रवपीठो नस्यभेदः । शिरोवस्तिश्च द्विहरिद्रा-तंलेन देय इत्याहु । पियालवीजमधुककुष्ठानि भिश्राणि चेति विश्रह कृत्वा समाधेयम् , मिश्रेरित्यल स्थाने मापैरित्यपि पाठान्तरम् ॥ ४६ ॥

सह नीलोत्पलकेशरयष्टीमधुकतिलें सहश्रमामलकम् । चिरजातमपि च शीर्षे दारण्रोगं शमं नयति ॥ ४७॥ सहस्रादी—नीलोत्पलस्य केशर किंजल्क । सहशमिति तुल्यम् ॥ ४७॥

# त्रिफलाद्यं तैलम्

त्रिफलाया रजो मांसी मार्कवोत्पलशारिवै । ससैन्धवै पचेत्रैलमभ्यङ्गादुक्थिकां जयेत् ॥ ४८॥

त्रिफलाया इत्यादौ-मार्कवो मृहराज , उत्पलशारिवा भ्रमन्तमूलम् छान्द-सत्वाद् हस्त्र , श्रन्ये तु उत्पल नीलात्पल शारिवा च इत्याहु ॥ ४८॥

# चित्रकाद्यं तैलम्

चित्रकं दान्तिमूलञ्च कोषातकीसमन्वितम्। करुकं पिष्ट्वा पचेत्तलं केशदृद्वविनाशनम्॥ ४६॥

चित्रकमित्यादौ--कोपातकी घोषक ॥ ४६ ॥

गुञ्जाद्यं तैलम्

गुञ्जाफलैः श्रतं तैलं भृद्गराजरसेन तु ।

कग्रह्दारगृहत् कुष्ठ-कपालव्याधिनाशनम् ॥ ४० ॥ मृद्गराजरमेनेति चतुर्गुणेनलर्थः ॥ ५० ॥

# भृद्गराजतैलम्

मृद्गरजिप्रस्तोत्पलशारि लौहपुरीपसमन्वितकारि।
तेलामदं पच दारणहारि कुञ्चितकश्यंनस्थिरकारि॥४॥
मृद्गरज इत्यादी—मृद्गरजो मृद्गराजस्तस्य रमश्चतुर्गुणः पाकार्थतारः। मृद्गरज
रज शब्दोऽप्यस्ति, यथा 'ये मापमेक स्वरस पिवन्ति दिने दिने मृद्गरज ममुत्यम्''
हति । त्रिफलादीना कल्क । उत्पल नीलोत्पलम्, शारि शारिवा अनन्तमूलम्,
ममन्वितकार सहकार ममन्वितशम्दस्य सहार्थस्वाद्, अस्य च फलमध्य ग्राण्य केश्यत्वाद् कृष्णीकरणत्वाच । मृद्गराजादिसमन्वितकारान्त् द्रव्यमस्मित्रस्तीति इत्, तेल
विशेषणमेतत्। अन्य तु मृद्गराजादि मर्व द्रव्य कल्क, जलेन पाक्, उत्पत्तशारिवा
अनन्तमूलम्, मृद्गरज समन्वय कर्षुं शीलमस्येति तलविशेषणमिति । व्यवहारस्तु
पूर्वव्याख्ययेव । कुञ्जितकेशघनास्थरकारीति केशस्य कुञ्जितत्वयनत्वकारीत्यर्थ ।
कुञ्जितशच्दः पूर्वेनिपातश्कान्दसत्वात् ॥ ५१ ॥

# प्रपौरव्हरीकाद्यं तैलम्

प्रपौग्डरीकमधुक-पिष्पलीचन्द्नोत्पलैः । कार्षिकैस्तैलकुडवं तैर्द्धिरामलकीरसः । साध्यः सप्रातिमर्पः स्यात् सर्वशीर्पगदापदः॥ ४२॥

प्रपौयढरीकत्यादौ-तैलापेचया दिग्रेणनामलकरमेनैव पाक । प्रतिमर्षी नस्यभेद । सप्रतिमर्ष इति प्रतिमर्पविधिना उपसुक्त इत्यर्थ ॥ ५२॥

# मालत्याद्यं तैलम्

मालतीकरवीराग्नि-नक्षमालविपाचितम्। तैलमभ्यञ्जने शस्तमिन्द्रलुप्तापद्दं परम्। इदं हि त्वरितं हन्ति दारणं नियतं नृणाम्॥ ४३॥ मालतीत्यादि—मालती जाती, अभिश्चित्रकः। अत्र गोमूनेण पाक इति

श्रीकएठ ॥ ५३॥

धात्र्याम्रमज्जलेपात् स्यात् स्थिरता स्निग्धकेशता । इन्द्रलुप्ते शिरां विद्ध्वा शिलाकाशीशतुत्थकैः॥ लेपयेत् परितः कल्कैस्तैलब्चाभ्यक्षने हितम्। कुटन्नटं शिखीजातीकरक्षकरवीरजैः॥ ४४॥

वात्रीत्यादौ — मज्जशब्देनाम्नेणैन सम्बन्ध, श्राम्रमञ्जा तु वालाम्रास्थ । इन्द्रज्ञप्त इत्यादौ — शिरामिति इन्द्रज्ञप्तसिष्ठिहिता शिराम् तैलन्नाभ्यक्षेने हितमिति । कुटन्नटादिकरवीरान्तै कल्कै. सिद्ध तैलमित्यर्थ । कुटन्नटमिति कुटन्नट कैवर्त्तमुस्तकम् । शिखी चित्रक । श्रन्थे तु कुटन्नटमिति च्छ्रेद , विच्छेदपाठात् कुटन्नट विनापि चित्रकादिद्रव्यचतुष्टयेन तैलसाधन स्वयन्ति, व्याख्यानयन्ति च — शिखीति दीर्घपाठश्छान्दमत्वात् समर्थनीय , श्रन्ये तु कुटन्नटादिभिरपि लेप एव, तैलन्तु पूर्वोक्तमालतीकरवीरादिसिद्धमेव वोध्यमित्याहु ॥ ५४॥

त्रवगाढपदञ्चेव प्रच्छियत्वा पुनः पुनः। गुञ्जाफलैश्चिरं लिम्पेत् केशभूमिं समन्ततः ॥ ४४ ॥

श्रवगाढेत्यादि--श्रवगाढपदिमिति गम्भीरपद यथा स्यात् तथा स्चीनख-रक्षन्यादिमि प्रच्छियत्वा रक्षगुक्षाफतैः पुनः पुनर्लिम्पत् ॥ ५५ ॥

हस्तिदन्तमसीं कृत्वा मुख्यश्चैव रसाञ्जनम्। लोमान्यनेन जायन्ते नृणां पाणितलेष्वपि॥ ४६॥

٧,

हस्तिदन्तेत्यादी-मुख्यिमत्यक्षत्रिमम् ,-तेन दानीकाश्रोद्भवरसान्जननिषेधः। श्रव जलेन पेषया बोध्य द्रव्यान्तरस्यानुकेः । श्रवपन वन्त्यमायेन छागीच्चरिरसा-न्जनेत्यादिना श्रस्य न पौनरुक्षयम् ॥ ५६ ॥

भन्नातकवृहर्ताफलगुञ्जामूलफलेभ्य एकेन । मधुसहितेन विलिप्तं सुरपतिलुप्तं शमं याति ॥ ४७॥

मल्लातकेत्यादी--भल्लातकषृष्टतीफलयो रसः । उक्त हि वाग्मटे 'सचैद्रचुद्र-वार्त्ताकुरवरसेन रसेन वा । धुस्तुरस्य च पत्राणा भल्लातकरसेनं वा हित ॥ ५७॥

वृहतीफलरसिपष्टं गुञ्जाफलमूलञ्चन्द्रलुप्तस्य । कनकिन्धृप्टस्य सतो दातव्यं प्रच्छितस्य सदा ॥ घृष्टस्य कर्कशैः पत्रीरिन्द्रलुप्तस्य गुगडनम् । चृिंधैतैर्मरिचैः कार्य्यमिन्द्रलुप्तविनाशनम् ॥ ४८ ॥ छागज्ञीररसाञ्जनपुटदग्धगजेन्द्रदन्तमसीलिप्ताः । जायन्ते सप्तरातात् खल्ल्यामपि कुञ्चिताश्चिकुराः ॥ ४६ ॥

वृहतीत्यादौ-पफवृहतीफलरसस्तेन पिष्ट ग्रुजाया मूलं फल वा । कनक-निघृष्टस्येनि कनक ग्रुवर्णे धुस्तूरस्य मूल वा । प्रच्छितस्येति नदारज्ञन्यादिना विलि-खितस्य ग्रुग्डनामित्यवचूर्णनम् ॥ ५५—५६ ॥

मधुकेन्दीवरसूर्वातिलाज्यगोचीरभृद्गलेपेन। श्रविराद्भवन्ति केशा घनदृढमूलायतानृजवः॥६०॥ मधुकेत्यादी—इन्दीवर नीलोत्पलम्, मृद्गो मृद्गराज । श्रवृजवः कुटिला ॥६०॥

# स्नुह्याद्यं तैलम्

स्तुद्दीपय पयोऽर्कस्य मार्कवो लाद्गलीविषम् । मूत्रमाजं सगोमृतं रिक्षका सेन्द्रवारुणी ॥ सिद्धार्थं तीरुणैतलञ्च गर्भं द्वा विपाचित्तम् । विद्वाग सुदुना पकं तैलं खालित्यनाशनम् ॥ कूर्मपृष्ठसमानापि रूज्ञा या रोमतस्करी । दिग्धा सानेन जायेत भ्राज्ञशारीव लोमशी ॥ ६१ ॥

स्तुहीत्यादी—मार्कनो सङ्गराज, लाङ्गलीविष विषलाङ्गलियामृलाख्य विष किंवा लाङ्गली च विषञ्जेति द्रव्यद्रयम् । रिक्तका ग्रांजिका, तस्या मृल, फल-मित्यन्ये । इन्द्रवाख्यी गोरचकर्कटी, सिद्धार्थ श्रेतसर्पर्यं, तीच्यातेल सार्पपतेल ज्वातिक्यतीमृल, फलमित्यन्ये । सिद्धार्थतीच्यतेलामिति समस्तपाठपचे तीच्यामिति तैलाविरोपणम् । अमिजतस्य सर्पपस्य तैल द्वेयम् । अजामृत्रगोम् मे मिलित्वा चतु-ग्रंणे, रेष कल्क । दिग्धा इति अचिता । महत्तस्य मल्लूकस्य शारी पीथिका इव ॥ ६१ ॥

त्रादित्यपाकगुङ्चीतैलम् वटावरेाहकेशिन्येाश्चूर्णेनादित्यपाचितम् ।

#### गुडूचीस्वरसे तैलञ्चाभ्यद्वात् केशरोपणम् ॥ ६२॥

वटावरोहेत्यादौ—केशिनी भूतकेशी मासी वा प्रतयोश्चूर्णं तलात् पादिक कल्कत्यात् , गङ्चचीरमस्तु तैलसमः श्रादित्यपाकत्वात् ॥ ६२ ॥

# चन्दनाद्यं तैलम्

चन्दनं मधुकं मूर्वा त्रिफला नीलमुत्पलम् । कान्ता वटावरोहश्च गुडूची विसमेव च ॥ लौहचूर्णं तथा केशी शारिवे द्वे तथैव च । मार्कवस्वरसेनेव तेलं मृद्वग्निना पचेत् ॥ शिरस्युत्पतिता केशा जायन्ते घनकुञ्चिता । दृढमूलाश्च स्निग्चाश्च तथा भ्रमरसन्निमाः ॥ नस्येनाकालपालतं निद्दन्यासैलमुत्तमम् ॥ ६३॥

चन्द्रनामित्यादौ--कान्ता प्रियगु,, विस मृणाल, केशी भूतकेशी, मार्कव-रमश्चतुर्गुण: ॥ ६३ ॥

तैलं सयप्रिमधुकैः चीरे घात्रीफले श्रतम्।
नस्ये दत्तं जनयति केशान् श्मश्रृणि चाप्यथ॥ ६४॥

तैलिमत्यादौ---चिरमेव चतुर्गुख द्रवान्तरामावात् ॥ ६४ ॥

त्रिफला नीलिनीपत्रं लौहभृद्गरजः समम्। स्रविसूत्रेण संयुक्तं कृष्णीकरण्मुत्तमम्॥ ६४॥

त्रिफलेत्यादी — नीलिनी लतावेणीति प्रसिद्धा, तस्या पत्रः, लीहमृद्ध-रजसीश्चूर्णमित्यर्थ । श्रविमूत्रेण सयुक्तमिति मावितम् । शिरोलेपीऽय प्रहरी दौ त्रीन् वा थार्थ्य , पवमन्यत्रापि शिरोलेपनधारणम् ॥ ६५ ॥

> त्रिफलाचूर्णसंयुक्तं लौहचूर्णं विनिक्तिपेत्। ईपत्पक्ते नारिकेले भृद्गराजरसान्विते ॥ मासमेकन्तु निक्तिप्य सम्यग्गर्भात् समुद्धरेत्। ततः शिरो मुगडियत्वा लेपं दद्याद्भिषम्बरः॥ संवेष्ट्य कदलीपत्रैमींचयेत् सप्तमे दिने।

चालयेत् त्रिफलाकायैः चीरमांसरसाशिनः।
कपालरञ्जनञ्जैतत् रुष्णीकरणमुत्तमम्॥ ६६॥
विफलत्यादीः—गर्मादिति नारिकेलाडराद। गर्नादिति न पाठ म पत्रार्थ
॥ ६६॥

उत्पत्तं पयसा सार्डं मासं भूमौ निधापयेत्। केशानां कृष्णकरणं स्नेहनञ्च विधीयते ॥ ६७॥

उत्पलमित्यादी--उत्पल नीलोत्पल, माम भूमी निधापयेदिति लीहपात्रे कृत्वा भूम्यध स्थापयेदित्यर्थ ॥ ६७ ॥

> भृद्गपुष्प जवापुष्पं मेपीदुग्धप्रपेपितम् । तेनैवालोडितं लौहपात्रस्थं भूम्यध्नः कतम् ॥ सप्ताहादुद्धृतं पश्चाद् भृद्गराजरसेन तु । श्रालोड्याभ्यज्य च शिरो वेष्टयित्वा वसेन्निशाम् ॥ प्रातस्तु ज्ञालनं कार्य्यमेवं स्यान्मूर्द्धरञ्जनम् । पवं सिन्दूरवालाम्रशङ्घभुद्गरसैः किया ॥ ६० ॥

श्रभ्यञ्येति सृद्धराजरसाले। हितेन सृद्धराजपुष्पादिना श्रद्धयित्वत्यर्थ । वेष्टियित्वा इति कदली पत्रेणिति रोप । शिरः प्रचालनञ्ज त्रिफलाकायेन वदन्ति । बालाञ्च वाला-श्रवीज, राद्ध राह्मनाभि । प्विमित्येनेन मिन्दूरादिश्रयेऽपि पूर्ववन्मेपदुग्धपेपणादिक-मतिदिशन्ति । सृगरमेरिति सृगराजरमोऽपि श्रालोङनार्धम् , एव तश्च यद्यपि एविमत्य-विदेशनेव लभ्यते तथापि स्पष्टार्थसुकम् ॥ ६ = ॥

नरदुग्धशङ्खचूर्णं काञ्जिकसिक्षं हि सीसकं घृष्ट्वा । लेपात्कचानर्कदलावनद्धान् श्रुश्चान् करोति नीलतरान् ॥६६॥

नरेत्यादि---अत्र किञ्चित् पारद गृहीत्वा आवर्त्त्यमाने सीसके प्रिचिपत्, ततस्तेन मह एकीभृत सीसक वृष्ट्वा शिरासे लेपो देय इत्युपदिशान्ति वृद्धा अर्क-दलावनद्धमित्यकपत्रेण पिधाय वन्धनमित्यथे ॥ ६६॥

लोहमलामलकल्कै सजवाकुसुमैर्नर सदा स्नायी। पिलतानीह न पश्यति गङ्गास्नायीच नरकािला॥ ७०॥ लोहमलेत्यादी—भामलक धात्रीफल, जवाकुसुम श्रोड्रपुष्पम्॥ ७०॥ निम्बस्य वीजानि हि भावितानि भृहस्य तोयेन तथाशनस्य। तैलन्तु तेषां विनिहन्ति नस्याद् दुग्धान्नभोक्तुः पलितं समूलम्॥

निम्बस्येत्यादि—श्रशन पीतशाल । मावना च प्रत्येक सप्ताइम् ॥ ७१ ॥ निम्बस्य तैलं प्रकृतिस्थमेव नस्ते निषिक्तं विधिना यथावत् । मासेन गोन्तीरभुजो नरस्य जरात्रभूतं पालितं निद्दन्ति ॥ ७२ ॥

निम्बतैल निम्बवीजस्य तेल प्रकृतिस्थमेवेति भृद्गराजरसादिभावनारहितम् । विधिनेति नस्योक्तविधिना । जराग्रभूतमिति जरागमनसूत्रकम् ॥ ७२ ॥

> चीरात् समार्कवरसाद् द्विप्रस्थे मधुकात् पले। तैलस्य कुडवं पकं तन्नस्यं पलितापहम्॥ ७३॥

चीरादित्यादि — चीरभृङ्गराजरसयोभिलित्वा प्रस्थद्वयम्, निर्देशस्य मानप्रधान-त्वाद । मधुकाद् पले इति सप्तम्येकवचनम्, न तु प्रथमाया दिवचन, जत्कर्ण-मवादाद् ॥ ७३ ॥

### महानीलतैलम्

श्रादित्यवल्त्या मूलानि कृष्णशैरीयकस्य च ।
सुरसस्य च पत्राणि फलं कृष्णशिणस्य च ॥
मार्कवं काकमाची च मधुकं देवदाक च ।
पृथग्दशपलांशानि पिष्पल्यिस्रफलाञ्जनम् ॥
प्रपौण्डरीकं मिल्रिष्ठा लोधं कृष्णागुरूत्पलम् ।
श्राम्नास्थिकर्दमः कृष्णो मृणाली रक्तचन्दनम् ॥
नीली भन्नातकास्थीनि काशीशं मद्यान्तिका ।
सोमराज्यशनः शस्त्रं कृष्णो पिण्डीतचित्रको ॥
पृष्पाण्यर्जुनकाश्मय्योश्चाम्रजम्वृफलानि च ।
पृथक् पञ्चपलेभीगे सुपिष्टराढकं पचेत् ॥
वैभीतकस्य तैलस्य धातीरसचतुर्गुणम् ।
कुर्यादादित्यपाकं वा यावच्छुष्को भवेदसः ॥
लौहपाले तत पूर्वं संश्रद्धमुपयोजयेत् ।

पाने नस्तिक्रयायाञ्च शिरोऽभ्यहे तथैव च ॥

एतच्चुष्यमायुष्यं शिरसः सर्वरोगनुत् ।

महानीलिमिति ख्यातं पलितप्रमनुत्तमम् ॥ ७४ ।

महानीलैतेले—मादित्यवही स्र्यांवर्षं, म्रादित्यपर्णिति पोठ म एवार्थ । कृष्णशैरीयकी नीलिकिएटी, सुरम पर्णाम, अञ्चन रमाञ्चन, रुप्णकर्दमी नीलिकिएन मूलिसितकर्दम, सुमुतेऽपि ' पद्गन निलिनीमेवन '' इत्युक्तम् । नीली नीलिनि स्याता लता, अशन पीतशाल, शस्त्र काललीहचूर्णं, पिष्टीनी मदन, कृष्णा-विति कृष्णपुर्णे । पुष्पाययज्ञुनकाशमर्थाणीति अज्ञुनकाशमरीभवानि पुष्पाणि, अर्जुनकाशमर्थोरित्यपि पाठ । लीहपान्नऽक्षिना पवेदादित्यपाक वा कुर्यादिनि योज्यम् । आदित्यपाकस्तु आदित्यरिमसम्बन्धादेव द्वशोपविधि । स्राद्य सागीरिनि बहुवचनोदेव पृथमागे लब्धे पृथगिति पद न्यायिमद्धस्यापि त्रिफलाया पृथगमागम्य द्यातनार्थं, कल्कम्यस्त्वच्च वचनोदेव गवन्न विकल्पनियम् ॥ ७४ ॥

#### भृद्गराजघृतम्

भृद्गराजरसे पकं शिखिपित्तेन कित्कतम् ।

घृतं नस्येनं पिलतं हृन्यात् सप्ताहृयागतः ॥ ७४ ॥

गृद्गराजेत्यादी—शिखो मय्र । घतन्तु कुडवमानमय नस्ययोगत्वात् ॥७४॥

काञ्जीपिष्टशेलुफलमिज्ज्ञ सिच्छुद्रलौहेगे ।

यद्रकतापात् पतिते तैलं तन्नस्यम्रज्ञणात् ॥

केशा नीलालिसङ्काशाः सद्यः स्निग्धा भवन्ति च ।

नयनश्रवण्ग्रीवाद्नतरोगांश्च हृन्त्यदः ॥ ७६ ॥

काश्रीत्यादी---रोलुर्वेद्धवार । सन्छिद्रल्लीहग इति वहुन्छिद्रलीहपाश्रस्थे । नीलालिसङ्कारा। इति नोलपद पिद्गलभ्रमरिनरासार्थम् ॥ ७६ ॥

काशीशरोचनातुल्यं हरितालं रसाञ्जनेः। श्रम्लिपष्टैः प्रलेपाऽयं वृपकच्छ्वहिपूतयोः॥ ७७॥

काशीशिमत्यादौ--- एतिरिति शेष । काशीशराचनातुल्यहरितालरमाअनै-रित्यिष पाठ ॥ ७७ । ७८ ॥

#### पटोलाद्यं घृतम्

पटोलपत्रत्रिफलारसाञ्जनविपाचितम् ।
पीतं घृतं निहन्त्याशु क्वच्छ्वामप्यहिपूतनाम् ॥ ७८ ॥
रजनीमार्कवमूलं पिष्टं शीतेन वारिणा तुर्यम् ।
हन्ति विसर्प लेपाइराहदशनाह्नयं घोरम् ॥ ७६ ॥
नागकेशरचूर्णं वा शतघौतेन सर्पिषा ।
पिष्ट्वा लेपो विघातच्यो दाहे हर्षे च पादयोः ॥ ८० ॥

इति जुद्ररोगचिकित्सा।

वराहदशनाह्नयमिति वराहदन्तमिति श्रसिद्धम् ॥ ७६ । ८० ॥

इति जुद्ररोगचिकित्साविष्टति ।

# अथ मुखरोगचिकित्सा ।

#### श्रोष्ठरोगचिकित्सा

श्रोष्ठप्रकोपे वातोत्थे शाल्वेशने।पनाहनम् । मस्तिष्के चैव नस्ये च तैलं वातहरैः श्टतम् ॥ १ ॥

चुद्रसेगास्तु चतुश्रत्वारिशत् , भुखरागास्तु पञ्चपष्टि ,श्रतो रोगगणत्वसामा-न्यात् चुद्ररोगचिकित्मितप्रमङ्गान्मुखरोगचिकित्मितमुच्यते । श्रोष्ठेत्यादि-सुश्रुतस्य । मस्तिष्के चैवेति---मस्तिष्क शिरोवस्ति केहोकिपिचुधारण वा । वातहँररिति मद्र-दार्वादिमि ॥ १॥

स्वेदोऽभ्यद्गः स्नेह्पानं रसायनमिहेष्यते । श्रीवेष्टकं सर्जरसं गुग्गुलुं सुरदारु च । यष्टीमधुकचूर्णञ्च विद्ध्यात् प्रतिसारणम् ॥ २॥

रसायनामिहेष्यत इति रसायन च्यवनप्राशादि । श्रंविष्टकमित्यादि — सुश्रु-तस्य । श्रीवेष्टक नवनीतारोटि । प्रतिमारण घर्षणम् । वाग्मटे तु श्रीवेष्टकस्थाने मध्चिष्ठष्ट पद्धते ॥ २॥

वेधं शिराणां वमनं विरेकं तिक्षस्य पानं रसभोजनश्च।

शीतान् प्रलेपान् परिपेचनञ्च पित्तोपसृष्टेष्वधरेषु कुर्ण्यात्॥ पित्तरक्काभिघातोत्थान् जलौकाभिरुपाचरेत्। पित्तविद्वधिवचापि क्रियां कुर्ण्यादेशपतः॥ शिरोविरेचनं धूम स्वेदः कवडधारणम्। इते रक्ते प्रयोक्षव्यमोष्ठकोपे कफात्मकः॥ निकद्वः सर्जिकात्तारः चारश्च यावश्क्रजः। चौद्रयुक्तं विधातव्यमेतच्च प्रतिसारणम्॥ ३॥

वेधमित्यादि - शिरा च श्रीष्ठसमीपगता वोध्या । तिकस्यत्यत सर्पिप इति शेष । शिर इत्यादि - सुश्रुतस्य । धूमोऽत्र वैरेचिनक कफयोग्यत्वाद् , प्वं कवलधारणिमिति कफहरद्रव्यक्कत , वाग्मटेऽप्युक्त 'धूमस्वेदनगग्रहूवा प्रयोज्याक्ष कफिक्कद '' इति ॥ ३ ॥

मेदोजे स्वेदिते भिन्ने शोधिते ज्वलनो हितः। प्रियद्गुतिफलालोधं सत्तौद्गं प्रतिसारणम्॥ हितञ्च त्रिफलाचूर्णं मधुयुक्तं प्रलेपनम्॥ ४॥

मेदोज इत्यादि--- ग्रुश्रुतस्य । शोधित इति मेदोहरखेन विशुद्धे । ज्वलन इति प्रिनिकर्म ॥ ४ ॥

सर्जरसकनकगैरिकघन्याकतैलघृतसिन्धुसंयुक्सम् । सिद्धं सिक्थकमधेरे स्फुटितोच्चटिते वर्णं हरति ॥ ४॥

सर्जेत्यादी-कनकगैरिकम् उत्कृष्टगैरिकमित्यर्थ । पतच सर्जरसादिचूर्णं सिक्थ-कान्त खोलके किञ्चिदमाबुर्णाकृत्य प्रलेपयोग्य पक्तवा अवतार्थ्यं अधेर धार-णीयम् ॥ ४ ॥

#### दन्तरोगचिकित्सा

शीतांदे हतरक्षे तु तोये नागरसर्षपान् । निःकाथ्य तिफलाञ्चापि कुर्य्याद्रगट्टपधारणम् । प्रियङ्गवश्च मुस्ता च त्रिफला च प्रलेपनम् ॥ ६ ॥

दन्तरोगाचिकित्सामाइ शोताद इर्त्यादि--- सुशुतस्य । नागरादित्रिफलान्त एको योग ॥ ६ ॥

कुष्ठं घात्री लोभ्रमन्दं समद्गा पाठा तिक्का तेजनी पीतिका च। चूर्णे शस्तं घर्षणं तद् द्विजानां रक्कस्नावं हन्ति कराड्रं रुजाञ्च॥७॥

कुष्टमित्यादि—तेजनी चवी। पीतिका हरिद्रा ॥ ७ ॥

चलदन्तस्थिरकरं कुर्याद्वकुलचर्वणम् । श्रार्त्तगलदलकाथगण्डूषो दन्तचालनुत् ॥ दन्तचाले हितं श्रेष्ठं तिलोग्राचर्वणं सदा । दन्तपुष्पुटके कार्य्यं तरुणे रक्षमोत्तणम् ॥ सपञ्चलवणनारः सन्तौद्वः प्रतिसारणम् । दन्तानां तोदहर्षे च वातद्वाः कवडा हिताः ॥ ८॥

चलेत्यादी--वकुलस्य फल दन्तस्थिरकरत्वात् । आर्त्तगलः हागडा इति ख्यातं, उम्रावचा, दन्तपुष्पुटक इत्यादि-सुश्रुतस्य । तरुण इत्युत्पन्नमान्ने रक्त-मोचण्यन्य प्रच्छनेन । चारा यवचार । वात्रष्टा कवडा इति उम्णतैलवृतसखेह-दरामूलकाथादय ॥ ८॥

दन्तचाले तु गराङ्क्षो वकुलत्वक्कृतो हितः। माचिकं पिष्पलीसर्पिर्मिश्रितं घारयेन्मुखे। दन्तग्रलहरं प्रोक्तं प्रधानमिद्मौषधम्॥ ॥ ॥

माज्ञिकिमित्यादौ—-पिप्पलीष्टतापेचया मधु तु बहुमात्र देयमिति बदन्ति, मधुन कर्पभेकम्, गन्यष्टत माषकाष्टकम्, पिप्पलीचूर्णं माषकचतुष्टयम्, आलोड्य मुखं धार्य्यम् ॥ ६ ॥

विस्नाविते दन्तवेष्टे व्रणन्तु प्रतिसारयेत् । लोधपत्तक्षमधुकलाचाचूर्णैर्मधूत्तरैः। गरङ्कषै चीरिणो योज्याः संचौद्रघृतशर्कराः॥ १०॥

विस्नावित इत्यादि — जलीकाप्रच्छनादिना रक्ते हते। वर्णामिति जलीकाप्रच्छ-नादिज जतम्। पत्तङ्ग रक्तचन्दनम्। चीरिय इति वटोडुम्बरादयः, एषा काथ चौद्रपृतरार्करा प्रचेपयीयाः॥ १०॥

> शैशिरे हतरक्षे तु लोधमुस्तारसाक्षनैः । सन्नौद्रैः शस्यते लेपो गण्डूषे न्तीरिणो हिताः॥ ११॥

शिशिर इति दन्तरोगविशेष, एव परिदरेऽपि ॥ ११ ॥

कियां परिदरे कुर्व्याच्छीतादोक्षां विचचाणः ।

संशोध्योभयतः कायं शिरखोपकुश ततः ॥ १२ ॥

क्रियामित्यादि—सुश्रतस्य । कायमुभयत सशोध्येति काय शरीरम्, उभ-यत इति वमनविरेचनाभ्या शिर्ध्य विशोध्येत्वन्वय । शिर शोधनश्च शिरोविरेचनेनैव । सशोध्य उभयत काय शिरेश्वेति प्रन्थ परिदरे उपकुशे च योजयन्ति, युक्तञ्चेतत् , यत परिदरो रक्तकफज श्रतयव कफप्रस्यनीक वमन पित्तप्रत्यनीकञ्च विरेचन दित-मेन, शिरोविरेचने युक्ते एव दि । कायामित्यत्र कार्य्यमिति पाठे शितादोक्ता कियां परिदरे कुर्यात् । उपकुशे तु वन्त्यमाग्यरक्तस्वावदि कार्यमिति क्षेयम् ॥ १ २ ॥

काकोह्रम्वरिकागोजीपत्रैर्विस्नावयेद्भिषक् । चौद्रयुक्तेश्च लवर्णैः सन्योपैः प्रतिशोधयेत् ॥ १३ ॥ गोर्ना शाह्योटक । लर्नणीरित पन्नमि ॥ १३ ॥

पिष्पस्य सर्पपा श्वेता नागरं नैचुलं फलम्। सुस्रोदकेन संगृह्य कवड तस्य योजयेत्॥ शस्त्रेण दन्तवैदर्भे दन्तमूलानि शोधयेत्।

ततः चारं प्रयुक्षीत क्रियाः सर्वाश्च शीतलाः ॥ १४ ॥

पिप्पल्य इत्यादी—निचुलफल हिज्जलफलम्। एते च व्यस्ता समस्ताश्च कवले योज्या। शोधयेदिति दन्तमूलानि शोधयेत्। श्रभिवातजेऽपि दन्तवैदर्भे शस्त्रेय दन्तमूलमासच्छेदनम् श्रभिवातदुष्टरककृतपाकेन शीर्यमासस्यापगमनार्थम् । जारप्रयोगोऽपीहाशोधितशेषपूर्तिमांसदूरीकरणार्थं तदनन्तरश्च शीतिकया चारकुपित-पित्तरकिनवीपणार्थं ताश्च नस्यगयद्यादय । उक हि वाग्मेट ''द्यार दवात्ततो नस्य गयद्यादि च शीतलम्" इति ॥ १४॥

उद्धृत्याधिकद्नतन्तु ततोऽश्चिमवचारयत्। किमिद्नतकवचात्र विधिः,कार्य्यो विजानता ॥ १४ ॥ व्द्धलत्यादि—ग्रुभुतस्य। श्रिश्चराष्ट्रोऽत्र रक्तादिस्रुतिनिपेषार्थम्। क्रिमिदन्तो दिविध श्रवलक्षलक्ष। तत्र यक्षल स उद्धार्यस्तदिधिरेवाश्रातिदिश्यते । उद्धार्थ-त्वेन समानलात् न त्वचलस्य, तस्यानुद्धार्य्यत्वात् स एव क्रिमिदन्ते उद्धरयदाद्दी युकौ । श्रिधदन्त पुनरचलेऽपि तिद्धिधानार्थिमिह क्रिमिदन्तकिवेध्यतिदेशलब्धयो-रप्युद्धरणदाहयोरिभधानम् ॥ १५ ॥

ख्रित्वाधिमांसं संज्ञोद्वेरैतेश्चूर्णैरुपाचरेत्।
पाठावचातेजवतीसर्जिकायावश्ककः॥
ज्ञोद्रद्वितीयाः पिष्पल्यः कवल्रश्चात्र कीर्तितः।
पटोलिनेम्बित्रफलाकषायाश्चात्र धावने॥
शिरोविरेकश्च हितो धूमो वैरेचनश्च य।
नाडीव्रण्हरं कर्म दन्तनाडीषु कारयेत्॥
यं दन्तमधिजायेत नाडी तं दन्तमुद्धरेत्।
ख्रित्त्वाधिमांसं शस्त्रेण यिद् नोपरिजो भवेत्॥
शोधियत्वा दहेचापि ज्ञारेण ज्वलनेन वा।
गतिर्हिनस्ति हन्वस्थिदशने समुपेज्ञिते।
तस्मात् समूलं दशनमुद्धरेद् भग्नमस्थि च॥ १६॥

छित्तेत्यादि—सुश्रुतस्य। तेजवती चवी। कवडमहोऽयम्। चौद्रद्वितीया पिप्पत्य इति चौद्रालोडिनपिप्पलीकवल । वैरेचिनकेधूमसाहचर्यात् शिरोविरेकेऽपि तीच्छोऽत्र बोध्य । यस्य दन्तस्य समीपे नाडी स्यात् त दन्त चलमचल वा शक्षेण दन्तावरक-मास छित्त्वा उद्धरेत्। यदि नोपरिजो भवेदित्युद्धरणस्यापवाद । अधोगतदन्तानुद्धरणे दोषानाह गतिरित्यादि—गतिनीडी इन्वस्थिकपे।लसमीपस्थि दारयति । दशने समुपेचिते सत्यनुद्धते सतीत्यर्थः । किंवा गतिहिनत्ति इन्वस्थिदशेन समुपेचिते इति पाठान्तरे दन्ते गतिरुपेचितेर्त्यर्थ । भग्नमस्थि चेति असम्यगुद्धृतदन्तस्य भग्न-शेषमस्थि चेत्यर्थ । किंवा गतिविशोधितहन्वस्थि भग्नास्थीत्युच्यते ॥ १६ ॥

उद्धृते तूत्तरे दन्ते शोि एतं सम्प्रसिच्यते ।
रक्ताभियोगात् पूर्वोक्ता घोरा रोगा भवन्ति च ॥
चलममप्युत्तरं दन्तमतो नापहरेद्भिषक् ।
कषायं जातीमदनकदुकास्वादुकएटकैः ॥
लोभ्रखदिरमञ्जिष्ठायष्ट्याह्मैश्चापि यत् कृतम् ।
तैलं संशोधनं तद्धि हन्याहन्तगतां गतिम् ॥

कषायं परत कृत्वा पिष्ट्वा लोधादिकरिकतम्। कराटकी मदनो योज्यः स्वादुकराटो विकद्भनः॥१७॥

उपरिजदन्तानुद्धरणे हेतुमाह जद्भत इत्यादि-जत्तर इत्युपरिजाते मम्प्र-सिच्यते श्रतिस्रवतीत्यर्थ । पूर्वोका इति शोणितवर्थनीयोका श्राचेपकादय कपायमित्यादि-सुश्रतस्य । जात्या पत्रम् , मदन मदनकण्टकम् , कटुका कटु-रोहिणी, स्वादुकण्टक विकङ्कत । ण्ते छत कपाय मुखधारणरूप काथ दन्त-गता गति इन्यात् तथा लोधादिभिश्च यष्ट्याहान्ते. कलमरूपेथेत् कृत तेल तदिष दन्तगतिं इन्यादित्यर्थ । श्रन्ये तु कपायमित्यत पर फ़ुत्वेति शेष , तेन जात्यादिभि कपाय करवा लोधादिकल्केन च कृत यत् तैलमिति व्याचचते । पृन्देनाप्यतुमतोऽ-यमर्थ व्यवहारोऽप्यनेनैव । धावन जातीमदनस्वाद्यकारद्वादरितिस्यीधक श्लोकार्क पठित्वा तदनन्तरमेव कपाय जातीमदन इत्यादिक पठित व्याचष्ट च । कपायमिति पद धावनमित्यनेन मम्बध्यते तेन जात्यादिद्रव्यचतुष्टयक्षपायेण धावन परेंग तु जातीमदनकादिद्रव्याष्टकेन कल्केन तेल साधनीयमिति । अतप्य तन्मता-नुयायिनाग्भटेऽपि धावन जातीमदनरादिरस्वादुक्तराटकैरित्युक्तत्वातः । अन्य तु कपायशब्द समासे विमिक्तरिष्टत पठन्ति तेपा मते कपायमामपूर्यकलम्, विस्ना-व्याध्यायाक्तशाहिन्यादिशोधनकपायद्रव्य वा, अस्मिन् पन्न कपायद्रव्यादिभि यष्ट्याहान्तैस्तेलपाक कपायद्रव्यान्तर्गताया अपि जात्या पृथगिभपान भागद्वय-अहणार्थामित्यपि चदन्ति ॥ १७॥

> सुखोष्णाः स्नेहकवडाः सर्पिपस्त्रैवृतस्य वा। निर्य्यूहाश्चानिलञ्चानां दन्तहर्पप्रमर्दना। स्नैहिकश्च हितो धूमो नस्यं स्नैहिकमेव च॥ १८॥

दन्तमूलगतिचिकित्सितमिभधाय दन्तगतन्याधिचिकित्सामाह सुखोण्या श्त्यादि— सुश्रुतस्य। स्नेहा सर्पिस्तैलवसामज्जानस्तेषा न्यस्तानां समस्तानाञ्च,कवला गयङ्घा सर्पिषस्त्रेवृतस्य वेति त्रैवृतसर्पिरपतानकचिकित्माया सुश्रुतेनोक्तम् । अनिलङ्गाना-मिनि मददार्वादिदशमूलादीना निर्य्युद्दः काथ ॥ १८ ॥

> श्रिहेसन् दन्तम्लानि शर्भरामुद्धरेद्भिपक्। लाकाचूर्येर्मधुयुतैस्ततस्तां प्रतिसारयेत्॥ दन्तहर्षिक्रयाञ्चापि कुर्यान्निरवशेपतः।

कपालिकाः कृञ्ञुसाध्या तत्राप्येपा क्रिया हिता ॥१६॥ श्रिहिसित्रत्यादि — मुश्रुतस्य । दन्तमूल्इिमया हि श्रभिवातजा दन्तनाडी दन्तवातश्च स्यात् । कृञ्ज्रमाध्येत्यनेन कपालिकाया शीव्रप्रानिकर्त्वच्यता स्चयित । एषा क्रियेति दन्तहर्षोक्षा कपालिकाया श्रपि वातजत्वात्, शर्करोकेत्यन्ये ॥ १६ ॥

जयेद्विस्नावणैः स्विन्नमचलं किमिद्नतकम् । तथावपीडेवीतमे स्नेहगण्डूषघारणैः ॥ भद्रदावीदिवर्णभूलेपै स्निग्धेश्च भोजनै । हिंगु सोष्णन्तु मतिमान् किमिदन्तेषु दापयेत् ॥२०॥

जयेद् विस्नावर्णेरिति विस्नावर्ण किमिद्पितरक्षस्य । श्रवपीडो नस्यभेद । वान्नेतरिति वातन्नद्रव्यकृतैरपीति चक्र । श्रन्ये तु श्रवपीडो यद्यपि वातहरस्तथापि स्थानानुरोधात् क्रियने, विस्नावर्णादिकुपितरक्षशान्त्यर्थे वातहर कर्म कर्त्तव्यमिति दर्शियतु वातन्नेरितिस्नेहगण्डूपादिविशेषण् कृत वाग्भेटऽप्येवमेवोक्षम् । हिंग्विरयादौ—सोष्णमिति ईपदुष्णम् ॥ २०॥

सञ्चर्यं दशनविधृतं दशनिक्रामिपातनं प्राहु । चलमुद्धृत्य वा स्थानं दहेतु श्रुपिरस्य वा॥ २१॥

बृहतीत्यादि — भूमिकदम्बोऽलम्बुष , पञ्चागुल एरएड । स्तुक् स्तुही, दुग्धी चीराइ । चलमित्यादि — सुश्रतस्य । वाशब्दोऽवधारे । स्थानिमिति उद्धृ-तदन्तस्य समवस्थानम् । शुधिरस्येति क्रिमिकृतिच्छिदस्य यावन्मात्र स्थान तावदेव दहेत् । स्थानशब्दोऽत्रापि योजनीय । भूरिदेशदुष्टौ समग्रस्थैव दन्तस्थानस्य दाह , एकस्थानदुष्टौ च शुधिरस्थानमात्रदाह इति ॥ २१॥

# विदार्यादितेलम्

ततो विद्।रीयण्ट्याह्न-श्रङ्गाटककशेरुभि । तैलं दशगुणं चीरं सिद्धं नस्ये तु योजयेत्॥ २६॥ तत इत्यादि—सप्टम्॥ २२॥

}

हनुमोक्ते समुद्दिष्टा कार्य्या चार्हितवत् क्रिया।
फलान्यम्लानि शीताम्बु रूक्ताक्षं दन्तधावनम्।
तथातिकठिनान् भक्यान् दन्तरोगी विवर्जयेत्॥ २३॥
सप्तच्छदार्कदुग्धाभ्यां पूर्णं क्रिमिदन्तनुत्।

जीवनीयेन दुग्धेन किमिरन्ध्रप्रप्रम् ॥२४॥
पूर्णं सूर्यक्तिरेण दन्तिकिमिविनाशनम् ॥२४॥
द्रोणपुष्पद्रव फेनमधुतैलसमायुतः।
किमिदन्तिवनाशाय कार्य्यं कर्णस्य पूरणम् ॥ २६॥
पटोलकहुकाव्योप-पाठासैन्ध्वभागिके ।
चूर्णैर्मधुयुतो लेप कवडो मधुतैलके ॥ २७॥
जिद्धारोगेपु कर्चव्यं विधानमिद्मौपधम् ।
मुस्तामधुकनिर्गुणडी-खिद्ररोशीरदाक्भिः।
समिश्चिष्ठाविडद्गैश्च सिद्धं तैलं हरेत् किमीन् ॥ ४०॥
ममुद्दिष्ट शित पद शिद्देते।कतममस्तिविध्धर्यमाह । दन्तवावन दन्तकाष्टम्

11 25-25 11

### जिह्वारोग-चिकित्सा

श्रोष्ठप्रकोपेऽनिलजे यदुक्तं प्राक् चिकित्सितम् । कएटकेष्वनिलोत्थेपु तत् कार्य्य भिषजा खलु ॥ २६ ॥ जिह्नारोगचिकिरमामाह श्रोष्ठत्यादि—स्रुशतस्य । कण्टको जारीति स्यातो

रोग ॥ २६ ॥

पित्तजेषु निघृष्टेषु नि स्रुते दुष्टशोणिते । प्रतिसारणगण्डूषा नस्यञ्च मधुरं हितम् ॥ कण्टकेषु कफोत्थेषु लिखितेष्वसृज स्तये । पिष्पल्यादिर्मधुयुतः कार्थ्यन्तु प्रतिसारणम् ॥ ३०॥

निष्टेप्टिष्विति शाखोटकादिपत्रै । मधुरमिति मधुरेण काकोल्यादिगस्वैनेव कृत नस्यादित्रयमित्याहु । लिप्तितेष्विति मण्डलामादिना । असुन चये स्रवस्था-निवराम इत्यर्थ । पिप्पल्यादिरिति पिप्पल्यादिग्ण ॥ ३०॥

> युद्धीयात् कवलान् वापि गौरसर्पपसैन्धवै । पटोलिनम्ववार्चाकु चारयृपैश्च भोजयेत् ॥ ३१ ॥

श्रेतस्यपसैन्यवाम्याञ्च कवल उष्णोदकेन कार्य । पटोलादिभिमोंजयेत, तथा चारयूपेश्च मोजयेदिति । चारप्रधानकुलत्थादियूप चारयूप । तदुक्त-'शुष्क्रमूलकुल-

त्थादियूषा चारोत्तरा हिता । कुलक विल्वपत्रच्च वार्त्तांकुश्चाराने हितम् ' इति ॥३१॥ जिह्वाजाङ्यं चिरजं माणकभस्मलवणतेलघर्षणं हन्ति । ईषत् स्तुक्तीराक्तं जम्बीराद्यम्लचर्वणं वापि ॥ ३२॥

जिह्नाजाड्य जीन्तिसशकामिति लोके । ईपत्रस्तुक्वाँरेण युक्त म्रचित यजन्र म्वीरादिकेशरचर्वणम् । चर्वणमित्यत्र वर्षणमित्यिप पाठ ॥ ३०॥

कर्कटाङ्ब्रिचीरपक-घृताभ्यक्नेन नश्यति ।

दन्तराब्दः कर्कटाङ्घिलेपाडा दन्तयोजितात् ॥ ३३॥ कर्कटेत्यदौ—चीरसाधनपरिभाषया कर्कटपादेन साधित यत् चीर तत्पक-ष्टताभ्यक्षेनेत्यर्थः । श्रभ्यङ्गग्च दशनप्रदेशे प्रचणमित्याहः । श्रन्ये तु कर्कटपादकल्क-चीराभ्या साधित यद्षृत तेनाभ्यङ्ग इत्याहु । दन्तशब्दो दन्तकडकडध्वनि ॥३३॥

> उपजिह्नान्तु संलिख्य ज्ञारेण प्रतिसारयेत्। शिरोविरेकगण्डूषधूमैश्चेनामुपाचरेत्॥ व्योषज्ञाराभयाविह्नचूर्णमेतत् प्रघर्षणम्। उपजिह्नाप्रशान्त्यर्थमेतैस्तैलं विपाचयेत्॥३८॥

उपनिह्नामित्यादि—सुश्रुतस्य । मलिख्येति शाखोटकादिपत्रेण । चारे-येति यवचारेण । उक्त हि वाग्मटे—उपनिह्ना परिस्नान्य यवचारेण धर्षयेत् । श्रन्य तु प्रतिमारणीयचारेयेत्याहु । प्रमिस्तैलमिति न्योषादिभि कल्करूपैरित्यर्थ । जल चतुर्गुणम् ॥ ३४ ॥

छिन्नां घर्षेद्रलशुर्ग्डां व्योषोग्राचौद्रासिन्धुजै । कुष्ठोषण्ववासिन्धु-कणापाठाप्तवैरिप । सत्तौद्रैर्भिषजा कार्य्यं गलशुरुट्या विघषेणम् ॥३४॥

क्षिन्नामित्यादौ — उमा वचा । कुष्ठोषणेत्यादौ — कषण मरिच, सव. कैवर्त्त मुस्तक । मिन्धुकणेत्यत्र सिन्ध्वरुणेति केचित् पठिन्त । अरुणा अतिविषा । वाग्-भटेऽप्युक्त — 'मारिचातिविषा पाठा वचाकुष्ठकुटन्नटम् । क्षिन्नाया सपद्धचौद्रैर्घर्षणम्' इति, एव सुअतेऽप्यायुर्वेदसारेऽपि ॥ ३५ ॥

उपनासान्यघो हन्ति गलग्रुगडीमशेषत । गलग्रुगडीहरं तद्वच्छ्रेफालीमूलचर्वगम् ॥३६॥ उपनामान्यभ इति—नासासमीपपती शिरान्यभ इत्यर्भ । नासाया शिरा- श्रवुविशति , तन्मध्ये नासिकाया श्रतिमन्निहिताश्रतस्र परिहार्या । उक्त हि सुश्रुते—" द्विद्वादशनामाया तामामीपनामिकाश्चतस्र परिहार्या." इति ॥३६॥

वचामितिवपां पाठां रास्नां कटुकरोहिणीम्।

नि काथ्य पिचुमदेश्च कवलश्च प्रयोजयेत्।

चारिसदेषु मुद्रेषु यूपाश्चाप्यशने हिताः॥३९॥

वचामित्याहि—मुश्रुतस्य। पिचुमदां निम्न । चारिसदेष्टिति शुक्तापामार्गादिचारोदकसिदेशु॥३०॥

#### कएठरोगचिकित्सा

तुरिडकेर्यभ्रेपे कुर्में सङ्घाते तालुपुप्पुटे। एप एव विधि कार्यों विशेष शस्त्रकर्मीण ॥३८॥

तुरिहकेर्यध्रुप इत्यादि — सुध्रुतस्य । कृर्म इति कच्छपरोगे । एप प्वेनि गलशुरुक्योक्तविधिविशेष । शस्त्रकर्मणीति तुरुढीकेरीताळुपुप्पुटी मेघी, अपरे छेचा इति शेष ॥ २८॥

तालुपाके तु कर्चव्यं विधानं पित्तनाशनम् ।

स्नेहस्वेदौ तालुशोपे विधिश्चानिलनाशन ॥३६॥

पित्तनाशन पित्तनणनाशनिम्त्यर्थ ॥ ३६ ॥

साध्यानां रोहिणीनान्तु हितं शोणितमोत्त्रणम् ।

छुईनं धूमपानञ्च गण्हूपो नस्तकर्म च ॥

वातिकीन्तु हते रक्ते लवण प्रतिसारयेत् ।

सुखोष्णान् स्नेहकवडान् धारयेचाण्यभीद्णश ॥

पत्तद्वशकरात्त्रीद्व पैत्तिकीं प्रतिसारयेत् ।

दालापरूपककाथो हितश्च कवलप्रहे ॥४०॥

माध्यानामित्यादि—द्वश्वतस्य । साध्यानामित्यादिना सिक्षपातनाया असा-

श्रागारधूमकटुकै कफजां प्रतिसारयेत्। श्वेताविडङ्गदन्तीपु सिद्ध तैलं ससैन्घवम्। नस्तकमीणि दातव्यं कवलञ्च कफोच्छुये॥४१॥

ध्याया व्यवच्छेद । लवगैरिति पश्चिम । पत्तद्ग रक्षचन्दनम् ॥ ४० ॥

श्रागारधूमेत्यादो-श्वता कटभी श्रपराजिता वा । श्वतादिसैन्धवान्त कल्क , कवलचेति श्वनादिसैन्धवान्तासिद्ध तैलेभव कवडमपीत्यर्थ ॥ ४१ ॥

> पित्तवत् साघयेद्वैद्यो रोहिर्णी रक्तसम्भवाम् । विस्नाव्य कर्ठशाल्कं साधयेत्तुरिडकेरिषत् । एककालं यवान्नञ्च भुक्षीत स्निग्धमल्पशः ॥४२॥

पित्तविति पित्तरोहिणोवित्यर्थे । विस्नान्येत्यत्र रक्तिमिति शेष । एतच पूर्वेण सम्बध्यते । साध्यत् तुण्डिकेरिविति तुण्डिकेर्यामिप गलशुण्डिकाविध्यति-देशात् साध्यत् गलशुण्डिविति वाच्ये तुण्डिकेरीविध्यतिदेशा नि शेषच्छेदनार्थं, गलशुण्डीवदत्त त्रिमागच्छेदो न कार्य्यं इति वोधयति ॥ ४२ ॥

> उपजिह्निकवचापि साध्येद्धिजिह्निकाम्। उन्नाम्य जिह्नामाकृष्य विद्यानाधिजिह्निकाम्। कुर्येन्मरुडलाग्रेस तीन्सोक्सैर्लवसादिभि ॥४३॥

हेवयेदित्यादि —वाग्मटस्य । तीच्णोष्णैर्लवणादिभिरित्यत्र उपाचरेदिति राष । श्रादिशन्दात् कवडादिपरिग्रह ॥ ४३॥

> एकवृन्दन्तु विस्नाव्य विधि शोधनमाचरेत् । गिलायुश्चापि यो व्याधिस्तञ्च शस्त्रेण साधयेत् ॥४४॥

एकवृन्दिमत्यादि — सुश्रुतस्य। विम्नान्यिति जलीकादिभी रक्ष विम्नान्यमित्यर्थ.। शोधनिमिति गलगतदोषशोधन प्रतिसारणशिरोविरेककवलादिक, तथा कायशोधनिझ वमनादिक, तस्यापि कायशोधनेन शिरोगतदोषस्यापि शोधकत्वात् । तञ्च शस्त्रेण माधयेदिति कठिनमल्पवेदनमपक्ष गिलायु छेदयेत् । पक्षन्तु भेदयेत् । पूर्याने सार-णार्थं ततो द्वित्रणीयोक्षविधिना शोधनादिरत्रापि लभ्यते ॥४४॥

श्रममस्थं सुपकञ्च भेदयेद्गलविद्गधिम्। कराठरोगेष्वसङ्मोत्तस्तीत्त्र्णनस्यादिकमं च। काथपानन्तु दार्वीत्वङ्निम्बतात्त्रेकलिंगजम्। हरीतकीकषायो वा पयो मान्तिकसंयुत ॥४४॥

श्चममस्थिमित्यादि—सुश्रुते । गलविद्राधिरय त्रिदोषविद्रधितुल्यत्वेनोक्षोऽपि चिकित्सितोपदेशात् साध्य इति श्चेय । श्रन्ये तु गलविद्रधेश्चिदोषविद्रधितुल्यत्वे नोक्तत्वेऽपि चिकित्साविधान कृच्छ्रमाध्यत्वे श्रेयम्। श्रयञ्च सर्वं गल न्याप्य समुत्थितो य इत्यमिधानेन मर्मन्यापकोऽपि गलगतममेशि मूलास्पदविरहादममं इत्युच्यते । किंवा श्रममंस्थिमिति कियाविरोषणम् । श्रगम्मीरत्वेन मर्माभ्यन्तरास्परीय यथा स्यात् तथा मदयेदित्यर्थ । सामान्यकण्ठरोगिचिक्तिसामाह कण्ठरोगिबित्यादि—वाग्मटस्य । वाग्मटं किंध पाने तु दावित्वह्निम्बतार्षकिक् ' इति पाठ । दार्वास्तक् , तार्षं रसाञ्चनम् ॥ ४४ ॥

कटुकातिविषादारुपाठामुस्तकिंगका । गोमूलकथिता पेया कएठरागविनाशना ॥४६॥ कडुकेत्यादि—स्पष्टम् ॥४६॥

# कालकचूर्णम्

गृहधूमो यवचार पाठा व्योषरसाक्षनम् । तेजोडा त्रिफला लौहचित्रकञ्चेति चूर्णितम् ॥ सचौद्रं धारयेदेतद् गलरोगविनाशनम् । कालकं नाम तच्चूर्णं दन्तजिद्धास्यरोगनुत् ॥ ४७ ॥ पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरे । सर्जिकाचारतुल्यांशैश्चूर्णोऽयं गएडरोगनुत्॥ ४८॥

कालकचूर्ये तेजोहा चवी, लेहि काललेहिचूर्यम् अगुरु वा । व्यवहारस्तु पूर्वेयेव । लेहिस्यांने लोशिमिति केचिए पठन्ति । अस्य योगस्य लेहिचूर्यरसाञ्चन-चूर्ययोगात् कृष्णत्वेन कालक इति सज्ञा, एव वद्यमार्यापीतकचूर्येऽपि मन शिला-दियोगात् पीतत्वेन पातकसङ्गा विधेया ॥ ४७—४८॥

## पीतकचूर्णम्

मन शिला यवद्वारो हरितालं ससैन्धवम् । दार्वीत्वक् चेति तच्चूर्णं मान्तिकेण समायुतम् ॥ मूर्चिञ्जतं घृतमगडेन कग्ठरोगेषु धारयेत् । मुखरोगेषु च श्रेष्ठं पीतकं नाम कीर्त्तितम् ॥ ४६॥

पीतकचूर्ये दावीत्विगिति पष्टीममास । मृच्छितमित्यालोडितम् । एतच्चूर्यं तथा कालकचूर्यं सर्वस्मिन्नेव मुखरेगि धार्य्यम् । अतएवोक्त चरके — 'योगराजन्नयः प्रोक्ता वात्तिपत्तकपापहा , इति । प्रत्येकमेव कालकादयास्त्रदोषहरा इति चक्र-व्याख्या ॥ ४६ ॥

यवाग्रजं तेजवर्ती सपाठां रसाञ्जनं दारुनिशां सकृष्णाम् । चौद्रेण कुर्याद् गुडिकां मुखेन तांधारयत् सर्वगलामयेषु ॥४०

यवाग्रजमिति—तेजवती ज्योतिष्मती, चवी इत्यन्ये । दारुनिशा दारु हरिद्रा ॥ ५० ॥

दशमूलं पिवेदुष्णं यूषं मूलकुलत्थयो । चीरेचुरसगोमूत्रदधिमस्त्वम्लकाक्षिके ॥ विद्ध्यात् कवलान् वीच्य दोपं तेलघृतेरिष ॥ ४१॥ दशमूलिमत्यादौ—मूल मूलकशुण्ठकम् । चीरेत्यादि—सुश्रुतस्य । चीरा- विभि: प्रत्येक यथादोष कवडा कार्यां, एव तैलघृतेरिष ॥ ४१॥

# चारगुडिका

पञ्चकोलकतालीशपत्रैलामरिचत्वचः।
पलाशमुष्ककत्तारयवत्ताराश्च चूर्णिता ॥
गुडे पुराणे कथिते द्विगुणे गुडिका कृताः।
कर्कन्धुमात्रा सप्ताहं स्थिता मुष्ककभस्मनि॥
कण्ठरोगेषु सर्वेषु धार्य्या स्युरमृतोपमाः॥ ४२॥

पञ्चकोलकेत्यादौ-पत्र तेजपत्र, त्वक् गुडत्वक् । सुष्कको घरटापारुली । श्रत्र समुदितचूर्णात् द्विगुणा गुड । कथित इति विद्वसयोगात् द्रवीभूते, कर्कन्धु-मात्रा श्रष्टमापकमाना ॥ ५२ ॥

> म्त्रस्वित्रां शिवां तुल्यां मधुरीकुष्ठवालकै । श्रभ्यस्य मुखरोगांस्तु जयेद्विरसतामपि ॥ ४३॥

मूत्रत्यादौ--शिवा हरीतकी, मधुरी मधुरिकैय । श्रम्यस्यन्निति मच्च विधया । विरमता वैरस्यम् ॥ ५३ ॥

वातात् सर्वसरं चूर्णैर्लावर्णे प्रतिसारयेत्। तैलं वातहरे सिद्धं हितं कवडनस्ययोः॥ ४४॥ वातादित्यादि—मुश्रतस्य। सर्वसरो मुखपाक.। लावणश्चूर्णैरिति सैन्थवः चूर्णे अन्य तु लवणा ज्योतिष्मती तद्भव लावणमित्याहु । निश्चलस्तु पञ्चलवण-चूर्णेरित्याह । वातहरे सिद्धमिति मद्रदावादिभिस्तु कल्ककाथरूपे ॥ ५४॥

पित्तात्मके सर्वसरे शुद्धकायस्य दिहिनः। सर्विपित्तहर कार्य्यो विधिमधुरशीतल ॥ ४४॥

शुद्धकायस्येति विरेकेण वमनेनापि, कफस्थानगतत्वेन पित्तस्यापि वमनाई-त्वाच । मधुरशीतल इति विशेषणार्थमुक्त ॥ ५५ ॥

प्रतिसारग्रग्रहूपान् धूम संशोधनानि च । कफात्मके सर्वसरे क्रम कुर्य्यात् कफापहम् ॥ ४६॥ प्रतिमारण इत्यादिना कफजमर्वमराचिकित्मामाह क्रम कुर्यात् कफापह-

मिति—श्रनुक्तकफापहमिति श्रनुक्तकफहरविधिसग्रहार्थमुक्तम् ॥ ५६ ॥

मुखपाके शिराभेद शिर कायविरेचनम्। कार्य्यन्तु वहुधा नित्यं जातीपत्रस्य चर्वणम्॥ ४७॥

मुखपाके शिरामेद इति—शिरामेदस्तु तालुनि श्रथोजिहिकाया वा कार्य्य । शिरोविरेचन कायविरेचनन्न वहुधा कार्य्यमिति योज्यम् । नित्यमिति तु परेख सम्बन्धते ॥ ५७ ॥

जातीपत्रामृताद्वाचायासदावीफलितिकै ।
काथः चौद्रयुत शीतो गएङ्क्यो मुखपाकनुत् ॥ ४८ ॥
जातीपत्रेति—जाती मालती, तस्या पत्रम्, श्रमृता गुडूची, यासे। दुरालमा,
दावीं दारहरिद्वा । यासस्थाने पाठेति केचित् पठन्ति ॥ ५८ ॥

कृष्णुजीरककुष्ठेन्द्रयवाणां चूर्णतस्त्र्यहात् । मुखपाकत्रणुक्केददौर्गन्ध्यमुपशाम्यति ॥ ४६ ॥

कृष्णजीरकेत्यादि—स्पष्टम् ॥ ५६ ॥

रसाञ्जनं लोधमधामयञ्च मन शिला नागरगेरिकञ्च। पाठा हरिद्रा गजपिष्पली च स्याद्धारणं त्तौद्रयुतं मुखस्य ॥६०

रसाञ्चनभित्यादी—नैरिक त्वर्णगरिकम् ॥ ६० ॥ पटोलिनस्वजस्व्वास्त्रमालतीनवपस्नवा । पञ्चपस्नवजः श्रेष्ठ कपायो मुखधावने ॥ ६१ ॥ पटोलेत्यादि--पटोलादीना पल्लवा ॥ ६१ ॥

पञ्चवत्ककषायो वा त्रिफलाकाथ एव वा।
मुखपाकेषु सत्तौद्रः प्रयोज्यो मुखधावने ॥
स्वरसः कथितो दार्ब्या घनीभूतो रसिक्रया।
सत्तौद्रा मुखरोगासुग्दोषनाडीव्रणापहा ॥ ६२ ॥

पञ्चवल्केत्यादौ—सर्चाद्र इत्युभयत्रापि सम्बध्यते । स्वरस इत्यादि—अय थोग श्रास्ये धार्यः । वाग्भेट तु गैरि क्षमप्यत्र योगे पद्धते, यथा—" स्वरस कथितो दार्व्या घनीभूत संगैरिक । श्रास्यस्य समधुर्वनत्रपाकनाडीव्रणापद्द " शित ॥ ६२ ॥

सप्तच्छदोशीरपटोलमुस्तहरीतकीतिक्षकरोहिणीभिः। यष्ट्याह्रराजद्रमचन्दनैश्च कार्थं पिवेत् पाकहरं मुखस्य ॥६३॥

सप्तच्छिते—सप्तच्छद शारदी, तिकरोहिणी कडकी, राजदुम श्रारमध ॥६३॥ पटोलशुएठीत्रिफलाविशालात्रायन्तितिक्काद्विनिशानतानाम्। पीत कपायो मधुना निहन्ति मुखे स्थितश्चास्यगदानशेषान् ६४ पटोलत्यादौ—त्रायन्ती त्रायमाणा ॥ २७॥

> कथितास्त्रिफलापाठामृद्धीकाजातिपल्लवाः। निषेव्या भक्तगीया चा त्रिफला मुखपाकहा॥ ६४॥

कथिता रत्यादी—निषेण्या इति पानगयङ्गुषाभ्यामुपयोज्या इत्यर्थ. । भच्नणीयिति परेण सम्बध्यते; तेन लेहादिविषया त्रिफला भच्नणीया वेत्यर्थ. ॥६५॥

तिला नीलोत्पलं सिंपः शर्करा चीरमेव च। सत्तौद्रो दग्धवक्त्रस्य गर्ग्डूषो दाहपाकनुत्। तैलेन काञ्जिकनाथ गर्ग्डूषश्चूर्णदाहहा॥ ६६॥

तिला इत्यादि---एतैर्गयडूप इत्यर्थ । सन्नोद्रा इति प्रत्येकममी सन्नौद्रा योगा इति निश्चल । दग्धवक्त्रस्येति शम्बूकराङ्गचूर्णादिनेत्यर्थ ॥ ६६ ॥

> धनकुष्ठैलाधान्यक-यष्टीमध्वेलवालुकाकवड । वद्नेऽतिपूतिगन्धं हरति सुरालगुनगन्धञ्च ॥ ६७॥

धनकुंग्रेलेत्याहि-योगमत्र केचित् पठन्ति, तदयुक्तम् , वृष्याधिकारे श्रस्य योगन्य बच्यमाखत्वात् । निश्चलेन तु श्रमादुभयत्राय योग पठिनो व्याख्यातश्च ॥६०॥

### महासहचरतेलम्

तुलां धृतां नीलसहाचरस्य द्रोणेऽम्भन संश्रपयेद् यथावत् । पूत्वा चतुर्भागरसे तु तैलं पचेच्छनैरईपलप्रयुक्ते ॥ कल्कैरनन्ताखदिरेरिमेटजम्ब्याम्रयष्टीमधुकोत्पलानाम् । नत्तैलमाश्वेव घृतं मुखेन स्थैर्यं द्विजानां विद्घाति सद्य ॥६=॥

तुलामित्यादि—नीलमहाचरो नीलिभिष्टी । चतुर्मागरम इति चतुर्थमोग-रमे । श्रनन्ता श्रनन्तमूलम् ; दरिमेटो विट्खदिर , तदमावे खदिरमेव दिगुण गृहन्ति ॥ ६८ ॥

# इरिमेदाद्यं तैलम्

इरिमेद्त्वक्पलशतमिनवमापोथ्य खर्डश कृत्वा।
तोयाढकंश्चतुर्भिर्नि काथ्य चतुर्थशेषेण्॥
काथेन तेन मितमांस्तैलस्यार्डाढकं शनैविंपचेत्।
कल्कैरलसमार्श्वमिखिष्ठालोध्रमधुकानाम्॥
इरिमेद्खिष्टरकद्फललाचान्यश्रोधमुस्तस्वमेलाकर्प्रागुरुपद्मकलवद्गककोलजातीफलानाम्॥
पनंगगैरिकवराद्गजकुसुमधातकीनाञ्च।
सिद्धं भिपिग्वद्ध्यादिृदं मुखोत्थेषु रोगेषु॥
परिशीण्दन्तविष्टिधि-शेशिरशीताद्दन्तहर्पेषु।
किमिद्न्तदालनचिलतप्रहृप्रमांसावशीर्थेषु।
मुखदौर्गन्ध्ये कार्थ्य प्रागुक्केष्वामयेषु तैलिमद्म् ॥३२॥
इरिनेदलिलादां—पंद्यीन पद्मकाष्टम्, जाती नातीकोष, कल जातीफलन्,

इरिनेदलगिलादां—पद्मान पद्मकाष्टम्, जाती जातीकोप , फल जातीफलम् , पत्तद्व रक्तवन्दनम् , वराद्व गुडलक् , गजकुमुम नागकेशरम् । परिशीर्यदन्ती इन्तरीगमेद । विद्वधिर्गलविद्वधि । दालनी दालनवद्यधायीगात् । प्रहृष्टमासोऽधि-मास । अवशीर्योऽनगीर्यमाम ॥ ६६ ॥

# लाचाद्यं तैलम्

तैलं लाज्ञारसं ज्ञीरं पृथक् प्रस्थं समं पचेत्।
चतुर्गुणेरिमकाथे द्रव्येश्च पलसमिते ॥
लोधकदफलमिश्चष्टा-पद्मकेशरपद्मकेः।
चन्दनोत्पलयष्ट्याद्वेस्तैलं गर्ग्डूपधारणम् ॥
दालनं दन्तचालञ्च हनुमोक्तं कपालिकाम्।
शीतादं पूतिवक्त्रञ्च श्रद्याचे विरसास्यताम्॥
हन्यादास्यगदानेतान् कुर्याद्दन्तानिप स्थिरान् ॥ ७०॥
तैलमित्यादी—लाज्ञाया रस काथ, हरिमकाथ ,हित हरिमेदकाथ , षड्गुणोऽय पाक । हनुमोज्ञो दन्तरोगिवशेष । उक्त हि सुश्रते—'वातेन तैस्तैर्मावैस्तु
हनुसन्धौ विषट्टिते । हनुमोज्ञ हति हेतो व्याधिर्भेद्धतलक्षण 'हित । श्रयम्च दन्त-

देशसामीप्यात् दन्तपीडाजनकत्वाच दन्तरोगमध्ये सुश्रुतेन पठितः। चन्द्रोट हर्तु-मोच इत्यपपाठः ॥ ७०॥ वकुलाद्यं तैलम्

वकुलस्य फलं लोधं वज्रवल्ली कुर्गटकम् । चतुरहुलबब्बोल-वाजिकर्गेरिमाशनम् ॥ एषां कषायकल्काभ्यां तैलं पकं मुखे धृतम् । स्थैर्य्य करोति चलतां दन्तानां धावनेन च ॥ ७१ ॥

वकुलाचे-वजनक्षी श्रस्थिमहार , कुरण्टको नीलार्मण्टी, चतुरगुल श्रार-ग्वध ,वब्दोल तुलसी वाबुइ हित ख्यात ,वाजिकर्णे शालभेद , श्रशन पीतशाल , चलतामिति षष्ठीवहुवचनम् ॥ ७१ ॥

# सहकारगुडिका

प्लालतालवानिकाफलशितकोष-कोलद्विकानि खदिरस्य कृते कषाये। तुल्यांशकानि दशभागमिते निधाय प्रोद्भिन्नकैतकपुटे पुटवद्विपाच्य॥ धनकुष्ठेलेत्यादि-योगमत्र केचित् पठन्ति, तदयुक्तम् , वृष्याधिकारे अस्य योगम्य वद्यमाणुत्वात्। निश्चलेन तु अमादुभयत्राय योग पठितो व्याख्यातश्च॥६७॥

### महासहचरतैलम्

तुलां घृतां नीलसहाचरस्य द्रोणेऽम्भसं संश्रपयेद् यथावत् । पूत्वा चतुर्भागरसे तु तैलं पचेच्छनेरर्द्धपलप्रयुष्ते ॥ कल्कैरनन्ताखदिरेरिमेदजम्ब्बाम्रयष्टीमधुकोत्पलानाम् । तत्तैलमाश्चेव घृतं मुखेन स्थैच्ये द्विजानां विदधाति सद्य ॥६८॥

तुलामित्यादि—नीलमहाचरो नीलिमियटी । चतुर्मागरम इति चतुर्थमोग-रमे । श्रनन्ता श्रनन्तमूलम् ; इरिमेटो विट्खदिर , तदमावे खदिरमेव द्विगुण गृह्वन्ति ॥ ६८ ॥

### इरिमेदाद्यं तैलम्

इरिमेद्द्वक्पलशतमभिनवमापोथ्य खएडश कृत्वा।
तोयाढकैश्चतुर्भिनिं.काथ्य चतुर्थशेषेण्॥
काथेन तेन मितमांस्तैलस्यार्द्धाढकं शनैर्विपचेत्।
करकेरच्समांशैर्मिश्चष्ठालोध्रमधुकानाम्॥
इरिमेदखदिरकद्फललाचान्यशोधमुस्तस्दमेलाकर्पूरागुरुपद्मकलवङ्गककोलजातीफलानाम्॥
पत्तंगगैरिकवराङ्गजकुसुमधातकीनाञ्च।
सिद्धं भिपग्विद्ध्यादिदं मुखोत्थेषु रोगेषु॥
परिशीर्णदन्तविद्वधि-शैशिरशीताददन्तहर्पेषु।
किमिदन्तदालनचिलतप्रहृप्रमांसावशीर्णेषु।
मुखदौर्गन्थ्ये कार्य्य प्रागुक्तेष्वामयेषु तैलिमदम्॥३२॥
इरिमेदलिगलादौ—पंग्नित पद्मकाष्टम्, जाती जातीकोष, फल जातीफलम्,
पच्छ रक्तचन्दनम्, वराङ्ग गुडलक्, गजकुस्चम नागकेशरम्। परिशीर्णदन्तो।
दन्तरोगमेद । विद्विभंतविद्विध । दालनो दालनवद्यथायोगात्। प्रहृप्टमासोऽधिमास । श्रवशीर्थोऽनशीर्थमाम्॥ ६६॥

# लाचाद्यं तैलम्

तैलं लाचारसं चीरं पृथक् प्रस्थं समं पचेत्।
चतुर्गुणेरिमकाथे द्रव्येश्च पलसम्मिते ॥
लोधकद्फलमिक्षष्ठा-पद्मकेशरपद्मकेः।
चन्दनोत्पलयष्ट्याह्नैस्तैलं गराङ्क्षधारणम् ॥
दालनं दन्तचालञ्च हनुमोचं कपालिकाम्।
शीतादं पूतिवक्त्रञ्च श्रद्यां विरसास्यताम्॥
हन्यादास्यगदानेतान् कुर्योद्दन्तानिप स्थिरान्॥ ७०॥
तैलिमत्यादौ—लाचाया रस काथ, इरिमकाथ, इति इरिमेदकाथ, षढ्गुणोऽय पाक । हनुमोचो दन्तरोगिविशेष । उक्त हि सुश्रते—'वातेन तैस्तैर्भावेस्तु
हनुसन्थी विषट्टिते। हनुमोच इति हेयो व्याधिविद्धतलच्य ' इति । अयद्य दन्तदेशसामीप्यात् दन्तपीडाजनकत्वाच दन्तरोगमथ्ये सुश्रतेन पठित । चन्द्राटे हनुमोच इल्पपाठः ॥ ७०॥

# वकुलाद्यं तैलम्

वकुलस्य फलं लोघ्रं वज्रवल्ली कुर्गटकम् । चतुरङ्गुलवव्वोल-वाजिकर्गेरिमाशनम् ॥ एषां कषायकल्काभ्यां तैलं पक्कं मुखे धृतम् । स्थैर्यं करोति चलतां दन्तानां धावनेन च ॥ ७१ ॥

वकुलाधे-वजन्न श्री श्रस्थिसहार , कुरण्टको नीलार्मण्टी, चतुरगुल श्रार-ववध ,वब्नोल: तुलमी वाबुर रति ख्यात ,वाजिकर्ण शालमेदः, श्रशन पीतशाल , चलतामिति षष्ठीवहुवचनम् ॥ ७१ ॥

# सहकारगुडिका

प्लालतालवानिकाफलशीतकोष-कोलद्विकानि खदिरस्य कृते कपाये। तुल्यांशकानि दशभागिमते निघाय प्रोद्भिन्नकैतकपुटे पुटवद्विपाच्य॥ प्रागंशतुल्यशशिनाथ तदेकसंस्थं पिष्ट्वा नवेन सहकाररसेन हस्तौ। लिप्त्वा यथाभिलपितां गुडिकां विदध्यात् स्त्रीपुंसयोर्वदनसौरभवन्धुभूताम्॥ ७२॥

प्लेत्यादि — लताकस्तूरी, लविनका तवक , फल जातीफलम् , शीत कर्पूरम् , कोषा जातीकोष , कोल कक्के।लम् , दिकमगुरु । एलादीना तुल्याश , एपा मिलिताना एकमागोपचया दशभागपिरिमिते खिदरकाथ इत्वर्थ । शोदिन्न केतकपुट इति विकासितकेतकपत्रकृतपुटके खिदरकाथाले। दिन्तूर्य निधाय पुट-विधिना मनाक् विपाच्य तत शोतीकृत्य प्रथमगृष्टीतकपूरमानवदपर्श्व तद्गृष्टीत्वा तेन पक्षचूर्योपिरहेन सह एकीकृत्य पिष्टुकत्र स्थाप्यम् । ततोऽभिनवच्युतवृन्तानिर्योमेन इस्ती लिप्ता यथेष्ट गुहिका कार्या इति ॥ ७२ ॥

### स्वल्पखदिरवाटिका

खिद्दर्य तुलां सम्यग् जलद्रोणे विपाचयेत् । शेष ऽप्रमागे तत्रेव प्रतिवापं प्रदापयेत् ॥ जातीकपूरपूगाणि कक्कोलकफलानि च । इत्येपा गुडिका कार्या मुखसौभाग्यवर्द्धिनी । दन्तौष्ठमुखरोगेषु जिह्याताल्वामयेषु च ॥ ७३॥

खिदरसेत्यादौ — जाती वातिकीष , पूर्ग पूराफलम् , फलाजि जातीफलाति एषा चूर्णांना प्रत्येक पलम् , वस्यमायखिदरविकाया पलाशिकानीतिदर्शनाय । अन्ये तु वस्यमायखिदरविकाया तुलाश्रयनिष्पाद्यकाथे यावच्चूर्णमुक्त तावतो रिलि-तचूर्णांत तृतीयमार्गनेपा मिलितानां आह्यम् , एतत्काथस्य तुलैकनिष्पाद्यत्वादित्याहु. ॥ ७३॥

ष्टहत्सिदिरवाटिका
गायत्रिसारतुलयेरिमवल्कलानां
सार्स तुलायुगलमम्बुघटैश्चतुर्भि ।
नि काथ्य पादमवशिष्टसुयस्त्रपूतं
भूयः पचेदय शनैर्मृदुपाचकेन ॥

तस्मिन् घनत्वमुपगच्छति चूर्णमेषां श्रद्णं चिपेच कवडप्रहमागिकानाम्। एलामृणालसितचन्दनचन्दनाम्बु-श्यामातमालविकषाघनलोहयष्टी॥ लज्जाफलत्रयरसाञ्जनघातकीभ-श्रीपुष्पगैरिककटङ्कटकट्फलानाम् । पद्माह्नलोध्रवटरोहयवासकानाम् मांसीनिशासुरभिवल्कलसंयुतानाम्॥ **फक्कोलजातिफलकोषलवङ्गकानि** चूर्णीकृतानि विद्धीत पलांशिकानि। शीतेऽवतार्थ्य घनसारचतु पलञ्च चिप्त्वा कलायसदशीर्वेटिका प्रकुर्यात्॥ श्रुष्का मुखे विनिद्दता विनिवारयन्ति रोगान् गलौष्ठरसनाद्विजतालुजातान्। कुर्य्युर्भुखे सुरभितामरुचिश्च हन्युः स्थैर्य्य परं दशनगं वदनापद्धत्वम् ॥ ७४ ॥ इति मुखरोग-चिकित्सा॥

गायत्रीत्यादौ — गायत्रिसार खिदरसार , तस्य तुलया सार्कं इरिमेदवल्कं लाना विट्खदिरत्वचा तुलायुगलिमत्यर्थं, घटो द्रोणः । कवडग्रहमागिकानामिति प्रत्येक कर्षमानानाम् । श्रम्यणलमुशीरम् , चन्दन रक्षचन्दनम् , श्रम्यु वालकम् , श्यामा प्रियगु , तमाल तमालपत्रम् , विकषा मिश्रष्ठा, घन मुस्तकम् , लौहम- गुरु, यष्टी यष्टिमधु , लजा वराहकान्ता, इमो नागकेशरम् , श्रीपुष्प पुग्वरीकम् , कटद्भटो दारुहरिद्रा, पद्माह्म पद्मकाष्ठम् , सुरिभि शहकी । वेष्टक कुन्दुरिति ख्यातम् , राक्षेत्यन्ये, मूर्वेत्यपरे । वल्किमिति पाठे वल्कल गुडत्वक् । जातीफलकीष इति जाती- फल जातीकोषञ्च, घनसार कर्पूरम् । श्रपडल जाड्यराहित्यम् ॥ ७४॥

इति मुखरोग-चिकित्सा विवृति.।

# अथ कर्णराग-चिकित्सा

कपित्थमातुलुद्गाम्ल-श्यद्गवेररसे श्रुभैः। सुखोष्णै पूरयेत् कर्ण कर्णश्रूलोपशान्तये॥१॥

मुखरागेषु जिह्नाश्रयरागा उक्ता , जिह्ना चेन्द्रियाधिष्ठानमत इन्द्रियाधिष्ठान-गतरोगचिकित्साप्रसङ्गात् कर्णरोगचिकित्मितमुच्यते । किपत्थेत्यादि—सुश्रुतस्य । किपत्थस्य फलम् , पर्ने मानुज्ञद्गस्यापि, श्रम्लेति विशेषणात् सुपक्षफल बाह्मम् । बाशब्दस्य किपत्थादिभिरन्वय पते च त्रयो योगा ॥ १॥

> श्टइवेरश्च मधु च सैन्धवं तैलमेव च। कदुण्णं कर्णयोदेंयमेतद्वा वेदनापहम्॥२॥

श्वक्षेरिमित्यादि—श्वक्षेवेरस्वरसमापकचतुष्टयम्, मधुनो मापकद्रयम्, सैन्ध-वरिक्तकामेकाम्, तैल तिलज माषकद्वय गृद्दीत्वा सर्वमालोड्य कदुष्ण कृत्वा कर्णे पूरयेत्॥ २॥

> लग्चनार्द्रकशिष्र्णां सुरङ्गया मूलकस्य च । कदल्या स्वरसः श्रेष्ट कदुष्ण कर्णपूरणे॥ समुद्रफेनचूर्णेन युक्त्या वाप्यवचूर्णयेत्॥३॥

लशुनेत्यादि—सुश्रुतस्य । सुरङ्गो रक्षशोमाञ्जनम् , कदली कदलीवागुडा, तस्याः स्वरस । एते च लशुनस्वरसादयो व्यस्ना समस्ता वा वोध्या । पूर्वोक्तस्याप्याद्वंकरसस्यापि पुनरुपादान समस्तपद्वे सप्रयोजनेमव । युक्त्येति प्रथम तैलेन कर्णं अद्ययित्वा ततोऽवचूर्णनमिति युक्त्यर्थ इति केचित् । अन्य तु शक्तेन कर्णं पूर्वित्वा ततो मसुद्रफेनेनावचूर्णनमिति युक्त्यर्थमाहु , युक्तद्वेतत्, यदाह वाग्मट — युक्तेन पूर्वित्वा सिन्धुफेनेन वावचूर्णयेत् ।" अत्तप्व ससुद्रफेनेयुक्तेनिति पाठान्तर सुश्रते केचित् पठन्ति, तन्मते मसुद्रफेनयुक्तेनिति पद पूर्वेक्तशुक्तविशेषणम्, सुश्रते हि एतस्मात् पूर्वे 'कर्णां कोष्योन शुक्तेन पूर्वेत् कर्णश्रुक्तिन " इत्युक्तम् । अर्थित्व पद्येत्व अस्य मात्रया इत्यर्थः ॥ ३॥

त्रार्द्रकस्ट्यावर्त्तरोभाञ्जनमूलकस्वरसा । मधुतैलसैन्धवयुता पृथगुक्ता कर्णग्रुलहरा ॥ ४॥ भार्द्रकेत्यादी—रोभाञ्जन रोभाजनमूलम् , मूलकन्तु मूलककन्दम् । एते कदुम्पीकृत्योपयोज्या । श्रतएव पृथगुक्ता इत्यत्र पृथगुष्णा इति पाठान्तर केचित् पठन्ति ॥ ४ ॥

शोभाञ्जनकानिर्धासितलैतेलेन संयुत ।
व्यक्तोष्ण पूरणः कर्णे कर्णश्रूलोपशान्तये ॥
श्रष्टानामिष मूत्राणां मूतेणान्यतमेन च ।
कोष्णेन पूरयेत् कर्णें कर्णश्रूलोपशान्तये ॥ ४ ॥
शोभाञ्जनेत्यादि—शोभाञ्जनिर्यासः शोभाञ्जनस्वरम ॥ ४ ॥
श्रश्यत्थपत्रखल्वं वा विधाय वहुपत्रकम् ।
तैलाक्तमद्गारपूर्णं विद्ध्यात् श्रवणोपिर ॥
यत् तैलं च्यवते तस्मात् खल्वादद्गारतापितात् ।
तत् प्राप्तं श्रवणस्रोतः सद्यो गृह्णाति वेदनाम् ॥ ६ ॥
श्रश्यत्यादि—सुश्रतस्य । श्रश्यत्यपत्रैर्वहुभिस्तेलाकैश्चुह्निका कृत्वा सरन्ध्रा
कृत्वा तदुपीर ज्वलदद्गार विन्यस्य कर्णयोष्पिरे धारयेत् , तत पतिततैलेन कर्णपरणम् । पिचानुवन्धं त सर्थियं तैलेस्थाने विदेहस्वादात् ॥ ६ ॥

श्रर्कपत्रपुटे दग्धस्तुहीपत्रभवो रस । कदुष्ण पूरणादेव कर्णश्रुलीनवारण ॥ ७॥

श्रर्कपत्रेत्यादि—स्तुद्दीपत्रमर्कपत्रेण वेष्टियत्वा तदनु स्तुद्दीपत्र दग्ध्वा चोद यित्वा तद्दमेन कर्णयो पूरणमित्युपदेशः ॥ ७ ॥

# दीपिकातैलम्

महत पश्चमूलस्य काएडान्यप्रांगुलानि च।
सौमेणावेण्ट्य संसिच्य तैलेनादीपयेचतः॥
यत् तैलं च्यवते तेभ्य सुखोण्णं सम्प्रयोजयेत्।
क्षेयं तदीपिकातैलं सद्यो गृह्वाति वेदनाम्॥
पवं कुर्योद्भद्रकाष्टे कुष्टे काष्टे च सारले।
मतिमान् दीपिकातैलं कर्षश्रलनिवारणम्॥ =॥

महत इत्यादि--- मुश्रुतस्य । पन्नमूलस्थेति विल्वादीनामन्यतमस्य । त्रप्टा-

गुलानीति अग्रभागे अष्टागुलानि व्याप्य चैमिया वेष्टन कार्य्यमित्यर्थ । तेन तत्-काष्ठमष्टागुलाधिक कार्य्यम् । वृद्धास्तु अष्टादशागुलमिति पञ्चमूलकाष्ठ गृहीत्वा तस्याग्रमागेऽष्टागुल व्याप्य तैलाक वस्त्र बद्ध्वा प्रज्ज्वाल्य ततो गलिततेलेन कर्य-पूर्य कुर्वान्त । स्तल्पवाग्भटे तु अष्टागुलादिपरिमाया नोक्तम्, यथा—" महत पञ्चमूलन्य काष्ठात् चोमेया विष्टितात् । तैलिसिकात् प्रदीपाश्रात् सेष्ट मद्योहजाहर ' दति ॥ = ॥

श्चर्कस्य पत्र परिणामपीतमाज्येन लिसं शिखिनावतप्तम् । श्चापीड्य तोयं श्ववेण निषिक्षं निहृन्ति शूल बहुवेदनश्च ॥६॥ श्वर्कत्येत्यादी—परिणामपीतिमिति । कालप्रकर्षेण पाकवशात् पीतवर्णे शिखिना बह्विना श्रवतप्त स्विन्नमित्यर्थ । तोयिमिति रस बहुवेदनिति नानाविध-

तादमेदादिवेदनासाहतम् ॥ ६ ॥

तीवश्रलान्विते कर्णे सशब्दे क्लेदवाहिनि। चस्तमूत्रं चिपेत् कोष्णं सैन्धवेनावचूर्णितम्॥ वंशावलेखसंयुक्ते मूत्रे वाजाविके भिषक्। तैलं पचेत् तेन कर्णं पूरयेत् कर्णश्रलिन ॥ १०॥

वशेत्यादि—सुश्रतस्य । वशावलेखो वशावलेखनी, तस्या कल्कम्, मूत्रे चाजाविक इति आजे वा आविके वा मूत्रे पचेदित्यर्थ । यदाह—" वशा-वले त्यक्लेन मूत्रे वाजे तथाविके । पचेत् तैल रुज शान्ये कर्णयो पूर्ण भिप्क्" इति विदेहवचनात् इतमप्यनेन विधिना पक्तन्यम् ॥ १०॥

हिंगुतुम्बुरुशुराठीभि साध्यं तैलन्तु सार्पपम्। कर्णश्ले प्रधानन्तु पूरणं हितमुच्यते ॥ ११ ॥ हिंद्गित्यादौ—साध्यमिति जल चतुर्गुरोगन ॥ ११॥

# चारतैलम्

वालमूलकश्चरठीनां चारो हिंगु सनागरम्। शतपुष्पा वचा कुष्ठं दारु शिष्ठु रसाञ्जनम्॥ सौवर्चलं यवचार सर्जिकोद्भिदसैन्धवम्। भूर्जेप्रन्थिविडं मुस्तं मधुश्कक्तं चतुर्गुणम्॥ मातुलुक्षरसश्चेव कदल्या रस एव च।
तैलमेमिविपक्षन्यं कर्णश्चलहरं परम् ॥
वाधिय्यं कर्णनादश्च पृयास्रावश्च दारुणः।
पूरणादस्य तैलस्य किमयः कर्णसंश्रिताः ॥
चित्रं विनाशं गच्छन्ति कृष्णात्रेयस्य शासनात्।
चारतैलमिदं श्रेष्ठं मुखदन्नामयापहम् ॥
मधुप्रधानं शुक्रन्तु मधुश्चक्तं तथापरम्।
जम्बीरस्य फलरसं पिष्पलीमूलसंयुतम् ॥
मधुभाग्डे विनिचिष्य धान्यराशौ निधापयेत्।
मासेन तज्ञातरसं मधुशुक्तमुटाहतम् ॥ १२॥

वालमूलकेत्यादी—मधुमुक चतुर्गुणिमिति मध्यलिक शुक्त मधुमुक्तन् । एतेन प्रत्य त्यञ्जलतीयन इत्युक्तस्य मधुरिहतमुक्तस्य नियेष । यहरान्तु यन्मस्त्वादि भुनी भायङ इत्यादिनोक्तस्य, तथा जन्नीरस्य फलिमत्यादिना भनन्तरमेव वन्यमायस्य वा रेयन् । एनदेव मधुप्रधानं मुक्तिमित्यादिना वन्यिति । श्रन्य तु मित्रिति च्छेदः, तेन मधुन कन्नस्त्वम्, मुक्तस्य चतुर्गुरात्वेञ्जत्यर्थः। अपरे तु मधु चतुर्गुणं मुक्तञ्च चतुर्गुरानित व्याचवते । एनन्मनद्वयमि नोपपधते, म्मानतन्त्रे जन्कर्रो तु मधुनोऽप्य-पाठत्वात् । मातुलुङ्ग-कदलीवापुरान्तरसौ तु तैलसमौ ज्वक्तर्णसवादात्, अतः पद्गुरा पाकः। अन्ये तु वाग्मद्रमंवादात् मातुलुङ्गद्रकदलीत्वरन्योः प्रत्येकं चतुर्गुणत्माद्वः, अतो हि मधुमुक्त चतुर्गुण मातुलुङ्गरस्य तद्वत्कदलीरन्येत्यस्य । जमयमि प्रमाण स्ट्रितिदेषवत् । व्यवहारस्तु पूर्वेणव । जम्बीरस्यिति वन्त्रीरफलरसस्य द्वात्रिशत्यलानि, पिप्पलीमूलस्य चत्वारि, मधुनोऽद्ये पत्नानि इति वृद्धवैद्योपदेशात् मानक्रम् ॥१२॥

कर्णच्वेडे कर्णनादे कटुतैलेन पूरणम्। नाद्वाधिर्ययोः कुर्याद्वातश्चलोक्तमौपधम्॥ १३॥ कर्णलेड इलाडी—कटुतैल सार्षपंतलन् ॥ १३॥

**अपामार्गचारते**लम्

b

मार्गचारजले तत्कृतकहकेन साधितं तिलजम्। श्रपहरति कर्णनादं वाधिर्यञ्चापि पूरणतः ॥ १४॥ मार्गेलादि—नार्गेऽपामार्गः। श्रपामार्गचारपलानि पोडण, द्रवदैगुण्यात् जलस्य चतुर्विरातिगरावा , एकविंशितिवारान् परिस्नाव्य । अत चारजलास् पोडरा गरावा आद्या । तत्कृतकल्केनेति अपामार्गकृतचारकल्केन । स च तंलरोपभयाज्य-लेनालेख्य तंले देय , यदा तु पिण्डीभृतात् कल्क तंल सम्यक् पृथग्भृत दृश्येते, वदेव तंल पात्रान्तरे कृत्वा आद्यम् , न तु कल्को गालनीय , चारमिशितभयात् । अन्ये तु समामान्तर्भृतमिष मार्गपर्द तच्छन्देन समाकृष्य अपामार्गमृतमेव कल्कमाहु ॥ १४॥

# सर्जिकाचारतैलम्

सिर्जिका मूलकं शुष्कं हिंगु कृष्णां महीपधम् । शतपुष्पा च तस्तिलं पकं शक्तचतुर्गुणम् । प्रणाटशूलवाधिर्यं स्नावञ्चाशु व्यपोहति ॥ १४॥ सिकान्नारतेलम्—स्पष्टम् ॥ १५॥

दशमूलीतेलम्

दशमूलीकपायेण तैलप्रस्थं विपाचयेत्। एतत् करकं प्रदायैव वाधिय्ये पर्मोपधम्॥ १६॥ दशमूलीतंतन्—स्पष्टन्॥ १६॥

# विल्वतैलम्

फलं विल्वस्य मूत्रेण पिष्द्वा तैलं विपाचयेत्। साजाचीरं तद्धि हरेद्वाधिर्यं कर्णपूरणे ॥ १७॥

फलिमलादी—मूत्रेखिलम्य पिष्ट्वेलनेन तथा पाचरेदिलनेन सम्बन्ध । पाचयेदिलनेनेव वा, तदुक तन्त्राम्नरे 'वित्वगर्म पचेत् तैल गोम्त्रानपयोऽन्वि-तम्। वाधिर्य्य पूरेयत् तेन कर्णी सकफवातजी' इति। श्रश्रावादीर तैलमम गोम्त्र त्रिज्य चतुर्गुय वेलाहु.॥ १७॥

एप एव विधि कार्य्य प्रणादे नस्यपूर्वक । गुडनागरतोयेन नस्यं स्यादुभयोरिप ॥ १८॥
एप ऐति विधिवीधियंहर । उमगोरिप वाधियंकणनादयो ॥१८॥
चूर्णे पञ्चकपायाणां क्रिपित्थरससंयुतम् ।
कर्णसावे प्रशंसन्ति पूर्णं मधुना सह ॥ १६॥

कर्णस्नाविचिकित्मामाह चूर्णमिलाढि—सुश्रुतस्य। पञ्चकषायाणा पञ्चवल्क-लाना चूर्णम्। उक्त हि वाग्मटे—'पञ्चवल्कलचूर्णञ्च कपित्थस्वरमान्वितम्। मधुना योजित हन्यात् कर्णस्नाव प्रपूरयेत्' इति। श्रन्ये तु पञ्चकषायशब्देन सौश्रुतमेव कर्णस्नावोक्त तिन्दुकादिपञ्चकसुच्यते, यथा—'तिन्दुकान्यमया लोध्र समङ्गामलक तथा। पूर्णञ्चात्र पथ्य स्यात् कपित्थरसयोजितम्' इति। न च तयोरिप वचनयो सौश्रुतत्वेन पौनरुक्त्यमिति वाच्य, मधुयोगात् योगद्दैविध्या-दिलाहु ॥ १६॥

मालतिद्लरसमधुना पूरितमथवा गवां मूत्रे । दूरेण परित्यज्यते च श्रवण्युगलं पूतिरोगेण । हिरतालं सगोमूत्रं पूर्णं पूतिकर्णजित् ॥ २० ॥ मालतिदलेति झन्दोऽनुरोधात इखल्बम् ॥ २० ॥ सर्जत्वक्चूर्णसंयुक्तः कार्पासीफलजो रसः । मधुना संयुत साधु कर्णस्रावे प्रशस्यते ॥ २१ ॥

सर्जेत्वादि-सुश्रुतस्य । सर्जे शाल ,कार्पासी वनकार्पासी, ग्रामकार्पासी वा । श्रत्र कार्पासीफलरममेपेत्त्य श्रद्धं मधु, मध्वेपत्तया च सर्जेत्वक्चूर्णमर्द्धमिति वृद्धोपदेश साधुरिति कर्पासीफलरसाविशेषण तेन कीटाधनम्धकार्पासीफलरमो ग्राह्म इति ॥२१॥

# जम्ब्वाद्यं तैलम्

जम्ब्वाम्रपत्रं तरुणं समांशं किपत्थकार्पासफलञ्च सार्द्रम् । जुत्वा रसं तन्मधुना विमिश्रं स्नावापद्दं सम्प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥ एते. श्टतं निम्वकरञ्जतेलं ससार्पपं स्नावहरं प्रदिष्टम् ॥ २२॥

जम्ब्वाम्नेलादौ—सार्द्रमिति समन्तादार्द्रमिलर्थ । चुन्तेति सन्तुचेलर्थ । एतैरिति जम्ब्वाम्रपन्नादिमि. कल्कर्पैरिलर्थ , जलब्राम्रार्थाचतुर्शेणम् । श्रन्ये तु जम्बूपन्नादिरसैरिलर्थ इलाहु. । एतन्मते त्वकल्क एवाय पाक इति, पाकोचरकालब्र मधुप्रचेप इलाहु. । निम्बवीजकरक्षवीजभव तैल सार्पपतैलब्र सिमश्य पक्तव्यम् । पृथगेव तैलत्रय पक्तव्यमिलन्ये ॥२२॥

पुटपाकविधिखिन्नहस्तिविड्जातगोगडक । रसः सतैलिसिन्धूत्थ कर्णस्रावहरः परः ॥ २३॥ पुटपाकेलादौ—हस्तिविड्जातगोगडको हास्तिलिग्डोज्ज्तुनक्षत्रक । रस इत्यत्र वन्यति नेपः । तेन इम्मिन्यरोज्नुनव्छण्करम् स्वर्थः । यन्ये तु के।यदः वि पटन्नि । अन्ये तु कोएडण्यम् वनि समस्येनव पठन्तिः 'बेणवारपयोद्धिः । मासाध-वनतीयामम् दिवन्ति ॥ २३ ॥

शम्बकाद्यं तेलम्

श्रस्त्रृकस्य तु मस्तिन कटुनेलं विषात्रयेत् । नस्य पूरणमात्रेण कर्णनाडी प्रशास्यिन ॥ २४ ॥ शस्त्रुवेद्यादि—शस्त्रुवानम् कलः, वन वतुप्रविति ॥ २४ ॥

धुस्त्राद्यं तलम्

निशानन्वपले पकं कहुनैनं पलाष्टकम् । धुस्त्रपत्रजरमे कर्णनाडीजिद्यसम् ॥ २४ ॥

तिरातादि—निमा हिता। निमान्धर्यमिनिया पनमेक तथा धुम्द्रा-पत्रस्य स्त्र तैनस्य. । दहा हि भिन्धरिमिना म्हानेदेन सुस्यिमिन सहन्यपना हक्द्र । धुन्द्र पत्रसमुत्यिनियन्तु स्टि नाष्ट्री प्ये देग्स्वामिन सर्मानाम् देति । क्टुतैनस्याने देवित् सहन्य पटनि ॥ २५ ॥

श्रय कर्णप्रनीनाहे स्नेहसेदी प्रयोजयेत्। वना विरिक्षशिरस कियां प्राप्तां समाचरेत्। कर्णपाकस्य भेपस्य कुर्म्यात् सन्विसप्यत्। नाडसिदोऽध वमनं घृमो मूर्द्वविरचनम्॥ विधिश्च कफद्दा सर्व कर्णकर्गट्टं व्यपोहित। क्रेडियन्त्रा तु नेलेन सेटेन प्रविलाण्य च। ग्रोधयेत् कर्णग्र्यन्तु भिषक् सम्यक् ग्रलाक्त्या ॥ २६॥ व्यस्ति चुश्वस । किना प्राप्तिति दोपानुरुपान्। नाडसिट हन्यादी वर्षसिट स्वित्र प्रति पाठ क्रिक्टायाम्यि कर्णनाव्या नेदी वननाह्यपा दोध्य ॥ २६॥ विश्चरिक्षस्यस्तिलं सिन्युष्ट्रम्स्तो गुड ।

पूरपात् पृतिकर्णस्य शमना मधसंयुनः॥ २७॥
निर्देशसादि—निर्देशसा निर्देशसा मिस्निया प्रतेष नापक्षत्वतृष्ट्यं. गृहः
पृन्वृद्र्यक्ष्योन्त अनेकं नापक्ष्ययं, नष्टुनन्तु नापक्ष्ययं, नेन्यवस्य रिक्षप्रयक्तनिति स्ववद्दन्ति ॥ २७॥

जातीपत्ररसे तैलं विपकं प्तिकर्णजित्। वरुणार्ककिपित्थाम्रजम्त्रूपत्तवसाधितम् ॥ पूतिकर्णापदं तैलं जातीपत्ररसेन वा ॥ सूर्य्यावर्त्तकस्वरसं सिन्धुवाररसं तथा ! लाङ्गलीमूलज्ञरसं त्र्यूपणेनावचूर्णितम् । पूरयेत् किमिकर्णन्तु जन्त्नां नाशने परम् ॥ किमिकर्णकनाशार्थं किमिग्नं योजयेद्विधिम् । वार्त्ताकुधूमश्च द्वितः सार्पपस्नेद्व एव च ॥ २०॥

वरुयेखादि—वरुपादिपह्नवाना कल्क. । स्ट्यांवर्तकादियु त्रियु योगेषु व्योपचूर्यं प्रकेप्यन् । वार्त्तांकुम्म इति परिपतवार्त्तांकुफलचूर्यम् अङ्गारसम्पुटे दत्त्वा नित्रका धूमो देय । वार्त्तांकुवीजेन धूमः कार्य्य इति मध्यवाग्मटः ॥ २८ ॥

हिलिस्र्यीवर्त्तव्योपस्त्ररसेनातिपूरिते।
कर्णे पतिन्ति सहसा सर्वास्तु क्रिमिजातयः॥ २६॥
नीलबुह्नारसस्तैलिसिन्धुकाञ्जिकसंयुत ।
कदुण्ण पूरणात् कर्णे निःशेपिक्रिमिपातन ।
धूपनः कर्णदौर्गन्ध्ये गुग्गुलुः श्रेष्ठ उच्यते॥ ३०॥
हलीलादि—हली लाहलीयामूल, हलीस्ट्यान्चेयोर्न्योषयुक्तरसेन कर्णपूर-

रामिलर्थः ॥ २६-३०॥

राजवृत्तादितोयेन सुरसादिजलेन वा । क्याप्रतालनं कुर्याच्चूर्येरते प्रपूरसम् ॥ ३१॥ रानवृत्ति—राजवृत्तादिगया श्रारम्बधादिगयः । सुरसादि: सुरसादिगयः। चूर्येरतेरिति श्रारम्बधादिस्रमादिजै ॥ ३१॥

घृष्टं रसाञ्जनं नार्याः चीरेण चौद्रसंयुतम् । प्रशस्यते चिरोत्येऽपि सास्रावे पूतिकणके ॥३२॥ <sub>घष्टिनित्यादि—सप्टर्स ॥३२॥</sub>

कुष्टाद्यं तैलम्

कुष्टहिङ्गुवचादारुशताहाविश्वसैन्घवैः। पूतिकर्णापहं तैलं वस्तमूत्रेण साधितम् ॥३३॥ कुछलादि—कुछादीना कल्कम् ॥३१॥ विद्वयौ चापि कुर्वीत विद्वध्युक्तं हि भेपजम् । शतावरीवाजिगन्धापयस्यैरएडवीजके । तैल विपक्तं सत्तीरं पालीनां पुष्टिकृत् परम् ॥३४॥

विद्रध्युक्तमित्यन्तिविद्रध्युक्तमिति श्रीकरठ । शतावरीत्यादि—सुश्रतस्य । पयस्या चीरकाकोली, विदारीगन्धेत्यन्य । परग्रवस्य वीजृक, न तु वीजक पीतशाल , तस्य रूज्ञत्वादिति । वीजकैरित्यत्र जीरकैरित्येव पाठ इति निक्षल ॥३४॥

> गुञ्जाचूर्णयुते जाते माहिपे चीर उद्गतम् । नवनीतं तदभ्यद्गात् कर्णपालिविवर्द्धनम् ॥३४॥

गुजलादि—गुजाचूर्णं चीरापेचया अष्टमारामित्याहु । जात इत्यत्र दधीति रापः । अष्टमारागुजाचूर्णयुते महिपीचीरे जातस्य दधी नवनीतमित्यर्थः ॥३८॥

विपगर्भ तिक्षतुम्बी-तैलमप्रगुण खरात्। सूत्रे पकं तद्भ्यद्वात् क्णिपालिविचर्द्धनम् ॥३६॥

विषगर्भमित्यादि — विषस्य कल्कम् । तिक्कतुम्बैबिजमव तेल तिक्कतुम्बैदैलम् । खरस्य गर्दमस्य मूत्रे खरमूत्रे ॥३६॥

# जीवनीयाद्यं तैलम्

कल्केन जीवनीयेन तैलं पयसि साधितम्। श्रानुपमांसकाथेन पालीपोपणवर्द्धनम्॥३०॥

कल्केनेत्यादि--वाग्मटस्य । जीवनीयेनेति जीवनीयदराकेन श्रष्टवर्गेण वेत्यन्ये । दुग्धमत्र केहसमम्, श्रानूपमासकाथस्तु त्रिगुर्ण । पोपर्ण परिणाहेन वर्द्धनम्, श्रन्ये तु दैर्घ्येण ॥३७॥

माहिपनवनीतयुक्तं सप्ताहं घान्यराशिपरिवासितम् । नवम्पतिकन्दचूर्णं वृद्धिकरं कर्णपालीनाम् ॥३८॥

माहिपेलादी—सप्ताह धान्यराशी परिवस्तु शीलमस्येति तत् तथा। नवमूपली-कन्दचूर्णमिति तत्त्वणानीतशुष्कतालमूलीकन्दचूर्णपल २, माहिपनवनीतपल १, समधे सप्ताह धान्यराशी स्थाप्यमिलर्थ. ॥३=॥

कर्णस्य दुर्व्यघे भूते संरम्भो वेदना भवेत्। तत्र दुर्व्यघरोद्वार्थं लेपो मध्वाज्यसंयुतै। मधूकयवमञ्जिष्ठारुवुमूले समन्तत ॥३६॥

दुर्निद्धकर्याचिकित्सामाह कर्यस्थेत्यादि — रुबुमूलमेर्यह्मूलम् । उक्त हि तन्त्रा-न्तरे—''यनर्यहजटासिंपमधूकमधुसयुतम् । विकपाधवचूर्यं वा केवल रोपण हितम्'' हति । श्रतएव रुबुमूलस्थाने रुबुतैलमित्यपपाठ ॥३६॥

> श्रनेकघा तु छिन्नस्य सिन्धः कर्णस्य वै भिषक्। यो यथा विनिविष्ट स्यात् तं तथा विनियोजयेत्॥ धान्याम्लोष्णोदकाभ्यान्तु सेको वातेन दूषिते। रक्षिपत्तेन पयसा श्रेष्मणा तूष्णवारिणा॥ तः सीव्य स्थिरं कुर्यात् सिन्धं वन्धेन वा पुनः। मध्वाज्येन ततोऽभ्यज्य पिचुना सिन्धंवेष्टनम्। कपालचूर्णेन ततश्चूर्णयेत् पथ्ययाथवा॥४०॥ इति कर्णराग चिकित्सा।

श्रित्रक्षण्यालिसन्धानार्थं विधिमाह अनेकथेलादि—कर्णपालिच्छेदो हि हेतुदयन भवति, उक हि सुश्रुते—एव विवर्धित कर्णिश्रेष्ठचते तद्दिधा नृणाम् ।
दोषतश्चामिधाताद्वा" इति । दोषत इति वातादिकोपात् । श्रित्रस्य कर्णस्येति श्रित्रकर्णयो कर्णेलितकयो । अथ स्यूलहस्वदीर्धत्रस्जुतिर्य्यगादिमेदेन अनेकविधत्वात्
मन्धिरिप अनेकधा भवति, तत्र सन्धिर्यथा येन प्रकारेण विनिविष्ट सुसम्बद्ध स्यात्
त सिन्ध तथा तेन प्रकारेण योजयेत्, सन्धानार्थं योजयेदित्यर्थ.।तत्र सुश्रुते पञ्चदश श्रित्रकर्णवन्धप्रकारा आकृतिमेदेनोका, ते च तत्रैव कुञ्यधसन्धिविज्ञानीयाध्याये
चानुमन्धया । तत्र दोषानुरूप प्रज्ञालनमाह धान्याम्लेत्यादि—पयसेति दुग्धेन, शीतोदक्षेनित वा । उक्त हि सुश्रुते—"पित्तदुष्टे शीतोदकपयोभ्याम्"इति । तत इत्यादि—
तत इति सन्धिद्वयसयोगानन्तरम् । सीव्येत्यत्र चौमस्त्रेणिति शेषः । सिन्धि कर्णपालिद्वयसिन्ध सीव्य स्थिर कुर्यात्, तथा वन्धेन स्थिर कुर्यात् । सन्धिस्थरीकरपानन्तर मधुष्टताभ्या सन्धिमभ्यज्य पिनुना तूलकापिएडेन सन्धिवेष्टन कुर्यात् ।
सन्धिवेष्टनानन्तरञ्च स्त्रेणातिगाड नातिशिथिलञ्च वन्धन वोध्यम्, वाग्भटसवादात् । कपालो मृरपात्रकपाल ॥ ४० ॥

इति कर्णरोगांचिकित्सा-विवृति ॥

# अथ नासारोग-चिकित्सा।

पञ्चमृलिश्टतं चीरं स्याचित्रकहरीतकी । सर्पिगुंडः पडङ्गश्च यृपः पीनसशान्तये ॥ १ ॥

उक्तसङ्गत्येव कर्णरोगचिकित्सानन्तर नामारोगचिकित्सतमुच्यते । पत्रमृती-त्यादि---पद्ममूली स्वलेपति निश्चल । महतीत्यन्ये । चित्रकष्ट्ररीतकी द्र्यंत्रवाधिकारे वाच्या । सिर्पर्गुढ-पडद्मयूपी यद्मोक्ती । इदन्तु क्रियासत्र पीनमे वोध्यम् ॥ १ ॥

## व्योपादिचूर्णम्

ब्योपचित्रकतालीशतिन्तिडी चाम्लवेतसम् । सचव्याजाजितुल्यांशमेलात्वक्पत्रपादिकम् ॥ ब्योषादिकं चूर्णमिदं पुराणगुडसंयुतम् । पीनसभ्यासकासम्नं रुचिस्वरकरं परम् ॥ २॥

व्योपादिचूर्ये व्योपस्तिकतु , तिन्तिटी महाद्रेकम् , श्रवाकी जीरकम् , एलात्वक्पश्रपादिकमिति एलात्वक्पश्रादि प्रत्येकमेकमागापेच्या पादिकम् , गुउन्तु सर्वचूर्णसम्मिति निश्चल । किन्तु ''तालीशचिश्रकव्योपतिन्तिटीकाम्लवेतमम् । सचव्याजाजीद्विपलमेलात्वक्पश्रपादिकम् । जीर्णगुटतुलाद्धन पाकेन वटकीकृतम् । पीनमश्रासकासम् रुचिस्वरकर परम् '' इति वाग्भेट साद्धीनविंशतिपलचूर्णस्तुलाद्ध-स्योकत्वात् गुडस्य सर्वममत्व नोपपद्य इति ॥ २॥

# पाठादितैलम्

पाठाद्विरजनीसूर्वापिष्पलीजातिपक्षवै । दन्त्या च तैलं संसिद्धं नस्यं सम्यगपीनसे ॥ ३॥ पोठत्यादि-पाठादीना कल्को जल चतुर्गुखमिति ॥ ३॥

व्याघीतेलम् व्याघीदन्तीवचाशिग्रसुरसन्योपसैन्धवे । पाचितं नावनं तैलं पृतिनासागदं जयेत्॥४॥

व्यावीत्यादी-सुरम सिन्दुवारः, पर्णास इत्यन्ये ॥ ४ ॥

### त्रिकद्वंिवडक्सेन्धववृहतीफलशिग्रसुरसदन्तीभिः। तैलं गोजलसिद्धं नस्यं स्यात् पूतिनस्यस्य॥४॥

त्रिकट्वित्यादि — श्रत्रापि मुरम मिन्दुवार , पर्णास इत्यन्ये । श्रत्र शियु-वीज दन्तीवीज च श्राद्यम् , तथा वृहतीफलस्यापि वीजम् । उक्त हि वाग्मटे "शियुमिहीनिकुम्भाना वीजै सन्योषमैन्थवे । मरेणुसुरसैस्तेल मूत्रमिद्धन्तु नावनम्" इति ॥ ४ ॥

कित्तिहिंगुमिरच-लाज्ञासुरसकद्फलैः। कुष्टोत्राशिग्रुजन्तुप्तैरवर्पाडः प्रशस्यते॥ तैरेव मूत्रसंयुक्तैः कहुनैलं विपाचयेत्। श्रपीनसे पृतिनस्ये शमनं कीर्तितं परम्॥६॥

कालिक्षेत्यादौ — श्रत्रापि सुरम पर्णामः, उग्रा वचा, क्रिमिन्नो विडक्ष । श्रत्रापि वद्यमाणमूत्रमयुक्षैरित्यस्य सम्बन्ध कृत्वा श्रवपीडमपि मूत्रेण पिष्ट्वा कुर्यात् । तैलपाके तु गोमूत्रमेव चतुर्गुण्मिति ॥ ६ ॥

नासापाके पित्तहरं विधानं कार्य्य सर्वे वाह्यमाभ्यन्तरञ्च। हरेद्रक्तं सीरिवृत्तत्वचश्च योज्या सेके सघृताश्च प्रदेहाः। पूयास्ररक्तपित्तव्रा कपाया नावनानि च ॥ ७॥

नासापाके पित्तहर विधानमित्यत्र पित्तहत् मन्धारणिमिति पाठो रत्नप्रभा-सम्मव । हरेद्रक्तमित्यत्र हत्वा रक्तमित्यपि तथा । वाह्यमाभ्यन्तरक्चेति—वाह्य लेपादि, श्राभ्यन्तर सेहपानादि । चीरिवृत्ता वटोडुम्बराडय पञ्च ॥ ७॥

शुरठीकुष्ठकणाविल्व द्वात्ताकलककपायवत् । साधितं तैलमाल्यं वा नस्यं त्तवशुरुक्प्रणुत्॥ ८॥

शुएठीत्यादि—वाग्भटस्य । विल्व विल्वस्य मूलम् । चवशुपुटनुवित्येव पाठा वाग्भटे तु दृश्यते, टीकायाञ्चेवमेवोक्तम्, श्रस्यार्थमवुद्ध्वेव चवशुरुक्प्रशुदिति पाठ-मज्ञाः कुर्वन्ति । चवशु चव , पुटोऽपि नासारोगविशेष । उक्त हि वाग्मटे— "पित्तरेश्च्मावरुद्धोऽन्तर्नासाया शोषयेन्मरुत् । क्ष्म सशुष्कपुटता प्राप्तोति पुटक हि तस् " इति ॥ म ॥

दीप्ते रोगे पैत्तिके संविधानं सर्वे कुर्य्यान्मधुरं शीतलञ्च । नासानाहे स्नेहपानं प्रधानं स्निग्धा धूमा मूर्प्ति वस्तिश्च नित्यम्॥६ द्रित इत्यादि-सुश्रुनस्य । दीसे रोगे पैत्तिकमन्धानिमिनि पाठ सुश्रुते इश्यते ॥ ६ ॥

वातिके तु प्रतिश्याये पिवेत् सर्पिर्थथाकमम् ।
पञ्चिमर्लवणे सिद्धं प्रथमेन गणेन च ॥
नस्यादिषु विधि कृत्स्रमवेचेतार्दितेरितम् ।
पित्तरक्रोत्थयो पयं सर्पिर्मधुरके श्रतम् ॥
परिपेकान् प्रदेहांश्च कुर्यादिप च शीतलान् ॥ १० ॥

वातिक द्रत्यादि—सुश्रतस्य । पञ्चिभलंबर्णरिति कल्करूपं मिद्ध मिपं पिवेत्, ययाक्रममिति केह्यंगिकाध्यायोकाविध्यनितक्रमेण । प्रथमेन गणेनेति विदारिगन्थादिगणेन वा काथकल्करूपेण मिद्ध मिपं पिवेदित्यथं । तथा नस्यादिकमंम् कर्त्तन्येषु अदितोक्तिविधम् अवेद्येत जानीयात् । वाग्मेटऽप्युक्त—"विवेद् वातप्रतिस्याये सिर्वातप्रसाधितम् । पद्धपन्नकामिद्ध वा विदार्थ्यादिगणेन वा । स्वेदनस्यादिक कुर्यात् चिकित्साष्ट्यादितिराम् " इति । अन्ये त्वाहु प्रथमेन गणेन मिद्ध सिर्वनस्यादिषु योज्यमिति, एतत्तु वाग्मटविरोधाद्धपन्नणियमिति । पित्ते इत्यादि सुवतस्यादिषु योज्यमिति, एतत्तु वाग्मटविरोधाद्धपन्नणियमिति । पित्ते इत्यादि सुवतस्य । पित्तरक्षोत्थयो प्रतिश्याययोतिति रोष । मधुर्कं श्वतमिति काकोल्यादिमिविषकम् । शोतलानिति न्यम्रोधाद्यत्यलादिगणाः शीतलास्तैः कृतान् ॥ १०॥

### कफजे सर्पिपा स्निग्धं तिलमापविपक्तया। यवाग्वा वामयित्वा वा कफन्नं क्रममाचरेत्॥ ११॥

कफज इत्यादी--तिलमापी कल्करूपी, अस मदनफलमपि बोध्य, वमन-योगात् । कफझ कमिति कफहरद्रव्यक्रतेपेयादिक्रमम् ॥ ११॥

दार्व्याङ्गदीनिकुम्भेश्च किणिह्या सुरसेन च। वर्चयोऽत्र कृता योज्या धूमपाने यथाविधि॥ १२॥

दावित्यात्रि—सुश्रतस्य । दावि दारहरिद्रा, इद्गदी पुत्रवीविक । निकुन्नो दन्ती तस्या वीज मूल वा । किश्यिही कटमीवीजम् , श्रपामार्ग इत्यन्ये । सुरमेने-त्यत्र सरलेनेति सुश्रते पठ्यते, तन्मते सरल सरलकाष्ट्रमेव । सुरस पर्यास , निर्गुयदी वा यथाविधीति वैरेचनिकध्मविधानक्रमेण ॥ १३॥

श्रथवा सघृतान् शक्तृन् कृत्वा मिल्लकसम्पुटे । नवप्रतिश्यायवतां धूमं वैद्यः प्रयोजयत् ॥ १३॥ भ्रथवेत्यादौ-यवशक्तून् सप्टतान् शरावास्त्रताङ्गारे दत्त्रा तदुपरि कृतिच्छ-द्रेख शरावान्तरेख पिथाय तास्मित्रेव छिद्रे नलिका दत्त्वा धूम पिवेदित्यर्थ ॥१३॥ य पिवति शयनकाले शयनारूढ सुशीतलं भूरि। सिललं पीनसयुक्तः स मुच्यते तेन रोगेण ॥ १४ ॥ यः पिवतीत्यादि—योगोऽय वातापित्तोत्तरे प्रातिश्याये वोध्य ॥ १४ ॥ पुटपकं जयापतं सिन्धुतैलसमन्वितम् । मतिश्यायेषु सर्वेषु शोलितं परमौषधम् ॥ १४ ॥ पुटेत्यादी-जया जयन्ती ॥ १५ ॥ सोषणं गुडसंयुक्तं स्निग्धदध्यम्लभोजनम् । नवप्रतिश्यायहरं विशेषात् कफपाचनम् ॥ १६ ॥ मोषस्मित्यादि-- कषस्य मरिचन् । योगोऽथ वातिके इत्याहु ॥ १६॥ प्रतिश्याये नवे शस्तो यूपश्चिञ्चादलोङ्गवः। तत पक्कं कफं ज्ञात्वा हरच्छीपीवरेचने ॥ शिरसोऽभ्यञ्जनस्वेदनस्यकट्चम्सभोजनै । वमनैर्घृतपानैश्च तान् यथास्त्रमुपाचरेत् ॥ १७ ॥ प्रतिश्याय इस्यादि-चिन्ना तिन्तिडी तस्या छद पत्रम् । यूष काथ: । श्रत हिङ्गमरिचचूर्णं मातानुरूप प्रचिपन्ति वृद्धाः । शिरस इत्यादौ-यथास्वमिति पक्त शिरां इम्यङ्गस्वेदनस्य वृतपानादिशेषपक्के स्वेदश्च ॥ १७ ॥ भन्नयति भुक्तमात्रे सत्तवणमुत्स्विन्नमापमत्युष्णम्। स जयति सर्वसमुत्थं चिरजातब्च प्रतिश्यायम्॥ पिप्पल्य शिग्रुवीजानि विडङ्गमरिचानि च। श्रवपीड प्रशस्तोऽयं प्रतिश्यायनिवारण् ॥ १८॥ मज्ञयतीत्यादि-योगोऽय वातोत्तरे वोध्यः ॥ १८ ॥ ससूत्रपिष्टास्तदिष्टाः क्रिया क्रिमिपु योजयेत्। नावनार्थं क्रिमिञ्चानि भेषजानि च वुद्धिमान्। शेषाणान्तु विकाराणां यथास्वं स्याचिकित्सितम् ॥१६॥

सम्बेत्यादि — ग्रुश्रुतस्य । समृत्र यथा स्याद् तथा पिष्टा. वर्मधारयो वा । तिह्या इति सुश्रुतेऽनन्तरोक्ताः सर्वा क्रिया मृत्रपिष्टा प्रतिश्याय क्रिमिसम्बन्धे सित योजयेदित्यर्थ । श्रन्ये तु क्रिमिपु या क्रिया चक्तास्तास्ताश्च सर्वा मृत्रपिष्टा योजयेदित्याहु । क्रिमिप्तानि भेषजानीति सुरमादिगणप्रभृतीनि । शेषाणान्तु विकाराणामिति नासार्वुदनासार्शः प्रभृतीनाम् । यथास्विमिति यत् यद् स्व यथास्य-मिति वीप्सायामन्ययोमाव ॥ १६॥

# करवीराद्यं तैलम्

रक्तकरवीरपुष्प जात्यशनमहिकायाश्च । पतै समन्तु तैलं नासार्शोनाशनं श्रेष्ठम् ॥ २०॥

रक्षकरविरित्यादौ--जाती मालती तस्या श्रापि पुष्पम्, श्रशनमिल्लका द्दाफर-मिल्लका । जात्यशनेति सिंहताऽनिर्देशोऽमिद्धविधेरिनत्यत्वात् । एते समिति एते कल्करूपे । पाकार्थन्तु जल चतुर्गुणिमिति श्रेयम् ॥ २०॥

# शिखरितैलम्

गृहधूमकणादार-ज्ञारनक्षाहसैन्धनै । सिद्धं शिखरिवीजैश्च तेलं नासाशिसां हितम् ॥ २१॥ गृहधूमेत्यादौ—कारो यनचारः नक्ताह करअवीज, शिखरिवीजमपामार्ग-वीजतग्रह्जलम् । अत्रापि जल चतुर्गुण देयम् ॥ २१॥

## चित्रकतैलम्

चित्रकचिवकादीप्यक-निदिग्धिकाकरञ्जलवास्को । गोमूत्रयुतं सिद्धं तैलं नासाशेसां विहितम् ॥ २२ ॥ चित्रकेत्यादी—दीप्यक यमानी, लवस सैन्धवम्, अर्कमर्कद्वीरम् ॥ २२ ॥

### चित्रकहरीतकी

चित्रकस्यामलक्याश्च गुड्रच्या दशमूलजम् । शतं शतं रसं दत्त्वा पथ्याचूर्णाढकं गुडात् ॥ शतं पचेद्धनीमृते पलं द्वादशकं क्षिपेत् । व्योषत्रिजातयोः ज्ञारात् पलाईमपरेऽहनि ॥ प्रस्थार्द्धे मधुनो दत्त्वा यथाग्न्यद्यादतिन्द्रतः ! वृद्धयेऽग्ने चयं कासं पीनसं दुस्तरं किमीन् । गुल्मोदावर्त्तदुर्नामश्वासान् हान्ति रसायनम् ॥ २३॥ इति नासारोग-चिकित्सा ॥

चित्रकहरीतक्या चित्रकस्य पञ्चाशत् पलानि, जलशरावाः पञ्चाशत्, स्थाप्या-स्तु सार्द्धद्वादश शरावा । एव चित्रकस्य काथस्य पलशत भवति । आमलकीस्वरस-स्यापि पलशत स्वरसाभावे त्वयभेव स्वरसाविधिः । एव गुडूच्या मिलितदशमूल-स्य च काथविधि । व्योपत्रिजातयोभिलित्वा पलद्वादश । पलार्द्धमिति चारादित्यने-नैव सम्वध्यते । अपरेऽहनीति परेण सम्वध्यते ॥ २३ ॥

इति नासरोगचिकित्साविवृति.।

# अथ नेत्ररोग-चिकित्सा।



उपाचरेद्भिष्यन्दानञ्जनाश्च्योतनादिभिः॥१॥

उक्तसवादादेव नेत्ररोगाचिकित्सामाह—अत्राभिष्यन्दस्य निखिलनेत्ररोगमूलत्वेन प्राधान्यात् प्रथमतोऽभिष्यन्दप्रतिकारमाह लङ्घनेत्यादि — लङ्घनमत्र लष्यत्रमुपवासो वा । उक्त । हि " प्रागेवाच्यामये मुक्त त्रिरात्रमगुरुस्थितम् । उपवासस्त्र्यह वा स्यात् " इति । किन्तु उपावासो वातजादन्यत्र विषेयः वाग्मटसवादात् ।
स्वेदोऽपि पित्तज विना नयनोपान्ते मृदुर्वोध्य । यदुक्त " हृदय वृषणौ दृष्टिं
स्वेदयेत् मृदु वा नवा " इति । शिराव्यथा रक्तदुष्टौ सत्या शिराव्यथनम् । विरेचन
शिरस कायस्य च । शिरोविरेचनन्तु नवे, कायविरेचनञ्च जीर्णे क्रेयम् । आदिगब्देन तर्पणपुटपाककाथादिपरिप्रहः ॥ १ ॥

श्रीवासातिविषालोष्ट्रेश्चरिंतैरल्पसैन्धवै । श्रव्यक्तेऽित्तगदे कार्य्य प्रोतस्थैर्गुएडनं विहः॥२॥

श्रीवासित्यादि -- श्रांवासो देवदारः । अल्पसैन्धवैरिति एकमागापेश्चया चतु-

र्भागत्व सैन्धवस्थित्याहु । श्रन्यक्ष इति पूर्वरूपे । प्रोतस्थिरिति कर्पटवन्धे ग्रग्डन श्रवचूर्णनम् । एतच मुकुलिते चन्नु पत्रे न तु विस्तारिते ॥ २ ॥

श्राचिकुचिभवा रोगाः प्रतिश्यायव्याज्वराः । पञ्चेते पञ्चरावेण प्रशमं यान्ति सङ्घनात् ॥ ३ ४

श्रचिकुचिमवा इत्यादि—कुचिभवा श्रतीसारविलिम्विकादय । पद्मराहिणेत्यु पलच्च तेन त्र्यहमपि वोध्यम् । यदाह विदेष्टः "उपवासस्त्र्यह वा स्यात्" इति । श्रयञ्च मतमेदो दोपप्रकोपतारतम्यात्र विरोधमावहति ॥ १ ॥

स्वेदः प्रलेपस्तिक्कान्नं सेको दिनचतुप्रयम्। लङ्घनञ्चाचिरोगाणामामानां पाचनानि पद्। श्रञ्जनं पूरणं काथपानमामे न शस्यते॥ ४॥

स्वेदं इत्यादी—सेकी वरसकादिकाथादिना। चत्तु सेचनमाश्च्योतनशम्दवाच्य न तु पूरण तस्यामे निषेधात् । श्राश्च्योतन पुनरामे क्रियत एव यदुक्त सर्वेपामान्ति-रोगाणामादावाश्च्योतन हितम् " इति । दिनचतुष्टयमिति दिन्चतुष्टय स्वरूपत एव ज्वराष्टाहवदिति । श्रामे नेखरोगे श्रक्षनादिक न कार्य्यमित्याह् श्रक्षनित्यादि— पूर्णमाश्च्योतनम् ॥ ४ ॥

धात्रीफलानिर्य्यासो नवदक्कोपं निहान्त पूरणतः । सत्तौद्रसैन्धवो वा शियुद्भवपत्ररससेकः ॥ ४॥

धालीत्यादी--पूरणशब्देनाश्च्योतन वाच्यम् । सचौद्रसैन्धवो शोमाञ्चनपत्र-स्वरसमापकचतुष्टयम् । मधु मापेकम् सैन्धव रिक्तिद्वयम् ॥ ४ ॥

दावीरसाञ्जनञ्चापि स्तन्यदुग्धं प्रपूरणम् । निहन्ति शीघं दाहाश्चवेदनाः स्यन्दसम्भवा ॥ ६॥

दावीत्यादि—दावीरसाञ्जन दारुहरिद्राकाथकृत रसाञ्चनम् । स्यन्दसम्भवा इत्यमिष्यन्दसम्भवा ॥ ६ ॥

करवीरतरुणिकशलयच्छेदोद्भवयहुलसिललसम्पूर्णम्। नयनयुगं भवति दृढं सहसैव तत्त्रणात् कुपितम्॥७॥

करविरित्यादी--तरुणमभिनव यद किशलयम्, तस्य छेदाद यो रमे। निर्ग-च्छिति, तेन पूरणिमस्पर्थ ॥ ७॥

शिखरिमूलं ताम्रभाजने स्तोकसैन्धवेनिमश्रम् । मस्तुनिघृष्टं भरणाद्धरति नवं लोचनोत्कोपम् ॥ ८॥

शिखरीत्यादौ-शिखरि अपामार्ग । स्तोक सैन्धव रिक्षिद्वय त्रय वा सैन्धव-मित्यर्थ ॥ = ॥

सैन्धवदारुहिरद्वागैरिकपथ्यारसाञ्जनैः पिष्टै । दत्तो विहःप्रलेपो भवत्यशेपािचरोगहरः ॥ तथा शावरकं लोधं घृतभृष्टं विडालक । कार्य्यो हरीतकी तद्वद् घृतभृष्टं विडालक ॥ शालाक्येऽच्लोर्वहिलेपो विडालक उदाहृतः ॥ ६॥

सैन्धवेत्यादि — एते स्तोकसैन्धवसहितै सममागिष्टे श्रन्यवस्त्रोपिर निमी-लितचत्तुषि लेपो देय । शावरक लोघमिति श्वतलोधम् । विडालकशब्दार्थमाह शालाक्य इत्यादि — शालाक्ये शालाक्यग्रन्थे, सुश्रुत शति यावत् ॥ १ ॥

गिरिमृचन्दननागरखटिकांशयोजितो वहिलैंप.। कुरुते वचया मिश्रो लोचनमगदं न सन्देहः॥ १०॥

गिरिमृदित्यादी—श्रशो भाग.। एते सममागिष्टेश्चक्कु समीपे लेप कार्ळा इत्याहु ॥ १०॥

भूम्यालकी घृष्टा ससैन्धवगृहवारियोजिता ताम्रे। याता घनत्वमक्णेजियति वहिर्लेपत पिडाम्॥११॥ भूम्यामलकीत्यादी—गृहवारि काञ्चिकम्॥११॥

श्राश्च्योतनं मारुतजे काथो विल्वादिभिर्द्धितः। कोण्णः सैरएडवृहतीतकीरीमधुशिश्राभिः॥ १२॥

श्राण्च्योतनिमस्यादि—श्राश्च्योतनमित्तिकः । विल्वादि महत् पश्चमूलम् । तर्कारी जयन्ती। मधुशियु रक्षशोभाञ्जनम् विल्वादिमिरित्यस्य सैरएडेत्यादिविशेषसम्, तेन एक एवाय योगः, यदाइ जतुकर्षं —महत्पञ्चमूलरुनुकारिध्रुतकारिसिहीकाथ " इति । किन्तु तन्त्रान्तरे केवलविल्वादिकाथनाप्यय योगो दृश्यते, धशा—"पूर्णतिन्न सूल्झ तथा विल्वादिजाम्मसा" इति । किन्तु योगद्धयपचे सैरएडेति, वृहतीविशेष-सम्, न तु विल्वादिविशेषस्यम्, एकयोगत्वाप्रसङ्गात् ॥१२॥

, ,

#### एरएडंपल्लवे मूले त्वचि चाजं पयः शृतम् । कएटकार्याश्च मूलेपु सुखोण्णं संचने हितम् ॥१३॥

पर्गडेत्यादि सुश्रुतस्य । परगडपञ्चनादिकण्टकार्थ्यंन्त एक एवायं योग विदेहसवादात् । यथा— "कण्टकारीशिफैरण्डमूलत्वनपत्रसाधितम् । चीरमाज हित सेके चन्तु स्यन्दाधिमन्थयो " इति । श्राज पयोऽत्र चीरपरिमार्थ्यंन माध्यम् । श्रन्ये त्वाहु –एतद्योगानन्तर सुश्रुते "सैन्थवोदीच्ययण्ट्याहु पिप्पलीभि श्रुत पय । हितमद्योदक सेके इति प्र्य्यते, एतद्दचनन्तु श्राश्च्योतनचीरमाधनार्थं परि-मापास्थानीयम्, तेनात्रापि श्रद्धांदक चीर साध्यमिति । किन्त्वत्र शेपानुक्त्या चीरपरिमापयैव साधनमिति युक्तमुत्पश्याम । व्यवहारोऽपि चीरपरिभापयै-विति ॥ १ श्री

सम्पक्तेऽिच्चगदे कार्य्यव्याञ्जनादिकमिण्यते । प्रशस्तवर्तमता चाच्लोः संरम्भाश्चप्रशान्तता । मन्द्वेदनता कर्डूः पक्तािच्चगद्तच्चण्म् ॥ श्रव्जनादिविधिश्चात्रे निखिलेनाभिधास्यते । गृहत्येरराडमूलत्वक् शित्रोर्मूलं ससैन्धवम् । श्रजाचीरेण पिष्टं स्याहर्त्तिर्वातािच्चरोगनुत् ॥१४॥

श्रञ्जनादिविधानस्य समयमाह सम्पक्त इत्यादि—पक्कािचरागलचणमाह प्रशस्तित्यादि—प्रशस्तवत्र्मता दोषाणामिभभूतवर्त्मता, मरम्भः शोथ.। एतच लच्चण प्रायस्त्र्यहादुपरि ज्ञेयम्, यदाह चरक — 'मम्पक्के चाञ्जन त्र्यहात्'' इति श्रञ्जनादिविधिरित्यादि—श्रय इति श्राश्च्योतनाचिधकारे ॥१४॥

हरिद्रे मधुकं द्रान्तां देवदारु च पेपयेत्। श्राजेन पयसा श्रेष्ठमिष्यन्दे तद्ञ्जनम् ॥१४॥ हरिद्रे स्लादि—सुमृतस्य। भन्न द्रान्तास्थाने पथ्यति केनित् पठिन्ति ॥१५॥

गैरिकं सैन्ध्वं कृष्णातगरञ्च यथोत्तरम् । पिष्टं द्विरंशतोऽद्भिर्वा गुडिकाञ्जनमिण्यते ॥१६॥ गैरिकमिलादि—सुश्रवस्य । तत्र तगरस्थाने नागरमिति निश्वल पठति । वयोत्तर दिरसत इति यथोत्तरमागतो दिग्राणमिलर्थ । तेन गैरिकमाण १, सैन्थव- माषा २, पिप्पलीमाषा ४, तगरमाषा ८ । श्रद्भिर्वेति वाशब्दाच्छागीचीरमपि वोध्यम् ॥१६॥

> प्रपौराडरीकयष्ट्याह्न-निशामलकपद्मकैः। शीतैमेधुसमायुक्तैः सेक पित्तान्तिरोगनुत्॥१७॥

प्रपायडरीकमित्यादी--शितिरिति प्रपीयडरीकादाना कषायै शीतलैरित्थर्थ समायुक्तैरित्यत्र सितायुक्तैरिति केचित् पठन्ति । सितायुक्तैरिति पाठ मधुवत् सिता प्रचेप्यत्थर्थ ॥१७॥

द्राचामधुकमञ्जिष्ठा-जीवनीयैः श्टतं पयः । प्रोतराश्च्योतनं पथ्यं शोथश्र्लाचिरोगिणाम् ॥१८॥

द्राचित्यादौ-जीवनीयशब्देन जीवनीयाष्टवर्गं गृह्धन्ति ॥१८॥

निम्वस्य पत्रैः परिलिप्य लोधं स्वेदाशिना चूर्णमथापि कल्कम् । श्राश्च्योतनं मानुषदुग्धमिश्रं पित्तास्रवातापहमग्च्यमुक्कम् ॥१६॥

निम्बस्येत्यादि—निम्बपत्र पिष्ट्वा तित्पग्रहमध्ये लोधकल्क चूर्णे वा प्रचिप्य पत्रेण वेष्टियत्वा श्रद्वारैरुत्स्विच नारीक्षारेण संमिश्य वस्त्रेण गालियत्वा चत्तु सेको विधेय इति ॥१६॥

कफजे लड्डानं स्वेदो नस्यं तिक्रान्नभोजनम्। तीद्यौः प्रधमनं कुर्यात् तीद्यश्चैवोपनाहनम्॥२०॥ कफजनेत्ररागिविकित्सामाह—कफज इत्यादि॥२०॥

फाणिज्भकास्फोतकपीतविल्वपत्त्रपील् छुरसार्जभङ्गैः । स्वेदं विद्ध्याद्थवा प्रलेपं वर्हिष्ठश्चरठी सुरदारुकुष्टैः ॥२१॥

फिर्याज्यस्त पर्यासमेद , निर्गुयडीत्यन्ये । आस्फोता हाफरमिल्लका, छान्द-सत्त्वाद्भ्त्वत्वम् । पत्त्र सालिञ्चशाकः । पील्ल श्रीत्तरापिथकतरः , श्रतएव निर्देशात् पील्लशब्दो दीर्घोकारान्तोऽपि श्रेय । सुरसाजीवपि पर्यासमेदी । एषा मन्ने पल्लवे-व्यस्तसमस्तैरङ्गारता।पेतैश्चलुषोर्मृदुस्वेद कार्यः । वर्ष्टिष्ठ वालकम् । श्रत्रेव तन्त्रान्त-रदर्शनात् श्रर्जस्थान श्रक्षं इति केचित् पठन्ति । तन्त्रान्तरे यथा—"कपित्यसुरसा-स्फोतपील्लपत्त्ररूपिका । फिर्याज्यक्षविल्वच्छदने स्वेद स्यन्दाधिमन्थयो " । रूपिका श्रकं ॥२१॥

### शुरुद्योनिम्वद्तैः पिराडः सुखोप्यैः स्वरूपसैन्धवैः । धार्य्यश्चत्रुषि सङ्क्षेपाच्छोथकराङ्क्यथापदः॥ २२॥

शुयठीत्यादी-—निम्बपत्रापेचया शुयठी स्वल्पा देया, सैन्धवमिप चतु पश्च राक्तिकामिति वदन्ति । एपा पियङ कदुष्य एव चच्चुपे।रुपरि सूरमवस्त्र दत्त्वा देय इत्युपदेश । सच्चेपादित्यादी प्रक्रियात्॥ २२ ॥

#### चल्कलं पारिजातस्य तैलं काञ्जिकसैन्धवम् । कफोद्भूताचिग्रलझं तरुझं कुलिशं यथा ॥ २३ ॥

वल्कलिमत्यादि —पारिजात पारिमद्र । पारिभद्रवल्कलस्वरमस्य मापकत्रय सैन्धवस्य राक्षिद्रय त्रय वा, काश्चिकन्तु निकुद्धमात्रम् । निकुद्धस्तु न्यामुसांगुलि-चतुष्टयपरिभितः । एतत् सर्वे तात्रपात्रे कृत्वा कपदंकैकेन तावद्धपंणीय यावद् धन भवति । चत्तुष्यश्चन देयमिति वृद्धा व्यवहरन्ति ॥ २३ ॥

### ससैन्धवं लोभ्रमथान्यभृष्टं सौवीरपिष्टं सितवस्रवद्धम् । श्राश्च्योतनं तन्नयनस्य कुर्य्यात्

कराङ्कच दाहक्च रुजाक्च हन्यात्॥ २४ ॥

ससैन्धविमत्यादि—सैन्धवस्य रिवतद्वय, लोधस्य मापकचतुष्टय काञ्जिकन पिष्ट्वा गव्यश्तेन भृष्ट्वा निर्मलस्द्रमवस्त्रेण वद्ध्वा श्रगुलीद्वयेन सम्पीट्य चत्तुपि तदसो देय ॥ २४ ॥

> स्निग्धैरुजीश्च वातोत्थः पित्तजो सृदुशीतलैः। तीन्णुरूक्षोप्ण्विशदै प्रशाम्यन्ति कफात्मकाः। तीन्णुप्णसृदुशीतानां व्यत्यासात् साम्निपातिकः॥२४॥

सचेपेण वातजादीना चिकित्सामाह क्रिग्धेरित्यादि—विशदैरित्यापि-चिन्नते । तीच्योष्णमृदुशितलाना व्यत्यामोऽत्र परस्परिवपर्ययेयोपयोगः, तेन तीच्यमुप्युज्य तिद्वपरितस्य भृदुन उपयोग , पव मृदुद्रव्यमुप्युज्य तीच्यस्योपयोग , पवमुष्यशीतयोरिप व्यत्यासो होय । क्षिंवा परस्परिवरुद्धाना भावाना समिश्रयोन उपयोगो व्यत्यासोपयोग । तीच्योष्णमृदुशीतलानामित्युपलच्या तेन क्षिग्धरूचा-दीनामिष मृह्ण वोध्यम् ॥ २५ ॥ तिरीटित्रिफलायप्टीशर्कराभद्रमुस्तकैः। पिष्टं शीताम्बुना सेको रक्काभिष्यन्दनाशनः॥ २६॥

तिरीटेत्यादि—तिरीट पट्टिकालोध्रम् । एषा प्रत्येक माषकमेक गृहीत्वा श्रुक्त पिष्ट्वा शीतलजलेन पलेकेन समिश्र्य परिषेक: कार्य्य ॥ २६॥

कशेरुमधुकानाञ्च चूर्णमम्बरसंयुतम् । न्यस्तमण्स्वान्तरीत्तासु हितमाश्च्योतनं भवेत् ॥२७॥

करोविंत्यादि—सुश्रुतस्य । करोरुयाष्ट्रमधुनो प्रत्येक माषकचतुष्ट्य गृहीत्वा सूक्तमवक्षेण वद्घ्वा आकाशोदके पलेके निचिप्य तेन जलेन सेक , आकाशोद-काभावे हसोदकेन ॥ २७ ॥

> दार्वीपटोलमधुकं सानम्बं पद्मकोत्पलम् । प्रपोगडरीकञ्चैतानि पचेन्ताये चतुर्गुणे ॥ विपाच्य पादशेषन्तु तत् पुनः कुडवं पचेत् । शीतीभूते तत्र मधु दद्यात् पादांशिकं ततः । रसिक्षयेषा दाहाश्चरागरक्रक्जापहा ॥ २८॥

दावींत्यादी—पटोलिनम्बयो पत्र, पद्मक पद्मकाष्ठम्, उत्पल निलोत्पलम् । एषा मिलित्ना कुडवश्चतुष्पलो याद्य । पाकार्थञ्च जलस्य द्वात्रिंशत् पलानि । ' ततस्तु कुडव यावत् तोयमष्टगुण मवेत् '' इति वचनात तत कुडवेडष्टपलः स्थाप्य । तद्वस्त्रपूत कृत्वा पुन पक्तन्यमाघनीभावात्, तत शीते मधुपलद्वय प्रचेप्य, ततोऽज्ञन कार्य्यमिति ॥ २ = ॥

तिक्सस्य सर्पिष पानं वहुशस्त्र विरेचनम् । श्रद्णोरपि समन्ताच पातनन्तु जलौकसः । पित्ताभिष्यन्दशमनो विधिश्चाप्युपपादितः॥ २६॥ तिक्तस्येति—तिक्त सर्पिर्वस्यमाणपटोलादिष्टतम् । विरेचनन्न वस्यमाणपटः

द्गादिना ॥ २६ ॥

'n

शिग्रुपञ्जवनिर्यासः सुघृष्टस्ताम्रसम्पुटे । घृतेन धूपितो हन्ति शोथघर्षाश्रुवेदनाः ॥ ३० ॥ शिग्रुपञ्जवेत्यादौ—निर्यासः स्वरस , ध्तेन सह तात्रपत्रे घष्ट इत्यन्वय । भृषित इति करीपामिना । श्रन्ये तु करीपामी प्रत दत्त्वा तेन भूमेन भूषित इति व्याचन्नते । घर्ष करकरिकारुयवेदनाविशेष ॥ ३०॥

पिष्टैर्निम्वस्य पत्तैरितिवमलतरैर्जातिसिन्धृत्थिमश्रा श्रन्तर्गर्भे दधाना पद्धतरगुडिका पिष्टलोधेन भृष्टा । त्लैः सौवीरसार्द्वेरितशयमृद्धिभवेष्टिता सा समन्तात् चन्नु कोपप्रशानित चिरमुपरि दशोर्श्वाम्यमाणा करोति। ३१॥

पिष्टैरित्यादि—जातिसित्यृत्य सार्रसेन्थव, जातिर्जातीकलिकेत्यन्ये । अन्तर्गर्भं दथानेति पिष्टनिम्वपत्रपिषडाभ्यन्तरे लोधकलकापिषड नििक्चप्य छता गुडिकेत्यर्थ । भूष्टा इति र्खपरे मनाग्मृष्टेर्ट्यर्थ । तदनु मौवीरेण काजिकेन माँईरिति ईपदाँईस्तुल-कैवेंष्टिता चन्नुपेरिपरि आम्यमाणेत्यर्थ ॥ ३१॥

### विल्वाञ्जनम्

वित्वपत्तरसः पूत सैन्धवाज्येन चान्वितः। शुल्वे वराटिकाघृष्टो धूपितो गोमयाग्निना॥ पयसाले।डितस्वाद्णोः पूरणाच्छोधश्चलनुत्। श्रमिष्यन्देऽधिमन्थे च स्रोवे रक्ते च शस्यते॥ ३२॥

विल्वपेत्रत्यादी—शुल्व इति तात्रपात्रे, पयसेति नारीस्तन्येन । वस्त्रपृतविल्व-पत्ररसस्य मापकचतुष्टय सैन्धवस्य रिक्रिद्दय, ष्टतस्य विन्दुचतुष्टयम् । एतत् सर्वे तात्रपात्रे कृत्वा कपर्दकेन तावद्वपंणीय यावद्दन भवति । तदनु न्युव्जक्तितात्रपात्रे शुष्कगीमयामिना धृपयित्वा नारीचीरेण तरलीकृत्य चन्नु पूरणम् ॥ ३२ ॥

सलवणकदुतैलं काञ्जिकं कांस्यपाते घनितसुपलघृष्टं घूपितं गोमयाश्रौ। सपवनकफकोपं झागदुग्धावसिक्कं

जयित नयनग्रलं स्नावशोथं सरागम् ॥ ३३॥

सलविष्तादी—सैन्धवस्य रिक्तिद्वयं, कदुतैलस्य विन्दुचतुष्टयं, काञ्जिकस्य मापकचतुष्टयम् । उपल प्रस्तरखण्डस्तेन ष्टष्टं, किंवा उपलशब्देन चत्तुप्यत्वात् रसा-अनादिशिलैव ग्राह्मा षृद्धास्तु वराटिकयैव व्यवहरन्ति ॥ ३३ ॥

तरुव्यविद्धामलकरसः सर्वाचिरोगनुत्॥ ३४॥

तरुरथेत्यादि--तरुरथस्यैनामलकीफलस्य स्च्यादिभिर्विद्धस्य यो रसो निर्गच्छतीत्यर्थ ॥ ३४ ॥

पुराणे सर्वथा सर्पिः सर्वनेतामयापहम् ॥ ३४ ॥

पुराण सिंपिदेशवर्षास्थित, तदमावे सवत्सरातीतमिष पुराण बाह्यामित्याहुः । उक्त हि—"श्रल्पाभिष्यिन्दि मधुर यच सवत्सरोधितम्। श्रनुत्केदञ्च दोपाणा पुराण तत् प्रकीतितम्" इति । सर्वशेति पाननस्याजनैरित्यर्थ ॥ ३५ ॥

श्रयमेव विधि सर्वो मन्थादिष्विप शस्यते । श्रशान्तौ सर्वथा मन्थे भ्रवोरुपरि दाहयेत्॥ ३६॥

श्रयमेव विधिरित्यादि--वाग्मटस्य । श्रयमभिष्यन्दोक्तः । श्रादिशन्दात् । श्रन्यतोवातादय ॥ ३६,॥

जलौकःपातनं शस्तं नेत्रपाके विरेचनम्। शिराव्यधं वा कुर्वीत सेकालेपांश्च शुक्रवत्॥ ३७॥ नेत्रपाकविकित्सामाह जलौक हत्यादि—स्पष्टम् ॥ ३७॥

#### पडड़गुग्गुलुः

विभीतकशिवाधात्रीपटोलारिष्टवासकैः।
काथो गुग्गुलुना पेयः शोथपिल्लाचिग्रलनुत्॥
विल्वञ्च सव्रणं शुक्रं रागादीश्चापि नाशयेत्।
पतेश्चापि घृतं पकं रोगांस्तांश्च व्यपोहिति॥ ३८॥
विभीतकेत्यादी—पिल्ल पञ्चोजिका, किंवा "प्रचालिते तथा नष्टे श्रानद्देन
पुन । श्रपरिक्षित्रवर्त्भान त पिल्लमिति निर्दिशेत्" इत्युक्तलच्योः। श्रत्र
प्रतपाकपचे तु विभीतकादीना काथो गुग्गुल गृहीत्वा ध्तेन पिष्ट्वा विटका कुर्यादिन
त्युपदिशान्ति वृद्धाः॥ ३८॥

#### वासकादि

श्राटरूपाभयानिस्वधात्रीमुस्तात्तकूलकै । रक्तस्रावं कफं हन्ति चचुण्यं वासकादिकम् ॥ ३६॥ श्राटरूपेत्यादि—श्राटरूपक वामकम् । एते कृतकाथेन चचु सेचन, तथा

गुग्गुल प्रविष्य विरेचनमप्युपादेशान्त वृद्धा ॥ ३६ ॥

पथ्यास्तिस्रो विभीतक्यः पड् धाव्यो हादशेय तु । प्रस्थार्के सालिले फाथभएभागावशेपितम् ॥ पीत्वाभिष्यन्दमास्त्रावं रागव्य तिमिरं जयत् । संरम्भरागश्लाश्चनाशनं रक्प्रसादनम् ॥ ४० ॥ पथ्या स्त्यादी—प्रस्थादं स्ति त्रावेशप्यार् सराबद्ये । पालिति साय-

मित्पादुः ॥ ४० ॥

नेत्रे त्वभिद्यते फुर्याच्त्रीतमाश्च्योतनादिकम् ॥
टिष्टिप्रसादजननं विधिमाशु फुर्यात्
स्त्रिग्धेर्हिमेश्च मधुरैश्च तथा प्रयोगः ।
स्वेदाग्निधूमभयशोक्षरजाभिनापैरभ्याद्दतामपि नथैव भिषक् चिक्तिसेन् ॥४१॥

ज्ञानन्तुनेत्ररे।निश्विस्तामाद्द नेत्र इस्यादि—प्रार्थिसम्दादत्र नेपादानां प्रद-यम् । दृष्टीत्यादि—मुभतस्य । दृष्टिपमाद्रजनन नयनावरकदोषनासाम् । भैट्टि- क्ष्रपादन कार्य्यमित्याद्द सिन्धिरित्यादि । रोदादिकृषा रा। एव उपपाते। रोगो रोगजनकत्वादुच्यते । क्षम्यादताभित्यनन्तर दृष्टिभिति रोष । त्रीयस्यगन्तरोगस्यिन्ध-दिमादिविधिना ॥४१॥

श्रागन्तुटोपं प्रसमीच्य कार्य्य वस्त्रोप्मणा स्वेदितमादितस्तु । श्रारच्येतनं स्त्रीपयसा च सद्यायचापि पित्तक्तजापद्यं स्यात्॥ स्य्योपरागानलविद्यदादिविलोक्तनेनोपद्दतेक्तणस्य । सन्तर्पणं स्निग्धहिमादि कार्य्यं सायं निपेव्यास्यिफलाप्रयोगा ॥४२

आगन्तित्यादि—आगन्तुदोष भूल्यावाभिषानम् । वस्त्रोष्मा च तस्त्रपुटा श्राहा । यथापि पित्तचत्तजापद्द स्यादिति पित्ताभिष्यन्दे रकाभिष्यन्दे च यदुक्त तदपि दितम् । त्रिफलाप्रयोगा इति त्रिफलाकाथेन चन्नु भेकादय ॥४२॥

> निशाब्दत्रिफलादार्घीसितामधुकसंग्रुतम्। श्रभिघाताचिश्रलघ्नं नारीचीरेण पूरणम्। इत्कटाट्कुरजस्तवत् स्वरसो नेत्रपूरणम् ॥४३॥

निशत्यादि—एया चूर्णं नारीचीरे प्रक्षिप्य पूर्णम् । तद्ददिति श्रामिपानाद्यि-श्रत्नप्त इत्यर्थः ॥४३॥ श्राजं घृतं चीरपात्रं मधुकञ्चोत्पलानि च । जीवकर्षभकौ चापि पिष्ट्वा सर्पिर्विपाचयेत् । सर्वनेत्राभिघातेषु सर्पिरेनत् प्रशस्यते ॥४४॥

श्राजिमत्यादि — श्राज द्यतिमह प्रस्थमानम् । चीरपात्रमिति पात्रव्चाढकम्, द्रवद्वेगुण्यात् पोडरारारावा , चीरव्चेह गव्यमेव, विशेषाभावात् । अन्ये तु द्रतसाह-चर्यात् चीरमप्याजमाहु । सिंपेषोद्धिरुचारणिमह नस्ये तर्पणे च हितत्वप्रतिपाद-नार्थमिति वदन्ति । जेरुजटस्तु श्राजद्यतस्य कल्कत्वमेवाह, तेन तन्मते हितीयसिंप पदस्य गव्यवृतमेवार्थ इति ॥४४॥

सैन्धवं दारु शुर्ठी च मातुलुइरसो घृतम् । स्तन्योदकाभ्यां कर्त्तव्यं शुष्कपाके तद्यनम् ॥४४॥

शुष्काचिपाकरोगचिकित्सामाह सैन्वनिमत्यादि — सुश्रुतस्य । स्तन्योदकाभ्यामिति उपलच्चे सहार्थे वा तृतीया । सैन्धवदारुशुयठीना मिलित्वा पादिक कल्क
कार्य्य , पादिकत्वन्च मिलिनमातुलुङ्गरमादिद्रवचतुष्टयमपेच्य । सैन्धव माषकद्वयम्,
देवदारुशुयठ्योस्तु प्रत्येक माषकचतुष्टयम् , मातुलुङ्गरसादीना चतुर्यो प्रत्येक द्वादशमाषका । सर्वमेकीकृत्य मृद्विम्ना पक्षच्य यावत् धनीभवति । ततोऽञ्जन कार्य्यम् ।
स्तिन्नेययम् । श्रन्ये तु स्तन्योदकानामिति पठित्वा स्त्रीचीरजलयोमिलितयो समुदयाईमानम् । सैन्धवदारुशुयठीमातुलुङ्गरसष्टताना समभाग । सैन्धवदारुशुयठीना
कल्कम् । मातुलुङ्गरसादिद्रवचतुष्टयेनासाच्याञ्जन कार्य्यम् । रमिक्रवेयमिति । श्रन्ये
तु स्तन्योदकाईमिति व्याचचते ॥४४॥

वाताभिष्यन्दवचान्यद्वाते मारुतपर्यये । पूर्वभक्तं हितं सर्पि चीरञ्जाप्यथ भोजने ॥४६॥

वातादिचिकित्सामाह, वातित्यादि-पूर्वमक्तमिति मकात् पूर्वमिति । श्रन्यतो वाते वातपर्यये च चीरपानम्, श्रनयो. पित्तरकावद्धत्वात् ॥४६॥

वृत्तादन्यां कपित्थे च पश्चमूले महत्यपि । सत्तीरं कर्कटरसे सिद्धश्चापि पिवेद् घृतम् ॥४७॥

वृत्तदन्यामित्यादि — वृत्तादनी वन्दा । वृत्तादन्यादिमि कल्क , चीरं स्नेह-ममम्, कर्कटरसस्त त्रिगुण , एव एत साध्यमिति श्रीकण्ठ । गयदामस्तु वृत्ता-दन्यादीना पत्रमूलान्ताना मिलित्वा दिगुणः काथ , ज्ञीरकर्कटरसयोस्तु प्रत्येक स्नेहममः क्षाथ-, एव ज्ञीरकर्कटरसाविष, इति पत्रगुण पाक इत्याहु. ॥४७॥ श्रभिष्यन्दमधीमन्थं रक्तोत्यमथवार्जुनम् । शिरोत्पातं शिराहर्षमन्यांश्राज्ञिमवान् गदान् ॥ विसम्धस्याज्येन कौम्भेन शिरावेधे शमं नयेत् । श्रम्लाध्युषितशान्त्यर्थं कुर्याक्षेपान् सुशीतलान् ॥ तैन्दुकं त्रैफलं सर्पिजींर्णं वा केवलं हितम् । शिराव्यधं विना कार्यः पिचस्यन्दहरो विधि ॥ सर्पि-लौदाञ्जनञ्च स्याच्छिरोत्पातस्य भेषजम् । तद्वत् सैन्धवकाशीशं स्तन्यपिष्टञ्च पूजितम् ॥ शिराहर्षेऽञ्जनं कुर्यात् फाणितं मधुसंयुतम् । मधुना ताद्यशैलं वा काशीशं वा समाज्ञिकम् ॥ ४८॥

श्रमिष्यन्दिमित्यादौ—श्रन्याश्चिति शुक्रादीन् । कीम्भ सिर्पर्दशवर्षस्थितम् । श्रम्लाध्युपितमित्यादौ—तेन्द्रक सिर्पर्वातव्याधां सुश्रुतेनोक्तम् । श्रेफल त्रिफलाकाथ-कल्काभ्या सिद्धम् । केवलामित्यसस्कृतम् । सिर्पिरित्यादि—सुश्रुतस्य । श्रश्नन सौवी-राज्ञनम् । छतमधुभ्यां सौवीराज्ञन पिष्ट्वा वित्तं कार्या । भेषजभित्यञ्जनरूपम् । तद्ददिति शिरोत्पातभेषजमित्यर्थं । काशीश पुष्पकाशीशम् , धातुकाशीशमित्यन्ये, व्यवहारस्तु पूर्वेण । फाणित द्वगुड । तार्च्यंशैल रसाज्ञनम् ॥ ४०॥

वण्युक्रप्रशान्त्यर्थे षडङ्गं गुग्गुलुं पिवेत् । कतकस्य फलं शह्वं तिन्दुकं रूप्यमेव च । कांस्ये निघृष्टं स्तन्येन चत्रयुकार्त्तिरागजित् ॥ ४६॥

कतकस्थत्यादि—कतक तायप्रसादनफल प्राया मगध मनति। शङ्क नाभि राज्ञम् , तिन्दुक तिन्दुकफलास्थि, रूप्य रूप्यचूर्णम् । एषा सममाग गृष्ठीत्वा कास्य पात्रे स्तन्येन वर्षणीयम् । चतशुक वर्णशुक्रम् ॥ ४६ ॥

चन्दनं गैरिकं लाज्ञा मालतीकलिका समा।
वर्णशुक्रहरा वर्ष्तिं शोणितस्य प्रसादनी ॥
शिरया वा हरेद्रकं जलौकोभिश्च लोचनात्।
अज्ञमज्जाञ्जनं सायं स्तन्येन शुक्रनाशनम् ॥ ४०॥
चन्दनीमत्यादौ—गैरिक स्वर्णगैरिकम् , तंचात्यन्तरक्ष मृदु च यद्गैरिकमिति। पेपणन्तु जलेन, बुद्धा गगनजेलन व्यवहरनि, तदभावे तद्गुणेन वा, पद-

मन्यत्रापि द्रवानुक्तस्थाने वोध्यम् । तथा छायाशोषण्, मधुना घृष्टा चाञ्जनमित्यपि विशेषाभावस्थाने व्यवहारो बृद्धानाम् । श्रचेत्यादौ---स्तन्येनेत्यत्र मध्वपि वोध्यं सुश्रतसवादात् ॥ ५० ॥

एकं वा पुराडरीकञ्च छागीचीरावसेचितम्। रागाश्चेवदनां द्दन्यात् चतपाकात्ययाजकाः॥ ४१॥

पकमित्यादि—एक श्रेष्ठमिति वा तच्च उत्तरापथज पुग्डरीककाष्ठ ।पिष्टा वस्त्रेय पे)ट्टलीं वद्ध्वा छागीचीरे स्थाप्यम्, यदा पीतवर्णं दुग्ध भवति, तदा चच्चिष दुग्ध देयम् । प्रवलरक्षदुष्टी योगोऽयम् ॥ ५१ ॥

तुत्थकं वारिणा युक्तं शुक्तं हन्त्यिच्पूरणात् । समुद्रफेनदचाएडत्विक्सन्धूत्थैः समाविकैः । शिग्रुवीजयुतैर्विचे शुक्रव्नी शिग्रुवारिणा॥ ४२॥

तुत्यकमित्यादि—श्रत्र मध्वपि वोध्य सुश्रुतसवादात् । समुद्रित्यादौ—दत्ता-यदत्वक् , कुक्कुटायडकपालम् । समान्तिकैरिति स्वर्णमान्तिकसिहतैरिति केचित् । श्रन्य तु मधु वदन्ति । समान्तिकैरित्यत्र सशङ्ककैरिति पाठे शङ्कक राङ्कनामि. । शिद्युवारियोति शोमाञ्जनरसेन पिष्ट्वा वर्तिः कार्य्या ॥ ५२ ॥

'घात्रीफलं निम्बक्तिपत्थपत्रं यष्टवाह्वलोधं खिद्रं तिलाश्च। काथो सुशीतो नयने निषिक्क सर्वप्रकारं विनिद्दन्ति ग्रुक्रम् ॥ स्रुग्णपुन्नागपत्रेण परिभावितवारिणा । श्यामाकाथाम्बुना वाथ सेचनं कुसुमापहम् ॥ ४३॥

धालोत्यादौ—निम्बस्य किपत्थस्य च पदाम्। काथ इत्यत्न एषामिति शेषः । सर्वप्रकारिमिति सव्रणमव्यण्च । चुण्णेत्यादि—चुण्ण शिलाया जर्जरीकृत पुन्नागस्य नागकेशरस्य यद् पत्रम् , तेन भावित यद्वारि, तन । श्यामा श्यामालता, तस्या काथरूपमन्तु । कुसुमापद्यमिति शङ्केन्द्रकुन्टवर्णं शुक्रमेव कुसुम तन्नाशनम् ॥ ५३ ॥

द्ज्ञाग्डत्विक्शिलाशङ्ख काचचन्द्रनगैरिकैः। । तुल्यैरञ्जनयोगोऽयं पुष्पामीदिविलेखनः ॥ ४४ ॥

दच्चेत्यादि—दच्च कुनकुट, गोष्ठकुनकुट इत्यन्ये, शिला मन शिला, शङ्क शह न.भि, एवं सर्वत्र । काचः स्वनामख्यात ॥ ५४॥

शिरीपवीजमरिच पिष्पलीसैन्धवैरपि । शुक्रे प्रधर्पणं कार्य्यमथवा सैन्धवेन च ॥ ४४ ॥

शिरोपेत्यादि--शिरीपादिच्युर्णेर्मध्वाक्तशलाकास्थितैर्धपंख कार्थ्यम् । मैन्धेव-नेति केवलसैन्धवच्युर्णेन, अन्ये तु मस्यामैन्धवरायडेनेत्याहु ॥ ५५॥

वहुश पलाशकुसुमस्वरसैः परिभाविता जयत्यचिरात्। नक्षाद्धवीजवर्तिः कुसुमचयं दत्तु चिरजमिष ॥ ५६॥ वहुश स्त्यादि—वहुश सप्ताहम्। नक्षाह्यौजति करअवीजस्य चूर्णं कृत्वा

पलाशकुमुमस्वरमेन वर्ति कार्य्या ॥ ५६ ॥

सैन्घवत्रिफलाकृष्णा-कटुकाशह्वनाभय । सताम्ररजसो वार्चे पिष्टशुक्रविनाशिनी ॥ ५७॥

सैन्धनेत्यादी-—कडका कडरोहिणी, ताम्ररजस्तु मारितताम्रचूर्णम् । पिष्ट-शुक्रविनाशिनीति-पिष्टाख्यनेत्ररोग , ''विन्दुभि पिष्टधवलेरुत्स्विन्ने. पिष्टक वेदत्'' इत्युक्तलचर्णे ॥ ५७ ॥

चन्दनं सैन्धवं पथ्या पलाशतरुशोखितम् । क्रमवृद्धमिदं चूर्णं शुक्रामीदिविलेखनम् ॥ ४८ ॥ चन्दनमित्यादौ—पलाशतरुशोखित किंशुकवृद्यवेष्टकम् । रक्षचन्दनस्य

चन्दनित्यादौ-पलाशतरुशाणित किंशुकष्टचवेष्टकम् । रक्तचन्दनस्य मापक, सैन्धवस्य द्दो, पथ्यायास्त्रय इति वृद्धिकमः । एतच्चूर्णाञ्जन मध्वाक्षशला-कया चन्नुपि देयम्, एव सर्वत्र चूर्णाच्जने ॥ ५८ ॥

#### दन्तवर्तिः

दन्तैर्द्दस्तिवराहोण्ट्रगवाश्वाजखरोद्भवैः ।
सन्धक्रमोक्षिकाम्मोधि-फेर्नेमरिचपादिकैः॥
चतश्चक्रमपि व्याधि दन्तविर्त्तिर्वत्तेयत्॥ ४६॥
दन्तैरित्यादि—वाग्मटस्य । मरिचपादिकैरिति समुदितचूर्यापेचया मरिचस्य चतुर्थो माग । पेपणन्चात्र जलेन वाग्मटसवादात्॥ ५६॥

शङ्खस्य भागाश्चत्वारस्ततोऽर्द्धेन मनःशिला । मनःशिलार्द्ध मरिचं मरिचार्द्धेन सैन्धवम् ॥ एतच्चूर्णांद्धनं श्रेष्ठं शुक्तयोस्ति(मरेपु च।

#### पिचिटे मधुना योज्यमर्वुदे मस्तुना तथा ॥६०॥

राह्वेत्यादि—शङ्ख राङ्कनाभि । नाभिशङ्क मा ४, मन शिला मा २, मित्च मा १, मैन्थव र ५ । चूर्यां ज्जनिमिति मध्वाक्तरालाकया मगृद्य शुक्रदेश वर्षयेत् । ततः त्रिफलाक्कायेन प्रचालन कार्य्यमिति । शुक्रयोरिति सन्नयानय-शुक्रयो ॥ ६०॥

ताप्यं मधुकसारो वा वीजञ्चात्तस्य सैन्धवम् ।

मधुनाञ्जनयोगा स्युश्चत्वारः ग्रुक्तशान्तये ॥ ६१ ॥
वटन्नीरेण संयुक्तं ऋण्णं कर्पूरजं रजः ।
चित्रमञ्जनतो हन्ति ग्रुक्तञ्चापि घनोन्नतम् ॥ ६२ ॥
ताप्यमित्यादि—नप्य स्वर्णमाद्यिकम्, श्रवस्य वीज विभीतकास्थिमज्जा ॥
॥ ६१ ॥ ६२ ॥

त्रिफलामज्जमङ्गल्यामधुकं रक्षचन्दनम् । पूरणं मधुसंमिश्रं चतशुक्राजकाश्रुजित् ॥ ६३ ॥

तालस्य नारिकेलस्य तथैवारुष्करस्य च ।
करीरस्य च वंशानां कृत्वा चारं परिस्रुतम् ॥
करमास्थिकृतं चूर्णं चारेण परिमावितम् ।
सप्तकृत्वोऽप्रकृत्वा वा स्रुद्धं चूर्णन्तु कारयेत् ॥
पतच्छुक्केष्वसाध्येषु कृष्णीकरण्मुत्तमम् ।
यानि शुकाणि साध्यानि तेषां परममञ्जनम् ॥ ६४ ॥

तालस्यत्यादि—नालस्य जटा., नारिकेजस्य फलास्थि, अरुष्करो मल्लात , तस्य फल, वशकरीरस्य तुपाखरी। एतत् सर्वे तिलनालाभिना दग्ध्वा मस्म माद्य,तस्च माव्य-द्रव्यसम गृहोत्वा अष्टगुणोदके षोडगगुणोटके वा नि काथ्य अर्द्धावशेष पादशेष वैकविंश तिवारान् स्नावयेत्। अन्ये तु काथमकृत्वा चतुर्गुणेन पोडशगुणेन वा जलमान्नेण स्नावणमाहु वाग्मटसवादात्। अपर तु मान्यद्रव्यसम भस्म चतुर्गुणेन षोडशगुणेन वा अम्बना नि काथ्य अर्द्धावशेषण विस्नावण वदन्ति। व्यवहारस्तु पूर्वेणैव।

परिस्नाव्य च गृहितेन स्वच्छेन चारोदकेन सप्ताष्टी वासरान् करमास्थिच्युर्णं माच्यम् । करम उच्ट् । पतच प्रतिमावनेमव चूर्णिकर्भव्य, तच्च्युर्णं मध्वाक्षशलाकया सगृद्य शुक्रदेश घर्षयेत् । ततश्च त्रिफलाकाथेनाचित्रचालनमिति क्रियापरिपाटी । चारेर्णित चारोदकेन । पतच्छुकेष्वसाध्येष्विति अनेन शुक्रस्थामाध्यस्य वैवर्ययेनाशन पर क्रियते, न पुन शुक्रनाशनमिति दर्शयति । यानि शुक्रानि साध्यानीस्यादि पाठो शुक्त , न तु शुक्रान्यमाध्यानीति । " नारिकेलास्थिमल्लाततालवशकरीरजम् । मस्माद्रि सावयेत् वामिर्मावयेत् करमास्थिजम् । चूर्णं शुक्रेष्वसाध्येषु तद् वैवर्यन्धमण्डनम् । साध्येषु साधनीयमिदमेव । निश्चलेन पुनरसाध्यानीति पठित्वा पतच्च न कदान्विदिष साध्यशुक्षगोचरतया प्रयोक्षच्यमिति यद्व्याख्यात तदपास्तम्, उक्त-वाग्मटवचनितरोधादेव ॥६४॥

## पटोलाद्यं घृतम्

पटोलं कटुकां दावीं निम्बं वासां फलात्रिकम् । दुरालमां पर्पटकं त्रायन्तीञ्च पलोन्मिताम् ॥ प्रस्थमामलकानाञ्च काथयेत्रत्वणेऽम्मस्ति । पादशेषे रसे तस्मिन् घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ कल्कैर्मृनिम्बकुटजमुस्तयण्ट्याह्वचन्दने । सिपण्पलीकैस्तत् सिद्धं चजुण्यं ग्रुक्रयोर्द्धितम् ॥ घ्राणकर्णात्ववर्त्मत्वङ्मुखरोगव्रणापद्दम् । कामलाज्वरवीसर्पगण्डमालाद्दं परम् ॥६४॥

पटोलिमत्यादि--पटोल पटोलस्य फलम् । कुटज इन्द्रयव , तन्त्रान्तरे ''यष्टि-कलिङ्गमूनिम्बिपपलीवनचन्दनै । कल्केग्रुष्ट्यंशिकेराज्य प्रस्थमात्रप्रसाधितम्''इत्युक्ष-त्वात् । श्रतप्य वचनात् भूनिम्बादीना पलमानता च वोध्या ॥६५॥

# कृष्णाद्यं तैलम्

रुष्णाविडङ्गमधुयष्टिकसिन्धुजन्म-विश्वौषघैः पयासि सिद्धमिदं छगल्याः। तैलं नृणां तिमिरशुक्तशिरोऽत्तिशूल-पाकात्ययान् जयति नस्यविधौ प्रयुक्तम् ॥६६॥ कृष्णित्यादि—कृष्णा पिप्पती । अविशब्दस्य ग्रत्तपाकात्ययाभ्या सम्बन्ध ॥६६ श्रजकां पार्श्वतो विद्ध्वा सूच्या विस्नाव्य चोदकम् । व्रणं गोमयचूर्णेन पूर्येत् सर्पिपा सह ॥६७॥

अनकामित्यादि—सुश्रतस्य । गोमयचूर्णेनेति पाठो लेखकदोषातः, सुश्रते वाग्मटे च तत्तदाकारपुस्तकेषु वहुषु गोमासचूर्णेनेत्येव हि पाठो दृश्यते, टीकाकारैक्ष व्याख्यात इति ॥६७॥

सैन्धवं वाजिपादञ्च गोरोचनसमन्वितम्। शेलुत्वग्रससंयुक्तं पूरणञ्चाजकापद्दम् ॥६८॥

सैन्धविमत्यादौ-वाजिपादोऽश्वखुरः, श्रश्वगन्धामूलमिति केचित्ः व्यवहारस्तु पूर्वेणैव । शेर्छ्वेहुवारः ॥६८॥

#### शशकघृतम्

शशकस्य शिर कल्के शेपाङ्गकथिते जले। घृतस्य कुडवं पकं पूरणञ्चाजकापहम् ॥६६॥

> द्वितीयं शशकाद्यं घृतम् शशकस्य कपाये च सर्पिप कुडवं पचेत्। यष्टीप्रपौराडरीकस्य कल्केन पयसा समम्॥ छगल्याः पूरणाच्छुकत्ततपाकात्ययाजकाः। इन्ति भ्रशङ्खश्रलञ्ज दाहरोगानशेषतः॥७०॥

शशकस्य कपाये चेत्यादि—आकृतिमानात् राशकगुढकमेकम् । अत्रापि
पूर्ववदेव काथकरण, पयसा सम जुल्यम्, अत. पन्चगुण: पाक:, अन्ये तु चतुर्गुणमाहु । एतन्मते काथार्थजलस्य दादश शरावा , स्थाप्यास्तु त्रय इति । इति
कृष्णेनेषु ॥७०॥

त्रिफलाघृतं मध्यवा. पादाभ्यङ्गः शतावरी मुद्गाः। चज्जुष्यः संनेपाद्वर्गः कथितो भिपग्भिरयम्॥७१॥ परिसान्य च गृहीतेन स्वन्छेन चारोदकेन सप्ताष्टी नासरान् करभास्यचूर्णं भाज्यम् । करम उच्ट् । पतच प्रतिमाननेमन चूर्णीकर्तन्य, तन्च्य्णं मध्वाक्षशालक्या सगृद्धा शुक्रदेश धर्षयेत् । तत्थ त्रिफलाकाथेनाचिप्रचालनमिति क्रियापरिपाटी । चारेणित चारोदकेन । पतन्छुक्षेष्वमाध्येष्विति अनेन शुक्रस्यामाध्यस्य वैनर्य्यनाशन पर क्रियते, न पुन शुक्रनाशनमिति दर्शयति । यानि शुक्रानि साध्यानीत्यादि पाठे। युक्त , न तु शुक्रान्यसाध्यानीति । " नारिकेलास्थिमञ्चाततालवशकरीरजम् । भरमाद्रि सावयेत् वाभिर्मानयेत् करमास्थिजम् । चूर्णं शुक्रेष्वसाध्येपु तद् वैनर्य्यन्मन्जनम् । साध्येषु साधनीयमिदमेव । निश्चलेन पुनरसाध्यानीति पठित्वा एतच न कदाचिदिप साध्यशुक्तगोचरतया प्रयोक्तन्यमिति यद्व्याख्यात तदपास्तम्, उक्तन्वाग्मटवचनितरोधादेव ॥६४॥

पटोलाद्यं घृतम्

पटोलं कटुकां दावीं निम्बं वासां फलात्रिकम् । दुरालमां पर्पटकं त्रायन्ती अपलोनिमताम् ॥ प्रस्थमामलकाना अकाथयेत्रत्वणे अम्मस्ति । पादशेषे रसे तस्मिन् घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ कल्कैर्मूनिम्बकुटजमुस्तयष्ट्याह्वचन्द्ने । सिपण्पलीकैस्तत् सिद्धं चचुष्यं शुक्रयोर्द्धितम् ॥ प्राणकणीत्विवर्तमत्बङ्मुखरोगवणापद्दम् । कामलाज्वरवीसर्पगण्डमालाहरं परम् ॥६४॥

पटोलिमत्यादि-पटोल पटोलस्य फलम् । कुटज इन्द्रयेव , तन्त्रान्तरे ''यष्टि-कलिङ्गमूनिम्बिपप्पलीघनचन्दनै । कल्केमुष्ट्यशिकेराज्य प्रस्थमात्रप्रसाधितम्''इत्युक्ष-त्वात् । भतस्व वचनात् मूनिम्बादीना पलमानता च वोध्या ॥६५॥

# कृष्णाद्यं तैलम्

कृष्णाविडङ्गमघुयष्टिकसिन्धुजन्म-विश्वौषद्यैः पयासि सिद्धमिदं छुगल्याः। तैलं दृणां तिमिरशुक्तशिरोऽत्तिशूल-पाकात्ययान् जयति नस्यविधौ प्रयुक्तम् ॥६६॥ कृष्णेत्यादि—कृष्णा पिप्पली । श्रिच्याब्दस्य ग्र्लपाकात्ययाभ्या सम्बन्ध ॥६६ श्रजकां पार्श्वतो विद्ध्वा सूच्या विस्नाव्य चोदकम् । त्रणं गोमयचूर्णेन पूरयेत् सर्पिपा सह ॥६७॥

श्रजकामित्यादि—सुश्रतस्य । गोमयचूर्णेनेति पाठो लेखकदोषादः, सुश्रते वाग्भटे च तत्तदाकारपुस्तकेषु वहुषु गोमासचूर्णेनेत्येव हि पाठो दृश्यते, टीकाकारैश्र व्याख्यात इति ॥६७॥

सैन्धवं वाजिपादञ्च गोरोचनसमन्वितम् । शेलुत्वग्रससंयुक्तं पूरणञ्चाजकापद्दम् ॥६८॥

सैन्धविमत्यादौ—वाजिपादोऽश्वखुर , श्रश्वगन्धामूलमिति केचित्, व्यवहारस्तु पूर्वेथैव । रेार्छ्वहुवार. ॥६=॥

#### शशकघृतम्

शशकस्य शिर करके शेषाङ्गकथिते जले। घृतस्य कुडवं पकं पूरणञ्चाजकापहम्॥६६॥

द्वितीयं शशकाद्यं घृतम्

शशकस्य कषाये च सर्पिप कुडवं पचेत्। यधीप्रपौराडरीकस्य कल्केन पयसा समम्॥ छगल्या पूरणाच्छुकचतपाकात्ययाजका। इन्ति भ्रशङ्खश्रलञ्ज दाहरोगानशेपतः॥७०॥

राशकस्य कषाये चेत्यादि--आकृतिमानात् राशकगुडकमेकम् । अत्रापि पूर्ववदेव काथकरण, पयसा सम तुल्यम्, अत पञ्चगुण पाक., अन्ये तु चतुर्गुण-माहु । पतन्मते काथार्थजलस्य दादश शरावा , स्थाप्यास्तु त्रय इति । इति कृष्णजेषु ॥७०॥

> त्रिफलाघृतं मध्यवाः पादाभ्यङ्गः शतावरी मुद्गाः। चक्तुष्य संत्रेपाद्वर्गः कथितो भिपग्मिरयम् ॥७१॥

त्रिफलेत्यादौ—त्रिफलेति छेद , सापि काथचूर्णादिविषयोपयोज्या । धतन्त्र यदि सामान्यत एव चत्तुष्य तथापि पुराणमातिशयेन वोध्यम् , सुश्रुते — "धत पुराण त्रिफला शतावरी पटोलसुद्गामलकान् यथानि। निपेन्यमाणस्य जनस्य यक्षतो मय सुघोरात् तिमिरान्न विद्यते" इति ॥७१॥

लिह्यात् सदा वा त्रिफलां सुचूर्णितां घृतप्रगाढान्तिमिरेऽथ पित्तजे। समीरजे तैलयुतां कफात्मके मधुप्रगाढां विदधीत युक्तित ॥

कर्कः काथोऽथवा चूर्ण त्रिफलाया निपेवितम्।
मधुना द्विषा वापि समस्तातिमिरान्तकृत् ॥
यस्त्रैफलं चूर्णमपथ्यवर्जी सायं समस्राति द्विमेधुभ्याम्।
स मुच्यते नेत्रगतैर्विकारैर्भृत्यैर्यथा ज्ञीणधने। मजुष्य ॥
सघृतं वा वराक्वांथ शीलयेत् तिमिरामयी।
जाता रोगा विनश्यन्ति न भवन्ति कदाचन ॥

त्रिफलाया कपायेण प्रातर्नयनधावनात्॥ जलगण्डूपे प्रातर्वहुशोऽम्मोभि प्रपूर्य्य मुखरन्ध्रम्। निर्देयमुक्तक्षक्ति चपयति तिमिराणि ना सद्य ॥ ७२॥

लिह्यादित्यादि—सुश्रुतस्य । युक्तित इति मात्रया । अत्र यस्त्रेफल चूर्यमि-त्यादेरनन्तर सष्टत वा वराकाथ शीलयेत् तिमिरामयीति पाठा न युक्त , कल्क काथोऽथवा चूर्णमित्यादिनैवाक्तार्थत्वात् । जाता इत्यादी—धावनादिति प्रज्ञाल-नात् । निर्दयमुक्तिक्रिति अवगाढ सिन्चन् , ना इति पुरुष ॥ ७२ ॥

भुक्त्वा पाणितलं घृष्ट्वा चचुपोर्यत् प्रदीयते । श्रचिरेणैव तद्वारि तिमिराणि व्यपोद्दति ॥ ७३ ॥ अन्तेत्यादौ—पाणिततमित्यनन्तरमाचान्तवारिपरिष्वतमिति रोप. ॥७३॥

### सुखावती वार्त्तः

कतकस्य फलं शङ्खं त्र्यूषणं सैन्धवं सिता । । फेना रसाञ्जनं चौद्रं विडङ्गानि मन शिला ॥ कुक्कुटाएडकपालानि वर्त्तिरेषा व्यपोहति । तिमिरं पटलं काचमर्भ शुक्तं तथैव च ।

कराङ्क्रोदार्बुदं हन्ति मलञ्चाशु सुखावती ॥ ७४ ॥

कतकत्येत्यादि—कनकत्य फल जलप्रमादफल, गङ्ख राह्वनाभि., मिता
गर्करा, फेन नमुद्रफेन: । चौद्रमत्रान्जनार्थं, पेपण्टच जलेन । इयन्च वर्ति.
पित्ताशिते तिमिरे मद्रा ॥ ७४ ॥

### चन्द्रोदया वर्तिः

हरीतकी वचा कुछं पिष्पली मरिचानि च ।
विभीतकस्य मज्जा च शङ्क्षनाभिर्मनःशिला ॥
सर्वमेतत् समं कृत्वा छागीन्तिरेण पेपयेत् ।
नाशयेत् तिमिरं कर्र्ड्डं पटलान्यर्वुदानि च ॥
श्रिधिकानि च मांसानि येन रात्रौ न दृश्यते ।
श्रिपि द्विचार्पिकं पुष्पं मासेनैकेन साधस्रेत् ॥
वर्तिश्चन्द्रोदया नाम नृणां दृष्टिप्रसादनी ॥ ७४ ॥
चन्द्रोदयविस्तु कर्फातिमिरे प्रशस्ता । जलेन चान्जनमिति श्रीक्षण्ठः, तत्
सिद्धलाचन्नुष्यलाच मधुनापि व्यवहरनि वृद्धा. ॥ ७४ ॥

हरीतकी हरिद्रा च पिष्पत्यो लवणानि च ।

कराङ्क्तिमिरजिद्धर्त्तिने कचित् प्रतिहन्यते ॥ ७६ ॥

हरीतकीत्यादौ—लवणशब्दः सैन्धववचनः चक्तुष्यत्वादः, तच प्रथममागापेचया चतुर्थारामित्याहु । इयमपि कफे हिता । न कचित् प्रतिहन्यत इति पित्तवेष्वपि न वार्य्यत इत्यर्थः ॥ ७६ ॥

### कुमारिका वार्तिः

श्रशीतिस्तिलपुष्पाणि पिष्टः पिष्पलितग्हलाः । जातीकुसुमपञ्चाशन्मरिचानि च पोडश । एपा कुमारिका वर्त्तिगतं चलुर्निवर्त्तयेत् ॥ ७७ ॥ एपा कुमारिका वर्तिरितर्त्र कुन्नमिका वर्तिरिति कृदे पट्टाते ॥ ७७ ॥

### त्रिफलाद्यवार्तिः

त्रिफलाकुकुटाएडत्वक् काशीशमयसो रजः।

11

नीलोत्पलं विडङ्गानि फेनश्च सारितां पते ॥ श्राजेन पयसा पिष्ट्वा भावयेत् ताम्रभाजने । सप्तरात्रं स्थितं भूयः पिष्ट्वा सीरेण वर्त्तयेत् ॥ एपा दृष्टिप्रदा वर्त्तिरन्धस्याभिन्नचन्नुष ॥ ७८॥

त्रिफलेत्यादौ—काशीश धातुकाशीशम्, अयसी भारितपुटितस्य रज । भावयदिति स्थापयेत् लेपयेदिति वा । चीरेणेति आवेनैवेत्याहु वर्त्तयेदिति वर्त्ति कुर्यात् । अभिक्षचत्तुप इति अनष्टतारकस्य ॥ ७८ ॥

### चन्दनाद्यवित्तः

चन्दनत्रिफलापूगपलाशतक्शोशितैः। जलिपेटेरियं वर्त्तिरशेषतिमिरापहा॥७६॥

चन्दनेत्यादी---पूग गुवाकफलम्, पलाशतरुशोणित किंशुकवेष्टकम्, पलाश-पुष्पस्वरस इत्यन्ये ॥७६॥

### निशाद्यमञ्जनम्

निशाद्वयाभयामांसीकुष्ठकृष्णा विचूर्णिता । सर्वनेत्रामयान् हन्यादेतत् सौगतमञ्जनम् ॥६०॥ निशत्यादी—द्वगतो इदस्तिश्रिमितत्वाद् मौगतम् ॥६०॥ व्योषोत्पलाभयाकुष्ठतार्द्धिर्वर्ति कृता हरेत् । श्रर्बुदं पटलं काचं तिश्मिरामाश्रुनि स्रुतिम् ॥६१॥ व्योषेत्यादी—तार्च्यं रसान्त्रनम् ॥६१॥

## त्र्यूषगाद्यवार्त्तः

त्र्यूपणं त्रिफला वक्त्रं सैन्धवालमन शिला । क्रेदोपदेहकराङ्क्ष्मी वर्त्ति शस्ता कफापद्दा ॥=२॥ त्र्यूपणेखादौ—वक्त्र तगरपादुका, श्राल हरितालम् ॥=२॥

#### नयनसुखा वर्त्तिः

एकगुणा मागधिका द्विगुणा च हरीतकी सलिलपिष्टा। वर्षिरियं नयनसुखा तिमिरामेपटलकाचाश्रहरी । प्रशा ण्कगुणेत्यादौ--अत्र अमंतिमिरपटलाश्रुकाचहरीति पठनीयम्, श्रन्यथा छन्दो-मङ्गः स्यात् ॥=३॥

### चन्द्रप्रभा वित्तः

श्रक्षनं श्वेतमरिचं पिष्पली मधुयप्रिका।
विभीतकस्य मध्यन्तु श्रङ्खनाभिमेन शिला॥
पतानि समभागानि श्रजाद्धीरेल पेपयेत्।
छायाग्रुष्कां छतां वर्तिं नेत्रेषु च प्रयोजयेत्॥
श्रिवुंदं पटलं काचं तिमिरं रक्षराजिकाम्।
श्रिधिमांसं मलञ्जेव यश्च रात्रौ न पश्यित॥
वर्तिश्चन्द्रप्रभा नाम जातान्ध्यमि शोधयेत्॥ १४॥

श्रक्षनित्यादि--श्रञ्जन रसाक्षनम्, श्वेतमरिच शोभाक्षनवीजम्, यव सर्वत्र ॥८४॥

### श्रीनागाजुना वर्त्तिः

त्रिफलाव्योषसिन्धृत्थयष्टीतृत्थरसाञ्जनम् ।
प्रपौराहरीकं जन्तुष्टं लोधं ताष्ट्रं चतुर्दश ॥
प्रव्यार्येतानि सञ्चूर्यं वर्ति कार्यां नभोऽम्बुना ।}
नागार्जुनेन लिखिता स्तम्भे पाटलिपुत्रके ॥
नाशिनी तिमिराणाञ्च पटलानां तथेव च ।
सद्य प्रकोपं स्तन्येन स्त्रिया विजयते ध्रुवम् ॥
किंशुकस्वरसेनाथ विल्वपुष्पकरक्षताः ।
श्रञ्जनास्नोधतोयेन चासम्नतिमिरं जयेत् ॥
चिरमाच्छादिते नेत्रे वस्तम्त्रेण संयुता ।
उन्मीलयत्यक्चेष्टुण प्रसादश्चािधगच्छति ॥
प्रमीलयत्यक्चेष्टुण प्रसादश्चािधगच्छति ॥
प्रमीलयत्यक्चेष्टुण प्रसादश्चािधगच्छति ॥
प्रमीलयत्यक्चेष्ट्रण प्रसादश्चािधगच्छति ॥

त्रिफलेत्यादौ--जन्तुझ विडक्षम्, ताझब्च मारित आद्यम् । चतुर्दशेति सख्या-कथनेन अस्या वर्त्तेश्चतुर्दशाङ्गीति नामान्तरमि स्चितम् वाग्मटवचनात् । स्तम्भे शिलास्त्रम्भे । किंशुकस्वरसेनेति किंशुकपुण्पस्वरसेन ॥ ५॥

15

#### पिप्पल्याद्यवार्त्तः

पिष्पर्ली सतगरोत्पलपत्रा वर्त्तयेत् समधुकां सहरिद्राम् । एतया सततमञ्जयितव्यं यः सुपर्णसममिच्छति चत्रुः ॥=६॥

पिप्पलीमित्यादी---उत्पलपत्रम् उत्पलपुष्पस्य पत्रम् । वर्त्तयेदिति वर्त्ति कार-येत ॥=६॥

#### कोकिला वित्तका

व्योपायश्चूर्णसिन्धृत्थत्रिफलाञ्जनसंयुता । गुडिका जलपिष्टेयं कोकिला तिमिरापद्दा ॥८०॥

व्योपेस्यादी----श्रन्जन सीवीरान्जनम् । कीकिलवत् ष्ठप्णवर्थत्वात् कीकिलीत वत्तं मज्ञा ॥=७॥

त्रीणि कटूनि करञ्जफलानि द्वे रजनी सह सैन्धयकञ्च । विल्वतरोर्वरुणस्य च मूल वारिचरं दशमं प्रवदन्ति ॥ इन्ति तमस्तिमिर पटलञ्च पिश्विटशुक्रमथार्जुनकञ्च । श्रञ्जनक जनरञ्जनकञ्च हक् च न नश्यति वर्पशनञ्च ॥==

त्रीणीत्यादी—द्वे रजनीति स्नोलिङ्गनिर्वेशात् न्नीलिङ्गे एस्वेकारान्तोऽपि रजनीशच्दोऽस्तीति जेयम्।वारिचर शङ्गनाभि ,वारिधर इति पाठे वारिधरो मुस्तकम्। इन्ति तमस्तिमिरामिति अन्धकारत्वमाधर्म्यात् तम सदृश तिमिर इन्तीति । अञ्जनक-मिति मज्ञाया स्वार्थे क । जनरञ्जक जनानुरागकारीत्यर्थ । दोषकारूयच्छन्द्व ॥ ॥ ॥

नीलोत्पलं विडङ्गानि पिष्पली रक्षचन्द्नम् ।

श्रव्जनं सैन्धवञ्चेव सद्यस्तिमिरनाशनम् ॥ ८ ॥

नीलोत्पलिमत्यादौ-अन्जन रसान्जनम् , पव वस्त्यमार्थेऽपि ॥ ८ ॥

पत्रगैरिककर्षूर्यप्रीनीलोत्पलाञ्जनम् ।

नागकेशरसंयुक्षमशेषितिमिरापहम् ॥ ६० ॥

पत्रेत्यादि-पत्र तेजपत्रम् , गैरिक स्वर्णगैरिकम् ॥ ६० ॥

शह्वस्य चतुरो भागास्तदर्द्धेन मन शिला ।

मन शिलाई मरिचं मरिचार्द्धेन पिष्पली ॥

वारिणा तिमिरं हन्ति श्रर्थुदं हन्ति मस्तना ।

पिचिटं मधुना हन्ति स्त्रीचीरेण तदुत्तमम् ॥ ६१ ॥ राङ्कस्येत्यादी-चतुरा मागा शित छान्दसत्त्रातः। एतैर्जलिपेष्टै वित्तं कार्य्याः। स्त्रीचरिण तदुत्तममिति उत्क्रप्टशक्तिकमित्यर्थः ॥ ६१ ॥

हरिद्रा निम्वपत्राणि पिष्पल्यो मरिचानि च ।
भद्रमुस्तं विडङ्गानि सप्तमं विश्वभेषजम् ॥
गोमूत्रेण गुडी कार्यो छागमूत्रेण चाञ्चनम् ।
ज्वरांश्च निष्विलान् हन्ति भ्तावेशं तथैव च ॥
वारिणा तिमिरं हन्ति मधुना पटलं तथा ।
नक्रान्थ्यं भृद्गराजेन नारीक्तिरेण पुष्पकम् ॥
शिशिरेण परिस्नावमध्यं पिचिटं तथा ॥ ६२ ॥

हरिद्रेत्यादौ-भद्रमुस्त कान्तकामक । भृद्गराजेनेति भृद्गराजस्वरमेन । शिशिरेखेत्यवश्यायजलेन । श्रधुष मुखरोगविशेष , ज्वराश्च निखिलान् हन्ति इति । ''प्रभावादेव हन्ति ज्वराश्च'' इति निश्चलस्तु श्रायुवेदे पठति ॥ ६२ ॥

संगृद्धोपरतानलक्षकरसेनामृज्य गङ्कपदान् लाज्ञारिक्जतत्त्लवर्त्तिनिहितान् यप्टीमधूनिमश्चितान्॥ प्रज्वाल्योत्तमसर्पिषानलशिखासन्तापजं कज्जलं दूरासन्निशान्ध्यसर्वतिमिरप्रध्वंसकृञ्चोदितम्॥ भूमौ निघृष्टयांगुल्या श्रव्जनं शमनं तये।। तिमिरकाचार्महरं धूमिकायाश्च नाशनम्॥ ६३॥

सगृद्धोत्यादौ —उपरतानिति मृतान्, श्रामृज्यालक्तकरसेन मावियत्वा इत्यर्थ । लाक्षाराञ्जित तूलमलक्तकम्, उत्तमसापिपा गन्यष्टतेन । मृतगय्डूपदान् श्रलक्तकरस दत्त्वा श्रातेष शोषयेत् , तदनु चूर्यीकर्त्तन्य, तदनु तत् गय्डूपदचूर्यं यष्टिमधुचूर्येन मह श्रलक्तपत्रमध्ये कृत्वा स्त्रेण सनेष्ट्य वर्ति कार्य्या । तया वर्त्या गन्यष्टतिमिश्र-तया दीप प्रज्वाल्य तद्दीपशिखोपिर निर्मलकाचादिपात्र धृत्वा कज्जलपातन कर्त्तन्य, तेन कज्जलेन कदुष्योनाञ्चन कर्त्तन्यमिति क्रियामार्ग । श्रान्ध्यशब्दो दूरादिमि मम्बध्यते । प्रत्येक तयोरिति दूरासन्नान्ध्ययोर्निशान्व्यदिवान्ध्ययोरिति वा धूमिका धूमिकावलोकनम् ॥ ६३ ॥

विफलाभृद्गमहौषधमध्वाज्य च्छागपयसि गोमूत्रे।
नागं सप्तनिपिक्तं करोति गरुडोपमं चलु ॥ ६४ ॥
विफलासिललयोगे भृद्गराजद्रवे च
हिविषि च विषकत्के चीर श्राजे मधूग्रे।
प्रतिदिनमथ तसं सप्त वा सीसमेकम्।
प्राणिहितमथ पश्चात् कारयेत् तच्छलाकाम् ॥
सवितुरुद्यकाले साञ्जना व्यञ्जना वा
करकारिकसमेतानमंपैचिट्यरोगान्।
श्रासितसितसमुत्थान् सन्धिवतमांभिजातान्
हर्राते नयनरोगान् सेव्यमाना शलाका ॥ ६४ ॥

त्रिफलेत्यादै।—इिविधि च विपकत्क इति विध मारकद्रव्य कत्करूप तत्र तादृशि इविधि । अतस्व चन्द्रिट "इविधि च विषमित्रे" इत्युक्तम् । वाग्मेटऽिध "सविधाच्यमनापय" इत्युक्तम् । मधूम इति प्रचुर मधुनि, अन्ये तु मधुराच्देन यष्टिमधु वदन्ति । उक्त हि वाग्मेटे—'वराजल मृह्नजल सविधाच्यमजापय. । यष्टी-रसण्च यत्त सीम सप्तकृत्व पृथक् पृथक् दिति । साञ्जना तिमिराञ्जनेन सहिता, व्यञ्जना तद्रहिता । करकरिका वालुकाभिभूतनेत्रवेदनावत् वेदना ॥ १५॥

> विञ्चापत्ररसं निधाय विमले चौह्रम्वरे भाजने मूलं तत्र निघृष्टसैन्धवयुतं गौंखं विशोण्यातपे। तञ्चूर्णं विमलाञ्जनेन सहितं नेत्राञ्जने शस्यते काचार्मार्जुनपिचिटे सतिमिरे स्नावञ्च निर्वापयेत् ६६

चिष्चेत्यादी--भौडुम्बरे भाजने ताम्रादिपात्रे । गोन्ज मूल काक्रणन्तिका-मूलम् । विमलान्जन सीवीरान्जनम् ॥ ६६ ॥

> चित्रापष्टीयोगे सैन्धवममलं विचूएर्थं तेनाचि । सममञ्जनेन तिमिरं गच्छति वर्षादसाध्यमपि ॥ ६७ ॥ चित्रत्यादि—चित्रापष्टीयोग रति चित्रानचन्नयुक्तपष्टयाम् ॥ ६७ ॥ दचादुशीरनिर्यृहे चूर्थितं करासैन्धवम् ।

तत् स्रुते सघृतं भूयः पचेत् चौद्रं चिपेद् घने ॥
शीते तस्मिन् हितमिदं सर्वजे तिमिरे अजनम् ॥ ६८ ॥
दधादित्यादि—नाग्मदस्य । कणेति पिप्पली, झान्दसत्नात् हस्तत्नम् । स्रुत
इति वस्त्रपरिस्रुते, धतन्त्रोशीरिनिर्यूहिविरोषणम् । उशीरमूलस्य काथः, कणासैन्धवधतानि मिलित्व। पादिकानि श्रष्टमाशानि वा दस्ता, पाकात् धन कार्य्य । शीते
चास्मिन् पादिक मधु प्रचेष्यम् । वैद्यप्रसारके त्वस्या विवरण धथा—'उशीरस्य
पलद्दय, जलस्य चत्वार शरावा , स्थाप्यस्तु शराव एक , पूते तस्मिन् प्रचेपार्थं
कणासैन्धवयो प्रत्येकमप्टमापक, धतस्य च कर्षं , पुन. पाकेन धनीमूते शीते च
मधुन: कर्ष. ॥ ६८ ॥

धात्रीरसाञ्जनचौद्र-सर्पिभिस्तु रसिक्षया। पित्तानिलाचिरोगधी तैमिर्य्यपटलापहा॥ ६६॥

धात्रीत्यादि — धात्रीकाथे रसान्जनचूर्यं घतन्च प्रचिप्य पुन, पाकात् रस-क्रिया साध्या। रमिक्रियेति धनीभूतकाथस्य सङ्घा। शीते च मधु भेच्चप्यम्। मानमेषा सर्वेषा पूर्ववदिति ॥ ६६ ॥

> श्टङ्गवेरं भृङ्गराजं यधीतैलेन मिश्रितम् । नस्यमेतेन दातव्यं महापटलनाशनम् ॥ १०० ॥

शृङ्गवेरमिस्यादि—यष्टिमधुसाधितेन तैलेन मिश्रित शृङ्गवेरमङ्गराजचूर्यं नस्य किंवा भृङ्गराजस्वरसे तैलमिश्रिते शृङ्गवेरयष्टिमधुचूर्यं प्रिचय नस्य कार्यम् ॥ १०० ॥

> लिइनाशे कफोद्भूते यथावद्घिघपूर्वकम् । विद्ध्वा दैवछते छिद्रे नेत्रं स्तन्येन पूरयेत्॥ ततो दृष्टेपु रूपेषु शलाकामाहरेच्छनैः । नयनं सर्पिपाभ्यज्य वस्त्रपट्टेन वृष्टयेत्॥ ततो गृहे निरावाधे शयीतोत्तान एव च । उद्गारकासत्त्वथुष्ठीवनोत्कम्पनानि च ॥ तत्कालं नाचरेदृद्ध्वं यन्त्रणा स्नहपीतवत्। ज्यहात् ज्यहाद्धारयेत्तु कषायैरनिलापहैः॥ वायोभयात् ज्यहादृद्ध्वं स्वेदयेदित पूर्त्वच।

दशरात्रन्तु संयम्य हितं दृष्टिप्रसादनम् ॥
पश्चात् कर्म च सेवत लघ्वन्नश्चापि मात्रया ।
रागश्चोषोऽर्बुदं शोथो बुद्बुदं केकराज्ञिता ॥
श्चिमन्थादयश्चान्ये रोगा स्युदुष्टवेधजाः ।
श्चिहिताचारतो वापि यथास्वं तानुपाचरेत् ।
रुजायामज्ञिरोगे वा भूयो योगान् निवोध मे ॥१०१॥

लिङ्गनाश इत्यादि--लिग्यते ज्ञायतेऽनेनेति लिङ्ग दृष्टिस्तस्य नाशो लिङ्ग-नाश । कफोट्भूते इत्यनेन वातज पित्तजश्च विद्धो न सिध्यतीति दरायित । यथवादिधिपूर्वकमिति-विधिश्च विदेष्ट-सुश्रताद्युक्त तत्रानुमन्धयः, स च विस्तार-भयाश्र लिखित । दैवकृते छिद्रे भ्रपाङ्गमागवातिन शुक्तमागस्य मध्ये यद्देवकृत ।छद्र-मस्ति, तस्मिन् । तदुक्त सुश्रुते-- मितिमान् शुक्तभागी ही कृष्णान्मुको स्रपादत । उन्मील्य नयने सम्यक् छिद्र दैवकृते तत । शलाकया ताम्रमय्या व्यथयेत् रत्यादि । कृष्णात् कृष्णमयहलात् प्रमृति हो शुक्तमागी त्यक्ता मध्ये दैवकृत छिद्र यदस्ति, तरिमन् विध्येदिति । व्यथम् तथा कर्त्तव्यो यथा एकैव पर त्विमद्यते । सम्यग्व्यथ-लिङ्गश्च सुश्रतेनोक्षः, यथा--- 'वारिगमे सम्यवशब्दश्च व्यथने मवेत् । श्रसम्यग्विदे तु शोश्वितागम " इति । पट्टबक्केण वेष्टयेदिति-सद्य चतरोपणलोधरक्षचन्दन त्रिफलाचूर्णं दत्त्वा वस्नेण वेष्टनम्, श्रन्ये तु धुस्तूरिपण्ड दत्त्वा वस्नेण वेष्टयन्ति । निरात्राध इति धूमातपादिरहितस्थाने । शयीतोत्तान एवेति एतच चत्तुर्दयोव्यंधे श्रेयम्, एकतरस्य व्यधे तु विद्धचत्तुपोऽन्येन पार्श्वेन शयन श्रेयम् । • वाग्मेट-प्येवमेनोक्तम् । उद्गारेत्यादी-उत्कम्पन कम्पनमेव । तत्कालमिति सप्ताहम् । उक्त हि नाग्मेटे---चनथुकासमुद्गार सप्ताह नाचरेत्'' इति । उद्ध्वीमिति उत्तानशयनात पर उद्घारादीनि सप्ताइ परिहरेदित्यर्थ । यन्त्रणा स्नहपीतनदिति स्नहपीतन्येव आहाराचारादिनियम: पूर्ववत् इति वस्त्रेणाच्छाच । कियन्त कालमय विधि कार्य्य इत्याह दशाहमेनमित्यादि --सयम्येति एनमुत्तानशयनादिना श्रात्मान नियम्य श्रनन्तर दृष्टिप्रसादनादि हित पश्चाह्मन्त्रन्नापि कर्म सेवेतेत्यर्थ । दृष्टिप्रसादन-मक्षनादि लघ्नन्नञ्चापीति चकाराइशाहाभ्यन्तरेऽपि लघ्वन्नविधि समुचिनीति । राग रत्यादि--- सुभुतस्य । चीप उपतापः, चीपखनत् पीडा ना,श्रर्नुदम् श्रर्नुदाकारशीथ , बुद्बुद बुद्बुदाकारशोथ । केकराचिता वक्रदृष्टिता, टेरनेत्रमिति यावत् । गृङ्करा-

चितेति पाठान्तरे ग्रक्तरस्येवाधोदृष्टितेत्यर्थ । रे।ग इत्यादि सुश्रतस्य । यथास्विमिति वातादिप्रत्यनीकादिभिः । रुजायामिनि चोपादिरूपपीडायाम् ॥१०१॥

> किल्कता सघृता दूर्वयवगैरिकशारिवा । सुखालेपाः प्रयोक्तव्या रुजारागोपशान्तये ॥१०२॥

कितना इत्यादि—नाग्भटस्य । सुखालेपा इति एते सममागैश्चन्तु समीपे प्रलेप इति । रागोऽिच्चलीहित्यम् ॥१०२॥

पयस्याशारिवापत्र-मक्षिष्ठामधुकैरिप । श्रजाचीरान्वितेर्लेपः सुखोष्ण पथ्य उच्यते ॥१०३॥

पयस्थेत्यादि —वाग्मटस्य । पयस्या चीरकाकोली, पत्र तेजपत्रम् । वाग्मटे नुखोष्ण पथ्य उच्यते इत्यत्र सुखोष्ण शर्मकृत् पर इति पाठ ॥१०३॥

> वातव्रसिद्धे पयसि सिद्धं सर्पिश्चतुर्गुणे । काकोल्यादिप्रतीवापं प्रयुञ्ज्यात् सर्वकर्मसु ॥ शाम्यत्येवं न चेच्छूलं स्निग्धस्वित्तस्य मोत्तयेत् । तत शिरां दहेचापि मतिमान् कीर्त्तितां यथा । हेप्टरतः प्रसादार्थमञ्जने श्वरणु मे शुभे ॥१०४॥

वातप्तेत्वार्टं — सुश्रुतस्य । वातप्तो भद्रदार्वादि , तेन चीरसाधनपरिमाषया मिद्ध पर्यासे चतुर्श्यो । सर्वकर्मस्विति नस्यापानादिषु । शाम्यतीत्यादि — सुश्रुतस्य । शिरामिति ललाटस्था शिरा मोचयेत दहेचापीत्यन्वय । दृष्टेरित्याटि — सुश्रुतस्य । श्रुत इति शिरान्यथदाद्दानन्तरम् । न्यथदाद्दाभ्या दोषशेषेण वा कलुपिताया दृष्टे प्रमादनाय श्रुजनम् । श्रुक्षने इति श्रुजनद्वयम् ॥१०४॥

मेषश्रद्गस्य पत्राणि शिरीपधवयोरिप । मालत्याश्चापि तुल्यानि मुक्तावैदूर्य्यमेव च । श्रजाद्गीरेण सम्पिष्य ताम्ने सप्ताहमावपेत् । प्रणिधाय तु तद्वर्त्ति योजयेदक्षने भिषक् ॥१०४॥

मेष खड़ी मेष खड़ी, पुत्रक्षावकवृत्त इत्यन्ये । आवपेदिति आलिप्य स्थाप-येत् ॥१०४॥ स्रोतोजं विदुमं फेनं सागरस्य मनःशिला । मरिचानि च तद्विं कारयेत् पूर्ववद्भिपक् ॥१०६॥ स्रोतोबिमसादि—ग्रुम्रतस्य । स्रोतोज रसाजनम् । पूर्वविति छागीचीरेण

पिष्ट्वा तात्रपत्रि सप्ताह स्थापयेदित्यर्थ ॥१०६॥

रसाञ्जनं घृतं चौद्रं तालीशं स्वर्णगैरिकम्। गोशकृद्रसंसयुक्तं पिचोपहतदृष्ये ॥१०७॥

रसाजनामित्यादौ--गोराकृद्रसेन वार्त्ति कार्य्यो ॥१०७॥

निलनोत्पलिकजलकं गोशकद्रसंसयुतम् । गुडिकाञ्जनमेतत् स्याद्दिनराज्यन्थयोर्द्दितम् ॥१०८॥

निलनेत्यादि—निलन पद्मम्, उत्पल नीलोत्पलम्, इयो॰ किञ्जल्क । गोश-कृद्रमेति गोशकृद्रसेन गुडिका कार्य्या इत्यादु ॥१०८॥

> निदीजशह्व त्रिकद्रन्यथाञ्जनं मनःशिला द्वे च निशे गवां यकृत्। सचन्दनेयं गुडिकाथ चाञ्जने प्रशस्यते रातिदिनेष्वपश्यताम्॥ १०६॥

नदीजेत्यादि-सुश्रुतस्य । नदीज सैन्धनम् , शङ्क शखनामि , शखस्थाने शिम्बीति पाठे शिम्बी हरितसुद्गं , अजन रसान्जनम् । गवा यक्तत् बुकाय ,शक्क-दिन्यिप पाठान्तरम् ॥ १०६ ॥

कणाञ्छागयक्तन्मध्ये पक्का तद्रसंपेषिता । श्रीचराद्यन्ति नक्कान्ध्यं तद्वत् सत्तौद्रमूषणम् ॥ ११०॥

क्रणेत्यादि — छागयकृत् विदार्थ्य तन्मध्ये पिष्पली स्थापयित्वा उत्सेवदेयत् । पका उत्स्वन्ना । तद्रमेपियेतिति उत्स्वेदाम्बुना पिष्ट्वा वर्षिः कार्येत्यर्थं । तद्वत् मक्षोद्रमूपणिमिति — ऊपण मरिचम् । पूर्ववत् छागयकृतिपरड विदार्थ्यं तन्मध्ये मरिच स्थापयित्वा उत्सेवदयेत्, तत आकृष्य उत्सेवदाविराष्टजलेन तन्मरिच सम्पिष्य वर्षि कार्येत्यर्थं ॥ ११०॥

पचेत्तु गौधं हि यक्तत् प्रकल्पितं प्रपूरितं मागधिकाभिरश्चिना।

निपेवितं तद् यसद्ञ्जनेन निहन्ति नक्षान्ध्यमसंशयं खलु ॥१११॥

पचेदित्यादि—पचेदुत्त्वेदयेत् । गौध गोधाभव यक्तत्, पिप्पलीपूरणार्थं प्रकालिपतिमिति पठितम् । अग्निनेत्यत्र अम्बुनेति पाठान्तरे अम्बुना स्वेदन वोध्यम् । अत्र गोधायक्तद्रद्धपाचितिमत्यपि पाठ. । निधेवित यक्तदिति, तथाभृत यक्तत् खादित-मित्यर्थ । पिप्पली त्वन्जनविधिना देयेति कश्चित् । अन्ये तु उत्स्वित्रकणामहित यक्तत् भच्यविधिना अन्जनविधया च विहित नक्षान्ध्य इन्तीत्याहु. । अपरे तु उत्तित्वन्नकणामहित यक्तत् अन्जनविधया निपेवितं सन्नक्षान्ध्य इन्तीति न्याचचते । खतुशब्द पवार्थे, असशयमेवेत्यर्थः ॥ १११ ॥

द्धा निघृष्टं मरिचं राज्यानध्याकजनमुत्तमम् ।
ताम्बूलयुक्तं खद्योतमत्त्त्त्यश्च तद्र्यंकृत् ॥ ११२ ॥
दक्षेत्यादि योग स्पष्ट ॥ ११२ ॥
शफरीमत्स्यत्तारो नक्कानध्यमकजनतो निहन्ति ।
तद्वद्वामठटङ्कणकर्णमत्त्रश्चेकशोऽकजनान्मधुना ॥ ११३ ॥
शफरीत्यादि—शफरीमत्स्यमन्तर्ध्म दन्ध्वा मधुना सन्ध्यायामञ्जर्न कार्य्यम्
॥ ११३ ॥

केशराजान्वितं सिद्धं मत्स्याएडं हन्ति भित्तिम् । नक्कान्ध्यं नियतं नृणां सप्ताहात् पथ्यसंविनाम् ॥ ११४ ॥ केशराजेत्यादि—रे।हितमत्त्यादीनामण्ड केशराजं दत्त्वा उपदेशात् काञ्जि-केन पक्त्वा मस्यम् । इत: पर्रे ष्टतान्युच्यन्ते ॥ ११४ ॥

#### त्रिफलाघृतम्

त्रिफलाकाथकल्काभ्यां सपयस्कं श्वतं घृतम् । तिमिराएयचिराद्धन्यात् पीतमेतन्निशामुखे ॥ ११४॥ त्रिफलेत्याटौ—चतुर्शेषेन त्रिफलाकाथेन व्यवहरन्ति । सपयस्कमिति चीर स्नेहसमम् ॥ ११४॥

### महात्रिफलाद्यं घृतम्

त्रिफलाया रसप्रस्थं प्रस्थं भृद्गरसस्य च। चृपस्य च रसप्रस्थं शतावय्याध्य तत्समम्॥ श्रजात्तीरं गुङ्क्याश्च श्रामलक्या रस तथा।
प्रस्थं प्रस्थं समाहृत्य स्वैरेभिष्टृतं पचेत् ॥
कलकः कणा सिता द्वाता त्रिफला नीलमुत्पलम्।
मधुकं त्तीरकाकोली मधुपणीं निदिग्धिका॥
तत् साधुसिद्धं विश्वाय श्रमे भाग्डे निधापयेत्।
ऊद्ष्वेपानमध पानं मध्ये पानश्च शस्यते ॥
यावन्तो नेत्ररोगास्तान् पानादेवापकपीति।
नक्तान्ध्ये तिमिरे काचे नीलिकापटलाबुदे ॥
श्रिमिण्यन्देऽधिमन्थे च पदमकोपे सुद्रारुणे।
नैत्ररोगेषु सर्वेषु वातिपत्तकफेषु च ॥
श्रद्धिं मन्द्द्दिश्च कफवातप्रदूपिताम्।
स्रवतो वातिपत्ताभ्यां सकग्रद्वासन्नदूरहक् ॥
गृध्रद्धिकरं सद्यो चलवणीयिवद्देनम्।
सर्वनेत्रामयं हृन्यात् त्रिफलाद्यं महद् घृतम्॥ ११६॥

महात्रिफलाश्ते—शृपस्येति वामकस्य पत्रसः प्रसः. । मधुपणीं गुद्ध्वी । कद्ध्वपानादिविधिमींजनापेच्चया श्रेय । वातिपित्तकफेष्यिति बातिपित्तकफोद्भतेषु नेत्ररीरितेषु तथा कफवातप्रदूषणात् जातामदृष्टि मन्ददृष्टिञ्चापकर्षतीत्यर्थः । तथा वातिपित्तान्थ्या स्वतस्यच्चप पथ्यमिति शेषः । तथा सक्तर्य्वासन्नदूरहृक् यः तस्यापि गृप्धतुल्यदृष्टिकारकमिति मोपस्कर व्याख्ययम् । पुन सर्वनेत्रामय हरत्येव कथन सर्वन्
नेत्रामयहरणस्यावस्यकत्वोपपादनार्थमिति श्रेयम् ॥ ११६॥

## त्रैफलं घृतम्

त्रिफला त्र्यूपणं द्रात्ता मधुकं कटुरोहिणी।
प्रपौएडरीकं स्दमेला विडक्तं नागकेशरम्॥
नीलोत्पलं शारिवे द्वे चन्दनं रजनीद्वयम्।
कार्पिके पयसा तुल्यं त्रिगुणं त्रिफलारसम्॥
घृतप्रस्थं पचेदेतत् सर्वनेत्रहजापहृम्।
तिमिरं दोपमास्रावं कामलां काचमर्बुदम्॥

विसर्पं प्रदरं कराडूं रक्तं श्वयशुमेव च ।
खालित्यं पिलतञ्चेव केशानां पतनं तथा ॥
विषमज्वरमर्माणि शुकञ्चाशु व्यपोहिति ॥
श्रान्ये च बहवो रोगा नेत्रजा ये च वर्त्मजा ।
तान् सर्वान् नाशयत्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ।
न चैवास्मात् परं किञ्चिहिपिम काश्यपादिभिः ॥
हिष्टप्रसादनं हृष्टं यथा स्यात् त्रैफलं घृतम् ॥ ११७ ॥

फलित्रकाभीरुकषायसिद्धं कल्केन यष्टीमधुकस्य युक्कम् । सर्पिः समं चौद्रचतुर्थभागं हन्यात् त्रिदोषं तिमिरं प्रवृद्धम्॥११८

फलित्रेकेत्यादौ — श्रमीरु शतमूली । तत्र फलित्रिकस्य काथ , शतमूल्यास्तु स्वरस इत्यर्थ । समिनित साध्वित्यर्थ । उक्त हि मेदनीकरकोषे — " सर्वसाधु समानेषु सम स्यादिभधेयवत्" इति । श्रन्ये तु समिनित महार्थे, यथोक्तकषायादिना सह सिद्धमित्यर्थ इत्याहु ॥ ११८॥

## भृद्गराजाद्यं तैलम्

भृङ्गराजरसप्रस्थे यष्टीमधुपलेन च । तैलस्य कुडवं पकं सद्यो दृष्टि प्रसाद्येत् । नस्याद्वलीपलितन्नं मासेनैतन्न संशयः ॥ ११६ ॥

मृद्गराजेत्यादि—स्पष्टम् ॥ ११६ ॥

गवां शक्तकाथविपकमुत्तमं हितञ्च तैलं तिमिरेषु नस्तत । 'घृतं हितं केवलमेव पैत्तिके तथाश्वतैलं पवनासृगुत्थयो ॥१२०॥

गवामित्यादि — सुश्रुतस्य । गवा शकृत् काथविपकमिति गोशकृत काथोऽ-ष्टगुणाम्बुना कार्य्य , मृदोश्चतुर्गुण देयमिति परिमाषा न्यवद्दारवाधिता । एत हि केवलमिति केवलमित्यसस्कृतम् । नस्तत द्द्ति इद्दापि सम्बध्यते । भ्रश्वतैलन्न सुश्रुते वातन्याधावुक्तम् । कस्मिश्चित् सुश्रुतपुस्तके " एत हित केवलमेव पेन्तिके " इत्य-स्यानन्तर " श्रजाविक यन्मधुरैर्विपाचित तैल स्थिरादौ मधुरे च यद्गणे " इति पाठो दृश्यते, स च पाठस्तथाविधाकारपुरतकेषु न दृश्यते, टीकाकृद्धि न प्रामाणिकैर्लिखित इति कृत्वा अनार्थ इति रूपम् ॥ १२०॥

## नृपवल्लमं तैलं घृतश्च

जीवकर्षभको मेदे द्राचांश्रमती निदिग्धिका बृहती।
मधुकं वला विड्हं मिन्जिष्टा शर्करा रास्ता॥
नीलोत्पलं श्वदंष्ट्रा प्रपौग्डरीकं पुनर्नवा लवणम्।
पिष्पल्यः संवेषां भागरचांशिकः पिष्टै.॥
तैलं यदि वा सिर्पर्दत्वा चीरं चतुर्गुणं पकम्।
श्राज्ञयनिर्मितमिदं तैलं नृपवक्षभं सिद्धम्॥
तिमिरं पटलं काचं नक्षान्ध्यमर्तुदं तथान्ध्यश्च।
श्वेतश्च लिह्ननाशं नाशयित च नीलिकां व्यक्षम्॥
मुखनासादौर्गन्ध्यं पिलतञ्चाकालजं हनुस्तम्भम्।
सासं श्वासं शोप हिक्कां स्तम्भं तथात्ययं नेत्रे।
मुखजेह्म्यमर्द्धभेदं रोगं वाहुश्रहं शिरःस्तम्भम्।
रोगानथोद्ध्वेजत्रो सर्वानिवरेणैतिहिनाशयित॥
पक्षत्र्यं कुडवं तैलं नस्यार्थं नृपवक्षभे।
श्रचांशै शाणिकैः कल्कैरन्ये मुहादितेलवत्॥ १२१॥

जीवकेत्यादी—अशुमती शालपर्या। अचारांकेरिति अच कंपस्तस्यांशश्चतुर्थों भाग मापकचतुष्टय, तेन शाणिकेरित्यर्थ । तेन सर्वे मिलित्वा द्वादशामापकाधिक पल भवति, अनेन तेलकुडव साध्य , नस्यार्थ तेलकुडव , पृच्यत द्वति सम्प्रदाय । कुढवश्चाष्टी पलानि । न च कल्करतु केहपादिक दत्यनेन विरोध , कल्कपलेनापि तेलकुडव-पाकदशेनाए , तथा पूर्वोक्षभुद्वराजतेले, तथा वृद्धयमाण्डिभीजितनाम्नि तंले च । किंवा अचारिकेरिति कार्षिके , असिन् पच्च कल्कस्य वहुत्वात् तेलशस्य साध्य । । व्यवहारस्तु पूर्वेणव । यदि वा सीर्परिति पैत्तिके तिमिरे सिप पक्षस्यम् । दृष्टिजे-िवित दृष्टिमयहलरोगेषु ॥ १२४ ॥

श्रभिजितं तैलंम् तैलस्य पचेत् कुडवं मधुकस्य पलेन कल्किपिप्टेन । श्रामलकरसप्रस्थं चीरप्रस्थेन संयुक्तम् ॥ कृत्वामिजितं नाम्ना तैलं तिमिरं हन्यान्मुनिप्रोक्तम् । विमलां कुरुते दृष्टिं नष्टामप्यानयेत्तथा ॥ १२२ ॥ श्रमिजित तेल स्पष्टम् ॥ १२२ ॥

श्रमं तु छेदनीयं स्यात् कृष्ण्प्राप्तं भवेद् यदा । विद्याविद्धमुक्षस्य त्रिभागञ्चात्र वर्जयेत् ॥ १२३ ॥ श्रमं त्विलादि—श्रमं श्रामा इति ख्यातोऽिचरोगविशेष. । श्रमं छेदनीय-मिति मण्डलाग्रेणिति शेष । समुत्रस्येति स्च्यग्रेणिति शेष. । स्च्यग्रेण समुत्रस्य उत्तीत्य श्रनन्तर विदिशा विद्ध्वा मण्डलाग्रेण छेदयेदित्यर्थः । त्रिमागमिति तृतीयमाग कनीनिका वर्जयेदित्यर्थ । उक्त हि 'रच्चन् कनीनिका छिन्छाञ्चतुर्मागा-वशेषितम् ' इति ॥ १२३ ॥

पिष्पलीत्रिफलालाद्वालौहचूर्ण ससैन्धवम् ।
भृङ्गराजरसे पिष्टं गुडिकाञ्जनिमण्यते ॥
श्रमं सितमिरं काचं कर्ग्ड्रं ग्रुकं तद्र्जुनम् ।
श्रजकां नेत्ररोगांश्च हन्यान्निरवशेषतः ॥ १२४ ॥
पिप्पलीत्यदि—मृङ्गराजरसेनैव पेषणमञ्जनन्नेत्याहु. । गुडिकाञ्जन वित्ति

पुष्पाख्यताद्यंजसितोद्दधिफेनशङ्ख-सिन्धृत्थगैरिकशिलामरिचैः समांशैः। पिष्टैश्च माज्ञिकरसेन रसिकयेयं हन्स्यर्मकचितिमिरार्जुनवर्त्मरोगान्॥ १२४॥

पुष्पाख्येत्यादि — पुष्पाख्य पुष्पकाशीश, तार्च्यं रसाञ्चन, सिता शर्करा, शख शखनाभ , गैरिकशिला गैरिकमेवेति श्रीकण्ठ । माचिकरसेनेति मधुरूपद्द-वेण । रसिक्रियेयमिति एतत् सर्वं चूर्णं प्रचुरतरमधुना समालोड्य वशनिलकाया स्थाप्यमेतत् रसिक्रयाविधान वदन्ति । अतएव पिष्ट चौद्रेण चालोड्य इत्यादि वचनमपि पठन्ति ॥ १२५॥

कौम्भस्य सर्पिषः पानैर्विरेकालेपसेचनै । स्वादुर्शातैः प्रशमेयच्छुक्तिकामअनैस्तत ॥ १२६॥ कौन्मस्वेत्वादि—कौन्म मीर्परंगवंगिसत धनम् ॥ १२६॥
प्रवालमुक्तावैद्र्य्यंशृहस्फिटिकचन्दनम् ।
सुवर्णरजतं चौद्रमञ्जनं ग्रिक्तिकापहम् ॥ १२७॥
शृह्व चौद्रेण संयुक्त कतक सन्यवेन वा।
सितयार्णवफेनो वा पृथगञ्जनमर्जुने ॥ १२८॥
प्रवालेत्यादि—चौद्रेण पेषणमञ्जवः ॥ १२७॥ १२८॥
पैत्तं विधिमशेषण् कुर्य्यादर्जुनशान्तये।
वैदेहीसितमरिचं सैन्यवं नागरं समम् ॥
मातुलुहरसैः पिष्टमञ्जनं पिष्टकापहम् ॥ १२६॥

पंत्त विधिमिति पित्तामिष्यन्दोक्कविधिम् । उक्त हि 'पिद्याभिष्यन्द्रगमनो विधिरर्जुनगान्निकृद् ' दित । विदेहीत्मादि—वेदेही पिष्पनी, मिनमरिच शोभाजन-बीजम् । इति ग्रुक्तवेषु ॥ १२६॥

भिरत्वापनाहं कफजं पिप्पलीमधुसैन्धवै.। विलिखन्मएडलाग्नेए प्रच्छेयेडा समन्तनः॥ १३०॥

मित्तेत्यादि—सुश्रुतस्य । मित्तेति मीहिमुखेनेति नेष । यद्यप्युपनाह केवल कफ्त एवं, तथापि कफ्तनिति स्वरूपपर छेयम् । पिप्पलीमधुमैन्थवैरित्यनन्तर प्रति-नार्त्तानिति रोष । श्रव लेखनानन्तर प्रतिमार्त्य छेयम् । चक्त हि वा मटे—"वपनाह मिषक् स्विन्न मिन्न मोहिमुखेन सु । लेखेयत् मण्डलाग्रेत् सनश्च प्रतिमार्येत्" इति । श्रन्य सु भेदनप्रतिमारतास्यामप्रशमे लेखन प्रच्छनश्च देयमित्याहु ॥ १३०॥

पथ्याच्चघातीफलमध्यवीजैस्त्रिङ्घेकमागैर्विद्घीत वर्तिम्॥ तयाज्ञयेद्श्रुमतिप्रगाढमक्णोईरेत् कप्रमिए प्रकोषम् ॥१३१॥

पय्येत्माटी—फल्माध्यवाजपट पय्यादिमि प्रत्येक मन्त्रध्यते। विद्वेयकर्मागीरिने प्रयावीनादिषु यथाक्रम योज्यम्, अत्र पानीयेन पेपखम्। मधुना त्वञ्जनिनि ज्यवहरन्ति॥ १३१॥

स्रावेषु तिफलाकाथं यथादोपं प्रयोजंयत् । चौद्रेगुल्येन पिष्पल्या मिश्रं विष्येष्टिष्ठ्रां तथा ॥ १३२ ॥ स्रावेष्टित्यादां—प्रयोजयदिति पिनेत्। यथादोषभिति चौद्रेग् पिचरक्ते, ब्राल्येन वाते पिते रक्ते च, पिणल्या तु क्रके । धीमरप्रशमे शिरान्यथ अनि ॥ १३२ ॥

## विफलामूलकाशीश-सैन्धवै सरसाञ्जनै:। रसिक्रया किमिग्रन्थौ भिन्ने स्यात् प्रतिसारणम् ॥१३३॥

लिफलेत्यादि—सुश्रतस्य। तिफलाकाथगोमूत्रे मिलित्वा पलचतुष्टये, काशीश-सैन्धवरमाञ्जन पलमान प्रचिप्य पुन पाकेन घनतामापाच रसिक्रया विधेया। किन्तु काशीशरसाञ्जनापेच्चया सैन्धवमल्पमान व्यवहरित वृद्धा । मूलस्थाने तुल्येति निश्चल. पठित । तन्मते लिफलाकाथस्येव पलचतुष्टयम् । किन्तु सुश्रुते वहुपुस्तकेषु च मूत्रपाठ एव दृश्यते। सिन्ने स्यात् प्रतिसारणिमिति रसाञ्जनचूर्णमधुभ्यामेव प्रतिसारण ज्ञेयम् । इति मान्धेजपु ॥ १३३॥

खिन्नां भित्वा विनिष्पीख्य भिन्नामञ्जननामिकाम्।

ग्रिलेलानतसिन्धृत्थे सत्तौद्रैः प्रतिसारयेत्॥

रसाञ्जनमधुभ्याञ्च भिन्नां वा शस्त्रकर्मवित्।

प्रतिसार्थाञ्जनैर्युञ्ज्यादुष्णैर्दीपशिखोद्भवैः॥

स्वेद्येद् घृष्टयाङ्गल्या हरेद्रक्तं जलौकसा।

रोचनात्तारतुत्थानि पिष्पल्यः त्तौद्रमेव च।

प्रतिसारणमेकैकं भिन्ने लगण् इष्यते॥ १३४॥

प्रतिसार्थाञ्जनैरिति अञ्जनै कष्णले। रोचनत्यादि—ग्रुअतस्य। चारो यव
चारः। रोचनादिषु प्रलेक चौद्रयोगः। प्रतिसारणमिह त्रणमुखे दानम्, न तु

वर्षणम्॥ १३४॥

निमेपे नासया पेयं सिंपस्तेन च पूरणम् । स्वेद्यित्वा विसन्निध्य छिद्राणयस्य निराश्रयम् । पक्कं भित्वा तु शस्त्रेण सैन्धवेनावचूर्णयेत् ॥ १३४ ॥

निमेष इत्यादी—सिंपिस्तिफलासिद्धमिति केचित् । अन्य त्वपक्षमित्याद्वः । पूर्यामिति तेन सिंपिषा चत्तु पूर्यामित्यर्थः । सेदियित्वेत्यादी—विमयन्थिमिति विस-वर्त्पाख्याचिरोगम् । निराश्रयमिति आश्रय स्फोटक निरविशष्ट यथा स्यात् तथा मिस्वेत्यर्थः । अल्पेऽल्पाश्रये सित व्यापेरस्य पुन सम्मवात् । उक्त हि-"विसयान्थं तथा भिन्धात् यथा स्यान्नाश्रयः क्रचित् । पुनः प्रवर्द्धते यस्मादल्पेऽप्यस्याश्रवे स्थिते" इति ॥ १३५॥

वर्त्मावलेखं बहुशस्तद्वच्छोणितमोत्तणम् । पुनः पुनर्विरेकञ्च पिल्लरोगातुरो भजेत् ॥ पिल्ली स्निग्धो वमेत् पूर्व शिरावेधं स्रुतेऽस्रुजि । शिलारसाञ्जनव्योपगोपित्तैश्चजुरञ्जयेत् ॥ १३६॥

वर्त्मेत्यादिना पिह्नरोगचिकित्सामाह, वर्त्मावलेखमिति—कर्कशशाखोटकादिप-श्रेय वर्त्मवर्षणम् । पिह्नलचण्य पूर्वमेवोक्षम् । वाग्मेटेन तु कुक्र्यकादीनामष्टाद-शाना पिह्नाख्या कृता । यथा—"प्रेऽष्टादश पिल्लाख्या दीर्घकालानुवन्धिन ' इति । पिल्लीत्यादी—सेवदोऽपि वोध्यो वमनाश्रत्वात् । शिरा लालाटी । शिलत्यादी— गोपित्तस्याप्ताप्ती गोरोचनया सर्वत्र व्यवहार् ॥ १३६॥

हरितालवचादारुसुरसारसंपेषितम् । श्रमयारसपिष्टं वा तगरं पिल्लनाशनम् ॥ १३७ ॥

हरितालेत्यादौ—सुरमारसपेषितमिति सुरसा पर्णामभेद सुरहिमङ्गीति लोके। प्रतिसारखमेतत् । श्रमथेत्यादौ—तगर तगरपादुका ॥ १३७॥

भावितं वस्तम्ब्रेण सम्नेहं देवदारु न्व । काकमाचीफलैकेन घृतयुक्केन दुद्धिमान् ॥ धूपयेत् पिक्षरोगार्चे पतन्ति क्रिमयोऽचिरात् ॥ १३८॥

भावितिमित्यादौ—सेहो एत चचुष्यत्वात् । पतदि प्रतिसार्यम् । काकमा-चीत्यादौ—फलमेकमेव एतिलिस धूपार्थम् । धूपन चचुर्वाससाच्छाय कार्य्यम् । अत्य तु एकेन केवलेन भावनादिरिहतेन धूपनिमित्याहु ॥ १३ = ॥

रसाञ्जनं सर्जरसो जातीपुष्पं मनःशिला।
समुद्रफेनो लवणं गैरिकं मरिचानि च ॥
पतत् समांशं मधुना पिष्टं प्रक्लिश्ववर्त्मानि।
श्रञ्जनं क्लेदकराङ्क्ष्मं पद्मणाञ्च प्ररोहणम् ॥ १३६ ॥
रसाञ्जनित्यादी—सर्जरसो यचभूप । श्रव पेपण मधुनेन ॥ १३६ ॥
मस्तकास्थि चुलुक्यास्तु तुषोद् लवणान्वितम् ।
ताम्रपातेऽञ्जनं घृष्टं पिक्षे प्रक्लिन्वदर्मानि ॥ १४० ॥

मस्तकास्थीत्यादौ—-चुल्लकी शिशुमार , तस्य मस्तकास्थि, तुषेदिक काञ्जि-कम् ॥ १४० ॥

ताम्रपात्रे गुहामूलं सिन्धृत्थं मरिचान्वितम्। श्रारनालेन संघृष्टमञ्जनं पिल्लनाशनम् ॥१४१॥

ताम्रत्यादौ — गुहा पृक्षिपणीं, तस्या मूल ताम्रपात्रे सप्ताह वर्षयेदिति श्चेयम् । अन्ये तु गुहास्थाने स्तुहेति पठित्वा स्तुहीमूलमाहु । तन्च प्रचालनेन चीररहित कृत्वा अञ्जनविधे। प्रयोज्यमिति वदान्ति । व्यवहारस्तु पूर्वेणैव ॥ १४१ ॥

हरिद्रे त्रिफला लोधं मधुकं रक्तचन्दनम् ।
भृक्तराजरसे पिष्ट्रा घर्षयेत्नौहभाजने ॥
तथा ताम्रे च सप्ताहं कृत्वा वर्ति रजोऽथवा ।
पिच्चिटी धूमदर्शी च तिमिरोपहतेत्त्रणः ॥
प्रतिनिश्यञ्जयेक्तित्यं सर्वनेत्रामयापहम् ॥ १४२ ॥

हरिदेत्यादी—तथेत्यनेन ताझपात्रे सप्ताहः घर्षयेदिति योज्यम् । श्रन्ये तु तथा तात्रे चेति विकल्पार्थमेतद्वचनम् , न समुचयार्थ , तेन लौहभाजने तात्र-भाजने वा घर्षयेदित्याहु । रजोऽथवेति एतेन चूर्णाञ्जनमप्युपदिशन्ति ॥ १४२ ॥

चूर्णाञ्जनम्

मञ्जिष्ठामधुकोत्पले। द्धिकफत्वक्सेव्यगोरोचनाः
मांसीचन्दनशङ्खपत्रगिरिमृत्तालीशपुष्पाञ्जनैः ।
सर्वेरेव समांशमञ्जनिमदं शस्तं सदा चज्जुपाः
कराड्केलदमलाश्चशोणितरुजापिल्लामश्चकापदृम् ॥ १४३॥
मिन्जिष्ठेत्यादौ—उदिधिकफः समुद्रफेनः; सेन्यमुशीरम् , पत्र तमालपत्रम् ,
तेजपत्रमित्यन्ये, पुष्प पुष्पकाशीशम्, श्रव्जन रसाव्जनम् । तालीशपत्राव्जनेरित्यिप

तुत्थकस्य पत्नं श्वेतमरिचानि च विंशतिः।
जिंशता काञ्जिकपत्नैः पिष्ट्वा ताम्रे निघापयेत्॥
पिल्लानपिल्लान् कुरुते बहुवर्षोत्थितानपि।
तत्सेकेनोपदेहाश्रुकगङ्कशोथांश्च नाशयेत्॥ १४४॥

पाठ । वितिरिय चूर्याञ्जन वा १। १४३॥

1

तुत्थकस्यत्यादि —वाग्मटस्य । श्रेतमरिचानि शोमाञ्जनवीजानि विशिति-९ रित्याकृतिमानात् । उपदेष्ट पिक्वीडिका ॥ १४४ ॥

> याप्यः पत्तमोपरोधश्च रोमोद्धरणलत्तणः । वर्त्तम्युपचितं लेख्यं स्नाव्यमुित्कप्रशोणितम् ॥ प्रवृद्धान्तर्मुखं रोम सिहण्णोरुद्धरेच्छुनैः । सन्दंशेनोद्धरेद् दण्ट्यां पत्नमरोमाणि वुद्धिमान् ॥ रत्तन्नत्ति दहेत् पत्ता तप्तहेमशलाकया । पद्मरोगे पुनर्नेवं कदाचिद्रोमसम्भवः ॥ १४४ ॥

याप्य इत्यादी—रोमोद्धरणलच्चिरित्यनन्तर कर्ममिरिति रेाप । पदमोपरोधो रोमोद्धरणलच्चि कर्मभिर्याप्य यापनीय । लव्यचिरित्यत्र लेखनैरित्यपि
पाठान्तरम् । नत्मन्युपीनतिमिति पदमलोमिति रेाप । केनप्रकोरचे।द्धरिदित्याद्ध मन्दरेनत्यादि—प्रच्या पद्मरोमाचीत्यत्र दृष्ट्वा पद्मरोमाचीत्यिष पाठान्तरम् । रचित्रत्यादी—पद्मेति पद्मस्थानम् । उक्ष द्वि "पद्मरोगे हते ले।स्रि दाद्द तत्स्थानके भिषक् । तप्तया देमस्च्या तु युञ्ज्योद्वाप्यभयाष्टकम्" इति ॥ १४५॥

उत्सिक्षनी वहुलकर्दमवर्त्मनी च श्यावञ्च यच्च पिठतन्त्विह वद्धवर्त्म । क्षिन्नञ्च पोथिकयुत्तिन्त्विह वर्त्म यच्च कुम्भीकिनी च सह शर्करयावलेख्याः॥ श्रेष्मोपनाहलग्णी च विसञ्च भेद्यो श्रिन्थञ्च य क्षिमिकृतोऽञ्जननामिका च॥१४६॥

इदानीं नेत्ररोगेषु मध्ये ये च लेख्याये च भेद्यास्तानाद उत्सिद्धनीत्यादि— सुश्रुतस्य । बहुलकर्दमवर्त्मनी चेति वहुलवर्ष्मकर्द्रमवर्त्म चेत्यर्थ । श्यावञ्चेति श्याव वर्तम्, तथा क्षित्रस्र क्षित्रवर्तम् । विसमिति विसमिश्य ॥ १४६॥

> घृतसन्धवचूर्णेन कफानाहं पुनः पुन । वित्तिखेन्मडलाग्रेण प्रच्छयेद्वा समन्ततः॥ १४७॥

धतित्यादि---धतिमश्रतैन्थवन्त्रूर्येन विलिखेत् प्रतिसारयेत् । मगढलाग्रेग तु प्रच्छेयदित्यर्थ ॥ १४७॥

पटेश्लामलककाथैराश्च्योतनविधिर्हित ।

फार्याज्मकरसोनस्य रसैः पोथिकनाशनः॥ १४८॥

पोथकीचिकित्सामाह पटोलेत्यादि —फिर्याज्मक पर्यास । रसैरित्यनन्तर पिष्ट

इति शेष । फिर्याज्मकपत्र रसेशनस्य रसै. पिष्टमाश्च्योतनमित्यर्थ ॥ १४८॥

श्रानाद्दिपिडकां स्विन्नां तिर्व्यग्भित्वाग्निना दहेत्। श्रशस्तथा वरमे नाम्ना श्रुष्काशोऽर्बुद्मेव च। मग्डलाग्रेग् तीच्ग्रेन मूले छिन्द्याद्भिषक् शनैः॥ १४६॥ भानाहिष्टकामित्यादी—दहेदिति च्लेदः। भर्शः,प्रभृतीनान्त क्रिन्द्यादित्यने-

नान्वय ॥ १४६॥

सिन्धृत्थिपिष्पलीकुष्ठपर्णिनीत्रिफलारसैः।
सुरामगडेन वर्त्तिः स्यात् रहेष्माभिष्यन्दनाशिनी।
पोथकीवत्मेषरोधिकिमित्रन्थिकुकुणके॥ १४०॥
इति नेत्ररोगिविकित्सा।

मिन्धूत्थादीना प्रत्येक सम चूर्ण गृहीत्वा त्रिफलारसेन भावियत्वा सुरामएडेन वर्ति कार्योत्यर्थ ॥ १५०॥

इति नेत्ररोग-चिकित्साविष्टति ।

# अथ शिरोरोगचिकित्सा ।

वातिके शिरसो रोगे स्नेहस्वेदान् सनावनान्। पानान्नमुपनाहांश्च कुर्य्याद्वातामयापहान्॥१॥

शिर सिश्रतकर्णनासानयनगतरोगाणा चिकित्सितसुक्त्वा सम्प्रति तदाश्रयस्य शिरसो रोगाणा चिकित्सामाह वातिक इत्यादि—स्वेदोऽत्र वातहरद्रव्यकृतस्वरसा-दिभि । उपनाहः स्वेदिवशेष । श्रन्ये तृपनाह शिरोवस्तिमेदमाहु येन मस्तिष्क उच्यते । तन्त्रान्तरे हि मस्तिष्क उपनाह शिरोवस्तिवशेषत्वेनोक्षः । यथा— "मित्तिष्केऽष्टागुल पट्ट वस्तौ तु द्वादशागुलम्" इति ॥ १ ॥

> कुष्ठमेरगडमूलञ्च लेपात् काञ्जिकपेषितम् । शिरोऽर्ति नाशयत्याशु पुष्पं वा मुचुकुन्दजम् ॥ २॥

मुनुकृतः अहिनद् इति निश्चन , किनु पश्चिम सनामस्यानं एव ॥२॥
पञ्चमूलीश्टनं सीरं नस्यं द्याचिह्नरोगदे ॥
श्राशिरो व्यायतं चर्म हत्वाष्टाङ्गुलमुच्द्रितम् ।
तेनावेष्ट्य शिरोऽधस्तान्मापकर्वनं लेपयेत् ॥
निश्चलस्योपविष्टस्य तेलेरुप्ण प्रप्रयेत् ।
धारयेदारुज शान्तेर्यामं यामार्द्धमेव वा ॥
शिरोवस्तिर्जयत्येपा शिरोरोगं मरुद्रचम् ।
हनुमन्याद्तिकर्णात्तंमदितं मस्नकम्पनम् ॥
तेलेनापूर्यं मूर्द्धानं पञ्चमात्राशतानि च ॥
तिष्ठेत् श्रुप्मणि पित्तेऽष्टो दश चाते शिरोगदी ।
एप एव विधि कार्यस्तथा कर्णाद्विपूर्णे ॥ ३॥

पजम्लो बातपेश्विके स्वल्पा, रातकके तु महतो। भारिरोक्यायतमिति— यावता चर्मपा शिरोवेष्टन मवित ष्ठावन्मान चन प्राध्यायियमं । तैनेशित यथाविधिन नाभिते पूर्यदित्यगुलोक्द्रयेग् । ध्रतमिति तन्त्रान्तरदर्शनाद् । भाकत्र शान्ते धारयदिति वाते याम, पैत्तिके यापार्थम् । कके वस्यमागपण्यमात्रारानीत्यादि वचन भिन्नकत्वकत्वान्मतभेदाविण्द बोन्यम्। मात्रात्र निमेपोन्मेषादि । चक्र हि 'निमे-पोन्मेपपे पुना स्काटन वापि चागुले । भवस्य लपोबंधि मात्रात्रवारण भेवष् ' इति । व्यवद्यारस्तु छुटिक्येति । कक्षत्र तु शिरोविण्नर्नस्यादिनिरिजिते कके वातस्य चानुक्ये मित्र ध्रेयः । केदलकके तस्थानीनिष्पाद् । विधिरिप मात्रा-स्प. ॥ ३ ॥

> पैसे घृनं पय सेका शीता लेपा' सनावना'। जीवनीयानि सर्पीपि पानाभञ्जापि पित्ततुत्॥ पित्तातमके शिरोरोगे सिग्धं नम्यग्विरेचयत्। मुद्दीकात्रिफलेज्लां रसैः द्वीरेपृतरिपि॥ ४॥

पैच इत्यादी—शीता इति सेकन्पयोधिरापणम् । जीवनीयानि सपीपीनि जीवनीयदशककाथकन्कमाधितानि । मृद्दीवेन्यादि—मृद्दीकेन्न्रसी त्रिवृच्चूर्णप्रदेपाद् विरेककारको श्रेयो, त्रिफलाकायस्तु स्वत प्रवेत्याद्वः । क्षोरप्रेन चापि त्रिवृदादिसिदे विरेके ॥ ४॥ शतधौतधृताभ्यङ्गः शीतवातादिसेवनम् । शीतस्पर्शाश्च संसेव्याः सदा दाहार्तिशान्तये ॥ ४॥

शतभौतश्रताभ्यङ्ग इति—शतभौतेन घ्रतेन शिरसोऽभ्यङ्गो श्रेय । उक्त हि— " सर्पिपः शतभौतस्य शिरसि थारण हितम् " इति । शीतस्पर्शा इत्यादि— शीतस्पर्शोः कुमुदोत्पलपद्मादय ॥ ५॥

चन्द्रनोशीरयण्ट्याह्मवलाव्याघनखोत्पलै । चीरिपिष्टैः प्रदेह स्यात् श्रुतैर्वा पर्छिषचनम् ॥ ६ ॥ वन्द्रनेत्यादौ—व्याघनखो नखीभेदः । श्रौरिति चन्द्रनादिकाथै , अन्ये द्व चन्द्रनादिश्वते चीरैरित्याहुः ॥ ६ ॥

मृणालविसशालूकचन्दनोत्पलकेशरैः।
स्निग्धशीतैः शिरो दिह्यात् तद्धदामलकोत्पलैः॥ ७॥
मृणालेत्यादौ—विंस वालमृणालम्, उत्पलकेशर किन्नलकः। क्षिग्धशीतैः
स्निग्धल द्वतयोगात्। तद्ददित्यनेन द्वतयोगात् स्निग्धलमितिदेशन्ति॥ ७॥

यष्ट्याह्वचन्दनानन्ताचीरसिद्धं घृतं हितम्। नावनं शर्कराद्राचामधुकैर्वापि पित्तजे॥ =॥

यष्ट्योहृत्यादौ--श्रनन्ता श्रनन्तम् लम्, एषा कल्केन चतुर्गुयाचीरेख धत पक्तव्यम् । एवं शर्कराद्राक्षायष्टिमधुकल्केन चतुर्गुयाचीरेख धतान्तर पक्तव्य-मित्यर्थः ॥ = ॥

त्वक्पत्रशकेरारास्ना नावनं तग्हलाम्बुना।

द्वीरसिपिहिंतं नस्यं रसा वा जाङ्गलाः श्रुभाः ॥
रक्तजे पित्तवत् सर्वे भोजनालेपसेचनम् ।
शितोष्णयोश्च व्यत्यासो विशेषो रक्षमोत्त्रणम् ॥ ६ ॥
त्वक्पन्नेत्यादि—त्वनपत्र तेजपत्रम् । चीरसिपित्यादि—सुश्रतस्य ।
चीरोत्य सिप चीरसिप । श्रुमा इति सबस्काः । जाङ्गला श्रुमा इत्यत्र जाङ्गलायहना इति पाठान्तर तन्त्रान्तरे, तथाविधाकारसुष्ठतादिपुस्तकेष्वदर्शनात् चेपचणीयमिति । शीतोष्णयोश्च व्यत्यास इति—शीता किया दृत्वा वष्णा, वष्णाव्य कृत्वा
शीतित्यर्थ । रक्षजेऽप्येतदुंष्णिकियाविधान यद्यपि हेतुप्रत्यनीक न भवति, तथापि
च्याधिप्रत्यनीकत्वमस्य वोध्यम् ॥ ६ ॥

कफजे लहुनं स्वेदो रूज्ञोष्णै पाचनात्मकैः। तीक्णावपीडा घूमाश्च तीक्णोष्णकवडा हिता ॥ ' स्वच्छुम्च पाययेत् सर्पि पुराणं स्वेदयेत्तत । मधूकसारेण शिर स्विद्यक्वास्य विरेचयेत्॥ १०॥

कफज इत्यादी—पाचनात्मकैरिति श्रामकफपाचनस्वभावैभैपजैर्दरामूला-दिभि. पाययेत्, सींप पुराणिमिति—पुराणस्य सींपपः कालप्रकषेकृतसस्कारात् कफ-इरत्व बोध्यम् । किंवा कर्र्जे पुराणे वातानुबन्धे विधेयम् । मध्कसीरेख मध्क-काष्टसारचूर्णेन छण्णोदकेनाले। डितेन श्रवपीड. कार्य्यं ॥ १०॥

कृष्णाव्दश्चराठीमधुकशताद्वोत्पलपाकते । जलपिष्टैः शिरोलेपः सद्यः शूलनिवारण् ॥११॥ कृषेत्यादी—माकल कुष्टम् ॥ ११॥

देवदारु नतं कुष्ठं नतदं विश्वभेषजम् । तेप काञ्जिकसम्पिष्टस्तैतयुक्क शिरोऽर्चिनुत्॥ सन्निपानमवे कार्या दोषत्रयहरी किया। सर्पिःपानं विशेषेण पुराणन्त्वादिशान्ति हि॥ १२॥

देनदार्वित्यादी--नलद मासी। साँप पान पुरातनमिति पायते इति पान, कर्मीय अनट्, तदेव पुरायामिति विशेषण गृह्यते ॥ १२ ॥

त्रिकद्वकपुष्कररजनीजीवकतुरङ्गगन्धानाम् । ्रकायः शिरोऽर्चिजालं नासापीतो निवारयति ॥ १३ ॥

त्रिनद्धकेत्यादौ--जीवक पाँतशाल । शिरोऽत्तिजालमिति नानादीमज शिरोरोगम् । द्रव्याया तीच्यावीर्य्यत्वात् पित्तज विद्वाय योज्योऽय योग श्लोके ॥१३॥

नागरकल्कमिश्रं चीरं नस्येन योजितं पुंसाम्। नानादोषोद्भृतां शिरोधजां द्दन्ति तीवतराम्॥ १

नागरेत्यादौ-गन्यदुग्ध पलैक, शुग्ठीचूर्ण माधकत्रय प्रविप्य, नासया वेयमिति १द्धा ॥ १४॥

नतोत्पत्तं चन्दनकुष्ठयुक्तं शिरोक्जायां सघृतं प्रदेहः। प्रपौरहरीकं सुरदारु कुष्ठं यष्ट्याह्नमेला कमलोत्पत्ते च॥

### शिरोरुजायां सघृतः प्रदेहो लौहैरकापद्मकचोरकैश्च ॥ १४ ॥

नतेत्यादि—नत तगरपादिका, तदभावे शियलीछोपर । प्रपौग्डरीकेत्यादी— लोहमगुरु, एरका होगल., चोरक चोरपुष्पी । प्रपौग्डरीकादिश्चोरकान्त एको योग । निश्चलस्तु उत्पलान्त एका योग, लोहेत्याद्यपर इत्याह, तन्न, द्वान्निशत् प्रदेहापेच्चया प्रदेहाधिकप्रमङ्गात् ॥ १५॥

शताह्वाद्यं तैलम्

शताह्वरएडमूलोग्नावक्त्रव्याघ्नीफलैः श्वतम् । तैलं नस्यं मरुच्छ्लेष्मतिमिरोद्ध्वंगदापह्रम् ॥ १६ ॥ शतोह्वत्यादी--उम्रा वचा, वक्त्र तगरपादिका, व्याघ्री कण्टकारी, तस्या फलम् । फलमिति मदनफलमित्यन्ये ॥ १६ ॥

## जीवकाद्यं तैलम्

जीवकषभकद्रात्तासितायष्टीवलोत्पलैः। तैलं नस्यं पय पकं वातापित्ताशिरोगदे॥ १७॥ जीवकाधतैले—पय पक्षमिति चतुर्गुखुग्धे सिद्धम्॥ १७॥

## वृहजीवकाद्यं तैलम्

जीवकर्षभको द्राचा मधूकं मधुकं वला ।
नीलोत्पलं चन्दनञ्च विदारी शकेरा तथा ॥
तैलप्रस्थं पचेदेभि. शनै. पयसि षड्गुण ।
जाइलस्य तु मांसस्य तुलाईस्य रसेन तु ॥
सिद्धमेतद्भवेन्नस्यं तैलमद्धीवभेदकम् ।
वाधिर्य्यं कण्युलञ्च तिमिरं गलश्चिर्वकाम् ॥
वातिकं पैत्तिकञ्चैव शीर्परोगं नियञ्छति ।
दन्तचालं शिरःशूलमर्दितञ्चापकपति ॥ १८ ॥

बृह्ज्जीवकावतेले—मधूक मधूकस्य पुष्प फल वा । जाङ्गलमास हरिखादि-स्मासम्, तस्य तुलार्द्धस्य रसेनेति तुलाद्रस्य जलद्रोया इति वचनात् तुलार्द्धे मासे ऽर्द्धद्रोयजल दत्त्वा पादशेषो रस्, प्रस्यद्वयमानो भवति । मृदोक्षतुर्गुख देयमिति परिमाषया काथविधिरित्यन्ये । व्यवहारस्तु पूर्वन्याख्यया ॥ १ = ॥

## पड्विन्दुतैलम्

परग्रहमूलं तगरं शताहा जीवन्ति रास्ना सह सैन्धवञ्च । भृद्गं विडक्नं मधुयप्रिका च विश्वोषध कृष्णतिलस्य तैलम् ॥ श्राजं पयस्तैलिबिमिश्रिनञ्च चतुर्गुणे भृक्षरसे विषक्षम् । षड्विन्दवो नासिकया विधेया शीघं निहन्यु शिरसो विकारान् च्युतांश्च केशान् पलितांश्च दन्तान् दुर्वेद्धमूलांश्च दढीकरित । सुपण्डिप्टिप्रतिमञ्च चज्जुर्वाह्येवज्ञ्चाभ्यधिकं ददाति ॥१६॥

यड्विन्दुतैले-तगर पिराडतगरमूलम्, सङ्ग गुडल्वक् । अजाखीरन्तु तेलसम-मिति, किन्तु सामान्यतस्तिलतैलगोद्योरेखावि योगोऽयम्, तन्त्रान्तरसवादाद ॥१६॥

त्त्रयजे त्त्रयमासाद्य कर्तव्यो वृंहशो विधि । पाने नस्ये च सर्पि स्याद्वातक्ष्मैभृष्ठरैः श्वतम्॥ २०॥

चयजे चयमासाधिति—यस्य रक्तादे, चयेख शिरोरोगो जातस्तस्य चय वुद्ध्या तत्प्रत्यनीकी बृह्णो विधि कार्य्य इत्यर्थः । वातप्तममुदै. श्रुतमिति वातप्तो मद्रदार्थादि , मधुर काकोल्यादि । तत्र वातप्तस्य काथ , मधुरगणस्य तु कल्क । यदाह विदेह —"सिद्ध वातहरकाथे कल्के मधुरके ध्रुतम् । पाने नस्ये विधातव्य शिरोरोगे चयोद्धवे" इति ॥ २०॥

## क्रिमिजे व्योषनक्राह्-शियुवीजैश्च नावनम्।

श्रजामूत्रयुतं नस्यं किमिजे किमिजित् परम् ॥ २१ ॥

किमिज इत्यादी—नक्ताह्रशिमुवीजैरिति, नक्ताह्र' कर्ञ्ज , विजयदमुभय-श्रापि मम्बध्यते । अजामूत्रयुत्तमित्यादि—किमिजे शिरोरीगे यन्नस्यमुक्त तदजा-मूत्रयुक्त किमिजित स्यादित्यथे । उक्त हि—''मूत्रपिष्टा समुद्दिष्टा किया किमिषु योजयेत'' इति । किंवा किमिजिदिष्टक्तम्, अजामूत्रयुक्त नस्य पर उत्कृष्ट स्यादित्यर्थे ॥ २१॥

## **अपामार्गतैलम्**

श्रपामार्गफलव्योप-निशास्त्रवकरामठे । स्विडक्तं श्टतं मूले तैलं नस्यं क्रिमिं जयेत्॥ २२ ॥ श्रपामार्गफलमिति पश्रसमास । खबको हाश्चिया लोकनाथ इति लोके । रामठ हिंगु । मूत्र चतुर्गुणम् ॥ २२ ॥

नावनं सगुडं विश्वं पिष्पली वा ससैन्धवा। भुजस्तम्भादिरोगेषु सर्वेषूद्ध्वंगदेषु च॥ २३॥

नावनित्यादी---गुडमाषकाय्यष्टी, शुष्ठीचूर्णं मापकद्वयम् , उच्णोदकपलै-केन गोलयित्वा वस्त्रपृत कृत्वा नस्य कार्य्यम् । श्रय योगो वातानुबन्धे । तथा पिष्पलीचूर्णं मापकद्वयम् , उष्णोदक कर्षेकम् , पूर्ववन्नस्य कफानुबन्धे ॥ २३॥

स्र्यावर्ते विघातव्यं नस्यकर्मादि भेषजम्। पाययेत् सगुडं सर्पिर्धृतपूरांश्च भन्नयेत् ॥ २४॥

स्र्यांवर्त्त इत्यादि—सुश्रुनस्य । नस्यकर्मादीति हेतुभूतदोषविपरीत नस्य परिपेक शिरोविरेकादिकम् । पाययेदित्यादि—नातप्रवले छतपलैके गुडमाषकाष्टक प्रक्तिप्य पाययेदिति । छतपूरो भक्त्यविशेष । यथा—"मर्दिता समिता छीरनारि-केलछतादिभि । श्रवगाह्य छते पक्ता छतपूरोऽयमुच्यते" इति ॥ २४॥

स्र्यावर्ते शिरावेघो नावनं ज्ञीरसर्पिषा। हित ज्ञीरघृताभ्यासस्ताभ्याञ्चेव विरेचनम्॥ २४॥

स्र्यावर्त्त इत्यादि —स्यांवर्त्ते यथोक्ताकियाभि पुनरप्रशमे शिराज्यथ कार्य्य इत्याहु । इरिसपियेति चोरात्यमपिषा । इरिष्ठताभ्यास इति चीर्ष्ठतयोरभ्यास । ताभ्यामिति चीर्ष्ठताभ्या विरेचकद्रव्यसिहताभ्या विरेचनम् , किंवा विरेचनमिह शिरोविरेचनम् ॥ २५ ॥

चीरिपष्टिस्तिलैः स्वेदो जीवनीयैश्च शस्यते ॥ २६॥ जीवनीयैश्च चीरिपष्टेरित्यन्वय.॥ २६॥

सशर्करं कुङ्कुममाज्यसृष्टं नस्यं विधेयं पवनास्गुत्थे । भ्रूशङ्क्षकर्णोक्तिशिरोऽर्द्धश्रले दिनाभिवृद्धिप्रभवे च रोगे ॥२७॥ सशर्करमित्यादि—सर्शकर कुकुम धते सृष्ट्वा धतेनैव विष्ट्वा समालोड्य नस्य

विधेयम् । श्रस्य पत्री— दृत तो ४, शर्करा मा ४, कुकुम मा ४, श्रालोड्याग्नौ किश्चित् तप्तीकृत्य नस्य देयम् । दिनाभिष्टाद्धिप्रमचे रोगः स्ट्यीनर्तं इत्यर्थः ॥२७॥

कृतमालपल्लवरसे खरमञ्जरिकल्कसिद्धं नवनीतम्। नस्येन जयति नियतं सूर्य्यावर्त्तं सुदुर्वारम्॥ २८॥ कृतमालेत्यादि—कृतमाल मोनालु , तस्य पल्लवस्वरम प्रस्थ एक , भ्रपा-मार्गवीजस्य पलद्वय, नवनीतस्याष्टी पलानीत्याहु ॥ २८ ॥

दशमूलीकपायन्तु सिंपःसैन्धवसंयुतम् । नस्यमद्भीवभेदम्नं स्र्यावर्त्तशिरोऽर्त्तिनुत् ॥ शिरीषमूलकफलैरवपीडञ्च योजयेत् । श्रवपीडो हितो वा स्याद् वचापिष्पलिभि श्रतः ॥ २६॥

दशामूलीत्यादि—दशामूलीकाथ पल १, प्रचेपप्टन मा ७, मैन्धव मा १ नामया पेयम् । शिरीपेत्यादि—शिरीपवल्कलमूलकवीजयो प्रत्येक मा ४, पिष्ट्वा वस्त्रेण निष्पीच्य नस्य विधेयम्, एव वचापिष्पलीभ्यामिति । एतचावपीडदयमिततीच्यात्वात् यद्यपि स्टर्यावर्ते वातपित्तोत्तरे न अज्येत तथापि व्याधिप्रत्यनीकत्वात् स्थानिककफ- चयार्थं वा श्रेयमिदम् । अन्ये तु स्टर्यावर्त्तविपर्यये योगद्दयमित्याहु । स्टर्यावर्त्त-विपरीतश्च प्रत्युषे सायन्न महान्, मध्ये तु मन्द इति ॥ २६ ॥

जाङ्गलानि च मासानि कारयेदुपनाहृनम् ।
तेनास्य शाम्यति व्याधिः सूर्य्यावर्चः सुदारुणः ॥
एष पव विधिः कृत्स्नः कार्य्यश्चाद्धांवभेदके ।
शारिवोत्पलकुष्ठानि मधुकञ्चाम्लपेषितम् ।
सर्पिस्तेलयुतो लेप सूर्य्यावर्चार्द्धभेदयोः ॥ ३० ॥
जाङ्गलानीति—अत्र वृद्धवैद्योपदेशात् वातहरद्वन्यैर्मासमुत्तिव सैन्थव तेलञ्च

दत्वा उष्णुलेप कार्य्य । श्रम्लोपिषतिमिति काञ्जिकोपितम् ॥ ३०॥

पिवेत् सशर्करं ज्ञीर नीरं वा नारिकेलजम्।
सुशीतं वावि पानीयं सर्पिवी नस्ततस्तयोः॥ ३१॥

पिनेदित्यादि—योगचतुष्टय सशर्करमित्यनुवर्त्तथितु युज्यत इति निश्चल । तयोरिति स्टर्यावर्त्तार्द्वभेदकयो ॥ ३१ ॥

श्रनन्तवाते कर्त्तव्यः स्ट्यांवर्त्तहितो विधिः। शिरावेधश्च कर्त्तव्योऽनन्तवातप्रशान्तये॥ श्राहारश्च विधातव्यो वातिपत्तिविनाशन । मधुमस्तक-संयाव-हवि पूरैश्च यः क्रमः॥

स्र्योवर्ते हितं यत् तच्छङ्खके खेदवर्जितम्। चीरसर्पिः प्रशंसन्ति नस्त पानञ्च शङ्कके॥ शतावरीं कृष्णतिलान् मधुकं नीलमुत्पलम्। दूवी पुनर्नवाञ्चापि लेप साध्ववचारयेत्॥ शीततोयावसेकांश्च चीरसेकांश्च शीतलान्। करकेश्च चीरिवृचाणां शङ्खकस्य प्रलेपनम्॥ क्रौञ्चकादम्वहंसानां शरार्थ्या कच्छपस्य च। रसै॰ संबृंहितस्याथ तस्य शङ्खकसन्धिजाः। **अद्**र्ध्व तिस्र शिरा प्राज्ञो भिन्द्यादेव न ताडयेत् ॥ ३२ ॥ अनन्तवातत्यादि-सुश्रतस्य । मधुमस्तकेति मधुमस्तकादयो भद्त्यविशेषा सद शास्त्रेऽनुसन्धेया । मधुमस्त पानिकाकारो मधुगर्मः सितावेष्टितो मच्यविशेष इति वकुल , मधुन अर्ध्वमिति चक्र । सयावी यथा-"पचेद् इतोत्तरे मागडे चिपेद् भाग्छेन वे तत । सयावोऽसौ सिताचूर्णे स्वर्ण्डलामरिचाईके " इति । इविःपूरा मच्यिभेशेष प्रतपूरेति लोके। यथा ''मारिडत सिमतािष्ट चीरेखेव विलोडित । श्रवगाह्य घते पक्को घतपूरोऽयमुत्तम " इति। क्रम इत्याह क्रम इति। चीरात्थ सिर्प चीरमपि , नस्त पान नासिकया पान, किंवा नस्य पानञ्च। उक्तव्च मुश्रुते-"चीर-सिं प्रशसन्ति नस्य पान च शङ्कते" इति । चीरिवृचेति चीरिवृचा वटादय । सबृहितस्येति प्राप्तमासोपचयस्य । सन्धिजा शिरा भिन्वादित्यत्र स्च्येति शेष । न ताडये दिति कुठारिकयेति शेष , सिन्धमङ्गभयादिति च शेषः ॥३२॥

शिरःकम्पेऽमृतारास्नाबलास्नेहसुगन्धिभि । स्नेहस्रेदादि वातम्नं शिरोवस्तिश्च शस्यते ॥ ३३॥

शिर,कम्प इत्यादौ---केहो घतादि । सुगन्धिरगुर्वादि । सुगन्धिरित्यनन्तर लेप इति शेष ।शिरोवस्तिविधि पूर्वमुक्त एव ॥ ३३ ॥

#### यष्ट्याद्यं घृतम्

यप्रीमधुबलारास्त्रादशमूलाम्बुसाधितम् । मधुरैश्च घृतं सिद्धमूद्ध्वजञ्जगदापहम् ॥ ३४॥ यष्टिमध्वत्यादि—एत प्रस्थेन, काथार्थं यथ्व्यादिदशमूलान्ताना मिलिला चतु पिटपल, जलद्रोरोक,रोप रारावपोडरा, कल्कार्थ काकोला-यप्टिमधु-फाकणा-गर्दा-मेदा जीवक ऋपभक-पुरव्हरीककाष्ठ-द्राचा-ऋदि एदि वशरोचना-मुगानी-मापार्गा-चीरका-कोली-पद्मकाष्ठ-गुरुची प्रक २ पक्तच्यम् ॥ १४ ॥

## मयूराद्यं घृतम्

दशमूलवलारास्नामधुकेस्त्रिफले सह।
मयूर पच्चित्तान्त्रशकृत्पादास्यवर्जितम्॥
जले पक्त्वा घृतप्रस्थ तिस्मन् चीरसमं पचेत्।
मधुरै कार्षिकेः कल्के शिरोरोगार्दितापहम्॥
कर्णनासाच्चितिहास्यगलरोगिवनाशनम्।
मयूराद्यमिदं ख्यातमृद्ध्वेजन्त्रगदापहम्।
श्राखुभि कुक्कुटैईसैः शशैश्चापि हि बुद्धिमान्।
कल्केनानेन विपचेत् सर्पिस्द्ध्वेगदापहम्॥
दशमृलादिना तुल्यो मयूर इह गृह्यते।
श्रन्य त्वाकृतिमानेन मयूरग्रहणं विदु ॥ ३४॥

दशमूलित्यादि—दशमूलस्य प्रत्येक पलप्यम्, एवं मलादीना सयाणामपि, तेन मिलिला जनचलारिशायलानि भवन्ति । तथा मयूरमासमि पचपादादिरिद्वस्य जनचलारिशायलानि भवन्ति । तथा मयूरमासमि पचपादादिरिद्वस्य जनचलारिशायल प्राह्मम् । एवं मिलिला यावत् काथ्य भवति, तत्र ''काथ्याचतु-गुंण वारि'' इत्यादि परिभाषया जलादिन्यवस्था, एतदेवाह् दशमूल्यादिना तुल्यो मयूर इत्यादि । अन्ये तु दशमूलादिभि अत्येक त्रिपलमाने मह् तरुणमयूर्गुडक्नेमक पचादिवर्जित जलद्रोण एवं पचत्, जलद्रोणेऽत्र पादशेषः, म च पचनीयप्रतापेख्या चतुर्गुणो भवतीत्याह् । पतदेवाहुः '' अन्ये त्वाकृतिमानेन मयूर्म्यस्य विद्रिति ।'' व्यवहारत्त्वनेनेव । मधुरिति जीवनीयदशक्ते, जीवनीयानि च मधुर-त्वमधुरिवपाकत्वप्रकर्पान्मधुरश्चित्रो । एतन्मयूर्ष्यत् तथा अद्यमानव्य मधुर-स्थान मृपिकादीन् दत्त्वापि कार्य्यमित्याह् । आखुना तथा मयूर्पेक्षया अल्प-गुणेनापि तत्रेकेन केहसाथन कर्त्व्यमित्याह् ॥ ३५॥

प्रपौराउरीकाद्यं तैलम् प्रपौराउरीकमधुकपिष्पलीचन्दनोत्पलैः। सिद्धं धात्रीरसे तैलं नस्येनाभ्यञ्जनेन वा। सर्वानृद्ध्वगदान् हन्ति पलितानि च शीलितम् ॥३६॥

प्रपौग्डरीकमित्यादि — वाग्मटस्य । चन्दनोत्पलैरित्यत्र कल्केरिति शेष. । धात्रीरसम्रात्र तैलापेचया चतुर्गुग्य ॥ ३६ ॥

## मायूरं घृतम्

शतं मयूरमांसस्य दशमूलवलातुलाम् ।
द्रोणे अभसः पचेत् जुत्त्वा तस्मिन् पादस्थिते ततः ॥
निषिच्य पयसे। द्रोणं पचेत्तत्र घृताढकम् ।
प्रपौगडरीकवर्गीक्वर्जीवनीयैश्च भेषजः ॥
मधावुद्धिस्मृतिकरमूद्ध्वजत्रुगदापहम् ।
मायूरमेति विषेशे सर्वानिलहरं परम् ॥
मन्याक्षिशिरोनेत्रवजापस्मारनाशनम् ।
विषवातामयश्वासविषमज्वरकासनुत् ॥ ३७॥
इति शिरोरोगिचिकित्सा ।

शतिमत्यादौ — दशमूलवलामूलयोामिलित्वा तुला । द्रोण इति पदमावृत्य उभयन्नापि योज्य, तेन मयूरमासरातपले एको जलद्रोण , दशमूलवलातुलायाञ्चापर इति द्रोणद्रयमम्भस । पयसो दुग्धस्य द्रोण निषिच्य दत्त्वा पचिदिति । एतेन षङ्गुणः पाक । प्रपौर्ण्डरीकवर्गोकैरिति प्रपौर्ण्डरीकमधुकपिप्पलीचन्दनोत्पलैरित्यर्थः । जीवनीयैरिति जीवनीयदशके । ततोऽत्र यष्टिमधुकस्य भागद्वय आह्मम् ॥ ३७॥ इति शिरोरोगचिकित्साविवृति. ।

# अथासुग्दरचिकित्सा ।

द्धा सौवर्चलाजाजीमधुकं नीलमुत्पलम्। पिवेत् चौद्रयुतं नारी वातासम्दरपीडिता ॥१॥ क्षीपुसा साधारखव्याधीना तथा पुप्रतिनियतानामप्युपर्दशादीनां चिकि-त्सोक्षा, सम्प्रति क्षीनियताना प्रदरादीना चिकित्सितमभिधातुमुपक्षमते । दक्षत्यादि— दक्ष कर्षत्रय, सौवर्चलस्य मापकमेकम्, श्रजाज्यादीना प्रत्येक मापकद्वय, मधु-नस्तु माषकचतुष्टयमित्याहु ॥ १ ॥

> पिवेदैंगेयकं रक्तं शर्करामधुसंयुतम् । वासकस्वरसं पैते गुट्टच्या रसमेव वा ॥ २ ॥

श्रतिवहुसुतरोाणिताना चिकित्सामाह पिवेदित्यादि—एणस्येदम् प्रेणय, स्वार्थे क॰। एणस्य रक्ष दशमूलयोगेन मर्देयित्वा पेय, तेन स्त्यानता न स्यादि-त्याहु । शर्कगमधुयोजितिमिति पद वासकस्वरस-गुङ्चीस्वरमयोरिप योज्य हारीत-सवादात्॥ २॥

> रोहीतकान्मूलकलकं पाएहरेऽस्टेन्दरे पिवेत । जलेनामलकाद्वीजकलकं वा ससितामधु । धातक्याश्चात्तमात्रं वा श्रामलक्या मधुद्रवम् ॥ काकजानुकमूलं वा मूल कार्पासमेव वा । पाएहप्रदरशान्त्यर्थ पिवेत्तएहलवारिणा ॥ ३॥

रोहीतकादित्यत्रापि ससिता मिन्निति योज्यम् । धातक्या इत्यादि-धातक्या कल्कमचमात्र मधुद्रव, तथामलक्या वा कल्कमचमात्र मधुद्रव पिनेत् । मधुद्रवो यत्र कल्के तत् मधुद्रवम् । काकजानुक काकजङ्घा ॥ १ ॥

श्रशोकवल्कलकाथश्रतं दुग्धं सुशीतलम् । यथावलं पियेत् पातस्तीवास्ग्दरनाशनम्॥ ४॥

भ्रशोकेत्यादौ--पडद्गपरिभाषयार्द्धश्वतमशोकवल्कलकाथ गृहीत्वा तेन चतुर्गु-येन दीर साध्यमित्यर्थः। वृद्धास्तु काथमकृत्वेव चीरसाधनपरिमापया व्यवहरन्ति ॥४

> दावींरसाञ्जनवृषाव्दिकरातवित्व-भक्षातकैरवकृतो मधुना कपायः। पीतो जयस्यतिबलं प्रद्रं सभूलं पीतासितारुणविलोहितनीलशुक्कम्॥४॥

दावीं लादौ — हुपा वासक , विल्व शुष्कविल्वशलाड , कैरव कुमुदम्। 'मह्नातकासहत्वे तु रक्तचन्दनिमध्यते' अनेन व्यवहरन्ति ॥ ५॥

रसाञ्जनं तराहलीयस्य मूलं चौद्रान्वितं तराहलतोयपीतम्। श्रस्यदं सर्वभवं निहन्ति श्वासञ्च भागीं सह नागरेरा॥

कुशमूल समुद्धत्य पेषयेत्तग्हलाम्बुना।

एतत् पीत्वा ज्यहान्नारी प्रदरात् परिमुच्यते ॥

चौद्रयुक्तं फलरसं काष्ठोहम्बरजं पिवेत्।

श्रस्ग्दरिवनाशाय सशर्करपयोऽन्नभुक्॥

प्रदर हन्ति चलाया सूलं दुग्धेन मधुयुतं पीतम्॥६॥

रसान्जनिमत्यादौ—तण्डुलीयस्य मूल लोहिततण्डुलीयस्य मूल गृह्यते। भेपजद्वयमिद प्रत्येक, मिलितन्न वोध्य, सिद्धमारहीरातसवादाद। सर्वभवमिति वाताधेकदोषभव सर्व, न तु सान्निपातिक ,तस्यासाध्यत्वाद। उक्त हि—'सचौद्र-मिंपहेरितालवर्ण मञ्जप्रकाश कुणप त्रिदोषाद। तन्नाध्यसाध्य प्रवदन्ति तन्ना न तत्र कुर्वीत भिषक् चिकित्साम् ' इति । श्वासन्न मार्गी सह नागरेणेति तु क्षोका-नुरोधान्निखितम् ॥ ६॥

कुशवाट्यालकमूलं तएइलसलिलेन हरति रक्ताख्यम् । शमयति मदिरापानं तदुमयमपि रक्तसंज्ञश्रुक्काख्यौ ॥ ७ ॥

रक्ताख्यभिति रक्तप्रदरम् । मदिरापानिभिति मदिरया पीयते कर्मायि ल्युट , तेन मदिरापीतिभित्यर्थ । तदुभयमिति कुशवाख्यालकयोर्भूलम् ॥ ७ ॥

गुडेन वदरीचूर्णं मोचमामं तथा पय । पीता लाचा च सघृता पृथक् प्रदरनाशना ॥ 🖛 ॥

गुडेनेत्यादि — योगचतुष्टयम्। बदरीचूर्णमिति वातकफे । मोचमाममे।चम्, अपककदलीफलचूर्णस्य कर्षे एक , एतच कफिपत्ते ॥ ८ ॥

> रक्रपित्तविधानेन प्रदरांश्चप्युपाचरेत् । श्रसुग्दरे विशेषेण कुटजाष्टकमाचरेत् ॥ ६ ॥

रक्तिपत्तिविधानेनेति अधोगतरक्तिपत्तिविधानेन ॥ १ ॥

पुष्यातुगं चूर्णम् पाठाजम्ब्वाम्रयोर्मध्यं शिलाभेदरसाञ्जनम्। श्रम्बष्ठकीमोचरस-समङ्गापद्मकेशरान्॥ वाह्वीकातिविपासुस्तं वित्वं लोधं सँगैरिकम् ।
त्रिफलां मिरचं शुण्ठी-मृद्धीका रक्षचन्दनम् ॥
कट्वद्गवत्सकानन्ता-धातकीमधुकार्जुनम् ।
पुण्येणोद्ध्य तुल्यानि सूद्मचूर्णानि कारयेत् ॥
तानि चौद्रेण संयुज्य पाययेत् तण्हलाम्बुना ।
श्रस्पद्गतिसारेपु रक्षं यञ्चोपयेश्यते ॥
दोपागन्तुकृता ये च वालानां तांश्च नाश्येत् ।
योनिदोपं रजोदोपं श्वेतं नीलं सपीतकम् ॥
स्त्रीणां श्यावाक्णं यद्य तत् प्रसद्य निवर्त्तयेत् ।
श्रम्यष्टा दित्तणे ख्याता गृह्वन्त्यन्ये तु लत्त्याम् ॥ १०॥
प्रम्यष्टा दित्तणे ख्याता गृह्वन्त्यन्ये तु लत्त्याम् ॥ १०॥
प्रम्यष्टा प्रम्वान्यां जम्मान्यां तिस्य । नाम्भेऽधि जम्मान्यार

पुष्यानुगचूर्यं-जम्बान्नयोगिभ्य जम्बान्नयोरिश्य । वाग्मटेडिप जम्बान्नयोर-स्पीत्युक्तम् । अम्बष्टकी दिश्यापये ख्याता, तदमाने पाठामेन द्विगुणा गृष्ठन्ति, लश्चणा-मिखन्य । पद्मेकेशर पद्मिक्जल्कम्, वाहीक कुद्भुमम्, विल्व विल्वशलाड । पुष्येखेनि पुष्यानचेत्रेय ॥ १०॥

मुद्गार्च घृतम्

मुद्मापस्य निर्च्यूहे रास्नाचित्रकनागरे । सिद्धं सपिष्पलीविल्वै सिपः श्रेष्ठमसुग्दरे ॥ ११ ॥ मुद्गेत्यादौ—मुद्गमापाभ्या निर्च्युह काथ । रास्नादिपश्चकस्य कल्कः विल्वं विल्वग्रुएठकम् ॥ ११ ॥

शीतकल्यायकं घृतम् कुमुदं पद्मकोशीरं गोधूमा रक्षशालयः। मुद्गपर्णी पयस्या च काश्मरी मधुयष्टिका॥ वलातिवलयोर्मूलमुत्पलं तालमस्तकम्। विदारी शतमूली च शालपर्णी सजीवका॥ फलं अपुपवीजानि प्रत्यं कदलीफलम्। प्रयामद्भेपलान् भागान् गन्यं सीरं चतुर्गुसम्॥ पानीयं हिगुणं दत्त्वा घृतप्रस्थं विपाचयेत्।
पदरे रक्षगुलेम च रक्षापित्ते हलीमके ॥
वहुरूपश्च यत् पित्तं कामलावातशोणिते।
श्ररोचके ज्वरे जीणें पागृहरोगे मद भ्रमे॥
तरुणी चाल्पपुष्पा च या च गर्भे न विन्द्ति।
श्रहन्यहिन च स्त्रीणां भवति प्रीतिवर्द्धनम्।
शीतकल्याणकं नाम परमुक्तं रसायनम् ॥ १२॥

कुमुदिमिलादि — कुमुद महारपुष्पम्, पद्मक पद्मकाष्टम्, रक्षशालेस्तु मूलम्, पयस्या चीरकाकोली, काश्मरी गाम्मारी, तस्या फलम्, श्रतिवला गेरचत्रखुला, जीवक जीवनीयगणमध्ये पठित विशिद्धन्यम्, फल त्रिफला, अपुष मायाम्बुफलम्, वीजिमिल्यन्ये । प्रत्यद्यामिलाभिनवम्, श्रपक्षीमलर्थं ॥ १२ ॥

## **ब्ह**च्छतावरीघृतम्

शतावरीरसप्रशं च्रोदियत्वावपीडयेत्।

घृतप्रश्वसमायुक्तं चीरं द्विगुणितं भिपक्॥

श्रव कहकानिमान् द्यात् स्थूलोड्डम्बरसिमतान्।

जीवनीयानि यान्यष्टा यष्टीचन्दनपद्मकेः॥

श्वदंष्ट्रा चात्मगुता च वला नागबला तथा।

शालपणीं पृश्लिपणीं विदारी शारिवाद्यम्॥

शर्करा च समा देया काश्मर्थ्याश्च फलानि च।

सम्यक् सिद्धन्तु विक्षाय तद् घृतश्चावतारशत्॥

रक्षपिचविकारेषु वातपित्तकृतेषु च।

वातरक्तं च्यं श्वासं हिक्कां कासश्च दुस्तरम्॥

श्रद्भदाहं शिरोदाहं रक्षपित्तसमुद्भवम्।

श्रद्भाद्दं सर्वभवं मूवकुच्छं सुदारुणम्॥

एतान् रोगान् शमयति भास्करित्तिमिरं यथा॥ १३॥

इत्यस्यदर्निकित्सा॥

वृहच्छतावरीष्ट्रे-स्रातावरी चोदायित्वा रमप्रस्यमवपीडयेत्, श्रवपीड्य गृह्णीया-दिलर्थः । स्यूले। दुम्बरमम्मितान् इति प्रत्येक कर्षसिम्मनानित्यर्थः । जीवनीयानि यान्यष्टाविति श्रष्टवर्ग । जीवकर्षभकौ मेदामहामेदाकाकोलीचीरकाकोलीऋदिवृद्धय इति । असुन्दर सर्वभविमिति पूर्ववत व्याख्येयम् ॥ १३ ॥

इलसुग्दरचित्किमा विष्रति

## अथ योनिव्यापिचिकित्सा।

योनिव्यापत्सु भूयिष्ठं शस्यते कर्म वातजित्। वस्त्रभ्यद्गपरीपेकप्रलेपाः पिचुधारणम् ॥१॥

प्रदरोऽपि योनिच्यापद्विशेष इति योनिच्यापत्त्वसामान्यादनन्तर योनिच्यापश्चिकि-त्मित्मुच्यते, योनिन्यापत्स्वित्यादि-कर्म वातिजिदिति वस्तिरुत्तरवस्तिरच ॥ १ ॥

> वचोपकुञ्चिकाजाजी रुष्णावृपकसैन्धवम्। श्रजमोदां यवन्तारं चित्रक शर्करान्वितम्॥ पिएवा प्रसन्नयालाब्य खादेत् नद् घृतभर्जितम्। योनिपार्थ्वार्चिह्रद्रोग-गुल्मार्शोविनिवृत्तये ॥ २ ॥

वचित्यादि-वाग्भटस्य । उपकुञ्चिका कृष्णजीरकम्, वृषको वासकमूलम्, प्रमन्ना मिदराया उपरिस्थ फेनमाग । एभ्या वचादिस्य समभागिष्टिभ्य. तो २, प्रसन्ना पल २, आलोड्य एतकर्पेण सन्तल्य पेयम् ॥ २॥

> गुद्भचीत्रिफलादन्तीकाथैश्च परिषेचनम्। नतवार्चाकिनीकुष्ठसैन्धवामरदारुभि । तैलात् प्रसाधिताद्धार्य्य पिचुर्योनी रुजापहः॥ पित्तलानान्तु योनीनां सेकाभ्यद्गपिचुिकया । शीता पित्तहराः कार्या स्नेहनार्थ घृतानि च ॥ ३॥

नतित्यादि--वाग्मटस्य। वार्त्ताकिनी भूकण्टकारी, गोष्ठवार्त्ताकुरित्यन्ये। अमर-दारु देवदार । एभिर्वचादिभि कल्कै तल साध्यम्, जलव्च चतुर्शुखीमिति । पिचुरिति भेपनमाधितकेहाप्लुतत्व पिचु ॥ ३॥

योन्यां वलासदुष्टायां सर्वे रूत्तोष्णमौपधम्। पिष्पल्या मरिचैर्मापै शताह्वाकुष्ठसैन्धवै।

वर्तिस्तुल्या प्रदेशिन्या घार्या यानिविशोधनी ॥४॥ योन्यामित्यादौ--तुल्येति परिखाद्देन दैध्येण च । वींचीराते वस्नेण वस्न विना वा ॥ ४॥

> हिस्राकल्कन्तु वातात्ती कोष्णामभ्यज्य घारयेत्। पञ्चवल्कस्य पित्तार्त्ता श्यामादीनां कफोत्तरा॥४॥

हिंस्नत्यादि—हिंसा कालाकडामूलम् । पन्चवल्कलस्य वटोडुम्बराश्वत्थसत्त-वेतमस्य । श्यामादीनामिति कफ रोगभिषग्जितीये श्यामात्रिवृच्चतुरगुलेत्यादिना उक्नानाम् ॥ ५ ॥

मूपिकमांससंयुक्तं तैलमातपभावितम्।

श्रभ्यद्गाद्धन्ति योन्यशं स्वेदस्तन्मांससैन्धवे ॥ ६॥
मृषिकेत्यादि—मृषिकाणा मास तैलात् पादिकम्, नात्र द्रवयोग कार्य्य ।
श्रातपमावितमिति सप्ताहम्, तान्मास मृषिकमाम सैन्थवचूर्णावचूर्णितमेरण्डादिपन्ने
कत्वा योनि स्वेदयेत् ॥ ६॥

गोपित्ते मत्स्यपिते वा चौमं त्रि सप्तभावितम्। मधुना किएवचूर्णं वा द्याद्चरणापहम्। स्रोतसां शोधनं कर्रद्रक्केदशोथहरश्च तत्॥ ७॥

गोपित्त इत्यादौ- कौम सुक्ममसृखवस्त्रम् । कियव सुरावीजम्, मधुना कियव-चूर्णमिति तृतीयो योग । श्रचरणा नाम योनिच्यापत् ॥ ७॥

वामिन्यां पूतियोन्याश्च कर्त्तव्य स्वेदनो विधि । क्रम कार्यस्तत स्नेहिपिचुभिस्तर्पणं भवेत् ॥ ८॥ वामिन्यामित्यादौ—पृतियोनिशब्देन उपज्जता परिप्लुता चोच्यते ॥ ८॥

शत्तर्काजिङ्गिनीजम्बूधवत्वक्पश्चवल्कलैः। कषायैः साधित स्नोहः पिचु स्याद्विप्लुतापह ॥ ६॥

-

शह्नकीत्यादि—शह्नकीजिङ्गिन्यौ स्वनामख्याते । त्वक्शब्द शह्नक्यादिभि प्रत्येक सम्बध्यते । अन कपायश्चतुर्गुण । अकल्क ण्वाय सेह । पिन्तुरिति प्तत्तैला- म्ह्रत पिन्तु ॥ ६॥

कर्णिन्यां वर्त्तिका कुष्ठिपिष्पल्यकांग्रसैन्धवै । यस्तम् त्रकृता धार्थ्या सर्वञ्च श्लेष्मनुद्धितम् ॥ त्रवृतं स्नेहनं स्वेद उदावर्त्तानिलार्तिषु । तदेव च महायोन्यां स्नस्तायाञ्च विधीयते ॥ १०॥

किंग्नियामित्यादौ — कुष्ठादिभिवित्ति कार्य्या इति योज्यम् । श्रक्तां प्रमक्षपञ्चवः । त्रेष्टत स्निह्नमिति सिपिस्तैलवमारूपसेष्ट । उदावर्षाख्या योनिन्यापस् । श्रानिलात्ति वातिकी योनिन्यापदित्यर्थ । तदेवेति त्रेष्टत सेहनम् । विधीयत इति श्रनुवामनोत्तर-विस्यित्यर्थ चरकसवादास् ॥ १०॥

श्राखोर्मासं सपि वहुधा खएडखएडीकृतं यत् तैले पाच्यं द्रवित नियतं यावदेतन्न सम्यक्। तत्तैलाक्षं वसनमिनशं योनिभागे द्रधाना हन्ति बीडाकरभगफलं नात्र सन्देहवुद्धिः॥११॥

त्राखे।रित्यादे।--सपदीति मद्यस्कमासग्रहर्णार्थम् । ण्तन्मास यावदिनि खरत्वमासाद्य न द्रवति द्रवता न गच्छति तावदेव गालनै।यमित्यर्थ । भगफल कन्दरोगम् ॥ १९॥

> शतपुष्पातैललेपाद्वद्रीदलजात्तथा । पेटिकामूललेपाच योनिर्भिन्ना प्रशाम्यति ॥ १२ ॥

रातपुष्पेत्यादि — योगश्रयम् । तैलपिष्टरातपुष्पया लेप श्रवर्थ । पेटिका कापीद्वपरीति ख्याता । भिन्नति निर्दाणी ॥ १२ ॥

सुपवीमूललेपेन प्रविष्टान्तर्वहिर्भवेत् । योनिर्मूषावसाभ्यद्गान्निःसृता प्रविशेद्यपि ॥ १३॥

सुपवीत्यादि — सुपवीमूललेपेन कारवेझमूललेपेनेत्यर्थ । प्रविष्टेति अन्त प्रविष्टा अन्तर्भुखा योनिर्विष्टिभेवतीत्यर्थ । योनिरित्यादी – मूपो मूपिकस्तस्य वमा मामस्नेह । नि स्तेति विर्दिन स्ता । इयमेव प्रश्नसिनीत्युच्यते ॥ १३ ॥

> लोधतुम्वीफलालेपो योनिदार्ढ्यं करोति च। वेतसमूलिन काथ-चालनेन तथैव च। मूपिकावागुलिवसाम्रचणं योनिदार्ढ्यदम्॥ १४॥

लोध्नेत्यादी — तुम्नी श्रलावुः, तस्या फलम् । तथैन चेति दार्ट्यकृदित्यर्थः । मृषिकेत्यादी — नागुली नादुर इति ख्याती दिनान्ध पत्ती ॥ १४ ॥

> वचा नीलोत्पलं कुष्ठं मरिचानि तथैव च । श्रश्वगन्धा हरिद्रा च गाढीकरणुमुत्तमम् ॥ १४ ॥

वचेत्यादि — वचादि हरिद्रान्त एको योग.। यचादिहरिद्रान्तैलेंपोऽवचूर्णन वा॥ १५॥

मद्फलमधुककपूरपूरितं भवति कामिनीजनस्य । चिरगलितयौवनस्य वराङ्गमतिगाढं सुकुमारम् ॥ १६ ॥ मदेत्यादि—मद कस्तूरी, फल जातीफलम्, किंवा मदफल मदनफलमेव । एतैर्मधुना पिष्टैयोनिप्रपूरणम् ॥ १६॥

पञ्चपल्लवयष्ट्याद्ध-मालतीकुसुमैर्घृतम् । रविपक्तमन्यथा वा योनिगन्धविनाशनम् ॥ १७ ॥

पन्चपह्नवेत्यादि — पन्चानाम् आम्रजम्बूकिपत्थवीजपूरकिनल्वाना पह्नवाः। एषा कल्क । रिवपकिमिति द्रव विनैव, अन्यथा वेत्यिशिपनवम्, अस्मिन् पच्च जल चतुर्शुग्यम् ॥ १७॥

> इत्त्वाकुवीजद्न्तीचपलागुडमद्निक्वयष्ट्याह्नैः। सस्तुक्त्तीरैर्विर्तिर्योनिगता कुसुमसञ्जननी ॥ १८॥

इदानीमार्चवनारो सित श्रार्चवोत्पादनिविधमाह इत्त्वाकुर्वाजेत्यादि—इत्त्वा-कुत्तिक्तालावु, चपला पिप्पली। एषा प्रमा ८, स्तुद्दीचीर मा ८, श्रग्नो पक्ता वित्तिः कार्य्यो। कुसुम रक्तम्, तब्बननी कुसुमसन्बननी॥ १८॥

सकाञ्जिकं जवापुष्पं सृष्टं ज्योतिष्मतीद्लस् ।
दूर्वायाः पिष्टकं प्राश्य वनिता त्वार्तवं लभेत् ॥ १६ ॥
सकाञ्जिकेत्यादि—योगत्रयम् । ज्योतिष्मतीदलमि भृष्ट बोध्यम् । दूर्वाया
पिष्टकमिति दूर्वातण्डुलाभ्या कृत पिष्टकम् । योगत्रयमेतत् ॥ ८६ ॥

धाज्यञ्जनाभयाचूर्णं तोयपीतं रजो हरेत् । शेलुच्छदमिश्रपिष्टं भक्तण्यच तदर्थकृत् ॥ २० ॥ श्दानीमार्चवहरयोगानाह धात्रीत्यादि—धात्र्यादीना मिलितचूर्णाना नोल-कैक बोध्यम् । शेलुच्छदेति शेलुपत्रतण्डुलाभ्या कृत पिष्टकमित्यर्थं ॥ २० ॥

#### पुष्योद्धतं लक्षणायाश्चकाङ्कायास्तु कन्यया । पिष्टं मूलं दुग्धघृतपीतसृतौ तु पुत्रदम् ॥ २१ ॥

श्दानीमात्तवे पुत्रप्रदयोगानाह पुर्थित्यादि—चक्राक्काया इति लक्षणाया विशेष्यम्, तत्पत्रस्य चक्राक्कितत्वात् । दुर्घष्टतपीतिमिति दुर्घेन धृतेन वा ऋतुस्नानान्तर दिनत्रय पिवेत् । अथवा नासापुटेन विन्दुचतुष्टय पिवेदित्यर्थ । अन्ये तु, लक्षणाया मूल मा २, दुर्ग्ध तो २ धृत तो २, ऋतुस्नानान्तर दिनत्रय पिवेदित्याह् ॥ २१ ॥

काथेन हयगन्धायाः साधितं सघृतं पर्यं । ऋतुस्नातावला पीत्वा धत्ते गर्भ न संशयः॥ २२॥

नताथेनेत्यादि — इयगन्धा भ्रश्वगन्धा, तस्या मूलम्, पटद्गपरिमापया जला-धिक दत्त्वा श्रद्धेश्वत चीराचतुर्गुण दत्त्वा पक्त्वा एत प्रिचिष्य पिवेत् । श्रथ्या श्रश्वगन्धा मूल मा ८, जल पल ४, रोप पल २, एत मा ८, एद्धास्तु चीरमाध-नपरिभाषया व्यवहरान्ति ॥ २२ ॥

पिष्पत्यः श्टङ्गवेरञ्च मरिचं केश्ररं तथा।

घृतेन सह पातव्यं वन्ध्यापि लभते सुतम्॥२३॥

पिष्पतीत्यादौ—श्वतेवर शुण्ठी॥२३॥

स्वर्णस्य रूप्यकस्य चूर्णे ताम्रस्य चाज्यसंभिश्रे । पीते शुद्धे सेत्रे भेषजयोगाद्भवेदर्भः ॥ २४ ॥

सुवर्णस्थित्यादी—आज्यमिमश्र इति सर्वत्र योज्यम् । मारितसुवर्णचूर्णस्य मापैक, गन्यप्रतस्य कर्षद्रयम् आलोड्य पेयम् । एव रजतताश्रयोरिप । तद्भेषजयोगात् शुद्धे चेत्र इति योज्यम् । केचित्तु सुवर्णादिशय एकत्रावर्त्यं तती योनिमध्ये लेपये-दिति । तत्पानञ्चोपादिशान्त । उक्त हि,—"हैम रूप्य वर ताश्रमेकत्रावर्त्यं मिपेषा । घृष्टान्तर्लेपयेद् योनि शोधनार्थं पिवेदिषे" इति ॥ २४॥

कृत्वा ग्रुद्धौ स्नानं विलड्घ्य दिवसान्तरे ततः प्रातः। स्नात्वा द्विजाय दत्त्वा भक्त्या सम्पूज्य लोकनाथेशम् ॥ श्वेतवलाड्प्रिक्यिं कर्षं कर्ष पलन्तु शर्करायाः। पिष्टैकवर्णजीवद्वत्साया गोस्तु दुग्धेन॥ समधिकघृतेन पीतं नात्र दिने देयमन्नमन्यद्य। चुधिते सदुग्धमन्नं दद्यादापुरुषसान्निधेस्तस्या ॥ समिद्वसे शुभयोगे दित्तिणपार्श्वावलम्विनी धीरा। त्यक्तस्त्र्यन्तरसङ्गप्रहृप्यमनसोऽतिचृद्धधातोश्च। पुरुषस्य सङ्गमाबाल्लभते पुत्नं ततो नियतम्॥ २४॥

कृत्वेत्यादौ—विलड्घ्येति यस्मिन् दिने शुद्धिस्नान तस्मिन् दिने उपेाष्येत्यर्थ । श्रेतवलाया श्रड्धि मूलम् । समधिकष्टतेनेति दुग्धोपचया ष्टतमागो श्रिथिको देय इत्यर्थ. । यस्मिन् दिने भेषजमिद्मुपयुज्यते तस्मिन्नेव दिनेऽपरमन्न नोपयोज्यम् । दिनान्तरे तु चुधाया सत्या चीरसिहतमन्न द्यात्। समदिषम इति युग्मदिने ॥ २५ ॥

गोष्ठजातवरस्य प्रागुत्तरशाखजे शुभे शुङ्के ।
मापौ द्वौ च तथा गौरसर्षपौ द्धियोजितौ ॥ पुष्यापीतौ द्वुतापन्नगर्भायाः पुत्रकारकौ ।
कानकान् राजतान् वापि लौहान् पुरुषकानसून् ॥
ध्माताग्निवर्शान् पयसो द्भो वाप्युद्दकस्य वा ।
चिप्त्वाञ्जलौ पिवेत् पुष्ये गर्भे पुत्रत्वकारकान् ॥ २६॥

गोष्ठत्यादि—गोष्ठ पर्वतः, उपवन वेति केचित्। माषाविति माषकलायौ द्वो चरके धान्यमाषाभ्यामित्युक्तम्। तथा गौरमर्षपौ द्वाविति। दिधयोजिताविति दिध दिधपित्रिप्तावित्यर्थ। द्वृतापत्रगर्भाया इति यावत् स्रीत्व पुस्तव वा गर्भस्य न व्यक्तो-भृतमित्त तावदेव इद कर्म कुर्य्यात्। अङ्गाभिन्याकिस्तु तृतीये मासे भवतीति माम-द्वय यावत् पुसवनकर्म कुर्य्यादिति भावः। इद कर्म लिङ्गपराष्ट्रिकारक भवतीति ज्ञापनार्थे द्वृतापन्नगर्भाया इत्युक्तम्। पुरुषकानग्द्विति अग्रुपरिमाणान् पुरुषाकृतीन्। अञ्जलावित्यस्य पयम इत्यादिभिः सम्बन्धः। एनच दुग्धादि निःशेष पेय चरकः मवादात्॥ २६॥

## प्रथमं फलघृतम्

मिल्रिष्ठा मधुकं कुष्ठं विफला शर्करा बला। मेदा पयस्या काकोली मूलञ्चैवाश्वगन्धजम् ॥ श्रजमोदा हरिद्रे द्वे हिंगुकं कटुरोहिणी। उत्पलं कुमुदं द्वाचा काकोल्यौ चन्दनद्वयम्॥ पतेणां कार्णिकैर्मागेर्घृतप्रस्थं विपाचयेत्।
शतावरीरसद्धीरं घृताद्देयं चतुर्गुण्म्॥
सिपिरेतद्वर पीत्वा नित्यं स्त्रीपु वृषायते।
पुत्रान् जनयते नारी मेघाट्यान् प्रियदर्शनान्॥
या चैवास्थिरगर्मा स्थाद् या वा जनयते मृतम्।
श्रलपायुपं वा जनयेद् या च कन्या प्रस्यते॥
योनिदोपे रजोटापे परिस्नावे च शस्यते।
प्रजावर्द्धनमायुष्यं सर्वग्रहानिवारण्म्॥
नाम्ना फलघृतं होतद्भ्विभ्यां परिकार्तितम्।
श्रनुक्रं लच्मणामूलं चिपन्त्यत्र चिकित्सका॥
जीवद्दत्सैकवर्णाया घृतमत्र प्रशस्यते।
श्रारण्यगोमयेनापि विद्वन्वाला प्रदीयते॥ २७॥

मिश्रेष्ठत्यादाै—पयस्या चीरिनदारी । द्राचाकाकोल्यानिति दृन्द , काको-ल्यत्र चीरकाकोली, काकोलीत्युपाचलात् । शतानरीरसचीरयो प्रत्येक चातुर्गुएयम् । अत्र वृद्धोपदेश समहक्विद्याति अनुकामित्यादि ॥ २७॥

## द्वितीयं फलघृतम्

सहचरे द्वे तिफलां गुड़्चीं सपुनर्नवाम्।
शुकनासां हरिद्रे द्वे रास्नां मेदां शतावरीम्॥
करकीकृत्य घृनप्रस्थं पचेत् चीरं चतुर्गुणम्।
तिसद्धं प्रियेकारी योनिश्र्लीनपीडिता॥
पिरिडता चिलता या च नि सृता विकृता च या।
पित्तयोनिश्च विस्नस्ता प्रख्योनिश्च या स्मृता॥
प्रपचन्ते तु ता स्थानं गर्भ गृह्णन्ति चासकृत्।
पतत् फलघृतं नाम योनिद्रोपहरं परम्॥ २५॥

महचरे इलादि-सहचरे द्वे इति सितपीतभेदेन फियटोइयम्। शुकनासा चर्भकारपुटक पिरिटतेत्यस योनिरिति शेष ॥ २८॥

## नीलोत्पलाद्यं घृतम्

नीलोत्पलोशीरमधूकयण्टिद्राचाविदारीकुशपञ्चमूले । स्याजीवनीयश्च घृतं विपकं शतावरीकारसदुग्धामिश्रितम् ॥ तच्छकरापाद्युतं प्रशस्तमस्ग्दरे मास्तरक्षपित्ते । चीरो वले रेतासि सम्प्रनष्टे कुच्छे च पित्तप्रभवे च गुल्मे ॥२६॥ नीलोत्पलमित्यादौ—मधुकस पुष्प फलं वा। कुशपञ्चमूल तृषपञ्चमूल । जीवनीयैरिति जीवनीयदशके । शनावरीरसस्य तय प्रस्था , दुग्धस्य चैकः । अन्ये तु शतावरीरसस्य चत्वार प्रस्था स्त्याहु । ध्तप्रस्थापेचया शर्कराया पादोऽष्टी पलानि ॥ २६ ॥

### **वृहच्छतावरी** घृतम्

शतावरीमूलतुलाश्चतस्र सम्प्रपाडियत्।
रसेन चीरतुल्येन पचेत्तेन घृताढकम्॥
जीवनीयै शतावय्यां मृद्वीकािमः परूपकैः।
पिष्टे. पियालैश्चाचांशैर्द्वियिष्टमधुकैर्भिषक्॥
सिद्धशीते च मधुनः पिष्पल्याश्च पलाष्टकम् ।
दत्त्वा दशपलञ्चात्व सितायास्ताद्विमिश्चितम्॥
ब्राह्मणान् प्राश्येत् पूर्वे लिह्यात् पाणितलं ततः।
योन्यस्क्शुक्रदोपम्नं वृष्यं पुंसवनश्च तत्॥
च्रतच्यं रक्षपित्तं कासं श्वासं हलीमकम्।
कामलां वातरक्षञ्च विसर्पे हृच्छिरोप्रहम्।
उन्मादादीनपस्मारान् वातिपत्तात्मकान् जयेत्॥ ३०॥
शतावरीमूलत्यादि—चरकस्य। जीवनीयैरिति जीवनीयदशकै, न पुनरष्टवर्गे
चरके।कत्वात्। दियष्टिमधुकैरिति एकश्च मधुकभागा जीवनीयगणपठित , अपरोऽिष
मधुकसैको मागा देय इति द्वितीययष्टिमधुकेन। किंवा स्थलजलमेदान्मधुकद्वययुकै ।
वाग्मटे तु द्वियष्टिमधुकैरितव् दिवलामधुकैरित प्रक्रते॥ ३०॥

दग्ध्वा शङ्कं चिपेद्रम्भास्वरसे तत्तु पेषितम्। तुल्यालं लेपतो हन्ति रोम गुह्यादिसम्भवम्। रक्षाञ्जनापुच्छचूर्णे युक्त तैलन्तु सार्पपम् । कुसुम्भतैलाभ्यंगो वा रोम्णामुत्पाटितेऽन्तस्रत् ॥ ३१ ॥

योनी लोमवाहुल्येन वैरस्याद्रतिर्न स्यादिखती लोमशातनमाह दग्धेखादि—
रम्मास्तरसे कदलीवागुडास्तरमे। तुल्यालमिति समहितालम्। रक्षाञ्जनिति रक्षाञ्जना
लोहितवर्णाञ्जननामिका श्रारिजला इति लोके। तत् पुच्छ राद्रे शोपियत्वा चूर्णं
कुर्यात्। तच्च साप्पतैलेऽनुरूपे प्रिच्य सप्ताह स्थाप्यमित्यर्थ । कुष्तुम्भेत्यादी—
उत्पाटिते इत्यनन्तर लोम्नीति शेष । लोम्नि उत्पाटिते मित कुष्तुम्भवीजतैलाभ्यङ्गो
लोम्नामन्तकृद्धवतीत्यर्थ ॥ ३१ ॥

## त्रारग्वधाद्यं तैलम्

श्रारम्बधमूलफलं कर्पद्वितयं शह्वचूर्णस्य। हरितालस्य च खरजे मूत्रप्रस्थं तु कटुतैलम्॥ पक्षं तैलं तद्थ शह्वहरितालचूर्णितं लेपात्। निर्मूलयति च रोमाण्यन्येपां सम्भवो नैव॥ ३२॥

श्रारम्बधेत्यादी-कर्पाद्वितयमिति हरितालस्य चेत्रनेनापि सम्बध्यते । कटु-तैलास्यात्राष्टी पलानि । श्रथ इत्यानन्तर्ये, तैलपाकानन्तर शहुचूर्णे हरितालचूर्णे मिलित्वा तैलात् पादिक प्रचिप्य लेपो देय इत्यर्थ । किंवा शहुचूर्णेहरितालचूर्णे-योरनियतमानेन तैल मिपष्य लेपो देय इति ॥ ३२॥

कर्पूरमञ्जातकशङ्खचूर्यं ज्ञारो यवानाञ्च मनःशिला च । तैलं विपकं हरितालिमश्रं रोमाणि निर्मूलयति ज्ञ्णेन ॥३३॥ कर्पूरेत्यादि—कर्पूरादीना कल्कः। ज्ञारो यवज्ञार । तैलिमिति कटुतैलम् । हरितालिमिश्रितिमिति पूर्ववद न्याख्येयम् ॥ ३३॥

## चारतैलम्

श्रुक्तिशम्बूकशह्वानां द्धिवृन्तात् समुष्ककात्। दग्ध्वा चारं समादाय खरमूत्रेण गालयेत्॥ चाराष्ट्रमागं विपचेत् तैलञ्च सार्षपं वुघ। इदमन्त पुरे देयं तैलमात्रेयपूजितम्॥ विन्दुरेकः पतेद् यत्र तत्र रोमापुनर्भवः।
मदनादिव्रणे देयमिष्वभ्यामेव निर्मितम्॥
श्रशंसां कुष्ठरोगाणां पामादद्रविचर्चिनाम्।
चारतैलिमदं श्रेष्ठं सर्वक्लेद्दरं परम्॥ ३४॥
इति योनिन्यापिचिकित्सा।

चारतेले — शुक्ति शुक्तिरेव मुक्तास्फोटो वा, दीर्घवृन्त श्योनाक , मुष्कको व्यटापारुली। पतानि सममागानि दग्ध्वा चतुर्विशतिपलचारो माह्य , अस्य सावयार्थं गर्दममूत्र पड्गुग्गम् अष्टादशशरावपरिमित गृहीत्वा एकविंशतिवारान् परिसान्य चारिदकस्य पोडश शरावा माह्या , कडुतैलन्तु शरावचतुष्टयम् । तैलापेचयाऽष्टमाग चारस्य कल्कत्वेन प्रदेय शत्यर्थं , तेन चारस्य पलचतुष्टय कल्क इत्यर्थं । अन्ये तु चारोदक तैलापेचयाऽष्टगुग्णमित्याहु । मदनादित्रण इत्युपदशादी ॥ ३४ ॥ इति योनिन्यापिचिकित्साविवृति ।

# अथ स्त्रीरोगचिकित्सा ।

मधुकं शाकवीजञ्च पयस्या सुरदाक च ।
श्रश्मन्तक कृष्णातिलास्ताम्रवल्ली शतावरी ॥
वृत्तादनी पयस्या च तथैवोत्पलशारिवा ।
श्रमन्तशारिवा रास्ना पद्मा मधुकमेव च ॥
वृह्वतिद्वयकाश्मर्थ्यत्तीरिश्रक्षास्त्वचो विषम् ।
पृथक्पणी वला शिश्रु श्वदंष्ट्रा मधुयप्रिका ॥
श्रद्धाटकं विसं द्वात्ता कशेक मधुकं सिता ।
मासेषु सप्त योगाः स्युरर्द्वस्रोकास्तु सप्तसु ।
यथाक्रमं प्रयोक्षव्या गर्भस्रावे प्रयोग्रुता ॥ १॥

अवशिष्टकीरोगचिकित्साभिधानार्थं स्त्रीरोगचिकित्सामाह मधुकमित्यादि— सुश्रुनस्य। शाको मरुजस्तरुस्तस्य वीज , पयस्या चीरकाकोली , अश्मन्तको- C

इम्ललोटक मालुया वा, ताम्रवही मिन्नष्ठा, षृच्चादनी वन्दाक । तथैवोत्पल-शारिवेत्यत्र तथा तिलशारिवे इति पाठ सुश्रेत वाग्मेट च, तट्टीकाकृतोऽतिलता दूर्वा प्रियगुर्वेति व्याख्यानयन्ति । उत्पलशारिवा स्ननन्तमूलम् । स्ननन्त स्ननन्तमूल , शारिवा श्यामालता , पद्मा ब्रह्मयिष्ट , काश्मर्य्य गाम्मारीफल , चीरिणा वटादीनां शुद्धारत्वचिथेति । विस मृणालम् । एते च सप्त योगा कल्कविषये उपयोज्या । स्रापेर तु चीरसाधनपरिमाययेत्याहु ॥ १ ॥

#### कपित्थविल्वचृहतीपटेालेजुनिदिग्धिकाः। मूलानि चीरसिद्धानि दापयेद्भिपगप्टमे॥२॥

कपित्थेत्यादि — मुश्रुतस्य । कपित्थादीना सर्वेषा मूलम् । निश्चलस्तु कपि-त्थस्य फल पटोलस्य फल पत्र वा, अन्येपाञ्च मूलिमत्याहः । किन्तु सुश्रुतवाग्भट-टीकाक्कद्भिनं व्याख्यातोऽयमर्थः ॥ २ ॥

नवमे मधुकानन्तापयस्याशारिवा पिवेत्।
पयस्तु दशमे शुरुव्याः श्वतशीतं प्रशस्यते ॥
सत्तीरा वा हिता शुरुठी मधुकं देवदारु च।
पवमाप्यायते गभैस्तीवा रुक् चोपशाम्यति ॥
कुशकाशोरुवृकाणां मूलेगोंचुरकस्य च।
श्वतं दुग्धं सितायुकं गभिरवा श्रलवुत् परम्॥३॥

नवम इत्यादी—चीरसिद्धानीति पद लिङ्गिविपरिमाणनात्रापि सम्बध्यते, ढल्व-णेन व्याख्याते।ऽयमर्थ । अन्ये मधुकानन्तेति योगश्च काथेन किंवा मधुकादीना कल्क चीरेण पिवेदित्यर्थ इत्याद्वः । पयित्त्वित्यादि—सुश्रुतस्य । ढल्वणस्तु "चीर ग्रुण्ठापयस्याभ्या सिद्ध स्याद्दरामे हितम्" इति पठिति, व्याचेष्टे च—दशमे मामि ग्रुण्ठा चीर विदार्था वा चीरपाककल्पनया सिद्ध चीर दशमे हितमिति । वाग्मेटे-ऽप्युक्त—"योजयेदशमे मासि चीर सिद्ध पयस्यया । अथवा यष्टिमधुकनागरामर-दार्शमे " शित । एनद्रचनसवादोदन सचीरा वा हिता शुण्ठीत्यादाविष शुण्ठीमधुक्त-देवदास्मि सिद्ध चीर दशमे मासि प्रशस्यत इत्यथों श्चेय । कुशेत्यादि स्पष्टम् ॥३॥ कशेरुश्यङ्गाटकजीवनीयपद्मोत्पलेर्ग्रुज्यावावरिभिः । सिद्धं पयः शर्कर्या विमिश्चं संस्थापयेद् गर्ममुद्धिग्रंग्रुक्तम् ॥४॥ कशेर्वित्यादौ ---जीवनीयो जीवनीयदशकम् । शर्करया विमिश्रमिति शर्करा प्रचेप्या ॥ ४ ॥

कशेरुश्दद्गाटकपद्मकोत्पलं समुद्गयप्रीमधुकं सशकरम्। सग्रलगर्भस्रुतिपीडिताद्गना पयो विमिश्रं पयसान्नमुक् पिवेत्॥

करेशिंत्यादौ-पद्मक पद्मकेशरमित्याद्य । उत्पत्त नीलोत्पलम् । समुद्ग-यष्टिमधुकमिति-मुद्गो मुद्गपर्था । समुद्गयष्टिमधुकमित्यत्र ससुद्गपर्थामधुकमित्यपि पाठान्तरम् ॥ ५॥

गर्भे शुष्के तु वातेन वालानाश्चापि शुष्यताम्। सितामधुककाश्मर्योर्हितमुत्थापने पय । गर्भशोपे त्वामगर्भा प्रसद्दाश्च सदा हिता ॥ ६॥

गर्भे शुष्के तु नातेनेत्यादि-पूर्व नातन्याधावेन पठितमिति नेह पठनीयम् । आमगर्भा इति हसकूर्मादीनामण्डानि, प्रमहा. कुनकुटादय ॥ ६ ॥

पाठालाइ लिसिहास्यमयूरकजटे पृथक्।
नाभिवस्तिभगालेपात् सुखं नारी प्रस्यते ॥
परूपकस्थिरामूललेपस्तद्वत् पृथक् पृथक्।
वासामूले ध्रुवं तद्वत् किटवद्धे स्ते द्रुतम् ॥
पाठायास्तु शिफा यौनौ या नारी सम्प्रधारयेत्।
उर प्रसवकाले तु सा सुखेन प्रस्यते ॥
तुपाम्बुपरिपिष्टेन मूलेन परिलेपयेत्।
लाइल्याश्चरणौ स्ते चित्रमेतेन गर्भिणी ॥
श्राटक्षपकमूलेन नाभिवस्तिभगालेपः।
गृहाम्बुना गेहधूमपानं गर्भापकर्षणम् ॥ ७॥

पाठेत्यादी--श्रीकर्फो लाइलीस्थाने सुरसा पठित, न्याचष्टे च-सुरसा निर्गुरुढी । सिंहास्यो नासक , मयूरकोऽपामार्ग । एषा जटा मूल हस्तत झान्द-सत्तात् । गृहान्दु काजिक गृहधूम अलन्धुक ॥ ७ ॥

मातुलुइस्य मूलानि मधुकं मधुसंयुतम् । घृतेन सह पातव्यं सुखं नारी प्रसूयते ॥ = ॥ मातुङ्गस्यत्यादी—मधुक याष्ट्रमधु, ण्तदुभयमपि मधुसयुक्त गुनेन मह पान-च्यमित्यर्थ ॥ = ॥

पुटदग्घसर्पकञ्जुकमस्णमसीकुसुमसारसहिताक्षिताक्षी । भटिति विशल्या जायते गर्भवर्ती मूढगर्भापि ॥ गृहाम्बुना हिंगुसिन्धुपानं गर्भापकर्पणम् ॥ ६ ॥

पुटेत्यादि—पुटपाकविषया दग्धा या मपनिमीकमसी, तया मधुसीहतया शिकतलोचना सर्ता विगर्भा मवेदित्यर्थ । गृहाम्युनेत्यादो—सिन्धु मैन्धवम् ॥६॥ इहामृतश्च सोमश्च चित्तभानुश्च भामिनि । उद्योश्यवाश्च तुरगो मन्दिरे निवसन्तु ते ॥ इदममृतमपां समुद्धृतं वे भव लघुगर्भिममं विमुश्चतु स्त्री। तदनलपवनार्कवासवास्ते सह लवणाम्बुधरैरिदेशन्तु शान्तिम्॥ मुक्का पाशा विपाशाश्च मुक्का स्ट्येंण रश्मयः। मुक्का प्रपाद्भे पह्योहि मा रिच स्वाहा॥" जलं च्यवनमन्त्रेण सप्तवाराभिमन्त्रितम्। परिवा प्रस्थते नारी हप्द्वा चोभयित्रशकम्॥ तथोभयपञ्चदशदर्शनं सुलस्तिकृत्। नारी ऋतुवसुभि सह पक्षिणएदशिभरेव च। श्रकंभुवनाव्धिसहितरभयविश्वक्षिमदमाश्चर्यम्॥ वसुगुणाच्येकवाणनवपट्सप्तयुगे. कमात्। सर्व पञ्चदशिस्तु विश्वक नवकोष्ठके॥१०॥

देहत्यादि-स्वाहान्तोऽय मन्त्रश्च सुश्रुतस्य । श्रयमेव गर्भच्यवनमन्त्र । जल च्यवनमन्त्रेय सप्तवाराभिमन्त्रित पालेति वृद्धंवध्यवद्दार सम्रदृष्टाद्विलिख्यते, न तु सुश्रुतेन, सुश्रुतेन तु च्यवनमन्त्रेया गर्भियां सावयेदित्युल्लम् । उमयपञ्चदराकसुभयाति राकच्चाह विस्वत्यादि —वसवे।ऽद्यौ, ग्रुयाख्य, श्रञ्थयश्चत्वार , वाणा पच्च, युग द्वयम् । पतद्दैगुण्यादुमयत्रिशक् भवति । पते नव कोष्ठान् कृत्वा तदभ्यन्तरे लेख्या । वृन्दे तु उभयत्रिशकमप्युक्षम् । णतद्दय रारावमध्ये लिखित्वा सम्पूज्य दशंपितव्यम् ॥१०॥

कडुतुम्व्यहिनिर्मोक-कृतवेधनस्पेपैः।
कडुतैलान्वितो धूमो योनः पातयतेऽमराम् ॥
कचवेष्टितयाङ्गुल्या घृष्टे कर्रे सुखं पतत्यमरा॥
"परग्डस्य वने काको गङ्गातीरमुपागत ।
इत पिवति पानीयं विशल्या गर्भिणी भवेत्॥"
श्रनेन सप्तधामन्त्र्य जलं देयं विशल्यकम् ॥
मूलेन लाङ्गलिक्या संलिप्त पाणिपादे च ।
श्रमरापातनं मद्ये पिष्पल्यादिरज पिवेत्॥
शालिमूलाज्ञमात्रं वा मूत्रेणाम्लेन वान्वितम्।
उपकुञ्चिकां पिष्पलीञ्च मदिरां लाभत पिवेत्।
सौवर्चलेन संयुक्कां योनिश्र्लानेवारणीम्॥११॥

कटुतुम्बीत्यादि—कटुतुम्बी तिकालायुफलं, कृतविधन घोषकभेद तस्य फल, मर्षप. श्वतसर्षप । एतैर्धूम कृत्या योनिमुखं दचात् । उक हि सुश्रते—'योनिमुखं धूपयेत्'' इति । श्रमरापातनिमत्यादौ—पिप्पल्यादिरज इति सुश्रुतस्य पिप्पल्यादि-गयाचूर्यम् । श्रम्लेन काञ्जिकेन, मयेनेलन्ये । उपकुञ्चिका कृष्णजीरकम् । पिप्पली-मिल्यनन्तर प्रचिप्यति शेष. ॥११॥

स्ताया हृच्छिरोवस्तिशृलं मकल्लसंशितम् ॥ यवत्तारं पिवेत्तत्र सर्पिषोष्णोदकेन वा । पिष्पल्यादिगणकाथं पिवेद्वा लवणान्वितम् ॥१२॥ पारावतशकृत्पातं शालितगृङ्खवारिणा । गर्भपातान्तरोत्थे तु रक्षस्नावनिवारणम् ॥१३॥

स्ताया इत्यादि — सुश्रेतेऽप्युक्त — "प्रस्तायास्त वस्त्युदरशिरोयोनिशूल रक्त सरुध्य वायुः करोति, स मक्क्षसिक्षित ॥१२॥ १३॥

> जलपिष्टवरुणपत्रैः सघुतैरुद्धर्त्तनालेपौ । किक्किशरोगं हरतो गोमयघर्षादयो विहितौ ॥१४॥

जलिपष्टेत्यादौ--किक्किशरोगो गर्भोत्पीडनेन वस्त्यादिदेशे मनाक् चर्मनिदा-रणम् । अथो अनन्तर गोमयधर्पणानन्तरं विहितावित्यर्थे ॥१४॥ हीवेरारलुरक्रचन्दनयलाधन्याकवत्सादनीमुस्तोशीरयवासपर्पटविपाकाथं पिवेद्गर्भिणी ।
नानादोषयुतातिसारकगढे रक्तस्रुतौ वा ज्वरे
योगोऽयं मुनिभिः पुरा निगदित स्त्यामये शस्यते ॥१४
क्षेवेरलादौ—वलादना गुदूची ॥१४॥

श्रमृतानागरसहचरभद्रेत्कटपञ्चमूलं जलदजलशीतम्। मधुसंयुक्तं निवारयति सज्वरं स्तिकातद्वम् ॥१६॥

श्रमृतेत्यादी—मेट्रेत्कटो मादखेढ इति राढाया च्यातस्तरः । श्रन्ये तु मद्र भद्रमुस्तकम्, इत्कट इक्तर इति ख्यातस्तस्य मूलिमत्याहु । पद्ममून म्वल्पपञ्चमूल, जलद मुस्तकम्, जल काथ ॥१६॥

सहचरपुष्करवेतसमूलं विकद्भतदारुक्कलत्थसमम्। जलमत्र सन्धवहिड्गुयुतं सद्यो ज्वरस्तिकरोगहरम्। दशमूलीकृत-काथ सद्यः स्तिरुजापह ॥१०॥

महत्तरेत्यादी—विकद्भत विदार इति लोके, तन्य मूलम् । कुलत्थः ममो यत्र तद् तथा कुलत्थसमम् । जल काथ । दरामूलीत्यादि—आमग्रलादिपाटाया पुन-धान्यगुण्डया युक्तस्य धान्यपञ्चकपुक्तस्य काथमुपदिशन्ति वृद्धा ॥१७॥

## वज्रकाञ्जिकम्

पिष्पली पिष्पलीमूलं चव्यं शुएठी यमानिका । जीरके हे हरिड़े दे विडसौवर्च्चलं तथा ॥ एर्नरेवोपघे पिष्टैरारनालं विपाचितम् । श्रामवातहरं वृष्यं कफझं विद्विटीपनम् ॥ काञ्जिकं वज्जकं नाम स्त्रीणामग्निविवर्द्धनम् । मक्लश्रूलशमनं परं चीराभिवर्द्धनम् । चीरपाकविघानेन काञ्जिकस्यापि साधनम् ॥ १८ ॥

वज्रकाश्चिके—पिप्पत्यादिद्रव्यम्य मिलित्वा कर्पत्रय, काञ्जिकस्य राराव एक , पानीयमध्यत्पम्, एवमेव प्रायशो व्यवहरन्ति वृद्धा , सक्त्ककाञ्जिकपानमुपदि-शन्ति च । चक्रस्त्वाह जीरपाकविधानेन काञ्जिकस्यापि माधनमिति ॥ १८ ॥

## पश्चजीरकगुडः

जीरकं ह्रबुषा धान्यं शताह्या वदराणि च।
यमानी कृष्टिको हिंगुपित्रिका कासमर्दकम् ॥
पिप्पली पिप्पलीमूलमजमोदाथ वाष्पिका।
चित्रकञ्च पलांशानि तथान्यच चतु पलम् ॥
कशेरुकं नागरञ्च कुष्ठं दीप्यकमेव च।
गुडस्य च शतं द्याद् घृतप्रस्थं तथेव च ॥
चीरद्विप्रस्थसंयुक्तं शनैमृद्वश्चिना पचेत्।
पञ्चजीरक इत्येष स्तिकानां प्रशस्यते ॥
गर्भार्थिनीनां नारीणां वृंहणीये समारुते।
विशतिव्यापदो योने कासं श्वासं ज्वरं च्यम् ॥
हलीमकं पाग्हरोगं दौर्गन्ध्यं मूत्रकुच्छ्रताम्।
घनित पीनोन्नतकुचाः पद्मपत्रायतेच्याः।
उपयोगात् स्थियो नित्यमलदमीमलवर्जिताः॥ १६॥

पञ्चजीरकगुढे — जीरक स्त्ममुखकृष्णजीरक गुर्जरप्रसिद्ध, कृष्टिको राजिका, हिंगुपत्रिका वशपत्रिका, अजमोदा वनयमानी, अन्तः परिमार्जनत्वात यमान्या एव भागद्वयम् । वाष्पिका चुद्रराजिका। तथा चान्यचतु पलमिति वस्त्यमाणकरेषकादि-चतुष्टय प्रत्येक चतु पलमित्यर्थं । दीप्यक स्थूलजीरकम् । श्रादौ गुढष्टत सीरेण पक्ता सिद्धे सित जीरकादिचूर्णप्रदेष । पञ्चपलजीरकयोगात् पञ्चजीरक इति सञ्चा। समारुत इत्यत्र गर्भ इति शेष, कृषितमारुतयोगात् सीयमाण इत्यर्थं ॥ १६ ॥

वनकार्पासिकेच्च्णां मूलं सौवीरकेण वा। विदारिकन्दं सुरया पिवेद्धा स्तन्यवर्द्धनम् ॥ दुग्धेन शालितएइलचूर्णपानं विवर्द्धयेत्। स्तन्यं सप्ताहत चीरसेविन्यास्तु न संशय ॥ २०॥

सम्प्रति स्तन्यवर्द्धनयोगानाह वनकार्पामिकेस्यादि—सौवीरकेण काञ्जिकेन । विदारीकन्द भूमिक्ष्माण्डम् ॥ २० ॥

हारिद्रादिं वचादिं वा पिवेत् स्तन्यस्य वृद्धये ।
तत्र वातात्मके स्तन्ये दशसूलीजलं पिवेत् ॥
पित्तदुष्टेऽसृताभीरुपटोलं निम्यचन्दनम् ।
धात्री कुमारश्च पिवेत् काथित्वा सशारिवम् ॥
कफे वा त्रिफलां मुस्तं भूनिम्वं कटुरोहिणीम् ।
धात्रीस्तन्यविशुद्ध्यर्थं मुद्गयूपरसाशिनी ।
भार्गीद्रारुवचापाठाः पिवेत् सातिविषाः श्टता ॥ २१ ॥
हरिद्रादिमित्यादि—हरिट्रादि-वचादिगणी मौश्रती—यथा—'हरिद्रादारुहरिद्राक्तनसीकुटजवीजानि मधुकत्र' इति । क्तमी पृश्चिपर्यो । 'वचामुन्तातिविषाः
मद्रदारुनागरगतम्ली श्रननम्लन्त्व' इति । भद्रदारु देवदारु । श्रमीरु रातावरी,
शारिवा श्रनन्तम्लन् । मगारिविनित्यत्र सर्श्वरिमिति पाठान्तग्न् । श्रमृतादिशारिवान्तस्य काथः ॥ २१ ॥

कुक्कुरमेञ्चुकमूलं चर्वितमास्ये विधारितं जयति । सप्ताहात् स्तनकीलं स्तन्यञ्चैकान्ततः कुरुते ॥ शोथं स्तनोत्थितमवेच्य भिपीवद्ध्यादं यद्विद्रधावभिहितन्त्विह भेपजं तत्। श्रामे विदहाति तथैव राते च पाकं तस्याः स्तनौ सततमेव च निर्देहीत ॥ विशालामूललेपस्तु हन्ति पीडां स्तनोत्थिताम्। निशाकनकपत्ताभ्यां लेपश्चाप्रि स्तनार्तिहा॥ २२॥ स्तनविद्रिधाचिकित्सामाह कुक्कुरेत्यादि-कुक्कुरमेन्चुको गोरचतराडुला। न्तनकील स्तनविद्रिथे । निरेत्यादी-कनकफल धुस्तुरफलम् ॥ २२ ॥ मूपिकवसया ग्रुकरगजमहिपमांसचूर्णंसयुतया। श्रभ्यहमदेनाभ्यां कठिनपीनस्तनौ भवतः॥ २३॥ स्तनशोपचिकित्सामाह—मृपिकनसाया स्करादिमासचूर्णं प्रीचय्य स्तनयो- 🍍 रम्यक्रमदन श्राद्यपुष्पीत्मवे ॥ २३॥ महिपीभवनवनीतं व्याधिवलोग्रा तथैव नागवला । पिष्द्वा मर्दनयोगात् पीनं कठिनं स्तनं कुरुते ॥ २४॥

महिषीलादौ—व्याधि कुष्टम्, उग्रा वचा ॥ २४॥ श्रीपर्गीतिलम्

श्रीपर्णीरसकत्काभ्यां सिद्धं तैलं तिलोक्सवम् । त्लकेनेव तत्तेलं स्तनस्योपरि धारयेत् । पतिताबुत्थितौ स्त्रीणां भवेयातां पयोधरौ ॥ २४ ॥ श्रीपर्णा गाम्मारी, तस्यास्तवो रम स्तरस्य । स्तनस्योपरि कुवाये ॥ २४ ॥

काशीशाद्यं तैलम्

काशीशतुरगगन्धाशावरीगजिपण्यलीविपक्केन । तैलन यान्ति वृद्धि स्तनकर्णधराङ्गलिगानि ॥ २६ ॥ काशीशेलादि—काशीश धातुकाशीश, शावरी लोधम् । एषा कल्क । जल चतुर्गुणम् । कर्षे कर्णपालीः, वराङ्ग खीगुद्धम् ॥ २६ ॥

प्रथमत्ते तराहुलाम्भो नस्य कुर्यात् स्थिरौ स्तनौ ॥ २७॥
प्रथमत्ते त्राधपुष्णोत्तवे ॥ २७॥
गोमहिषीघृतसहितं तेलं श्यामाकृताञ्जलिवचाभिः।
सित्रकदुनिशाभिः सिद्धं नस्यं स्तनोत्थापनं परम् ॥
सुतन्करोति मध्यं पीतं मथितेन माधवीमूलम्।
स्याचिछ्यिलापि च गाढा सुरगोपाज्याभ्यंगतो योनि ॥२०॥
गोमहिषीलादौ—गोमहिषीधतयोमिलिला एको मागः, त्रपरक्ष तैलस्य।
श्यामा प्रियंग्र ; कृताञ्जलि. स्र्यंभका श्रञ्जलिकारिकेति स्याता, लाजाछ्या इस्रन्ये
लज्जावतीति कुत्रचित्। कहुका कहुरोहिषी। एषा कर्लक । नल चतुर्गुणम्। सुतन्करोतीत्यादौ—मध्य स्त्रिया मध्यदेशः, मथितेन घोलेन, माधवीमूल माधवीलतामूलम्। स्रगोप इति इन्द्रगोपास्य कीट सिन्दुरियापोका इति लोके, श्राच्य
ध्रतम्, श्रनवोरम्यङ्गात्॥ २०॥

शववहनस्थितवन्धनरज्ञ्वा सन्ताडनाद्धि द्यितेन।
नश्यस्यवलाद्धेषः पत्यौ सहजः कृतोऽथवा योगैः॥
द्त्त्वैव दुग्धभक्तं विप्रायोत्पाट्य सितवलामूलम्।
पुष्ये कन्यापिष्टं दत्तमनिच्छाहरं भक्ष्य॥ २६॥
इति स्त्रीरोगचिकित्सा।

शववहनेत्यादि — शवो मृत , तद्वहनाय स्थिता या बन्धनरज्जुस्तया । व्यथितेन भत्त्रो । विप्राय दुन्धमकः दस्तेति पूर्वेश योज्यम् । भस्ये मकादौ ॥ २६ ॥ इति स्त्रीरोगचिकित्सा विष्ठति ।

# अथ बालरोगचिकित्सा ।

कुष्ठवचाभयाव्रह्मीकनकं चौद्रसर्पिषा । वर्णायु कान्तिजननं लेहं वालस्य दापयेत् ॥१॥

दुष्टस्तन्यपानादिना वालाना रोगसम्मवादनन्तर वालरोगाधिकार । तल वाल-रोगाधिकारे वक्तन्ये प्रथमत वालस्य सुस्थवृत्तमाह कुर्ष्रामलादि—कनक मारितनारि-तस्वर्णेचूर्णम्। तल सुवर्णमारणविधियंथा—कर्ण्यक्तवेध्यसुवर्णपत्र जर्म्बारस्वरसेन स्थाप-यित्वा सुवर्णकफलस्थितगुडप्रायक्षेह्मागेन लिप्ता गारचकर्मटामूलपिण्डमथ ऊद्धं स्र दक्ता शरावसम्पुटे निचिप्य प्रलिप्य च गोमथाम्नो वारद्वय स्थ वा प्रपुटेत्, ततश्चूर्णियत्वा हद्वधनवस्रेण झानयेदिति । लेहोऽय जातदिने तदुपरि च प्रचरित । तन्त्रान्तरे च "स्वर्णादिलेहान्तरस्य सम्वत्सर यावदुपयोग " इति ॥ १ ॥

स्तन्याभावे पयश्कुागं गव्यं वा तद्गुणं पिवेत्। तर्कघो गुडिकां तप्तां निर्वाप्य कटुतैलेक। तत्तेलं पानतो हन्ति वालानामुल्वमुद्धतम्॥२॥ तद्गुणमिति सस्काराष्ट्रपृष्ठतम्। तर्कथ शित तकुं टाकुया शित स्थाता, तम्या श्रभोग्रिका वाद्धनीति स्थाता। उत्व बालकस्य कपठगतस्रेषमा॥२॥

व्योषशिवोग्रारजनीकल्कं वा पीनमथ पयसा । उल्वं नि शेषं कुरुते पद्धतां वालस्य चात्यन्तम् ॥ ३ ॥ मृत्पिग्डेनाग्नितसेन चीरसिक्केन सोष्मणा । स्वेदयदुत्थितां नाभिं शोथस्तेनोपशाम्यति ॥ ४ ॥ व्योषत्यादी-शिवा हरीतकी, उम्रा वचा । स्तन्येन पयसेति नारीचीरेणे-स्वर्षं , वाशब्दोऽत्र पूर्वयोगापेष्वया ॥ ३ । ४ ॥

नाभिपाके निशालोधिप्रयंगुमधुकै श्रुतम्। तैलमभ्यक्षने शस्तमेभिर्वाप्यवचूर्णनम्॥ ४॥ नाभीत्यार्वा-मधुक यष्टिमधुकम् ॥ ५ ॥

सोमग्रहणे विधिवत् केकिशिखामूलमुद्धृतं वद्धम्।

जघने अथ कन्धरायां चपयत्यहितुरिडकां नियतम् ॥६॥

मोमग्रहण इत्यादौ-विधिवत् उद्भृत इत्यन्वय । विधिश्च मुक्तकचिशेखन पुमा उद्धरणम् । कोकिशिखा मयूरशिखा । उद्भृत्य वद्धित पाठे श्रामृ्लमुद्धृत्यिति योज्यम् । श्रत्र भिच्चप्रार्थितकपर्वककुहरे पारद पूर्यित्वा मिक्थकेन सरुध्य कुमारी धत्ते इत्युपिविशन्ति वृद्धाः ॥ ६ ॥

सप्तद्लपुप्पमरिचं पिष्टं गोरोचनासहितम्।

पीतं तद्वत् तराडुलभक्षकृतो द्ग्धापिएकप्राश् ॥ ७ ॥ सप्तदलेत्यादि—सप्तदलः मप्तन्छद , तस्य पुष्पम् । पीतमित्यत्र जलेनेनि शेष । तद्ददिति ऋहितुरिडका चपयतीति शेष । तराडुलेत्यादि योगान्तरम्। मक्तस-हिततराडुलान् पिष्ट्वा पेत्रणावेष्ट्य कुशेन वद्ध्या ऋक्षीरदंग्ध्वा मचणीयमित्यर्थ ॥७॥

जम्बूकनासा वायसिजहा नाभिर्वराहसम्भूता। कांस्यं रसोऽथ गरलं प्रावृड्भेकस्य वामजङ्घास्य॥ इत्येकशोऽथ मिलितं विधृतं ग्रीवादिकृटिदेशे। श्रहितुरिडकाप्रशमनमभ्यक्को नातिपथ्यविधिः॥ ॥ ॥ ॥

जम्बूकेत्यादि—जम्बूक श्रगालस्तस्य नामा, वायमः काकस्तस्य जिहाः रमः पारद , गरलं विषम् । प्राष्ट्रङ्भेक वर्षाकालजमण्डूक , स च पीतच्छवि. मोना-वेड इति ख्यात , तस्य वामपदास्थि । एतत् सर्वे प्रत्येक मिलित्वा वा श्रीवाया कट्या वा धारणीयम् । नातिपथ्यविधिरिति व्याधिप्रभावादेवायम् ॥ = ॥

श्रनामके घुर्घुरिकावुक्कामरिचरोचनाः।

नवनीतञ्च सम्मिश्य खादेत् तद्रोगनाशनम् ॥ ६॥

अनामक इति निर्नामराग इति ख्यात , केचिच पुश्चिकाराग इति ख्यात । वुर्वुरिका कीटनिरोपतस्य बुक्का बुक्कमाग इत्यर्थ ॥ ६ ॥

तैलाक्कशिरस्तालुनि सप्तदलार्कस्तुहीभवं ज्ञीरम् । दृत्वा रजनीचूर्णं दत्ते नश्येदनामाख्यः ॥ १०॥

तेलाकेत्यादो—तेलाभ्यकशिरस्ताछिनि सप्तदलार्कस्तुद्दीचीरं दस्ता तदुपीर द्दिराचूर्णं दद्यादित्यर्थः ॥ १०॥ लेहयेच्य ग्रुना वालं नवनतिन लेपितम् । स्फुटकीपत्रजरसेनोद्वर्तनञ्च तद्धितम्॥११॥

लेह्येदित्यादी--नननीताक्षगात्र शिशु कृत्वा शुना कुन्कुरेख लेह्येद् , तत' पुरकीस्वरसेनोद्दचेव् ॥ ११ ॥

तैलस्य भागमकं मूबस्य हो च शिम्वीदलरसस्य । गव्यं पयश्चतुर्गुणमेवं दत्त्वा पचेत्तेलम् । तेनाभ्यक्त सततं रोगमनामकाख्यमुपहरति ॥ १२ ॥ वैलस्येत्यादां—शिम्बीदल शिम्बीपत्रम् ॥ १२ ॥

श्रार्क त्लकमाविकरोमाण्यादाय केशराजस्य । स्वरसेनाक्षे वस्त्रे कृत्वा वर्त्तिञ्च तैलाक्षाम् ॥ तज्जातकज्जलाञ्चितलोचनयुगलोऽप्यलङ्कृतो वाल' कप्टमनामकरोगं चपयति भृतादिकञ्चापि॥ १३॥

आर्कमित्यादि—अर्कस्य तृलकम्, आविकरोमाणि मेपरोमाणि चेति भागद्वय केराराजस्वरमरिकतवस्त्रैरावेष्ट्य तैलाक ज्वालयेत् । तिन्छस्वोपरि पात्र धृत्वा पतित-कन्जलेन चतुपो रक्षन कार्य्यम् ॥ १३ ॥

> चालनिकातलसंस्थितपोतं संप्ताव्य गव्यमूत्रेण । श्रोकोदशालिकायां रजकत्वारोदकस्नानम् ॥ दासकयणश्रावणविद्यका रसेन्द्रपूरिता घृता कण्ठे । निलनीदले च शयनं सुकष्टमनामकाख्यरोगझम् ॥ १४ ॥ भैपज्यं पूर्वमुद्दिष्टं नराणां यज्ज्वरादिषु । देयं तदेव वालानां मात्रा तस्य कनीयसी ॥ १४ ॥

चालिनकेत्यादि—श्रोकोदशालिकाया चालिनकातले सस्थितवालक चालिकारन्ध्रपतितगोमूत्रेण स्नापित्वा रजककारजलेन स्नापयेत्। दासित्यादी—श्रावणः पापयडाविशेष मिन्नुवेगधारी योगीति लोके, तस्य विटका वराटिका कपर्दिकेति यावत्, दासेन दासद्वरा अथय यस्या सा तथा, तत कर्मधारय । रमेन्द्रेण पारदेन प्रिता सा कपठे धृतेत्यर्थ । निलनीदल पद्मपत्रम् ॥ १४ । १४ ॥

प्रथमे मासि जातस्य शिशोभेषजरिक्तका ।

श्रवलेह्या तु कर्चव्या मधुन्तीरिसताघृते ॥

एकैकां वर्द्वयेत्तावद् यावत् संवत्सरो भवेत् ।

तदूद्ध्वं माषवृद्धि स्याद् यावदाषोडशाव्दिकः॥१६॥

मात्रा चात्र कनीयसीति यदुक्तम् श्रतस्तामेव मात्रा प्रतिपादियतु परिमाषा-माह प्रथम इत्यादि—मध्वित मध्वादिविकल्पो दोपप्रकृत्यादिमेदात् । एकैकामिति मामि मासि एकैका रिक्तका कृत्वा वर्द्धयेदित्यर्थ , तदूद्ध्वमिति वर्षादूद्ध्वं वर्षे वर्षे मापेण मापेण वृद्धिमापवृद्धिः । एतत्परिमाषाराषो यथा—'प्रतिमास प्रयोक्तव्या वृद्धिरेषा भिषग्वरे । मानमेतत् प्रयोक्तव्य सर्वमानविषावपि । षोडशाच्दाद्भवेदूद्ध्वं यावदासप्ततेरिति । एप एव विमागोऽय तदूद्ध्वं वालवत् क्रिया" इति ॥ १६ ॥

## हरिद्रादिः

हरिद्राद्वययष्ट्याह्मसिहीशऋयवैः कृतः।

शिशोर्ज्वरातिसारघः कषायः स्तन्यदे।षजित् ॥ १७ ॥

हरिद्रत्यादौ—सिंहीं पृक्षिपणीं । यत्र हरिद्रादिगण एवाय क्रोकेन निवद्ध , तत्र च कलसीति पठिता, निश्चलस्तु सिंही नासक इत्याह । यस्तु चीरपो नाल कपाय पातुमसमर्थस्तस्व धात्रीम् पाययेत् । सुश्रुतेन कषायोक्तद्रव्यकल्केन लिसयोः स्तनयोः पानमपि दिशितम् ॥ १७ ॥

## वालचातुर्भद्रिका

घनकृष्णारुणाश्यक्षीचूर्णं चौद्रेण संयुतम् । शिशोर्ज्वरातिसारम्नं कासश्वासवमीहरम् ॥ १८ ॥

घनेत्यादि-धन मुस्तकम् ; अरुणा अतिविषा ॥ १८ ॥

#### धातक्यादिः

धातकीविल्वधन्याकले।भ्रेन्द्रयवबालकैः। लेहः चौद्रेण वालानां ज्वरातीसारवान्तिनुत्॥ १६ ॥ धातक्यादि—स्पृष्टम् ॥ १६ ॥

रजनीद्दिसरलश्रेयसी वृहतीद्वयम्। पृश्लिपर्णी शताहा च लीढं मान्निकसर्पिषा॥ ग्रह्यीदीपनं हान्ति भारुतार्ति सकामलाम् । ज्वरातीसारपाग्रहुमं वालानां सर्वरोगनुत् ॥ २० ॥ रजनीत्यादि—वाग्मटस्य । श्रेयमी गजिप्पली । वालाना सर्वरोगनुदित्यत्र वालाना सर्वशोधनुदित्यपि पाठो वाग्मेट चन्द्रोटेऽपि दृश्येते ॥ २० ॥

मिषीकृष्णाञ्जनं लाजाश्टङ्गीमरिचमाचिकैः। लेह शिशोर्विधातव्यश्छर्दिकासज्वरापहः॥२१॥ मिर्मात्यादि—मिषी मधीरेका , कृष्णा पिष्पली , अञ्जन रसाञ्जन , शृही। कर्कटशृही॥२१॥

#### शृङ्गचादिः

श्रङ्कीं समुस्तातिविषां विच्तूर्यं लेहं विद्ध्यान्मधुना शिश्रनाम्। कासज्वरच्छिदिंभिरर्दितानां समाक्तिकश्वातिविषां तथैकाम् २२

शृङ्गयादि-स्पष्टम् ॥ २२ ॥

पीतं पीतं वमेद् यस्तु स्तन्यं तन्मधुसर्पिषा । द्विवार्त्ताकीफलरसं पञ्चकोलञ्च लेहयेत्॥

श्राम्रास्थिलाजसिन्धृत्थैर्लेहः चौद्रेग छर्दिनुत् ॥ २३ ॥ पीतमित्यादि—नाग्मटस्य । दिनाचौकी बृहतीद्वयम् । फलरसमिति नाचौकी-

फलरसम्। योगोऽयोमक इति श्रीकरिंठ । निश्चलस्तु चशब्दो विकल्पे, श्रते। योग दय , यदुक्तमायुर्वेदसारे— 'पीखा या वर्मात स्तन्य श्रश यो मधुसपिंपा। कोलीफलरस यद्वा पन्चकोल प्रलेहयेत्' इति । श्रयन्च व्यवस्थिते। विकल्प , तन पित्तोत्तरे कफे बृहतीद्वयफलरस , वातरेष्ठमणि च पन्चकोलमित्याह ॥ २३॥

पिष्पत्तीमरिचानान्तु चूर्णं समधुशर्करम् । रसेन मातुलुङ्गस्य द्विकाच्छिदिनिचारणम् ॥ २४॥ पिष्पतीत्यादी—रसेन मातुलुङ्गस्यत्यत्र लिझादिति राष ॥ २४॥

पेटीपाठामूलाज्जम्बाः सहकारवल्कतः कल्कः। इत्येकश्रश्च पिएडो विधृतो हन्नाभिमध्यताल्वादौ॥ खर्चतीसारजवेगं प्रवलं घत्ते तदेव नियूमेन॥ २४॥

पेटीस्पादि--पेटारीति ख्याता, मापाडुपरीति लोके। चकारान्मिलिला प्रत्येकच्च योग ॥२५॥ विल्वञ्च पुष्पाणि च धातकीनां जलं सलोधं गजिपप्पली च। काथावलेहौ मधुना विभिश्रौ वालेषु योज्यावतिसारितेषु ॥२६॥

विल्वेत्यादौ-जल वालकम् । क्षाथावलहाविति काथो वा अवलेहो वेत्यर्थ । अवलेहपत्ते सर्व सञ्चूर्यथे अनुरूपमधुना लेह्यम् ॥२६॥

समङ्गाधातकीलोध्र-शारिवाभि श्रतं जलम् । दुईरेऽपि शिशोर्देयमतीसारे समान्निकम् ॥ नागरातिविषामुस्तं वालकेन्द्रयवैः श्रतम् । कुमारं पाययेत् प्रातः सर्वातीसारनाशनम् ॥ समङ्गा धातकी पद्मं वयःस्था कच्छुरा तथा । पिष्टैरेतैर्यवाग् स्यादतीसारविनाशिनी ॥२०॥

समङ्गेलादि—समङ्गा वराहकान्ता, पद्म पद्मकेशर, वयस्था गुद्धची, कच्छुरा भ्रिश्मशीमृलम् । कल्कसाध्या इयम् ॥२७॥

विल्वचूर्तकषायेण लाजाश्चेव सशर्कराः। श्रालोड्य पाययेद्वालं छुर्घतीसारनाशिनी ॥२८॥

विल्वेत्यादी—कषायोऽर्द्धश्वत । श्रतएव निर्देशात् लाजाराष्ट्र स्त्रीलिङ्गोऽप्य-स्तीति । योगोऽय छदर्धतिसारनाशनो वोध्य इति शेष ॥२८॥

> कल्कः प्रियङ्गुकोलास्थिमध्यमुस्तरसाञ्जनैः। चौद्रलीढ कुमारस्य च्छदितृष्णातिसारनुत्॥ मोचरसः समद्गा च धातकी पद्मकेशरम्। पिष्टैरेतैर्यवागुः स्याद्रक्कातीसारनाशिनी॥२६॥

कल्क इत्यादी-कोलास्थि मध्य वदरास्थिमज्जा, मोच शाल्मलीवेष्टक ॥२६॥

लेहस्तैलिसताचौद्रतिलयण्ट्याह्नकिकतः । वालस्य रुन्ध्यान्नियतं रक्षस्रावप्रवाहिकाम् ॥३०॥

लाजा सयप्रिमधुकं शर्करात्तौद्रमेव च । तर्रहलोदकसंयुक्तं त्त्रिंगं हन्ति प्रवाहिकाम् ॥३१॥ लाजा इत्यादौ-स्युक्तिमित्यनन्तर पीतिमिति शेष । लाजादिचूर्यं यथायोग्य गृहीत्वा तयदुलोदकेन पेयम् ॥३१॥

> श्रङ्कोटमूलमथवा तग्हलसलिलेन वटजमूलं वा । पीतं हन्त्यतीसारं श्रहणीरोगं सुदुर्वारम् ॥३२॥

श्रद्धोठेत्यादि—शद्धोठ श्रद्धोड इति ख्यातस्तरः । योगद्दये तण्डुलोदक सम्बध्यते । वटनमूल वटनातमूल मूलाकार हस्वप्रमाण 'व' इति ख्यातम्, श्रतएवीक वटनमूलमिति, न तु वटमूलम् ॥३२॥

> सितजीरकसर्जचूर्णं विल्वद्तोत्थाम्बुमिश्रितं पीतम्। इन्त्यामरक्षश्रःलं गुडसहितः श्वेतसर्जो वा॥ मरिचमहौपधकुटजं द्विगुणीकृतमुत्तरोत्तरं क्रमशः। गुडतक्रयुक्तमेतद् प्रह्णीरोगं निहन्त्याश्च ॥३३॥

सितेत्यादौ---विल्वदलोत्याम्बु विल्वपत्रस्वरम । गुडेन मधुरीकृत तक गुडतकम् ॥ ३३ ॥

विल्वशकाम्बुमोचाव्दसिद्धमाजं पयः शिशो । समांशं रक्तां प्रहणीं पीतं हन्यात् त्रिरात्रत । तद्धद्जाचीरसमो जम्बूत्वगुद्धचो रस ॥३४॥ गुदपाके तु वलानां पित्तज्ञीं कारयेत् कियाम् । रसाक्षनं विशेषेण पानालेपनयोर्हितम् ॥३४॥ कणोषणसिताचोद्धस्दमैलासैन्धवैः कृत । मूत्रप्रहे प्रयोक्षव्यः शिश्र्लां लेह उत्तमः॥३६॥

विल्वेत्यादी--शक्तमिन्द्रयवम्, श्रम्बु वालकम्, मोच शाल्मलीवेष्टक । मिद्ध-मिति चीरपरिभाषया पाक ॥३४-३६॥

घृतेन सिन्धुविल्वैलाहिङ्गुभागीरजो लिहन्। श्रानाहं वातिकं गूलं जयत्तोयेन वा शिशुः ॥ ३७ ॥ धतेनेलादौ—सिन्धु सैन्धवम् । एषा चूर्णं धतेन लेह्मम् । तोयेन वेलनन्तरं पिनिश्रिति शेष । तेन तोयेन कोष्णाजलेन वा पिनेदिलर्थ ॥ ३७ ॥

F

हरीतकीवचाकुष्ठं करकं मान्तिकसंयुतम् ।
पित्वा कुमारः स्तन्येन मुच्यते तालुपातनात् ॥ ३८॥
हरीतकीत्यादि—नाग्मटस्य । तालुपातेन तालुप्रदेशस्य निम्नता । तालुकण्टकादित्यपि पाठ ॥ ३८॥

मुखपाके तु वालानां साम्रसारमयोरजः।
गैरिकं चौद्रसंयुक्तं भेपजं सरसाञ्जनम्॥
श्रश्वत्थत्वग्दलचौद्रैर्मुखपाके प्रलेपनम्।
दार्वीयष्ट्यभयाजातीपत्वचौद्रैस्तथापरम्॥३६॥

मुखपाक इत्यादी—आश्रमार आश्रमदृशपत्र स्वनामख्यातो राढायामिति केचित् । अन्ये आश्रमार, आश्रफलस्थिमज्जेलाहु । आश्रमारादि-रसाजनान्तम् एक एव प्रतेष । अश्वत्थस्य त्वक् पत्रञ्च । अपरमित्यत्र प्रतेपनमित्यन्वयः ॥ ३६ ॥

सह जम्बीररसेन स्तुग्दलरसघर्षणं सद्यः । कृतमुपहान्ति हि पाकं मुखजं वालस्य चाश्वेव ॥ ४० ॥ सहत्यादौ—जम्बीर पर्णाशमेद । स्तुग्दल स्तुहीपत्रम्, तस्य स्वरस पुट-पाकविधिनैव ग्रहीतु शक्यते ॥ ४० ॥

लावतित्तिरिवल्ल्ररजः पुष्परसान्वितम्। द्वतं करोति वालानां दन्तकेशरवन्मुखम्॥ ४१॥

लोवत्यादि—वाग्भटस्य । लावितिचिर्थोर्विल्लूर शुष्कमामम्, पुष्परसो मधु । एतन्मासचूर्णं मधुना लेद्यमिति केचित् । अन्ये तु मधुनैतच्चूर्णेन दन्तपालि प्रति-सार्यदित्याहु । किन्त्वय योगो वाग्भटे प्रतिमारणप्रकरेण पठित । दन्तकेशरमिति दन्ता एव केशर सुकुमारत्वात् ॥ ४१ ॥

दन्तोद्भेदोत्थरोगेषु न वालमतियन्त्रयेत्।

स्वयमण्युपशास्यन्ति जातदन्तस्य ते गदाः ॥ ४२ ॥ दन्तोद्वेदेत्यादि —वाग्मटस्य । दन्तोद्वेदो दन्नमेद । ''दन्तोद्वेदश्च रोगाणा मर्वेषामि कारणम् । विशेषाञ्चरविद्भेदकासच्छिदिशिरोरुजाम्" इत्यादि । न वालमीतयन्त्रयेदिति श्राहाराचारिनयमेनेत्यर्थ ॥ ४२ ॥

पश्चमूलीकपायेण सघृतेन पय श्रतम्। सश्टङ्गवेरं सगुडं शीतं हिकार्दितः पिवेत्॥ स्रवर्णगैरिकस्यापि चूर्णानि मधुना सह । लीढ्वा सुखमवामोति चित्रं हिकार्दितः शिशुः॥ ४३ ॥

पद्ममूलीत्यादि—प्व्चमूली महती बातकफप्रधानहिकाहरत्वात्। अत काथात् पादिक ध्तम् अष्टमांश वा, दुग्धाचतुर्गुणः काथ । एतत् सर्वमेकीकृत्य पवत्वा काथ शोषीयत्वा सप्तत दुग्धः स्थाप्यम्, तत्र शुर्णठीचूर्णं गुठश्चानुरूपं प्रिष्ट्य यथाई पिवे-दित्याहु । अन्य तु धृतस्यापि पानकाले प्रदेष्यत्वमिति वदन्ति । सुवर्णगैरिकस्य अत्यन्तलोहितगिरिकस्य ॥ ४३ ॥

चित्रकं श्रद्भवेरञ्च तथा दन्ती गवाद्यि। चूर्णे कृत्वा तु सर्वेपां सुखोण्णनाम्बुना पिवेत्। श्वासं कासमधो हिक्कां कुमाराणां प्रणाश्येत्॥ ४४॥ विनक्षित्यादी—गवाची गारचकर्करी। सिनक्षे वाते कफेड्य योगः॥४४॥ द्राचायासाभयाकृष्णाचूर्णे सच्चोद्रस्पिपा। लीढं श्वासं निहन्त्याशु कासञ्च तमकं मथा॥ ४४॥ पुष्करातिविषाश्यक्षीमागधीधन्वयासकम्। चूर्णितं मधुना लीढं शिश्र्नां पञ्चकासनुत्॥ ४६॥ द्राचित्यादि—कफिपते। यासे। द्रालमा। तमक मासित्यर्थ ॥४५।४६॥ द्राचित्यादि च वीजानि जीरकं नागकेशरम्। चूर्णितं शकराचौद्रलीढं तृष्णानिवारणम्॥ ४७॥ द्राहिमस्य च वीजानि जीरकं नागकेशरम्। चूर्णितं शकराचौद्रलीढं तृष्णानिवारणम्॥ ४७॥ द्राहिमस्यत्यादौ—चूर्णितीमत्यत्र कृष्णा चेति पाठान्तरम्॥ ४७॥

चूिर्णतं शर्कराचौद्रलीढं तृष्णानिवारणम् ॥ ४७ ॥
बाहिमस्यत्यादौ—चूिणवीमत्यत्र ष्टष्णा चेति पाठान्तरम् ॥ ४७ ॥
मयूरपच्तमस्यव्युषितजलं तेन भावितं पेयम् ।
वृष्णामं वटकाष्टजमस्यजलं वषत्रशोपिज्कृतं वषते ॥
पिष्टैश्छागेन पयसा दावीं मुस्तकगैरिकैः ।
विहरालेपनं शस्तं शिशोनेत्रामयापहम् ॥ ४८॥

मायूरेत्यादि—मयूरपच भसा वितजलेन न्युषितेन माषितवटकाष्ठभसा स्नावि-तजलेन पेयमित्यर्थे. । मयूरपच भसा पल १, जल पल ६, एतद हुधा वस्ने परिस्नान्य गृष्टीतजले न्युषिते पष्ठाशेन वटकाष्ठभस्म प्रचिप्य बहुधा परिस्नान्य यथार्षे पिवेद्य ॥ ४८ ॥ मनःशिला शङ्खनाभि पिष्पत्योऽथ रसाञ्जनम् । वर्त्ति चौद्रेण संयुक्ता वाले सर्वाचिरोगनुत् ॥ ४६॥ मन शिलेत्यादौ—चौद्रेण सयुक्ता सप्टोत्यर्थः ॥ ४६॥ मात्तस्तन्यकदुस्नेहकाञ्जिकैभीविता जयेत् । स्वेदादीपशिखोत्ततो नेत्रामयमलक्षकः ॥ ४०॥

मातृस्तन्येत्यादौ--कड़िलेह कड़तैलम् । एतैर्मातृस्तन्यादिभिः प्रत्येकशः सप्ताह गावितोऽलक्षकरसः श्रनन्तरं दीपशिखातप्तः सन् स्वेदविधिना नेत्रामय जये-दित्यर्थः ॥ ५०॥

शुरुर्ठाभृङ्गानिशाकल्कः पुटपकः ससैन्घव । कुकूर्यकेऽिचरोगेषु भद्रमाश्च्योतनं हितम्॥ ४१॥

शुण्ठीत्यादी—मृक्षो मृक्ष्राज । शुण्ठ्यादीना पिष्टाना प्रत्येक माषद्रयम् , मैन्थव रिक्तपञ्चकम् । पतत् सर्व पुटपाकविधिना पक्तवा तत आकृष्य वस्त्रे पोट्टलीं बद्ध्वा चच्छिष आश्च्योतन कार्य्यम् । कुकूलक शित पाठे कुकूलकस्तुषाभिः, पतिसम् पुटपक हत्यान्वयः । उक्त हि वाग्मटे—"शृक्षवेर निशा भृक्ष किकत वटपल्लवे । वद्ध्वा गोशकृता लिप्त कुकूलै स्वेदयेत् ततः । रसेन लिम्पेत् ताल्वास्य नेत्रे च परिषेचयेत्" शित ॥ ११ ॥

किमिन्नालशिलादार्वी-लाचाकाञ्चनगैरिकै.।
चूर्णाञ्जनं कुकूणे स्याच्छिश्रनां पोथकीपु च ॥
सुदर्शनामूलचूर्णादञ्जनं स्यात् कुकूणके ॥
गृहधूमनिशाकुष्ठराजिकेन्द्रयवैः शिशोः।
लेपस्तकेण हन्त्याग्र सिध्मपामाविचर्चिकाः॥ ४२॥

किमिन्नेत्यादौ — आल हरितालम् ; शिला मन शिलाः काञ्चनगैरिक स्वर्ण-गैरिकम् । चूर्णाञ्जनिमिति मधुम्रचितशलाकया चूर्णाञ्जन कार्य्यम् । सुदर्शनिति सुदर्शना त्रिशुरीति ख्याता जीवपेत्रीत च ख्याता ॥ ५२ ॥

#### श्रश्वगन्धापृतम्

पाद्कल्केऽश्वगन्धायाः चीरे दशगुंणे पचेत् । घृतं पेयं कुमाराणां पुष्टिकृद्दलवर्द्धनम् ॥ ४३ ॥ पादकल्क इत्यादौ--पेय कुमाराणामिति कुमारे पेयमित्यर्थः । वा कर्त्तरि कृत्येरिति पष्टी ॥ ५३ ॥

## वालचाङ्गरीघृतम्

चाङ्गरीस्वरसे सर्पिश्छागर्चारेसमे पचेत्। कपित्थव्योपसिन्धृत्थसमङ्गोत्पलवालकै।॥ सविल्वधातकीमोचैः सिद्धं सर्वातिसारनुत्। ग्रह्णीं दुस्तरां हन्ति वालानान्तु विशेषतः॥ ४४॥

चोद्गेरीत्यादी---- श्रजाचीरचोद्गेरीस्वरसी धताद् द्विगुणी, पाकसाधनत्वेन चतुर्गुणद्रवस्योत्सर्गसिद्धत्वात् ॥ ५४ ॥

### कुमारकल्याग्यकं घृतम्

शह्वपुष्पी वचा ब्रह्मी कुष्ठं तिफलया सह ।
द्राचा संशक्तरा श्रुगठी जीवन्ती जीवकं वला ॥
शटी दुरालमा विद्वं दान्तिमं सुरसः स्थिरा ।
मुस्तं पुष्करमूलश्च स्वमैला गजपिष्पली ॥
एपां कर्पसमभागेर्षृतप्रसं विपाचयेत् ।
कपाये कर्गटकार्याश्च चीरे तिस्मश्चतुर्गुणे ॥
एतत् कुमारकत्याणं घृतरतं सुखपदम् ।
वलवर्णकरं घन्यमशिपुष्टिविवर्द्धनम् ॥
छायासर्वश्रहाल्दमी-क्रिमिद्दन्तगदापहम् ।
सर्ववालामयहरं दन्तोद्धेदं विशेषत् ॥ ४४॥

शह्वपुष्पीत्यादी—जीवक जीवनीयवर्गमध्ये पठितद्रव्यम् । सुरसः पर्याश । कण्टकारीत्वरस चीरव्च प्रत्येक धताचतुर्गुग्यम् । भूतादिकृत मुखादिवैवर्ण्यं छाया ॥ ४४ ॥

#### **अप्टम**ङ्गलघृतम्

वचा कुष्टं तथा ब्रह्मी सिद्धार्थकमथापि च । शारिवा सैन्धवञ्चापि पिष्पली घृतमएमम् ॥

#### वालरोग-चिकित्सा।

मेध्यं घृतिमदं सिद्धं पातव्यञ्च दिने दिने । दृढस्मृति चित्रमेधाः कुमारो बुद्धिमान् भनेत् ॥ न पिशाचा न रज्ञांसि न भूता न च मातरः । प्रभवन्ति कुमाराणां पिवतामप्टमङ्गलम् ॥ ४६॥ वेचत्यादि—वचादीना कल्कः, जलं चतुर्गुणमिति ॥ ४६॥

## लाचाादितैलम्

लात्तारससमं सिद्धं तैलं मस्तुचतुर्गुणम् । रास्नाचन्दनकृष्णाव्द-वाजिगन्धानिशायुगैः॥ शताह्वादारुयष्ट्याह्वमूर्वातिक्नाहरेखाभि । वालानां ज्वररत्तोघ्नमभ्यङ्गाद्वलवर्णकृत् ॥ ४७॥

लाद्वातेले—कुष्ठाब्दचन्दनैरित्येव पाठो वाग्मटपुस्तकेषु दृश्यते, न तु कृष्णा-ब्दचन्दनैरिति । तिक्ता कडरो।हिणी, न तु लताकस्तुरी, "समूर्वारोहिणीरास्ताशता-ह्यामधुकै: समै:" इति सिद्धसारदर्शनात् ॥ ५७॥

सहामुरिडतिकोदीच्यकाथस्नानं ग्रहापहम् । सप्तच्छदनिशाकुष्ठ-चन्दनैश्चानुतेपनम् ॥ ४८॥

सहेत्यादि—सहा माषपणीं। कायोऽत्रार्दश्त ॥ ४=॥ सर्पत्वक् लशुनं मूर्वासर्षपारिप्रपत्नवाः। वैडालाविडजालोम मेपश्टक्षी वचा मधु। धूपः शिशोर्ज्वरक्षोऽयमशेषप्रहनाशनः॥ ४६॥

संपेत्यादि—सर्पत्वन् निर्मोन , श्ररिष्टो निम्न , सर्वप . श्रेतसर्वप , मेपशृङ्गया । पद्मन् । मेपशृङ्गमिति पाठे मेषस्य गडरस्य शृङ्गम् ॥ ५६ ॥

वित्रान्तीष्टकर्माणि कार्य्याणि प्रहशान्तये । मन्त्रश्चायं प्रयोक्तव्यस्ततादौ सार्वकामिकः॥

ॐ नमो भगवते गरुडाय त्र्यम्वकाय सद्यस्तव स्तुतः स्वाहा । ॐ कं पं टं शं वैनतेयाय नमः । ॐ हीं हूं स्न. ॥६०॥ वर्तात्यादो—ततादावित्यत्र मन्त्रादाविति पाठान्तरे कुमारस्य हस्तकस्यादि-

स्वयन्यन इत्यर्थ । ॐ इत्यादिस्वाहान्त एको मन्स । ॐ इत्यादिकीजाचरात्मको दितीय । एव ॐ इत्यादि च इत्यन्तस्तुनीय । किंवा मिलित्वा एक एव विलि-दानमन्त्र ॥ ६०॥

वालदेहप्रमाणेन पुष्पमालान्तु सर्वतः । प्रगृह्य मुच्छिकामक्षविलेटेयस्तु शान्तिकः । "ॐकारी सुवर्णपत्नी वालकं रत्त रत्त स्वाहा" ॥ ६१ ॥

वालेडेहत्यादी--पुष्पमाना शुक्ता । मर्वत दित मर्वासु दित्तु । मन्न रारा-वस्योपरिस्यमनन चतुष्पार्थन्यमनन वा । सुन्दिका म्त्रल्पशरावाः । अस मत्स्य-मासव्यन्ननघृपदीपदान्मप्युपदिशन्नि वृद्धाः । अय गरुडवित सन्ध्याया दिनत्रय दीयत इति वृद्धः । वालकरक्षामन्त्रमाह ब्यूकारित्यादिस्वाहान्त ॥ ६१ ॥

ॐ नारायणाय नम । प्रथमे विचसे मासे वर्षे वा गृहाति नन्दा नाम मातृका । तया गृहीतमात्रेण प्रथमं भवति ज्वर । श्रशुमं शब्दं मुञ्चति, श्रात्कारञ्च करोति, स्तन्यं न गृहाति । वर्षि तस्य प्रवच्यामि येन सम्पद्यते श्रमम् ।

नद्यभयतदमृत्तिकां गृहीत्वा पुत्तिकां कृत्वा गृङ्गौद्नं, गृङ्गपुष्पं, गृङ्गलप्तव्यज्ञा, सप्त प्रदीपा, सप्त स्वस्तिका, सप्त वटका, सप्त ग्रष्कुलिकाः, जम्बुलिका, सप्त मुस्तकाः, गन्धं, पुष्पं, ताम्बूलं, मत्स्यं, मांसं, सुराग्रभक्तञ्च पूर्वस्यां दिशि चतु-ष्पंथ मध्याद्वे बलिर्दातव्य । ततः श्रश्वत्थपतं जलकुम्भे निद्यित्य ग्रान्त्युद्केन स्नापयेत्, रसोनसिद्धार्थकमेपश्टद्गनिम्वपत्र-शिवनिर्माल्यैर्वालकं घृपयेत् । ॐ नमो रावणाय श्रमुकस्य व्याधि हन हन मुश्च मुश्च हीं फद् स्वाहा"। एवं दिनन्नयं वर्ति दत्त्वा चतुर्थे दिवसे ब्राह्मणं भोजयेत् । ततः सम्प्यते शुमम्

इदानीं प्रिमिद्धफल रावणकृतकुमारनन्त्रमाह ॐ नारायणाय नम इत्यावि— प्रथमे मानि वर्षे वेत्यादि 'कथम् व यता वच्यमाणादितीयदिवमादिना प्रथममासस्य वाधितत्वादः; एव प्रथमवर्षस्यापि दितीयतृतीयमासादिडादशमासान्ते परिमृतत्वादिति। श्रश्नोच्यते द्वादशादिनात् परतोऽस्त्येव प्रथममामस्यावकाशः, एव वर्षस्यापि। तथाहि—यदि कुमारो माघे जातस्तदा माघादिगणनया पौषमामि द्वादशमासा मवान्तः। प्रथम-द्वितीयदिवसविधिरेव, तत ऊद्ध्वं द्वादशमामि वर्षमृद्धिदिन यावत् प्रथममम्बत्सरिविधि-विधेय इति युक्तमुत्पश्याम । मामेन गणनया, न तु चन्द्रादिन्यनत्या दिनविभाग कृत्वा मामादिगणना कार्याः, इह द्वादशमामवर्षयोविषयत्वाभावप्रमङ्गात् । किंवा श्रादित्य-गत्यादिगणनयापि जन्मदिन पत्र प्रथमवर्षविधेश्वारितार्थत्विभितः । नन्दादिनाम-कीर्त्तनेश्च तदुद्देशेन वित्यानार्थम्, यथा—श्रमुकस्य व्याधि द्वन द्वन मुख्च मुख्च स्वाद्दा नन्दायै नम इति वितदानम् । श्रशुभशच्दममङ्गलवाक्य मुख्वति विरोति । श्रात्कारश्वदिः । स्वस्तिका वेदिका । जम्बुलिका उत्स्वन्नमाषा । श्रश्वत्थपत्र जल-कुम्भे प्रचित्य गायत्रीं पठित्वा द्विजेन शान्त्युदक कर्त्तव्यम्, किंवा वितदानमन्त्रे-चैव भिषजा कार्य्यमित्याद्वर्षृद्धा । मेषस्य गडरस्य श्रद्ध । यत्र धूपो नोकस्तत्राय-मेव धूपो विवेय । यत्र शान्त्युदक नोक तत्र द्वमेव शान्त्युदकमुपदिशन्ति । क्रं नम इत्यादि—मन्त्रो धृव , येऽविशेषान्ते प्रतिमात्तक वाच्या कुमारस्य नामो-च्यार्षक पठनीया , यथा—श्रमुकस्य व्याधि इन इन मुख्च मुख्च इति ॥६२॥

द्वितीये दिवसे मासे वर्षे वा गृह्वाति सुनन्दा नाम मातृका। तया गृहीतमात्रेण प्रथमं भवति ज्वर । चजुः जन्मी-लयति, गात्रमुद्वेजयति, न शेते, क्रन्दति, स्तन्यं न गृह्वाति, श्रात्कारश्च भवति।

वर्लि तस्य प्रवच्यामि येन सम्पद्यते शुभम्।

तग्रहलं हस्तपृष्टैकं गृहीत्वा दिघ गुडघृतञ्च मिश्रितं, शरावकं, गन्धताम्वूलं, पीतपुष्पं, पीतसप्तध्वजा, चत्वार प्रदीपाः, दश स्वस्तिका, मत्स्यमांससुराष्ट्रभक्षतिलचूर्णानि पश्चिमायां दिशि चतुष्पथे विलद्गीतव्यः दिनानि त्रीणि सन्ध्या-याम्।ततः शान्त्युदकेन स्नापयेत्, शिवनिमील्यसिद्धार्थमाजीर-रोमोशीरवालकघृते धूपं दद्यात्। "ॐ नमो रावणाय श्रमु-कस्य व्याधि हन हन मुञ्ज मुञ्ज हीं फट् स्वाहा"। चतुर्थे दिवसे ब्राह्मणं भोजयेत्। ततः सम्पद्यते श्रभम् ॥६३॥

दितीय इस्यादौ - उन्मालयति उपरि भृरामुत्तिपति । हस्तपृष्ठैकमिति एकनार-

परिमितिहस्तपृष्ठे तग्बुलान् गृहीत्वेत्यर्थे । श्रममक्तमिति श्रोदनपूर्णस्थालीमध्यात् यत् प्रथममाकृष्यते भक्त तदमभक्तम्। शान्त्युदकेनेति शान्त्युदकमिद कुरेान कार्य्यम् ; एव सर्वत्र विरोगोक्ति विना ॥६१॥

त्तीये दिवसे मासे वर्षे वा गृह्वाति पूतना नाम मातृका। तया गृहीतमात्रेण प्रथमं भवति ज्वर । गात्रमुद्देजयति, स्तन्यं न गृह्वाति, मुप्टि वभ्नाति, कन्दति, ऊद्र्धं निरीच्ते ।

वर्ति तस्य प्रवस्यामि येन सम्पद्यते शुभम्।

नद्यभयतदम्तिका गृहीत्वा पुत्तिकां कृत्वा रक्षचन्दनं, गन्धताम्वृतं, रक्षसम्बजा, सप्त प्रदीपा, सप्त स्वस्तिकाः पित्तमाससुराग्रमक्षञ्च दित्तिणस्यां दिशि श्रपराहे चतुष्पथे वितर्दातव्यः। शिवनिर्मात्यगुग्गुलुसपपिनिम्वपत्रमेपश्चद्वैर्दिन-त्रयं धूपयेत्। "ॐ नमो रावणाय श्रमुकस्य व्याधि हन हन मुञ्ज मुञ्ज हासय हासय स्वाहा।" एवं दिनत्रयं कार्य्यम्। चतुर्थे दिवसे ब्राह्मणान् भोजयेत्। ततः सम्पद्यते शुभम्॥६४॥

तृतीय इत्यादौ-भ्यमकिमिति श्रोदनपूर्णस्थालीमध्यात् यत् प्रथममाकृष्यते तत् श्रमककम् ॥६४॥

चतुर्थे दिवसे मासे वर्षे वा गृह्णाति सुखमुण्डिका नाम मातृका। तया गृहीतमात्रेण प्रथमं भवति ज्वर । श्रीवां नाम-यति, चचुरुन्मीलयति, स्तन्यं न गृह्णाति, रोदिति, स्वृणिति, मुप्टि वध्नाति।

बर्लि तस्य प्रवस्थामि येन सम्पद्यते शुभम्।

नयुभयतटमृत्तिकां गृहीत्वा पुत्तिका कृत्वा उत्पलपुण्पं, गन्ध, ताम्बूलं, दश ध्वजाः, दीपाश्चत्वारः,त्रयोदश स्वस्तिकाः, मत्स्यमांसस्ररात्रमक्षञ्च उत्तरस्यां दिशि श्रपराहे बलिर्दे-यश्चतुष्पथे। "ॐ नमो रावणाय श्रमुकस्य व्याधि हन हन मुश्च मुश्च स्वाहा।" चतुर्थे दिवसे ब्राह्मणान् भोजयेत्। ततः सम्पद्यते शुमम्॥६४॥ चतुर्थ इत्यादौ--दशध्वजा इति शुक्ता , विशेषामानात ॥६५॥

पञ्चमे दिवसे मासे वर्षे वा गृह्णाति कटपूतना नाम मातृका। तया गृहीतमात्रेण प्रथमं भवति ज्वरः। गात्रमुद्धे-जयति, स्तन्यं न गृह्णाति। मुधि बभ्लाति।

वर्लि तस्य प्रवस्यामि येन सम्पद्यते शुभम्।

कुम्भकारचक्रस्य मृत्तिकां गृहीत्वा पुत्तिकां विधाय गन्धताम्वूलं. शुक्कपुणं, शुक्कौदनं, पञ्च ध्वजा, पञ्च प्रदीपा, पञ्च घटकाः, पेशान्यां दिशि विलर्दातव्य, शान्त्युदकेन स्नाप्येत्, शिवनिर्माल्यसपीनिर्मोकगुग्गुलुनिम्वपत्रवालकघृतैर्घृपं द्यात्। 'ॐनमो रावणाय श्रमुकस्य व्याधि चूर्णय चूर्णय इन हन स्वाहा।' चतुर्थदिवसे ब्राह्मणान् भोजयेत्। तत सम्पद्यते शुभम्॥ ६६॥

पन्चम इत्यादौ-कुम्मकारचक्रमृत्तिका कुम्मकारचक्रसलग्नमृत्तिका ॥ ६६ ॥

पष्ठे दिवसे मासे वर्षे वा गृह्णाति शकुनिका नाम मातृका। तया गृहीतमात्रेण प्रथमं भवति ज्वर । गात्रभेदश्च दर्शयति, मुप्टि वध्नाति, दिवारात्रावुत्थानं भवति, ऊद्ध्वं निरीत्तते।

वर्लि तस्य प्रवस्यामि येन सम्पद्यते श्रुमम्।

पिष्टकेन पुत्तिकां कृत्वा श्रुक्षौदन, पीतपुष्पं, रक्षपुष्पं, गन्धताम्वूलं, दश दिपाः, दश पीतध्वजा, दश खितका, दश खितका, दश वटकाः, चीरजम्बूलिका, मत्यमांससुराः श्राग्नेय्यां दिशि निष्कान्ते मध्योद्धे बिलदीतव्य, शान्त्युदकेन स्नापयेत्, शिवनिमीत्यरसोनगुग्गुलुसपिनमीकिनम्वपत्रघृतैर्धूपं द्द्यात्। 'ॐ नमो रावणाय श्रमुकस्य व्याधि चूर्णय चूर्णय हन हन खाहा।' चतुर्थे दिवसे ब्राह्मणान् भोजयेत्। ततः सम्पद्यते शुभम्॥ ६७॥

षष्ठ इत्यादी—क्षीरजम्बूलिका चीरसिहतिसिन्नमामा ॥ ६७॥ सप्तमे दिवसे मासे वर्षे वा यदा गृह्वाति शुष्करेवती नाम मातृका। तया गृहीतमात्रेण प्रथमं भवति ज्वर । गात्रमुद्धेज-यति, मुर्षि बन्नाति, रोदिति ।

-वर्ति तस्य प्रवच्यामि येन सम्पद्यते शुभम् ।

रक्षपुष्पं, शुक्कपुष्पं, गन्धताम्वूलं, रक्षौदनं, कृशरा, त्रयो-दश स्वस्तिका, त्रयोदश शष्कुलिकाः, जम्बुलिकाः, मत्स्यमांस-सुरा, त्रयोदश ध्वजाः, पञ्च प्रदीपा पश्चिमाया दिशि प्राम-निष्काशेऽपराह्व वृत्तमाश्चित्य विलद्गीतव्य, शान्त्युद्केन स्नाप-येत्, गुग्गुलुमेषश्यङ्गसर्षपोशीरवालकघृतैर्धूपं दद्यात् । 'ॐ नमो रावणाय दीसतेजसे हन हन मुञ्च मुञ्च स्नाहा।' चतुथे दिवसे ब्राह्मणान् भोजयेत्। तत सम्पद्यते शुभम् ॥ ६८॥

मप्तम इत्यादी—(वतीदन शाल्यादिभक्तम्, श्रतक्तकादिरव्जितभक्त वा, क्रशग तिलतगडुलिमितयवाग् । श्रामनिष्काशे ग्रामप्रान्ते ॥ ६८ ॥

श्रप्टमेदिवसे मासे वर्षे वा गृह्णांत श्रर्थिका नाम मातृका। तया गृहीतमात्रेण प्रथमं भवति ज्वर । गृध्रगन्ध, पूर्तिगन्धश्च जायते, श्राहारं न गृह्णाति, गात्राणि उद्वेजयति ।

वर्ति तस्य प्रवस्यामि यत सम्पद्यते शुभम्।

रक्षपीतध्वजाः, चन्दनं, पीतपुष्पं, शष्कुल्यः, पर्पटिकाः, मत्स्यमांससुराः, जम्बूलिका प्रत्यूपे वर्लि दद्यात् । 'ॐ नमो रावणाय त्रैलोक्यविद्रावणाय चतुर्दिशमोत्त्रणाय व्याधि हन हन मुञ्च मुञ्च दह दह श्रों हीं फद् स्वाहा।' चतुर्थे दिवसे ब्राह्मणान् भोजयेत्। तत सम्पद्यते श्रमम्॥ ६६॥

नवमे दिवसे मासे वर्षे वा गृह्वाति स्तिका नाम मातृका। तया गृहीतमात्रेण प्रथमं भवति ज्वर । नित्यं छुर्दयति, गात्र-भेदं दर्शयति, मुर्िं व्याति, निद्रातितरा स्यात्।

विलं तस्य प्रवद्यामि येन सम्पद्यते शुमम् । नशुभयतटमृत्तिकां गृहीत्वा पुत्तिकां निर्माय शुक्कव-स्त्रेण वेष्ट्येत् । शुक्कपुष्पं, शुक्कीदनं, गन्धताम्बूलं, शुक्कत्रयोदश- ध्वजा, त्रयोदश प्रदीपाः, त्रयोदश खस्तिकाः, त्रयोदश पुत्त-लिका, मत्स्यमांससुरा. उत्तरदिग्विभागे त्रामनिष्काश वर्ति टापयेत्, शान्त्युटकेन स्नापयेत्, गुग्गुलुनिम्वपत्रगोधूमगो-श्रुद्गश्वतस्पपघृतेर्धूपं दद्यात्। ॐ नमो रावणाय चतुर्भुजाय हन हन मुञ्च मुञ्च खाहा। वतुर्थे दिवसे ब्राह्मणान् भोज-यत्। ततं सम्पद्यते शुभम्॥ ७०॥

दशमें दिवसे मासे वर्षे वा गृह्णाति निर्ऋता नाम मातृका। तया गृहीतमात्रण प्रथमं भवति ज्वर. । गात्रमुद्रेजयति, श्रात्कार करोति, रोदिति, वधाति सूत्रं, पुरीपञ्च भवति।

वित तस्य प्रवच्यामि येन सम्पद्यते शुभम्।

पारावारमृत्तिकां गृहीत्वा, पुत्तिकां फृत्वा, गन्धताम्वूलं, रक्रपुष्पं, रक्रचन्द्नं, पञ्चवण्पञ्चध्वज्ञाः, पंच प्रदीपा, पंच खस्तिका, पंच पुत्तिका, मत्स्यमांससुराः वायव्यां दिशि विंत दद्यात्, काकविष्ठागोमांसगोश्टङ्गरसोनमार्जाररोमनिम्व-पत्रघृतैर्धूपयेत्। 'ॐ नमो रावणाय चूर्णितहस्ताय हन हन मुञ्च मुञ्च खाहा'। चतुर्थे दिवसे ब्राह्मणान् भोजयेत्। तत सम्पद्यते ग्रुभम् ॥ ७१ ॥

एकाद्शे दिवसे मासे वर्षे वा यदा गृह्वाति पिलिपिच्छिका नाम मातृका, तया गृहीतमात्रेण प्रथमं भवति ज्वरः। श्राहारं न गृह्णाति, उद्ध्वंद्दष्टिभेवति, गात्रभंग श्रात्कारश्च भवति ।

वित तस्य प्रवच्यामि येन सम्पद्यते शुभम्।

पिष्टकेन पुत्तिकां कृत्वा रक्षचन्दनं रक्षपुष्पञ्च, तस्या मुखं दुग्धेन सिञ्चेत् । पीतपुष्पं, गन्धताम्बूलं, सप्त पीतध्वजाः सप्त प्रदीपाः, श्रष्टौ वटकाः, श्रष्टौ शष्कुलिका , श्रष्टौ पूपिका , मत्स्यमांससुराः पूर्वस्यां दिशि वित्रित्वयः, शान्त्युद्केन स्नापयेत्, शिवनिर्माल्यगुग्गुलुगोश्टद्गसर्पनिर्मोकघृतैर्घूपयेत्। 'श्रों नमो रावणाय मुञ्च मुञ्च खाहा' चतुर्थे दिवसे विमान् भोजयेत्। तत सुस्थो भवति वालकः। तेन सम्पद्यते श्रमम्॥ ७२॥

श्रष्टमनवमदशमैकादश इति स्फुटाः ॥६६—७०॥

हादशे दिवसे मासे वर्षे वा यदा गृहाति कालिका नाम मातृका, तथा गृहीतमात्रेण प्रथमं भवति ज्वरः। विहस्य वाद-यति, करेण तर्जयति, गृहाति, कामति, निश्वसिति, मुहुर्मुहु-श्रुर्द्यति, श्राहारं न करोति।

वर्ति तस्य प्रवद्यामि येन सम्पद्यते शुभम्।

क्षीरेण पुत्तिकां छत्वा शुक्ककुसुमं, गन्धताम्वृलं, शुक्क-सप्तध्यजा, सप्त शण्कुलिकाः, सप्त प्रदीपा करम्मकेण सर्व-कर्मवर्लि द्यात्, शान्त्युदकेन स्नापयेत् । श्वेतसप्पग्रुग्गुलु-शिवनिर्माल्यघृतैर्धूपयेत्। 'ॐ नमो रावणाय मुञ्च मुञ्च हन हन स्नाहा।' चतुर्थे दिवसे विप्रान् भोजयेत्॥ ७३॥

इति रावण्कतं कुमारतन्त्रं समाप्तम्॥
'इति वालरोग-चिकित्सा।

दादशे—वादयतीति मम्मापते । रोदितीति पाठान्तरम् । इंरियेनि पाकात् पिग्रडीमूतेन हीरेग्रेत्यर्थ । करम्मकेण दिधमिश्रितमकेन ॥ ७३ ॥ इति वालरोगचिकित्साविवृति ।

# अथ विष-चिकित्सा

श्रिरिप्रावन्धनं मन्त्रप्रयोगश्च विषापह । दंशनं दंशकस्याहेः फलस्य मृदुनोऽपि वा ॥ १ ॥ श्दानीमातुरिहतिनिकित्मापारिशेष्यात् विषिचिकित्मामाह श्रिरिद्यादि-श्रिरि ष्टावन्धन धमनीवन्ध , म च दरादेशादृद्धं चतुरङ्गुले । यदाह बाग्मट.—'दरा- स्योपिर वझीयादिरिष्टा चतुरगुले । चौमादिर्मिवल्कलैर्ना सिद्धमन्त्रेश्च मन्त्रयेत् ' इति । दशकरयोद्देरिति दशकरतुं सपर्स्य दशन दन्तपिनतद्दयेनातिपीडनम् । एव मृदुफल-स्यापि । एतच मुदुफल-स्यापि । एतच मुदुफल-प्यापि । एतच मुदुफल-प्यापि । एतच मुदुफल-प्यापि । एतच मुदुफल-प्यापि । यद्दनत वृन्दे—'धर्तुं दंशविधी न भोगिनमसौ प्राप्नोति दष्टो यदा रम्माखयडमुखालकोमलफल दन्तैर्दशस्याशु यत् । गच्छेत् तत्क्ष्यमेव तस्य गरल तद्दृष्टवस्त्वन्तर दश नीरसता नथेच बहुधा सम्बध्य इस्तेन वै' इति ॥ १ ॥

मूलं तग्रह्णवारिणा पिवति य प्रत्यक्किरासम्भवं निष्पिष्टं श्रुचिभद्रयोगदिवसे तस्याहिभीतिः कुतः । दर्पादेव फणी यदा दशित तं मोहान्वितो मूलपं स्थाने तत्र स पव याति नियतं वक्त्रं यमस्याचिरात् ॥२॥ मूलमित्यादौ—प्रत्यिक्तरा कयटकीशिरीष । शुचिराषाढस्तस्य मद्रयोगदिवसे शुमयोगनचत्रादिशुक्तदिने पुष्यानचत्रादिशुक्ते दिने इत्यन्वयः ॥ २॥

मस्रं निम्वपत्राभ्यां खादेन्मेषगते रवौ । श्रव्देमकं न भीतिः स्याद्विषात् तस्य न संशयः ॥ धवलपुनर्नवजटया तराइलजलपीतया च पुष्यत्ते । श्रपहरति विषधरविषोपद्रवमासंवत्सरं पुंसाम् ॥ ३॥ मस्रमिलादि—मस्रगुडक्मेक, निम्बस हे पत्रे, वृतीया सहार्थे । मेषगते रवौ वैशाखे । धवलेलादि-स्पष्टम् ॥ ३॥

गृहधूमो हरिद्रे द्वे समूलं तग्हलीयकम् । श्रिप वासुकिना दष्ट पिवेद्दिधघृताप्लुतम्। कुलिकामूलनस्येन कालद्दोऽपि जीवति ॥ ४॥

गृहपूम इत्यादी—त्वयङ्खि।यकामिति केवलतयङ्खि।यकमूलामिति वोध्यम्। तदुक्त विन्दुसारे—"तयङ्कीयकमूलन्तु भीत तयङ्कलारिया। तचकेयापि सदष्ट निर्विष कुरुते नरम्" इति । कुलिकेत्यादि—कुलिक कालाकडमेद स्वल्पफल कुडकराािय इति ख्यात.। उपदेशात् तयङ्कोदकेन नस्य कार्य्यः केचित् पान वदन्ति॥ ४॥

श्लेष्मण कर्णगूथस्य वामानामिकया कृतः। लेपो द्वन्याद्विषं घोरं नृमूत्रसेचनं तथा॥ ४॥ श्रेष्मण इत्यादि —योगलयम् । मुखस्थितश्रेष्मण इत्येक , कर्णगूथस्येति द्वितीय वामनामिकया कृत इति कानिष्ठागुलीसमोपे या श्रगुली, सा श्रनामिकत्युच्येते । वाम-इस्तस्य श्रनामिकांगुल्या कृत इत्यर्थ । नृमूलमेचन दशदेशे म्वीयमूत्रसेक । उक्त हि—''सपैदष्टप्रदेशे तु स्वयमेव विचल्लण । मूत्रयेत् तस्ल्लादेव निर्विपत्वमवाप्नु यात्" इति । श्रय तृतीय योगः ॥ ४ ॥

शिरीषपुष्परखरसे भावितं श्वेतस्पपम् । सप्ताहं संपद्यानां नस्यपानाञ्जनं हितम् ॥ ६॥

शिरीषत्यादि—वाग्मटस्य । श्वेतसर्पपिमत्यत्र मारिचानतिनिति पाँठ मरिच श्वेतमरिच शोभाश्चनवीजम् । श्रयमेव पाठश्चन्द्राटादी दृश्यत । श्रत श्वेतमपंपिमिति पाठान्तरमुक्तम् ॥ ६ ॥

द्धिपलं नतकुष्ठाभ्यां घृतक्तौद्धं चतु पलम् । श्रिप तक्तकद्यानां पानमेतत् सुखावहम् ॥ ७ ॥ द्विपलिमत्यादि—नाग्मटस्य । पट्पलीय मात्रा सर्पद्यविषये विशेषविहितलात् न दोषावहेति ॥ ७ ॥

वन्ध्याकर्कोरजं मूलं छागमूत्रेण मावितम्। नस्यं काञ्जिकसंयुक्तं विषोपदत्तवेतस ॥ ॥ वन्ध्येत्यादि—वन्ध्य फलरिहत ॥ 🗸 ॥

तिवृद्धिशल्या मधुकं हरिद्रे मिक्षप्रवर्गो लवण्डच सर्वम्। कडुज्ञिकञ्चैव विचृर्णितानि श्रेगे निद्ध्यान्मधुसंयुतानि ॥ एषोऽगदो हन्त्युपयुज्यमान पानाञ्जनाभ्यञ्जननस्ययोगै । श्रवार्थवीर्थ्यो विषवेगहन्ता महागदो नाम महाप्रभावः॥६॥

त्रिवृदित्यादि — मुश्रुतस्य । विशल्या दन्तां, काष्ठपाटला वा, विशालिति पाठे गोराचककेटी । मिन्जिष्ठावर्गो मिन्जिष्ठासिहितोऽयमेव त्रिवृद्दादिवर्ग इत्यर्थ । अन्य तु मिन्जिष्ठावर्गे पृथेगेव पठन्ति । तम्च टोकाकारैर्न न्याख्यातम् । ढल्वणस्तु "त्रिवृद्धि-राल्पे मधुक हरिदे रक्तो नरेन्द्रो लवणस्य वर्ग " इति न्याच्छे च विशल्या दन्ती, काष्ठपाटला वा, रक्त मिज्ञष्ठा, नरेन्द्र स्वर्णाद्धः, लवणवर्गो लवणपञ्चकमिति । श्रेक इति गोश्ये निदम्यादिति पचमेक स्थापयेत् । यतम् गोश्ये पचैक स्थापन सीश्रुतवन्त्रमाणयोगे तथा दर्शनात् । यथा "श्रुक्ते गवा श्रुक्तमयेण चैव प्रच्छादित पचमेषितक्ष्य" ॥ १ ॥

पीते विषे स्याद्वमनञ्च त्वक्स्थे प्रदेहसेकादिसुशीतलञ्च ॥ कपित्थमांसं ससिताचौद्रं कग्ठगते विषे। लिह्यादामाशयगते ताभ्यां चूर्णपलं नतात्॥ १०॥

पात इत्यादै।—वमनिमिति गोमयस्वरमेन मधुयुक्तेन वान्ति कार्य्या। उक्त हि—"समधुविपपीतस्य वमन गोमयाद्रस " इति । त्वक्स्ये तु विषे शातल प्रदेष्ट्-मेकादि कार्य्यम् । कापित्थेत्यादि—कपित्थस्य मास त्वगरथ्यादिरहित मध्यम् । तिद्यादित्यादी—ताभ्यामिति सिताचौद्राभ्याम्, नतादिति तगरपादिकात ॥ १०॥

विषे पक्षाशयगते पिष्पलीरजनीद्धयम्।
मिश्रिष्ठाञ्च समं पिष्ट्वा गोपित्तेन नर पिवेत्॥ ११॥
विष इत्यादी—विष्पलीद्द्य रजनीद्दयद्धः। सममिति सममाग जलेन वेषया
पानेश्वेत्याद्वः॥ ११॥

रजनीसैन्धवज्ञौद्रसंयुक्तं घृतमुत्तमम् । पानं मूलविषार्त्तस्य दिग्घविद्धस्य चेष्यते ॥ सितामधुयुतं चूर्णं ताम्रस्य कनकस्य वा । लेह प्रशमयत्युयं सर्व संयोगजं विषम् ॥ १२॥

रजनीत्यादौ--- उत्तम घत गन्यघतम् । दिग्धो विषाकशर , तेन विद्यस्य । कनकस्य वेति मारितस्य ताम्रस्य तथा मारितस्य सुवर्थस्यत्यर्थं ॥ १२ ॥

श्रद्भोठसूलिनःकाथं फाणितं सघृतं लिहेत्। तैलाक्षः स्विन्नसर्वांगो गरदोषविषापदः॥ १३॥ श्रद्भोठेलादि—श्रङ्कोठस्लकाथमेव पुन पाकात् फाणिताकार कुर्यात्॥१३॥ कटभ्यजुनशैरीयेशलुचीरिद्रुमत्वच । कषायकल्कचूर्णां स्यु कीटलूताव्रणापद्दाः॥ १४॥

इदानीं कीटादिविषचिकित्सामाह कटमीत्यादि—शैरीयो किएटो, शेलुर्वहुवार , चीरिद्रुमा वटोडुम्बरादय ॥ १४ ॥

श्रागारधूममञ्जिष्ठारजनीलवणोत्तमैः । लेपो जयत्याखुविषं कर्णिकायाश्च पातनम् ॥ यः कासमर्दनेत्रं वद्ने निचिष्य कर्णे फ्रत्कारम्।

मनुजो द्घाति शीव्रं जयति विषं वृश्चिकानां स ॥ १४॥

शागाग्ध्नेलादौ—क्षिका कीटवन्त्रशुद्ध । य स्लादी—नेत्र मून्न,
निनिष्य सञ्चय ॥ १४॥

वंशे श्रामणिविधिना बृश्चिकविपहृत् कुठेरपाटगुद्धिका । पुरधूपपूर्वमर्कव्छटमिव पिप्ट्त्रा कृतो लेप ॥ १६ ॥ जीरकस्य कृतः कल्को घृतसैन्धवसंयुत । सुस्नोप्णो वृश्चिकात्तीना सुलेपो वेदनापदः ॥ १७ ॥

दशः इलादि—दमे मुश्चिकदमे । कुठरपादगुढिका पर्णाराम्लकृतगुटिका । युम्पृपृक्तमिति गुरगुलुना पूर्वे भूपयित्वा श्रक्षपत्रकृतो लेप. ॥ १६ । १७ ॥

कुंकुमकुनरीकर्करपलहरिताले कुसुम्भसिमिलितैः। इतगुडिकाभ्रामणतो विद्यगाधाशरटादिविपजित्॥१८॥ श्रद्धोठपत्रधूमो मीनिवपं भटिति विघट्टयेच्छुद्गी। गोधावरटीविपमिवालेपेन कुढकराणिजटा॥१६॥

गोधादिविषिविकिन्सामाह कुकुमेखादि । कुनदी मन शिला; कर्कटकम्य पलन नामन कुनुन्म कुनुन्भपुण्यम् । गरदादीत्यादिशम्दादजननामिकाञ्येष्ठाप्रमूर्नाना ग्रहणम् ॥ १६ ॥

कनको हुम्बरफलिमच नग्रह्जलािपष्टं पीतमपहरित । कनकटलद्वच चृतगु डहुग्धपलेंकं धुनां गरलम् ॥ २० ॥ कुनकुरिविधिकित्मामाह कनकेत्यादि—कनको धुन्तूरं, रहुन्दरं यश्चोहुन्द-म् . नयो फनम् । कनकटलेत्यादि योगान्तरम् । कनकदलद्रवो धुस्तूरपत्ररम । एषा पन मिलित्वा ॥ २० ॥

लेप इव भेकगरलं शिरीपवीजै स्नुहीपय सिक्तै। हरित गरलं व्यहमशिताङ्कोठजटा कुष्टसिमिलिता॥ मरिचमहापधवालकनागाईमिजिकाविपे लेपः। लालाविपमपनयतो मुले मिलिते पटोलनीलिकयोः॥ सोमवरको उश्वकर्णश्च गोजिह्ना हंसपाद्यपि।
रजन्यौ गैरिकं लेपो नखदन्तिवपापह ॥
वचाहि हुविडङ्गानि सन्धवं गजिपप्पली।
पाठा प्रतिविपा व्योषं काश्यपेन विनिर्मितम्॥
दशाङ्गमगदं पीत्वा सर्वकीटविषं जयेत्।
कीटदप्रकियाः सर्वाः समानाः स्युजेलोकसाम्॥ २१॥

भेकिविषितित्सामाएं लेप इत्यादि—श्रशिता भित्ता। क्षार्थविषया कल्कविषया वा योज्यमेनत्। लालाविषमिति लालेव विष लालाविषम् । सोमवल्क कद्फलम्, प्रश्वकर्यः शालभेद , गर्दभायटो वा। पीत्वेति काथविषया कल्कविषया वा योज्यम्। प्रतिदेशेन जलौकश्चिकित्सामाएं कीटदष्टेत्यादि ॥ २१ ॥

## मृतसञ्जीवनोऽगदः

पृक्षासवस्थौणेयकां त्तीशैलेयरोचनातगरम् ।
ध्यामकं कुद्धुमं मांसी सुरसाश्रैलालकुष्ठप्रम् ॥
वृहतीशिरीपपुष्पश्रीवेष्टकपद्मचारटीविशालाः ।
सुरदारुपद्मकेशरशावरकमन शिलाकौन्त्यः ॥
जात्यकपुष्पस्वपरजनीद्वयदिंगुपिष्पलीलात्ताः ।
जलमुद्गपर्णीमधूकमदनकफलिसन्धुवाराश्च ॥
श्मपाकलाध्ममयूरकगन्धफलीलाद्गलीविडङ्गाश्च ।
पुष्येणोद्ध्रत्य समं पिष्टा गुडिका विधेषा स्युः ॥
जन्तुविषद्मो जयकृद् विषमृतसञ्जीवनो ज्वरनिहन्ता ।
व्रेयविलेपनधारणधूमश्रहणैश्रहस्थश्च ।
भृतविजयन्त्वलदमीकामण्यमन्त्राग्न्यशन्यरीन् हन्यात् ।
दु खप्नस्रीदोषानकालमरणाम्बुचोरभयम् ॥
धनधान्यकार्यसिद्धिश्रीपुष्ट्यायुर्विवर्द्धनो धन्य ।
मृतसञ्जीवन पप प्रागमृताद् ब्रह्मणाभिहित ॥ २२ ॥
इति विषचिकित्सा ।

पृक्षेत्यादी—स्थीयेय ग्रन्थिपर्णम्, काची सौराष्ट्रमित्तका, ध्याम गन्धतृयाम्, स्रुरमाग्र निर्गुयर्डामञ्जरी, श्राल हरितालम्, कुष्ठश्नमेडगज , श्रीवेष्ठको नवनीत-द्योटी, पद्मचारटी कुम्भारुलता, पद्मस्य केशर किञ्जल्क , शावरको लोध , कौन्ती रेखुका । जात्यर्कपुष्पमिति जात्यर्कयो पुष्पम्, जल वालकम् , निर्गुयख्याकार शुक्रपुष्प सिन्धुवार , शम्पाक श्रारग्वधस्तस्य फल ग्राह्मम् । लोध लोहितलोधम् , मय्रोऽपामार्ग , गन्धफली प्रियगु , नाकुली राखा । पुष्ये पुष्यानचत्रश्रक्रकाले । जन्तव क्रिमय , कार्भय परद्रोहोपायः , मन्त्रोऽभिचारमन्त्र । श्रशनिवेज्रम् , स्वीदोषा सीभाग्यार्थकृतगरादिदोषा ॥ २२ ॥

इति विष-चिकित्साविवृति ।

# अथ रसायनाधिकारः

#### यज्जराव्याधिविध्वंसि भेषजं तद्रसायनम् ॥ १ ॥

भेपज तावद् द्विविधम्--- आतुरहित सुस्याहित इ । सुरथहितमपि दिविध रमायन-वाजीकरणभेदात् । श्रत्रातुरहित तावदुक्तमेव मम्प्रति सुस्थहित वाच्यम् ; तन्नापि वाजीकरणापेचया रसायनस्य वर्षसङ्ख्यायुष्ट्वात् महाफलत्वाच प्रथमतो रमायनमाइ यदिखादि--जरानिध्वति जरारूपव्याध्युत्पत्तिप्रतिवन्धकम् । प्रतेन विशिष्टरसजनकत्वे सति जरानिवर्त्तकत्व रसायनत्विमिति लच्च स्चितम् । श्रत्र रसशब्देन रमकार्य्यत्वात् सप्तानामव धातूना ग्रहणम्, अत्राचिवशेषणम्त्रिवेशात् कपालरञ्जनादिषु नातिच्याप्ति । वृद्धो न रसायनाधिकारी, वच्यति-पूर्वे वयमी-त्यादि । अन्यत्राप्युक्त 'जरापक्षरारीरस्य व्यर्थमेव रमायनम्' इति । तत् कथ जराप्र-शमकत्व रसायनमिति १ नेव जराशब्देनात्र श्रकालपलित कालिकछ भाविपलित-मुच्यंते, श्रतो नोक्षो दीप । यत्तु च्यवनप्राशादी सुवृद्धोऽभूत पुनर्शुवेति, तत्र न वृद्धस्यापि रमायनप्रयोगाद् जराप्रशमनमुक्तम् , तत्तप प्रभावेखानुगृहीतस्य फलम्, न रसायनमात्रस्येति । सुदान्तस्त्वाह्---'रमायनम्च सुस्यातुरविषयम् । बरा च व्याधिश्च तिद्वध्वसितु शील यस्य तद्रसायनम्। जरा हि मृदुत्वेन, न पूर्वापरिवरोध अकालजराहरत्वादसायनस्य । मेषजपदेन ध्यानमन्त्रादिक व्यव-चिद्रनत्ति । क्वेरेति ज्वरातिसारादिभेषज वाजीकरण व्यवच्छिनत्ति । व्याधीति कपालरञ्जनकृष्णीकरणादिकञ्च व्यविच्छनत्तीति ।। १ ॥

## पूर्वे वयसि मध्ये वा शुद्धकायः समाचरेत्॥ २॥

पूर्व इत्यादि — पूर्व इति यौवनप्रवेश एव । मध्य इति यौवनशेष । वाल-वृद्धौ तु रसायनाविषयौ भेषजवीर्व्यासहत्वात् जरापकशरीरत्वाच । शुद्धकाय इति वमनविरेचनाभ्या शुद्धशरीर ॥ २ ॥

> नाविशुद्धशरीरस्य युक्षो रासायनो विधिः। न भाति वासासि म्लिप्टे रङ्गयोग इवार्पितः॥३॥

श्रविशुद्धे तथा फल नास्तीति मत्वाह श्रविशुद्धशरिस्येत्यादि-सुश्रुतस्य । युक्त इति प्रयुक्तः । स्लिष्ट इति मालेने ॥ ३ ॥

गुडेन मधुना शुष्ट्या कृष्ण्या लवणेन वा।
द्वे द्वे खादन् सदा पथ्ये जीवेद्वर्षशतं सुखी॥
सिन्धृत्थशर्कराश्रगठीकणामधुगुडै क्रमात्।
वर्षादिष्वभया सेन्या रसायनगुणैषिणा॥ ४॥

प्रथमतः हरीतकीरसायनमाह सिन्धूत्येत्यादि—वर्णासु हरीतकी मा ६, सैन्धव मा २ गिलनीया। शरदि हरीतकी मा ५, शर्करा मा ४ खाधम्, शित-अल पेयम्। हेमन्ते हरीतकी मा ३, शुष्ठी मा २, तप्तजल पेयम्। शिशिरे हरीतकी मा ३, पिप्पली मा २, तप्तजल पेयमिति ॥ ४ ॥

त्रैफलेनायसीं पत्रीं कल्केनालेपयेत्रवाम् । तमहोरात्रिकं लेपं पिवेत् चौद्रोदकाप्लुतम् ॥ प्रभूतस्नेहमशनं जीर्गे तिसान् प्रयोजयेत् । श्रजरोऽरुक् समाभ्यासाजीवेचापि समाः शतम् ॥४॥

त्रैफलेनेत्यादी—आयसीं पत्रीमिति कान्तादिलौइपत्रीम्, नवामित्यनेन निर्मलत्वमिष सच्यते । कल्केनेति कर्षमितेन । अम्लापिते त्विद कियत इत्याहुर्षृद्धा. । केचित् उदकस्थाने ष्टतमिति पठन्ति ॥ ५ ॥

> पञ्चाष्टौ सप्त दश वा पिष्पत्तीः चौद्रसर्पिषा। रसायनगुणान्वेषी समामेकां प्रयोजयेत्॥ ६॥

पद्माष्टावित्यादि—संप्तेति छेद. । सख्यान्यतिकमेख नानुक्तिपिष्पलीनामुप-योग स्वयतीति चक्र. । यथपि श्रीथि द्रन्याथि नात्युपयुक्षीत पिष्पली झार लवणिमिति, तथापि इह द्रव्यान्तरसयुकाना पिप्पलीनामस्यासी न विरुद्ध । किंवा जक्तिपिप्पल्यस्यासव्यतिरेकेण जत्सर्गापवादन्यार्थानेपेघी छेय । रसायनगुणाश्चरकी-क्षषृष्टण्त्वादय ॥ ६ ॥

तिस्रस्तिस्रस्तु पूर्वाह्वे सुक्त्वाग्रे भोजनस्य च ।
पिप्पल्य किंशुकत्तारभाविता घृतभर्जिताः ॥
प्रयोज्या मधुसम्मिश्रा रसायनगुणैपिणा ।
जेतुं कासं त्त्रं शोपं श्वास हिक्का गलामयम् ॥
श्रशांसि श्रह्मणीदोपं पागृहतां विपमज्वरम् ॥
वैस्वर्य्यं पीनसं शोथं गुल्मं वातवलास्कम् ॥ ७ ॥
तिस श्लादौ—किंशुकः पलाश । चारमिति चारोदकम् । मावित इति
सप्ताहम् ॥ ७ ॥

जरणान्ते अयामेकां प्राग्मकाद् हे विभीतके।
भुक्तवा तु मधुसिंपभ्यां चत्वार्घ्यामलकानि च ॥
प्रयोजयेत् समामेकां त्रिफलाया रसायनम्।
जीवेडर्पशतं पूर्णमजरोऽन्याधिरेव च ॥ = ॥

जरणान्त इति प्रात । प्राग्मकादिति मोजनादी । मधुसर्पिर्म्यामित्यम-यादिभिस्त्रिभिरेव सम्बध्यते ॥ प्राः

मग्ह्रकपगर्याः खरस प्रयोज्य जीरेण यप्रीमधुकस्य चूर्णम् । रस्रो गुङ्क्यास्तु समूलपुष्प्याः कल्क प्रयोज्य खलु शह्वपुष्प्या ॥ श्रायुःप्रदान्यामयनाशनानि वलाग्निवर्णस्वरवर्द्धनानि । मध्यानि चैतानि रस्रायनानि मेध्या विशेषेण तु शह्वपुष्पी ॥६॥

मगहूकपर्या इत्यादिना राह्मपुष्या दत्यन्तेन चतुरो योगानाह—समूलपुष्या इति गुहूच्याः राह्मपुष्या वा विशेषणम् ॥ १ ॥
पीताश्वगन्धा पयसार्द्धमाजं घृतेन तेलेन सुखाम्बुना वा ।
छशस्य पुष्टि वपुपो विधत्ते वालस्य शस्यस्य यथाम्बुवृष्टिः ॥
धात्रीतिलान् भृष्करजोविमिश्रान् ये भन्नयेयुर्भेनुजाः क्रमेण ।
ते कृष्णकेशा विमलेन्द्रियाश्च निर्व्याध्यो वर्षशतं भवेयुः॥

वृद्धदारकमूलानि ऋत्णचूर्णानि कारयेत्। शतावर्था रसेनैव सप्तरात्राणि भावयेत्॥ श्रक्तमात्रन्तु तच्चूर्णं सर्पिपा सह भोजयेत्। मासमात्रोपयोगेन मतिमान् जायते नरः। मधावी स्मृतिमांश्चेव वलीपलितवर्जितः॥ १०॥

पितित्यादि—नाग्भटस्य । श्रम्थगन्धायाश्चूर्णं पयसा पिते, छतेन वातिषत्ते, तंलेन वाते, उष्णोदकेन वातकफ शत्याद्ध । धाश्रीत्यादी—तिलाश कृष्णाः प्रशम्नाः । मृद्धरज इति निर्देशात् सान्तो मृद्धरज शब्दो मृद्धराजवचन उश्लीयते । क्रमेणिति रसायनक्षमेख ॥ १०॥

हस्तिकर्णरजः खादेत् प्रातहत्थाय सर्पिपा।
यथेप्राहाराचारोऽपि सहस्रायुर्भवेन्नरः॥
मेघावी वलवान् कामी खीशतानि वजत्यसौ।
मधुनात्युप्रवेगः स्याद् वलिष्ठ खींसहस्रगः।
मन्त्रश्चायं प्रयोक्षव्यो भिषजा चाभिमन्त्रेणु॥

"ॐ नमो महाविनायकाय श्रमृतं रत्त रत्त मम फलसिाईं देहि रुद्रवचनेन स्वाहा।"

धात्री चूर्णस्य कंसं स्वरसपरिगतं सौद्रसर्पिः समांशं कृष्णामानीसिताएपसृतयुतिमदं स्थापितं भस्मराशौ । वर्पान्ते तत् समञ्जन् भवति विपत्तितो रूपवर्णभभावै-निव्योधिर्बुद्धिमेधास्मृतिवलवचनस्थैर्थसन्वैरुपेतः ॥११॥

हस्तिकर्णेति—हस्तिकर्णे हस्तिकर्णपलाशम्लम् । ॐ नम इत्यादिमन्त्रो हस्तिकर्णेत्यादियोगस्यैवामिमन्त्रणाय । भाशीत्यादौ—कस चतुःपष्टिपलानि । स्वरमपरिगतिमिति श्रामलकफलमहस्ररसेन भावितम् । मावना च एकविंशतिवारम् । चौद्रमि समाशमिति भाशीचूर्णापेचया प्रत्येक समभागमित्यर्थ । तेन मधुष्टतयो प्रत्येक चतु पष्टिपलानि । मानीत्यधौ पलानि । सिताया शर्कराया श्रष्टौ प्रस्तानि पोडशपलानीत्यर्थ. । स्थापित भस्मराशाविति प्राष्ट्रडारम्म इति शेष.। वर्षान्ते प्राष्ट्रदकालानेत शरदीत्यर्थ. ॥११॥

गुडूच्यपामार्गविडद्गशिद्धनीवचाभयाकुष्ठशतावरी समा। वृतेन लीढा प्रकरोति मानवं त्रिभिर्दिनै स्रोकसहस्रधारिणम् १२

गुडूचीत्यादाँ—शङ्घिनी शङ्घपुष्पी । क्राचित् वचास्थाने वृषेति पठ्यते, किन्तु-वाग्मेट वचेव पठिता ॥१२॥

## व्रह्मीघृतम्

समूलपत्रामादाय ब्रह्मी प्रचार्य वारिणा। उदुखले चोदियत्वा रसं वस्त्रेण गालयत्॥ रसे चतुर्गुणे तस्मिन् घृतप्रस्थं विपाचयेत्। श्रौपधानि तु पेष्याणि तानीमानि प्रदापयेत्॥ हरिद्रा मालती कुष्ठं त्रिचृता सहरीतकी। पतेपां पत्तिकान् भागान् शेपाणि कार्पिकाणि तु॥ पिप्पल्योऽथ विडङ्गानि सैन्धवं शर्करा वचा । सर्वमेतत् समालोङ्य शनैर्मृद्वश्चिना पचेत् ॥ एतत् प्राशितमात्रेण वाग्विशुद्धिश्च जायते । सप्तरात्रप्रयोगेण किन्नरैः सह गीयते॥ श्रर्द्धमासप्रयोगेण सोमराजीवपुर्भवेत्। मासमात्रप्रयोगेण श्रुतमात्रन्तु घारयेत्॥ इन्त्यप्रादश कुष्टानि श्रशांसि विविधानि च। पञ्च गुल्मान् प्रमेहांश्च कासं पञ्चविधं जयेत्॥ वन्ध्यानाञ्चेव नारीणां नराणामल्परेतसाम्। घृतं सारस्वतं नाम वलवर्णाग्निवर्द्धनम् ॥१३॥

मक्षीष्टत स्पष्टम् ॥१३॥

कासश्वासातिसारज्वरिपडककटीकुष्ठकोठप्रकारान् मूत्राघातोदरार्शं श्वयथुगलिशर कर्णेश्रलाव्तिरोगान् । ये चान्ये वातिपत्तव्यतजकफकृता व्याधयः सन्ति जन्तो-स्तांस्तानभ्यासयोगाद्पनयित पयः पीतमन्ते निशायाः॥

## व्यङ्गवलीपलितझं पीनसवैस्वर्य्यकासशोथझम् । रजनीत्त्रयेऽम्बु नस्यं रसायनं दृष्टिजननञ्च ॥१४॥

कांसत्यादौ-पिडक पिडका। पय इति दुग्ध पानीय वा, सुश्रुते प्रात चीर-पानस्य जलपानस्यापि दशितत्वात्। यथा---"शीतोदक पय चौद्र सींपीरेत्येकशो दिश । त्रिश समस्तमथवा प्रावकृत स्थापयेद्वय ।" प्रागिति प्रात । श्रत्र चतु-ग्रैणजलम्यतगव्यदुग्धस्य धारोष्णस्य वात्र द्वित्रिकर्षपत्नादि पोडशपत्न यावदित्यर्थ॥१४

## साध्यसाधनपरिमाग्रम्

नागार्जुनो सुनीन्द्रः शशास यह्नोहशास्त्रमतिगहनम् । तस्यार्थस्य समृतये वयमेतद्विशदात्तरैर्वूम् ॥ मेने सुनिः स्वतन्त्रे यः पाकं न पलपञ्चकादर्वाक् । सुबहुपयोगदोषादूद्ध्वञ्च पलत्रयोदशकात् । तत्रायसि पचनीये पञ्चपलादौ त्रयोदशपलकान्ते ॥ लोहात् त्रिगुणा त्रिफला श्राह्मा षड्भिः पलैरधिका । मारणपुटनस्थालीपाकास्त्रिफलेकभागसम्पाद्याः ॥ त्रिफलाया भागद्वितयं श्रहणीयं लौहपाकार्थम् ॥ १४॥

यधिप संवरसायनश्रेष्ठत्वात् प्रथमभेवामृतसारलौद्दाभिधानमुचित तथापि स्वीकटाद्दन्यायेन रमायनान्तराययभिधाय वहुप्रपञ्चतया सम्प्रत्यमृतसारलौद्दमाद्द नागार्जुन इत्यादि—तत्र मारणादिविधेरप्रशस्तत्वेन प्रथम तदिभिधान वक्तुमुचित तथापि दुरूद्दप्रमेयत्वेन साध्यसाधनपरिमाण्यविधिवेकच्य । तत्र कियन्मानलौद्द पक्तव्य इत्याद्द मेन मुनिरित्यादि—पलपञ्चकादवीगित्यत्र सस्कारस्यालपकालच्या-पक्तया बहुगुण्यत्व न स्यादित्येव हेतुक्त्रेय । ननु पञ्चपलादर्वाङ् न पक्तव्य , उक्तञ्चापि पलाष्टकादिति योगरत्नाकरेऽभिद्दित्यति श्वाह्य स्वतन्त्र इति—स्वतन्त्रे स्वीयशास्त्रे एव नान्यत्र, तेनाशक्तौ न्यूनमानमिप शास्त्रान्तरोक्त न विरोधमावद्दतीति माव । लोद्दसस्कारसाधनार्थे काथपरिमापामाद्द तत्रायसीस्यादि—पचनीये-प्रयत्ति पञ्चपलादित्रयोदशपलान्तलौद्दे यावत्परिमाण्या लौद्द पक्तु शक्य तावत्परिमितलोद्दापेच्या मिलिता त्रिगुणा पट्पलैरिधका प्राह्मा, तेन पञ्चपले लौद्दे साध्ये लौद्दायेच्या त्रिगुण्या पद्पलैरिधका प्राह्मा, तेन पञ्चपले लौद्दे साध्ये लौद्दायेच्या त्रिगुण्या पद्पलैरिधका प्राह्मा, तेन पञ्चपले लौद्दे साध्ये लौद्दायेच्या त्रिगुण्या पद्पलैरिधका प्राह्मा, तेन पञ्चपले लौद्दे साध्ये लौद्दाया त्रिगुण्या पद्पलैरिका प्राह्मा त्रिगुण्या पद्पलैरिका प्राह्मा, तेन पञ्चपले लौद्दे साध्ये लौद्दाया त्रिगुण्या पद्पलेरिका प्राह्मा, तेन पञ्चपले सिद्द मिलित्वा

एकविशतिपतानि भवन्ति । एव सापतादिष्यपि बोध्यम् । ननु तीष्ठस्य तायन्मान्यग्रथालीपाकपुटपाकनिष्पत्तिपाका सन्ति, ननश्च कुन्न कियद् विकलापिनाणम् द्रत्यती विभन्त्य विपत्तापिनाण दर्शयति मारणपुटोरगादि—लीष्टगेषस्य प्राथिपुन्णविफलादस्य भ्रुवपट्पलनिष्दिमेव विभाग दृत्वा भागद्वय प्रधाननिष्यिपाकार्थमन्वस्थापम्, अपरेकभागेन लीष्टगारणस्थालीपाकपुटनानि कन्त्रयानीस्यर्थ, ॥ १५ ॥

## सर्ववाय पुटनाद्यंकारो शगवसंख्यातम्। प्रतिपलमेव त्रिगुणं पाथः काथार्थमादेयम् ॥ १६॥

तदि हो हमारणपुरनस्थाक्षापानाधगृहांनिकभागति । नाहाधार्यं कियजन देय मित्याह मर्वत्रेत्यादि—जातिराण्डा-मारग्रथालापार्यः शर्मः । मर्योति पण्ण्यान्धित्रयोदणपानान्तिनित्तिलमाने । पुरनाहर्धकाण इति पुरनमाग्यान्धान्धाकार्धगृहीत-त्रिक्तंक्षकार्या प्रतिपत गर्थाये विश्वच वारि नेयान्तियः । तत्र पण्ण्यपलनीहपुटा-दिश्रयार्थम्यापिनशिक्तंकन्तामः मसपना भवति, तत्र जलकविद्यानिरास्ता इत्यर्थः । एव पर्यनादिलीहेऽपि त्रिक्तंकमागा कद्या पलादय , तत्र जलक्यापि चतुर्विणित-जस्तावादय उनया ॥ १६॥

सप्तपतादी भागे पञ्चदशान्ते अभमां शरावेदच ।

प्राधिकादशकान्तेरिधकं तहारि कर्त्तव्यम् ॥

नत्राष्ट्रमो भाग श्रेपः काथस्य यत्तत स्थाप्य ।

तेन हि मारणपुटनस्थानीपाका भविष्यन्ति ॥ १७ ॥

विन्तु त्रिपुरातया ऋषिकमि जल देय, तद्रथंमाए सप्तपनादावित्यादि—
अस्याथं —पाचनायपन्चपलादिलीएमारम्य त्रयोदगपलान्नगीएपेलया त्रगुर्यवेन
भूवपट्पलाधिकनया फलनयम्यैकविरानिपलरूप चतुर्विर्गानिपलरूप मान वा तम्य
नृनीयमांग पुटनादिकमत्रय थंम्यापिन मप्तपलाष्टपलादिकमगण्यनया लीएत्रयोददापलान्नन त्रिफलाया पण्चरशपलानि मवन्ति, तेषा काथ प्रनिशरावमख्यया यद्द त्रिगुण वारि देय तद् निफलानप्तपलादारम्य पञ्चद्रगपल्पर्यन्त क्रमेण जलशगःवत्रयमारम्य एकारशप्यंन्त जलशराविराधिक विधयमित्यन्वय । तेन मप्तपले
त्रिफलाद्रव्य जलशरावत्रयमधिकम्, अष्टपले च शरावचतुष्टयम्, एव क्रमेण प्रयोदगपलान्न श्रेयम् । पनद्रचन म्पष्टीकरणार्थं पत्रिका लिख्यते—लीएपल ४, मार्गादिकमंत्रयार्थस्थापिनत्रिफलकमाग पल ७, पाथ श २१, श्रिषक रा ३, मिलिला

श २४। एव पट्पललोहमारणादिकमंत्रयार्थस्थापितत्रिफेलकमाग पल म, पाथ रा २४, अधिक श ४, मिलित्वा रा २८। सप्तप्तलीष्टमारणादिकर्मत्रयार्थस्थापि-तित्रिफलेकभागपल ६, पाथ शा२७, श्रिषिक शा५, मिलित्वाश ३२। अष्ट पललों हे त्रिफलेकमाग पल १०, पाथ श ३०, अधिक रा ६, मिलित्वा श ३६। नवपलली हे त्रिफलेकभाग पल ११, श ३३, श्रिधिक श ७, मिलित्वा श ४०। दरापललीहे त्रिफलैकमाग पल ८२, पाथ श ३६, ऋधिक रा ८, मिलित्वा रा ४४ । एकादरापललाँ हे त्रिफलेकमाग १३, पाथ रा ३६, म्रधिक रा ६, मिलित्वा रा ४८। दादशपललाहे त्रिफलेकमाग पल १४, पाथ रा ४२, अधिक रा १०, मिलित्वा श ५२। त्रयोदशपललीहे त्रिफलैकमाग पल १५, पाथ श ४५, अधिक रा ११, मिलित्वा श ५६ । इदानीमेतज्जल काध्यमान कियदवशिष्टामित्य। ह तत्रेत्यादि — तत्रेति त्रिफलैकमागस्य काथार्थजले । तेन पञ्चपललीहे त्रिफलेकमाग-काथार्थे जलशराव २३, शेष श ३। एव पट्पललोहे त्रिफलाकाथार्थ जल श २८, रोप सार्द्धरारावत्रयमित्यादि शयम् । यत्नत इति--- तृखधान्यादिनिवारखार्थं न्यूना-थिकतापरिहारार्थं व्या जता हि योगरत्नाकरे — काथन मन्द्रपाकेन विक्षमान्य भनेद् ध्रुवम् । काथस्याधिकपाकस्य मन्दमा चच्चते फलम्" इति । हि हेती, मारणपुटनादि महत् कर्मत्रय तेन काथेन कर्त्तन्यमस्ति, तेन तत्र यसत कर्त्तन्य इत्यर्थः । नतु पक्तस्मिन् दिने मारणादिकमेन्नय कर्त्तुमशक्यम्, यदि पुनरेकस्मिन् दिने मारणम्, अपरैदिने पुटनादिक क्रियते, तदा काथस्य पर्य्यापतत्वनाम्लत्व स्यात्। नस्य, प्रत्यह तत्काथस्य उण्णीकर्णात् नाम्लता । यथि तापादल्पचयित तदि स्ट्मत्वात सक्तान्ता।धिकरवाच तन्न दोपमावहति । एवेमव वृद्धा श्रपि व्यवहरान्ति । लौहरा।स्त्रेऽप्युक्त पथ्याभिकेडकाश्मिमीक्षिकलेपो निष्टन्त्यया, सुतराम्। पर्य्युपित, परिशोषाद् प्राधा पटाद् गलित " इति । मध्यदत्तदेवस्तु त्रिफलायास्तृतीयभागमपि त्रिधा समभागन विभज्य मार्गापुटनस्थालीपाकरूपकर्मत्रयार्थकाथ प्रत्यहमेव कार्य्य इत्याह ॥ १७ ॥

पाकार्थे तु त्रिफलाभागद्वितये शरावसंख्यातम्।
प्रतिपलमम्बु समं स्याद्धिकं द्वाभ्यां शरावाभ्याम् ॥
तत्र चतुर्थो भाग शेषो निपुणे प्रयत्नतो प्राह्यः।
प्रयस पाकार्थत्वात् स च सर्वसात् प्रधानतम ॥
पाकार्थमश्मसारे पञ्चपलादौ त्रयोदशपलान्ते।
दुग्धशरावद्वितयं पादैरेकादिकैरधिकम् ॥ १८॥

इदानीं प्रधाननिष्पत्तिपाकार्थस्थापितित्रिफलामागद्वयस्य काथविधिमाह पाकार्थे त्वित्यादि-पानार्थ इति प्रधाननिष्पत्तिपानार्थे, त्रिफलामागद्वितय इति पूर्वे।करीत्या लै।हपञ्चपलादौ त्रयोदरापलान्ते क्रमेख त्रिफलाया मागद्दय चतुर्दरापलपोटरापलाष्टा-दरापलादयास्त्रिरात्पलान्ता भवन्ति । तत्र त्रिफलाया प्रतिपल एकराराव जल दातव्यम् , किन्तु सर्वत्रैव शराबद्धयमधिक भुवत्वेन देयम् , तेन त्रिफलायाश्चतुर्दशपले षोडरा वारिशरावा काथार्थ देया, पोडरापले अष्टादशजलशरावा इत्यादिक्रमेण वोद्धन्या । म च काथः कियदवशिष्ट स्थाप्य इत्याह तलेत्यादि-प्रयत्नतो प्राद्य इत्यक्ष हेतुमाह अयम इत्यादि-चतुर्थावशिष्टकाथस्य निधित्तकमप्रधाननिष्यतिपा-कार्थत्वादित्यर्थ । स चेति निष्पत्तिपाक । मर्वस्मादिति मारणपुटनादे. । प्रधान-निष्पत्तिपाकार्थ हि लौहे यथा त्रिफलाकाथा दायते तथा दुग्वमि, तच दुग्ध पञ्चपलादित्रयोदरापलान्तलीहेषु कियन्मान देशमित्याह पाकार्थमित्यादि-श्रत्र एक श्रादिर्येषा पादाना रारावचतुर्थाराना ने पादद्वयत्रयादय एकादिका पादा, तैरिधक दुग्धरारावद्वय पुटनान्तेऽरमसारे लौहचूर्ये पञ्चपलादित्रयोदरापलान्ते यथाक्रम पर्कन्यभित्यर्थ । तेन पन्चपललं।हे पक्कचे मित सपाददुग्धशरानद्वयम् । पट्पेल तु पादद्वयाधिक दुग्धशरानद्वयम्। सप्तपेल पादलयाधिक दुग्धशरानद्वयमित्या-दिकोमण स्रयोदशप नपर्य्यन्तमुन्नयमिति । १८॥

## पञ्चपलादिकमात्रा तदभावे तद्तुसारते। प्राह्यम् । चतुरादिकमेकान्तं शक्तावधिकं त्रयोदशकात् ॥ १६॥

श्रथ लौहस्य पञ्चपलादिमात्राकरणे यदि शिक्तनीस्ति तदा पञ्चपलादनीगिष एकपलादिचतु पलपर्यन्त लौहपाकः कर्चन्य, तथा यथाराक्षिमम्मव त्रयोदराप-लादुपर्य्यपि चतुर्वरापलादिलौहस्य पाक इत्यर्थमाह पञ्चपलादित्यादि—चतुरादिक-मेकान्तमिति चतुर्विद्यकम् । नन्नेव सत्येकपलादिचतु पलान्ते लौहे तथा त्रयोदरापलाद्यं ज्व चतुर्दरापलादौ लौहे जारणादिकमंत्रयार्थम्, तथा प्रधानानिष्पत्तिपा-कार्थन्च चतुर्दरापलादौ लौहे जारणादिकमंत्रयार्थम्, तथा प्रधानानिष्पत्तिपा-कार्थन्च कीट्टरा काव्यत्रिफलाया मान ग्रहण्यम्, एतत्काथार्थं जलदान वाकिट्टराम्, स्थाप्यः रोषो वाकित्र्रा, प्रधाननिष्पत्तिपाकार्थं दुग्धदान वाकीद्र्रा तदर्थमाह तदनुसारतो प्राह्मा इति—पञ्चपलादिलोहमारणाद्यक्तकाथादिदानानुमारत इत्यर्थः। इदानी तदनुसारत इत्यस्य विवरणाय पत्री लिख्यते.—तत्रैकपले लौहे मारणादिक्तमंत्रयार्थं भ्रुवपट्पलसहितित्रिफलायास्तृतीयमागे पलत्रय भवति, प्रतिपलञ्च जलरारावत्रयगुद्धिक्का, ततस्तदनुमारात् प्रतिपलञ्च जलरारावत्रेगुण्यात् नव

जलशरावा भवन्ति । तथा सप्तपलादौ भाग इत्येनन त्र्यादिशरावे-रिधकत्वमुक्तम् अतस्तदनुमारात् पञ्चपलादनागिपि क्रमेख पाददय हासयेत्। तेनैकपललौहस्य मारखादिकर्मत्रयार्थं गृहीतत्रिफलायास्तृतीयभागे श्रपरोऽपि जल-शराव एको ध्रुवत्वेन देयो भवति, अत पूर्वोक्तनवजलशराविमिलित्वा दश शरावा इति । तथा दिपललौहे कमत्रयार्थं ध्रुवपट्पलसाहितात्रिफलायास्त्तीयो भाग पल-चतुष्टयो भनीत । प्रतिपलन्च शरावत्रेगुरयात् द्वादश जलशराना , तथा सप्तपलादी भाग इति वचनानुसारेखापरोऽपि पादद्वयाधिकजलशरान एको ध्रुवत्वेन देयो भवति, श्रतो मिलित्वा सार्द्धत्रयोदश जलशरावा भवान्ता। एव त्रिपललौहे कर्मत्रयार्थ ध्रव षट्पलसहितित्रिफलायारतृतीयभागे पञ्च पलानि भवन्ति, प्रतिपलञ्च जलशरावत्रै-गुर्यात् पन्चदश जलशरावा , सप्तपलादौ भाग इति वचनानुसारादपरमि जलशराबद्वयमाधिक ध्रुवत्वेन देयम् , तेन मिलित्वा सप्तदश शरावा । चतु.पल-लौहेऽि कर्मत्रयार्थं ध्रवषट्पलसहितित्रिफलायास्तृतीयमागे पलषट्कम्, प्रतिपलञ्च जलशरावत्रैग्रययादष्टादश जलशरावा , सप्तपलादौ भाग इत्यनुसारादपरमि पाद-द्याधिकजलशरावद्वय ध्रुवत्वेन देय मवति, तेन मिलित्वा जलस्य सार्द्धविंशतिशरावा भवन्ति । पन्चपलादिलोहे यत् वाथादिमान तत् पूर्वमेव विवृतम् । त्रयोदशपला-दुपरि चतुर्दशपलादौ त्र्याधेकादशकान्तैरित्यनुसारात् पूर्वापेचया शरावेखैव जलस्य षृद्धि कर्त्तव्या, काथस्याष्टमारा राष , एव सर्वत्रेव । प्रधाननिष्पत्तिपाकार्थमपि एकपललौहे च त्रिफलाया भागद्वये पट् पलानिः, प्रतिपलमम्बुसम स्यादित्युकेश्व विफलाया काथार्थम्, जलस्य षट् शरावा, ते च द्वास्या शरावाभ्यामाधिकाः कर्त्तन्या इति मिलित्वा अष्टौ जलशरावा , चतुर्थभागावशेषादत्र स्थाप्य शरावद्वयम् । पन्चपललीएस्य प्रधानपाके तु सपाददुर्भशरावद्दयोक्तेश्व एकपले तु लैक्टि क्रमाद पादछोसन सपाददुग्धराराव एको भवति । प्रधानपाकार्थं घतमपि द्विगुण् त्रिगुणं चर्तुगुण लौहापेचया, यथाप्रकृतिदोषभेदेन, तेन वातप्रकृतौ एत लौहाचतुर्गुणम्, पित्तप्रकृतौ तिगुणम् , रुष्मप्रकृतौ द्विगुणमिति । एव द्विपले लीहे । द्विपललौहस्य प्रधानपाके तिफलाया भागद्दयेऽष्टा पलानि, प्रतिपलमम्बुसमम् स्यादित्युक्तेश्च जल-स्याष्ट्री शरावा ते च द्वाभ्या शरावाभ्यामधिका कर्त्तेच्या इति मिलित्वा दश जल-शरावा ; चतुर्भमागावशेषात् स्थाप्य सार्द्धशरावद्वयम् , पन्चपललौहस्य प्रधानपाके तु सपाददुग्धराराबद्दयोक्तेश्च द्विपले तु कमात् पादछासेन दुग्धन्च सार्द्धरारावैक भवति, धतन्त्र प्रकृत्यावयेच्या पूर्ववदेव शेयम् । नियललौहस्य प्रधानपाके तु निफ-लाया दश पलानि: प्रातिपलमम्बुसम स्यादित्युकेश्च जलस्य दश शरावा., ते च

द्वाभ्या शरावाभ्यामधिका कर्त्तं व्या इति मिलित्वा द्वादश जलशरावा, चतुर्थमागा-वशेषात् स्थाप्य शरावलयम्, दुग्धन्च पादोनशरावदयम्, एतन्च प्रकृत्याचपेचया पूर्ववदेव श्रेयम् । चतु पललौद्दस्य प्रधानपाके तु क्षिफलाया द्वादश पलानि, प्रति-पलमम्बुसम स्यादित्युक्तेश्च जलस्य द्वादश शरावा, ते च द्वाभ्या शरावाभ्यामधिका कर्त्तंत्या इति मिलित्वा चतुर्दश शरावा, चतुर्थमागावशेषात् स्थाप्यन्तु सार्दशरा-वश्रयम्, दुग्धन्च शरावद्वयम्, एतन्च पूर्ववदिति । श्रयोदशपलादुपरि चतुर्दश पललौद्दस्य प्रधानपाके स्थापितात्रिफलाया भागद्दये पूर्ववदेव जल देयम्, स्थाप्यन्च चतुर्थमागम्, पूर्वपूर्वापेचया दुग्धस्य प्रकेकशरावपादवृद्धि स्पष्टतरेव, एतमपि प्रकृत्याघपेचया दिगुर्खात्रगुरुखादिकमेवेति । तदनुमारत इति ग्रन्थो विवृत् ॥१६॥

त्रिफलात्रिकद्वकचित्रककान्तकामकविडङ्गचूर्णानि । जातीफलजातीकोषैलाकक्कोललवङ्गानाम् । सितकृष्णजीरयारिप चूर्णान्ययसा समानि स्यु ॥ २०॥

पक्तवावतारितमात्रे लीहे प्रचेपार्थं चूर्यमाह त्रिफलेत्यादि—कान्तकामक काञ्जिकामुस्तकम् । सिनकृष्णेति द्वयं जीरकविशेषस्यम् । श्रयसा समानीति यावल्लाह-चूर्णम् , तावेदव मिलित्वा त्रिफलादिचूर्यामित्यर्थ ॥ २०॥

त्रिफलात्रिकटुविडद्गा नियता श्रन्य यथाप्रकृति ॥
कालायसदोषहते जातीफलादेर्लवद्गान्तस्य ।
चेपपाप्त्यनुरूपः सर्वस्योनस्य वैकाद्ये ॥
कान्तक्रामकमेकं निःशेषं दोषमपहरत्ययस ।
द्विगुणत्रिगुणचतुर्गुणमाज्यं त्राह्यं यथाप्रकृति ॥
यदि भेषजभ्यस्व स्तोकत्वं वा तथापि चूर्णानाम् ।
श्रयसा साम्यं संख्या भूयोऽल्पत्वेन भूयोऽल्पा ॥२१॥

इदानीमेतेषु त्रिफलादिषु मध्ये यदवश्य प्रचेप्य तदाह त्रिफलेत्यादि—कालान्यसदायहृत इति छेदः। अन्य इति जातीफलादय । उक्तित्रिफलादिसप्तकस्य नियतत्वे हेतुमाह कालायसदायहृत इत्यादि—कालायस वज्रपायङ्गादिलीह एव, कालत्व- क्वास्य प्रशस्तत्वेन कीर्त्यते । यदुक्त पातव्जले—''क्वजलामा शिरोजास्ते रसायनिषयी मता " इति, पतिवदानवशिरसि जाता इत्यर्थ । उक्त हि पातक्षले— "क्वफिपत्तानिलप्राया देहास्तत्र महात्ते । पतिवा दानवास्तत्र प्रदेशाश्चापि तादृशा ।

गिरिसारास्ततो जाता उत्तमाधममध्यमा । कफचेत्र शिर:स्थानं हृद्य पित्तमण्डलम्। गायानांभरभ चेत्रमिति देहविदो विदु । वचीजा व्याधिनाशार्थं कटिजा वाजिकर्मणि। शिरोजा देएसिद्धयर्थामित्येव त्रिविधा मता." इत्यादि । अयोभवो दोष आयसः स चाकारट्ट छेवशात् , तस्या कृतिहरण प्रशम इति यावत् । यद्यपि कान्तकामकस्यापि लोएदे।पहररात्नेनावश्वप्रद्यात्वोपवर्श्वनमिहैव युज्यते, तथापि तस्यैकस्यापि नि शाष-रोपएरखत्वकरखार्थ पृथगभिधान कान्तकामकामिस्यादिनाघे करिष्यति, तथा कान्तकाम-करयापि नियत प्रचेप्यत्वमिति शेयम् । जातीफलादीना प्राप्यनुरूप प्रचेप्यत्वमाह जाती-फलादेरित्यादि-पाप्त्यनुरूप इत्यस्यार्थमाह सर्वस्योनस्य चैकाधिरिति यद्युक जाती-फलादिलवद्गान्त यदा मर्वमेव प्राप्यते तदा सर्वस्येव प्रक्षेप ,यदा सर्व न लम्यते तदा एकद्वित्र्यादिभिर्जातीफलादिद्रव्येरूनस्यापि प्रचेपः । कान्तकामकस्यापि अवश्यप्रचेप्य-त्वमाह कान्तकामकमेकिमत्यादि-किन्तु यदा लौहस्य निष्पत्तिपाक कर्तन्य , तदा प्रथमतो एन देयम् , ततो लौहचूर्णम् , ततास्त्रिफलाकाथः , ततो दुग्धम् , तत एकी कृत्य लीह: पच्यते । धतन्यातिरेकेण च सर्वत्र लीहपाकानुपलम्म इति स्थिति: अत परि-माणपूर्वक प्रतमाह दिगुणत्यादि । दिगुणत्वादिकञ्च लौहमपेच्य, यथाप्रकृतीति कफ-पित्तवातप्रकृतिषु यथाकम द्विगुणत्वादि बोद्धव्यमिति, द्वन्द्वप्रकृतौ च मिश्रविधिः, ममप्रकृती च मध्यविधिः, तेन त्रिगुणिमत्यन्वयः । ननु त्रिफलादि लवङ्गान्तसमग्र-भेषज्ञाप्तिर्यदि भवति, तदा प्रवेष्यचूर्णस्य भूयस्त्वम्, यदि समग्र न लभ्यते, तदाल्भीयरन्वम्, अतं कथमयसा साम्यमित्याइ यदीत्यादि-भूयोऽल्पसख्येति नम्बन्ध , भूयसी अल्पा वा सख्या प्रेचप्यचूर्णाना भूयस्त्वेऽल्पत्वे वा न प्रयोजिकेति शेष । तेन यदा भेषजाना समशेख प्राप्ती सख्याकृतभूयस्व तदा मागहासेन मिलितचूर्णाना लीहचूर्णेन समत्वम्। समयाप्राप्ती च सख्याकृतम्यस्व तदा मागवृद्धथा मिलितचूर्णाना लीहचूर्णेन समत्व विधेयमिति भाव । यद्यपि नानाचारैरतेषु लीह-प्रयोगेषु प्रेक्षस्यमूर्णीना लीहसमत्वम्, तद्रईमानत्वम्, तच्चतुर्थमानत्वज्ञाभिहित तथाप्यमृतसारलोहे प्रेचप्यचूर्णाना मिलित्ना लोहचूर्णसमत्नमेनेति वचनादेवाब-सीयते ॥ २१ ॥

एवं धात्वनुसारात् तत्तत् कथितौषधस्य वापेन । सर्वत्रैव विधेयस्तत्तत् कथितस्यौषधस्योद्यः ॥ २२ ॥ इति साध्यसाधनपरिमाणविधिः ॥

इदानी मुक्तीपथमध्ये यद् यद्देषाधननुरूष तदपनीयम् , यत् तत्रोचित तदपि विधे-यमित्याह एवमित्यादि। पूर्वेन्तु तत्तद्वचनव्याख्यानाभिन्यक्तिनिमित्त स्थाने स्थाने पत्रिकाक्रमे। लिखित । इटानी तत्मर्वमेकीकृत्य एकपलादित्रयोदशपलपर्यन्त पत्रिका-क्रमेख लिख्यते। तत्र एकपलले। हे मारखादिकमंत्रयार्थं मिलित्वा त्रिफला पल ६, पाथ रा १, राप रा १ पल २, तथा निष्पत्तिपाकार्थं मिलित्वा त्रिफला पल ६, पाथ रा ८, शेष श २, दुन्ध श १ पल २, ष्टतन्न यथाप्रकृत्येन, चूर्णमानन्तु स्पष्टमेन । श्रथ द्विपललीहे मारणादिकर्मत्रयार्थ त्रिफला मिलित्वा पल ४, पाथ रा १३ पल ४, शेप रा १ पल ५ कर्प २, निष्पत्तिपाकार्थ त्रिफला मिलित्वा पल ८, पाथ रा १०, शेष रा २ पल ४, दुन्ध रा १ पल ४, छतज्ञ यथाप्रकृत्येव, चृर्णमानन्तु स्पष्टेमव । श्रथ त्रिपललाहि मारखादिककर्मत्रयार्थं मिलित्वा त्रिफला पर्ल ५, पाथ श १७, शेप रा २ पल १, निष्पत्तिपाकार्थ त्रिफला पल १०, पाथ ग १२, रोप रा ३, दुग्ध श १ पल ६, इत चूर्णमानन्च स्पष्टमेव । चतु पललीहे जारणादिकमेत्रयार्थ त्रिफला पल ६, पाय श २०, पल ४, शेष श २ पल ४ कर्ष २, प्रधानपाकार्थ त्रिफला मिलित्ना पल १२, पाथ रा १४, रोप रा ३ पल ४, दुरथ रा २, छत चूर्णमानव्य स्पष्टमेव । पञ्चपललीहे मारणादिकर्मत्रयार्थं त्रिफला पल ७, पाथ रा २४, शेप श ३, प्रधानपाकार्थ त्रिफलापल १४, पाथ श १६, शेप श ४, दुग्ध रा २ पल २, घतादि स्पष्टेभव । पट्पललोहे जारणादिकमेत्रयार्थ त्रिफला पल ८, पाथ रा २८, रोप रा ३ पल ४, प्रधानपाकार्थ त्रिफला पल १६, पाथ श १८, राप श ४ पल ४, दुरध श २ पल ४, छत चूर्णमानज्ञ स्पष्टमेव। सप्तपललोहै जारणादिकमंत्रयार्थ त्रिफला पल ६, पार्थ रा ३२, राप रा ४, प्रधानपाकार्थं त्रिफला पल १८, पाथ श २०, शेप श ४, दुग्ध श २ पल ६, धत चूर्णमानम्ब स्पष्टम् । श्रष्टपललोहे जार्गादिकर्मत्रयार्थं त्रिफला पल १०, पाथ रा ३६, राप रा ४ पल ४, प्रधानपाकार्थ त्रिफला पल २०, पाथ रा २२, रोप रा ५ पल ४, दुग्ध रा ३, छत चूर्णमानब्र स्पष्टम् । नवपललीहे जारणादिकमेत्रयार्थं त्रिफला पल ११, पाथ श ४०, राप श ४, प्रधानपाकार्थ त्रिफला पल२२ पाथ श २४, शेष श ६, दुरध श ३ पल २, एत चूर्णमानम्र स्पष्टम्। दशपललीह जारणादि-कमैत्रयार्थं त्रिफला पल १२, पाथ श ४४, राय श ५ पल ४, प्रधानपाकार्थं त्रिफला पल २४, पाधु श २६, राय श ६ पल ४, दुग्ध श ३ पल ४, छत चूर्णमानस्र स्पष्टम्। एकादशपललोहे जारणादिकर्मत्रयार्थे त्रिफला पल १३, पाथ रा ४८, राप रा ६, प्रधानपाकार्थं त्रिफला पल २६,पाथ रा २८,रोप रा ७,दुग्ध रा ४, घत चूर्णमानञ्च स्पष्टम् । द्वादशपललीहे जारणादिकर्मत्रयार्थं त्रिफला पल १४, पाध रा ५२, शेष रा ६ पल ४, प्रधानपाकार्थं त्रिफला पल २८, पाध रा ६०, शेष रा ७ पल ४, दुग्ध रा ४ पल २, घृनं चूणमानच्च स्पष्टम् । त्रयोदशपललीहे जारणादि-कर्मत्रयार्थं त्रिफला पल १४, पाध रा ५६, शेष रा ७, प्रधानपाकार्थं त्रिफला पल १० पाध रा ३२, शेष रा ८, दुग्ध रा ४ पल ४। तदेव एकादित्रयोदशपलान्तलीहस्य साध्यसाधनपरिमाणे पत्रिका लिखिता, य्वमुक्तरीत्या च चतुर्वशपलादिलाहेऽपि साध्यमाधनपरिमाणे पत्रिका लिखिता। साध्यमाधनपरिमाणविधिरित साध्य लीह साधन त्रिफलादि, तया परिमाणविधिरित्यर्थ ॥ २२॥

इति साध्यसाधनपरिमाणविधि ।

## लौहमारगविधिः

कान्तादिलौहमारणविधानसर्वस्वमुच्यते तावत् ॥२३॥

इदानीं लीहजारणविधिमाह कान्तादीत्यादि-श्रादिशब्दात् पारिडवजादयोऽिष गृद्धन्ते; एषा लच्चणानि प्रदीपस्य चतुर्थपरिच्छेदेऽनुसन्धयानि । लीहमारणविधानमेव सर्वस्व तदधानत्वात् पुटादिकर्मणा, किन्तु सुमृतमेव लीह गुणकर, तदुक्त —''सुमृ-तष्च यतो लीहममृतेन सम नृणाम् । दुर्भृत ग्रज्ञविष्टम्मी शरीरस्थितिसशयम् । भवेदयोवभे तस्माद् यत कुर्य्थोद्भिषग्वर'' ॥ २३॥

यस्य कृते तस्रौहं पक्षव्यं तस्य ग्रुभदिवसे। समृदद्गारकरालितनतभूभागे शिवं समभ्यव्यं। वैदिकविधिना विद्वं निधाय द्वत्वाहुतीस्तत्र ॥ २४॥

यस्य कृतं इति यस्यातुरस्य निभित्तम् । लौहमारणाय भूमिसस्कारपूर्वकिमितिकर्त्तव्यतामाह समृदित्यादि — मृदा सह अद्वारमेकीकृत्य सम्चूर्ण्यं तेन करालिते दन्तुरिते लिप्त इति यावत्, पतेनातितापानमृतिका न गलित, नतभूमागे मध्यीनम्नभूमागे ।
शिवभित्युपलचण, तदुनत— भर्चायित्या विधानेन हेरम्ब गुरुभास्करौ । लोकपालान्
अहाश्चेव चेत्रपालानथीषधम्। आदित्यदेवताश्चेष्ट्वा धन्वन्तरिपतञ्जली । दण्याद् विश्व सर्वेभ्यो नानामस्योपचारतः '' इति । विद्विमिति वन्यदिन्यानल, तदमावे दारुद्रयसङ्घटनजमीयम्। यदाष्ट पतञ्जलिः — "दिन्य दाव समादाय लौहकर्म समाचरेष्ट ।
यदि दिन्यानालाभावस्ततो धर्षणसम्भवः ॥ आरोप्य कर्मशालायामिश्च यक्तेन पूज्येत् इति ॥ २४ ॥

धर्मात् सिध्यति सर्व श्रेयस्तद्धमंसिद्धेय किमिप । शक्त्यनुरूपं दद्याद् द्विजाय सन्ताषिणे गुणिने ॥ सन्तोष्य कर्मकारं प्रसाद्पूगादिदानसम्माने । श्रादी तदश्मसारं निर्मलमेकान्ततः कुर्यात्॥ २४॥

यद्यीप दृष्टादृष्टरूपेण कार्य्यकोण कार्य सिध्यति तथा दृष्टमप्यदृष्टवशादेव उप निष्ठते ।इत्यद्रष्टस्यैव रमणीयत्व मन्यमान भाइ धर्मादित्यादि-श्रेय इत्यभिमतप्ररास्त-फलन्। किमपेनित धान्यहिर्ण्याचदानाचन्यतम ययागाकि दचादित्वर्थ । मारणार्थ लाहमस्कारमाह आदावित्यादि--- अश्ममार लाह निर्मलिमिति शाधनविधिना कार्य्य तद् यथा प्रथम लीह गिलादिना निर्मलीकृत्य पत्तल कार्यं, तदनु चार्हेरीमातुलुहान्ल-वेतमेनास्त्रियता मप्तवार प्रत्येकेन श्रानेष मशोष्य तत काश्चिकादी दिनद्वय त्रय वा स्थाप्यम् एवमलभावना विधाय तदनु गोमूत्रापेष्टात्रिफलाकल्केनालिप्य त्रातेप शोपणी-यन् , ततश्च मन गिलावल्मीकमृत्तिकाकुठारिकामूलचोद्गरीश्वतदूर्वासैन्धवैश्व जलिपेष्टै क्रोमण प्रलिप्य भातेप रोापणीयम् । ततश्च 'पत्तल निर्मल कृत्वा लौहमन्लीकृत पुन । मूत्रपिष्टित्रिफलया वारिपिष्टमनोह्नया । सावित मावयेत् तच वरुभीकामलके-Siq च । परशुन्द्रिन्ना चाहेरी नएटदूर्वा मर्मन्थवा ॥ श्रामिलिप्त यथाप्रिन शोध्य सर्यातेष क्रमात्॥" गण्टदृर्वा श्वेतदृ्वेति नाम । तदेव मावना विधाय तदनु भस्त्रया वाह्नि ध्मापितवा नातिनप्त कृत्वा लाहाभेत्तया द्विरुणेषु गव्यदुग्धकाञ्जिकगोमूत्र-त्रिफलाकाथेषु वारत्रय कृत्वा निर्वापणीयम् । उक्त हि—"द्वीरारणालगामूत्र-त्रिफनान्वाथवारिथि । प्रतिद्रव्य निषेक्षव्य त्रिधा चैव विधानत "इति । निषेक्षमात्रा च- 'र्लाहपत्र मनान्तप्त दिगुणे तहने क्षिपेत् । निषेक एप निर्दिष्टी निषेकार्थिकवा-दिभि " शत । निपेकार्थ त्रिफलाक्त्रायाविधानव्य यथा-"सिद्धार्थ त्रिफला लाहात् कर्त्तच्या द्वित्रुषा सदा । चतुर्रुष फनात् तोयमर्द्धमागावगेषितम" इति । दोषविरोषे च निषेकविशेषा यथा-"विशेषत. कफे तीच्य कटातिककपायके । वात तु मधुर-न्निन्धे पित्ते मधुरशीतले । निपेक शस्यते नित्य मर्वद्रोपापनायक ।" तदेवसुक्त-क्रेमण निषेक विधाय रात्रिमका विश्रान्य लाहमारणादिए योजयेत्। उनन हि-'विश्राम्य रजनीमेका तन कर्म ममाचरेत '' इति ॥ २५ ॥

> तद्व कुठारच्छिन्नत्रिफलागिरिकर्णिकास्थिसंहारै ॥ करिकर्णच्छुदमूलशतावरीकेशराजास्ये ॥

#### शालिञ्चमूलकाशीमूलपावृड्जभृहराजेश्व । लिप्त्वा दग्धव्यं नददपृक्षियलोहकारेण ॥ २६ ॥

दराना लीएगारणार्थ भेषजान्याह नदिनस्यादि—नदन्वित शोधनानन्तर कि तु लीए जारण मर्गापकांल पुनरिष स्वन्छका जिक्रमान लीएस्य निषेक कृत्वैप मारण कर्चत्यम् । उक्त हि पातशले-"काथ पथ्यपिन कृत्वा यसि दश्वा चतुर्दशः। पपराऽपि न दातत्यो निपेको न्यथमनिर्धा । पम्लम्बच्छारनाल च ततो व्यथमुप-क्रमेद्र ॥' कुठार्गन्यमा कुठारिका, गिरिक्खी धतापराजिता, अस्थिसहारे। छारख करिकण-एदम्ल एम्तिकर्णपलाशमृलम्, काशी खनामख्याता । प्राष्ट्रजा वर्षाम् , पुननविति यानत् । यद्यपि एनरेर भेषारा शिक्षत्वा सुरुधि मति नियतमेत्र लाढन्य मारण भवति तथापि युदा लाहादंशागपरिमिनम्, लोहापेचया पाटशारान परिमित ना शोधितरम्यानिकचूर्णं विषनाकाथेनालीत्य तेन लाइ लिप्चा तदनन्तरम् ्त कुठारचित्रपादिनेप निर्दाष्णया पोष्टशारीरातिष्य तते।ऽस्य ध्मापनमुपदिशन्ति। उक्तांगे पराजीरात्रावय यथा-- "एनदर्धन विख्यात प्रतेषो माधिकण च । माधि-कान्यरा प्रोतः। कुनटा चाम्नंपिता । मारकद्रव्यमसुकः पोटसारीन ध्माप्यते ॥"' के जिन्माधिकस्यापि पाटशाशमाह यथा -- 'विपालावाडिबोहिनुभवपाटरजोडिन्ब-नम ।" नय वाटिबीहिंगुनय स्वर्णमानिकम्, पादश्य पोष्टशारा इति व्याख्या-नयीत । तथा गुनापि "लीए लीए उंगनिन पोटशारीन वा पुन । त्रिफलाकाथ-पिष्टेन मानिवे स प्रतेषयेन् । लीहाचतुर्थाशकुनस्या वाम्नापिष्टया'' इति । कुनदी मन शिला । अत्र लीए जारणार्श्वाभृतग्वर्णमा चिकस्य शोधन लच्चण्य लिख्यते "गर्दे तु रागमद्वारो मनाक् कृष्णच्यविविधि । युद्धण इति ख्याती माचिकी ऽत प्रशस्यते ।" प्यविभमाधिकन्युर्णं चुत्रमारिपशालिङ्चकाथमध्ये पत्तनिकाया स्थापयत् । पत्तनिकारथापितकाथे तत् स्वरामानिकचूर्णं वस्त्रे पोट्टलिका बन्ध्वा निनिष्य दोलापाकक्रमेण परेष् । पत्त नेकाभ्यन्तरे काथमध्ये पाट्टलिकाया यत नायपर् गर्नात तत्र बायम् । नदुक्त-"स्वर्णमाचिकचूर्णं च वश्यबद्ध विवाचयेत् । कालमारियशालिङचकाथे रालाविधानत । तद्य पतित बाखोग्य शुध्यति माचि-कम्" इति॥ २६॥

> चिरजलभावितनिर्मलशालाङ्गारेण परित श्राच्छाद्य । कुशलाध्मापितभस्त्रानवरतमुक्तेन पवनेन ॥ वहेर्वाह्यस्वाला वोद्धव्या जातु नैव कुश्चिकया ।

मृज्ञवणसां लिक्याजा किन्तु स्वच्छाम्बुसंप्लुतया ॥ द्रव्यान्तरसंयोगात् स्वां शक्ति भेपज्ञानि मुञ्चन्ति । मलधूलिमत् सर्वे सर्वेत्र विवर्जयेत् तस्मात् ॥२७॥

इदानी तत्वाकाय यादृशोऽङ्गारा श्राह्मस्तमाह चिरेत्यादि—चिर पचमासा-दिकम्, मावित स्थापितम्, निर्मल त्यापान्यादिविरहात् । कुरालोऽत्र स्थिरोऽनल-सश्च । कुन्चिका वशशाखा कुन्नीति ख्याता । विषच्चे दोपमाह द्रव्यान्तरेत्यादि— मृदादिससर्गे सिन यस्मालोहसस्प्रध्मेपजानि होनशिककानि मवन्ति,तस्मात् मृदादि-कर्जुरितसालिलयुक्तकुन्चिकया वहिज्वाला न वोद्धव्या,किन्तु निर्मलजलयुक्तकुन्चिक-यैनेत्यर्थ ॥२७॥

सन्दंशेन गृहीत्वान्तःप्रज्वालिताशिमध्यमुपनीय । गलित यथायथमग्रे तथैव मृदु वर्द्धयेन्निपुण ॥ तलिनिहितोद्ध्वमुखांकुशलग्नं त्रिफलाजले विनिद्धिप्य । निर्वापयेदशेष शेषं त्रिफलाम्बु रद्धेन्व ॥२८॥

इदानीं तल्लीह येन प्रकारेण विद्वमध्ये प्रवेशनीय तदाह सन्दरोनेत्यादि— सन्दरा साँडाशीति ख्यात । मृदु वर्द्धयेदिति क्रमशस्तल्लीहखण्ड विद्वमध्ये प्रवेशये-दित्यर्थ । गलितन्न यथा तथा त्रिफलाकाथे देय तदाह तलेत्यादि—पाकेन यथायथ गलित तथा तलनिहितोद्ध्वेमुखाइकुरोन जतुवल्लम निहित समुद्धत्य सन्दरोन पीडियित्वा यथोक्षत्रिफलाजले राने. रानेनिर्वाययेत् । रोप त्रिफलाम्बु रचेन्दिति पुटपाकार्थ स्थालापाकार्थ स्थापितित्रिफलाकाथमागद्वयमेव रेपराब्दवाच्यम् । जकार्थे पातक्षले यथा—''हस्तिकणसमीरेण क्रमाराध्मापित मृराम् । उन्होलित त्रिधा लीन स्फुलिङ्गे परिवर्जितम् । ततोऽइकुरामुखे लग्न सन्दरापीडित यथा । उद्धुत्य त्रिफला-तोथे प्रचेतन्य शनै शनै,'' इति ॥२०॥

यह्नोहं न मृतं तत् पुनरिप पक्तव्यमुक्तमार्गेण । यन्न मृतं तथापि तत् त्यक्रव्यमलौहमेव हि तत् ॥२६॥

त्रिचतुर्वोरमङ्गारचयात् तावत् सर्वमेव लीह त्रियते, तथापि यन्न मृत तत् किं कर्त्तेच्यम्, तदाह यहीहिमत्यादि—उक्तमार्गेखेति उक्तमेवनलेपादिक्रिया वर्त्तनीया । तथापि यन्न मृत तत् त्याज्यमेवेत्याह यन्न मृतमित्यादि । तथापीति सप्तमिरङ्गारै सप्त-वारपाकृनापीत्यथे । उक्त हि—''सप्तवारान् तथा लीह पूर्ववत् पूर्वमेवनै । ध्मात्वा

ध्मात्वा समुत्थाप्य निचिपेत् त्रिफलाम्मसि । पव नामान यो लोहो न मृतस्त्याज्य पव सं इति । प्रमग्यो हेतुमाह प्रालौहमित्यादि । उक्तीपथिलिप्तानेकवारध्मात-मर्याच्याप्त हि सुलौहत्वम् । तन्मर्या निवृत्तिमान सुव्याप्त लोहशास्त्रोदितसुलोह-त्वमादायैव निवर्तत इति भाव । मृतलौहलच्चयञ्च यथा—" लौहगूथसमाकार-स्पर्शत्राद्याः प्रतीयते । यदा लौहस्तदा ह्रेयः सुमृतो वैद्यसत्तमे. ॥ २६ ॥

> तद्तु घनलौहपात्रे कालायसमुद्गरेण सञ्चूर्य । दत्त्वा बहुशः सलिलं प्रचाल्याद्वारमुद्ध्य ॥ तद्यः केवलमग्नौ शुष्कीकृत्याथवातपे पश्चात् । लौहशिलायां पिष्यादसितेऽश्मनि वा तदप्राप्तौ ॥ ३० ॥

#### इति लौहमारणविधिः।

इदानीं जारणानन्तर प्रचालनन्व तथा त्रिफलाकाथाविसकस्य स्र्यांतपे शोषणारूपो भानुपाकश्च यथा कर्तन्यस्तदाइ तदिन्वसादि—वन दृढ विद्राद्यभावयुक्तम् । लौइपात्र इति लौहोद्वलादाविस्यर्थः । कालायसमुद्रर तीच्णलौइमुद्ररम् ।
एतदुभयमप्युपलच्चण्, तेन दढदशदादिकच्च बोध्यम् । सन्त्र्यर्थत्यत्र मुद्रानिभमिति
शेषः । सिललिमित्युपलच्चण्, तेन त्रिफलाकाथोऽपि बोध्य । शुष्किक्रत्येति त्रिफलाकाथेनेव सप्तथा स्रयांतपे सशोष्यत्यथं । उक्ताथें पातक्षले यथा—"अयोघनेन
तत् पिष्ट शिलया दृद्या यथा । अयोमलसम पिग्ड कृत्वा मुद्रसम पुन । त्रिफलावारिणा धीत विशुष्क चूर्णित पुन ।" इत्यादि । योगरत्नाकरेऽप्युक्त—"मृतच्चोद्वले लोहे मूपलेनापि तादृशा । सन्त्र्यर्थ त्रिफलाम्भोभि सप्तथा स्र्यंपाचितम् । एव पुटविधौ योग्यो विश्वेयो भिष्का वरेः।" इत्यादि । अत्र लौहप्रचालनार्थं भानुपाकार्थन्च त्रिफलाकाथविधियंथा योगरत्नाकरे—"शुद्धवर्थं त्रिफला
लौहात् कर्तन्या त्रिगुणा सदा । चतुर्गुणफलात् तोयमर्द्धभागावशेषितम् । एप एव
विधिनित्य चालनेऽपि च शस्यते । इति तथा—"भानुपाकार्थमिच्छन्ति त्रिफलामयसा समम् । सलिल दिगुण तत्र चतुर्भागावशेषितम् ।" इति ॥ १० ॥

इति लोहमारखाविधि ॥

#### स्थालीपाकविधिः

श्रथ कृत्वायोभागडे दत्त्वा त्रिफलाम्बु शेपमन्यद्वा । प्रथमं स्थालीपाकं द्यादातत्त्वयात् तद्तु ॥

#### गजकर्णपत्रमूलशतावरीभृद्गकेशराजरसैः। प्राग्वत् स्थालीपाकं कुर्य्यात् प्रत्येकमेकं वा ॥ ३१॥ इति स्थालीपाकविधि ।

स्थालीपाकमाह अथेत्यादि—अयोगायहे लौहपत्तिकायाम्। रोप त्रिफ-लाम्चु त्रिफलैकमागक्षतकाथस्य ध्मातिर्नवापणाविराष्टम् । अथ यदि कथमपि तिद्वेनष्ट स्थात् तदा का गतिरित्याह अन्यदेति तत्प्रक्रिययेव काथान्तर् कार्थ्यमिति माव । प्रथम स्थालीपाक दद्यादिति प्रथम स्थाल्या लौहन्तूर्णे त्रिफलाकाथेनालोड्य विह्वना पाक विधाय त्रिफलाकाथव्य- कर्त्तेत्य । इत्येप स्थालीविधानक्रमः आत-त्वयादिति त्रिफलाकाथशोपपर्य्यन्तम् । तदन्विति प्रथम , त्रिफलाकाथेन स्थालीपाक विधाय अनन्तर हित्तकर्णपलाशादीना व्यस्ताना समस्ताना वा स्वर्मरिप पूर्ववद स्थालीपाक कार्य्य इत्याह गजकर्णेल्यादि—गजकर्णो हिस्तकर्णपलाश । प्राग्व-दित्यनेनैव यावतीयत्रिफलाकाथस्य स्थालीपाके मात्रा द्वन्त्वयानन्तरक्ष पाकस्तथा गजकर्णोदिस्वरसादावित्यये । किन्तु तत्र व्याध्यनुरूपस्थालीपाकीयद्रव्याणामन्तरे पदि स्वरसप्राप्तिर्नोस्ति तत्र स्थालीपाकार्थ त्रिफलाकाथानुमारेणैव काथ्यजलादिक दत्त्वा काथ विधाय स्थालीपाको विधेय इति ॥३१॥

इति स्थालीपाकविधि ।

#### पुटपाकविाधिः

हस्तप्रमाण्वदन श्वभ्रं हस्तैकखाति सममध्यम्।
कृत्वा कटाहसदृशं तत्र करीप तुपञ्च काष्टञ्च ॥
श्रन्तर्धनतरमर्द्धं शुषिरं परिपूर्यं दहनमायोज्यम्।
पञ्चाद्यसश्चृशं श्रुक्णं पद्गोपमं कुर्य्यात् ॥
त्रिफलाम्बुमृद्गकेशरशतावरीकन्दमाणसहजरसे ॥
भज्ञातककरिकर्णच्छद्ममूलपुनर्नवाखरसे ॥
चिष्त्वाथ लौहपात्रे मार्दे वा लौहमार्द्वपात्राभ्याम्।
तुल्याभ्यां पृष्ठेनाच्छाद्यान्ते रन्ध्रमालिप्य ॥
तत्पुटपात्रं तत्र श्वभ्रज्वलेन निघाय भूयोभि ।
काष्ठकरीपतुपैस्तत् सञ्छाद्याहिनशं दहेत् प्राज्ञः॥ ३२॥

पुटपाकिषिमाह हस्तप्रमाखेलादि-श्रभ खातम् हस्तैकखातिसममध्यमिति इस्तैकप्रमाखा खाति खननं यस्य, सर्वतो इस्तैकमात्रपरिमाणमिल्यर्थः । समे।ऽनिस्रो मध्योऽभ्यन्तरभागो यस्य तत् सममध्यम् । कटाइसदृशमिल्येनेनेव वर्तुलाकारत्वमुक्त, तेन चतुष्कोण न कार्य्यमित्यर्थ । तत्र यम्र भन्तरिति मध्य घनतर बहुनर निविद्ध-तरभिति यावत् । प्रदेशुपिर परिपूच्येति करीपादिभि श्रश्नस्यादिभाग परिपूच्यें-त्यर्थ । कैर्द्रवे: पद्मोपम कुर्य्यादित्याह त्रिफलत्यादि-- त्रिफलाम्बु त्रिफलाकाय , भुद्गकेशरी भुक्तराजकेशराजी, कन्द. ग्रह्म्या । एपा भुद्गादीना सहजरसः स्वरसः। महातकस्य पुन. काथ एवं, स च महातकसहत्वे मत्येव वोध्यः । श्रयश्चूर्यं त्रिफलाकाथादिभि पद्गोपम कृत्वा किं कर्त्तव्य तदाइ चिप्सेत्यादि —मार्द इति फुष्णमृत्तिकाभवपत्रि, एतच मृत्यात्र सर्वथा लौहपात्राभावे हि वोध्य, किन्तु दिचयराढायां सममस्ये मृत्सम्पुट लाह कृत्वा वस्त्रमृत्तिकाभिरालिप्य पुटपाका दीयते इति न्यवहार । श्रयञ्च पत्त. साथायान् भवति, यतो लौहसम्पुटमध्येऽ-धमलौद्दघटितंसम्पुटमात्रस्यापि पुटपाकौपधससर्गेजीर्थतया तदीयरजसोऽनुप्रवेशो दुर्निवार इति । पृष्ठेनाच्छाधेति-यत्र पात्रान्तरे पद्गीपम लीहचूर्श्वमस्ति तन्मुख-मपरतत्तुल्यपात्रस्य कटीभागे । निधायेत्यर्थ । अन्त रन्ध्रमालिप्येति कुट्टितमृद्धस्ना-दिभिरिति शेष । भूयोभिरिति प्रचुरैः । इदश्च काष्ठादिक पुटमात्रोपदर्शनार्थम् अते। न पीनरुक्त्यम् । भूयोभिरित्यनेन गर्त्तपूरण कृत्वा तदुपर्य्यपि करीषसमुच्छ्रयः कार्य्य इति दर्शयति । श्रद्दिशिमत्येनन दिवसे रात्री वा पुटा देय इति दर्शयति । अन्ये तु पुटपाकस्याष्ट्रप्रहरन्यापनार्थमहर्निशमिति वचनमाहु , तन्न पुटपाकस्य चतुः महरमम्पाषत्वात् । उक्त हि पातक्षती—" चतुर्भि पहरैक्षेय पुटपाकचर्णा नुधै. ।" तथा योगरतनाकरसमुचयेषि--" चतुभि प्रहरेरेव पुटपाकः प्रकीित । पुटपाकचर्णादूद्र्धं स्थितो मनति भस्मसात् । अधस्तादपक्षटस्तु मन्दो भनति वीर्यंत । कुएडस्यो भरमनाच्छन्न श्राक्षष्टन्यः सुशीतल । समाकृष्टस्य तप्तस्य ग्रयद्दानि प्रजायते '' इति । तत्र सद्वेपात् पुटपाकपरिपाटी लिख्यते । त्रिफला-काथ।दिभि पङ्कोपम लौह विधाय सम्पुटाक्रातिलौहपात्रस्थ कृत्वा वस्तादिभिरव-गुग्ट्य कुट्टितवस्त्रमृतिकया पात्रयोरवकारामालिप्य इस्तमात्रपरिमितसमतलभूगर्से करीपतुप. शुष्फगोमयमात्रेण वा खातस्याई प्रपूर्य तत्र तल्लीहसम्पुट निधाय विद्व नियोज्य तदुपरि अपरकरीपादिमि शुष्कगोमयमात्रेण वा शश्च परिपृर्वेत, एवं चतुःभि. प्रहरेरेव पुटा देयं , शीतीभूतमाझष्टव्यम् ॥ ३२ ॥

पवं नविभरमीभिभेषजराजैः पचेतु पुटपाकम् ।
प्रत्येकमेकमेभिर्मिलितैर्वा तिचतुरान् वारान् ॥
प्रतिपुटनं तत् पिष्यात् स्थालीपाकं विधाय तथैव तत् ।
तादृशि दशिद न पिष्याद् विगलद्रजसा तु युज्यते यत्र ॥
तद्यश्चूर्ण पिष्टं घृष्ट घनसूद्मवासिस श्रुक्णम् ।
यदि रजसा सदृशं स्थात् केतक्यास्ति तद्भुद्रम् ॥
पुटेन स्थालीपाकेऽधिकृतपुरुषे स्वभावरुगिधगमात् ।
कथितमिष हेयमौषधमुचितमुपोद्यमन्यद्पि ॥ ३३ ॥

#### इति पुटपाकविधिः॥

इदानीमुकैश्विफलादिभि पुनर्नवास्वरसान्ते प्रत्येक, मिलित्वा वा पुटो देय इत्याद्य एवमित्यादि -- नविभिरिति इह त्रिफला एकत्वेनैव गर्यानीया, तेन न सख्यातिरेक । त्रिफलत्यनेन त्रिफलादिगयामिच्छन्ति केचित्, तद्यथा—'त्रिफला-त्रिवृतादन्तीत्रिकद्रतालम्लिका । वृद्धदारश्च वृश्चीरवृपपत्रकचित्रका । विद्यक्षी च भृक्षमञ्जातकीपथम् । दाहिमस्य च पत्राशि शतपुत्री पुनर्नवा । क्रठार-क्रामको कन्दस्तन्त्री भेकस्य पर्णिका । एस्तिकर्यपलाशश्च कुलिश केराराजक माण प्रिंग्डतकर्णश्च गोजिह्या लैहिमारक । गिरिमन्तानकः प्रोक्तिकफलादिरय गण । सामान्यपुटपाकार्थमेतानिच्छन्ति सूर्य ।" इति । दोपभेदे तु गणविरोषा विस्तारमयात्र लिखिता । ते च लीहप्रदीपे प्रथमपरिच्छेदस्यान्तेऽनुसन्धेया इति । किंच यस्मिन् व्याधी ये ये योगा हितास्तिस्मन् व्याधी तत्तत्कायैरिप पुटो देय । उक्त हि-" ये वे यत्र गदे योगास्तेषा तेपाछ वारिया । विधिनांघमाय तेनैव प्रदे। रोगे च सम्मत ।" इति । विधिनेति साध्यसाधनपरिमाणोकपुटपाकार्थात्रफ-लाकाथविधिना, अथवा यत्र त्रिफलान्यतिरिक्तकाथ्यद्रव्यान्तराण्यनुकमानानि सन्ति, देयजलमान रापजलमानञ्च नापात्त, तत्र यागरत्नाकरीक्षव्यवस्थैवानुसर्त्तन्या। यदुक्त काथविधी तत्रेव-- " श्रन्यानि यानि व्यक्तानि योक्तव्यानि पुटादिषु । तानि लीइसमान्येव जल प्रागेव कीचितम्। लभ्येते स्वरसी येपा तेपा काथस्तु नेष्यते । त्रिफलाव्यतिरिक्तेन मत्तेमतत् पतञ्जले ।'' इति । जल प्रागेव कीर्त्तितमिति मृदौ काथार्थ चतुर्गुण जल देय, स्थाप्यक्षतुर्थे। माग । मध्यद्रव्येऽष्टगुण जल देय, स्थाप्यश्चाष्टमी माग । कठीरद्रच्ये पोडरागुख जल देय, स्थाप्यश्च पोडरो भाग इति । ननु पुटेन किमन्न क्रियते ? उच्यते, दोषनाशगुणोदय इति । यदुक्त-" पुटाद्दोषिवनाशः स्यात् पुटादेव गुणोदय । त्रियते हि पुटाह्नौह पुटास्तस्मात् समाचरेत्। यथा यथा प्रदीयन्ते पुटा सुबहवी यदि । तथा तथाभिवर्द्धन्ते गुणा प्व सद्दलश । तावल्लोह पुटेद्रैयो यावच्चूर्यीकन जले । निस्तरङ्गे लघुत्वेन समु-त्तरीत इसवत् । तावच चूर्णियेदेन यावत् कज्जलसान्निमम् । करोति विद्विते नेत्रे नैव पीडा मनागिष ।" इति । पुटाना कर्मभेदेन सख्योभदो यथा—"शतादिस्तु महस्रान्त पुटो देयो रसायने । दशादिशतपर्यंन्तो गदे पुटविधिर्मतः । वाजिकर्माण विशेय पुर पद्मशताधिक । दशोत्तरशतान्तस्तु पुर पुरविचक्तरौ ।" यदा तु चुद्रितमान्ने लौहे पुटा देयास्तदा एतावद् भूय॰ सख्यका श्रपि पुटा दीयन्ते । यदा तु प्रतिपुटान्ते पेषण वस्त्रपूतञ्च तदा सप्ताष्टावेव विशिष्टफलदा भवन्तीत्युपदिशन्ति वृद्धाः। प्रतिपुट पेपणमाद्द प्रतिति -- एतेन पेषणवत्त्यमाणवस्त्रपूतत्वाभ्या भस्मीभूतपुटार्थदत्त-भेपजनिरासोऽपरदेयभेषजद्रव्यसस्काराधानद्वेति भाव । कोमलाशलासु पेषण न कार्थ्यमिति भाव , पिष्ट्वा च वस्त्रपूत कार्थ्यामित्याह तदय इत्यादि-धन निविड, सूत्तमञ्च यद्वास , तम षृष्ट पूर्तीमत्यर्थ । इदानीमातुरस्य प्रकृत्यादिक निरूप्य उक्तभेपजेषु यदनुचित तस्यापकर्ष कार्य्य । श्रनुक्तस्याप्युचितस्यादान कार्य्यमित्याद्द पुटन इत्यादि । आधिकृतेति आधिकृतपुरुषाश्चिकित्स्यत्वेन प्राकृत इत्यर्थे ॥ ३३।

इति पुटपाकविधि ।

#### पाकविधिः

श्रभ्यस्तकमीविधिभिर्वालकुशाश्रीयवुद्धिभिरलक्यम्। लौहस्य पाकमधुना नागार्जुनशिष्टमभिद्घ्म ॥३४॥

इदानीं लौहस्य प्रधाननिष्पत्तिपाकमाह अभ्यस्तेत्यादि—अभ्यस्तकर्मविधिमि

गृष्टकृतलौहपाके । बालकुशाग्रमिति तीच्छ स्कान्च तेन कुशाग्रामिव तीच्छा स्कान् च गुद्धियेषा, दुरूहस्यार्थस्य तीच्छास्क्षमगुद्धिग्राद्यत्वात् तैरप्यलच्य ज्ञातुमशक्यम् । नागार्जुनशिष्ट नागार्जुनेन कथितम् । लौहपाकारम्भेऽपि मङ्गल कार्थ्यम् । उक्त हि पातक्षते—"मातृका पूज्येत् सर्वा नायिकाञ्च विनायकम् । अन्यत् स्वस्त्ययनं कुर्यात् सदा हितमना सुधी । पच एव मवेदेव त्रिवर्गफलदो नृष्णाम्" इति ॥३४॥

लोहारकूटताम्रकटाहे दढमृएमये प्रण्म्य शिवम् । तदयः पचेदचपलः काष्ठेन्धनेन विद्वना मृदुना ॥

#### निक्तिप्य तिफलाजलमुदितं यत् तद् घृतञ्च दुग्धञ्च । सञ्चास्य लेाहमय्या दृष्यो लग्नं समुत्पाट्य ॥३४॥

लाहपाकार्थं पात्रमाह लोहत्यादि—घारकृट पित्तलम् । काष्टेन्थनेनेति काष्ट्र पद तृण्तुपादिव्युदामार्थन् । विह्नेत्यथोविह्ना । उक्त हि—''मृदुनाथो हुतारेल पक्तव्यमवधानत.'' इति । स्थापिनित्रफलामागद्धयकृतकायार्दिप्रचेपार्थमाह निच्चित्यादि—चिद्ततिमत्युक्तपरिमाणन् । घतादिदानकमश्च मोनराजेनोक्त ; वथा— ''घृतन लाहमालोक्च्य चारेप नमनन्तरन् । तत काथेन मयोज्य मम्देऽग्री रानकै पचेत् । तत मञ्चालयेहीह लीहदव्यीतिदीर्घयां' इति ॥ ३५ ॥

मृदुमध्यखरभावे पाकस्त्रिविधाऽत वस्यते पुंसाम्। पित्तसमीरणश्लेष्मप्रकृतीनां मध्यमस्तु समः। श्रभ्यक्रद्विं लौद्दं सुखदुःखस्खलनयोगि मृदु मध्यम्। उज्जितद्विं खरं परिभापन्ते केचिद्यचार्याः॥ श्रम्य विद्यीनद्वींप्रलेपमाख्त्कराकृतिं ब्रुवते। मृदु मध्यमद्वेचूर्णं सिकतापुञ्जोपमन्तु खरम्॥ ३६॥

इदानीं पितवातकफप्रकृतिषु क्रमात् पाकसवमाह सृद्धित्यदि—मध्यमपाको वात प्रकृती हित पत्र, किन्तु प्रकृत्यन्तरेऽपि योच्य अत्याह मध्यमस्तु सम इति । मवप्रकृति निव्यत्वेन सर्वात्वेव प्रकृतिषु जीचत इत्यर्थ । अमोघोऽप्याह—"दर्गमास्थिप्यते यस्तु तच्च स्वलित वा न वा । सृदुपाक विज्ञानीयात् पित्ते तु विश्वत सदा ॥ मितापुञ्जोषम यसु मृषिकोत्करमान्निमम् । तदयः सरपाक स्यात् स्थ्यपयेव प्रकीत्तितम् । एकैव गुण्योगित्वान्न तमिच्छन्ति तदिद । सर्वप्रकृतिनेव्यत्वानमध्यम वहुपूज्तितम्" इति । एकीयमते सृदुमध्यखरपाकाणा क्रमाञ्चक्यमाह अन्यक्तत्यादि—अन्यका घनपङ्कवत्य सिक्ष्य दवी येन ईत्ररा लीह सृद्धित सृदुपाक कृतते । अन्यक्तदवीत्यपि पाक. तथा स्वतु खस्वलनयोगी कदााचित् दर्वी त्यज्ञित कदाचित् न त्यज्ञित इत्यर्थ । एतादृश्य यञ्चीह तन्मध्यममिति मध्यमपाक कृतते । तथा जिक्ततदवीति यञ्चोह कदाचिदिप दर्व्या न सन्त्यस्यते, तत् खरपाक व्यते इति । तथा जिक्ततदवीति यञ्चोह कदाचिदिप वर्वो विश्वति स्वर्यात्वे विश्वति सृदुपाक व्यते इति । तथा आव्यतममतमाह अन्य इत्यादि—विश्वेषय विश्वति स्वर्याते स्वर्याक स्वते । तथा अर्वस्तू प्रकृति मध्यपाक अत्यते अर्थन् मृर्पामिति सध्यपाक अत्यते अर्थन् मृर्पामिति अर्थः मृर्णम् अपरमर्दञ्च आखुत्कराकारामित्यर्थ । तथा सिक्तापुञ्चोपम

यालुकाराशिमदृश यह्नीह चत्तुष्य गृद्यते न तु स्परेंगन,तत् खरपाक मुवते । पातञ्जले तु स्परांदिनापि पाकज्ञानमुक्त—' तावल्लीह पचेदेशो यावद्रलेख पीटितम् । समम्र जायते व्यक्त न नि सरित सन्धिमि. । श्रगुलिभ्या निष्टप्ततु यदा चूर्यत्वमागतम् । तदा मिद्ध विजानीयाङ्गीह लीहिविशारदः। वितितो विति वितिक्षस्पत्व वजेदिति। ताभ्यामेव शर्नेष्ट मिद्ध विद्याचिकित्सकः । मन्दमाहुस्तथा लीहमलव्धाखिललक्ष- एम् । श्रतिपाकेन तज्शेय खरमुज्भितलक्षणम् '' इति । जीवनाख्योप्याह—' श्रक्षनाम घन क्षिन्ध श्रथमूलमथोद्धरेत् । श्रक्षित्रमम्मिस क्षिप्त सम्यक् पाकस्य कक्षणम् ' इति ॥ ३६ ॥

त्रिविधोऽपि पाक ईहक् सर्वेपां गुण्कदेव न तु विफलः । प्रकृतिविशेष सूदमी गुणदे।पौ जनयत्यल्पम् ॥ विज्ञाय पाकमेवं द्वागवतार्थ्य द्वितौ द्यणान् कियतः । विश्राम्य तत्र लौहे त्रिफलादेः प्रद्यिपच्चूर्णम् ॥ ३७ ॥

त्रिविधोऽप्यय पाको न विफल इत्याह त्रिविध इत्यादि—लीहपाकानन्तर त्रिफलादिचूर्यप्रिचेपमाह विद्यायत्यादि—द्राक् शीव्र, चिती, नाकाशे । कियत्-च्याद्य विश्राम्येत्यनेन सर्वथा निष्टत्तिनं प्रतिपचते, किन्तिहं, मनाक् तप्तत्वम्, यदाह पतक्षिल —' श्रवतार्थ्य मनाक् तप्त ' इति । इतिकर्त्तव्यता त्विह योगरत्ना-करसमुच्चयोक्षानुसर्त्तव्या । यदुक्ष तत्रेव—'' श्रवतार्थ्य ततो दर्व्या परिघट्ट्य पुन पुनः । यदा पाणिसहो भूतो निचिपदौपध तदा । स्तोक स्तोक न दातव्य परिघट्ट्य निरन्तरम् इति ॥ ३७॥

यदि कपूरप्राप्तिभैवति ततो विगलिते तदुष्णत्वे । चूर्णीकृतमनुरूपं चिपन्न वा न यदि तज्ञाभः ॥ पकं तदश्मसारं सुचिरघृतस्थित्यभाविरूचत्वे । गोदोहनादिभाएंडे लौहभाएडाभावे सति स्थाप्यम् ॥३८॥

लाभे सित सीगन्ध्यार्थं कान्तकामकीयदोपहरणार्थन्त्र कर्पूरभिष्मेपमाह यदी-त्यादि—विगलित इति श्रपगते । श्रनुरूप इत्यनेन यावतानुत्कटगन्धस्वादूपलम्भो भवति तावन्मानमित्यर्थ । न ना न यदि तल्लाभ इति—यदि कर्पूरलामो न स्यात् तदा न ना चिपेदित्यन्वय । पक्षलीह दिनान्तरे वारत्रयमिति श्रव्य पेष्टव्यम् । सक्त हि योगरत्नाकरे—'' विशास्य रजनीमेका पेष्टव्य शीतलीकृत. । त्रिधा शिलातेल श्रुच्णे शिलापुत्रेण तादृशा "इति । श्रथं सिद्धस्य लौहस्य स्थापनार्थं पात्रमाह पक्षमित्यादि—सुचिरकाल ध्रतिथत्या श्रभावि रुद्धत्व यस्य तादृशे, वहुदिन व्याप्य ध्रतमावित यद् पात्रम्। तिस्मित्रित्यर्थं । गोदोहनादिभाण्ड दिध-दुग्धादिमावित लौहमाण्डाभाव इति कान्तादिलौहपात्राभावे, तदुक्त—" कान्तादिलौहमाण्डे तु तद्द्वत् तात्रमये शुभे । चिराज्यभाविते मार्दे लौहतात्राद्यसम्भवे "इति ॥ ३८॥

यदि तु परिप्लुतिहेतोर्घृतमीचेताधिकं ततोऽन्यस्मिन् । भाग्डे निघाय रचेद्भाव्युपयोगो ह्यनेन महान् ॥ श्रयसि विक्क्सिमूते स्नेहस्त्रिफलाघृतेन सम्पाद्यः । ' एतत् ततो गुणेचरिमत्यमुना स्नेहनीयं तत् । श्रत्यन्तकफप्रकृतेर्भचणमयसोऽमुनैव शंसन्ति ॥ केवलमपीदमशितं जनयत्ययसो गुणान् कियतः ॥ ३६॥

इदानीमय पाकार्थं दत्त धतमधिक यद्युपलम्यते, तदा तदाकृष्य भाविलीहरून-त्वनिवत्त्वर्थं पात्रान्तरे स्थाप्यमित्याह यदि लित्यादि-धतस्याधिक्यमेव ज्ञातन्यमित्याइ परिप्छतिहेते।रिति । परिप्छति पात्रादुच्छलित्वम् । इंद्रेत उप-लमेत । किमर्थ तद्ष्यत रचणीयमित्याह भान्युपयोग इत्यादि । हि यताँऽनेन लौइ-मात्रीच्छ्तितप्रतेन महान् उपयोगी महत प्रयोजन मानि वर्तते, स च रूदीभूत-लौहलेहनादिरूप । उक्त हि-- " भवेद् यदि क्वनिल्लीहे प्लवनादिषक हिव । पृथक्पात्रेऽपि तत् स्थाप्य केहनार्थं विरूचिते । अथवा मर्दन लौहे यन्मधुसर्पि-षेष्यते । तदनेनेव कर्तव्यमिति केचिद्व्यवस्थिता ।'' यदि पुनलोहपाकोच्छलित ष्टत न लम्यते, तदा त्रिफलाकाथकल्काभ्यामन्यद् ष्टत पक्तवा रुचितलीहर्य क्षेड्न कार्य्यमित्याह अयसीत्यादि । किन्तु उक्तत्रिफलाष्ट्रतात् लौहपाकोच्छालित श्रतमेवोत्-कृष्टगुणभित्याह पतिदत्यादि--पतिदिति लौहपात्रीच्छलित प्रतम् । तत इति त्रिफलाप्रतात् ग्रेणाचरम्बदकृष्टगुणमिति । श्रमुना प्रतेन तदय सिहनीयमिति । तस्यैव शतस्य प्रयोजनान्तरमाइ अत्यन्तेत्यादि--असुनैवेति लौइपात्राच्छलित्रहतेने-त्यर्थ । लीहीच्छिलितप्रतस्योत्कृष्टगुण्त्वमप्याह केवलिमत्यादि-केवल लीहपात्री-च्छलितप्रतम् । जनयत्यसौ गुणान् कियत इति लौहसम्बन्धेन लौहगुणान्विधाना-दिति भाव ॥ ३६॥

श्रथवा वक्षव्यविधिसंस्कृतकृष्णाश्रकचूर्णमादाय । लौहचतुर्थाईसमद्वित्रिचतु पञ्चगुणमागम् ॥ प्रचिष्याय प्राग्वत् पचेदुमाभ्यां भवेद्रजो यावत् ॥ तावन्मानानुस्मृते' स्यात् त्रिफलादिद्रव्यपरिमाणम् । इदमाप्यायकमिद्मतिपित्तनुदिद्मेव कान्तिवलजननम् । स्तश्राति तृद्जुधौ परमधिकाधिकमात्रया चित्तम् ॥४०॥ इति पाकविधि ।

इदानी पित्तदृष्टि प्रति अत्रैव लीहे चतुर्थार्द्धसमादिमानतोऽअकप्रवेशेन लीहा-अक पक्ष विधिमाद् अथवेत्यादि-वक्तव्यविधिनेति कृष्णाअक्रमभक्तवपुरित्यादिना यन्थेन योऽभ्रकसस्कारस्य विधिरविधिश्च वक्तव्यस्तेन विधिना सस्कृतमभ्रकचूर्ण निधन्द्रीकृतमादाय श्रयो लाहचूर्ण प्रक्षिप्य पचेदिति । कियनमान अश्रकचूर्ण श्राद्यमिति जिञ्ञामायामञ्जर्येव मागकममाद लीहचतुर्थेत्यादि—लीहचूर्यमपेच्य निश्चन्द्रीकृताभ्रच्र्थस्य चतुर्थो भाग पादिक इत्यर्थ.। तथा पचनीयकपलादित्रयो-दशपलान्तलीहचूर्णस्य दयन्तु श्रश्रस्य पुनरेको मागः, तेन लीहस्य भागद्वयम्, श्रभ्रस्य तद्रईमेको माग इति श्रभ्रस्याईमागत्वम् । तथा एको मागो लीहस्य श्रपर ण्को मागे।ऽभ्रत्येति लीहनमत्वमभ्रस्येति । एवमेको मागो लीहस्य, इयन्तु श्रश्र-स्येति द्विगुण्सम् । तथा एवमेको मागो लीहस्य, अभ्रस्य भागत्रयमिति अभ्रस्येति त्रिगुरात्वम् । लीइस्यैकोभाग भागचतुष्टयन्तु अश्रस्य, तथा एको भागो र्लाइस्य, पद्मभागस्तु अभ्रस्येति घेयम्। एव क्रमेण लौहाभ्रकाभ्या मिलित्वा एकपलादित्रयोदशपलान्तमानन्यवस्थया पाक. कार्य्य इत्याह प्राग्वदित्यादि । ण्वख्र सति श्रश्नकप्रवेशेन प्रधाननिष्पत्तिपाकार्थं त्रिफलाकाथदुग्धष्टतप्रचेष्यचूर्णपरि-माण कीष्ट्रामिति निर्णयार्थमाह उमाभ्या मनेदित्यादि-अयमर्थ उमाभ्या लौहा-अकाभ्या मिलित्वा यावद्रजो भवेत्, तावदेव लीष्टमान परिकल्प्य तन्मानानुसारेख त्रिफलादिमान कल्पनीयम् । पूर्वे केवलली इपाके त्रिफलादीना यावन्मानमक्षं इदानीं मिलितलीहाभ्रकेऽपि ताबदेवेत्यर्थ । श्रतएव लीहरमाभ्रकयोगमपेच्य योग-रत्नाकरेऽप्यभिष्टित-- ' यावल्लीहरजस्तरमात् भवेदर्धेन पारद । तद्धेन धन श्रोक्त मत्रेभतत्पतश्रले ॥ मानेन त्रितयस्यास्य नित्य श्राद्य पलत्रयम् " इति । ननु किमर्थं पुनम्त्ररोत्तरमधिकाधिकमात्रया लोहे चिप्तमश्रकमित्यत श्राह श्दमित्यादि-इदमञ्जक लीहे अधिकाधिकमात्रया समुपयक्त साद्रीधेना आप्यायकत्नादिग्रणविशि-

ष्ट मनतीत्यर्थे । आप्यायकरण अमृतिमिक्तमिन पुरुष नलोत्कर्षं करोतीत्यर्थ । स्तम्नाति चृट्चुभानिति चृटचुभौ पुरुषस्य नाधा न जनयत इत्यर्थ । किंवा आहार-जातमनिकलमाखिल परियामत्येन, एषा बुमुचा च न पुरुषमरण करोतित्यर्थ ॥४०॥ इति पाकनिधि ।

#### अभ्रकविधिः

कृष्णाभ्रमभेकवपुर्वज्ञाख्यश्चेकपत्रकं कृत्वा ।
काष्ट्रमयोदृखलके चूर्ण मुसलेन कुर्वीत ॥
भूयो दशदि च पिष्टं वास सूदमावकाशतलगलितम् ।
मण्डूकपर्णिकाया प्रचुररसे स्थापयेत् त्रिद्नम् ॥
उद्गृत्य तद्रसाद्य पिष्याद्रैमन्तिकधान्यभक्कस्य ।
श्रज्ञोदात्यन्ताम्लस्वच्छजलेन प्रयत्नेन ॥
मण्डूकपर्णिकायाः पूर्वरसेनैव लोडनं कुर्यात् ॥
स्थालीपाकं पुटनश्चाद्यरिप मृक्षराजाद्ये ॥ ४१ ॥

वक्तव्यविधिसत्कृतकृष्णाअकवृषामित्युक्तम् , अतरतामेवाअक्तमुद्धिमाहः कृष्णाअ-मित्यादि-अमेकवपुरिति मेकस्य वपु हरितपीतादिवर्णं भवति तेन यदिधक वर्णेन भेकस्य वपुरिव धकदेरोऽपि न मवित तदेव च वजाख्य वज्रोति तस्य प्रसिद्धिः तदुक्त योगरलाकरें "अप्रशस्त कठोराङ्ग गुरु कञ्जलसङ्गिमन् । यन्न गन्दायते वही नैवोच्छ्न भवेदपि । सदाकरममुद्भृत वज्रोति प्रथम घनम्" इति । तदश्रक नखादि-मिरेकपत्र कर्चेळ्यम्, भूय पुन ट्रादि शिलाया पिष्ट चूर्याकृत्य धनतरवासा छानयित्वाडघो यद्गलित तदगाद्यम् । मण्डूकपणी थानकुनीति ख्याता, तदसा-दिति मण्डूकपर्णी स्वरसातः। अन्तोदिति चोदोऽत्र शोर्णमक्तमिकथकम्, अन्तो-दञ्ज तदिरहात्। पेषणानन्तर यत् कर्त्तव्य तदाह मण्डूकपणिकाया इत्यादि । पूर्वरसेनेति यंत्रव मण्डूकपणीरमे दिनत्रयं स्थापितमासीत् तेनैव रसेन विमृज्य मोदकाकार कुर्य्यात्, मोदयतीति मोदन इति मोदनशस्दोऽपि मोदकार्थे द्रष्टन्यः । क्षचित्तु मोदकमिति पाठ । स च तत्त्वदाकारपुस्तकेषु न दृश्यते । मोदकाकारख्र कृत्वा दिनैक स्थापियत्वा शुष्कीकुर्य्यादित्युपदेशो वोद्धन्य । श्रयमञ्रकशोधन-प्रकार अधीराचार्य्यमतानुसारेख निवद । तत्र मण्डूकपर्खारसेन युनमोदककरण नास्ति तथापि पट्कर्मखा श्रीतसस्कृत्योपदेशादिद लिखितमिति बोध्यम् । तदनु चास्य अञ्चस्य चूर्णीकृतस्य स्थालीपाकपुटपाके कर्नच्ये तदर्थ द्रन्याण्याह स्थालीपाकमित्यादि——श्रार्थमृद्धराजाणेरिति लौहपुटनविधी भूतराजकेशराज्ञशतावरीक दमाणादिरसैरित्यर्थ । श्रापिरित्यत्र श्रन्थेरपि पाठः । विन्तु पूर्वपाठ एव टीकाकारसम्मत ॥ ४१ ॥

> ताडादिपत्रमध्ये कृत्वा पिएडं निधाय भस्नाग्नौ । तावद्देव यावनीलोऽग्निर्दश्यते सुचिरम् ॥ निर्वापयेच द्ग्धेन दुग्धं प्रचाल्य वारिणा तद्तु । पिष्ट्वा घृष्ट्वा वस्त्र चूर्णं निधन्द्रकं कुर्यात् ॥ ४२ ॥

#### रति अभ्रक्षविधि ।

ण्य पुटादिशोधिनस्याभ्य्य वहीं ध्मापनं वार्यं, ततस्तिद्वेधिमाह ताटादिपंताि —ताट खनामग्यात , आदिशब्दाय केतुकादिपत्र वोध्यम् । किन्तिदानीं ताटादिपत्रिपिहितयाभ्रम्य ध्मापन व्यवहरित । पिएटीकरण्य मृहराजादिद्रवानीटनादिधिमन्तव्यम् । दुग्ध प्रदाल्येति दुग्धनिवंधितोत्थापिताभ्रकसलम् यद्
दुग्धम् । यपपीदानीं ताटादिपत्रिपिहितस्य ध्मापनमभ्रस्य न व्यवहरित्तं, किन्तु
पुटोपाय निश्चन्द्रकत्य क्रियते, तथाप्यसात् बहुषा कृतत्वाय भा सम्यक् निश्चन्द्रपत्यमनेनाम्य भवत्येव । ध्मापित यतोऽभ्रम्य निश्चन्द्रीकरणमेव यथोक्षगुणकर्णे
प्रयोजकिति, तथा यन केनािष भेपजन भवतु । अपरापरेऽभ्रकमारणप्रकारा नानानाव्योक्ता सन्ति, ते च योगर्तनाकरसमुच्यादिधिगन्तव्या । तथ्नैक प्रसिद्धमतं
यथा—'आशुभकोदक्तः पिष्टमभ्रक तथ्न सिस्तम् । कन्दमाणस्थिमहारखण्डकगैर्मर्थ । यद्धदारकिपण्डेन कालमारिपजेन च । वृद्धीरवृद्धतीभृहत्वाणकोरारावर्जः । पेपण भावन गुर्य्याद् पुटपाकमनेकथा । याविधिश्चन्द्रकत्व स्थाद् ततो
गोचरसन च । कालमारिपजेनािष स्थालीपाक प्रदापयेत् । यावद् भस्त्वमायािन
शुद्धिय विद्यस '' प्रत्र वृद्धीर भेतपुननंवा, लच्नणा स्वनामख्याताः, मोचा रम्मा,
व्यक्तमन्यत् । किन्त्वय वृद्धिये प्राय न कियते ॥ ४२॥

इलभविधि,।

## लौहभच्याविधिः

नानाविधरुपशान्त्ये पुष्टधे कान्त्ये शिवं समभ्यर्ज्य । सुविशुद्धेऽहनि पुर्ण्ये तदमृतमादाय लौहाख्यम् ॥ दशकृष्णुलपरिमाणं शक्तिवयोभेदमाकलय्य पुनः। इयद्धिकं तद्धिकतरमियदेव न मातृमोदकवत्॥४३॥

इदानीं निष्यन्तलौहस्य मच्याविधिमाह नानेत्यादि—नानाःविधव्याधय पुरायाज्वरातीसारग्रह्यारिकापित्तराजयसमप्रभृतय । अमृतामिति अमृतामिवामृतम् । तच कियन्मानमुपयोज्य तन्नाह दशेत्यादि—कृष्याला रिक , तेन चरकमानमाधक-मिल्थं । अयव्च दशरिकापिरमायारम्भ उत्तनपुरुषवलवयोऽभिहित , तेन मध्य-माधमपुरुषशिकवयोऽपेत्तया इद दशरिकापिरमाया यथाक्रम मध्यमाधमयोरिधकमिष कतरच भवतीति । वलावपेत्तया जक्षपरिमायादल्पालपतरपरिमायोनाप्यारम्भ । वर्द्धने कर्त्वव्ये न पुनर्दशरिकापिरमाया युक्तमिति कृत्वा तावत्परिमायामेवकर्त्तव्यमिति मात्मोदकवित्रवन्धे न कार्व्यं इत्थर्थ । तेन "आरम्भो वर्द्धनञ्चापि पञ्चादित्र्येक गुञ्जया।" तथापि पञ्चसप्तनवरिक्ता प्रथमितने, तथा—"रिक्तिमेकामुपक्रम्य यावत् स्युनेव रिक्तका " इत्यादि । यत् तन्तान्तरे जक्ष, सर्वमनेन तत्त् सगृहीतम् ॥ ४३ ॥

सममस्णामलपात्रे लौहे लौहेन मर्दयेद् गाढम्। दत्त्वा मध्वनुरूपं तदनु घृतं योजयेदधिकम्।

वन्धं गृद्धाति यथा मध्वपृथक्त्वेन पद्धमविशिषत् ॥४४॥
लीहमर्दनार्थं पालमाह समेलादि—उत्ताननामकरतलस्थापनार्थं तत् पाल
माजनाकार करणीयम् । लीहेनेति लीहदर्यहेन । मधु तदुचित दत्त्वा, श्रिधिकामिति
मध्वेपच्चया किञ्चिद्दिक छत मिश्रणीयम् । मर्दनिविध्यर्थं लच्चणमाह वन्धिमलादि—
श्रिविशिषदिति स्वतन्त्र मधु श्रपृथक्त्वेन एकत्वेनाविशिषद् विशेषमकुर्वेत् श्रतपव
पद्ममिति ॥ ४४ ॥

इदिमह दृष्टोपकरणुमेतद् दृष्टन्तु मन्त्रेण । खाह्यान्तेन विमर्दो भवति फडन्तेन लोहबलरज्ञा । सनमस्कारेण विकिभेचणुमयसो ह्रमन्तेन ॥

ॐ श्रमृतोद्भवाय स्वाहा।" "ॐ श्रमृते हूं फर्" "ॐ नमश्चराडवज्रपाराये। महायज्ञसेनाधिपतये सुरगुरुविद्यामहा-वत्ताय स्वाहा " "ॐ श्रमृते हूं "॥ ४४॥

दृष्टादृष्टाभ्या हि कार्य्यसिद्धिरिति दृष्टमुक्त्वा मन्त्रजमस्यादृष्टार्थमाह इदिम-

त्यादि—तत्र प्रथम लौहरचणमन्त्रमाह ॐ त्रमृतोद्भवावेत्यादि—प्रय खाहान्तो मर्दनमन्त्रः । लौहरचणमन्त्रमाह ॐ अमृते हू फट् इति । विश्वदानमन्त्रमाह ॐ नम इत्यादि—भचणमन्त्रमाह ॐ अमृते हूमिति ॥ ४५ ॥

ं जग्ध्वा तदमृतसारं नीरं वा चीरमेवानुपिवेत् । कान्तकामकममलं सञ्चर्व्यं रसं पिवेद्दिने न तु तत् । स्राचम्य च ताम्बूलं लाभे घनसारसद्दितमुपयोज्यम्॥४६॥

लीढभेषजपाकार्थमनुपानमाह जग्ध्वेत्यादि—नीरश्चामल आकाशगुणत्रयभृिय-हम्भागानय, कीर च गन्य सर्वत्र, उक्तञ्च—'' सर्वत्र गन्यमेवेति मतमाह पत-अलि: '' इति । अनुपानञ्च लौटापेचया चतुःषष्टिगुणम् । तद्कतः योगरत्नाकरे— '' अनुपान चतुःषष्टिगुण् प्राहुः सदा नुधाः ''। तथा अन्यत्रोक्तम्—अनुपान प्रयो-कन्य लीहात् पञ्चगुण् पय '' इति । अनुपान कृत्या लौहदोषनिरासाय निस्त्वच कान्तकामकस्य स्वरसमान पेयमित्याह कान्तकामकमित्यादि—आचम्येति—आच-मनञ्च श्वरातिजलेन हसोदकेन वा । यद्का—'' कृत्वानुपानमाचम्य श्वरातिन जलेन वा । यदा हसोदकेनेव '' इत्यादि ॥ ४६ ॥

नात्युपविष्टो नाष्यतिभाषी नातिस्थितस्तिष्ठेत्। श्रत्यन्तवातशीतातपयानस्नानवेगरोधादीन् ॥ जह्याच दिवानिद्रामहितश्चाकालभुक्षश्च। वातकृतः पित्तकृतः सर्वान् कट्वम्लितिक्रकषायान्। तत्त्वणविनाशहेत्न् मैथुनकोपश्चमान् दूरे॥ ४७॥

अनुपानादिक कृत्वा यथा स्थातव्य तदाइ नात्युपिवष्ट इत्यादि—नातिस्थित इति तुङ्गोभूत दण्डायमान सन् अति न तिष्ठेत् चिर न तिष्ठेतित्यर्थ । अपर परिवर्जनीयमाइ अत्यन्तेत्यादि—अत्यन्तेति वातादिभि सम्बध्यते, यानमश्वादि-यानम्, आदिशब्दादिर्धाचिन्ताविषयणाङ्गन्यासादीना अहणम् । अकालभुक्त अजीर्णादौ भोजनम् । वर्जनीयरसानाइ वातकृत इत्यादि—वातकृत इत्यादिक हेतुगर्भमेव विशेषणं, किंवा वातकृत. पित्तकृत इत्यनेन कट्वम्लतिक्षकषाया पिप्पत्यामलकगुङ्क्चोहरीतक्यादयो वातिपत्ते न कुर्वन्ति, तेषामुपयोगो न विरुध्यत इति दश्यति । विशेषण वर्जनीयविधानमाइ तत्व्वणत्यादि—अञ्चापि जिद्यादिति पूर्वोक्त सम्बध्यते ॥ ४७ ॥

श्राशितं तद्यः पश्चात् पततु न वा पाटवं छुडु प्रथताम् ।
श्राचिभवतु न वान्त्रे क्तृज्ञित भोक्तव्यमञ्याजम् ॥ ४८॥
प्रातरप्युक्त लौहन्नेचत कस्यामवस्थाया मोकव्यमित्याह श्रशितिमत्यादि श्रशित तदय पश्चादिति गुरेन पततु प्रवर्ततां, न वा, तथा श्रासिरिति नुभूक्षा पीडा मवतु वा न वा, तथापि पाटवम् श्रालस्यादिराहित्य छुडु मवतु तथा लौहसम्मानितदेहे सम्यग् वायो सञ्चर्णेनान्त्र क्वनम्च छुडु भवतु तदैव श्रव्याज्ञ नि शङ्क भोक्तव्यम् । छुडु इत्यङ्गीकाराविश्रामे । पतेन पाटवमन्त्रक्वनमेतदुमयमेव मोजन प्रति प्रयोजकामित्यर्थ ॥ ४८॥

प्रथमं पीत्वा दुग्धं शाल्यकं विशद्सिद्धमिक्किम्।

घृतसंप्लुतमश्नीयान्मांसैर्वेह्दस्मे प्रायः॥

उत्तममूपरभूचरिविष्करमांसं तथाजमेणादिकम्।

श्रन्यद्पि जलवराणां पृथुरोमापेत्तया ज्यायः॥

मासालाभे मत्स्या श्रदोपला स्थूलसद्गुणा श्राह्याः।

मद्गुररोहितशकुला दग्धास्तु पललान्मनाड्न्यूनाः॥

श्रंगाटकफलकशेष कदलीफलतालनारिकेलादि।

श्रन्यदिष यच वृष्यं मधुरं पनसादिकं ज्यायः॥

केबुकताडकरीरान् वार्चाकुपटोलफलदलशमटान्।

मुद्रमस्रेजुरसान् शंसन्ति निरामिषेष्वेतान्॥ ४६॥

इदानीं मोजन येन विधिना कर्चन्य तदाह प्रथमित्यादि—विशर्व शुक्रम्, अक्षित्रमिति नान्योन्यमलसम् । दुग्धमिति जीवदरमशुक्तावाः कृष्णाया वा प्रवृद्धवरमाया वा श्राद्धम् । वैहर्त्रमेरिति तिचिरादिविहत्तमसम्मृते. । प्राय'रान्दादाजैणादिक वोद्धन्यम् । एनदेवाह उत्तममित्यादि—कपरभूचरजाङ्गः लदेराचरा. लावतिचिरित्राकादयः, विकिराः कुक्कुटादयः, एवा माससुच्तमः मिति वालस्थिवरन्याधितादिवाजितानाम् । आदिशन्दात् कृष्णसारगोधादयः । अन्यदपीति विकिरादिन्यतिरिक्तमित्यर्थः । जलचरा हसादयः । पृथुरोमापेचया च्याय इति मत्त्यापेचया श्रेष्ठमित्यर्थः । अन्ये तु पृथुरोमा शकुल्यमित्यादुः । मामाः प्राप्ती मत्त्यविरोषोपयोगमाह मासालाम इत्यादि । के ते सद्युणा इत्याह मद्युरे-त्यादि—एतेन मद्गुरादयो दन्धाः सन्तः पललादिति मांसात् मनाइ न्यूना किञ्चि- द्धीना इत्यर्थः । इदानांभित्रोचित फलकन्दमाह शृक्षाटकेत्यादि—श्रादिशब्दादान्न-खर्जूरादिकम् । निरामिषव्यज्ञनार्थमाह केबुकेत्यादि—-ताडकरीरास्ताडाकुरा । फलदलेति पटोलस्य फलदलम् ॥ ४१ ॥

शाकं प्रहेयमाखिलं स्तोकं रुचये तु वास्तुकं द्यात्। विहितनिषिद्धाद्न्यन्मध्यमकोटिस्थितं विद्यात्॥४०॥ शाक पुन सकलमेव वर्जनीयमिलाह शाकमिलादि—प्रहेयमिलवश्यला-ज्यम्, रुच्यर्थं पुनर्वास्तूकमेवालपप्रमाण द्यात्। विहितनिषद्धव्यतिरिक्तं यद्वाच्य तत साधार्णं श्रेयमिलाह विहितेलादि॥ ४०॥

> तप्तदुग्धानुपानं प्राय सारयित बद्धकोष्ठस्य । श्रनुपीतमम्बु यद्वा कोमलशस्यनारिकेलस्य ॥ यस्य न तथा सरित सयवन्नारं जलं पिबेत् कोष्णम् । कोष्णं त्रिफलाकाथं न्नार सनाथं ततोऽप्यधिकम् ॥४१॥

इदानीं बद्धकोष्ठ प्रति श्रनुपानविशेषमाह तसेत्य।दि—तसचीरानुपानेन व्यव-हर्रान्त वृद्धाः। नारिकेलोदकञ्च प्रचरति। एवमपि क्रेते यदा न प्रवृत्तिस्तदा तस्य किं कर्तव्यमित्याह यस्थेत्यादि। उप्णजले कोष्ठानुरूप यवचार प्रचिप्य पिवोदित्यर्थः। प्रयोगान्तरमाह त्रिफलेत्यादि—चार यवचार, सनाथमिति सहितमित्यर्थ। यवचार प्रचेपक्ष ''प्रचेपः पादिक काथ्यात्" हति परिमाष्यैव। तत हत्युक्षयोगात्॥ ११॥

त्रीणि दिनानि समं स्यादि चतुर्थे तु वर्द्धयेत् क्रमशः। यावचाष्टममापं न वर्द्धयेत् पुनिरतोऽप्यधिकम् ॥ श्रादौ रिक्कद्वितयं द्वितीयवृद्धौ तु रिक्ककात्रितयम्। रिक्कपञ्चकं पञ्चकमत ऊद्ध्वे वर्द्धयेन्नियतम्॥ ४२॥

लौहप्रमाखनुद्धिहिं क्रमेखेन कार्या अतस्तमेन नृद्धिकम दर्शयित त्रीखि दिनानीत्यादि—येन परिमाखेन लौहमचखारम्म कृन, तेनैन परिमाखेन दिनत्रय कार्यम्, चतुर्थदिनादारम्य पुनरिप दिनत्रय यानत् समनृद्धौ नर्द्धयेत् त्रीखि दिनानि सम स्यादित्युक्ते, ततोऽपि सप्तमदिने या रिक्तनृद्धि कृता तयेन नृद्ध्या पुनरिप दिनत्रय यानत् वर्द्धयेत् त्रीखि दिनानि सम स्यादित्युक्तेरित्यादि नोध्यम् । एव क्रमेखाष्टमाषकपर्यन्त नृद्धि कार्यो, इतोऽधिकनृद्धिनं कार्योत्याह यानदष्टमसाष-मित्यादि—क्रमशो नर्द्धयेदित्युक्तमतस्तमेन क्रममाह आदानित्यादि—क्रमदो लौह-

प्रयोगारम्मे रिकेद्दय कृत्वा ज्यहमुपयोज्यम्, तत. प्रथमवृद्धौ चतुर्थदिनमारम्य रिकेद्दय कृत्वा ज्यह वृद्धि कार्य्या, तेन दितीयच्यहे प्रतिदिन रिकेकाचतुष्टय मनति, ततो दितीयवृद्धौ रिकेत्रय कृत्वा ज्यह वृद्धि, तेन तृतीयव्यहे प्रतिदिन-सप्तरितका मनित, श्रत ऊर्द्धं चतुर्थपञ्चमादित्र्यहेषु श्रीणि दिनानि सम स्यादित्युक्तरित्या क्रमेण रिक्तपञ्चम कृत्वा श्रष्टमाषक यावद् वर्द्धयेत् । तेन चतुर्थज्यहे द्वादशरिक्त., पञ्चमत्र्यहे सप्तदशरिक्त, षष्टे द्वाविशतिरित्यादि श्रेयम्, तेन पञ्चदिनादिषक सप्तसप्ताहे दशरिकिकमाषेण दिरिक्तकाधिका श्रष्टौ मापकौ भवन्ति, श्रत्र च तत्र चतुर्यक्तकावृद्धि त्यक्त्वा यथोक्तवृद्धौ वृद्धास्तथा कुर्वन्तीलेव सिद्धान्त ॥ ५२॥

वात्सरिककरूपपत्ते दिनानि यावन्ति वर्द्धितं प्रथमम् । तावन्ति वर्षशेषे प्रतिलोमं हासयेत् तद्यः॥ तेष्वप्रमाषकेषु प्रातमीषकत्रयमश्रीयात्। सायञ्च तावदहो मध्ये माषद्वयं शेषम्॥ ४३॥

#### इति भज्ञण्विधिः।

---:0:---

इदानीं सवत्सर यावद् यदि कर्त्तं व्यभिद रसायन स्यात् तदा वर्षांवरोषदिनानि यावन्ति भवन्ति तावन्त्येव प्रतिलोम रक्तकादिक्रमेण हास कार्य्य इत्याह मात्मिरिकेत्यादि—हदानीं पद्मदिनाधिकसप्तसप्ताहैरष्टमाषकप्रमाणे सक्षाते सितं वत्सराम्यन्तर एव केन प्रकारेण तल्लौहमुपयोज्यमित्याह तिष्वत्यादि—अष्टमाषकेषु मध्ये माषकत्रय पात । तावदिति माषकत्रय सायाहे, श्रह्मो मध्ये भोजनसमये रोष माषकद्वयम् । श्रन्यत्राप्युक्त—'पातर्माषत्रय कार्य्यं मध्याहे माषकद्वयम् । माषत्रय दिवारोषे 'माषकाष्टकमचणम्' इति । इदानीन्तु रिकतकाद्वयमारम्य योगिन प्रति रिक्तकाद्वयवृद्धेव त्रिसप्ताहपञ्चमप्ताहादिभि किश्चिद्दिक्षमाषकद्वय यावत्त वृद्धिः । ततो दिसप्ताहादिभि रिक्तकाद्वयनैव हास इति प्रायो व्यवहर्गन्त वृद्धाः । उत्तरं-क्रिया चात्र द्विगुणा कार्याः तदुक्त पातञ्जले—'इति मुख्यिक्रयायाः स्याद् दिगुणा चोत्तरिक्रया ।'' उत्तरिक्रयात्र नात्युपविष्टो नात्यतिमाषी नातिस्यतिस्तिष्ठे-दित्यादिना उक्तैव ॥ ५३॥

इति भच्याविधि ।

पवं तदमृतमञ्जन् कान्ति लभते विरिष्णरं देहम्।
सप्ताहत्रयमात्रात् सर्वरुजो हन्ति किं वहुना॥
श्रार्थ्याभिरिह नवत्या सप्तविधीनां यथावदाख्यातम्।
श्रमतिविपर्थ्यसंश्यश्रत्यमनुष्ठानमुत्रीतम्।
मुनिरिचतशास्त्रपारं गत्वा सारं ततः समुद्रृत्य।
निववन्ध वान्धवानामुपरुत्ये कोऽपि षद्कमी॥४४॥
श्रमृतसारं लौहं समाप्तम्।

इदानीमस्य लौह्स्य फलमाह एविमित्यादि—उपमहरति आर्थाभिरित्या-दिना। सप्तिविधयश्च—माध्यसाधनपरिमाणिविधि, स्थालीपाकविधि, पुटनिविधि, प्रधाननिष्पत्तिः, पाकविधिरञ्जविधिर्मच्याविधिश्चेति । एषामनुष्ठान न्वत्या आर्थाभि. कोऽपीष्टकमी अमतिविपर्थंयसशयशून्य यथा स्यात् तथा निववन्ध इत्यर्थः। कोऽपीत्यानिदिष्टनामधेय पुरुष उत्कृष्टरूपः। षट्कमी अोत्रिय, उक्त हि—"याजन यजन दान महाचैव परिग्रहः। अध्यापनमध्ययन श्रोत्रिय षड्भिरेव च', इति। श्रमति. सर्वथा शानाशानराहित्य तस्मिन्नतद्वुद्धिर्भमः, स च द्विधा—एककोटिको- इनक्कोटिकश्च, तन्नाचो विपर्ययय, दित्यश्च सशय इति। श्रनुष्ठीयत इत्यनुष्ठान मन्धसन्दर्भ एव। यथावदाख्यातमित्यत्र पूर्वाचार्व्यिरिति शेषः। उन्नीतिमिति ग्रक्त्यत्या चपदेशपूर्वक कथितमित्यर्थ । मुनिरचितेत्यत्र मुनिर्नागार्जुन । बान्धवानामिति मनुष्याणाम्। एषां चनुद्धीश्चरत्वेतावश्चेषिति ग्रणद्वसम्हम्, एते-नास्य निवन्धस्य अमतिविपर्थंयसशयनिरासः सचेपश्चेति ग्रणद्वसम्हम् ॥ ५४॥

> श्रमृतसारलीह समाप्तम् । दासरसायनलीहम्

١

यत्र तत्रोद्धवं लौहं निःशेषं मारितं यदि ।
त्रिफलान्योषसंयुक्षं भच्चयेद् बलिनाशनम् ॥
सामान्याद् द्विगुणञ्जोड्ं कलिङ्गोऽष्टगुणस्ततः ।
तस्माच्छतगुणं भद्रं भंदाद्वजं सहस्रधा ॥
वज्रात् षिरगुणः पारिडर्निरविद्शिभिगुणः ।
ततः कोटिसहस्रं वा श्रयस्कान्तं महागुणम् ॥ ४४॥
इदानीं नागार्जुनोक्ष दामरसायनलौहमाह यत्र तत्रेसादि—यत्र तत्र भव-

मिति श्रोड्किलिङ्गादि यह किश्चिद्देशमव वजपायख्यादिकमेन नि शेषमिति सर्वथेन मृतम् । निःशेषमित्यत्र निरुत्थमिति पाठ टङ्ग्यादियोगेनापि नही ध्मापनाद् यदुपतिष्ठते पुनलीहमान नापधत इत्यर्थ । त्रिफलेत्यादि—व्योध त्रिकह । त्रिफलात्रिक्त पुनलीहमान नापधत इत्यर्थ । त्रिफलेत्यादि—व्योध त्रिकह । त्रिफलात्रिक्त पुनलीहमान लौहसम नोध्यम् । स्युक्ष सम्यक् युक्षम् , तेन मधुष्ट-ताभ्या लीहपात्रे लौहदयडेन निमर्थ मक्तयीयम् । रिक्षकादिक्रमेयिति नदन्ति वृद्धा । श्रम्ये लादी मापकमकमुपयोज्यमित्याद्ध । वृद्धी मध्ये ना श्रीवलमपेक्य यथाशाकि कुर्वन् सार्वस्वत्सराद्य वर्ती नाश्योदिति दासरमायननदिकायामुक्तम् । लौहाना गुणमाह सामान्यादिलादि—दण्डभिक्षपर्यन्तदेशदिक्षणोत्तरदिक्मम्मन लौह सामान्यम् , दिगुणमिति सामान्यलोहात् दिगुणगुणकारकम् । श्रीष्ट्रमिति श्रोड्देशो-भूवम् , मद्रमिति भद्रदेशोद्धवम् । एषाञ्च मक्रणलक्षणञ्च टोकायामनुसन्येयम् , इद्द तु विस्तारमयान्न लिखितम् ॥ ११ ॥

#### ताम्रयोगः

रसतस्ताम्नं द्विगुणं ताम्रात् रूप्णाभ्यकं द्विगुणम्।
पृथगेवैषां श्रुद्धिस्ताम्रशुद्धिस्ततो द्विविधा ॥
पत्रीकृतस्य गन्धकयोगाद्वा मारणं तथा लवणे.।
श्रक्के ध्मापितताम्ने निर्गुण्डीकल्ककाश्चिकामम्ने ॥
यत् पतित गैरिकामं तिर्पष्टमर्द्धगन्धकं तद्वु ।
पुटपाकेन विशुद्धं शुद्धं स्यादभ्रकन्तु पुनः ॥
दिलमोश्चिमूलपिएडं निर्प्तं तद्यु मार्दसम्पुटे लिते ।
तीच्णं दग्धं पिष्टमम्लाम्मसा साधु चिन्द्रकाविरिहतम् ॥
रेचितताम्रेण रस्त. सल्वशिलायां घृष्ट. पिण्डिका कार्य्या ।
उत्स्वेद्य गृहस्तिलेन निर्गुण्डीकल्केऽस्वरूच्छुद्धौ ।
पतत् सिद्धं त्रितयं चूर्णितताम्राद्धिकैः पृथम् युक्तम् ॥
पिप्पलीविडङ्गमित्वैः स्ठच्णं द्वित्रमाषिकं मन्त्यम् ।
श्रलाम्लिपत्तश्वयथुग्रह्णीयदेमादिकुन्तिरोगेषु ।
रसायनं महदेतत् परिहारो नियमतो नात्र ॥ ४६ ॥
सम्प्रति तात्रगोगमाह रमत हस्त्राहि—शोषताद परदात् तात्र मन्त्यमाण-

फ्रभेण मारितचूर्णावस्य दिगुण प्राह्मम्, कृष्णाञ्चन्न वस्यमाणरीत्या शोधित चूर्णा-षस्य ताझाद् दिगुण शाह्यम् । क्रुष्णेति अञ्जकविशेषणात् भेकवपुषे। निरास. । एषा रमादीना पृथगेन शुद्धिः। तत इति तेषु मध्ये ताम्रशुद्धि द्विधा श्राह । कि तत्र्विकीर-ह्यमित्याष्ट्र पत्रीकृतस्थेत्यादि-मारणमिति छेद. । ण्तच तनुपत्रीकृतम् । दितियां शुद्धिमाए तथा लवरीरित्यादि-लवरी: सैन्धवादिमि पञ्चिमरेव । आवत इति लिप्ते। निर्शुंग्छी निशिन्दा, तदीयमूलपत्रकल्कयुपतकाजिकमग्न इत्यर्थः। अत. द्रुत-रूप यत् ताझ पतित तद्गैरिकवल्लोहितमित्यर्थ. । ताझादर्ख गन्थक दस्वा तावदेकी-फ़त्य पेष्टस्य, तत. स्थाल्यामारोप्य तुपमृत्तिकया लिप्त्वा लौइवत् पुटो देय. । अञ्च-कराद्भिमाह अभकन्तित्वायादि-अम्लाम्भसा काश्विकेन पिष्ट सत् हिलमोचिका-विग्डे कृत्वा एकगृत्पात्र निधाय अपरेख विधाय तीच्यमिति बहुल यथा स्यात तथा दग्ध पुटित सत् चिन्द्रकारिहत भवति, तदनु पुटादाक्ष्ण्य शिलाया पिष्ट्वा चूर्णाकृत्य तत् प्राधामित्यर्थः । अथ जारितताम्रचूर्णमिलितस्य रसस्य शुद्धिप्रकारमाष्ट रेनितेत्यादि --रेनितताम्रेण सह रस खल्वशिलाया मेलियत्वा धृष्ट्वा पिणिडका कार्या । तदनु निर्गुएडीकलकमिश्रिते गृएसालेले काञ्जिके सा पिरिडका असक्वदि-स्यनेकवारमुत्स्वेय, शुद्धाविति शुद्रध्यर्थम् । उत्स्वेदनप्रकारश्चाय स्तानियामक-भाग्यादिगणान्यतमद्रथे रसपिरिडत मिलितरसताम्रचूर्णं दोलापाकेन निर्ग्यडीकल्केन मिश्रितकाक्षिकेनाथो ज्वालया ताप्यमानेन उत्स्वेदनीयमसकादित्यर्थः । स्तिनियाम-कश्च भार्गादिगखो योगरत्नाकरे यथा-- " मार्गा शरपुक्ता कुठारिक्वना मझी म्पिकपर्णिका पुनर्नवा अपराजिता अवाक्पुष्पी भेकाहा रुदन्ती मयूरशिखा चिति । भाग्यादिरेव विख्यातो गया. सतानियामक ।" इति । अग्रितापेनापि रसः काचिदपि न यातीत्यर्थ. । स्तानियामकौपधमध्यग रस सकाश्चिकदोलायन्त्रे पचेत् । तदनु त्रितयमिद रसाझताझचूर्यं पिष्पल्यादिशयन्च प्रत्येक ताझचूर्यादर्बमान गृहीत्वा प्रयोजनीय, तत एकी कृत्य अधिवलाधेप वया दित्रिमापिक।दिकसुपयोज्यम्। षादिशब्देन दशप्रशतयः । कुचिरोगेष्विति अग्रिमान्यादिष्वपीत्यर्थं ॥ ५६ ॥

### ताम्रयोगः

तनुपत्रीकृतं ताम्रं नैपालं गन्धकं समम्। द्त्वा चोद्ध्वमधो मध्ये स्थालिकामध्यसंस्थितम्॥ कृत्वा स्वलपशरावेण स्थालिमध्ये पिधाय च। शकरामक्रलेपेन लिप्त्वा सन्धि तदृद्ध्वेतः॥ वालुकापूरितस्थाल्यां पिहितायां पुनस्तथा । सुलिप्तायाञ्च यामैकमधोज्वालां प्रदापयेत्॥ तत त्राक्षप्रताम्रस्य मृतस्य त्विह योजना । श्रथ कर्ष गन्धकस्य विहस्थलौहपात्रगम्॥ शिलापुत्रेण सम्मर्धे दृतं घृष्टं पुनः पुनः । कृत्वा देयं मृतं ताम्रं कर्षमाणं ततः पुनः॥ रसोऽम्लमथितः शुद्धस्तावन्मात्रः प्रदीयते। ततस्थैवं संमर्च पुनराज्यं प्रदापयेत्॥ श्रप्रीवन्दुकमात्रञ्ज मर्दयेन्मूार्ज्जितं तथा। सर्वे स्यात् तत आकृष्य शिलापुत्रादिसङ्गतम्॥ संहत्यालम्बुषरसप्रस्तेन विलोडितम् । पुनस्तथैव विह्नस्थलौहपात्रे विमर्श्येत्॥ यावद् द्रवत्त्यं पश्चादाकृष्य सम्प्रपेषितम्। श्रतम्बुषरसेनैव गुडकं सम्प्रकरपयेत्॥ तित्पग्डं वस्त्रविस्तीर्गे पिग्डे त्रिकटुजे पुनः। वसनान्तरितं दत्त्वा पोष्टलीं कारयेद् बुधः ॥ ततस्तां पोद्दलीमाज्यमग्नां कृत्वा विघारिताम् । स्त्रेण दराइसंलग्नां पाचयेत् कुशलो भिपक्॥ यदा निष्फेनता चाज्ये पुटिका च हढा भवेत्। तदा पकं तमारुष्य पञ्चगुञ्जातुलाघृतम्॥ त्रिकदुत्रिफलाचूर्णं तुल्यं प्रातः प्रयोजयेत्। तकं स्यादनुपानन्तु श्रम्लिपत्तोच्छ्ये पुन्। ॥ त्रिफलैव समा देया कोष्णं वारि पिवेदनु । सप्तमे दिवसे रिक्षवृद्धिस्ताम्रातु मापकम्॥ यावत् प्रयोगश्च तथैवापकर्षः पुनर्भवेत् । योगोऽयं त्रहणीयसमिपत्तश्रलाम्लिपत्तहा॥

# रसायनञ्जेतिदिष्टं गुदकीलादिनाशनम् । न चात्र पारिहारोऽस्ति विहाराहारकर्मीणे ॥ ४७॥ इति ताम्रयोग.।

ताम्रयोगान्तरमाह तनुपर्शाकृतामित्यादि—नेपालमिति नेपालदेशो प्रव ताम्रम् । तनुपत्रीकृतिमिति पत्तल यथा स्यात् तथा पत्रीकृतम्, पत्तलता कगटकविध्यावस्थीपादा-नेन लभ्यत इति । तानि च तनूनि ताम्रपन्नाणि श्रनेकानि कृत्वा जम्बीराम्लरेसन मम्मधं प्रचाल्य संशोध्य तदनु तात्रमममेव शोधितगन्धक सब्च्यर्थ, तदनन्तर स्थालिकाया कियदपि गन्धकचूर्णं दत्त्वा तदुपरि कियदपि ताम्रपत्र निवेश्य पुनस्तदुर्पार गन्धकचूर्यं देयिमत्यवक्षमेख सर्वाखि तात्रपत्राखि गन्धकचूर्य मिहितानि उपर्यधोभोवन निवेश्य, तनोऽल्पशरावेण स्थाल्यन्तर्निवेशयोगेन तत् ताग्रपत्र पिथाय, तच्छरावप्रान्तज्ञ शर्करासिएतभक्तलेपेन लिप्त्वा तस्य शरावस्यो-परिभागे वालुकापूर्ण तत् स्थालीपात्र कृत्वा शरावेण तस्याः स्थाल्या मुख पिधाय तन्नव मक्तलपेन लिप्ता प्रष्टरेमनमनिच्छेदेनाधी ज्वाला प्रदापयेद । इति ताग्रगारणम् । ततस्तत् मृतताम्र स्थाल्याः समाफ्रब्य चूर्णयित्वा शोधितगन्धका-दिभि सह योजनीयमित्याह तत इत्यादि-कथ योजना कर्त्रव्यत्याह श्रथेत्यादि-श्रथ तात्रामारणानन्तर शोधितगन्धकस्यापरचूर्णकर्पमेक ज्वलदद्वारस्थलीइपात्रे कृत्वा शिलापुत्रेण सम्मर्ध पौन पुन्येन एष्ट्वा द्रवीभूते तस्मिन् मृतताश्रचूर्णं कर्ष-मान दत्त्वा तथैव शिलापुत्रेण घर्षणीयम् । ततः पुनरिति ततोऽनन्तर अग्नितापद्रुत एव श्रस्मिन् रस' पारदोऽपि तावन्मान कर्पमान एव देय । पुनस्तेनैव मर्दनीय , किन्तु थिष्टे। रस श्रम्लमथित' सन् शुद्ध , चोद्गरीजम्बीराधम्लरसमथनाच शुद्ध । तदनु श्रष्टविन्दुपरिमित एत दत्त्वा पुनर्मर्दयेष शिलापुत्रेखैव । तथा तेन प्रकारेख सर्वं गन्थकतात्रादिक समू चिछतमेकी भूत स्यात्। ततस्तरमाह्मी हपात्रात् नि शेपमाकृष्य तथा शिलापुत्रादिसद्गत शिलापुत्रादिम्रथित सुदृढमि भूत सहत्य पलहयेनालम्यु-परसेन विलोब्य रसचयपर्थनत पुनर्विदिखलौद्दपाले मर्दयेत् , तत श्राकृष्य श्रलम्बु-परसेनेव शिलाया पिष्ट्वा गुष्टिका कल्पयेत् । तदनन्तर किं विर्थयमित्याह तत् पिगड-मित्यादि-तत कतिपयाद्गुलवकाखगढे पिगटानुरूप त्रिकडक दत्त्वा विस्तार्य्य तदु-परि अपरावितताातीनिर्मलवस्त्रसण्डे त ताझौपधगुटक निधाय ततो दृढा पोट्टलिका बद्ध्वा, प्रतपूर्णसालीपात्रे स्त्रेण दण्डसलग्रनया दोलापाकाविधिना ता पोट्टली तंत्रारोप्य प्रतानिमन्ना कुला पचेत् । पाकषानार्थमाह यदेत्यादि-पुटिका च दृढा

भविदिति पुटिका पोट्टालिका, तस्या दृढता च दिण्डकयाताड्य श्रेया। त्रिकदुत्रिफला-याक्ष मिलित्वेव पञ्चगुञ्जेति ताम्रतुल्य, प्रातित्यद्धप्रहरे। श्रनुपानमाद्द तकमित्यादि। श्रम्लिपेते तु त्रिकदुचूर्णं परित्यच्य त्रिफलेव ताम्रतुल्या देया, तथा तक्षन्र परित्यच्य उच्णजलेमवानुपेयमित्याद्द श्रम्लिपत्तीच्छ्रय इत्यादि—त्रिफलेव समा देया त्रिफलेव ताम्रतुल्या देयेत्यर्थ । तथा कोष्णजलम् श्रनुपिवेदिति । वृद्धिकममाद्द समा इत्यादि । मप्तम इत्यत्र वीष्ता श्रेया, तेन सप्तमे सप्तमे दिवसे रिक्तकाप्रमाणेन वृद्धि कार्या, मापकमान यावदय प्रयोग कार्य्य । तेन मापकाद्द्ध्व वृद्धिनं कर्त्वचेत्यर्थ । येनैव कमेण वृद्धि कार्या तेनैव हासे। प्रतित्याद्द तथेवापकर्षः पुनर्भवेदिति । केचिश्च वृद्ध वैद्यान्तिफलान्यतिरिक्तेन द्वितिरिक्तकामेदमीपथ मधुना समालोड्य ददित । तेनैव महान् विशेषो दृश्यते । गुदक्तीलादिनाशनित्यादि शब्दात् पाण्डुरोगादय ॥५०॥

#### शिलाजतुप्रयोगः

हेमाद्या स्र्यंसन्तप्ताः स्रवन्ति गिरिधातवः । जत्वामं मृदुमृत्स्नाच्छं यन्मलं तिच्छलाजतु ॥ श्रनम्लञ्चाकपायञ्च कटुपाकि शिलाजतु । नात्युष्णशीतं घातुभ्यश्चतृभ्यंस्तस्य सम्भवः ॥ हेस्रोऽथ रजतात् ताम्राहरं रूष्णायसाद्पि । मधुरञ्च सित्कञ्च जवापुष्पनिभव्च यत् ॥ विपाके कटु तिक्कव्च तत् सुवर्णस्य निःस्रवम् । राजतं कटुकं श्वेतं स्वादु शीतं विपच्यते ॥ ताम्राहर्दिणकण्ठाभं तीत्त्णोष्णं पच्यते कटु । यज्ञ गुग्गुलुसद्काशं तिक्ककं लवणान्वितम् ॥ विपाके कटु शीतञ्च सर्वश्रेष्ठं तदायसम् । गोमूत्रगन्धः सर्वेषां सर्वकर्मसु यौगिकः ॥ रसायनप्रयोगेषु पश्चिमन्तु विशिष्यते । यथाक्रमं वातिपत्ते श्लेष्मिपत्ते कफे न्निषु ॥ विशेषेण प्रशस्यन्ते मला हेमादिधातुजाः ॥ १८॥

इदानी चरकोक्षशिल।जतुरसायनमाह हेमाचा इत्यादि-निरिगता धातवो

1

गिरिधातव , हेमाचा इति तद्दिशेषणम्। आधशब्दात् लौहरूप्यतात्रसीसकगैरिकमन शिलादीन।मि ग्रहणम् । अतरवीक्त हारीते—'' सुवर्णेरूप्यतपुसीसताश्रम् '' श्त्यादि । श्रत्नानम्लामित्यादि विशिष्टप्रातिषेथस्य शेषाचनुज्ञाफलकम् . तस्माद्रस-चतुष्टयस्यात्र विधिः धातुभ्यक्षतुर्भ्य इति रसायनाधिनयात् तेन सुवर्ण्रूप्यत्रपुर्सासे-त्यादिना हारीतेन यदेव विविधधातुसम्भवत्वमुक्ष तेन सम न विरोध । नात्युष्ण-शीतिमिति शीतोष्णयोर्वलवत्त्व निषिध्यते, तेन किञ्चिद्रष्ण किञ्चिच्छीतल शिलाजतु भवतीति । ते के चत्वारा धातव इत्याह हेम्न इत्यादि । क्रमेख हेमादिसम्भवाना चतु-र्णा लक्तणमाह मधुरामित्यादि। चकाराद् क्षिन्थत्वादिक बे।ध्यम्। यदाह हारीत — ''लिग्ध घन काखनगैरिकाभ सतिक्षशोन मधुर सुनर्णात्" इति । अत्र शिलाजतु-सामान्यगुणकथने अम्लकपायन्यतिरिक्तरसचतुष्टयमुक्तम्, तथा क्रुपाकीलप्युक्तम्, तेन विशेषगुणकथने पुनर्ये। रसोऽभिधीयते तन्नोत्कर्षनानिति श्रेय , सामान्यगुणो-करसोऽनुकोऽपि लभ्यते एव । यस्तु रौप्यभवे कदुपाकविरुद्धो मधुरक उक्तः, स उत्सर्गापवादन्यायेन समर्थनीय । अन्ये तत्तु समधुरविरुद्ध पच्यत इत्याहु , अतरव हारीते विदाहित्वमस्य यदुकः तदच्युपधते, यथा-"रीप्याकरोत्थन्तु मृणालवर्ण सत्तारक तत् कटुक विदाहि" इति युक्तिमुपवर्णयन्ति । अत्र वीर्यं तात्रभवस्यो-ष्णमुक्तम्, तथात्रायसानाञ्च शीतमुक्तम्, तेन नात्युष्णशीतवीर्थयो सामान्य-गुर्णे।क्रयोरवकाशो नास्तीति केचिदाहु, तन्न युक्तम्, यतो नात्युष्णशीतत्व विधीयते, किन्तु शीतोष्णयोर्वलवत्त्रमात्र निषिध्यते, तेन किञ्चिच्छलाजतु शीतम् उष्णुज्ञ किञ्चिच्छिलाजतु भवतीति प्रागेव व्याख्यातम् । ताम्रभवशिलाजतुगुण-कथने तिक्तोष्णमित्यत्र तीच्लोष्णमिति केचित् पठन्ति, तन्मते तात्रने यद्यपि रसे। नोक्तस्तथापि सामान्योक्तचतूरसत्वमेव सानुभवरसभावेन श्रेयमिलर्थमाहु , पश्चिम-मिलायसम्। यथाक्रममिति वातिपत्ते सौवर्णम्, अष्मिपित्ते रै। प्यजम्, कफे ताम्रजम्, विदोषेजे लौहजमित्यर्थ ॥**५**८॥

लौहिकिद्दायते वहाँ विधूमं दह्यते अम्मिस । तृणात्यम्ने कृतं सर्वमधो गलति तन्तुवत् ॥ मिलनं यद्भवेत् तम्ब चालयेत् केवलाम्मसा । लौहपात्रेषु विधिना उद्ध्वीमृतञ्च संहरेत् ॥ वातिपत्तकफमेस्तु निर्य्यूहैस्तत् सुभावितम् । वीर्य्योत्कर्षं परं याति सर्वेरेकैकशोऽपि वा ॥ प्रीक्षण्योङ्गृतमावानं पुनस्तत् प्रक्षिपद्वसे ।
कोण्णे सप्ताहमेतेन विधिना तस्य भावना ॥
तुल्यं गिरिजेन जले चतुर्पुणे भावनौपधं काण्यम् ।
तत काथे पादांशे पूतोण्णे प्रक्षिपद्विरिजम् ॥
तत् समरसतां यातं संग्रुण्कं प्रक्षिपद्वसे भूयः ॥
पूर्वोक्षेन विधानेन लोहैश्चूर्णिकतेः सह ।
तत् पीतं पयसा दद्याद् दिधमायुः सुखान्विनम् ॥
जराव्याधिप्रशमनं देहदार्ढ्यकर परम् ॥
मेधास्मृतिकरं धन्यं चीराशी तत् प्रयोजयेत् ।
प्रयोग सप्तसप्ताहास्त्रयक्षेकश्च सप्तकः ॥
निर्दिप्रस्त्रविधस्तस्य परो मध्योऽवरस्तथा ।
मात्रा पलन्त्वर्द्धपलं स्यात् कर्पन्तु कनीयसी ॥
शिलाजनुत्रयोगेषु विदाहीनि गुक्किण् च ।
वर्जयेत् सर्वकालश्च कुलत्यान् परिवर्जयेत् ॥
पयासि शुक्कानि रसाः सयूपा-

स्तोयं समूत्रं विविधाः कपायाः । श्रालोडनार्थे गिरिजस्य शस्ता-स्ते ते प्रयोज्याः प्रसमीन्य कार्य्यम् ॥ ४६॥ चरकोक्तिश्र्लाजतुविधानं सोपस्कारमेतत् ।

अष्ठशिलाजतुनी लच्यमाइ लीहांकेट्टायत इत्यादि—यत् शिलाजतु वहीं विगतपूम सत् दहाते लौहमलवच्च भवित तच्छेष्ठम् । परीचान्तरमाइ अम्मसीति— अम्मसि अग्रे कृत जले चिप्त सद् प्रथमतस्त्र्याति सवते, तन्तुवत् गलित अपस्ताद् तन्तुवहम्बते, तद् शिलाजतु अष्ठभित्यर्थे । शिलाजतुशोधनमाइ मिलनिमलादि । अम्मसा उच्योदकेन,लौइपात्रेषु विधिनेति हारीतोक्षशिलाजनुशोधनविधिना । कर्द्ध्वी-भूत यद् तद् महरेत् मगृह्यात्, काचादिनिमंतपात्रे स्थापयेदित्यर्थे. । तन्नाय शोधनविधि. । प्रथम केवल शिलाजतु जले धीत कृत्वा तदनु कीटादिद्देष्टीपधिदोष-विनाशाय अगुक्तुवरीनिम्बपत्रयवगुद्धचीष्टतेषूपयित्वा, तदनु शुप्तं चूर्याकृत्य तदनु

भाजनाकारलीष्ट्रपात्रे कृत्वा दशमूलकपाय त्रिफलाकाथ वा केवले। प्योदक वा प्रचिप्य विमर्घ लीएम्पलिकया तरलीकृत्य प्रचण्डातपे स्थापनीयम् । श्रत्र च प्रचण्डातपाव-स्थानेन सरवदूद्र यदुत्तिष्ठति तद् पुनर्गृहीत्वा काचादिनिर्मलपात्रे स्थाप्यम्, एव शिलाजतु भावनाया योज्यम् , इक हि हारीते— 'तत्प्राहियत्वा क्रमशो विभज्य देशे शुचै। महलसिद्धियुक्ते । तिथौ च पुर्णे सुदिने च युक्ते नचत्रयोगेन शिवेन चापि । लोहाढकीनिम्बगुड्सचिसपियैवैर्थथावस् परिधृपयेच्च । सन्ता-लिकाकीटपतङ्गदशुद्धीपधीदोपविनाशनम् तत्' इति । इदानी चरकोक्तमावनाविधि-वातिपेत्तेत्यादि-निर्व्यूह. काथ । सुमावितिमिति सप्ताहम् । सर्वेरिति वातन्नादि-कांथ । भावनात किं स्यादित्याह वीय्योत्कर्णमित्यादि । प्रक्तिप्यत्यादि — रसे वात-मादिकाथे कोष्णे तिच्छलाजतु प्रचिप्य पश्चादावान तपने शुष्कपर्यन्त कृत्वा पुन-र्णि तद्रसे प्रसिपेत् । वान शुष्कम् , " शुष्के वानमुभे त्रिषु " इत्यमर । इदानीं भावनार्थद्रव्यादिकमाद् तुल्यमित्यादि-तन्त्रान्तरस्य । गिरिजेन शिलाजतुना तुल्य भावनीपध दशमूलादिद्रन्य काथ्यम् । तत समरसता यातमिति तिन्छलाजतु काथेन सह समरसतामिति श्रालाङनेन एकीभूय तुल्यता यातमित्यर्थ । एव सिद्ध भावित शिलाजतु लीहचूर्येन सार्द्धमेकाकृत्य दुग्धेन पातन्यमित्याह पूर्वोक्तेनेत्याहि-चरकस्य । पूर्वोक्तेनेति चरक एव चिकित्सिते रसायनपादे पूर्वोक्तविधि । श्रत्र भागानुक्त्या शिलाजतुलीह्यो. समत्व कश्चिदाह, तन्न, शिलाजतुनोऽधिकृतत्वाद प्राधान्यात् तद्येचयेव पादिकस्य लीहचूर्यस्य न्याय्यत्वात्, हारीतेऽप्येवमेवीक्तम् । चीराशी चीरप्रधानभोजनकारी । इदानीमेतत्प्रयोगस्य कालमेदेन त्रैविध्यमाष्ट प्रयोग इत्यादि-सप्तसप्ताहा एकोनपञ्चाशाहिनानि तद्यापकप्रयोग इत्यर्थः । एव त्रयक्षेकश्च सक्षक इति बोध्यम् । भच्नणार्थं त्रिविधा मात्रामाह मात्रेत्यादि । श्रस्मिन् प्रयोगे वर्ज्यमाह शिलाजतुप्रयोगे त्वित्यादि-विदाहीनि वशकरीरमरिचरा-जिकादीनि । शिलाजतप्रयोगे गुरुद्रव्यनियेथेपि गुरुचित्रयोगाभिधानम्, उत्सर्गा-पवादन्यायेन न विरुद्धमिति । केचित्त कुलत्थानिति कुलत्थादीन् , तेन काकमाची-कपोतयोरिप ग्रहणम् । उक्ष हि वाग्मटे-"कुलत्थ काकमाचीच कपोतञ्च सदा त्यजेत्" इत्याहः । सर्वेकालमिति यावद्रसायनहिता गुणास्तिष्ठन्ति । केचित्त यावज्जीवन कुलत्थवर्जनमाहु । कुलत्थस्य वर्जने सर्वकालीनत्वस्योपपत्तेश्वरकेथव तेपा प्रयोग. प्रतिषिध्यत इति । यैर्द्रव्येरालोट्य शिलाजतु पेय तान्याह प्रयासीत्यादि-चरकस्य। सोपस्कारमिति चरके परीचादिक नोक्तम्, अत्र पुनलौंहिकद्वायत इत्यादिना तदप्यु-क्तमिति सोपरकारत्वम् ॥ ५६॥

# शिवागुडिका

काले तु रवितापाढ्ये कृष्णायसजं शिलाजतुप्रवरम् । त्रिफलारससंयुक्तं ज्यहञ्च ग्रुष्कं पुनः ग्रुष्कम् ॥ दशमूलस्य गुडूच्या रसे वलायास्तथा पटोलस्य । मधुकरसैर्गोमुत्रे ज्यहं ज्यहं भावयेत् क्रमशः॥ एकाहं ज्ञीरेण तु तत् पुनभीवयेच्छुष्कम्। सप्ताहं भाव्य स्यात् क्वांथेनैषां यथालाभम् ॥ काकोल्यौ द्वे मेदे विदारीयुग्मं शतावरी द्राज्या। ऋद्धियुगर्षभवीरामुग्डितिका जीरकेंऽश्रमत्यौ च। रास्नापुष्करचित्रकदन्तीभकणाकलिङ्गचन्यान्दा । कटुका श्रद्धी पांठे तानि पत्नांशिकानि कार्याणि॥ श्रब्द्रोखे साधितानां रसेन पादांशिकेन भाव्यानि । गिरिजस्यैवं भावितशुद्धस्य पतानि दश पद् च ॥ हिपलञ्च विश्वमागधिकाकद्वककर्कटाख्यमरिचानाम् । चूर्णे पलञ्ज विदार्यास्तालीशपलानि चत्वारि ॥ षोडश सितापतानि चत्वारि घृतस्य माज्ञिकस्याष्टौ। तिलतैलस्य द्विपलं चूर्णाईपलानि पञ्चानाम्॥ त्वक्चीरिपत्रत्वङ्नागैलानां मिश्रयित्वा तु । गिरिजस्य षोडशपतार्शिङिकाः कार्य्यास्ततोऽत्तसमाः। ता शुष्का नवकुम्भे जातीपुष्पाधिवासिते स्थाप्याः॥ तासामेका काले भद्या पेयापि वा सततम्॥ त्तीररसदाडिमरसा सुरासवं मधु च शिशिरतोयानि। श्रालोडनानि तासामजुपाने वा प्रशस्यन्ते॥ जीर्षे लघ्वन्नपयोजाङ्गलनिर्य्यृहयूषमोजी स्यात् । सप्ताहं यावदत परं भवेत् सर्वे सामान्यम्॥ भुक्त्वापि भावितेयं यदच्छ्या नावहेद्भयं किञ्चित्।

निरुपद्रवा प्रयुक्ता सुकुमारकैः कामिभिश्चैव ॥ संवत्सरप्रयुक्ता द्दन्त्येषा वातशोणितं प्रवलम् । बहुवार्षिकमपि गाढं यदमाणञ्चाढ्यवातञ्च ॥ ज्वरयोनिशुक्रदोषण्लीहाशं पाग्हग्रहणीरोगान्। वध्नविमगुल्मपीनसहिकाकासारुचिश्वासान्॥ जठरं श्वित्रं कुष्ठं पाएढ्यं क्लैव्यं मदं त्तयं शोषम्। उन्मादापस्मारौ वदनाचिशिरोगदान् सर्वान्। श्रानाहमतीसारं सास्ग्दरं कामलाप्रमेहांश्च । यरुदर्बुदानि विद्वधिभगन्दरं रक्रापित्तञ्च॥ श्रातिकाश्यमितिस्थौल्यं स्वेदमथ श्लीपदञ्च विनिद्दन्ति। दंष्ट्राविषं समौलं गराणि बहुप्रकाराणि॥ मन्त्रौषधियोगान् विषयुक्तान् भीतिकांस्तथा भावान्। पापालदम्यौ चेयं शमयेद् गुडिका शिवा नाम्ना ॥ वल्या बृष्या धन्या कान्तियशःश्रीप्रजाकरी चेयम्। द्द्यान्नृपवन्नभतां जयं विवादे मुखस्था च ॥ श्रीमान् प्ररुप्टमेधःस्मृतिबुद्धिवलान्वितोऽतुलशरीरः। पुष्ट्याजाऽतिविमलेन्द्रियतेजोवलसम्पद्धेपत ॥ वितिपत्तितरे।गरिहतो जीवेच्छरदां शतद्वयं पुरुषः । संवत्सरप्रयोगात् द्वाभ्यां शतानि चत्वारि। सर्वामयजित् कथितं मुनिगणभद्यं रसायनरहस्यम् ॥ समुद्धभूवामृतमन्थनोत्थः स्वेदः शिलाभ्यो मृतवद्गिरेः प्राक्। यो मन्दरस्यातमभुवा हिताय न्यस्त स शैलेषु शिलाजरूपी॥ शिवागुडिकेति रसायनमुक्तं गिरीशेन गण्पतये । शिवावदनविनिर्गता यस्मान्नाम्ना तस्माच्छिवा गुडिका॥६०॥ इति शैवसिद्धान्तोक्षा शिवागुाडिकेयम्। इति शिलाजतुविधानम्।

चरकोक्तिशिलाजनुविधिमभिधाय रावतन्त्रोक्तप्रमिद्धशिलाजनुप्रयोग शिवगुर्धिका माह काल बत्यादि-रिवतापाढ्ये इति विशेषणाद श्रीप्म इति यावत्. अन्ये तु शरदाव्याहः । शिलाजतुनोऽत्र पोटशपलमात्राः वस्यति च पलानि दरा पट चिति । तेन तन्मानमम मिलितिनिफलाइन्य गृहीत्वा काथियता न्यह भावना कतव्येत्याह त्रिफलेल्यादि-श्रत्र तुल्य गिरिजेन जलिमत्यादि पूर्वाक्तवचनानुमारेख त्रिफलाकाथ कृत्वा न्यह भावना कार्योत्पर्धः । एव दशमूलकार्यादिभिगीमूत्रान्तेरिति त्यहः ज्यह क्रमेण भावेयेदित्यर्थ । चीरेण पुनरेकाह परीमीत चीरेण एकाहमेव भावेय-दित्यर्थः । बच्यमाखकाकोल्यादिकाथेन पुनः मप्ताह भावना कर्त्तन्यत्याह मप्ताह मान्य स्यादिति । एपामिति वच्यमाणकाकोल्यादीनाम् । यथालाभमिति वचनात इन्द्रयवकदुरोष्टिण्यादिव्यतिरेकेणापि । विदारीयुग्ममिति विदारी-चीरविदार्थां । चीरविदायां श्र लक्षण-"कीरशुका दीर्घकन्दा चातिमधुरा चीरविदारा इति, भग्न-चिकित्मोक्तगन्थतेलच्याख्याया गदाधरेखाक्तम्। ऋडियुग ऋडिवृद्धी । वारा मामीति त्रिविक्रम: । जलजशाकमिति रत्नप्रमा । जीरके इत्यादि-कृष्णशमजीरके, अगुर-मत्यौ शालपशीपृक्षिपणयौं इभक्तया गजिपणली, कडकी कडरे।हिखी; ण्तान्यष्टाः विशातिद्रन्याणि तिखितानि । वाग्मटे तु रमायनतन्त्रपठितगुरिकापाठे भरिद्ध-ऋषमकादिषट्द्रव्याणि प्रयन्ते तद् यथा--ऋदि ऋषमकी सुण्डिरीन्द्रयनी कदुः रोहिसी कर्कटमृक्षी चेति । तदे ग्रामयाचार्य्यप्रामास्याद्रभयथैव प्रयोगमङ्गतिरम्य पेया । अस्या पिप्पल्यादिवत गणत्वविवद्याया यथालाभवचनादेतानि पोडण द्रव्याणि न गृह्यन्तेऽपीति केचित् । एपाञ्चाष्टाविशतिद्रव्याणा प्रत्येक पलिकाना कथनार्थदेयजलद्रोणसाधितशेपकाधशरावै सप्तधा विभक्तै सप्तिहिनानि भावना सप्त कर्चेच्याः । किन्त्र सप्तदिनै काथस्याम्लता भवति । तर्तश्चपामधाविंशतिद्रव्याणा प्रत्येक पलिकाना सप्तदिनविभागेन पलचतुष्टय मिलित्वा यादा, तेन प्रतिदिन पलचतुष्टयविभागेन काकोल्यादीना प्रत्येक मापा ६, रक्तिका २ बाह्यम् एव जल-द्रोणस्यापि सप्तदिनविभागन देयजलशाराव ६ पल १, मापा ६, रति १, अस्य पादावशिष्टतया स्थाप्य जल श २, कर्ष १, मापा २, अस्मिन् काथे पूतोष्णे प्रतिदिन शिलानतुभावना, एव सप्ताइ कर्त्तव्यम् । दश पट् चेति पोडशित्पर्थः यद्यपि निर्देशस्य मानप्रधानत्वात् विश्वादींना मरिचान्ताना मिलिरवैव पलद्भर युज्यते तथापि वाग्भटपामाययातः प्रत्येकमेव द्विपल ग्राह्मम् । पञ्चानामिति-त्वक्-चीरी वशलोचना । गिरिजस्य पोडरापैलमिश्रयित्वेति योज्यम् । इह सर्वेब्वेव शिला-जलुप्रयोगेषु कर्त्तच्येषु प्रथम शोधन विभाय सिक्तकष्टत स्वष्ट त्र्यष्ट् वापि बलानु-

रूपप्रमाण दातन्य यथा सिग्धो भवति, तदुक्त तन्त्रप्रदीपे-"सशुद्धकायो विमले-न्द्रियक्ष प्रशस्तनत्तत्रमुद्ध्त्रयोगे । पिवेद् ष्टत तिक्षकपायसिख खद्द व्यद्द वापि वला-नुरूपम् " इति । अत्तसमा चात्युत्तममात्रा, अतस्तदनुसारेख मध्यमाधमपुरुषा-पेचया मात्रे। ह्या । यद्वच्छया इत्यनियमन, तेन कदाचित् भुक्तापि मचिता सती विकार न जनयेदित्यर्थ । आढ्यवात ऊरुस्तम्भ सहजहेतुजक्रेव्यद्वयपरिग्रहार्थ पारुद्धा फ्रेन्यामित्युभयपदोपादान बाध्यम् । यद्यपि बोजदोपोत्पन्नसङ्जक्रीन्यमसाध्य-त्वेनोक्तम् , तथापि प्रयोगमाहात्म्यस्चनार्थमिदमुक्तम् । गराणि सयोगाविषाणि, भीतिकान् भावानीति भूतकृताः पीछाः। सवत्मरप्रयोगादिति पूर्वेण सम्बध्यते, द्वाभ्याः मिति सवत्सरद्वयेनेत्यर्थ । शिलाजतुन प्रागुत्पत्तिमाए समुद्वश्र्वेत्यादि-श्रमृतमन्थ-नोत्थ इति प्रमृतमन्थनसमयज्ञः। हितायेत्यादि-हितायेत्यत्र जगतामिति राष ॥६०॥

> इति शिवाग्रिडिका । इति शिलाजतुविधानम्।

#### श्रमृतभल्लातकी

सुपक्तमह्मातफलानि सम्यग् डिधा विदार्घ्योढकसम्मितानि । विपाच्य तोयेन चतुर्गुरोन चतुर्थशेषे व्यपनीय तानि॥ पुनः पचेत् ज्ञीरचतुर्गुेष्न घृतांशयुक्केन घनं यथा स्यात्। सितोपलापोडशभिः पलैस्तु विमिश्र्य संस्थाप्य दिनानि सप्त॥ त्तः प्रयोज्याग्निवलेन मात्रां जयेद्गुदोत्थानखिलान् विकारान्। कचान् सुनीलान् घनकुञ्चितात्रान् सुपर्गहाँ सुकुमारताञ्च ॥ जवं हयानाञ्च मतङ्गजं बलं स्वरं मयूरस्य हुताशदीप्तिम्। स्त्रीवल्लभत्वं लभते प्रजाञ्च नीरोगमन्दद्विशतानि चायुः॥ न चान्नपाने परिहार्य्यमस्ति न चातपे चाध्वनि मैथुने च। प्रयोगकाले सकलामयानां राजा द्ययं सर्वरसायनानाम्॥

भन्नातकश्चाद्धिरह प्रागिप्टचूर्यगुग्डनात्। घृताचतुर्गुणं चीरं घृतस्य प्रस्थ इष्यते ॥ ६१ ॥ इति श्रमृतभन्नातकी।

इति रसायनाधिकारः।

अमृतभल्लातमाह सुपकेत्यादि-मल्लातकान्यत्र हारीतोकामृतमल्नातकीयृतोक-रीत्या प्राह्माणि, यथा-"मञ्जातकाना पवनोद्धताना पृन्तच्युनानामिए चाढक स्यात्। तश्चेष्टकाचूर्यकर्येविष्टब्य प्रचाल्य धीरो विधिवत् प्रवाते । शुष्क पुनस्तद्दिदली-कृतन्य तत पवदप्तु चतुर्गुणाद्ध । पादावशिष्ट परिपूतशीत प्रनेन तुल्येन पचेष् सुशीतम् । तदर्दया शर्करयावकीर्णं तत राजेनीन्मधित विधाय । भाग्छे विशुद्धे त्वथ धान्यराशी सस्थापयेव सप्त दिनानि चेति । तत्मप्तरात्राव् परिजातवीर्यम् , इत्यादि । श्रत्र महातकाना चतु पष्टिपलानि, तद्रेपचया चतुर्गुण जल याग्रमान द्रवदेशुरुयाचतु पष्टिशरावपरिमित यद्यपि, तथापि वस्यमाखतन्त्रान्तरीयवान्यैकनातु-रोधात आढके पलविवचां विधाय पलोहोलगतलेन देगुण्य न विधेयम्, तथा कवित पलोल्लेखिविधानेऽपि तन्त्रान्तरीयवान्यकानुरोधात् पलोल्लेखगते द्रव्येऽपि कुष्टवादि-विवक्ताया द्वगुण्य भवति । तथापि चरके क्षतकी शिक्तितिनते मधुकाष्ट्रपल द्वाचा-प्रस्थकाथ इत्यादिना य प्रयोग उक्त न जतुकर्णे द्राचप्रस्थ मधुकाद्धप्रस्थ इत्यादि यन्थेन पठित , तेन जतुकार्ये मधुकस्यार्द्धप्रस्थोल्लेखपाठात् कृत्रदेशुरूयमेन जल भवति, तत्प्रत्ययाच्चरकेऽपि मधुकाष्टपलोल्लेखविहितेऽपि क्वाथ्य कुडवद्दयविवस्या कृतदेगुरुयमेव जल दीयते। तद्दन्नापि भाडके पलविवद्या विधाय देगुरुय न कार्यम्। . तदेव तन्त्रान्तरीयवावय यथा---'मल्लातकाढक त्तुरुण जलाढकद्देये श्वतम् । पादशेषे रसे तस्मिन् एतप्रस्थममन्विने । जीराढक ततो दत्त्वा मिताया प्रस्थोमव च । ताबच नाधेयदीमान् यावहेहस्त्वमागतम् । श्रर्शसा नारान श्रेष्ठ दीपन कुष्ठनारानम् । श्रम्लिपत्तापद्द प्रोक्त वानीकरणमुत्तमम् । श्रीप्रशृद्धिकर्षत्रव वलकृत् पुष्टिवर्द्धनम् ' इति । केचित्तु चीराडक तती दत्त्वेत्यप्र चीरपस्थमिति पठित्वा श्रस्य प्रयोगस्य योगान्तरत्व मन्यमाना सुपक्षमञ्जातकेत्यादिचक्रमग्रहोक्तयोगे जलस्य द्वेगुग्यमिच्छ-न्ति, किन्तु परेमश्वररिक्तादिमग्रहे चीराढकमित्येव पाठा दृश्यते एकवाक्यता च तदेव सङ्गच्छते । बृद्धवैद्यव्यवहारश्चाद्वेगुएयेन दृश्यते तेनायमव पाठ माधीयान् । हारीतमतन्तु मतान्तरमेवेति न्याय्यम्, यतस्तत्र परिमाखे इतिकर्चव्यवायाञ्च महदेवान्तरम् । ष्टताशमिति ष्टतप्रस्थम् । चतुर्मागावशिष्ट काथमपृत्तय प्रतस्या-र्द्धाराताम्, उक्तेन काथेन मृतस्यार्द्धारा पचेदिति योज्यम् । चीरस्य चातुर्श्यय इतापेतया, श्रतएव वस्यति प्रनाच्चतुर्गुख चीरमित्यादि । चीरचतुर्गुखेनेति चतु-र्रुणेन चीरेणेत्पर्थ । पूर्वनिपात प्रत्यनियमात् । ततश्च युक्तेनिति न पाठ , सम्बन्धाः

भावात् । ततश्च एत पक्त्वा च पूत्वा च शर्कराप्रेचप इत्यर्थ । किन्तु लेहोऽपि पच्येत, तदा काथशर्करादिकमेकीकृत्य पक्तच्यम् ॥ ६१॥

इत्यमृतमल्लातकी । इति रसायनाधिकार ।

# अथ वृष्याधिकारः।

पिष्पर्लालवणोपेतौ वस्ताएडौ जीरसर्पिषा। साधितौ भच्चयेद् यस्तु स गच्छेत् प्रमदाशतम्॥१॥

सुस्थस्यै। जस्करसामान्याद्रसायनानन्तर वाजीकरणसुच्यते, वाजीकरणशब्दार्थस्तु चरकेणोक्षा यथा—'' येन नारीषु सामर्थ्यं वाजिवल्लमते नरः । न्रजेच्चाभ्यिषक येन वाजीकरणमेव तत् '' इति । न्रजेच्चाभ्यिषकमिति पुन पुनर्गच्छेत् । व्यव्यत इति पादे नारीषु पुस्त्व येन व्यव्यत इत्यर्थः । शब्दिसिद्धस्तु पृषोदरादित्वात । अन्ये तु वाज' शुक्र सोऽस्यास्तीति वाजी, अवाजी वाजी क्रियते येन तद्वाजीकरणमित्याहु । किंवा वाजी मैथुनम्। उक्ष हि हारीते—'' वाजो नाम प्रकाशत्वात् तच्च मैथुनसिक्षतम् । वाजीकरणसिक्षाभि पुस्त्वमेव प्रचचते ।'' तच्च त्रिधा, यदुक्ष चरके—''शुक्रसुतिकर किंजित् किंजिच्छुक्रविवर्द्धनम् । सुतिवृद्धिकर किंच्चित् त्रिविध सृत्यमुच्यते ॥ यथा कामिनीस्पर्शादिक स्रुतिकरम् , भीरादि वृद्धिकरम् , माषादि सुतिवृद्धिकरमिति । वृष्ययोगानाह पिप्पलीत्यादि—सुश्रुतस्य । तत्र पिप्पलीलवणयोः सस्कारत्वादल्पमानता । बस्तापढी ज्ञागायडकोपी । चीरसिप्पा चीरोत्थसिपा, न तु चीरच्च प्रतेज्वद्वावः, चीरपकलवणस्य-स्योगविकद्धत्वात् । प्रमदाशतिवित्वविनताबद्धत्वोपलचणम् । भच्चणप्रकारो यथा—क्षागायडद्वय जल दस्ता उत्स्वध चीरात्थप्रतेन भर्जयत्वा अनुरूपसैन्धवपिपलीचूर्णभ्या सस्कार्य्य उपयोज्यम् ॥१॥

# वस्ताग्डसिद्धे पयसि भावितानसकृत् तिलान् ।

य. खादेत् स नरो गच्छेत् स्त्रीणां शतमपूर्ववत् ॥ २ ॥
वस्तायङसिद्ध इत्यादि—चीरपारिभाषया वस्तायङेन चीरसाधनम्, तेन भावितान् । यद्यपि उक्ताधिकमासेत्यादिना वस्तमासस्य चीरेण सह विरोधो दरितस्तधापि तत्सामान्यवचनम्, इद पुनरपवादरूप विशिष्टवस्तायङविषयतया न विरोधमावहति । श्रसक्वदिति सप्तथा, पूर्ववदिति श्रक्षतपूर्वस्त्रीसङ्गमवत् ॥ २ ॥

चूंण विदार्थाः सुकृतं स्वरसेनेव भावितम् । सर्पि नौद्रयुतं लीद्वा शतं गच्छेडराङ्गनाः ॥ एवमामलकं चूर्णं स्वरसेनेव भावितम् । शक्तरामधुसर्पिर्भर्युकं लीद्वा पयः पिवेत्॥ एतनाशीतिवर्पोऽपि युवेव परिद्वप्यते ॥ ३॥

चूर्णनिन्यादि—सुष्टुतन्य । न्यरसोऽपि विरार्थ्या एव । प्वसित्यादि—-अञ न्यरसमावितन्याप्युक्तवात् प्वनित्यवितेशन्य वंशद्य वेवस्यं न्यात्, तेन विदारीचूर्ण-वत् चौत्रध्वान्यामाननकन्य तन्त्ररस्मावितस्य प्रयोग अति कश्चित्, तेन आनल-कचूर्णन्य दिशा प्रयोग , एकः धृतक्षीत्रान्याम् , अन्यश्च शर्करामयुष्टवरयोऽनुपान-श्चेति । छन्ये तु प्वनित्यवितेश सुदृक्तविधानार्थनिन्याहु ॥ ॥ ॥

विदारीकन्दकरकन्तु घृतेन पयसा नरः । उद्दुम्बरसमं स्नाद्न् बृद्धोऽपि तरुणायते ॥ ४॥ विदानसादि—सुष्टुतस्य । ऋत्र ध्तेनेत्यत्र श्वतेनेति पाठे केवल जलश्वे-नेत्वर्ष ॥ ४॥

स्वयंगुतेजुरकयोवीं जचूर्ण संशक्तरम् ।
धारोप्णेन नरः पीत्वा पयसा न ज्ञयं व्रजेत् ॥
डचटाचूर्णमप्येवं ज्ञीरेणोत्तममुख्यते ।
शतावर्ष्युचटाचूर्णं पेयमेवं सुलार्थिना ॥
क्षयं मधुकचूर्णस्य शृतज्ञोद्गसमन्वितम् ।
पयोऽनुपानं यो लिह्यावित्यवेगः स ना भवेत् ॥ ४॥
न्वरापेचारि—नुष्रुद्धः । डच्चेत्यावि तस्वतः । नुलार्थिनेत्यत्र वलार्थिनेति नुष्टुदे प्रक्रते । प्वनित्यनेन पयमेति तुष्यते । क्षांमित्यादि—चरकन्य । मधुक
वार्धिन् । नित्येन श्री नित्यनुक्ते ॥भिनृतः ॥ ४॥

गोजुरक जुरकः शतमूली वानरिनागवलातिवला च । चृर्णिमिदं पयसा निशि पेयं यस्य गृहे प्रमदाशतमस्ति॥ घृतसृष्टो दुग्यमापपायसो चृष्य उत्तमः॥ ६॥

गोच्चरक इत्यादी—चुरक कोश्निच , वानरी ग्रक्तिंगनी । गतमूली च वानरी चेति सनाहारद्रन्द्र-, अत्र पशवहुवचनान्त पाठ एव साम्रु.। एव चुर- कगोच्चरवानरोखा फलवानं प्राधम् । यदुक्तममृतवल्ल्या—''गोकण्टच्चरकिपकच्छु-फलवरीकुशीवलाचूर्णम्हतेन । पयमा रात्रिसमये'' इत्यादि—पत्रत्र कुशी गोरचत-यदुला । एतेत्यादौ मापपायसो मापविदलेर्दुग्धेन कृत पायसः, स च भृष्टो छतेन सन्तालत ॥ ६ ॥

> दक्षः सरं शरद्यन्द्रसिन्नमं दे। पवर्जितम् । शर्क् रात्तोद्रमिरचेस्तुगात्तीर्था च दुद्धिमान् ॥ युक्त्या युक्तं सस्ट्मैलं ने कुम्मे युचौ पटे । मार्जिते प्रतिपेच्छीतं घृताढ्यं पिष्टकौदनम् ॥ द्यात्तदुपरिष्टाच्च रसालां मात्रया पिवेत् । वर्णस्वरवलोपेतः पुमांस्तेन वृषायते ॥ ७॥

दश इत्यादि — चरकस्य । देापवजितमिति मिलनत्वादिदोपवजितम् । युक्त्या युक्तमिति यथातिमाधुर्यं न स्यात्, कद्वत्वज्ञाधिक न भवति, तथा शर्करामिरचादि योज्यमित्यर्थ । माजितमिति पाठे पटे एए तमिति पिष्टकौदनम् । निश्चलेस्तु माजिते पिष्ठकौदनम् । गाजितमिति पाठे पटे एए तमिति पिष्टकौदनम् । निश्चलेस्तु माजिते प्रतिच्छोते एताट्य पाष्टकौदनमिति पट्यते । तसिन् माजिते पूते रस इत्यर्थात् ततोऽत्र शीते शीतवीर्थे पिष्टकमक प्रचिपेत्, ततोऽच्चादिति । उपरिष्टादिति मुक्तेन्त्यर्थः । रसालालच्य यथा—"सचतुर्जातकाजाजीसगुर्डाईकनागरम् । रसाला स्याच्छित्वरियी ग्रुप्ट ससर दिष्यः इति । अन्यत्र यथा—"अर्द्धादक ग्रुचिरपर्यु-पितस्य दक्षः ख्यग्रस्य पोद्धरा पलानि शशिप्रमस्य । सिर्पः पल मधुपल मिरचार्दः कर्ष ग्रुग्द्यास्तथार्द्धपलमर्द्धपल चतुर्यान् ॥ ग्रुक्ते पटे ललनया मृदुपाणिष्ट्या कर्षू-रगन्यग्रुरिभेनवभायस्यस्था । एपा पृकोदरकृता ग्रुरसा रसाला या स्वादिता मगवता मधुस्दनेन" ॥ ७ ॥

श्राद्वीणि मत्स्यमांसानि श्रफरीश्चाज्यभर्जिताम्। तते सर्पिपि यः खादेत् स गच्छेत् स्त्रीषु न ज्ञयम्॥८॥ श्राद्वीणीत्यादि—चरकस्य । श्राद्वीणि सवस्कानीत्यर्थ । मत्स्योऽत्र प्रधा-नकत्पनया रोहित ॥ < ॥

नारसिंहचूर्थम्

शतावरीरजःप्रस्थं प्रस्थं गोत्तुरकस्य च। वाराह्या विंशातिपलं गुङ्गच्याः पञ्चविंशतिः॥ भन्नातकानां द्वातिंशिश्चित्रकस्य दशैव तु ।
तिलानां शोधितानाञ्च प्रस्थं दद्यात् सुचूर्णितम् ॥
त्र्यूपणस्य पलान्यप्टी शर्करायाञ्च सप्ततिः ।
मान्तिकं शर्करार्देन मान्तिकार्देन चै घृतम् ॥
शतावरीसमं देयं विदारीकन्दजं रजः ।
पतदेकीकृतं चूणे क्षिण्धे भाएडे निधापयेत् ॥
पलार्द्रमुपयुञ्जीत यथेप्टञ्चापि भोजनम् ।
मासैकमुपयोगेन जरां हन्ति रुजामपि ॥
वलीपलितखालित्यमेहपाएड्वाद्यपीनसान् ।
हन्त्यप्टादश कुप्टानि तथाप्टाञ्जदराणि च ॥
भगन्दरं मृत्रकृष्ट्यं गृधसीं सहलीमकम् ।
चयञ्चैव महाश्वासान् पञ्च कासान् सुद्रारुणान् ॥
श्रशीतिं वातजान् रोगांश्चत्वारिशच पैत्तिकान् ।
विशतिं श्रिष्मिकांश्चेव संस्पृप्तं सान्निपातिकान् ॥
सर्वानशोंगदान् हन्ति वृक्तिन्द्राशनिर्यथा ॥

स काञ्चनाभो मृगराजविक्रमस्तुरङ्गमञ्चाण्यनुयाति वेगतः। स्त्रीणां शतं गच्छति सोऽतिरेकं प्रकृष्टिश्च यथा विदृद्गः॥

पुत्रान् सञ्जनयेद्वीरान् नर्रासंहिनभांस्तथा।
नार्रासंहिमिदं चूर्णं सर्वरोगहरं नृणाम्॥
वाराहीकन्दसंबस्तु चर्मकारालुको मतः।
पश्चिमे गृष्टिशव्दाख्यो वराहलोमवानिव॥६॥

रातावरीत्यादि—चन्द्राटस्य । वाराद्वा इति वराइकन्द्रस्य । तल्लचण यथा—
"तान्वूलसदृशै पत्रैंप्रन्थिमि समलड्कृतम् । सर्जार्जुनानिमै पुष्प शोमते च
स्रुगन्धिमि । वराइच्छविवर्णेन पिच्छलेन सुवर्चसा । कन्देन क्टुतिक्तेन नीलोत्पलसुगन्धिना । जायते सा गिरौ रम्ये विन्छे श्रीपंवते तथा ॥" वृन्दे तु—
वराइम्द्रंवत् कन्दो वाराद्दीकन्दसावितः । मिपना तदलाभे च चर्मकाराह्यको मतः"
इत्युक्तम् । किन्तु वाराद्दीकन्दपोचया चर्मकाराह्यकस्यातिद्दीनगुण्यतेन नास्य तद्

प्रतिनिधित्व युक्तम् । गुष्ट्च्याः पद्मविशातिरित्यपपाठ । तन्त्रान्तरे—"मल्लातक-प्रस्थयुग्म तत् सप्तपलोन गुद्ध्च्याक्ष" इत्युक्तत्वात् , यतः प्रस्थयुग्मेव सप्तपलोन सत् पप्पविशातिपलानि भवन्ति । त्र्यूषणस्य मिलित्वा पलान्यष्टौ । विदारी भूमि• कृष्मागढ । पलार्द्धमिति पूर्वयुगाभिप्रायेण, इदानीमष्टमापकेण व्यवहारः । श्राढ्य इति शाढ्यमारुत ; यथा भीमो भीमसेन । वाराष्ट्रीकन्दस्य दुर्लमतया चर्मकाराज्ञक-मय गौढीयेर्वाराष्ट्रीकन्दसम्भया गृद्यते । वस्तुतस्तु वाराष्ट्रकन्दकाच्चर्मकाराज्ञक द्रव्या-नत्तर तल्लवणामावास् ॥ ६ ॥

# गोधुमाद्यं घृतम्

गोधूमाच पलशतं निःकाथ्य सलिलाढके। पादावशेषे पूते च द्रव्यागीमानि दापयेत्॥ गोधूमं मुञ्जातफलं मापद्राचापरूपकम्। काकोली चीरकाकोली जीवन्ती सशतावरी॥ श्रश्वगन्धा संखर्जूरं मधुकं त्र्यूपणं सिता। भह्नातकमात्मगुप्ता समभागानि कारयेत्॥ घृतप्रस्थं पचेदेकं ज्ञीरं दच्वा चतुर्गुणम्। मृद्विया च संसिद्धे द्रव्यार्यतानि निचिपत्॥ त्वगेलापिष्पलीधान्यकपूरं नागकेशरम्। यथालाभं विनिक्तिप्य सितान्तौद्रपलाएकम् ॥ दग्धेचुदग्डेनालोड्य विधिवद्विनियोजयेत्। शाल्योदनेन भुक्षीत पिवेन्मांसरसेन वा ॥ केवलस्य पिवेदस्य पलमात्रां प्रमाणतः। न तस्य लिइशैथिल्यं न च शुक्रचयो भवेत्॥ वर्षं परं वातहरं शुक्रसञ्जननं परम्। मूत्ररुच्छ्रप्रशमनं वृद्धानाञ्चापि शस्यते ॥ पलद्वयं तदश्रीयादशरात्रमतन्द्रितः। स्त्रीणां शतञ्च भजते पीत्वा चानुपिवेत् पयः॥ श्रश्विभ्यां निर्मितञ्जेतद्गोधूमाद्यं रसायनम् ।

जलद्रोते तु गोधूमकाथ तच्द्रेपमाढकम् ॥ मुज्जातकस्य स्थाने तु तद्गुणं तालमस्तकम् ॥ कल्कद्रव्यसमं मानं त्वगादः साहचर्यतः॥ १०॥

गोष्माहित्यादि—गोष्मो धवलमारी आहा उत्हादतात् । मिललाढके पादावरेष इति योज्यम्, अने। गोष्मगातपले जलहोत्यां देय इति चक्क । वकुः लस्तु वि.काथेत्यनेतैव सन्वध्यते, तथव निर्देशन्यात् पादशेषश्च प्रस्थ इति च्याचेष्ट । किन्तु चक्कपच एव प्रचरित । सुझातकपन द्यां तरप्रिथकम् । तरप्राप्तां वालमस्त-कम् । हागवल्यान्तु वालमस्तकामित्येवास्ति । परुषक पत्न- खल् पियदर्वर्ज्, मच्क याष्टिमधु, अन्ये तु मध्कमिति पाठिन्या मध्कस्य पत्नमाहु । मिना गर्करा । आत्मप्राप्ता मृत्यमिति निश्चल , फलमित्यन्ये । मान्य इत्यनन्तः पूर्वे चेति रेपा । त्यादीनाश्च मान कन्कतुल्य बच्यति । तत्र शोतीभूत्रं रार्करामधु- नोमिलित्वादृश्ची प्रतानि । पूर्वे पत्मात्रा पिवदिति यदुक्त तत् प्रथमत , अनन्तर सात्म्यमावे सति प्रदय, न पुनरितोऽधिकमिति ॥ १०॥

# शतावरीघृतम्

घृतं शतावरीगर्भे सीरे दशगुणे पचेत्। शर्करापिप्पलीचौद्रयुक्तं तद् वृष्यमुच्यते ॥ ११ ॥

ध्वमिलादि---चरकस्य। विगडिमें "प्रेचेष पादिक काय्यावीनेह बल्कसमी तन " इत्युक्ते गर्कगपिप्पलीचीदाया कन्कत्व हेयम् ॥ ११॥

# - गुडकृष्माराडकम्

कृष्मारहकात् पलशतं सुस्विषं निष्कुलीकृतम् ।
प्रस्थं घृतस्य तैलस्य तिस्मस्तप्ते प्रदापयेत् ॥
त्वक्षपत्रधान्यकव्योपजीरकैलाह्यानलम् ।
प्रान्थिकं चव्यमातद्वापिष्पलीविश्वभेषजम् ॥
श्रद्वाटकं कशेरुञ्च प्रलम्यं तालमस्तकम् ।
चूर्णीकृतं पलांशञ्च गुडस्य च तुलां पचेत् ॥
शीतीभृते पलान्यद्यौ मधुनः सम्प्रदापयेत् ।
कफापित्तानिलहरं मन्दाग्नीनाञ्च शस्यते ॥

क्रशानां बृंहणं श्रेष्ठं वाजीकरणमुत्तमम् । प्रमदासु प्रसक्कानां ये च स्युः चीणरेतसः ॥ चयेण च गृहीतानां परमेतद्भिषग्जितम् । कासं श्वासं ज्वरं हिक्कां हान्ति छुर्दिमरोचकम् ॥ गुडकुष्माण्डकं ख्यातमश्विभ्यां समुदाहृतम् । खण्डकुष्माण्डवत् पात्रं स्विन्नकुष्माण्डकद्रवः ॥ १२ ॥

कुष्मायटकादित्यादि—एततैलयोमिलित्वा प्रस्यम् । श्रत्र खण्डकुष्मायडवत् त्वावीजादिवजितसुरिवन्नगालितिपण्डकुष्मायडभजंन कार्य्य यावन्मधुनिभ पाको भवति । ततो द्रवार्थमेव गालितिपण्डकुष्मायडद्रवमेव प्रस्यचतुष्ट्य गृष्टीत्वा तेन द्रवेण पुराणगुडपलशतमेकीकृत्य पूत्वा कूष्मायड पचेत । ततोऽवतारिते कोष्णे त्वक्पत्रादिचूर्णप्रकेष. । जीरकैलाद्वयेति जीरकद्वयमेलाद्वयक्वेति । मातद्रिपप्पली गजिपप्ती । प्रतम्ब तालाकुर', ताललख्ड इत्यन्ये, श्राध्य एव पची युक्त कृष्य-त्वाद् । सन्दाद्रीनामक्पमात्रयेति शेष । प्रमदासु प्रसक्ताना वाजीकरण्यित्यन्वयः । तथा ये चीण्येतसस्तेपामुत्तम तद्भिष्मुजितमिति योज्यम् । पात्रमित्याडक खण्ड-कृष्मायडकन्न रक्तिपत्तिके गुडक्ष्मायडके द्रव इति पाठे द्रव स्विन्नकृष्मायडस्यैव शेय ॥ १२॥

पात्किञ्चिन्मधुरं स्निग्धं जीवनं बृंहणं गुरु।
हर्षणं मनसश्चेव सर्चं तद् बृष्यमुच्यते ॥ १३ ॥
अनुक्षवाजीकरणसग्रहार्थमाह थिकिश्चिदिलादि ॥ १६ ॥
मज्ञातकवृहतीफलदाडिमफलवल्कसाधितं कुरुते ।
लिद्गं मर्दनविधिना कहुतैलं वाजिलिङ्गामम् ॥
कनकरसमस्ण्यवित्तह्यगन्धाम्लमत्रपर्ध्यपितम् ॥
माहिषमिह नवनीतं गतवीजं तच्च फल्मध्ये ॥
गोमयगाहोद्वर्चितं पूर्वं पश्चादनेन संलिप्तम् ।
भवति ह्यालिङ्गसहर्यं लिद्गं कठिनाङ्गनाद्यितम् ॥१४॥
इदानीं लिङ्गम्लल्वादपत्यस्य तद्वृद्धियोगानाह महातकेत्यादि—अय योगो

इदानीं लिझमूलत्वादपत्यस्य तद्वृद्धियोगानाहः महातकेत्यादि—अय योगो भहातकासहाय न देय । जलज्ञात्र चतुर्गुण बोध्यम् । कृनकेत्यादि—कनक धुरतूर, तस्य पत्रस्वरसः । तत्फलमिति धुरतूरमेव । गोमयेन सपस्केन लिझे गाढमुद्धर्त्तन फुल्वा ततोऽनेन लेप इति । कठिनाङ्गना इति कठिनाङ्गना, प्रायेण द्राविद्धनाटमालवदेशजा । तास्तु प्रायशो बहुतरसुरतैर्नेव तुष्यन्तीति कठिनत्वम् ॥१४॥

# श्रश्वगन्धातैलम्

श्रश्वगन्धावरीकुष्ठं मांसीसिंहीफलान्वितम्।
चतुर्गुणेन दुग्धेन तिलतैलं विपाचयेत्॥
स्तनिलङ्गकर्णपालिवर्द्धनं म्रच्नणादिदम्॥ १४॥
मेदसा चौद्रयुक्तेन वराहस्य प्रलेपितम्।
सम्यक् स्निग्धं रतान्तेऽपिस्तन्धतां न विमुश्चिति॥१६॥
वीजं वृहत्करञ्जस्य कृतमन्तः सपारदम्।
हेस्रा सुवेष्टितं न्यस्तं वदने वीजधुद्धातम्॥ १७॥
श्राजन्तूष्टीचीरं गव्यघृत चरणयुगलपेन।
स्तम्भयति पुरुषवीजं योगोऽयं यामिनीं सक्तलाम्॥१८॥
श्रम्भगवति पुरुषवीजं योगोऽयं यामिनीं सक्तलाम्॥१८॥
श्रम्भगवति कत् वृहतीफलन्। कर्णपालि कर्णनालिका॥ १५८॥
मास्रातकवृहतीफलनिलिनीदलिनधुजन्मजलश्रुकैः।
माहिषनवनीतेन करिम्वतैः सप्तिदनमुपितैः॥
मूलेन हयगन्धाया महिषीमलमिथतं पूर्वमथ लिप्तम्।

माहिषनवनीतिन कर्राम्वतैः सप्तदिनमुप्तिः॥
मूलेन हयगन्धाया महिपीमलमथितं पूर्वमथ लिप्तम्।
भवति लघुकृतरासमलिङ्गं भ्रुवं पुंसाम्॥१६॥
भक्षातकेत्यादी—करम्बता मिश्रतासे । श्रनन्तर हयगन्धाया मूले विवर

भह्नातकेत्यादी — करम्विता मिश्रितास्ते । श्रनन्तर हयगन्धाया मूले विवर कृत्वा सप्तादिनसुधितैर्भन्नातकादिभिलिप्त लिङ्गमित्यन्वय । कोट्टरा लिङ्गम् ?—महि-धीमलेन मिथत पूर्व मर्दित पूर्वम् । एतेनादौ महिधीमलेन लिङ्ग सम्मर्थ पश्चाट् भन्नातकादिभिलिप्त लिङ्ग लघुकृतगर्दैमलिङ्ग मवतीति ॥ १६॥

नीलात्पलसितपद्भजकेशरमधुकशर्करावलिप्तेन। सुरते सुचिरं रमते दृढलिङ्गो भवति नाभिविवरेण ॥२०॥

' इदानीं वाजीकरखप्रसगात् वीर्थ्यस्तम्भनमाद्द नीलोत्पलेत्यादि—नीलोत्पल-श्रेतपद्मयो केशरम् । एभि सर्वे पिष्टैर्नार्भि लिप्त्वा चिरकाल कामुको रमत इत्यर्थे. । नातिविनरेखेति पाठे अतिकान्ति-अद्वेख ॥ २०॥ सिदं कुसुम्भतैलं भूमिलताचूर्णमिश्रितं कुरुते । चरणाभ्यक्षेन रतेवींजस्तम्भाद् दृढं लिङ्गम् ॥ २१ ॥

सिद्धमित्यादौ---भूमिलता किन्चुलुक., तया मिश्रित कुसुम्मबीजस्य तैल सिद्धमिति पक्षमित्यर्थः ॥ २१॥

> सप्ताह छागसिललसंस्थं करभवारुणीमूलम्। गाढोद्वर्त्तनविधिना लिङ्गस्तम्मं रते कुरुते ॥ २२ ॥

मप्ताहमिलादि--धागभवसिल छागमूत्र, करभवारुणी उष्ट्रक्रयटकः, गङ्गा-पालोद्गति केचित् ॥ २२ ॥

> गोरेकोन्नतश्रद्धत्वग्भवचूर्णैन धूपितं वस्त्रम् । परिधाय भजन् ललनां नैकारखो भवति हर्पार्तः ॥२३॥

इदानीं कुपयोगकृतध्वजभङ्गचिकित्सामाइ गोरित्यादि—यस्या धेनोरेक शृङ्गः मुन्नत भवति तत्त्रक्चूर्येन धूपित वस्त्र परिधायेत्यर्थः। यः पुरुषो नियमेन एकस्त्री-गामी स्त्र्यन्तरगमने तु ध्वजोत्थान न भवति स एकायङ उच्यते ॥ २३ ॥

> समतिलगोचुरचूर्णं छागीचीरेण साधितं समघु। भुक्तं चपयति पारङ्यं यज्जनितं कुप्रयोगेण ॥ २४॥

समेत्यादि — अत्र निस्तुपतिलगोच्चरवीजचूर्याच्छागदुर्ग्येरुत्कारिका साधायित्वा शीते मधु दत्त्वा भच्चयेत् । पायड्य लिङ्गानुत्थानम् ॥ २४ ॥

> योगजवराङ्गवद्धं मथितेन खालित्यं हरति। उन्मुखगोश्टङ्गोद्भवलेपो योगो ध्वजभङ्गहरः॥ २४॥

कुप्रयोगेण लिङ्गानुत्थान यत् तिचिकित्सामाह योगेजलादि—मधितेन घोलेन उन्मुखेत्यादि—कदर्ध्व मुख यद्धेनोः शृङ्गम्, न तु वलीवर्दस्य । कद्ध्वंमुखस्त्री-गवीशृङ्गेरा लेपन लिङ्गस्य ॥ २५ ॥

> कुष्ठैलवालुकैलामुस्तकधन्याकमधुककृतः कवलः । श्रपहरति पूतिगन्धं रसोनमदिरादिजं गन्धम् ॥ स्रोद्रेण बीजपूरत्वग्लीढाधोवातगन्धनुत् ॥ २६॥

> > इति वृष्याधिकारः।

वमन्तं शोधन प्रति" इति । श्रत्र साधारणा इत्यनुत्र्म्तोष्णशातवर्षा इत्यर्ः । शुक्रनमावित्यापाढशावणी, प्रावृिद्धिकम्, श्रत्यत्व निर्देशात् शुक्रशस्य श्रापाढवचनोऽपि

हेय । किंना शुचिनमाविति पाठ । कर्जसहौ काित्तमागंशीणीं, तपस्य फाल्युन ,
मधुश्चेत्र इति । वर्षान्त इति शरिद । श्रन्त्यौ वसामञ्जानौ । माधव इति वैशाखो न
साधारणश्चतुमध्ये पठित किन्तु फाल्युनचेत्ररूपो वसन्त एव, तथापि प्रमृतकफतया
केष्ट्यानविषयत्वेनात्र नोक्ष , वैशाखस्तु वलचयधातुच्यकारक इति । श्रत्र वल्यो

धातुकारक. वसामञ्चत्रयोगो शुक्ष पवेत्यर्थ.। श्रन्त्यावित्यपि पाठ । कुत्त पुनरुक्षममय

एव केष्ट पिनेदिल्यत श्राह कार्य्यवशात् तु तदिति मशोधनरूपप्रयोजनवशात् ।

सरोाधन साधारण श्रतौ उत्सर्गतो विधायते तेन तद्दश्विशेष केष्ट्यानमि तत्रैनवत्यर्थ ॥५॥

#### वातिपत्तिधिको रात्राबुण्णे चापि पिवेन्नरः । श्रेष्माधिको दिवा शीते पिवेचामलभास्करे ॥६॥

इदानीमात्यिकातद्ग्रगृहीतेनात्युष्णशीतेऽपि यथा सेहपान विधेय तथा दोष-विशेषे च यथा सेहपान तदाह बातिषित्ताधिक इत्यादि—वातश्च पित्तन्न बातिषत्त तदिषको वातिषत्ताधिक । राम्नाविति सायम्, उच्छे भीष्मे, छेष्माधिकश्च गृहोते । श्रीतिविकारवसामज्जगृहीतपुरुषोपलक्षण, तेन वातछेष्माधिक छेष्माधिकश्च गृहोते । श्रतप्त सुश्रुतेऽप्युक्तम्—"वातिषत्तिधिको रात्रौ बातछेष्माधिको दिवा" इति । केवलवाताधिकस्य तथा पित्ताधिकस्य तथा स्थ्माधिकस्य साधारणे च शरदादौ कोल उत्मर्गामिद्ध एव । पानकालो वन्त्यमाणः । वन्त्यति हि—पिवेत् सशमन सेहमम्नकाले प्रकाद्यक्ति इत्यादि । व्याख्यान्तरस्य अस्मदीयचरकतत्त्वप्रदीपिकायामनुसन्धेयम् । श्रमलभास्कर दित दुद्दिनव्युदासार्थं मध्याह्यहणार्थं वा ॥६॥

स्वेद्यसंशोध्यमद्यस्त्रीव्यायामासक्कि विन्तकाः।
वृद्धाः वालावलकृशा रूच्चांणास्ररेतस ॥
वातार्चस्यन्दातिमिरदारुणप्रतिरोधिनः ।
स्रिद्धा न त्वितमन्दाग्नितीद्याग्निस्थूलदुर्धलाः ॥
उत्तरसमातिसारामगलरोगगरोद्दैः ।
मूर्व्याच्छर्धरुविन्शेष्मतृष्णामाद्येश्च पीडिताः।
श्रामप्रस्ता युक्ते च नस्य वस्तौ विरेचने ॥७॥
ध्वानी स्वाहीनाह स्वेदेलादि—नामस्स्य । स्वाहा शि स्वेद । स्वेदा इति

स्वेदाहां:। एव मशोध्या इति वमनादिसशोधनयोग्याः, मणा इति मणादिष्वासका , चिन्तकाश्चिन्तावहला । अवल इत्यकृशोऽपि यो वलरिहत । क्रश इति मासोपच-यहानः । चीणास्ररेतस , चीणे रक्तग्रुक्ते येपा ते चीणास्ररेतस , वातार्ता वातरोगिण. । स्वन्दोऽभिष्यन्द म च पुराणोऽभिषेत । दारुणो दुःसाध्यः, प्रतिवोधो जागरणम् अत्यन्तजागरणशील इत्यर्थः । अन्ये तु कृच्द्रोन्मीलनयुक्त इत्यर्थ । असे-णानाह न त्वित्यादि — अतिशब्दो, दुर्वलान्तेषु प्रत्येक योज्यः । अतण्वालपवला. सेत्या न त्वतिदुर्वला इति न पूर्वापरविरोध । आमप्रस्ता इत्यपरिणतगर्भस्नावयुक्ता इत्यर्थ. । वाग्भेट त्वपप्रस्तेत्वरुष्ण. पठित व्याचेट च स्नुतगर्भेति, सुश्रुतेन अकाले च प्रस्ता स्त्रात्यक्तम् । युक्त इति तत्कालप्रयुक्ते ॥ ७ ॥

स्निहसात्म्यः क्लेशसहो हढः काले च शीतले। श्रच्छमेव पिवेत् स्नेहमच्छपानं हि शोभनम्॥ =॥

श्रम्बद्धिस्पानिषयमाह केहित्यादि—सुश्रुतस्य । दृढ इति वलवान् , काले च शीतल इति यथपि पूर्वोक्तमाधारसकाल एव केहिवपयस्तथाप्यात्यायिकविकार-वशात् यदि शीतले काले केहिपयोग कर्तच्यः स्यात्, तटाच्छमेव पिवेदित्यर्थ । श्रम्ये तु दृढ इति पदं दूरीकृत्य काले चानतिशीतल इति पठन्ति । श्रम्छ इत्यादि-नास्य सम्यन्थः ॥ म ॥

पिवेत् संशमनं सिहमन्नकाले प्रकाङ्चितः।
शुद्धवर्थे पुनराहारे नैशे जीर्णे पिवेन्नरः॥
श्रहोरानमहः कृत्सं दिनाईश्च प्रतीचते।
उत्तमा मध्यमा हस्वः सिहमाना जरां प्रति॥
उत्तमस्य पलं मात्रा त्रिभिश्चाचेश्च मध्यमे।
जघन्यस्य पलाईन सेहकाथ्योपधेपु च॥ ६॥

सम्प्रति सशमनस्नेहस्य सशाधनार्थस्नहस्य च पानकालमाह पिवेदित्यादि— सशमनिमिति न शोधयित यहोपान्, तथा सशोधयिनित सशोधयित यहोपानित्या-णुक्तलच्चणम्। श्रप्तकाले दिप्रहरादिच्ये तत्र बुसुचा कदाचित्र स्यादिति तदर्थे प्रका-ह्चित इति विशेषणम्, शुद्ध्यर्थन्तु स्नेह थिन्दुष्टतादिकम्, नेशे निशान्तरक्षते चाहा-रे जीथे सित प्रातरेव पिवेदित्यर्थः। श्रयमत्राभिसन्थि, सशमनार्थः तेही यदि जरणान्ते प्रातरेव क्रियते तदा कोष्ठे।पेलपकदोपस्याचयात् तेन दोपेण सह स्नेह उत्कोश कुर्यात् न तु दोपनशमनम्, श्रतएव संशमनोऽन्नकालेऽभिहितः। सशोधना- र्थस्तु सेहो दीपोत्लेशकर एवापेचित इति दोपशेपावस्थायामेव प्रात काले तत्पान युक्तमिति। एतच कालकथनमुत्सर्गत , तेन वातिपत्तिथिको रान्नावित्यपवादिविपयन्यति-रिक्त प्वास्य विषयो श्रेय । सेहमानायास्नेविध्यमाह—अहोरान्नमित्यष्टप्रहरोपलच्चयम् , एवमह कृत्स्वमिति तत्प्रहरचतुष्ट्य दिनाद्धमिति तत् प्रहरदयमुपलच्चयित, अतप्यविक्त वाग्मेट 'द्वास्या चतुर्भिरष्टाभिर्वामैनीर्थ्यन्ति या क्रमात् रत्यादि। तेन प्रहराद्य-तीतेऽपि दिने माना पीता यथोकतप्रहरादिकालप्राप्त्या दिनान्तरे रान्नी वा जीर्थ्यमाणा मन्तन्या यदा पुनरहोरान्नपरिणामिनी मान्ना क्रियते तटहराहारो न कार्य्यः। अतप्य चरके उत्तममान्ना सेहपानविषयपुरुपमिप्तेत्योक्ता । चुत्पिपपासासहा इति । अनया तु चरकपरिभाषया प्रायो न व्यवहर्रान्त वृद्धा । तेन उत्तमादिपुरुपाणा सेहमानां प्रति वृद्धन्यवहारिमद्धमतमाह उत्तमस्येत्यादि ॥ ६ ॥

जलमुण्णं घृते पेयं यूपस्तैलेऽनुशस्यते । वसामज्ज्ञोस्तु मग्ड स्यात् सर्वेषूण्णमथाम्बु वा ॥ भक्षाते तौवरे स्नेहे शीतमेव जलं पिवेत् । स्नेहपीतस्तु तृण्णायां पिवेदुण्णोदकं नरः ॥ पवश्चानुप्रशाम्यन्त्यां स्नेहमुण्णाम्बुनाद्धरेत् ॥ १० ॥

श्रनुपानमाह जलमित्यादि—श्रन्विति श्रनुपान । मर्वेपूप्णमथाम्बु वेति यदुक्त तदपवादमाह मह्नातेत्यादि—मह्नाततुवरयो स्नेह इति विग्रह । तुवरो वृच्चित्रेष पत्पक्तसवस्तेह । इत्यर्थ , उक्त हि सुश्रुते—'' पृत्रेस्तु केशराकार फले सर्वपसार्थमे । वृच्चतुवरको नाम पश्चिमार्णवतीरज " इति । पीतस्तेहे यदि तृष्णा स्याद तदा तत्र प्रतोकारमाह स्तेहपीत इत्यादि—पीतस्तेह इत्यर्थ । उद्धरेदिति वमेत् ॥ १०॥

मिथ्याचाराद्वहुत्वादा यम्य स्नेहो न जीर्थिति। विष्टभ्य वापि जीर्थ्येतं वारिगोप्णेन वामयेत्॥ तत स्नेहं पुनर्दद्याञ्जघुकोष्ठाय देहिने। जीर्णाजीर्णविशङ्कायां पिवेदुष्णोदकं नरः॥ तेनोद्वारो भवेच्छुद्धो चिन्नश्चानं भवेत् प्रति॥११॥

श्रविधिपीतस्नेहजन्यापदः प्रतिकारमाहः मिथ्याचारादित्यादि-सुश्रुतस्य । मिथ्याचारादिति सीतक्षोमादिसेननाद् यथाविध्यनुपयोगाद् वहुत्वादित्यातेमात्रत्वात् विष्टभ्य मलादिरोध कृत्वा, जोर्णाजीर्णशक्षा चालपस्नेहानशेषेण श्रेया ॥ ११ ॥ भोज्योऽशं मात्रया पास्यन् श्वः पिवन् पीतवानिप । द्रवोष्णमनभिष्यन्दि नातिस्तिग्धमसङ्करम् ॥१२॥

इदानी लेहमपेस्य कालत्रयिहितमाहारमाह भीज्य इत्यादि—वाग्मटस्य । पन तिएमिति शेषः । श्र इत्यागामिदिने लेह पास्यन् तथा तिस्तित्रेन दिने तिह पिनन्, तथा पीतनानिष य पुरुषः स मात्रया अन भोज्य. भोजयितन्य इति । कीट्रामन भोजयितन्यमित्याह इनोष्णमित्यादि—अनिभन्यन्दीति न स्रोतोऽनरोधक असद्भरमिति न सयोगिनिरुद्धम् । निश्चलस्तु पास्यत्रित्यत्र पाष्यमिति पठित्वा पाय-यितन्य लेहिमिति शेष इत्याह, किन्तु चरके—द्रनेष्णमनभिष्यन्दि भोज्यमत्र-प्रमाणतः । नातिलिग्ध न सद्दीर्णं सतेह पातुमिन्छितिः शिषा वथा नाग्मटपुस्तकेन्विष वहुराः पास्यनित्येन पाठः टीकाकृद्धि व्याख्यात इति ॥१२॥

ज्यहावरं सप्तदिनं परन्तु स्निग्धो नरः स्वेदियतव्य इष्टः। नातः परं स्नेहनमादिशन्ति सात्स्यीभवत्सप्तदिनात् परन्तु॥ सृदुकोष्ठस्पिरात्रेण स्निह्यत्यच्छोपसेवया॥ स्निद्यति क्रकोष्ठस्तु सप्तरात्रेण मानवः॥१३॥

पञ्चकर्माक्षरेहप्रयोगाविधकालमाह श्र्यावरिमत्यादि—स्यहेण त्यह ध्याप्य कियमाण्लेहनेनावरम् कथम यथा स्यात् तथा तिग्यो नर स्वेदियत्व्यो भवति । एतच मृदुकोष्ठाविपयकम्, उक्तव्य—मृदुकोष्ठिक्तरात्रेण तिद्यतीति। तथा सप्तदिन ध्याप्य पर सप्तदिनरूप वा अपरमुत्रूष्ट यथा स्यात् तथा तिग्यो नर. स्वेदियत्व्यः। एतच मृदुकर्रकोष्ठविपयकम्, उक्तव्य—शिद्यति करकोष्ठस्त्र सप्तरात्रेण मानव रित। मध्यकोष्ठ प्रति त्रु तेद्वनप्रकर्षकालो यपि नोक्तस्तथापि चतुरहादिना मध्यकोष्ठस्य स्त्रहन श्रेयम्। यदाह सुप्रत — "पिवेद् त्र्यह चतुरह पश्चाह वा" इति उक्तसप्तदिनरूपलेहन-कालानिकम सोपपत्तिकमाह नातः परिमत्यादि—अत परिमति सप्तदिनात् परम्, कुतो नोपदिशन्तीत्यत झाह सात्योभवेदिति । सुश्रुतेऽप्युक्त—"सप्तरात्रात् पर तेह सात्योभावाय कल्पते" इति सप्तरात्रात् परेण कियमाण तेह सप्तरात्रयोगेण सात्योभावाय कल्पते" इति सप्तरात्रात् परेण कियमाण तेह सप्तरात्रयोगेण सात्योभात्तवाद न तेद्वनमिषक करोतीत्यर्थ । तेन यावन्मात्रलेहप्रयोगेण सप्ताहोप-युक्तन तेद्वन म भूत मात्रयाऽल्पस्वाद्,सा मात्रा सप्तदिनात् पर न प्रयोक्तध्येव तस्याः तेद्वनात्रायाः सात्याभूतत्वाद । या पुनरिषका मात्रा सात्यता न यता सा सप्ताहात्

परमिष लेहनार्थं कर्तन्येव । वृद्धास्तु यदि सप्तरिष्ठणिष पुरुष लिग्धो न भवित तदा कि जिद्य विश्राम कृत्वा पुनरिषकमात्रया लेह प्रयुक्तते। ननु यदि क्रूरकोष्ठः सप्तरित्रेण लिद्यतीति न्यवस्था तत् कथिम नात पर लेहनमादिशन्तीत्यनेन सप्तरित्रेन् णाप्यलेहनमुच्यत इति विक्रम । क्रूरकोष्ठ सप्तरित्रेणेव लिद्यति, परन्तु क्रूरकोष्ठ-तामपेन्य कृतया लेहमात्रया लिद्यति,यदा तु हीनमात्रा प्रयुज्यते तदा सप्तरित्रणिप न लिद्यतीति । यत् तु तन्त्रान्तरे—"तत् विश्वात्रात्रार्थ लेहपान विधीयते" इत्यनेन सप्तरात्राद्द्रध्वमिष लेहन विहितम्, तदि सात्त्यीभृतहीनमात्रापेचयेवाधि-कमात्रामिप्रायेण कृयम् । अत्र च सप्तरात्राद्द्रध्व लेहप्रयोगस्य निषेधात् त्र्यहादर्वाक् प्रयोगस्य चानिषेधात् सथ लेहप्रयोगे एकदिनेनािप लेहममनुजानाति । यस्तु किथान्य चानिषेधात् सथ लेहप्रयोगे एकदिनेनािप लेहममनुजानाित । यस्तु किथान्यद्वकोष्ठ प्रति त्रयहाद्द्रध्व न लेहन कर्त्तन्य सात्त्यीभावदिति चार्थोऽत्र लमत्र इति, यद्व्याख्यानयन्ति तत्र, यत सात्त्यीभाव सप्तदिननिर्वर्त्यवाचार्य्यणोक्त । तेनाल्पमात्राप्रयुक्तेन स्नेहेन त्र्यहाद् यदि न लिद्यति मृदुकोष्ठस्तदािधकदिनान्यि तत्र लेह्यति समुदुकोष्ठ हत्यादि न्याख्येयम् । मध्यकोष्ठलच्यान्तु यद्यपि नोक्त तथािप मध्यविधया चतुरहादिना य लिद्यति स मध्यकोष्ठ हत्ति ज्ञय ॥११३॥

क्षिग्धस्त्र्यहं स्थित कुर्याद्विरेकं वमनं पुन । एकाहं दिनमन्यच कफमुत्क्षेश्य तत्करैः॥ क्षिग्धद्रवोष्णधन्वोत्थरसभुक् स्नहमाचरन्॥१४॥ 7

इदानीं सशोधनस्नेहपाने कर्त्तन्ये यद्विधेय तदाह क्षिण्धेलादि—वाग्मटस्य । रिनग्धस्त्र्यह स्थित इति स्निग्धो मृत्वा त्रिदिन परिलक्षस्नेहपान सन् विरेक कुर्यात् विरेचनीषध पिवेदिलर्थ । एकाहमिल्पत्रापि स्थित इति थीच्य, तेन स्निग्धो मृत्वा एकाह स्थित इति परित्यक्षस्नेहपान सन् दिनान्तरञ्च कफकरैर्योन्यान्परसादिभि कफमुत्केश्य प्रवृत्त्युन्मुख कारियत्वा वमन कुर्यादित्यर्थ । इदानीं स्नेहोपरमिल्रिरात्र एव यद्विधेयस्तदाह स्निग्धद्रवीच्येत्यादि—स्नेह-माचरित्रत्यत्र स्वेदमारमिल्रलिप पाठ । स्वेहोपरमिल्रात्रे स्नेहपानिपेधस्योक्षत्वात् चरकेऽप्युक्त—"स्नेहात् प्रस्कन्दनो जन्तुित्रपत्रोपरमित्रिरात्रे स्नेहपानिपेधस्योक्षत्वात् चरकेऽप्युक्त—"स्नेहात् प्रस्कन्दनो जन्तुिक्षरात्रोपरत पिवेत्।स्नेहच्च द्रवमुष्णञ्च व्यह मुक्तवा रसीदनम् । एकाह परतस्तद्वस्मुक्तवा प्रच्छर्दन पिवेत्" इति ॥१४॥

वातानुलोम्यं दीप्ताग्निर्वर्च स्निग्धमसंहतम्। स्नेहोद्रेगः क्नमः सम्यक् स्निग्धे रूत्ते विपर्य्ययः॥ श्रातिस्तिग्धे तु पाग्रहत्वं घ्राण्यवनत्रगुदस्रवाः । रूक्स्य सेहनं कार्य्यमतिस्तिग्धस्य रूक्तण्म् ॥ श्यामाककोरदूपाद्म-तक्रपिग्याकशक्नुभि ॥१४॥

सम्यिवरनग्धस्य तथा रूषस्य तथातिरिनग्धस्य च लघ्धणान्याए वातानुलोम्य-मिलादि—नाग्भटस्य । श्रसएतिमलकाठिनम् । स्नेहोदेगोऽनिच्छा, क्षमो ग्लानि । ग्रुशुते—ग्लानि: सदनमज्ञानामित्युक्तम् । रूष्वण श्यामाकादिभिरित्यन्वय ॥१५॥

वालवृद्धादिपु स्नेहपरिहारासाहिष्णुपु । योगानिमाननुद्धेगान् सद्यः स्नहान् प्रयोजयेत् ॥ १६ ॥ इदानी विषयाभिधानपूर्वक सब स्नेहयोगानाह बालेत्यादि—वाग्भटस्य । श्रमुद्देगानित्यवैराग्यजनकानित्यर्थः ॥ १६ ॥

भृष्टे मांसरसे क्षिग्धा यवागूः स्वल्पतएइला ।
सचौद्रा सेव्यमाना तु सद्यः क्षेद्रनमुच्यते ॥
सर्पिस्तैलवसामज्जतएइलप्रस्तैः श्रता ।
पाञ्चपास्तिकी पेया पेया क्षेद्रनीमच्छता ॥
सर्पिप्मती वहुतिला तथैव स्वल्पतएइला ।
सुखोप्णा सेव्यमाना तु सद्यः क्षेद्रनमुच्यते ॥
शर्कराघृतसंस्रेष्ट दुह्याद्वां कलसे अथवा ।
पाययेद्रूच्रमेतिक सद्यः स्नेह्रनमुच्यते ॥ १७ ॥

भृष्ट इत्यादि— सुश्रुतस्य । भृष्ट इति सन्तलिते, मासरस इत्यनन्तर सिद्ध इति रेगि । स्वल्पतण्डलेत्यत्र सुकल्पितेति पाठान्तरम् । सिंपित्यादि—प्रसत पलद्धय, पेथेति पातन्या। सिंपिष्मतीत्यादि—सुश्रुतस्य । बहुतिलेत्यनेन निस्तुपतिलाना त्रयो भागा , प्रकस्तण्डलानामिति । इयन्च सुखोष्णा योज्या सुश्रुते तथेवोक्तत्वाच चक्रेण प्रतिसस्कृत्य लिखितमतत् । तत्र हि तथैवेत्यत्र यवागूरिति पठ्यते । राकेरित्यादि— सुश्रुतस्य । रूचिमिति पुरुपविशेषणम् ॥ १७॥

त्राम्यान्पौदकं मांसं गुडं दिध पयस्तिलान्।
कुष्ठी शोथी प्रमेही च स्नेहने न प्रयोजयेत्॥
स्नेहियथास्वं तान् सिद्धैः स्नेहयेदिवकारिभिः।
पिष्पलीभिर्दरीतक्या सिद्धैक्षिफलया सह॥

### स्नेहमेग्र प्रयुक्षीत ततः स्वेदनमन्तरम् । स्नेहस्वेदोपपन्नस्य संशोधनमधान्तरम् ॥ १८॥ इति स्नेहाधिकारः॥

येषु व्याधिषु स्नेहनार्थं यानि द्रव्याणि न प्रयोज्यानि तान्याह ग्राम्येत्यादि— स्नेहन इति म्नेहनिभित्तम् । तिहं ते के स्नेह्या इत्याह स्नेहिरित्यादि—यथास्वभिति यो यत्र स्नेहो युज्यते सिंपरादि , सिद्धैरिति तत्तद्याधिहरत्नेन प्रसिद्धे , सिद्धैरिति पिप्पल्यादिभि प्रत्येक योज्यम् , पिप्पल्यादिसिद्धा स्नेहा कुष्ठादिषु यथासङ्ख्य-भिति केचित् , तन्न, वाग्मेट व्यतिक्रमेखाभिधानात् यथा—"गुष्ठानूपामिपचौरतिल-मापसुरादिष । कुष्ठशोधप्रमेहेषु स्नेहनार्थं न कल्पेयत् । त्रिफलापिप्पलीपथ्यागुग्गु-ल्वादिनिपाचितान् । स्नेहान् यथास्वमेतेषा योजयेदिवकारिणे " हति । स्नेहादिषु स्नेहस्य प्राग्मावमाह स्नेहिमत्यादि—स्पष्टम् ।

इति स्नेद्दाधिकार ॥

# अथ स्वेदाधिकारः।

वातन्रेरुष्मिण वाते वा कफे वा स्वेद इष्यते।
क्रिग्धरूचस्तथा स्निग्धो रूच्छाप्युपकिएतः।
व्याधौ शीते शरीरे च महान् स्वेदो महाबले।
दुर्वले दुर्वलः स्वेदो मध्यमे मध्यमो मतः॥
श्रामाश्यगते वाते कफे पक्ताश्याश्रये।
रूच्चपूर्वो हितः स्वेदः स्नेहपूर्वस्तथैव च॥१॥

स्नेहमभे प्रयुक्षीत तत स्वेदनमन्तरामित्युक्ते स्नेहानन्तर स्वेदमाह—तत्र दोपिनेशपिष्ठया स्वेदस्य कल्पनामेदमाह वातित्यादि—अत्र वयासल्यमन्वय । स्निग्थरू इति स्निग्थरू इंद्रयकृतत्वात् । रोगाथपेष्ठयापि स्वेदस्य कल्पनामेदमाह व्यापावित्यादि—व्याधी महावले महाशीते शीतलकृते महाशीतले तथा शरीरे च महावले महानिति मृदुमध्यस्वदापेच्या प्रचण्डतापत्वेन कालवाहुल्येन च। एव दुर्वल

इति मध्यम इति च व्याख्येयम् । वाते स्निग्ध कफे रूच इति यदुक्त तस्य देश-विरोषापेच्या व्यभिचारमाह श्रामाशयेखादि—वाग्मटस्य । श्रामाशय इति कफ-स्थानोपलच्यम्, श्रत्रापि यथासड्ख्यमन्वय , तेन कफस्थानपेच्या पूर्व रूचस्वेद कृत्वा पक्षाद्वातापेच स्निग्धसेवद कार्थ्य । तदुक्त स्थान जयेखि पूर्वमिति । पव पकाशयगते स्नेहपूर्व इति व्याख्येयम् ॥ १ ॥

> वृषणौ हृद्यं दृष्टी स्वेद्येन्मृदु वा न वा। मृध्यमं वङ्ज्ञणौ शेषमङ्गावयविमष्टतः॥ २ ॥

श्रस्तेथदेशानाह वृपणानित्यादि—यदि वृपणे स्वेदः क्रियते तदा तत्र प्रत्या-सन्नशुक्तवरस्रोतस उपघातात् कांवित्व स्यात् । इत्यस्याप्योजः चयप्रमङ्गात् । इच्ट्या तर्पण्येश्वमचयात् तिमिरमान्ध्य वा मनेदिति । मृदु वा न नेति स्वेदैकसाध्ये वृषणा-दिगते व्याधी मृदु स्वेदयत् । स्वेदव्यतिरिक्षोपायान्तरसम्भवे तु न नेति बोध्यः । इप्टत इत्यातुरेच्छातो वैधेच्छातश्च । इप्टत इति भावे का ॥ २॥

> न स्वेद्येद्तिस्थूलक्ष्मदुर्वलमूर्चिन्नतान् । स्तम्भनीयम्नतक्षीण्विषमद्यविकारिणः ॥ तिमिरोद्द्विसर्पकुष्ठशोषाढ्यरोगिणः । पीतदुग्धद्धिस्नेहमधून् कृतविरेचनान् ॥ भ्रष्टदग्धगुद्दग्लानिकोधशोकभयार्दितान् । मुनुष्णाकामलापाग्रह्णमेहिनः पित्तपीडितान् ॥ । गर्भिणीं पुष्पितां सूतां मृदुर्वात्यियेके गदे ॥ ३॥

श्रस्वेद्यासह न स्वेद्येदित्यादि — वाग्मटस्य । श्रातिस्थूलरू चुर्वलचियानां स्वेदासहत्वात् प्रायोपरोधः, मूर्विक्रताना पित्तवृद्धया मूच्क्रेंव मवति । स्तम्भनीया वम्यितसारपीडितादयः पपा स्वेदात् पित्तवृद्धया रोगवृद्धि स्थात् । ज्ञतस्य स्वेदाद्मातिष्रवृत्ति , विपमद्यविकारियामपि पित्तवृद्धया तथोरपि महान् वेग , तिमिरे तर्पक्छेष्मचय , उदरे श्रत्युष्यादिनिदानस्वेन तद्वृद्धिरेव, विसर्पकुष्ठयो रक्षदृष्टिः प्रवमाद्यरोगे, श्राद्धरोगो वातरक्त, शोपे रसादिचयः । पीतदुग्धादी उत्कलेशादय , कृतिविरेके पित्तवृद्ध्या तदितयोग , श्रष्टगुदो ग्रदश्रशी दग्धगुद चाराग्न्यादिभि ग्रदश्रशदाह्यो पित्तवृद्धया सरत्वेन क्रमेया तयोरेव वृद्धि , ज्ञुष्याया विष्ठवृद्धया धातुपाकः वृष्ट्याया पित्तवृद्धि, कामलापायट्वोक्ष पित्तवृद्ध्या तद्वृद्धि, गर्भिण्याः गर्भव्या-पत्ति , पुष्पिताया रजोऽतियोगः । स्तामित्यपस्ता प्रस्नुतगर्भामिति यावत् । श्रस्था-

न्तु स्वेदात् रक्तानिप्रवृत्ति स्यादिति भावः । सम्यक्ष्रस्तायास्तु न्वेदविधानमध्ये वस्यति । एषु च मेदसादिषु यदि न्वेदकमाध्य मन्न्यासादिर्भवति तदा महाप्रत्य-वायमयाद्रत्यप्रत्यवायसुरद्यापि मृदुम्बेदो विधेय स्त्याह मृदुर्वास्यविके गद इति॥३॥

> स्वेदो हितस्त्वनाग्नयो वाते मेद्-कफावृते । निर्वातं गृहमायासो गुरुप्रावरणं भयम् ॥ उपनाहाहवकोधभृरिपानचुधातपाः । स्वेदयन्ति दशैतानि नरमग्निगुणादते ॥ ४॥

श्रनाग्नेयस्वटम्य विषयमाह स्वेदो हित इत्यादि—वाग्मटस्य । श्रनाग्नेयस्वेदा-नाह निवानिमत्यादि—वाग्मटस्य । उपनाहो वहलो लेप. म हि वहुललेन गरीरोप्मरोध कृत्वा स्वेटयिन । मृरिपान मधस्य ॥ ४ ॥

> शीतग्रुलब्युपरमे स्तम्भगौरवनित्रह । सञ्जाते मार्दवे स्वेटे स्वेटनाहिरतिर्मता ॥ ४ ॥

स्वेदस्य मन्यग्योगलस्यामाह गोतित्यादि—स्वेदे घर्मे, स्वेदनादिति प्रस्वेद-द्रव्यात् । शत्र शीनाधपहारस्य स्वेदस्य मन्यग्योगलचणत्वेन शीतादेर्थतोऽतुपरम-न्य स्वेदामम्यग्योगलचणत्वमुक्त भवति । सुद्धुनेऽप्युक्त—' स्वेदन्नावो व्याधिहा-निर्सेषुन्व शोताद्याना मार्दवन्नातुरस्य । मन्यक्स्वित्रे तच्चण प्राहुरेतत् मिथ्यास्वित्रे व्यत्ययेन मवेचत् " इति ॥ ५ ॥

स्कोटोत्पित्तः पित्तरक्षप्रकोपो

मदो मृच्छी स्रमटाहौ क्षमश्च ।
श्चितिस्वेटे सिन्धपीडा तृपा च

क्षियाः शीतास्तत्र कुट्योद्विधिकः ॥
सर्वान् स्वेटान् निवाते तु जीर्णात्रे चावचारयेत् ॥ ६ ॥
नेवानियोगतवण चिकित्विनज्ञाह स्कोटेलाटि-सुशुतस्य । स्वेदा यत्र यथा

प्योज्यास्तानाह मर्वानित्यादि-सुशुनस्य । जीर्थेऽत्र इत्युत्तर्यन्तेन विष्टन्थाजीर्यादी
यद नेवटिवधान विष्टच्ये स्वेदन कार्य्यमित्याटिनोक्क तदपवादतया न दुण्यतीति॥६॥

येपा नस्यं विधातव्यं वस्तिश्चापि हि देहिनाम् । शोधनीयास्तु ये केचित् पूर्वं स्वेद्यास्तु ते मताः ॥ पश्चात् स्वेद्या हते शल्यं मृहगर्भानुपद्रवाः । सम्यक् प्रजाताः काले च पश्चात् स्वेद्या विजानता । स्वेद्याः पश्चाच्च पूर्वश्च भगन्दर्थ्यशसस्तथा ॥ ७॥

इदानीं ये च स्वेदिविषयास्तथा पक्षाद् थे स्वेदिविषया ये कालद्वयेऽिष स्वेद-विषयास्तान् क्रमेखाद्य येपामित्यादि—सुश्रुतस्य । शल्य इति गर्भरूपशल्ये, अनुप-द्रवा गर्भस्नावाषुपद्रवादिरिद्ता । सम्यक्ष्रजाता सम्यक्ष्यता । स्वेद्या इति भगन्दरे-ऽशिसि च पूर्व स्वेदस्तप्तलीद्दशलाक्षया दाहरूप., पश्चात् स्वेदस्तु दाहानन्तरसुष्णो-दक्षोपवेशनरूपो ग्रेयः ॥ ७ ॥

तप्ते सेकतपाणिकांस्यवसनैः स्वेदोऽथवाद्वारकैलेपाद्वातहरैः सहाम्ललवण्सनेहैः सुखोण्णैर्भवेत्।
एवं तप्तपयोऽम्बुवातशमनकाथादिसेकादिभिस्तप्तेस्तोयनिषेचनोद्भवबृहद्वाष्पैः शिलाद्यैः क्रमात्॥
तापोपनाहद्ववाष्पपूर्वाः स्वेदास्ततोऽन्त्यप्रथमौ कफे स्तः।
वायौ द्वितीयः पवने कफे च पित्तोपसृष्टे विहितस्तृतीयः॥=॥
हति स्वेदाधिकारः।

सुश्रुते तापवाणीपनाहद्रवमेदेन चतुर्विधस्वेद उक्तस्तानाह—तप्तिरित्यादना अद्गारिरित्यन्नेन तापंस्वेदः । सिकतेन सैकतम् । सुश्रतेऽप्युक्त " तत्र तापस्वेदो नाम यः पाणिकास्यकन्दकपालवाञ्चकावस्ते. प्रयुज्यते रायानस्य चाङ्गतापो बहुरा खादिराद्गरिः" इति । लेपेत्यादिना सुखोर्ण्येरित्यन्तेन उपनाहस्वेदः । बातहरै-वंराहमासेर्भद्रदावादिभिक्ष काजिकादियुक्तः सुखोर्ण्येर्लेपात् यः स्वेद उक्तः स उपनाह इत्यर्थः । प्रविमत्यादि—स्वेदादिभिरित्यन्तेन द्रवस्वेद , पयो दुग्धम् । सुश्रुतेऽपि "द्रवस्वेदस्तु वातहरद्रव्यकाथपूर्णे कोष्णकटाहे द्रोयया वावगाद्य स्वेद्येद । पत्र पयोमासरस्यूपतैलधान्याम्लप्टतवसाम्नेष्ववगाहेत सुखोर्ण्यः कषाये परिपिद्यदिति । तप्तिरित्यादिना शिलाधारित्यन्तेन वाष्पस्वेद । शिलाधारित्यादशाद्यात् कपालप्टकालोहिपण्डादांना श्रष्टणम् , अस्यव विशेषण्य तोयेत्यादि । सुश्रुते तु वाष्पस्वेदस्तु कपालपापाणेष्टकालोहिपण्डानिभवर्णानिद्धरासिभ्रेदित्याष्टुक्तम् । एषा स्वेद्यान्ति कपालपापाणेष्टकालोहिपण्डानिभवर्णानिद्धरासिभ्रेदित्याष्टुक्तम् । एषा स्वेद्यान्ति विषयमाद्य तत इत्यादि । सप्तम्यन्तात् तसि । तेषु स्वेदेषु मध्ये ष्ठाचन्तः स्वेदौ वाष्पस्वेद-तापस्वेदौ कफे सतः । दितीय इत्युपनाद्ये वायो, ततीय इति द्रव-

स्वेद , पिचोपस्ट वाते कफे च भवति । सुश्रुतेऽप्युक्त " तत्र तापोध्मस्वेदौ विशे-पन श्रेप्मर्झा चपानाहम्बेदो वात्र अन्यतरस्मिन् पिचसस्टेट द्रवस्वेद " इति । ननु पिचोपस्टेट कथ स्वेदो वातश्रेष्मिण वाते वेत्यनेनैव विरोधात् १ उच्यते, पिच-युक्तेऽपि द्रवस्वेदविधानात् वातश्रेष्मणीत्यादिवचन प्रायिक श्रेयामिति ॥ ६ ॥ इति स्वेदाधिकार-विश्वति ।

# अथ वसनाधिकारः।

स्निग्धिस्वन्नं कपे सम्यक् संयोगे वा कफोल्वेण ।
श्वोवम्यमुत्क्षिप्टकफं मत्स्यमांसितलादिभिः॥
यथाविकारं विहितां मधुसैन्धवसंयुताम्।
कोष्ठं विभन्य भेपन्यमान्नां मन्त्राभिमन्त्रिताम्॥
भ व्रह्मद्वाशिव हनेन्द्रभूचन्द्राक्षीनिलानलाः।
ऋपयः सौपधित्रामा भूतसङ्घास्तु पान्तु ते॥
रसायनिवर्षीणां देवानामसृतं यथा।
स्रुथेवोत्तमनागानां भेपन्यमिद्मस्तु ते॥
पूर्वाहे पाययेत् पीतो जानुतुल्यासने स्थितः।
तन्मना जातहस्लासप्रसेकश्ळुर्दयेत्ततः॥
श्रंगुलीभ्यामनायस्तनालेन मृदुनाथवा॥१॥

दरानी रनेहस्वेदानन्तरीयत्वात् पञ्चकमां शिवकच्यानि । तत्र यद्यपि पञ्चकमम् वस्तेत्र प्राधान्य, यद्वक्तम्—''उपक्रमाणा मंदेषा सोयणी '' इति तथापि पञ्चकमणानीत्मिं कप्रवृत्ती वमनविरेचनपूर्विकैव वस्तिष्रवृत्तिभेवतीति कृत्वा वमनविरेचने एव प्रथममभिधातव्ये, तत्रापि वमनपूर्वकत्वात् विरेचनस्य विरेचनात् प्राक् वननमाद्द निर्ण्यतादि—सम्यक्तिनग्धस्वित्र पुरुष भेषज्यमात्रा पूर्वाहे पाययेदिति वस्त्याणेनान्वय । वमनस्य विषयमाद्द कफ इत्यादि—कफ केवलकफे, कफोल्वण क्षिन, कफाप्रवेद । यदि पुरुषो वस्यो वमन्नाद्दे भवति, तदा उत्पूर्वदिवसे मत्स्यादिमि कफ उत्केरानीय इत्यर्थ । उत्पिक्तन्ति

ष्टक्षफाय दीयमान वमन न दु खमावद्दति, उक्त दि—" कके उच्छदंयित खदु.खम् " इति । मान्नामित्यनपायिपारमाणम् । मधुमेन्थवस्रयुतामित्यनेन सर्वरिमन्नेन वमनयोगे मधुमेन्थवयोदेयता ने।ध्यति । कोष्ठ विभन्नेयृति कोष्ठाधेपत्तया
मधु सैन्थवद्य रते।क बदु वा देयमित्यर्थः । मन्न्नाभिमन्नितमित्युक्तमते। मन्त्रमाष्ट्
मधित्यादि । वमनौपथपानानन्तरीयविधिमाद्द पीत इत्यादि—तन्मना इति वान्तमना.
अगुलोभ्यामित्यत्र परिकर्तितनखाभ्या कर्यस्मिस्पृशानिति शेष.। चरकेऽपि सुपरिलिखितनखाभ्या कर्यस्मिस्पृशानित्युक्तम् । अनायास्तेति ऋजुमृदुना, नालेनेत्युत्यतनोत्तन ॥ १ ॥

रुष्णेन्द्रयवसिन्धूत्थवचाकरकयुतं पिवेत्। यष्टीकषायं सत्तोंद्र तेन साधु वमत्यलम्॥ काथ्यद्रव्यस्य कुडवं श्रपित्वा जलाढके। चतुर्भोगावशिष्टन्तु वमनेष्वचचारयेत्॥ १॥

वमनविधिमभिधाय वमनयोगानाह कृष्णित्यादि — अत्र कृष्णादीना मिलित्वा कर्ष । यष्टिकषाय यष्टिमधुकषायम् । कपायाश्च काथ्यद्रव्यस्य कुढव अपीयत्वा जला-ढके चतुर्मागाविशष्टन्तु वमनेष्ववनारयदिति परिभापया कार्य्य । नत्वत्र चतुर्मागाविशष्टः कपायः प्रस्थमात्रो भवति, चरके तु पूर्ण शराव पिवेदित्युक्तम् , अतो विरोधः, नेव चरके तु पूर्ण शराविमिति यदुक्त तदेकशरावपानाभिप्रायेण, तेनेष्ट प्रस्थमात्रे कपाये शराविमक पीत्वा शेषकपायभागो रच्नणीयोऽयोगे सित पुनः पानार्थमित्यभिप्रायः । प्रतच्च मात्राकथन मन्द्रवृद्धरनध्यवसायस्य स्यादित्येव कथ क्रियते इति वस्तुतस्तु काष्ठावयेचयेव मात्रा कल्पनीयति सिद्धान्तः । अत्यव्य कोष्ठ विभज्य मात्रामित्युक्तम् । सर्वत्रेव वमनयोगे उच्चीकरण् मधुसैन्थव भ्रयम् । न चेष्णे मधु विरुध्यत इति वाच्य, वमनस्यापकस्येव कद्ध्वगमनात्, जठराग्नि-पाके हि विरोधो भवति । वृद्धवेद्यास्तु अयोगे कदाचित् सम्भावनया न प्रिचपन्त्येव ॥ २॥

तएडलसलिलनिष्पिष्टं यः पीत्वा वमति पूर्वोह्वे । फलिनीवल्कलमुण्णं हरति गरं सकफिपत्तरजम् । चौद्रलीढं ताम्ररजो वमनं गरदोषनुत् ॥ ३ ॥

ŧ

तग्जुलसलिलस्यनेन पानमपि तग्जुलजलिनेन। फलिनी प्रियङ्गु , तदल्कल

कर्षमान मधुमैन्धेव श्रिप कपमाने । एनच दिष्ट्मात्र, तेन कोष्टाचेपच्चा स्नोक नतु बा क्रियते । पानार्थे तत्त्वुलमिलमिषि शरावमात्र, पूर्णे शरावमित्युके । इंहि-त्यादी—स्तायनाधिकारोक्ततात्रयोगवन्मारितपुटिननेपालतात्रचूर्णे रिक्तपञ्चक मधुना ममर्थ लेखम् । श्रस्य तात्रयोगस्य वमनकारकत्व वमनापधमावितत्वोङेनेति शेयम् ॥॥॥

#### पश्चकपायः

श्राटरूपं वचा निम्यं पटोलं फिलिनीत्वचम् । काथियित्वा पिवेत्तीयं वान्तिकृत्मटनान्वितम् ॥ ४॥ श्राटरूपीमत्यादावीप पूर्वोक्तपरिभाषयेव काथ करणीय । मदनफलन्तु कपमात्र प्रेचेप्यमित्याहु ॥ ४॥

> निम्वकपायोपेतं फलिनीगद्मद्नमधुकसिन्धृत्थम् । मधुयुतमेतद्दमनं कफपूर्णाशये शस्तम् ॥ ४॥

निम्बकपायोपेनमित्यार्टी—गर. कुष्टम् । फलिनीदुण्ठमधुकाना मिलित्वा नै कर्षे , मटनफलस्य च कर्षे , मैन्धवस्य मापकचतुष्टय, मधुने।ऽष्टी मापका इति प्रेचपन्यवस्था इत्यादुः ॥ ५ ॥

> फलजीमृतकेदवाञ्चकुटजाः कृतवेधनः । धामार्गवश्च संयोज्याः सर्वेथा वमनेष्वमी ॥ ६॥

वमनयोगेषु यौगिकद्रन्याययाह फनमित्यादि-फन मटनफन, जीमूतको टेव-दाली घोषकोमद, रस्त्राकुत्तिकतुम्त्री, कृतवेधन ज्योत्स्तिका, धामागैन. पीत-घोष । एषा जीम्तादीनाञ्च फलम् । एने च दोषाध्येष्ठया कल्मकाथादिकल्पनया वमनयोगेषु योज्या इत्यर्थ ॥ ६ ॥

> कमात् कफः पित्तमथानिलश्च यस्यैति सम्यग्वमितः स इष्टः। हत्पार्थमूर्द्वेन्द्रियमार्गश्चदौ

तने लि घुत्वे अपि च लच्यमाण ॥ ७ ॥

इदानी वमनस्य सम्यग्योगलच्चणमाह क्रमादित्यादि—क्रमादिति वचनेन
यथोककमलच्चेन क्रफाद्यागमन सम्यग्योगलच्चरामिति वोधयति । यत क्रफादूद्भं
यदा पित्त गत स्याप् तदा तिविचागमने अपि न शुद्धिः । किन्तु यदैवामाशयाधोमागगत पित्त वमनमानयति तदैव शुद्धि । तच्च पित्तानयनं क्रफानयनानन्तरमेव

भवीत । इयमेवात्यन्तिकी शुद्धिरच्यभिचारिखो । हत्पार्श्वेत्यादिना वमनस्य नैसः गिंकशुद्धिमाह । सम्यग्वमित इष्ट इत्यन्वयः ॥ ७॥

# दुश्छर्दिते स्फोटककोठकएडू-

### हत्खाविशुद्धिर्गुरुगात्रता च॥ = ॥

दुरह्वदित इत्यादिना श्रर्धश्लोकेनायोगकृतवमनत्तवणमाह । हृत्वाविशुद्धि-रिति-हृदयस्य तथा खानामिन्द्रियाणा स्नेतिसामशुद्धिरित्यर्थ ॥ = ॥ तृग्मोहसूङ्गीनिलकोपनिद्वाबलादिहानिवसनेऽतिविद्यात् ॥ ततः सायं प्रभाते वा चुद्वान् पेयादिकं भजेत् ॥ ६॥

त्यमोहेलादिना अनिथोगलचणमाह—अतिविभित इत्यन्वयः। आदिशब्दे-नैव वर्णस्वरादिग्रहण, बलातिहानिरित्यिप पाठ । एतदनन्तर किं पथ्य देयं न वेति तानाए तत इत्यादि—यस्य मम्यग्योग चुधा च स्याद तदा सायम्, अन्यथा तु प्रात. पेयादिक मजेदित्यथं । मेलेऽप्युक्त—"विभित लहुयेद सम्यक् शुद्धिलिङ्गा-न्यलचयन् । तानि दृष्ट्वा तु पेयादिकम कुर्यान्न लहुयेद" इति ॥ ६ ॥ पेयां विलेपीमछतं छतश्च यूषं रसं त्रिद्धिरथैकशश्च । क्रमेण सेवेत विशुद्धकायः प्रधानमध्यावरशुद्धिशुद्धः ॥ १० ॥

तमेव पेयादिक्रममाह पेयामित्यादिं—पेयादिल चण्छ ज्वराधिकार प्वोक्त व्याख्यातञ्च । विलिप्तराच्दो विलेपीवचन । अकृतो यूष स्नेहाधसस्कृत , कृतस्तु स्नेहलवणादिसस्कृत , प्रव रसेऽपि कृताकृतव्यवस्था । उक्त छ सदरणासे—"अस्नेहलवण सर्वमकृत करुकिविना । विश्वय लवणस्नेहकरुकै. सस्कृत कृतम्" इति । अस्नेहलवणमितीषत्सेनहलवणयुक्तम् । अतप्वोपकल्पनीये तनुना तनुस्नेहलवणो-पपन्नेन मुद्गयूषेणत्युक्तम् । सस्कृतमिति वचनाच समग्रसाधन यावता भवति तावदेव लचणादिक कृते देयमिति वोधयति । अकृतकृतयोर्गध्य अकृतो लघुर्मवति; उक्त हि—"अकृताख्यो लघुस्तत्र तनु विष्टूयते स हि" इति । अकृत कृतछेति चकारोऽयमन्वाचयशिष्ट., तेन कृतस्यानैयस्य बोधयति, तत्थाकृतावव यूषरसौ लाधवादिमिनधुच्चणार्थ देयौ, कृतौ पुनरवस्थाविरोषादिति । अतप्वोपकल्पनीये तनुना तनुस्नेहलवणोपपन्नेनत्थनेन औदकलावाणकृत्यनेन च अकृतयोरेव यूषरस्योदीन साचादुक्त, कृतौ पुनरवस्थाविरोषानियतत्वाज साचादुक्तौ । त्रिरित्यक्तकाल-, अय, हिरित्यक्तकालहयम् , एकरा इत्येकाजकालम् । एतच त्रिरित्यादि प्रत्येकं पेयादिमि सम्बध्यते । त्रिरित्यादि पचत्रयञ्च प्रधानशुद्धयादिशुदेषु त्रिषु यथाक्रम, तेन

प्रधानशुद्धिशुद्धे पेयादिकम प्रत्येक त्रि॰ कर्त्तंच्य , नेनात्रकालत्रये पेया, तन परेणात्रकालत्रये विलेपी, तत परेणात्रकालत्रये छुनाञ्चन्य्ययोग्न्यतरेण महितमत्र, तने।ऽपि च परेणात्रकालत्रये छुनाञ्चन्यसेराण महितमत्र देयभिति । हावरामिरत्रकालवंगनदिनमायाहात् प्रमृति सपरात्रेण पेयादिकमः ममाप्यते । अन्नकालस्तु उत्मगिसिद्धः साय प्रातश्चेति । अयमेव च क्रम उपक्लपनीयेऽपि, तन मायाहे लोहितगालितण्डुलानामिलादिना यावद् द्वादरो चात्रकाल इत्यनेनोकः । एव मध्यशुद्धिशुद्धे द्वि पेयादिकमः । अवरशुद्धिशुद्धे चक्रशः पेयादिकमे न्याप्येय । एवज्र मध्यशुद्धिशुद्धेऽष्टात्रकालिक , अवरशुद्धिशुद्धे तु चतुरत्रकालिक क्रमो नवन्तीति, व्याल्यान्यस्त्र अस्मदीयचरकतत्त्वप्रदीपिकायामनुमन्ध्यम् । यद्यपि प्रधानशुद्ध्या निःरोपदोपहरत्यादुद्ध्यं पावको निरपवाद एव भवित तथापि तत्र भृरिदोपनिर्देरोन तावत्कालिकाश्यक्षोमादिमाण महेदेव मम्मवनीति तेनात्र पेयादिकमन्दिसर क्रियन इति श्चयम् ॥ १०॥

#### जधन्यमध्यप्रवरे तु वेगाश्चत्वार इष्टा वमने पड्छौ। दशैव ते द्वित्रगुणा विरेके प्रस्मत्वा द्वित्रिचतुर्गुणश्च॥ ११॥

स्दानीं प्रधानशुद्धवादिशानार्थं तल्लक्षणमाह जधन्येत्यादि—नघन्यमध्यप्रवरे वमने यथाक्रम चत्वार पढिथे वेगा उका तेन चतुर्भिवेगेयंच वमन तज्ञधन्यम्, यत् तु पट्भिस्तन्मध्यमम्, यत् त्वधाभिस्तत्प्रवरम् । तथा विरेकेऽपि जधन्ये दशः वेगाः । मध्ये तु विरेचने दिगुणा दशः विश्वतिरित्यर्थे । प्रवरे तु विरेचने त्रिगुणा दशः त्रिशादित्यर्थे । वेगमल्याभेदेन जधन्यादिभेदमभिधाय दोषमानभेदेनापि विरेचनस्य जधन्यमध्यप्रवरता क्रमेणाह प्रष्यस्तयेति । जधन्ये विरेके दिगुणः प्रस्य , मध्ये तु त्रिगुणः , प्रवरे च चतुर्गुणः इति ॥ ११ ॥

# पित्तान्तमिष्टं वमनं विरेकादर्झं कफान्तऋ विरेकमाहुः॥ १२॥

पिचानिमित्यादिना वमनिविद्यनमोदोंपप्रवृत्त्यन्तोपलिचतामात्यान्तिकी शुद्धि तथा वमनस्य तु दोषमानभेदोपलिचता मानिकी शुद्धिमाह—पिचप्रवृत्तिपत्ने यस्य तद् पिचान्तम्, एव कफान्नमिपि शेयम्। विरेकादर्द्धमित्यनेन वमनस्य दोषप्रमा-पोपलिच अत्यान्तिकी शुद्धिस्ता। जवन्यमध्यप्रवरे विरेके प्रस्थरन्येत्यादिना यद्दो-पमानमुक नद्देपच्या वमनेऽर्द्दमित्यर्थः। तेन वमने जवन्ये प्रस्थ एकः, मध्ये तु सार्द्धप्रस्यः, प्रवरे तु द्दी प्रस्थाविति। एतेन वैगिकी मानिकी चात्यन्तिकी चिति शुद्धित्रम्यकृत्, हत्याभेत्यादिना चाहिकी शुद्धि, पूर्वमेत्रोका। तेन चनुर्विषशुद्धि- धारकेणोका, प्रपक्षस्वस्य वचनस्य चरकतत्त्वप्रदीपिकायामनुसन्धेय इति ॥ १२ ॥ द्वित्रान् सविद्कानपनीय वेगान् मेयं विरेके वसने तु पीतम्।

वमने च विरेके च तथा शोणितमोत्तणे। सार्द्धत्रयोदशपलं प्रस्थमाहुर्मनीषिणः॥ श्रयोगे लहुनं कार्यं पुनर्वापि विशोधनम्। श्रातेवान्तं घृताभ्यक्तमवगाद्य हिमे जले॥ उपाचरेत् सिताचौद्रमिश्रेलेंहैश्चिकित्सकः। वमनेऽतिप्रवृत्ते तु हृद्यं कार्यं विरेचनम्॥ १३॥

वमने विरेचने च यथा दोषमान कार्य्य तदाह दित्रानित्यादि—द्दी वा त्रयो वा परिमाणमेषा दित्राः । दित्रानित्यन्यनिश्यतपरिमाषया मलमागस्य मेयता दर्शन्यति । वमने तु पीतिमिति वमने पितमौषथ वर्जयित्वा रेषि मेय । पूर्वन्तु विरेके प्रस्थ इत्युक्तम् अतस्तत्स्वरूपमाह वमने चेत्यादि । क्रमेण वमनयोगातियोगचिंकिन्माह अयोग इत्यादि—विशोधन वमन विरेचनश्च । लेहेरिति राक्त्ना मन्थै । अति-वान्तौ च विरेचन प्रतिमागेहरखरूपत्वाद ॥ १३ ॥

न वामयेत्तिमिरिकं न गुरिमनं न चापि पाग्ह्दररोगपीडितम्।
स्थूलत्तत्त्तीणकृशातिवृद्धानशोंऽदिंतात्तेपकपीडितांश्च ॥
रूत्ते प्रमेहे तरुणे च गर्मे गच्छत्यथोंद्ध्वं रुधिरे च तिवे।
दुष्टे च कोष्ठे किमिमिर्मनुष्यं न वामयेद्वर्वसि चातिबद्धे ॥
एतेऽण्यजीर्णव्यथिता वाम्या ये च विषातुराः।
श्रत्युरुवणकफा ये च ते च स्युर्मधुकाम्बुना॥ १४॥

इति वमनाधिकारः॥

श्रवाम्यानाह न वामयेदित्यादि —श्रवाम्यत्वेनोक्षानामप्यात्यविक्रव्याघौ वमन-माह एतेऽपीत्यादि ॥ १४ ॥

इति वमनाधिकार-विषृतिः ।

# अथ विरेचनाधिकारः।

### स्निग्धस्विन्नाय वान्ताय टातव्यन्तु विरेचनम् । श्रन्यथा योजिनं ह्येनद् ग्रह्णीगद्दन्ननम् ॥ १ ॥

वमनानन्तर विरेचनन्य विधानाद्रमनमिधाय विरेचनमाह स्निग्धेत्याति— न्निग्धित्वत्रायेनि वमनानन्तामिप न्निग्धित्वत्राय । ततुक्त—"कर्मद्यां वमनाद्रोना-मन्तरे तन्त्रेर पुन.। रेनेहस्वेदां प्रयुक्षात्र मगोधनमनन्तरम् " इति । अन्यधित वमनं विना । मुश्रुतेऽप्युष्टम्—" अवान्तस्य हि मानाग्री रिक्तस्वापि मत्रोऽध स्त्रम्मं रूप्मा यहात्रीं त्रेन्द्रयेत् " इति । अयभ्र विरेचनयोगः पृवाह्मनिकर्न्यव देय । उक्त हि वाग्मेटे—" रूप्मकाले गत्र ज्ञात्वा क्रोष्ठ सन्यग्विचेद्येत् " इति ॥ १॥

पित्तेन मृदुकोष्ठः स्यात् कृरो वातकफाश्रयात् । मध्यमः समटोपत्वाद् योज्या मात्रानुरूपनः॥२॥

मात्राविध्यर्थ कोष्टजममाह पिचेनेत्याहि—मात्रा योज्यानुरूपन इति नृही नृही, होरे नीह्या, मध्येम मध्योन्यर्थ: ॥ २॥

र्यकराज्ञौद्रसंयुक्तं त्रिवृच्चृर्णवचृर्णितम् । रेचनं सुकुमाराणां त्वक्पत्रमरिचांशिकम् ॥ ३ ॥

गर्कत्त्वादि—सुमुद्धत्य । त्रिवृश्च श्रेष्ठत्वादृरुपामूला आह्मा, श्वमन्यत्रापि । यदाह सुमुद्ध —" अन्त्याभ त्रिवृश्नुन अग्रमाह्यविरेचने " इति । अत्र गर्करा त्रिवृश्चमूर्यस्मा, त्रिवृष्णमूर्यमपि नोष्ठावेषव्या आह्मम्, लेहत्वमात्रकारक खोद्रम् । त्वक्ष्पत्रमिरिवाणिकमिति चूर्यायेचया त्वक्षत्रत्रादि मिलिला पादिकमित्यर्थः । त्वक्ष्पत्रप्रमिति पाद्यन्ति पाद्यन्ते यावता संरम्य स्थाद तावदेव त्वक्षत्र देवमिति । विवृष्णमूर्यं मा म, गर्करा मा म; गुडत्वक्तेवषत्र मरिच प्र र ७ ॥ ३ ॥

त्रिच्च्यूंग् सिनायुक्तं पियेच्छ्रेष्टं विरेचनम् ॥ छित्त्वा द्वियेकुं परिलिप्यकलकैः

स्त्रिमिएडजातैः परिवेप्ट्य रज्ज्वा । पकन्तु सम्यक् पुटपाकयुक्त्या सादेचु तं पिचगदी सुशीतम् ॥ ४ ॥ त्रिवृदित्यादि —चरकस्य । पूर्ववदेवात्रापि त्रिवृत्मान श्चेयम् । छित्त्रेत्यादि — चरकस्य । त्रिमग्रङी त्रिवृताभेद । पुर्याकयुक्त्येति काश्मर्थ्यादिपत्राच्छादनकुश-वेष्टनमृदावलेपनिर्वभूमाङ्गारप्लोपग्रादिना ॥ ४ ॥

> पिष्पत्तीनागरज्ञारं श्यामा त्रिवृतया सह । लेहयेन्मधुना सार्द्ध कफव्याधौ विरेचनम् ॥ ४॥

पिप्पलीत्यादि—चारो यवचार, श्यामेति श्याममूला त्रिष्टत् । त्रिवृदित्य-स्त्यमूला, श्रत्र पिप्पलीनागरयो कदुत्वमात्रकारिका मात्रा, तेन पिप्पलीचूर्णं माषा १, शुर्फीचूर्णं माषा २, चारादित्रयस्य प्रत्येक माषकचतुष्टय, तता मिलित्वा कर्षो लेख, एवमन्यत्राप्युक्तमित्याद्य ॥ ५ ॥

हरीतकीविडङ्गानि सैन्धवं नागरं त्रिवृत् । मरिचानि च तत् सर्वे गोमूत्रेण विरेचनम् ॥ ६॥

हरीतकीत्यादि-एषा चूर्ण गोमूत्रेण पैयमित्यर्थः। हरीतकी मा ४, विड-द्यादित्रयस्य प्र मा २, त्रिष्टत् मा ४, मरिच मा १, एव मिलित्वा कर्षमात्रं गोमूत्रपलेनालोड्य पेयमित्यर्थः॥ ६॥

> त्रिवृच्छाणत्रयसमा त्रिफला तत्समानि च । चारकृष्णाविडद्गानि तच्चूणं मधुसर्पिषा । लिह्याद्गुडेन गुडिकां कृत्वा वाप्युपयोजयेत् ॥ कफवातकृतान् गुल्मान् सीहोद्रसगन्द्रान् । हन्त्यन्यानपि चाप्यतिश्वरपायं विरेचनम् ॥ ७॥

त्रिष्टच्छायात्रयेत्यादि — त्रिष्टताचूर्यं मा १२, त्रिफलाचूर्यं प्र मा ४, यवचारादीनान्च प्र मा ५, मिलितचूर्यात् कर्षमेक गृहीत्वा ष्टतमधुस्या लेखम् । गृहिकापचे तु पुरायगुष्ट तो ६ पतिनवृतादिचूर्येन सम विमर्थं कर्षमाना गुहिका कार्य्या, तप्तोदकमनुपेयम् ॥ ७॥

### श्रभयाद्यो मोदकः

श्रमया पिष्पलीमूलं मरिचं नागरं तथा।
त्वक्पत्रपिष्पलीमुस्तिविडद्गामलकानि च ॥
कर्षः प्रत्येकमेषान्तु दन्त्याः कर्षत्रयं तथा।
षद्कर्षाश्च सितायास्तु द्विपलं त्रिवृतो भवेत्॥

सर्व सुचृिंपतं कृत्वा मधुना मोदकं कृतम् ।

खादेत् प्रतिदिनश्चैकं शीतश्चानुपिवेज्ञलम् ॥

तावद्विरिच्यते जन्तुर्यावदुण्णं न सेवते ।

पाग्रहरोगं विषं कासं जङ्घापार्श्वरुजां तथा ॥

पृष्ठार्त्तिमूत्रकुच्छुश्च दुर्नाम सभगन्दरम् ।

श्रश्मरीमेद्दकुष्टश्च दाहशोथोदराणि च ॥

यदमाणं चजुषा रोगं क्रमं वैद्येन जानता ।

योजितोऽयं निहन्त्याशु श्रभयाद्यो हि मोदकः ॥ = ॥

परग्रहतैलं त्रिफलाक्षाथेन द्विगुणेन च ।

युक्तं पीत्वा पयोभिर्वा न विरेण विरिच्यते ॥ ६ ॥

श्रमयेत्यादि योगद्वय स्पष्टम् ॥ = ॥ ६ ॥

स्रोतोविशुद्धीन्द्रियसम्प्रसादौ लघुत्वमूर्जोऽग्निरनामयत्वम् । प्राप्तिश्च विद्पित्तकफानिलानां सम्यग्विरिक्तस्य भवेत् क्रमेण्॥१०॥ स्यात् श्लेष्मिपत्तानिलसम्प्रकोपः सादस्तथाग्नेगुरुता प्रतिश्या। तन्द्रा तथा छुर्दिररोचकश्च वातानुलोम्यं न च दुर्विरिक्ते ॥११॥

विरेकसम्यग्योगलचणमाह स्रोतोविशुद्धीत्यादि—चरकस्य । कर्जोऽग्निरितं बलनानिशित्त्यथं । अनामयत्विमितं विरेचनेजतव्यदोषजनितिविकारव्यपगम । क्रमेण विट्पित्तदिना प्राप्ति प्रबृत्तित्त्यथं । अनापि यथोक्तकमलच्चणेन विट्पित्तादिप्रवर्षेनेन सम्यग्निरिक्तलच्चण भनतीति पूर्ववदेन ज्ञेयम्, अनापि पूर्वादेनं विरेकस्य लेक्निनी शुद्धि, दितीयादेनं पुनरात्यन्तिकी, शुद्धिरितं ज्ञेयम् । स्यादि-त्यादिना पर्यनायोगकृतलच्चणमाह । न च नातानुलोम्यमित्यादि—नातविवद्ध स्थये । गुरुतेति कोष्ठस्य गानस्य च ॥ १० ॥ ११ ॥

कफास्रिपि च्ह्रयज्ञानि लोत्था सुप्त्यक्रमर्दक्षमवेपनाद्याः। निद्रावलामावतमः प्रवेशाः सोन्माद्दिकाश्च विरेचिते ऽति ॥ मन्दाग्निमची सम्मद्धिरक्तं न पाययेत् तिद्द्वसे यवागूम्। विपर्थ्यये तिद्दवसे तु सायं पेयाक्रमो वान्तविद्घयते तु ॥१२॥ कफेल्मादिना विनेचनातियोगलक्षणमाह—चयरान्दः कक्षादिभि मत्येक सम्बध्यते, श्रमावशब्दोऽपि निद्रावलाभ्यामिति । श्रतिविरोन्ति इत्यन्वय । श्रीत्रव यशिमान्यादिक स्यात् तदा तिसन् दिवमे लह्वनमन्यथा तु साय यवानूर्देयेत्याह् मन्दािश्वामित्यादि—सुश्रुतस्य । विपर्यंय इत्यशिमान्याद्यभावे पेयाक्रम इति पेयां विलेपीमकृतमित्यादिनांक्त ॥ १२॥

यथाणुरिश्नस्तृणगोमयाद्यैः सन्धुच्यमाणो भवति क्रमेण ।
महान् स्थिरः सर्वसहस्तथैव शुद्धस्य पेयादिभिरन्तराग्निः ॥ ,

कषायमधुरै पित्ते विरेकः कहुकैः कफे।
स्निग्धोष्णलवणैर्वायोरप्रवृत्ते च पाययेत्॥
उष्णाम्बु स्वेदयेचास्य पाणितापेन चोदरम्।
उत्थानेऽलेप दिने तस्मिन् भुक्त्वान्येद्यः पुनः पिवेत्॥
श्रद्यक्तेहकोष्ठस्तु पिवेदूद्ध्वं दशाहतः॥
भूयोऽष्युपस्कृततन्तुः स्नहस्वेदैविरेचनम्।
यौगिकं सम्यगालोड्य स्मरन् पूर्वमनुक्रमम्॥ १३॥

उननियाक्रमस्य फलमाह यथेत्यादि । इदानीं दोषभेदादिरेकमाह कषाये-त्यादि—वाग्मटस्य । वायोरिति छेद । श्रप्रवृत्ते तु पुरीपादी उच्छाम्बु पाययेदिति योज्यम् । श्रत्यन्तालपप्रवृत्ते दोषे श्रपरिमञ्जहिन निरेक्तमाह उत्थान इत्यादि—उत्थान मलप्रवर्त्तनम् । पुनः पियोदित्यश्र निरेचनिमिति शेष । यदि पुनरसम्यक्-रिनग्धकोष्ठो भवति पुमान् तदा दशाहादूद्ध्वं निरेचन पियोदित्याह श्रद्धदन्तेह्नकोष्ठ इत्यादि—श्रद्धत्नेह्नकोष्ठ इति श्रसम्यक्रिनग्धकोष्ठ इत्यर्थः । स्मरन् पूर्वमनुक्रमिति येन मात्राभियोगेन पूर्वमयोगोऽभृत् तत् स्मृत्वा परिहर्त्तेच्य ॥ १३॥

दुर्बलः शोधितः पूर्वमल्पदोषः छशो नरः।
अपरिकातकोष्टस्तु पिवेन्मृद्वल्पमौषधम्॥
रूचबह्वनिलक्रकोष्टव्यायामसेविनाम्।
दीप्ताशीनाश्च भेषज्यमविरेच्येव जीर्व्यति॥

तेभ्यो वर्स्ति पुरा दद्यात् ततः स्निग्धं विरेचनम् ॥१४॥ दुर्वेलादिपु यादृशरेचन प्रयोक्तव्य तदाह दुर्वेल इत्यादि—दुर्वेलोऽन्त.श-क्तिहीन ; क्रशः चीणमासः । मृद्धिति मृदुवीर्थ्यम् । अत्यन्तवातिवृष्टव्यकोष्ठादौ यथा विरेचन कार्यं तदाह रुजेत्यादि—रुचादयः कोष्ठेन सार्द्धं सम्बध्यन्ते । अविरेच्येवेति विरेकमकृत्वा । वस्तिनिरूह इति केचित् । अन्ये तु निरूह्येपत्तया स्तिह्यस्तिर्वात-प्रशमकत्वेनातुवासनमत्र वस्तिशस्त्रार्थ इत्याहु । शन्ये तूश्यमपीत्याहुः ॥ १४॥

> श्रिक्षिग्धे रेचनं स्निग्धं रूतं स्निग्धेऽति शस्यते । विरूत्त्यं स्नहसातम्यन्तु भूयः स्निग्धं विरेचयेत् ॥ १४ ॥

इदानीं यद्यसिन् प्रयोज्य तदाह अस्निग्ध इत्यादि--- श्रस्तिग्ध इतीपत्सिनग्धे, रूच स्निग्धेऽतिशस्यत इत्यादि-स्निग्धे रूच रेचन शस्यत इत्यर्थ ॥ १४ ॥

पद्मकोशीरनागाह्मचन्दनानि प्रयोजयेत्। श्रितयोगे विरेकस्य पानालेपनसैचनैः॥ सौवीरपिपाम्रवहकलाभिलेपोऽतिसारहा॥१६॥

स्दानीं रेचनातियोगचिकित्सामाइ पद्यक्तियादि—ननु अयोगातियोगवत् विदेकिमिथ्यायोगचिकित्मा कुती नीवता १ सत्य, दोपाणा दि प्रवृत्ती चतुर्विधैव गति-र्मवित सम्यक्षप्रवृत्तिरप्रवृत्तिरप्रवृत्तिरप्रवृत्तिर्थित । अन्नालपप्रवृत्त्यप्रवृत्तिश्चेति त्वयोगगृष्टीते एव । या प्रातिलोम्येन प्रवृत्तिमिथ्यायोगतेन वाच्या साधिमपेचितस्य दोषस्याप्रवृत्तिकत्वादयोगान्तर्भृतैव । अत्रण्वोक्त चरके—"अयोगप्रातिलोम्येन न चाल्प वा प्रवर्त्तनम्" इति । अतो वमनविरेचने मिथ्यायोग नेच्छन्तीति कृत्वा मिथ्यायोगचिकित्सितस्यत्वपादान बोध्यम् ॥ १६॥

> श्रविरेच्या वालवृद्धश्रान्तभीतनवज्वराः । श्रव्पाग्न्यधोगिपत्तास्रत्ततपाय्वतिसारिणः ॥ सश्यव्यास्थापितक्र्रकोष्ठातिस्निग्धशोषिणः । गर्भिणी नवस्ता च तृष्णात्तें ऽजीर्णवानिष ॥ १७ ॥ इति विरेचनाधिकारः ।

निषिद्धविरेकानाष्ट्र अविरेच्या इति—आस्थापितो निरुद्ध । अयञ्च निरु-हान्तर विरेकानिषेध औरसर्गिक , तेन तेभ्यो वस्ति पुरा दद्यादित्यादिविरोपविधिना तदपवादो युन्मते एव । किंना निरुद्धानन्तर हि विरेकानिषेध सप्ताद्याभ्यन्तर एव हैय., सप्ताद्यादृद्धेन्तु विरेको विद्यित पवेति विधिनिषधयो: कालभेदेन न विरोध.। बक्त हि चरके—"नवो विरिक्तस्तु निरुद्धदान विवर्जयेषु सप्तदिनान्यवरयम्। शुद्धे निरूदेण विरेचनन्न' इति वदन्ति । श्रन्ये त्वेतिद्दिरोधिभयेव तेभ्यो वस्ति पुरा दणादित्यत्र निर्नशब्दस्यानुवासनार्थमाद्वरिति प्रागवीस्तम् ॥ १७ ॥ इति विरेचनाधिकारनिवृति ।

# अथातुवासनाधिकारः

वातोत्विषेषु दोषेषु वाते वा वस्तिरिष्यते । यथोचितात् पादहीनं भोजयित्वानुवासयेत् ॥ १ ॥

विरेचनात् सप्तरिष्ठ गति जातवलाय नैकृताहाराय सायाद्व सम्यन्देयोऽनुवासन रत्यनेनानुवासनस्य विरेचनीथानन्तरीयत्वसुक्तम्, अतो विरेचनाधिकारमनु खहबस्ति-विचारः प्रस्तृयते । अनुवमक्षि न दुष्यति अनुदिवम वा दीयते इत्यनुवासनिन्निकित सुश्रुतोक्ता श्रेया । अम् मामान्यतो वस्तिविषयमाह् वातेत्यादि — वाग्मटस्य । यद्यपि सुश्रुतोक्ता श्रेया । अम् मामान्यतो वस्तिविषयमाह् वातेत्यादि — वाग्मटस्य । यद्यपि सुश्रुते—''वस्तिवीत अ पित्ते च कफे रक्ते च शस्यते'' इत्यनेन पित्तकफ-रक्तानामपि व स्तिविषयत्वमुक्त तथापि वस्तिवीतहराणामिति वचनात् प्राधान्यन वायोरेव वस्तिविषयत्व, पित्तकफ्योत्तु वातस्थानगतयोक्तथा स्वम्थानस्थितयोवीतान्तुन्वथोवी वस्तिविषयता । अदाह चरक —''पित्त वा कफपित्त वा पित्तायगत हरेत्य । समन श्रीन् मलान् वस्ति पकाशयगतान् जयेत् '' इति । तथा—''ण्को-ऽपक्परयनिल स्वमागीत् पित्त दितीयरत्त कफ तृतीय ।'' रक्तमपि दुष्ट रक्तप्रसाद-नेद्रव्येर्दत्तनस्ति प्रसादयति दीपहर्योनानुलोमयति । अत्र निरूद्यास्यानुवासनस्य विधान तदाह यथेत्यदि—अचितादभ्यस्तात् पादहीन चतुभौगहीनम् । वस्तिहि दिविधा अनुवासननिरूहभदात् । त्रह्यास्तिरनुवामन, कपायवस्तिनिरूह । तत्र निरूहाग्रस्यानुवासनस्य विधानम् ॥ १ ॥

न चाभुक्तवते स्नेहः प्रशिधेयः कथञ्चन ।
सूदमत्वाच्छून्यकोष्ठस्य चिप्रमृद्ध्वमधोत्पतेत् ॥
षट्पली च भवेच्छेष्ठा मध्यमा त्रिपली भवेत् ।
कनीयसी सार्द्धपला त्रिधा मात्रानुवासने ॥
प्राग्देयमाचे द्विपलं पलार्द्धवृद्धिर्दितीये पलमच्चाद्धिः ।
कर्षद्वयं वा वसुमाषवृद्धिर्वस्तौ तृतीये कम एष उक्तः ॥

स तु सैन्धवचूर्णेन शताहेन च संयुतः। भवेत् सुखोष्ण्य तथा निरेति सहसा सुखम्॥ विरिक्तश्चानुवास्यश्चेत् सप्तरात्रात् परं तदा॥२॥

श्रमुक्तवतेऽनुवासनवस्तिर्न देय इत्याह न चत्यादि-क्षेष्ठ इति क्षहवस्ति । अत्रैव उपपत्तिमाह सत्तमत्वादित्यादि। विदग्धान्ने तु वस्तिर्न देय , उक्त हि-"मदानुवासयेचापि भोजयित्वाईपाणिनम्। ज्वर विदग्धमुक्तस्य कुर्य्योत् स्नेह प्रयोजित 'इति । उत्तममध्यमाधमनरापेचया त्रिविधानुवासनमात्रामाह पट्पली-लाटि-अध्यर्द्धपलित सार्द्धपलमेकमिलार्थ । एतच पट्पलादिमात्राविधान क्रमेखैव विधेयम् । न त्वेकादिन एवेलाह प्रागिलादि-शावे पट्पलकेहे गुरुमात्रारूपे प्रथम पक्तलेहस्य दिपलम् , ततो दिनैक विश्राम्य पलादेन षृद्धि , प्व क्रामेणु नवाम लेहदानदिनै. पट् पलानि स्यु । श्रन्तरालदिवमाक्षाष्टावतो मिलित्वा सप्तदश वासरा भवान्त । द्वितीये मध्यमे त्रिपल इति यावत् । तत् पलमादौ देयम्, तत एकैकदिन विशाम्य अधेण क्षेण वृद्धि । अत्रापि नविभ केहपानदिवसे पलत्रय पूर्यम् । तृतीये कनीयसि सार्द्धपले श्रादी कर्पद्रयम्, तथैव एकैकदिन विश्राम्य वसुपरिमितीरिलप्टिमर्मापकैर्षृद्धि कार्या । श्रत्रापि तावद्भिरेव सहदानदिवसै. सार्द्धपत्तमान पूर्य्यते । इयमेव कनीयसी मात्रा निरपाया सार्वतौकिकी सार्वकालिकी वृद्धव्यवहारसिद्धा च । उक्त हि चरके-- "धर्मव्यायाममाराध्वयानस्रीकिषितेषु च । द्वेले वातमञ्ज च मात्रावस्ति सदा हित.। हासाया लेहमात्राया मात्रावस्ति. समो मनेत ॥" हामाया क्रिहमात्राया योजितो वस्तिमीत्रावस्तिरित्यर्थ, । एतानि केहदानदिनानि नवेत्युत्सर्ग । तेन नवदिनादर्वागि यदि केहलच्या अवति दिनत्र-थेख चतुष्टयेन वा तटा तावतैवानुवासन समाप्यते अनुवासनानन्तरश्च न दीयते । न च लेह. केवलो देय. तदा केनाप्युपहित इत्याह स वित्यादि—सुश्रुतस्य। चूर्णमानज्ञ वृन्देन लिखित यथा-"चूर्णमाप. पले खेंद्रे मिन्धुजन्मराताह्ययो." इति । चक्रस्तु भानुमत्या सैन्धवराताह्यो प्रत्येकमगुलीत्रयाग्रसन्दराग्राह्म मानामिन लाइ सहमेति-यद्यपि स्नाइस्य शीव्रगमनं दोपायैन, यदुक्त 'धोज्य शीव्रनि-वृत्तेऽन्य केहिस्तिष्टन्न कार्य्यकृत् " इति, तथापि वद्यमाणकेहिनिर्गमनकालाधिकका-लनिरासार्थं महमेत्युक्तम् । तेन सहसेत्यस्य यामत्रयानन्तरमेवेत्यर्थः । विरेचनानन्तर कियद्भिरहोमिरनुंवास्य इत्याद्द विश्कि इत्यादि ॥ २ ॥

स्वर्णेक्षण्यत्रपुताम्ररीतिकांस्यायसास्थिद्गुमवेखद्दन्तैः।

# नलैर्विपाणैर्मीणिभिश्च तैस्तैः कार्य्याणि नेत्राणि सुकर्णिकानि ॥३॥

इदानीं विस्तिनिषका येर्द्रव्येनिधेया तान्याह सुवर्णेत्यादि—चरकस्य । त्रपुन मीसकः । रीतिः पित्तलम् , श्रास्थ इस्त्यादीनाम् , दन्तश्च इस्तिनः, विपार्णमिष्टिपा-दिश्द्वाः, मार्णिभर्गोभेदकादिभि, । सुक्रींणकानीत्यत्र त्रिक्षणिकानीति केचित् पठ-न्ति, त्रिक्षणिकत्यन्नामे वद्यति । एव निष्कायस्तिगतस्नेष्टकपायादिद्रव्येनेतृत्वान्नेत्र-मिति मन्ना ॥ ३ ॥

षड्द्रादशाणंगुलसम्मितानि पड्विंशतिद्वादशवर्षजानाम् ।
स्युर्मद्रकर्कन्धुसतीनवाहिष्छिद्राणि वध्या पिहितानि चापि ॥
यथावयोऽङ्गुष्ठकनिष्ठकाभ्यां मूलात्रयोः स्युः परिणाहवन्ति ।
ऋजूनि गोपुच्छसमाछतीनि ऋच्णानि च स्युर्गुं हिकामुखानि ॥
स्यात् कर्णिकेकात्रचतुर्थभागे मूलाश्रिते वस्तिनिवन्धने द्वे ।
जारद्रवा माहिपहारिणौ वा स्याच्छौकरो वास्तरजस्य वापि ॥
दहस्तनुर्नेष्टशिरो विगन्धः कपायरक्तः सुमृदुः सुशुद्धः ।
नृणां वयो वीद्य यथानुरूपं नेत्रेषु योज्यस्तु सुबद्धसूत्रः ॥४॥

ं इदानी तन्ने प्रमाण वयोभेदा किनमाए पिटत्यादि—पट्वर्पवालस्य स्वाग्रलेन पटगुल नेत्र कार्य्ग, एव विशतिवर्पस्य द्वादशाग्रलम्, तथा द्वादशवर्पस्याष्टागुलिमिति यथासस्यमन्वय । ननु एकवर्पादारभ्य पञ्चवर्णन्तरम्, तथा पट्वर्णदृद्धंभेकादशवर्णम्, तथा द्वादशवर्णादूद्धं विशतिवर्णम्, ततोऽि सप्तितं यावत् 
क्षियन्मान नेत्र कार्य्ग् श्रत्राष्ट् एकवर्णात् प्रभृति पट्वर्णं यावत् पटगुलेमव नेत्रम्, 
तथा सप्तवर्णाद्दधंमेकोनिवशतिवर्णप्रभृति श्रष्टाग्रलं नेत्रम्, एव विशतिवर्णादूद्धं 
द्वादशाग्रलेमव नेत्र कार्य्यम्, सप्ततिवर्णयादिति, श्रयद्वार्थः व्युत्क्रमाभिधानसामथ्योदेव लभ्यते । यतः पट्सस्या निवेश्याष्टसंस्थानिवेशो युन्यते ततो द्वादश 
सस्योदेव लभ्यते । यतः पट्सस्या निवेश्याष्टसंस्थानिवेशो युन्यते ततो द्वादश 
सस्योति, श्रतो व्युत्क्रमाभिधानवलोदेव तदास्योपलम्भ दति । श्रर्स्मादेव व्युत्क्रमाभिधानात् पट्वर्णादूद्धंमेकादशवर्णं यावत् नेत्रमाण्य प्रति विकल्पोऽस्त्येवेति 
निदर्शयति, तेन सप्तवर्णाद्द्धंमिण प्रतिवर्णमेकाग्रलत्तीयभागवृद्धया द्वादशवर्णादष्टाग्रल 
भवति, तथा द्वादशवर्णाद्द्धंमिण प्रतिवर्णमर्द्धां विशतिवर्णे द्वादशाग्रल 
भवतिति ग्रेयम् । वाग्मटेऽप्युतः—" वीद्य वर्णन्तरेषु । वयोगलशरिराणि प्रमाणमभिवर्षयत् " दति । वर्णन्तरिष्वित पट्दादशादिवर्णन्तरालस्थितेषु सप्तमाष्टमादि-

वर्षेष्वत्यर्थ । चुत्रुने तु सावत्रुरिकाष्टदिरष्टवर्षाणा पडष्टवमागुल नेत्रमानसुक्त पन्च-विश्वविवर्षादृद्ध्वे द्वादगागुलिमत्यनेन, तथा वाग्मरेऽपि-- "कनेऽन्दे पश्चपूर्णेऽ-रिमन्नासप्तम्योऽङ्गुलानि पट् । नप्तमे नप्त तान्यष्टी दादशे पीटशे नव " दत्यनेन च यो नेत्रमानभेद रक्ष मोऽप्यदूरान्नरत्वान्न विरोधमाबहतीति । एपाञ्च नेत्राग्र-रन्त्र कीष्ट्रा कार्य्यमित्याह न्युर्मुहेत्यादि-पट्दाटराष्टागुलानि यथानस्य सुह-कर्नन्युमननिवाहिन्दिदाणि कार्याणि स्यु । कर्नन्युगच्देनेह तदस्थि नृद्यते। उक्त हि तुश्रुते-कोलास्थिमात्रच्यिद्रमिनि । कर्कन्युश्च शृगालकोलि । बृहद्दटरास्थि-यहरें तु कनिष्ठाप्रमाखांग्रे तदहन नार्चिति । भ्रन्ये तु एव विरोध परयन्ते। वदग-न्धिमज्ज्ञानमिह कर्तन्युगन्धेन ग्राह्यन्ति । मनीनी दर्तनुलक्षण्य । वर्स्या पिहि तानीति द्रव्यान्तरप्रवेशवश्चिद्रव्यनि मननिरामार्थ वस्त्रादीना वर्त्त्या पिहित्तमुखानि कार्च्याणि । यथावय इति यस्मिन् वयमि यन्नेत्र विश्विन तद्वय न्धस्येन वृद्धागुष्ठक-निष्ठाच्या यथामत्य मूले चात्रे तुल्यपरिमाणाई नेत्र कर्त्तव्यमित्यर्थ । ब्राप्तुष्ठ वृद्धागुष्ठन् । ऋजूनीत्यादिना नेत्राकृतिमाह । गोपुच्छाकृतित्वे व्रषा मृतस्यौत्यादमे तनुत्वादिति । रुद्णानीत्पककंगानि, गुडिकामुखानीनि गुटिकाकारवर्तुल मुख वेपान् , ते वर्तुलमुननया अतीत्रयनुखानि । मुक्तियकानीति पूर्वमुक्तम् अतः कर्पिकाच्यवस्थामाह स्याटित्यादि—नेत्रस्याग्रप्रदेशे यश्चतुर्थो मागस्तत्र कर्णिका कत्तव्या नेत्रस्थातिप्रवेगनिरामार्थमिति माव । म्लाश्रित वित्तिनवन्धने द्वे इति नेत्रस्य मूले तु चर्मपुटकवन्थनार्थं वर्णिकाद्य कार्य्यामत्यर्थ । बस्त्यर्थं येषा स्त्रपुटक याद्य तहाइ बारद्गव इत्यादि--जारहव इति वृद्धगोभववीन्निरिति । बस्तिरिति मूत्रपुटक कोषावरकचर्मेति केचित् । नष्टिगर इति मसुद्धृतिशरासन्तिति , कपायरक्त इति त्रिफलादिकपायद्रव्यमावनया रक्षिनः श्रतएव विगर्यः विगतपृति-गन्भ । वयो बीद्य यथानुरूपिमिति वयोमेदेन वत्मरादिरूपेण यथोकिन यथा वास्त-र्यन्यातुरूपम्नत्प्रमायोः भवनि म तस्य नेत्रे बन्धनीय., सुवद्धसूत्र इति सुदृददन्धन-स्त इत्यर्थ ॥ ४॥

> निस्हमात्रा प्रथमे प्रकुञ्ची वत्सरे परम् । प्रकुञ्जवृद्धिः प्रत्यव्दं यावत् पद् प्रसृतास्ततः ॥ प्रसृतं वर्द्धयेदृद्ध्वं द्वादशाष्ट्रादशस्य तु । श्रासप्ततिरिदं मानं दशैव प्रसृताः परम् ॥ ४॥ यवि पट्पनी तु मनेज्ज्येष्ठेसाहिना श्रतुत्रामननात्रा दक्षेत्र तथाप्यतुनकः-

व्यविशेषार्थं पुनरप्यनुवासनमात्रा वक्तव्याः सा च निरूद्धमात्रातिदेशेन वाच्या अतोऽनुवामनाधिकार एवं प्रथम निरूद्धमात्रामाद्द निरूद्धमात्रेखादि—वाग्मटस्य । प्रथमे वत्सरे निरूद्धमात्रा प्रकुछः पलमिल्यर्थः । परमिति वत्सरात् परिमिति, प्रल्यन्य प्रकुछेन पलेन वृद्धि कार्य्येति यावत् । पर्पमिति वत्सरात् परिमिति, प्रल्यन्य प्रकुछेन पलेन वृद्धि कार्य्येति यावत् । पर्पस्ता द्वादशाभर्वर्थे. पर्प्रस्ता स्वन्तील्यर्थे. । द्वादशिति छेद । तत इति द्वादशवर्षादूद्ध्वं प्रत्यन्द्वमेकेक प्रस्त कृत्वा वर्द्ययेत् यावद् द्वादश प्रस्ता भवन्ति, पतेन द्वादशवर्षानन्तर त्रयोदशवर्षमा- रभ्य प्रष्टादशवर्षपर्यन्त प्रतिवर्षमेकेक प्रस्तवृद्ध्या द्वादशप्रसत्तपूर्य भवति । अष्टादशस्थत्यद्वपर्यन्त प्रतिवर्षमेकेक प्रस्तवृद्ध्या प्रस्तस्वरूपेय प्रस्तस्वरूपेय पुत्त आमप्तिरिति सप्ततिवर्ष यावत् इद द्वादश- प्रस्तस्वरूपेय प्रस्तस्वरूपेय प्रस्ता प्रस्ताः परिमिति प्रत्यन्य प्रस्तवृद्ध्या प्रस्तास्य प्रष्टादशवर्षस्य द्वादश प्रस्ता प्रवत्वाः प्रतिवर्षपर्यन्त द्वादश प्रस्ता एवं पर्यत्वः पर्यत्वा प्रस्ता प्रवत्वा प्रदिनीं पुनर्द्धमात्रिकेख व्यवद्वार , तेन महत्वपि पुत्ति पर्य प्रस्ता एव दीयन्ते वृद्धवेधिरिति ग्रेयम् ॥ ५ ॥ व्यवदार , तेन महत्वपि पुत्ति पर्य प्रस्ता एव दीयन्ते वृद्धवेधिरिति ग्रेयम् ॥ ६ ॥

यथायथं निरूहस्य पादो मात्रानुवासने।

कृतवङ्क्रमणं मुक्तविएमूत्रं शयने सुखे ॥

नात्युच्छिते न चोच्छीर्षे संविष्टं वामपार्थितः।

सङ्कोच्य दित्तणं सिक्थ प्रसार्थ्यं च ततोऽपरम् ॥

वार्स्त सब्ये करे कृत्वा दित्तणेनावपीडयेत्।

तथास्य नेत्रं प्रण्येत् क्षिग्धे क्षिग्धमुखं गुदे ॥

उच्छ्वास्य वस्तेवदनं वद्ध्वा हस्तमकम्पयन्।

पृष्ठवंशं प्रति ततो नातिद्रुतिवलिम्बतम् ॥

नातिवेगं न वा मन्दं सकृदेव प्रपीडयेत्।

सावशेषं प्रकुर्वीत वायुः शेषे हि तिष्ठति॥ ६॥

इदानीमुक्तनिरूहमात्रातिदेशेन प्रकृतानुवासनमात्रामाह यथायथिमलादि— यसिन् वयसि यत्रिरूहमोनमुक्त तसिन् वयसि श्रनुवासनमान तित्रिरूहाचनुर्थाश-मित्यर्थ:। पतेन प्रथमवर्धायस्य वालस्य उत्कृष्टं निरूहमान पलमुक्तम्, तस्य चतु-र्थाशः क्योंऽनुवासनार्थमिल्थर्थः। एव दिशिवाधिकवालादौ दिशिकाधिक बोध्यम्। चन्तु पट्पली तु सवेज्ल्येष्ठेत्यादिनः पूर्वे श्रिविधानुवासनमात्रोक्ता, अत्र पुनरन्ययै- वेति विरोध<sup>, १</sup> उच्यते, श्रष्टादरावर्षं यावत् दादगप्रसतो। निरूह उक्त•, तस्य चतु• र्योऽश पट् पल एव, तथा द्वावशवर्ष प्रति पट् प्रस्ता उका , एपा चतुर्थो भाग-लिपल एव, तथा षट्वर्थस्य षट्पलमित्यस्य पाद माईपलमिनि, अत्रान्तरे एक-दित्रिवर्पादी चतुर्दशवर्पादी च ये मानभेदा नन्ति तेपाञ्चोक्तमानानुमारेखोइ॰ कार्च्य इत्येकवान्यनया न पूर्वापरवचनविरोध । किश्च पट्पलीत्यादि वान्यमुक्तम-मध्यमाधमवलानलरारीरभेदभित्रमुल्मगीमेढ त्रिविध मानमाश्रिन्योक तेन त्रिक-वर्षादिवयोमेदाभन्ननानाभिधानाम्न न्यूनतादोप इति श्रेयम् । इदानी किन्मृतस्य तदनुवामन देयमित्याह कृतेत्यादि—वाग्मटस्य । रायन इति शय्यायाम् । वामपा-र्भत इति वामपार्श्वेन, मनिष्ट सुप्तम् । वामपार्श्वशयनप्रयोजनम्ब चरकेखोक यथा----''वामाश्रयोऽग्नियहर्णागुदश्च तत्पार्श्वमस्यस्य सुद्धोपलाच्घ । लीयन्त एव वलयश्च तसात् मन्य रायाने।ऽर्देति वस्तिदानम् " इति । मन्योति जद्वा, ऋपरिमिति वामम्। सन्य र्रात वामे । विखिमिति वदक्मंपुटाहितलेहयुकः नेत्रमेव i दिखियोनेति हस्तेन उच्द्वात्य वस्तेवदन वद्धेति, वस्तेश्वर्मपुटस्य मुन्वम् । उच्द्वास्य उद्घाट्य पश्चात् बद्ध्वस्यर्थ वस्तिमुद्रोच्छ्वामनञ्च द्रवाभियातञ्जनितवातस्य निर्गमनार्थम् । उच्छ्वास्य बस्तेर्वदने वद्ध इति पाठ. । पृष्ठवण प्रतीनि पृष्ठवरा लचीकृत्य, तेन पृष्ठवशानुसारेण ऋजु यथा स्यात् तथा नेत्र प्रखयेदित्यथः। चरकेऽपि ऋजुपु पृष्ठवशमित्युक्तम् सक्टिरेयकवारमेव । वस्तिपुरकान्तर्गतद्रन्यमागस्तु न नि.शेषो देय इलाइ मावशेष-मिलादि. — वायु होषे हि तिष्ठनीति नि होपटाने हि पुटान्तर्गती वायुर्गुदं प्रविश्य बस्तिमाध्मापयेदिति भाव. ॥ ६ ॥

निरुद्दानेऽपि विधिरयमेव समीरितः।
ततः प्रणिद्दिते सेहे उत्तानो वाक्शतं भवेत्॥
प्रसारिते सर्वगात्रेस्तथा वीर्ध्यं प्रसपिति ।
प्राकुञ्चयेच्छ्नेस्त्रिस्तिः सक्थिवाद्द् ततः परम्॥
ताडयेचलयोरेनं त्रींस्त्रीन् वारान् शनैः शनैः।
स्पिचोञ्चेनं ततः श्रोणि शय्यां त्रिकृत्विपच्छुनैः॥
प्वं प्रणिद्दिते वस्तौ मन्दायासोऽथ मन्द्वाक्।
प्रास्तीर्णे शयने काममासीदाचारिके रतः॥
योज्यः शीर्षे निवृत्तेऽन्यः सहोऽतिष्ठत्र कार्य्यकृत्॥॥॥

इदानीमुक्तानुवामनदानविधि निरुद्धेऽप्यतिदिशति निरुद्धदानेऽपीत्यादि-दत्ते च सिंह याष्ट्रशेन स्थातव्य यच कर्तव्य तदाह तत इत्यादि-सुयुतस्य । वाक् लब्द-चर, तदुचारण शतथा यावत्चणेन भवति तावत्चणमुत्तानो भूत्वा तिष्ठेदित्यर्थ । अन्य तु वाक्रात छोटिकाशतिमत्यादु । प्रमारिते सर्वगात्रवीहुजङ्घादिभिरित्युपल चणे तृतीया । एव कृते कि स्यादित्याह तथेति-न्नाकुन्नयेदित्यादि सक्थिद्वय, तथा बाह च त्रिराकुछ्येदेख इति शेष । आकुछनान्ययानुषप्रधेव प्रसारणमपि लभ्यते । तेन पादवृद्धांगुष्ठद्दय पादतल वा विधृत्य तत सद्भोच्य शने प्रमारयेदित्यर्थ । उक्त हि चरके-" ईपच पादागुलियुग्ममाञ्चेत् " इति । आञ्चेत् प्रमारये-दित्यर्थ. । तत्र त प्रमारणान्यथानुपपत्तावाकुञ्चन लभ्यत इत्येकवाक्यता च श्रेया । तत पर बाह च तदगुष्ठदयञ्च विष्रत्य ततः महोच्य प्रसारयदिति । चरके त बाह-सहोचप्रमारणे नोके इति शेष । ताहयदित्यादि-स्फिचाअनीमीत छदः । एनमा-तुरम् । तलयोः पादतलकरतलयोस्तथा स्पिचोश्च त्रींस्त्रीन् वारान् रानै: रानैस्ता-उयेदिति मुष्टिना ह्न्यादिति । एतच ताडनम श्रनुवामनेखहस्य शीघ्रानि सरण यथा न भूयादिन्येतदर्थ क्रियते । यदाइ दृढवल ---दत्त्वा रिफची पाणितलेन इन्यात् केहस्य शीधागमरचणार्थम् " इति । तत श्रोणीं शय्या त्रिरुत्चिपेत् , तत इति शय्यामित्यनन्तर प्रतीति शेष , तेन शय्या प्रति श्रोणी त्रिरुत् चिपेदित्यर्थ इति श्रीकचठ । वयन्तु शय्यामित्यनन्तरं तत्पिर्णिभ्याभिति शेष , तेन तत्पार्ष्णि-भ्याम श्रातुरपाधिणभ्यां शय्या ताटयेदिति योज्यम् , उक्ष हि- ' दत्ते तृत्तान-देहस्य पाणिना ताढयेव निफची । तत्पार्ष्णिभ्या तथा शय्या पादतक्ष त्रिरुताचि-पेत इति व्याचक्ते-श्रीणीं त्रिरुद्धिपेदित्यर्थ । एतदपि पार्षिणभ्या शब्याताटन सहशीवागमनरचणार्थमेव श्रेयम्। ण्तच शीवागमनरचणार्थं कर्भ यद्यपि पश्चाद्रक तथापि तेहशीव्रागमनेन वस्तेनिष्प्रयोजनता स्यादिति कृत्वा प्रथममेव कार्य्यम् । श्रतएव मानुमत्या चक्रोऽप्याह रिफचश्चैनमित्येतरंपि पश्चादक तथाप्यभिधानक-मतन्त्रत्वमकृत्वा प्रथममेव श्रेयमिति । मन्दायस शति श्रत्यरूपप्रत्यवायकरविचेपणादि-काममासीदित्यनेन दृढ्वलोक्षगात्रमर्दनागुलोस्फोटाटिकमिच्छत कार्यभिति स्चयते, उक्त हि-- ' स्नेहेन पाष्य्यंगुलिपिरिडकाश्च ये चास्य गात्रा-वयवा रुजात्ती: । ताथावमृद्गीत सुख ततथ निद्रासुपासीत कृतोपधान, " इति । श्राचारिके रत इति क्रीधादिवर्जनाधाचारतस्परः । यदि तु क्षेही दत्तमात्र एवाति-मात्रत्वादिदोपेण नि.सरित तदा किं कार्य्यामित्याह योज्य इत्यादि-वाग्भटस्य । शीघ्रमिति त्रियामादर्वाक् । अत्र दितीयस्नेहदानमल्पमात्रयैव विधेय, प्रथमस्नेहदा-

नेनेव क्रीष्ठावलेपसिद्धत्वात्, सुश्रुनेऽप्युक्त तन्नान्योऽल्पतरो देय इति, पूर्वदत्तस्तेहा-दलपतर इति ॥ ७ ॥

सानितः सपुरीपश्च स्नेहः प्रत्येति यस्य वै । विना पीडां त्रियामस्थः स सम्यगनुवासितः ॥ ८ ॥

मानिल इत्यादिना सौश्रुतानुवासनसम्यग्योगलच्यामाह । विना पीटा त्रिया मस्थ इत्यन्न उषाचाषो विना शीव्रमिति पाठ उपा दाह., चोषा पिपासा, शीव्रमिति यामत्रयानन्तरमेवेत्यर्थ ॥ ८ ॥

काथार्द्धमात्रया प्रातधीन्यश्च एठीजलं पिवेत्। पित्तोत्तरे कदुष्णाम्मस्तावन्मात्रं पिवेद्तु ॥ तेनास्य दीप्यते विद्वभिक्षाकांता च जायत । श्रद्धोरात्रादिष स्नद्धः प्रत्यागच्छन् न दुष्यति ॥ कुर्योद्वस्तिगुण्थापि जीर्णस्त्वस्पगुण्ये भवेत् ॥ ६॥

कोष्ठावलेपरनेहपाकार्थमाह काथाद्रमात्रयेत्यादि-यस्य पुरुपस्याग्न्याचपेश्चया यावान् सरामन काथ समर्हति तस्याई धान्यशुष्ठीजल पडक्वविधिना कर्तेव्यमिति चक्र , ततक्ष धान्यस्य द्वादश मापका., शुग्रस्याक्ष पट् चस्वारो वेति मिलित्वा कर्ष-मानस्व क्रेयम् । पतम्ब धान्यशुरुठीजलं न प्रत्यष्ट देय किन्त्वेकान्तरमिति । तदुक्त-<sup>५</sup>एकान्तरोपयोगेन धान्यशुग्रठांजल पिवेत्' इति । उत्सर्गतस्तावदेकान्तरमेवानुवासन-दान, यश्मिन् दिवम अनुवामन न दीयते तस्मिन्नेव दिने धान्यशुण्ठीजल देयम्, अनुवासनदिने तु न देयम् । यदाह चरक'--' युक्तकेह द्रवोष्णाश्च लघुपथ्योप-सेवनम् । मुक्तवान् मात्रया भोज्यमनुवास्यस्त्र्यहात् त्र्यहात् । धान्यनागरसासिद्ध तोय दद्याद्विचच्चण । न्युपिताय निशा कल्यमुष्ण वा केवल जलम्" इति, न्युपि-तायेति अनुवासनरेन इ दत्वा निशा च्युपितायेत्यर्थ । एतेन यस्मिन् दिने अनुवा-मनस्तेहो न दीयते तरिमन्नेन दिने धान्यनागरसिद्ध जल देयमिति बोधयतीति । फल्यमिति प्रात । पित्तोल्वणे तु दोषे धान्यशुग्ठीजल हित्वा कोष्णजल देयमित्याह पित्तोत्तर इत्यादि-तावन्मात्रमिति काथप्रमाण्यम् । त्रियामस्थस्नेहस्य सम्यगनुवासन-लिङ्गल यदुक्त तदपवादमाह श्रहोरात्रादिति-सुत्रुतस्य । श्रहोरात्रादिति वास्तिप्रिय-थानीदेनरात्र्यभिप्रायेख, तेन यामत्रयात् परतोऽपि याममेकमनागच्छन्नपि स्नेही न दुष्यति न व्यापद करोतीत्यर्थ । बस्तिगुणानिति स्नेहनबृह्खादीन् । जीर्थ इति परिणत , श्रल्पगुण, इति वास्वश्चिम्यामिभ्यूय पाक नीत्वा न मम्यक् स्रोहनादिक करोति । वीर्व्येण देह भावित्वा प्रत्यागच्छ्रेत्तव लेही यथोक्तगुणकारक इति भावः। पकाशयस्थरयापि लेहस्य पाकोऽशिष्रत्यासत्त्या देहतेजसा च सङ्गच्छत एव । श्रत- एवोक चरके——"एवमाशु जरां लेही यात्यम्बु सिकतास्विव । एथ्योऽन्येषा ज्यहात् प्राय तिह पचित पावक " इति ॥ ६ ॥

यस्य नोपद्भवं कुर्व्यात् स्नहवस्तिरनिःसृतः।
सर्वोऽल्पो वावृतो रौद्यादुपेद्यः संविजानता॥ १०॥

इदानीं य लेष: सर्वधानि स्तः समुदायनैकदेशेन वा यदि न्यापद न करोति तदा तत्प्रवर्त्तनाय यत्नो न विषेय इत्याद्य यस्येत्यादि—इदनलस्य । श्रानिः-स्तोऽपि स्तम्भरूपादिकमुपदव न कुर्यादिति । श्रान्यो वा स्त इति स्तोकानि स्त स्तोकश्चावृत इत्यर्थ । श्रावृतस्यापि स्तम्भाषुपद्रवाकरण हेतुमाह रौद्यादित्यादि— शरीरस्यालपरूक्तया तिष्ठक्षपि रेतहो रूक्तशरीर भावयन्नेव न न्यापद करोतीत्यर्थ । श्रम्ये तु सर्वोऽल्पो वा धृत इति पठिन्त, रौद्याच्छरीर।द्भतवाशुना धृत प्रतिवद्धः किहोऽनि स्तोऽपि न्यापदजनकत्वादुपेस्य इत्याहु । उपदेय इति न तत्र वाताधा-वृतसेसहप्रवर्त्तनी चिकित्मा कार्योत्यर्थ ॥ १०॥

> श्रनायान्तमहोरात्रात् स्नहं सोपद्रवं हरेत्। ' स्नहवस्तावनायाते नान्यः स्नहो विधीयते ॥ ११॥

श्रनायान्तिमित्यादि — सुशुतस्य । इरिदिति शोधनशस्तिभिरिति शेष , श्रत-एवाइ स्नेइवस्तावित्यादि — सुश्रुतस्य । नान्य स्नेहो विधीयत इति स्नेहातियोग-भयात् । शोधनवस्तिस्तु दीयत प्वेत्यर्थः ॥ ११॥

> श्रग्रद्धस्य मलोन्मिश्रः सहो नैति यदा पुनः । तदाङ्गसद्नाध्मानग्रलाः श्वासश्च जायते । पकाशयगुरुत्वञ्च तत्र दद्यान्निरूहण्म् ॥ तीन्ग्णं तीन्ग्णेषधेरेव सिद्धञ्चाप्यनुवासनम् ॥ स्नेहबस्तिर्विधेयस्तु नाविग्रद्धस्य देहिनः । स्नेहवीर्यं तथादत्ते स्नेहे नानुविस्पैति ॥ १२॥

सचिकित्सित न्यापदमाह श्रशुद्धस्येत्यादि—श्रशुद्धस्येति वमनेन विरेचनेन वा । तीच्णमित्यनुवासनिधरापणम् , श्रन्य तु निरूष्टणमित्यस्य विशेषणमित्याषु । वमनविरेकाभ्या शुद्धस्यव स्नेष्टवस्तिरेयो न पुनरविशुद्धस्येत्याष्ट्र स्नेष्ट्वस्तिरित्यादि । कुतो न विधेय इत्याह स्नेहवीर्य्यमित्यादि—तथा दत्ते स्नेहे श्रविशुद्धदेहपयुक्ते स्नेहे मित स्नेहवीर्य्य यस्मान्नानुविस्पेति । देहमिति शेष । स्नेहमित्यत्र देहमिति पाठे तथादत्त इत्यत्र स्नेहबस्नाविति शेषो वोध्य ॥ १२ ॥

> श्रग्रुद्धमपि वातेन केवलेनाभिषीडितम् । श्रहोरात्रस्य कालेषु सर्वेष्वेवानुवासयेत् ॥ १३ ॥

श्रशुद्धस्य स्नेहवस्तिनं देय इति यदुक्त तदपवादमाह श्रशुद्धमपीत्यादि—-केवलेनेति निरावरणेन, श्रहोराश्रस्य कालेष्टिति श्रहोरात्रैका ये काला पूर्वाह्नपूर्व-राशादयस्तेष्वित्यर्थ ॥ १३ ॥

> श्रनुवांसयेत् तृतीयेऽहि पञ्चमे वा पुनश्च तम् । यथा वा स्नहपक्षिः स्यादतोऽज्युल्वणमारुतान् ॥ व्यायामनित्यान् दीप्तासीन् कत्तांश्च प्रतिवासरम् । इति स्नहिस्त्रिचतुरैः स्निग्धे स्नोतोविश्चद्धये । निक्षद्दं शोधनं युञ्ज्यादिस्तग्धे स्नहनं तनोः ॥ १४ ॥

एकमनुवासन दत्त्वा कियता कालेनानुवासन देयमित्याह श्रनुवामये।दित्यादि-बाग्भटस्य । स्तेइपिनत स्यादिति छेद । तमिति प्रथममनुवानित तृतीये पद्यमे बाइनि श्रतुवासंयत्, श्रत्र सति वृद्धवाते त्र्यहेऽनुवासन देय, मन्दाग्नी वृद्धकफिपेत्ते तु पञ्चमदिनेऽनुवासनमिति न्यवस्था । यथा वा स्तेहपनित, स्यादित्यनेनाग्न्यपेद्मया उदन-कालातिक्रमोऽिं कार्यं इति नीभयति । उल्नयवातादीन् प्रति तु प्रत्यहमेवानुवामन देयमित्याह भतोऽपीस्यादि--भतोऽपीति त्र्यहादिदेयानुवासनापेचयापीत्यर्थ । हारी-तोऽप्याह-"दृष्ट्वातिवृद्ध पवनस्य रूप दिने दिने वस्तिमुटाहरन्ति"इति। सुश्रुते-ऽप्युक्न-''रूचस्य बहुवातस्य स्तिह्वस्ति दिने दिने । दद्याहैद्यस्ततोऽन्येषामग्न्याबाध-भयात् त्र्यहात् <sup>२१</sup> इति । श्रनयैदोक्तरीत्या निरूद्दानन्तरमनुवासनकालोऽप्यूद्दनीय । यदाह दृढवल -''त्र्यहे त्र्यहे वाप्यथ पश्चमे वा दद्यान्निरूहादनुवासनञ्ज'' इति । एव यस्मिन् दोषे यावन्त्यनुवामनानि देयानि तदपि चरकादावेवानुमर्चन्यानि । कियन्त स्नेष्टवस्तय प्रयोज्या इत्याह इतीत्यादि---नाग्मटस्य । ननु त्रिचतुर्भि. स्नेद्दीरत्यनेन चतु सङ्कथवस्तिदान विधीयते, तथा च विरोध , उक्त हि चरके---" वस्नीन् युग्मान् कुरालो विदध्यात् " इति, युग्मवस्तिदानञ्च प्रमावदिवात्रोप-कारीति महर्षिवचनादुन्नीयते, यथा युग्मेष्वह सु पुत्रकामी मवमेतामिति, अयुग्म- दानीपपित्रश्चात्रातिप्रसिद्धस्यनुकिथता त्राचार्थेण, सत्यम्, अत्र त्रिचतुरैरित्यनेन युग्मबितदानमुक्त यत् तिल्लहाद्वतया स्नेष्मार्थिक्वयमाणानुवासनिविषयम्, अयुग्म-बितदानन्तु स्वतन्त्रिक्षयमाणानुवासनिविषयम् अतो भिन्नविषयतया न विरोधः । किंवा चरके अयुग्मानित्यस्य सान्तरानित्यथं, तेन यत्राष्ट्रत्यानुवामन देय तदयुग्मक निस्ष्यान्तरित कर्त्तव्यम्, तेन नवसु पकादशसु वानुवामनेषु दत्तेषु यदि वायुनं शाम्यिति तदा तस्य मार्गावरणिनष्ट्त्यर्थं निरूष्ट दत्त्वा पुनर्थश्वोक्तमख्ययानुवासन देयमित्यर्थः। खिग्ध दत्यत्र देय इति शेषः। प्रमिकिग्ध इत्यत्रापि । शोधनिमिति निरूष्टिवशेषणम्, स्नेष्नामित्यनुवासनम् ॥ १४॥

> विष्टन्धानिलविएमूत्रः स्नेहो हीनेऽनुवासने । दाहज्वरिपासार्तिकरश्चात्यनुवासने ॥ १४ ॥

श्रनुवासनयोगातियोगलचणमाह विष्टब्धेत्यादि — सुश्रतस्य । विष्टब्धान्यनिल-विरमृत्राणि यस्मात् स्नेहात् स तथा श्रनिलादिस्तम्भकर हत्यर्थ ॥ १५॥

स्नेहवर्स्ति निरूहं वा नैकमेवातिशीलयेत्। स्नेहात् पित्तकफोत्झेदो निरूहात् पवनाद्भयम् ॥१६॥

निरूहानुवासनयो परस्पराव्यवधानेन दोपमाह लेहवस्ति।मित्यादि—चरकस्य।
एकमेवेति परम्परान्तिरतम्। उरक्षेद्रः पित्तकफोत्केशः, केचित्तु केहात् पित्तकफोत्कः
काशः इति पठन्ति। निरूहात् पवनाद्मयमिति निरन्नर्रानरूष्टेण शरीरस्य शोधनातियोगात् पवनाद्मय स्यादिति माव अनुवासनार्थद्य तेलं पक्षमेव बाह्यम्, नापकम्।
यदाह वृद्धवल — 'न चाम प्रख्येष्य स्नेह यदिभिष्यन्द्येष् गुदम्' इति। अनुवामना
र्थद्य तेल यद्यप्यस्मिन् प्रकरेण नोक्षः तथापि वातव्याध्युक्तमेव नारायणतेलादिकः
मिहाप्यनुवासनीयम्॥ १६॥

श्रनास्थाप्या येऽभिधेया नानुवास्याश्च ते मताः। विशेषतस्त्वमी पाग्हकामलामेहपीनसाः॥ निरन्नप्तीहविड्भेदी गुरुकोष्ठकफोदराः। श्रभिष्यन्दभृशस्थूलिकमिकोष्ठाख्यमारुताः। पीते विषे गरेऽपच्यां श्रीपदी गलगग्डवान्॥१७॥

येपामनुवासन न देय तानाह अनास्थाप्या इत्यादि-आस्थापन निरूष्णम्, अनास्थाप्या अनिरूषा इत्यर्थ । अतिदेशेनाननुवासनीयानिभधाय विशेषतो ये नानुवामनीयास्तानाह विशेषते इत्यादि —वाग्मटस्य । कृताहारोऽप्यनास्थाप्यस्वेन

वक्तव्य तत्रश्च ' श्रनास्थाप्या येऽभिथया नानुवान्याश्च ते नताः '' उत्युक्षेः, इताः हारन्याननुवास्यत्व स्थादतन्त्रक्षिरामार्थमत्र निरुद्ध उकः । श्राद्ध्यमारुत कञ्स्तम्य, । एयात्र पाएड्वाडीनामनुवासनेन ये दोपास्त्र चर्के पद्मक्रमायमिद्धावनुनन्त्रेया , इह तु विस्तरस्यान्नोक्ताः ॥ १७ ॥

श्रनास्थाप्यास्त्वनिस्तिग्धः स्ते। स्त्रे सृग्रं स्त्रग्नः । श्रामातिसारी यमिमान् संशुद्धाः दस्तनावनः । र्वामकासप्रमेकार्शोहिकाष्मानाल्पवहयः । श्रूलपायुः स्ताहारो वद्धित्रद्भद्दशेदरी ॥ स्त्रुष्ठां च मधुमही च मासान् सप्त च गर्मिणी ॥ १८ ॥ श्रनान्थाप्यानाह श्रनान्थाप्या प्रयादि—नाग्मरुष । श्रप्राप्यतिन्तिष्याः दीनामास्थापनशेषान्त्रश्रवानुनन्थेयाः । मामान् नप्त च गर्मिपीत्यत्यन्तनयोगे दितीया । तेनेक्मासात् प्रशृति सप्तमासपर्यन्त विस्तिनिषयं इति ॥ १८ ॥

> न चैकान्ते न निर्दिष्टेऽप्यत्राभिनिविशेद् बुधः। मवेत् कटाचित् कार्य्यापि विरुद्धापि मता किया॥ द्धदिंहद्रोगगुरुमार्ते वमनं स्व चिकित्सिते। स्रवस्थां प्राप्य निर्दिष्टं कुष्टिनां वस्तिकर्म च॥ ६॥

#### इत्यनुवासनाधिकारः।

इटानों वमनीवरचनवस्त्यधिकारे वमनायिवधियत्तेन तथा वमनादिविषयत्त्वन प्रितिपादितेषु वमनादिविष्यत्तिम् प्रितिपादितेषु वमनादिविष्यत्तिम् विषयत्त्राह् न चक्कः न्त्रोनेत्यादि —दृद्धक्ष्यः । निर्दिष्टे एक्ष्ये १ कान्त्रेन नामिनिविशेत् यथेकि एवार्थ वार्थ्य इति निवन्धं न कुर्यादित्यथे । अथ किन्धं यथेकि।धंन्यवार्थत्यावधारणः न क्रियत इत्याह भवे-दिन्यादि । यतो विरद्धतेन शाल्यामिनवापि क्रिया कटानिटवस्थावेगन कार्यामेवत् । चत्केऽप्युक्तन् "उत्यादि हि सावस्या देशकालवल प्रात । वत्या कार्यामेवत् । चत्केऽप्युक्तन् "उत्यादि हि सावस्या देशकालवल प्रात । वत्या कार्यामेव्याचे स्यात् कर्मे कार्यक्र वितिन्ते । इति । इदाना निषिद्धमप्यवस्थावशेन क्रियत क्रियत क्रियत् कर्मे कार्यक्र वितिन्ते छर्यदिचिकित्माध्याये प्रवन्धा प्राप्य निर्दिष्ट वित्यक्षे । अवास्यादीनानिष्ट दर्यादीनां वमन क्षेत्र चिकित्से छर्यदिचिकित्माध्याये प्रवन्धा प्राप्य निर्दिष्ट निन्यसे । अवस्था प्राप्य निर्दिष्ट वित्यक्षे । अवस्था प्राप्य निर्दिष्ट विविद्यक्षेत्र । व्यवस्था प्रवस्था प्राप्य निर्देष्ट वित्यक्षे । अवस्था प्राप्य निर्दिष्ट स्थानिक्षेत्र वित्यक्षेत्र । अवस्था प्राप्य निर्दिष्ट स्थानेनावस्थाविशेष एव निरिद्धविष्टानम् , स्राप्त

न्यतम्त्वनिषेध इति । उत्मर्गापवादतया निषेधनिषिद्धकरणयोरविरोध इति दर्शयित, एवमन्यश्रापि निषेधविषये वमनादिविधानमवस्थाविरोपपरतया समाधेयम् ॥१६॥

इत्यनुवासनाधिकार-विषृति.।

# अथ निरूहाधिकारः।

श्रजुवास्य स्निग्धतनुं तृतीयेऽहि निरूहयेत् ॥१॥

श्रनुवासनेन रिनम्धस्य निरूषियानादनुवासनाधिकारमनु निरूष्ट्माष्ट् श्रनु-यास्यरयादि—तृत्तिथिऽद्यीति श्रनुवासनमारम्य तृतीयदिन दत्यर्थ । तृतियिऽद्यीति प्राथिक श्रेय पद्धमे तदिपानाद, यदाष्ट् वाग्मटः—''पद्धमेऽथ तृतीये वा दिवसे साधके श्रुमे ।'' निरूष्ट्निएकिश्च सुश्रुते—''यथा दोपनिर्षर्णाच्छरीररोष्ट्णादा निरूष्टः'' इति । रारीररोष्ट्णन्तु वयःस्थापनेन रारीरपुनर्नवीकर्णम्, भतप्वास्था-पनमिष निरूष्ट्स्य संग्रान्तर वयःस्थापनादायु स्थापनादिति ॥१॥

मध्याहे किश्चिदावृत्ते प्रयुक्ते विलमहते ।
ग्रभ्यक्तस्वेदितोत्स्एमलं नातित्रुभुत्तितम् ।
मधुस्नेहनकल्काढ्यकपायावापतः क्रमात् ।
श्रीणि पड् हे दश त्रीणि पलान्यनिलरोगिषु ॥
िते चत्वारि चत्वारि हे हिपश्च चतुएयम् ।
पद् त्रीणि हे दश त्रीणि कफे चापि निक्हणम् ॥२॥

निरूद्धानसमयमाद्द मध्याद्द इत्यादि—वाग्मटस्य । किश्चिद्वाष्ट्रत इत्यल्पस्यलिते । श्रभ्यक्तस्वेदितोत्स्प्टमलमिति श्रभ्यकेत्यनेन श्रभ्यक्वविषयेऽपि स्नेद्द्रयोग
कर्त्तन्यतया वा श्रनुजानाति । स्वेदो यद्यपि पद्मकर्मपूर्वकतयानुकोऽपि गम्यत एव,
यद्कुक्तम् ''श्रनुपश्चितद्दोपाणा स्नेद्दस्वेदोपपादनैः । पञ्चकर्माणि कुर्वात ।'' इति
तथाय्यभ्यक्षित्रयमाणस्नेद्दसद्द्यस्वेऽपि स्वेदाविधानार्थं स्वेदितेत्युक्तम् । उत्स्रप्टमलमिति त्यक्तपूर्वपुरीपम् । नातित्रुभुचितमिति त्रुभुचितस्य हि निरूद्धोऽतियोगायोद्ध्वंगमनाय च स्यादिति भावः । निरूद्धोऽपि पद्याक्षो भवति । श्रतो मध्वादेरक्षपञ्चकस्य
दोपभेदेन मानमेदार्थं परिभाषामाद्द मध्वत्यादि—स्नेद्दन पक्तिलम्, श्रामस्य
निषद्धत्वाद्य, किंवा स्नेद्दश्चनात्र मञ्चान वर्जायिता स्नेद्दश्यस्य प्रद्यण्य्वा, यद्यक्र—

विश्वयित्तिविष. स्नेहो वस्त्यर्थं मञ्जवित इति । मदनफलशतपुष्पादीना कल्क ।
त्रानापशब्देन तु मधुस्नेहकल्ककाथव्यतिरिक्षचीरमृत्रकाशिकजम्बिरमामरसादि-द्रव्य
मुच्यते, छतादी पुनरानापशब्देन प्रचेपः, ''कल्को नाप्यभिधीयते'' इति । श्रानिलरोगेपु क्रमात् यथासख्य मधुनस्त्रीिय पलानि, स्नेहस्य पट्, कल्कस्य दे, क्षायस्य
दश, श्रीयि चानापस्यति । एव मिलित्वा द्वादशप्रसतो निरूहो भवति, प्रसतन्तु
पलद्वयामिति । एव पित्तकृष्मायी च व्याख्यम् । द्विपश्चेति दश इत्यर्थः । इदन्तु
यद्दादशप्रसत्तमान निरूहस्योक तद्यादशवर्षमारम्य सप्ततिवर्षपर्यन्त बोध्यम्, तेन
वयोभेदेन निरूहमात्रामेदश्यरकादाननुसरणीय । तेन यत्र द्वादशप्रसत्तिपद्यवा
होनमात्रो निरूहः कर्त्तेच्यो भवति तत्र मधुरनेहादीनामुक्तमात्रानुसारेण मात्रा
कल्पनीया । द्वादशप्रसताधिकमात्रा च न कर्त्तेच्येव, उक्त हि चरके द्वादश पर
स्युरिति, परशब्दोऽवधारेण, द्वादशेव प्रसताः स्युरित्यर्थः । एतन्त्र चरकवचन परमत्रभद्यप्रवाधिकमात्रम्यत्ति क्रित्रस्ति। द्वादशप्रसत्ति क्रित्रस्ति। स्वारीतिऽप्युक्तम्—अर्द्वाढक परमत प्रमायिति। स्वारीतिऽप्युक्तम्—अर्द्वाढक परमत प्रमायिति। स्वारीवऽप्युक्तम्—अर्द्वाढक परमत प्रमायिति।

दत्वादे सैन्धवस्था मधुनः प्रसृतद्वयम् । विनिर्मथ्य ततो दद्यात् स्नहस्य प्रसृतद्वयम् ॥ एकीभृते ततः स्नेहे करकस्य प्रसृतं चिपेत् । सम्मूर्ण्डितं कपायं तं पञ्चप्रसृतसम्मितम् ॥ वितरेत्तु यथावापमन्ते द्विपस्तोन्मितम् । वस्त्रपृतं तथोष्णाभ्यु कुम्भीवाष्णेण तापितः । एवं प्रकरिपतो बस्तिद्वादश्यप्रसृतो भवेत् ॥ ३॥

निरूहे द्रन्यसयोजनाक्तममाह दस्तेत्यादि — सुश्रुतस्य । प्रथम शिलादिखरमस्यामाजने तथोक्तमान मधुसैन्थवचूर्णेश्च स्थापित्वा चिर धर्पेण कार्य्य यावदेकीभवित, तदनु क्षेष्ट्रप्रसतद्वयमि मधुना सार्द्ध मध्नीयात् यावदेकीभवित, एकीभूते
च केहे कल्कस्य प्रस्त कपायस्य पश्च प्रसतानि दस्वा धालोडयेत्, तदनु प्रसतद्रयमावाप वितरेदित्यर्थ । अयञ्च निरूहद्रच्यसयोजनक्रम पित्ते चालारि चालारित्याणुक्तमानसंवादात् पित्तोक्तनिरूह्मानमिध्रुत्य यश्चयुक्तस्तथापि एकस्तेक्तो
विधिरन्यत्यत्युपतिष्ठत इति न्यायात् कफवातोक्तनिरूहेऽपि श्चेय । द्रादशप्रसत इति
यश्चयक्ष सैन्थवाष्ट्रमधिकमपि भवित तथाप्यल्पत्वादिगयानयोक्त द्वादशप्रसत इति ॥३॥

## न धावत्यौपधं पार्गि न तिष्ठत्यविल्य च । न करोति च सीमन्तं स निरूद्दः सुयोजितः ॥ ४॥

इदानीं सम्यग्योजितस्य निरूद्दस्य लक्ष्यमाद्द न धावतीत्यादि—श्रीपध मिलितमधुकेद्दकपायकरुकरूप निरूद्दीपध पाणि न धावति तनुतया प्रज्ञालितप्राय इन्त न करोतीत्वर्थः । तथातिघनतया पाणिख्राविष्य यदौपध न तिष्ठति तथा तदीपध मीमन्त तैलादिरेखा न करोति न दशर्यति । सुयोजित इति सम्यग्यो-जितः ॥ ४ ॥

> पूर्वोक्षेन विधानन गुद्बस्ति निधापयेत्। तिशन्मातास्थितो वस्तिस्ततस्तृत्कहुको भवेत्॥ जानुमग्डलमावेष्ट्य दत्तं दिच्चणपाणिना। कृप्टनेत्रश्कुटाशब्दशतं तिष्ठेदवेगवान्॥ द्वितीयं वा तृतीयं वा चतुधे वा यथाथेतः॥ ४॥

श्रीपथयोजनानन्तर यद्विधेय तदाह पूर्वोक्तेनेत्यादि ।—पूर्वोक्तेनेत्यनुवामनोक्तन । वस्तिमिति निरूहम् । स च वस्ति कियन्त काल गुदै स्थाप्य इत्याह त्रिशनमान्नेत्यादि —मानास्वरूपञ्चाशिवेशेनोक्त यथा—''यावत् पर्येति इस्ताय दिच्या जानुमय्हलम् । निमेपोन्मेपकालो वा मा मान्ना परिकीर्तिता'' इति । उत्कह्न उकडीति लोके । ण्तच विशानमान्नेपस्थापन मृदुकोष्ठ वेगवन्तन्त प्रति बोध्यम् । अवेगवन्त क्रूरकोष्ठञ्च प्रति यद्विधेय तदाह जानुमय्हलत्यादि ।—कृष्टेनश्र इत्याकृष्टनिलक । दत्त छ्टाशब्दिमत्यन्त्वयः छटा तुरीति लोके । कियती छटा देथित्याह दितीयमित्यादि ।—अत्र दचादिति शेष । चतुर्थं वा यथार्थत इति निरूहसाध्यप्रयोजनानुरोधात् चतुर्थमिष पुटक दचादित्यर्थ. । ननु वृदवलेन चतुर्थवित्तिदान न मन्यते, यथा—''क्षिग्धोष्ण एक पवने समासा हो स्वादुशीनो पयमा च पित्ते । त्रयः ममूत्रा कटुकोष्णतीत्त्णा कफे निरूहा न पर विधेयाः ॥' तथा वाग्मटेऽप्युक्त—''त्रिभ्य पर वित्तमतो नेच्छन्त्यन्ये चिकित्मकाः । न हि दोषश्चतुर्थोऽस्ति पुनर्दीयेत यं प्रति'' इति । नैवम् , निपद्वेऽपि बहुपुस्तकविपयत्या प्रायिकम् , चतुर्थपुटकदानन्तु कचित् क्रूरकोष्ठे बलीयसि मृदुदेषि च पुक्तप इति मिन्नस्विषयत्या न विरोधः । श्रतप्त यथीक्त इत्युक्तम् ॥ ५॥

सम्यङ्निसहिलक्षे तु प्राप्ते वस्ति निवारयेत् ॥

प्रसृष्टिविरामूत्रसमीरणत्वं रुच्यश्चित्रद्वधाश्चयताघवानि । रोगोपशान्तिः प्रकृतिस्थता च यलञ्च तत्स्यात् सुनिरूढलिङ्गम् ॥६॥

बस्तिनिवारखिविधिमाइ मम्यगित्यादि—नदेव सम्यग्लिङ्गमाइ प्रसृष्टे-त्यादि—हृदबलस्य । प्रसृष्ट सम्यक् प्रवृत्तम् । आशयलाधवानीत्यत्र आमयलाध वानीति पाठ रोगोपशान्तिरित्यनन्तरं वा शब्दो श्रेयः । तेन निरूष्टमाध्याना विकाराखा लाधवसुपशान्तिवी मवतीत्यर्थं । रोगोपशान्तिरिति वचन रोगविषयम्, प्रकृतिस्यतेति तु सुस्थविषयम्, तेनात्र पौनरुवन्य नाशद्वनीयम् ॥ ६ ॥

श्रयोगश्रातियोगश्र निरुद्धस विरिक्षवत् ॥ स्त्रिग्घोण्ण एकः पवन समासो द्वौ खादुशीतौ पयसा च पित्ते । त्रयः समूत्राः करुकोण्णुक्षताः कफे निरुद्धा न परं विधेयाः ॥ एकोऽपकर्पत्यनिल स्वमार्गात् । पित्तं द्वितीयस्तु कफं तृतीयः ॥ ७॥

श्रनुवासनयोगातियोगल च्या निरूहेऽप्यतिदिशित श्रयोगश्चेत्यादि । इदानीं दोषभेदेन वस्तिपुटकसख्या नियमयमाह क्षिग्थोष्य इत्यादि । एक इत्येप्तपुटक, समास इति मासरससिहत । उक्त हि वाग्मटे—"वस्तिरेकोऽनिले स्निग्यः स्वाहम्लोष्यो रसान्वित "इति । वति स्निग्धोष्यस्त्या एक एव निरूहपुटको देयो न त्विषक । ममास इत्यत्र निरूह इति केचित पठन्ति निरूहोऽत्र पुटकामियायो । पयसा चेत्युपलच्ये तृतीया, पयसा श्रुकावित्यर्थ । कटूप्यतीष्ट्यात्वष्टच कडुकादि-द्रव्ययोगादेव ह्रेयम्, न पर विधेया इत्यनेन सुश्रुतोऽत्र चतुर्वस्तिदानमत्यर्थशर्रीरिहमक निषेषयति । वाग्मटेऽप्युक्त—"'त्रिभ्य पर वस्तिमतो नेच्छन्त्यन्ये चिकित्मका । न हि दोपश्चतुर्थो ऽस्ति पुनई।येत य प्रति" इति । श्रस्य वेषभेदेनोक्तस्य वस्तिपुटकसख्यामेदस्य फलमाह एकोऽपकर्यतीत्यादि—स्वमार्गादिति स्वस्थानात्, एतचानिलादि सवन्तेन योज्यम् । श्रानिलस्य हि पाकाराय स्थानम्, तस्य प्रत्यासन्नत्वादेकपुटकोऽप्यनिलमपकपंति, दितीयादिपुटकदान तत्र निष्फतमिति माव । एव पिचे तृतीयपुटकन्यानम्, कफे चतुर्थपुटकदान न कार्य्यम्, फलागावात् । पकारायोपचया पित्तारायस्य व्यवहितत्वात् दितीय पित्त स्वाराया-

दपकषित, ततोऽपि कफाशयस्य व्यवहितत्वात् तृतायपुटमः कफमपकपेति । स्त्रमागादित्यनेन यदि दोषाः स्त्रस्थानस्था मवन्ति तदैवाय नियम इति बोधयिति, तेन
यदि पित्तकफौ पक्षाशयस्थौ भवत तदा प्रथमपुटमोऽपि तत्स्थानगतिपत्तकफप्रशमन करोति, तथा द्वितीयतृनीयाविष पित्तकफस्थानगतवायुप्रशमन कुरुते इति
श्चिम् । पित्तकफयोस्तु यद्यपि मुख्य चिकित्सित वस्तिदान न भवति वातावरके
वातानुबन्ध वा पित्तकफे नैतद्वस्तिदान श्चेयम । तद्क सुश्रुते—"वस्तिवीते च
पित्ते च कफे रक्ते च शम्यते" इति । वस्तेस्तु प्राधान्यतो यस्तिगतदोपहरकत्वमेवौत्सिगिकम्, तेन पित्तादिस्थाने विशेषवस्तिविधानसाम्य्यात् पित्तादिस्थानगतदोषहरणामप्यपवादरूपतया न विरुध्यते ॥ ७ ॥

श्रनायान्तं मुहूर्त्तान्तं निरूहं शोधनैर्हरेत्। निरूहैरेव मतिमान् ज्ञारमूत्राम्लसंयुतैः॥ विगुणानिलविएन्धं चिर तिष्ठिश्रिरूहणम्।

शूलारतिज्वराटोपान् मरगं वा प्रयच्छति ॥ 🗢 ॥

यणुक्तलक्षणानिरूहो न प्रवर्तते तदा किं कर्तव्य तदाह श्रनायान्तमित्यादि— सुश्रुतस्य । मुद्दूर्ती नाडिका । शोधनिरिति, शोधनद्रव्यकृतैः । निरूहस्य चिरस्था-नगतदोषदरणमप्यपवादरूपतया न विरुध्यते ॥ ८॥

न तु भुक्तवते देयमास्थापनिमिति स्थितिः। श्रामं तिद्ध हरेद्भुकं छुर्दिं दोषांश्च कोपयेत्॥ ६॥ भुक्तवतो निरूहदानीनषथमाह न त्वित्यादि—स्थितिरित्यायुर्वेदनिश्वयः। हरेदित्यथो हरेत्, छदिमित्यूद्ध्वं जनयेदिति शेष ॥ ६॥

श्रांवस्थिकः क्रमश्चापि मत्वा कार्यो निरूह्णे ॥ १०॥ श्रवस्थावशेन यथोक्षक्तमन्यभिचारं दशेयन्नाह आवस्थिक इत्यादि—
तस्यैव। मत्वेत्यवस्था युद्ध्वा, निरूह्णे श्राविश्यिक इत्यवस्थो।चित क्षम कार्यं.,
तेनावस्थाविशेषे निषद्धनिरूद्धेऽपि प्रतिकार चिन्तयित्वा निरूहो देय प्वेल्थर्थ।
यथा भुनतवती निषद्धोऽपि निरूहोऽप्रथ्यस्त्वेदनाया वैतरण्यास्तरूपो दीयते तथा
उदरादिषु निषिद्धो निरूहोऽप्रस्थाया किमिति निरूह एव क्षियते चिकित्सान्तरमेव
कथ न क्षियते इति वाच्यम्, बस्तिगतदोषे हि मलावृते बस्तिरूप प्रधान चिकिन्तिनित्त मलापहरणेन दोषान् च्ययति, न तत्र चिकित्सान्तरं प्रभवति, श्रतस्तस्यामवस्थायामनदैनिरूहाणामपि दोषमलहरो निरूहो देय प्वेति॥ १०॥

श्रतिप्रपीडितो चित्तरितिक्रम्याश्यं तनः । चोतिरितो नासिकाभ्यां मुखतो चा प्रपद्यते ॥ छुर्दिहृङ्कासमूच्छांदीन् प्रकुर्याद्याहमेच च । तत्र चूर्णं गलापीड कुर्याच्याप्यचधूननम् ॥ शिरःकायचिरेको च तीच्णो सकांश्च शीतलान् ॥ ११ ॥ बस्तरितिपीडनेन देशपमाह श्रतिप्रपीडित इत्यदि—सुयुतस्य । श्रागयमिति पक्काशयाधिकम् । नासिकाभ्यामिति नामापुटान्याम् । श्रादिशच्दाटाध्मानादय । शत्र यद्य प्रतिविधेयः तदाह तेत्रत्यादि—गलापीडिमिति गलपीडनम्, एतच्च तथा कार्यं यथा न श्रियते । उक्त हि—"बक्षपाणियहं कण्ठ रुन्ध्यात्र श्रियते यथा" इति । श्रवधूननमित्यत्र केरेण्याकृष्येति शेष । उक्त हि—"केरोप्वालम्य्य वा केरो धुनुयात्" इति । एतच्च बिस्तन्यापीचिकित्सित लेशत एवोक्नम् । विस्तरस्तु चरका-दावनुसन्धेय इति ॥ ११ ॥

> सुनिरूढमथोण्णाम्बुस्नातं सुक्तरसौदनम् । यथोक्केन विधानेन योजयेत् स्नद्दवस्तिना ॥ १२ ॥

निरूद्दसम्यग्योगानन्तर यद्दिषेय तदाह सुनिरूढीमत्यादि—सुश्रुतस्य । उप्याग्य सानिति शिरो विहाय क्षेयं , शिरिन तु शीतलजलेनेति वृद्धा व्यवहरिन्त । अत्र कित्त पढद्गविधना नागरसाधितमुष्णोदक पानार्थमुपिदशन्ति । यदुक्त—नतः प्रत्यागते वर्तता वार्य्युष्ण नागरे शृतम । पाययेत् कृतशौ चन्न स्नापयेदुष्णवारिणा" इति । स्नेह्वस्तिनेति—स्नेह्वस्तिदानन्तु दृढवलेनोक्त यथा—" प्रत्यागते कोष्ण्यकलाभिपिकः. गाल्यक्रमचात् तनुलावयेन । नीर्णे तु साय लघु चाल्पमात्र मुक्तवानुवास्य परिवृह्णार्थम् । निरूद्धपादात्रममेन तैलेनाम्लानि लक्ष्वीपधसाधितेन" इति । निरूप्तानाशममेनिति निरूद्धपादात्रमायेन , चतुर्विशतिपल पट्पलेन स्नेहेनत्यर्थ । इयम्रोग्तममात्रानुवामनस्य, उनतन्न "उत्तमा पट्पली मात्रा मध्यमा त्रिपली भवेत् । कनीयमी त्वर्द्धपात्र । अत्यव्यानिने हित्त । प्रयान्च पट्पली मात्रा प्रवलाि प्रत्येव वोध्या । अन्य त्वाद्ध निरूद्धवानिने यः स्नेह्वस्तिद्धिते सोऽल्पमात्र एव, न तु पट्पल , निरूद्धनाकुलिताभित्वात् अत्यवाह मोज — "सम्यद् निरूद्ध तेलाक्ष जलेनोष्णेन सेचिनम् । योजयेदल्पमात्रेण तत्वण सिक्वित्ता " इति । अत्र तत्वण्यमिति तिहनोपलच्याम् , तेन साम दोयने स्नेहवित्ता । तस्माटत्र सार्वपलस्य। वरमात्रा केदस्य हेया । न चैव चरकिवरीध , चतुर्विशतिपलस्य सार्वपलस्य। वरमात्रा केदस्य हेया । न चैव चरकिवरीध , चतुर्विशतिपलस्य

पाद पट्पल तस्याराश्चतुर्था भागः साँद्धेकपल तत्सम तैलमिति हि तदर्थ. । ष्टद्धास्तु सार्द्धपेलन तिहनानुवासन कुर्वन्ति निरूहस्य मन्दाग्नित्वात् ॥ १२ ॥

तदहस्तस्य पवनाद्भयं बलवदिष्यते ।
रसौदनस्तेन शस्तस्तदहश्चानुवासनम् ॥ १३ ॥
कुतो मासरसः केष्ट्वस्तिश्च तत्रोपदिश्यत इत्यत छाह तदहारित्यादि—
निरूदकृतमलदोषस्य रूचलेन वातात भीतिरिति मानः ॥ १३ ॥

### **अर्द्धमात्रिकः**

दशमूलीकषायेण शताहातं प्रयोजयेत्।
सैन्धवात्तश्च मधुनो द्विपलं द्विपलं तथा॥
तैलस्य फलमेकन्तु फलस्यैकत्र योजयेत्।
श्रद्धमात्रिकसंकोऽयं बास्तर्देयो निरूह्वत्॥
न च स्नेहो न च स्वेदः परिहारिवधिनं च।
श्रात्रेयानुमतो होष सर्वरोगनिवारणः॥
यदमद्रश्च श्रलद्रश्च किमिद्रश्च विशेषतः।
श्रुक्रसञ्जननो होष वातशोणितनाशनः॥
वलवर्णकरो वृष्यो बस्तिः पुंसवन परः॥ १४॥
हत्यर्द्धमात्रिकः।

इदानीं निरूष्योगा वाच्याः, तत्र प्रथम प्रसिद्धत्वादर्श्वमात्रिकविस्तिमाह दशमूली-त्यादि—चन्द्राटेक्कः तन्त्रान्तरस्य। उत्सर्गसिद्धचतुर्विशतिपलनिरूष्ट्रापेखया मात्रार्श्व-सस्येति क्रत्वा द्वादशपलोऽय निरूष्ट्रो क्षेय अर्थमात्रिक श्रृद्धकः। अत्यय मधुस्नेष्ट्र-काथ्येत्यादिपरिभाषया यद् द्रव्यमानमुक्त तदर्श्वमानमेवात्र श्रयम् तस्य तत्रेक कर्ष- प्रवेकः प्रवेकः प्रवेक कर्ष- प्रवेकः प्रवेकः प्रवेकः प्रवेकः प्रवेकः प्रवेकः कर्ष- श्रृत्वकः प्रवेकः प्रवेवः प्रवे

निसर्थ । पटन्येति मदनपटन्य, पटनेन्द्रमाष्ट्रिमानाद् । प्रयोजनगरिपादी च इलादी नेन्ववत्याद्मिलादि वान्देनेवोहा, ख नवह । सर्वेवव निन्देर शतुक-गे।नूश्वराखिकादिद्रव्यदानार्थं केह्गुडनिनि परिमाधामनन्तरेनव वस्यति तेपाञ्च द्रथाया माननिर्यमार्थं वृत्ववचनमेनानुन्यस्यम् नद्यथा—''नर्थं हिन्सुनर्जनी द्विप्त मधुन' पलइयं नैताद । काटलमधित पात्र गृहकेह मेवेद् यावत् उपामूनस्य क्याद दस्त्रा पलपञ्चन महम्मेन्डम् । गुटगहपुष्मान्तीना कर्षे कर्षे तथा कर्षम् । मापक्पञ्चसहित पुकन्यिगमामासप्यसास् । तुष्यमोजनयोरपि प्रत्येकवेद पुटनाह" रत्यादि । प्रम्माति पक्षतिनिक्केप्तनं तर्दाप सान्यि याक्षमित्युपदेशः । प्रवृद्दन्दीराशैना भाषत्रइष्ठहितं कर्षेपित्यर्थः । पूर्को मानुस्तृहृत्यः, अन्य पह-पनरसे। गृहोते । एत बन्दीरस्वापि मायवपन्त्रसिंहतम् । चीरवर्षन्तुः स्थानिकस्य निनिवनिरुदन्य चर्नपुटकप्रवेशानमये प्रवेतम्मन् इन्तया न धावर्खायव पाणि-मित्यादि तन्नप न स्वाहित्याहुर्नृदर्वेदा । श्रनेन प्रव्येप पुस्तत्रयमुल्यं । प्रेन पुरुद्देवनापि सम्बङ्गिरुइटच्च तत्र तावन्नात्रमेवेति । सुख्यहणार्थमर्द्ध-मात्राधिकवन्ते पविका लिख्यते,—पुटकत्रदार्थं दरामूल प्रक ३, पाय रा ७ पन ४, नेष पन १५, मानित हत्वा एकपुटकार्थं दमसूनकषाय पत ४, प्रेसपार्थं हिरिष्टेगोषकगञ्जपा (माय)क १. हैन्यव व १ मधु प २, पहतेल प २, पिष्टमदन फ्ल गो १, पुगचाउँ क १ आठा(रोज)महितसुपक्षतिन्दिर्धाप्त क १ सुपक्र-मातुटहरस बनीरवन-मास्टस-हाझी-गोवृत्र प्रक १ मा ४, एतत् सर्वे पूर्वोहन स्याननपरिपाट्या मेनदिन्वा वेस इस्वा वायन्वदेन वदुस्पीकृत आध्यन्, इदनु गम्बदुग्य क १ ना ४, प्रोदिष्ठारोह्य चनंपुटके प्रदेष्यमिति । एत्रदेव विद्यान हिताम त्वांदेऽपि हेयन । स्त्यर्दनाविकः ॥ १४ ॥

केहं गुडं मांसरसं पयश्च श्रम्लानि मूत्रं मधुसैन्धवे च । एठान्यनुक्तानि च दापयेच निरुद्दयोग मदनात् फलञ्च ॥ लवएं कार्षिकं द्यात् फलमेकन्तु मादनम् ॥१४॥

रठानी नर्नेभेन निरुदेषु नातुकान्यन्यद्रव्यापि कवन्यप्रदेष्यापि तानि दापयितुं हारीत्रक्तनतुष्नान्यति कह गुटीमत्यादि । सुसुतन्त्रेतन्माद्रधिकमण्याह्—धंन्रोदाद्य-न्त्रानि मृत्रापि केहा हाथ रहान्त्रथा । नश्र्यानि फर्न केंद्र गताहा सुषेपा वचा । एन विष्युक्त राष्ट्रा स्पन्न देवदार च । रचनी मधुक हिंह कुई स्रोधनानि च । निरूरेषु यथालाम एप वर्गो विधीयते'' इति । सैन्धवमदनफलयोर्मिलितानयतमनि-माइ लवण्मित्यादि—फलमेक्मित्याकृतिमानात् ॥१५॥ '

#### वाते गुड़ः सिता पित्ते कफे सिद्धार्थकादयः ॥१६॥

दोपभेदेन गुष्टिकादीना अत्तेप्यत्वमाह वात इत्यादि-आदिशब्दात् सुश्रुतोकः वचाित्र गृह्यकादीना अहण्यम् । अत्रान्तरे चरकोकः एरग्रहवस्तिर्हृष्टफलो वोध्य । मोऽप्यर्द्धमाित्रकोककलपनानुमारेणार्द्धमाित्रकथैव वृद्धैः प्रयुज्यते । स चात्र विस्तरभयात्र विवृत इति तत्रेवानुसन्धेय ॥१६॥

### श्रथ चारबस्तिः।

सैन्धवात्तं समादाय शताह्वात्त तथैव च ।
गोमूत्रस्य पलान्यप्रविम्लकायाः पल्डयम् ॥
गुडस्य द्वे पले चैव सर्वमालोंड्य यत्ततः ।
वस्त्रपूतं सुखोष्णश्च वास्ति दद्याद्विचत्त्रणः ॥
शूलं विद्सहमानाहं मूत्रकृच्छश्च दारुणम् ।
किम्युदावर्तंगुलमादीन् सद्यो हन्यान्निपेवितः ॥१०॥

#### इति चारवस्तिः।

चारवास्तमाह सैन्थवाचिभित्यादि—विन्तिरयमेतावन्मात्र एव दीयते, इयद्यमात्रा एकपुटकस्य । त्रम्लिकाया इति मास्थितिन्तिडीफलस्य । निरूह्योगं मदनात् फलक्रेत्युक्तत्वात् एव मदनफलमप्यत्र वृद्धेदीयते । श्रतएव चन्द्राटीऽप्याह—
'गोमूत्रस्य पलान्यष्टो दे गुडाम्लिकयोः पते । कर्षद्य शतपुष्पायास्तथाच सैन्थवस्य च । मदनस्य फलक्रेक खजेन सुविलो।हितम् । यस्तपृत सुखोष्पाञ्च वस्ति दणा-दिचच्यः । वातविट्सङ्गमानाह मूत्रकृच्छू द्य राज्यम् । स्लोदावर्तगुरुमादीन् सथो एन्यात् प्रयोजित । गोमूत्रवस्तिरित्येष विश्वेय. शोधन पर । हितः साधारणे स्व गुद्धे तु तैलस्युतः । बलवर्णकरः पुनामित्रसन्दीपनः परम्' इति अस्मादेव वचनात् गोमूत्रवस्तिरित्यिप् मद्यान्तरमस्य वोध्यम् । तथा निरावरणे तु तैलमिष देय तैलज्ञ पलमान वोध्यम् । तद्यक्तमायुनेदमारे—''श्रष्टी पलानि मूत्रस्य गुहस्य तु पलद्यम् । तद्यदम्बीफल दस्वा मिष्यच सैन्धवस्य च । रूव सामेऽनिले युष्ट्याच्छुद्धे तैलपलान्वितम् । चारवस्तिमिम ।सिद्ध वातोदावर्त्तनाशनम्' इति । इदानीं चारवस्ते पत्रिका लिख्यते, सैन्धवच्यूर्णं क १, शालुफा (सोये) कल्क क १, गोमूत्र पल ६,

सुपिष्टास्थिसहितपक्षतिन्तिडीफल पल २, पुराखगुड पल २, सुपक्षमटन गा १, निरामनाते पक्षतैल पल १। एतत् सर्वे पूर्वनन्मदेथित्वा वस्त्रपूत् कृत्वा कदुष्णीकृत्य देयम् । इति चारनस्ति: ॥१७॥

## श्रथ वैतरणवस्तिः

पत्तश्रक्तिकर्षकुडवैरम्लीगुडसिन्धुजन्मगोमूत्रैः।
तैत्तगुतोऽयं वस्तिः ग्रतानाहामवातहरः॥
वैतरणः चारवस्तिर्भुक्ते चापि प्रदीयते॥१८॥
कृति वैतरणवस्तिः।

वैतरणयस्तिमाह पलशुक्तीत्यादि—शुक्तिरईपलम् । अम्लीति तिन्तिडीफलम् पलादिमानस्र कमाल् अम्लीगुडादिषु योज्यम् । कुडवोऽत्र द्वदैगुण्यादष्टी पलानि, ईपत्तेलपलिमिति व्यवहरन्ति वृद्धा । अत्रापि मदनफलिमक देयमित्याहु । श्यमिप वेतरणोक्तमात्रा परुपुटकस्येव श्वेया । अत्यन्तश्क्लपीडाया विस्तिद्वयमिद मुक्तेऽपि दीयत इत्याह वैतरण इत्यादि—अत्यन्तश्क्लावस्थाया पीडायामावस्थिकमिद विधान बोध्य न तु सार्वकालिक मुक्ते निरूषस्यातिद्रीपल्यलाद् । किन्तु मुक्ते चारविस्तिनं प्रचरिन, वैतरणस्तु चरत्येव । यतदिप दुवैलविषयमेव श्रेय, तद्कक—''भीजयित्वाथ सायोह दुवैलस्य प्रशस्यते। अय चेत् वलवान् जन्तुरभुक्त्वापि तदा कचित्, इति । इति वैतरणविस्त्र ॥१८॥

#### अथ पिन्छिलवस्तिः

वद्यैरावतीशेलुशास्मलीधन्वनाङ्कुराः। चीरसिद्धाः सुसिद्धाः स्युः साम्नाः पिव्छिलसंज्ञिताः॥ वाराहमाहिषौरभ्रवैडालेणेयकौक्कुटम्। सद्यस्क्रमस्गाजं वा देयं पिव्छिलवस्तिषु॥१६॥ चरकादौ समुद्दिष्टा वस्तयो ये सहस्रशः। व्यवहारो न तैः प्रायो निवद्धा नात्र तेन ते॥२०॥ वस्तिर्वयःस्थापयिता सुखार्युवलाशिमधास्वर्वण्छ्य। सर्वार्धकारी शिश्चनुद्धयूनांनिरत्ययः सर्वगदापद्दश्च॥२१॥ इति निस्हाधिकारः॥ विश्विषयित्तमाह बदरीत्थादि—सुशुत्तस्य । ण्रावती नागवना, शेलुर्बंदुवारः; धन्वनो धामनीरिति प्रसिद्धस्तर । प्रथामद्भरा अधिनववह्नवा । अप सुम्धस्याप्येको भागः । त्रयो भागा जलसेत्यादुः । सास्राः सरसाः । रक्षम्च येवा प्राण्ण तानाह वाराहेत्यादि—पतच शोणित मृदित्वेव वस्ता देय, सधस्केर्मृदिते- धिस्तिरिति चरकवननात् । मयम्च वस्तिर्यथोक्तद्रव्यमानेनेव कार्य्य । मात्रा चास्याद्धमात्रिकविस्तवत्, माधुतिलक्षकिस्तवद्धत्यादुः । इति विश्विष्ठलवन्ति सदानीः नरकायुक्तानामन्येषा वस्तीनामभिधान उपपत्तिमात चरकादावित्यादि—प्राय इति वचनात् तेष्ठप्यवस्थाया प्रयोज्या इति स्वयति वस्तिसामान्यगुणानाह वस्तिरित्यादि—मवगदापद्य इति मिलितसर्व दोषापद्यः कि वा त्रेदोषिकव्याधिहर इति चरकव्याख्या, त्रान्यशाख्याच्या तु शेलक्ष्मिपत्तानिलाकपीत्यनेन, तथा सर्वान् विकारान् शमयेदित्यनेन च न पीनस्वस्य स्थात् । इदमप्यत्र सुशुनवचन वोध्य—''नरस्योत्तमसत्त्वस्य तीद्यवस्ति प्रयोजयेत् । मध्य मध्यमसत्त्वस्य धीनसन्त्वस्य वे मृदुम् । अपि दीनक्षम कुर्यात्र तु कुर्यादितक्रगम् । विशेषात् सुकुमाराणा द्विन एव क्षमो हित " इति ॥ १६–२१॥

इति निरूहाधिकारविष्टति:।

# अथ नस्याधिकारः

प्रतिमर्पोऽवपीडस्य नस्यं प्रधमनं तथा।

शिरोचिरचनञ्चित नस्तः कर्म च पञ्चधा॥
ईपदुन्छिद्ध्वनात् स्नहो यावान् वक्तं प्रपद्यते।
नस्तो निषिक्षस्तं विद्यात् प्रतिमर्पं प्रमाणतः॥ १॥
पण्चकर्मपारिशेष्यात्रस्यमाद प्रतिमर्पं हत्यादि। प्रतिमपं लच्चणमाद्द ईपर्देः
त्यादि—सुश्रुतस्य। ईपदुन्छिद्धनादिति छद्ध्वंषास्चेपणात्। ननु चरके न
चोन्छिद्देदिस्युक्तम्, अत्र तु ईपदुन्छिद्धनम्, उक्तमतो विरोध १ अत्र
केचिदीपदुन्छिद्धनमनुन्छिद्धनमेवेति समावधित, अन्ये तु चरकोक्तप्रतिमर्थः
स्वल्पप्रमाणे।ऽनुन्छिद्धन सार्वकालिको श्रेय., अतप्य तत्र प्रातिनिश च मर्व
देरस्यक्तम्, यस्तु सुश्रतोकः स भूरिमात्रो, नासां सार्वकालिक इस्यभिध्यः प्रतिमर्थ

ईपदुन्थिद्वन स्त्याहु । नस्तो निधिक इति नासापुटद्देय निधिक , प्रमाणत इति परिमाणन , परिमाणकारकमेतल्लणमित्यर्थ ॥ १॥

प्रतिमर्पन्तु नस्यार्थे करोति न च दोपवान् । नस्तः स्नेहाद्गर्लि दद्यात् प्रातर्निशि च सर्वदा ॥

न चोचिछुद्वेदरोगाणां प्रतिमपः स टाट्यकृत् ॥ २ ॥
प्रतिमर्पक्रमोइ प्रतिमर्पस्तित्यादि—चरकन्य । नस्यार्थमिति नस्यस्य
स्निहनशोधनरूपप्रयोजनद्वयम् । उक्त हि—'स्निहन शोधनन्त्रेव द्विविध
सस्यमुच्यते।'' न च दोषवानिति व्यापिकृत् । प्रकारान्तरेणापि प्रतिमर्पमात्रामाह
नत्त स्नेहाङ्गनीमित्यादि—चरकस्य । नस्त हित नासाया, स्नेहाङ्गनीमिनि
स्निहप्रिताङ्गलाँ दवाद; एनेन स्नेहमझाङ्गलीता यावान् सेह पति मैत
प्रतिमर्पमात्रा । सर्वदेति सर्वप्वेव ऋतुपु । न च नावनादिवदत्रोच्छिङ्गन
कर्त्वव्यमित्याह नचोच्छिद्वेदित्यादि—अरोगाणामित्यनेन सुस्थविषयत्वमस्योक्तम्।

निशाहर्भुक्तवान्ताहःसप्ताध्वश्रमरेतसाम् । ' शिरोऽभ्यञ्जनगरङ्कपप्रस्नावाञ्जनवर्धमाम् ॥

दार्ख्यक्रिटिति दन्नशिर कपालादिदार्ख्यकृत् ॥ २ ॥

दन्तकाष्ठस्य हास्यस्य योज्योऽन्तेऽसौ द्विचिन्दुक ॥३॥
सर्वदेखन्यार्थमाह निरात्यादि—वाग्मरस्य । अमी प्रतिमपं विन्दुदयपिमिनो
निरााचीनामन्ते समाप्ता वेधन योज्य । निराान्त इति प्रात , अहोन्त इति
सायम् । सुशुतेऽपि कल्योक्षित इत्यनेन प्रात.काल उक्त । अध्वेति प्रयादिश्रमः ।
श्रमराच्देनाध्वन्यतिरिक्तो व्यायाम उच्यते । सुश्रतेऽपि व्यायामाध्वपरिश्रान्तेनेत्युक्तम् ।
रंत. राच्देन रेत सम्योपलचितव्यायाम उच्यते । प्रसाव इति मुन्नोत्सर्गः , वर्च
पुरीपोत्सर्ग । प्यु पश्रदशस्र कालेषु प्रतिमर्पदानप्रयोजन वाग्मरेनेवोक्तमनुसर्तन्य
तथ्या—''निराहर्मुक्तवान्ताह स्वप्तध्यभ्रमरेतमान् । शिरोऽम्यञ्चनगयद्वपप्रसाव्याञ्चवन्त्रसाम् । दन्तकाष्ठस्य हास्यस्य योज्योऽन्तेऽमौ दिविन्दुक । पश्चस्र स्रोतमा
ग्राद्धः कमनारास्त्रिषु क्रमात् । द्रग्वल पश्चस्र ततो दन्तदार्ख्यं मरुच्छमः ॥''
निराहर्मुक्तवान्ताह स्वप्तेषु पश्चस्र प्रानमर्पदानात् स्रोतमा ग्रुद्धिमंवति । त्रिप्तिवि
'अध्वश्रमरेतःस्र क्रमनारा स्यात् । शिरोभ्यञ्चनादिषु वर्चोऽन्तेषु त्र प्रतिमर्पदानात्
दन्तदार्ख्यं, मम्नो वायो प्ररामन करोतीर्ख्यः ॥ ३॥

शोधनः स्तम्भनश्च स्यादवपीडो द्विधा मतः। श्रवपीड्य दीयते यसादवपीडस्ततस्तु सः॥४॥

अवपीउमाह शाधन हलाहि—चरकस्य श्रत्र सशमनामेलवपीहस्य कर्मेच्छन्ति, तत् पुनरिह स्तम्भन प्वान्तर्भविति ॥ ४ ॥

> स्नेहार्थं शून्यशिरसां श्रीवास्कन्धोरसां तथा। वलार्थं दीयते स्नेहो नस्तशब्दोऽत्र वर्त्तते॥४॥

नस्यमाह केहार्थमित्यादि—ग्रीनास्त्रन्थोरसां रच्नणार्थमित्यन्वय । नस्तराब्दो नस्यपर्थाय , नासाभ्या दीयत हति नस्यम् , नासाराब्दात् रारीरा-वयनत्वात् यत् प्रत्ययेन । श्रतप्रवाह सुश्रुतः—'श्रीप्थमीप्थपकी वा क्षेही नासिकाभ्या दीयत हति नस्यम्।" श्रन्या च निरुक्त्या यद्यपि सामान्यनचन प्रवाय नस्यराब्दस्तथापि नस्तराब्दोऽत्र वर्त्तत इत्यमिथानात् विशेपवृत्तितामपि नस्यराब्दस्तथापि नस्तराब्दोऽत्र वर्त्तत इत्यमिथानात् विशेपवृत्तितामपि नस्यराब्दस्य वोथयति । एतन यथा निदानशब्दो निदानपञ्चके नथा निदानविशेषे च वर्तते, तथाय नस्पराब्दोऽपि नस्परिरोतिरेचनप्रतिमप्तवपीद्यप्रमनेषु तथा नस्यविशेष च केहार्थ स्त्यशिरसामित्यादिनोक्ते वर्तते । स्रुश्वेनापि ''ततो नस्यराब्द पञ्चथा निपातित '' इत्यादिनायमर्थ उक्तः । एतेन नासाम्रोतिस दोपोपरामनार्थ यद्दीयते तन्नस्यमिति नस्यादिपञ्चकसामान्यलचणम् ; तथा प्रतिमर्पादिमिन्नत्वे सति केहनार्थ यद्दीयते तन्नस्यमिति तु नस्यविशेषलच्चण वोध्यमित्यादुः ॥ ५ ॥

नस्यस्य स्नैहिकस्याथ देयास्त्वष्टौ तु विन्दवः।
प्रत्येकशो नस्तकयोर्नुणामिति विनिश्चयः॥
श्रिक्तश्च पाणिश्चिक्तश्च मात्रास्तिस्रः प्रकीर्तिताः।
इात्रिशद्धिन्दवश्चात्र श्रुक्तिरित्यभिधीयते॥
दे शुक्ती पाणिशुक्तिश्च देयात्र कुशलैर्नरैः॥६॥

खहिकनस्यार्थे लेहस्य मानमाह नस्यस्येत्यादि — लेहाग्छतप्रदेशिनीपर्वद्वयात् यावान् लेहः सवित तावान् लेहो भिन्दुरित्युच्यते । उक्त हि वार्मेट — "प्रदेशि-न्यद्गुलीपर्वद्वयान्मअसमुद्भृतात् । यावान् पतत्यसौ विन्दुः" इति । नस्तकयोरिति नासापुटयो प्पा प्रथममात्रा । दितीया तृतीयान्न मात्रामाह शुक्तिश्च पाणिशुक्ति-श्चेति—शुक्तिदितीया, पाणिशुक्तिस्तृतीयेत्यर्थः । प्रताश्च तिस्रो मात्रा यथावल प्रयोज्या इति । सुश्रुतेऽप्युक्तं—''तस्या प्रमाणमधी विन्दव, प्रदेशिनीपवंद्वयनि.सता प्रथमा मान्ना दितीया शुक्तिस्तृतीया पाणिशुक्तिरित्येतास्तिन्नो मान्ना यथावल
प्रयोज्या इति । शुक्तिपाणिशुक्तिशब्दयोर्थमाह द्वानिशिद्विन्दव इति । दे शुक्ती
इति चतु पष्टिविन्दव इत्यर्थ. । इदन्न शुक्ति-पाणिशुक्त्यास्यमान्नाद्वय मिलित्वेव
नासापुटाम्या प्रयोज्यम्, न तु प्रथममान्नावत् प्रत्येकशा इत्याहु,। प्रतच्च सहनस्य
न गिलेत् किन्तु त्यजेदेव । उक्त हि सुश्रुते—''लेहनस्यं न चोपगिलेत्
कथिन्नद्विवं', इति ॥ ६॥

तैलं कफे च वाते च केवले पवने वसाम्।
्दचान्नस्तः सदा पित्ते सर्पिमेजा समारुते॥ ७॥

इदानीं तिसन् दोपे य केह प्रयोज्यस्तमाह तैलिमित्यादि—चकारात् वातकफससर्गे च तैल देयमित्यर्थ ।, केवल इति निरावरेण वाते; मज्जा तु समाकृते वाते ॥ ७ ॥

> ध्मापनं रेचनश्चूणीं युञ्ज्याचं मुखवायुना । षडङ्गुलिद्वमुखया नाड्या भेपजगर्भया ॥ स हि भूरितरं दोपं चूर्णत्वादपकपंति॥ =॥

प्रधमनमाह ध्मापनित्यादि—नाग्मटस्य । रेचन इति शिरोविरेचनद्रन्यकृत॰ किंवा देहस्रोतोविशोधन इत्यर्थ । स इति चूर्ण । चूर्णत्वादिति सदमस्रोतो॰ ऽनुसारित्वादित्यभिसन्थिः । एतच प्रथमन चूर्ण प्रतनु वस्त्र बद्धा निष्ठदित्यपि वृद्धन्यवहारसिद्धो विधिवोध्या,॥ = ॥

> शिरोविरेचनद्रव्यैः स्नेहैर्वा तैः प्रसाधितैः। शिरोविरेचनं द्याद् रोगेषु तेषु वुद्धिमान्॥ गौरवे शिरसः ग्रुले जाड्ये सन्दे गलामये। शोथगएडिकिमिग्रन्थिकुष्ठापसारपीनसे॥ ६॥

शिरोविरेचनमाइ शिरोविरेचनेत्यादि—शिरोविरेचनद्रव्येरिति अपामार्ग-बीजादिमिस्तै, कृत्कीकृतैद्रेव्यमिश्रितेरेतत्साधितै स्त्रेह्वा इत्यर्थः। अस्य च माश्रार्थ सिद्धसारे यथा—"चत्वारो विन्दव मद् वा तथाष्टी वा यथावलम् । शिरोविरेचने योज्या कद्ध्वंजञ्जविकारियाम्" इति । जास्य ग्रीवादिस्तम्म, , स्यन्दोऽभिष्यन्दक्रोगः। पीतस इति पुरायपीनसे ॥ ६॥ किन्धिसिन्नोत्तमाइस्य प्रायकतावश्यकस्य च । निवातश्यमस्थस्य जन्नूद्र्वं स्वेदयत् पुनः ॥ द्राथोत्तानोद्र्ध्वंदेहस्य पाणिपादे प्रसारिते । किञ्चिद्वन्नतपादस्य किञ्चिन्मूर्धनि नामिते ॥ नासापुटं पिधायकं पर्यायेण निषेचयेत् । उष्णाम्वतसं भैपज्यं प्रणाङ्या पिचुना तथा ॥ दत्ते पादतलस्कन्धहस्तकर्णादि मर्दयेत् । श्राभेषजन्नयादेवं द्विस्त्रिवा नस्यमाचरेत् ॥ १० ॥

येन विधिना ति छुरे।विरेचन कर्त्तंच्य तदाइ छिन्धेलादि—वाग्मटस्य ।
प्राक् छनावश्यकस्य चेति प्राक् पूर्व छतमावश्यकम् अवश्यकरणीय मलम्भविसंगमुखधावनादिक येन तस्य । जत्रूद्धंमिति मीवामूलादिक खेदयेत् पुनिरेलनेन
उत्सर्गसिद्धपञ्चकर्माङ्गम्तखेदापेष्ठया भिन्न एव नस्यान्यविष्ठतपूर्वकाले पुनः खेद
कर्त्तंच्य इति वोधयति । विजिद्धन्नतपादस्येति चरकेऽपि पादोष्नतस्येत्युक्तम् ।
प व्यविरोति क्रमेण न स्वेकदा । उष्णाम्युत्तप्तिति उप्णाम्युर्योगादुष्णाम्युवाध्येण
वा तप्तम् । प्रणाख्येति नरयनिक्तवयाः, पिचुनेति तृलकेन । आदिशब्दात्त
भीवाननादीना महण्यम् । पार्थयोरिति वामदिष्णिनासापुर्ययोः । आपिशब्दादिति
छदः । भेपजिन सरणपर्यंनत शनैकिष्ठष्ट्य निष्ठीवेदिल्यंः । प्रमुक्तपरिपार्थ्या
वारद्वय श्रय वा दे।पापेष्ठया अधिकमिष नस्य कुर्यादिल्यंः । नस्ये क्रियमाणे
विदं नस्यस्य सम्यक्पयोगेण मूच्छा स्यात् तदा शिरः परिलच्य शीततोयेन
सेचन कार्यम् । अतप्रतदतदनन्तर वाग्मेट यथा— (मूच्छांया शीततोयेन सिम्नेव्
परिष्ठरन् शिरः) इति ॥ १०॥

स्नेहं विरेचनस्यान्ते दद्याद्दोषाद्यपेत्तया। ज्यहात् ज्यद्दाच्च सप्ताहं स्नेद्दकर्म समाचरेत्॥ एकाह्यान्तरितं कुर्योद्देचनं शिरसस्तथा॥११॥

शिरोविरेचनस्यानन्तरीयविधिमाह सिहमित्यादिः—वाग्भटस्य । सिहमिति सिहनस्यम् । सिहनस्य रेचननस्यज्ञ क्रियन्त काल कया परिपाट्या कुर्य्या-दित्याह ज्यहात् ज्यहादित्यादि — ण्कैकदिनमन्तरीकृत्य सप्ताहमन्त्ररित्तदिनानि वर्जियिता केहनस्यम्, शिरसो विरेचनन्तु एकाहान्तरित कुर्यात् । तेन यसिन् यसिन् दिने केहनस्य न दीयते तसिन् तसिक्षेव दिने रेचननस्य देयमित्यथं । एतेनैकिसन् दिने केहम्, अपरिसन् दिने शिरोविरेचनमेन, सपरत्वापरत्वे सित शिरोविरेचनमेन, सपरत्वापरत्वे सित शिरोविरेचनानन्तर केहनस्य भवति । एकाहान्तरित शिरोविरेकः कार्य्य इत्युत्सर्गस्तेन ब्वन्तरमि श्रेयम्, तथा सप्ताहमित्युपलच्या तेन त्र्यहादिकमिष दोषाधेपस्या श्रेयम् । उक्त हि—''एकान्तर ब्वन्तरं वा नस्य दद्याहिचच्या । सप्ताहन्तु पर श्रेय विश्वान्तस्य पुनः पुन. । त्र्यह पञ्चाहमथवा सप्ताह वा स्वयन्त्रतम् । पर नवाहमृद्धेन्तु नवाहात् सात्म्यता व्रेतस्य हिता ११ ॥

सम्यक्तिग्घे मुस्रोच्क्कासस्वप्तयोधान्तिपाटवम् ॥ १२ ॥ सम्यक्तिग्धलचणमाहः सम्यगिलादि—नाग्मदस्य । सुखराच्द उच्छ्कासा-दिना बोधान्तेन सम्बध्यते । अचीतीन्द्रियोपलचणम्, अचिपाटविभिति वा पाठ , तन्त्रान्तरे प्रसादश्चेन्द्रियाणाभित्युक्तम् ॥ १२ ॥

> रूचेऽचिस्तन्धता शोषो नासास्ये मूर्द्धशून्यता। स्निग्धेऽतिकराष्ट्रगुरुता प्रसेकारुचिपीनसाः॥ १३॥

श्रसम्यक् सिग्धलचयामाह रूच इत्यादि—नाग्भटस्य। रूच इत्यसम्यक् क्रिग्धे। श्रतिकिग्धलचयमाह क्रिग्ध इत्यादि—नाग्भटस्य। श्रतिकिग्ध इत्यन्वय। प्रसेक इति कफप्रसेक, ॥ १३॥

सुविरिक्षेऽित्तलघुतावक्त्रखरिवशुद्धयः। दुर्विरिक्षे गदोद्रेकः ज्ञामतातिविरेचिते ॥ १४॥

केहिकनस्यस्य सम्यग्योगादीनभिधाय रेचननस्यस्यापि तानाह सुविरिक्त इलादि—वाग्मटस्य । चामता शुष्कद्रवधातुता ॥१४॥

तोयमद्यगरस्नेहपीतानां पातुमिच्छताम् । भुक्तमक्रशिरःस्नातस्नातुकामस्रुतास्त्रज्ञाम् ॥ नवपीनसरोगार्चस्तिकाश्वासकासिनाम् । ग्रुद्धानां दत्त्वस्तीनां तथानार्चवदुर्दिने । श्रम्यत्रात्ययिके व्याधी नैषां नस्यं प्रयोजयेत् ॥१४॥

येषा नस्य न विधेय तानाह' तोयेत्यादि—नाग्मटस्य । तोयादिक पार्त यैस्ते वेथेति आहिताग्न्यादित्वात् परनिपात । अनार्त्तवदुदिन हेमन्तरिशिरयोमेंघन्यादिन

ऽहि । अन्यत्रात्ययिके न्याधाविति आत्ययिके च न्याधी नस्थैकसाध्ये निषिद्धनस्था-नामपि नस्य विधेयमेवेत्यर्थ. । नैषा नस्य प्रयोजयेदिति श्लोकपादस्यकेण प्रति-मस्कृत्य दत्तः ॥१५॥

न नस्यमूनसप्ताब्दे नातीताशीतिवत्सरे।
न चोनद्वादशे धूमः कवलो नोनपञ्चमे॥
न शुद्धिक्रनदशमे न चातिक्रान्तसप्ततो।
श्राजन्ममरणं शस्तः प्रतिमर्षस्तु बस्तिवत्॥१६॥
दति नस्याधिकारः।
समाप्तश्च पञ्चकमीधिकारः॥

इदानी यसिन् वयसि नस्य न विधेय तदाह न नस्यमित्यादि—वाग्भटस्य। कनसप्ताच्द हित एकवर्षमारभ्य षष्ठवर्षपर्यन्तम् इति प्रतिवर्षन्यतिरिक्त नस्य न प्रयोज्य सप्तमवर्षात् प्रमृति तु विधेयमेवेल्यर्थः। उक्त हि कृष्णानेवेग्रण—"स्प्रवर्ष-सुपादाय नम्यकर्म चतुर्विधम्" इति । श्रतीताशीतिवत्सर इति एकाशीतीलादौ निषेष्य, प्रस्तावात् निषेष्यधूमकवलादीनप्याह न चानद्वादश इलादि—कनद्वादश इति एकवर्षमारभ्य एकादशवर्षपर्यन्तम्; एव वस्त्यमाणेऽपि क्रेयम्। शुद्धिरिति वमनविरेचने । प्रतिमर्षस्तथा वस्तिरिति सर्वकालमेव विधेय इलाह श्राजन्मेलादि।

इति नस्याधिकार-विवृति । समाप्तां च पद्मकर्माधिकार-विवृतिः ।

# अथ धूमपानाधिकारः।

प्रायोगिकः स्निहिकश्च धूमो वैरेचनस्तथा। कासहरो वामनश्च धूमः पश्चविघो मतः॥१॥

नस्यवश्रासाप्रयोज्यत्वसाधर्मात् पद्मसख्यासामान्याच नस्यानन्तरिविधयत्वाच नस्यानन्तर धूममाह प्रायोगिक इत्यादि—प्रायोगिक इति नित्यपेयधूमस्य सङ्गा। प्रयोगः सतताभ्यास , तदिषयको धूमः प्रायोगिकः । कहाय भमवतीति केहिक । दोषविरेचनादेरेचिनकः । कास हरतिति कासहरः । वामयतीति वामनः । यद्यपि चरके प्रायोगिककेहिककेरेचिनकमेदात् त्रिविध एव धूम जकस्तथापि प्रायोगिके कासहरम्, वरेचिनके च वामनीयमन्तर्माच्य चरकसुशुतयोविरोधः परिहरणीय. ॥१॥

ऋजुत्रिकोशाफिलितं के।लास्थ्यग्रप्रमाणितम् । वस्तिनेत्रसमद्रव्यं धूमनेत्रं प्रशस्यते ॥ सार्द्धस्त्र्यंशयुतः पूर्णो हस्तः प्रायोगिकादिषु । नेत्रे कासहरे ज्यंशहीनः शेपे दशाहुलः ॥२॥

धूमपानार्थं निलकाविधानमाह ऋज्विलादि—चरकस्य । त्रिकोपाफिलितिमिति त्रिमि पर्वमिक्तिं समन्वित किंवा त्रिकोपिक्तमङ्ग , तेन यसिन् नेत्रं स्थानत्रये मङ्ग. कार्यः , स च निलकात्रयेया घटनीय इत्याहः । कोलास्थ्यप्रप्रमाणितिमिति त्रस्य नेत्रस्यात्र कोलास्थिप्रवेशयोग्य कार्थिमित्यर्थः । मूलज्ञास्याङ्गप्रवेशयोग्यम् । यदाह वाग्मट —''म्लाप्रेऽङ्गप्रकोलास्थिप्रवेश धूमनेत्रकम्'' इति । वस्तिनेत्रसम्मद्व्यमिति वित्तिनेत्रेया सम तुत्य यद् द्रव्य सुवर्थरूप्यतात्रादिकम् । धूममेदेन नित्रमानभदमाह सार्वः इत्यादि —हस्तोऽत्र चतुविशत्यङ्गलपरिमित , तेन प्रायोगिके भूमे मार्बा हस्त पर्तिशत्वङ्गल । ज्यश्यत इति चतुविशत्यङ्गलस्य तृतीयोऽशोऽध्यङ्गलम्, तेन मयुक्ती हस्त इत्यर्थ , पतेन केहिके द्वात्रिशत्वङ्गल नेत्रमित्यर्थ । वरेचने तु पूर्णा इस्तश्चतुविशत्यङ्गलमित्यर्थ । कासहरे धूम ज्यशहीनो हस्त पोड-राङ्गलमित्यर्थः । शेष इति वामके ॥२॥

श्रौपघैर्वित्तिकां कृत्वा शरीगर्भा विशोषिताम् । विगर्भामग्निसंप्लुष्टां कृत्वा धूमं पिवेश्वरः ॥ वक्त्रेणव वमेद्धमं नस्ता वक्त्रेण वा पिवन् । उरःकरहगते दोपे वक्त्रेण धूममापिवेत् ॥ ४ नासया तु विवेद्दोपे शिरोघाणित्तिसंश्रये ॥ ३॥

इदानीं घूमपानार्थे निलकामिभधाय धूमपान यथा विषय तदाइ श्रीपधिरिलादि। श्रापधिरिति गन्धेरकुछतगरिरित्पादिना वन्यामाँगरोपधैर्विक्ति क्रान्था धूम पिवेत् । विश्वकाकरणप्रकारमाह रारीगमोमित्यादि—रारी रारपुष्पस्य नालिका सा गर्भे अभ्य-न्तरे यस्या ताम, एतेन पिष्टेमेंपंज रारी प्रलिप्य विशे कार्य्येत्यर्थ. । विगर्मामिति ता विशेष्य तत रारीमाकृष्य विगर्मा कुर्यादित्यर्थ । श्रीमप्छणामिति ता विगर्मा विशेष्य तत रारीमाकृष्य विगर्मा कुर्यादित्यर्थ । श्रीमप्छणामिति ता विगर्मा विशेषे नेत्राधे समारोप्य श्रीसप्छण कृत्या धूम पिवेदित्यर्थ । एषा विशेष्य रहागुला यववनमध्यस्थला परिणाहेनागुष्ठमिमता कर्यन्या। उक्तञ्च—' विष्ट्वा

लिम्पेच्छरेपीका ता वर्ति यवसिन्नभाम् । स्यूलाछाग्रिष्ठिका कुर्व्यादष्टागुलसमा भिपक्" इति । घूम पीत्वा घूम कथ वमेदित्याद्द ववन्नेणित्यादि—नस्त इति नासिकया मार्विविभक्तिकस्तिसः । एव प्रकारेण नासिका निषिध्येते, वक्त्रेणिव धूम वमेत् न तु नामेयत्यर्थ । अत्र ऐतु धरकेणोको यथा—प्रतिलोम गतो छ।शु धूमें हिंस्यादि चत्तुपी " इति । वक्त्रधूमपान-नामाधूमपानयोविषयावाद्द उर इत्यदि ॥ ३ ॥

गन्धेरकुष्ठतगरैर्विचिःप्रायोगिके मता ।
स्तैहिके तु मध्चिछ्य स्तेहगुग्गुलुसर्जकैः ॥
शिरोविरेचनद्रव्यविचिवेरेचने मता।
कासम्रोरेव कासम्री वामनैर्वामनी मता ॥ ४॥

श्चीपधेवित्तंका कृत्वेत्युक्तम्, श्वतो वत्त्येर्थमौषधान्याद् गन्धेरित्यादि —गन्धेरिति श्चर्यावादिस्रगन्धिद्वये । श्रकुष्ठतगरिति कुष्ठतगरविति । कुष्ठतगरयोरितित्वित्त्यत्वेन मस्तु कुष्ठतगरवादि । उक्तश्च शालाक्ये — "नतकुष्ठ स्नावयतो धूमवर्षिप्रयोजिते । मस्तु कुष्ठ विशेषेष तस्मात् ते नैव योजयत् '' इति । मधू विष्ठ सिक्यक, क्षेष्ठोऽत्र धत वमा च, वसाष्ठतमधू विश्वेषेरिति वचनात् । शिरोविरेचैनई व्येरिति श्वताज्योति- धार्यादिभिश्चरकोकै । कार्सक्रीरिति वृद्दतीक्षय्टकारीक दुक्तानमद्दिमि सुश्रुतेकि । वामनीरिति स्नायु चर्मखुरश्वरादिमि सुश्रुतेकि ॥ ४॥

योज्या न पित्तरक्वार्तिथिरिक्कोद्दरमिह्यु ।
तिमिरोद्ध्वानिलाध्मानरोहिणीद्त्तवस्तिषु ॥
मत्स्यमद्यद्धिचीरचौद्धस्नहिवषाशिषु ।
शिरस्यमिहिते पाण्डरोगे जागरिते निशि ॥
रक्कपित्तान्ध्यवाधिर्य्यत्णमूच्छीमद्मोहकृत् ।
धूमोऽकालेऽतिपीतो वा तत्र शीतो विधिर्हितः।
पत्रदूमविधानन्तु लेशतः सम्प्रकाशितम् ॥ ४॥

इति धूमपानाधिकारः।

येषु धूमो न विधेयस्तानाह योज्या इत्यादि—वाग्भरस्य । दत्तवस्तिष्विति कृतिकहेषु । अकालातिपीतधूमयोदोंषमाह रक्तपित्तेत्यादि— अत्र पीतो वेति क्रेदः।

भूमपानिविधिश्चरकसुश्रनादावितिप्रपञ्चतयोकः , इह तु यन्थगौरवमयात् मस्त्रेपेथैवोकः इत्याहः एतदिस्यादि ॥ ५ ॥

इति धूमपानाधिकारविवृतिः।

## अथ कवलगण्ड्रषाधिकारः।

स्निग्घोण्णैः स्नैहिको वाते स्वादुशीतैः प्रसादनः। पित्ते कद्वम्ललवणै कत्तैः संशोधनः कफे॥ कपायस्वादुतिक्कैश्च कवलो रोपणो वर्णे॥१॥

कद्ध्वंगतदोपहरत्वसामान्यात् धूमाधिकारानन्तर कवलगण्ड्षाधिकार प्रारभ्यते । तत्र कवलश्चतुर्विधो भवति यदाह सुश्रुत — 'चतुर्द्धो कवल केही प्रमादी
शोधिरोपिणी' इति । श्रतस्तेषा स्वरूप विषयञ्चाह क्षिग्धोष्णिरित्यादि — सुश्रुतस्य ।
यद्यपि तन्त्रान्तरे वैरेचनस्तम्मनाभ्या सह पड्विधत्वमेवोक्त तथाप्यत्र सशोधने वैरेचनस्य, प्रमादने च स्तम्मनस्यान्तर्भावात्र विरोध । वाग्मटे तु कवलगण्डूपयोरवलम्ब्य चतुर्विधत्वमुक्त, यथा— ' चतु प्रकारी गण्डूप सिद्ध शमनशोधनी ।
रोपण्डस त्रयस्तत्र त्रिषु योज्याश्चलादिषु । श्रन्ती त्रस्या " इति ॥ १ ॥

सुखं सञ्चार्य्यते या तु सा मात्रा कवले हिता । श्रसञ्चार्य्या तु या मात्रा गएड्रोषे सा प्रकीर्त्तिता ॥ तावच धारणीयोऽयं यावदोषप्रवर्त्तनम् । पुनश्चान्योऽपि दातव्यस्तथा चौद्रघृतादिभिः ॥ २ ॥

मात्रोभेदन कवलगण्डूपयोभेदमाह सुखिमित्यादि—सुश्रुतस्य। अमी कवल. कियन्त काल सुखे धारणीय इत्याह तावदित्यादि—अन्न छोद्र कफे कफिपिते च। आदिरान्द्रेन दुग्धादिकम्। यदाह सुश्रुत —"एव खेहपय दीद्ररसमूत्राम्लमयुना। ﴿
कपायोष्णोदकाभ्याञ्च कवला दोपतो हिता '' इति ॥ २॥

व्याधरपचयस्तुधिर्वेशद्यं वक्त्रलाघवम् । इन्द्रियाणां प्रसादश्च कवले शुद्धिलत्त्रणम् ॥ ३ ॥ कवलस्य सम्यग्योगलच्चणमाष्ट् व्याधारित्यादि—सुशुतस्य । श्रयोगातियोग-लच्चणीमत्यतोऽनन्तर् यथा—"दीने जाड्यकफोत्केशावरम्झानमेव च । श्रतियो-गान्सुखे पाक. शोपतृष्णाविक्तमा " इति । ण्तच्च सामान्ययोगातियोगलच्च्य शोधनकवलस्यति भानुमतीप्रभृतयः । चक्रेण सम्यग्योगलच्च्यविप्य्ययेयेजेव श्रसम्य-ग्योगलच्य सुधीभिक्द्दनीयमित्यभिन्नायेय्य श्रयोगातियोगलच्य नोक्तमिति ॥ ३॥

> दाहतुष्णाव्रणान् हन्ति मधुगराष्ट्रवधारणम् । धान्याम्लमास्यवैरस्यमलदौर्गन्ध्यनाशनम् ॥ तदीपन्नवर्णं शीतं मुखशोपहरं परम् । श्राशु ज्ञाराम्बुगराङ्क्षो भिनत्ति श्रेष्मणश्चयम् । सुस्थे हितं वातहरं तैलगराङ्कपधारणम् ॥ ४॥ इति कवलगराङ्कषाधिकारः।

दाहित्यादि—नाग्भटस्य । श्राशु शीव्रम्, चाराम्बु यवचारजलम् । तैलिमिति तिलतैलम् ॥ ४ ॥

इति कवलगण्ड्याधिकार्विष्ति.।

# अथाइच्योतनाञ्जनतर्पण-पुटपाकाधिकारः

सर्वेषामिद्यागाणामादावाश्च्योतनं हितम्।
कक्षोदकगद्भवर्षास्त्रदाहरागनिवर्हणम्॥
उष्णं वाते कफे चोष्णं तच्छीतं रक्षपित्तयोः॥
निवातस्थस्य वामेन पाणिनोन्मील्य लोचनम्।
शक्षौ प्रलम्ययान्येन पिचुवर्त्यां कनीनिके।
दश द्वादश वा विन्दून् द्यंगुलादवसेचयेत्॥

ततः प्रमुज्य मृदुना चैलेन कफवातयोः। श्रन्येन कोष्णपानीयष्त्रतेन खेदयेन्मृदु ॥१॥

पूर्वाक्तसङ्गलेवाश्च्योतनाधिकारमाह सर्वेषामित्यादि । दोषभेदेन तदाह उच्यामित्यादि—वाग्मटस्य । उच्यामितीपदुष्यम् । निवातस्यस्यत्यादा—शुक्ताविति निर्मलपात्रोपलक्षयम् अन्येनेति दिचयपायिना । प्रलम्बयेति लम्बमानयेत्यर्थ । पिचुक्त्यां तूलक्त्यां । कनीनिके नासिकादेशमित्राहितचक्तुप कोर्य । ष्टर्गुलादिति नेत्रकर्नानिकस्योपिर । पिचुवित्तं खगुलमुत्तोल्य निवातप्रदेशस्यातुरस्य वैद्यो वामन पायिना लोचनमुन्यील्य सृद्ध यथा अवित तथा लोचन सेवद्येत् । कप्पवातये।रिति वातकप्रयो ॥ १ ॥

श्रत्युष्णतीवणं रुश्रागदङ्नाशायाचिसेचनम् । श्रतिशीतन्तु कुरुते निस्तोदस्तम्भवेदनाः ॥ कपायवर्त्मतां घर्ष कुच्छान्दुमेषणं वहु । विकारवृद्धिमत्यरुपं संरम्भमपरिस्रुतम् ॥ २॥

श्रात्युष्णतीक्याश्च्योतनस्य तथा श्रातिशीतस्य च दोषमाह श्रात्युष्णेत्यादि । इदानीं वहुमाश्रस्य तथाल्पमाश्रस्य तथा वस्तापृताक्षयोतनस्य दोषमाह कपायेत्यादि— वाग्मटस्य । कपायवर्षमतीमिति रक्षवर्त्मता रूचवर्त्मता वा । धर्ममिति करकरिकाम् । वहु इति वहुपरिमाणाक्षयोतन कपायवर्त्मतादिक कुरुत इति शेष । श्रत्याक्षयोतन विकारवृद्धि कुरुते । तथा अपरिस्नुतिमित्यपूत्तमाक्षयोतन सरम्म शोथ कुरुते । यधीप सुश्रुते आक्षयोतनवत् सेकोऽप्युक्त , यथा—'तर्पण पुटपाकक्ष सेकक्षाश्चयोतना-अनम् '' इति तथापि वाग्मटमते श्राक्षयोतन एव सेकस्यान्तर्मावादवरीथ ॥२॥

> श्रथाक्षनं गुद्धतनोर्नेत्रमात्रास्थिते मले । पक्कतिक्षेऽरुपशोथार्चिकरङ्क्ष्येचित्रुरुयलक्षिते ॥ मन्द्घर्षास्त्रुरागेऽदिण् प्रयोज्यं घनदृष्टिके ॥ ३॥

श्राश्चयोतनानन्तरमञ्जनमाइ अर्थेत्यादि—श्रथेत्यानन्तर्ये । शुद्धतने।रिति कायारीरोविरेकास्याम्। नेत्रमात्रास्थिते मल इति नेत्र पव स्थिते दीप इत्यर्थः। एतेन प्रदेशान्तरस्यदोपाइन्त्रत्वमञ्जनस्योक्तम्। नेत्रावस्थिते दोपप्राप्तमञ्जनमाचरेदिति। तथा पकालिक्ने
पक्कािचरोगलच्चये सत्येवाञ्चन प्रयोज्यम्। तदेव पक्कलच्चय कथ ज्ञातस्थितित्यत ग्राह
श्रन्परोधित्यादि—श्रन्पराष्ट्रस्य शोधादिभि प्रत्येकमन्त्रयं, एव मन्द्रशच्द्रस्यापि
पर्योदिभि । त्यिन्त इति शापिते। दूपिका नेत्रपिक्षोडका ॥ १ ॥

लेखनं रोपणं दिष्टिप्रसादनामिति त्रिधा । श्रक्षनं लेखनं तत्र फषायाम्लपट्टपणैः ॥ रोपणं तिक्रकैद्रैन्यैः खादुशीतैः प्रसादनम् ॥ ४॥

श्रवानस्य त्रिविध्यमाह लेखनिमत्यादि—वाग्भटस्य । श्रवानिमिति रेषि । एपा स्वरूपमाह लेखनम् । तत्रित्यादि—तत्रिति त्रिषु लेखनादिषु मध्ये, पद्ध लवख, पद्धिपप्तस्यम्लादिकपायादिभिद्र्वेथैदश्चन तह्नेखनिमत्यर्थः ॥ ४ ॥

दशाङ्गला तनुर्मध्ये शलाका मुकुलानना ॥ ४॥

श्रश्चनदानार्थे शलाकामाह दशाङ्गलेखादि—तस्यैव । मुकुलानना कुन्द-जातीमिक्कामुकुलमुखी ॥ ५ ॥

प्रशस्ता लेखने ताम्री रोपणे काललोहजा।

श्रहुलीय सुवर्णेत्था रूप्यजा च प्रसादने ॥

पिएडो रसिक्रिया चूर्णे त्रिधैवाञ्जनकरूपना।

गुरौ मध्ये लघौ दोषे तां क्रमेण प्रयोजयेत् ॥

श्रथानुन्मीलयन् दृष्टी श्रन्तः सञ्चारयेच्छनैः।

श्रञ्जिते वर्त्मनी किञ्जिचालयेचैवमञ्जनम् ॥

श्रपेतौषधसम्बन्धं निर्नृतं नयनं यदा।

व्याधिदोषर्त्तुयोग्याभिरङ्गिः प्रचालयेच्या॥

दिच्चिणाङ्गुष्ठकेनाचि ततो वामं सवाससा।

ऊद्ध्वें वर्त्मनि संगृह्य शोध्यं वामेन चेतरत्॥ ६॥

श्रशनभेदेन शलाकामेदमाइ प्रशस्तेत्यादि-काललोइ: पायट्यादि:।प्रसादने तु श्रह्गल्येव शरीरशलाका, तथा सुवर्णजा रूप्यजा च शलाका प्रशस्तेत्यर्थ ॥६॥

निशि खप्तेन मध्याहे पानाकोष्णगभित्तिभिः। त्रानिरोगाय दोषाः स्युर्वर्द्धितोत्पीडितद्रुताः॥

प्रातः सायञ्च तच्छान्त्यै व्यभ्रेऽकेंऽतोऽञ्जयेत् सदा ॥७॥ निशीलादि—ननु विरेकदुर्वल चन्नुरादित्य प्राप्य सीदतीति तत् कथ सर्वदेत्युक्तम् १ नैव, यतः विरेकदुर्वल चन्नुरादित्य प्राप्य सीदतीत्युच्यते सुम्याभिप्रायादिद वाक्य, किंवा अत्युद्धिककफापेचया दिवाअन बोट्यम्, जक हि—"आर्युद्धिकवलासे तु लेखनीयेऽथवा गदे। काममह्न्यपि नात्युच्णे तीच्णाअन प्रयोजयेव<sup>18</sup> इति लेखनीये गद इति लेखनीयशुक्तामीदौ । नतु विरेकदुर्वल चत्तुरादित्य प्राप्य सीदतीति वचनमनुपपन्न यदो नेत्रस्य तेजमत्त्रादादित्य प्राप्य तेजीवृद्धिते युक्त्या तेजस सामान्यवृद्धिकारणमिति मिद्धान्त । नैव कालस्थी- ध्यादश्चनस्य च तीइणत्वादतियोगेन दृष्ट्युप्पात, स्यादिति ॥ ७॥

कराङ्क्जाङ्येऽञ्जन तीच्एं धूमं वा योजयेत् पुनः। तीच्णाञ्जनाभितसे तु तूर्णं प्रत्यञ्जनं हिमम्॥ ८॥

श्रक्षने दत्तेऽपि यदि कण्डूजाङ्यादिक तिष्ठति तदा पुनरिप तीच्यमक्षन धूम वा योजयेदित्यत श्राह कण्डूजाङ्य इत्यादि—वाग्मटस्य । यदि पुनर्ततिच्याः जनविधानेन दाह स्याद् तदा दृष्टिपसादमक्षन कार्य्यमित्याह तीच्याक्षेनत्यादि—श्रस्यव श्रमितप्त इति सदोह प्रत्यक्षनिर्मित तीच्याक्षनप्रत्यनीकमक्षन मृदुशीतल-क्षिण्यमित्यर्थ ॥ द ॥

नाञ्जयेद्भीतविमतिंगिरक्षाशितवेगिते । कुद्धज्वरिततान्ताचाशिरोरुक्शोषजागरे ॥ श्रद्धेप्टर्के शिरःस्नाते पीतयोधूममद्ययोः । श्रजीर्णेऽप्यर्कसन्तप्ते दिवास्त्रेप्त पिपासिते ॥ ६॥

श्रक्षन येपु न निषय तानाइ नाक्षयेदित्यादि—वाग्भटस्य । श्रशिते सबोमुक्ते । नेगित दीत दीपनेगोदये । सुश्रुतेऽप्युक्त—''दोपनेगोदयेऽप्युक्त कुर्यात् तास्तानुपद्रवान्" इति । ज्निरिते नवज्निरिते । तान्ताच द्वित स्हममास्वरादिरूप-वर्णदर्शनात् तान्ते श्रीचर्णा यस्य तिसान् । श्रदृष्टेऽर्क इत्यनुदिते जलादिच्छन्न इत्याह, सुश्रुतेऽप्येनमेनोक्तम् ॥ ६ ॥

निर्वाते तर्पणं योज्यं श्रद्धयोर्मूईकाययो । काले साधारणे पातः सायं वोत्तानशायिनः॥ यवमापमयीं पालीं नेत्रकोणाद्वद्धिः समाम्। द्यक्तुलोचां दढां कत्वा यथासं सिद्धमावपेत्॥ सर्पिनिमीलते नेत्रे तप्ताम्बुप्रविलायितम्। नक्षान्ध्यवातितिमरकुच्छ्ररोघादिके वसाम्॥१०॥ एकाश्रयत्वादिसिन्निधिकारे तर्पणमाह निवात इत्यादि—वाग्मटस्य । पालीमित्यालवालम् । स्रप्तुलोच्छ्नयां दृढामिति स्रप्तुलोच्छ्नया दृढा निविद्या यथा स्नेहो न स्नवतीत्यर्थः । यथास्त्र मिद्धं मींपीरिति तत्तहोपप्रत्यनीकद्रव्यपक्षमित्यर्थः । पाप्तस्य प्रत तप्तज्ञलस्योनिर स्वापित्वा प्रविलायित द्रवीकृतमित्यर्थः । स्नावेपत् पूर्येतः । व्याधिविशेषे स्नेहविशेषमाह नकान्ध्येत्यादि—न्नाग्मटस्य । स्ननापि यथास्व मिद्धमित्यादि योज्यमित्यरुणः ॥१०॥

श्रापदमात्रादथोन्मेषं शनकैस्तस्य कुवैतः।
मात्रां विगण्येचत्र वर्त्मसन्धिसितासिते॥
दृष्टौ च क्रमशो व्याधौ शतं त्रीणि च पश्च च।
शतानि सप्त चाष्टौ च दश मन्थेऽनिले दश।
पित्ते पर् सुस्थवृत्ते च बलासे पश्च धारेयत्।
कृत्वापाद्दे ततो द्वारं सेहं पात्र निगालयेत्।
पिवेच धूमं नेद्तेत व्योम रूपश्च मास्वरम्॥
इत्थं प्रतिदिनं चाते पित्ते त्वेकान्तरं कफे।
सुस्थे च द्यन्तरं द्यादातृत्तेरिति योजयेत्॥
प्रकाशचमता स्वास्थ्यं विशदं लघु लोचनम्।
तृते विपर्थयोऽतृते तृतेऽतिश्रेष्मजा दजः॥११॥

पूरणिविधिमाह श्रापदमाग्रपर्यंन्त पूरियेदित्यर्थः । अथ स्नेहेन चत्तः पूरियत्वा कियन्त काल न्याप्य सस्नेए स्थातन्यिमिति जिज्ञासायामाह श्रथेत्यादि—श्रथ एता- वापानन्तरं शनकैरुनेप कुर्वतस्तरय श्रावर्तस्य मात्रा विगणयेत् । मात्रा च लव्य- छरोचारणम् । तत्र वर्त्रस्थे न्याधौ शतमात्रा धारयेत् लव्यच्यरतोचारणकालमम- काल न्याप्य स्नेह धारयेत् । सन्धिगते तु न्याधौ श्रीणि शतानि । शुक्तमण्डलगते पद्ध शतानि । कृष्णमण्डलगते तु मप्त शतानि । दृष्टिमण्डले चाष्टौ । मन्धे स्त्यधिमन्थे दश, इत्यादिक्रमेण धारयेत् । धारणानन्तरक्र यत् कार्यं तदाह कृत्वे- त्यादि । द्वारिमत्यालवाले छिद्र कृत्वा । न्योभेत्याकाश नेकत । मास्तर रूपमग्न्यादि । श्रयक्र क्रमो यास्तन् दोषे यानिहन कार्यंश्तदाह इत्थमित्यादि—अयक्र दिनक्रम चत्तुस्त्विपर्यंन्त योज्य श्रात्वेदित्यादि । विपर्यंय इत्यादि—विपर्यंयः प्रकाश- चमतादिवैपरित्यम् । श्रतित्रेते तु श्रेष्मजा रुजः कण्डूपैन्छिल्यादयः ॥११॥

षुटपाकं प्रयुक्षीत पूर्वोक्नेष्वेच पद्मखु ! स चाते स्नेहनः श्लेष्मसहिते लेखनो मतः । हम्दौर्वल्येऽनिले पित्ते रक्ने स्वस्थे प्रसादनः ॥१२॥

पुटपाकमाह पुटपाकामित्यादि—वाग्मटस्य। पूर्वोके व्वित तर्पणोक्षेयु रोगे व्वित्यर्थः। स्नेहादिमेदेन त्रिविधस्य पुटपाकस्य पृथक् पृथक् विषयमाह स वात इत्यादि—स इति पुटपाक स्नेहनो वात हित.। श्रेष्मसिहते तु वाते लेपान पुटपाको हित इति। इन्दै।-वंन्यादी प्रसादन पुटपाको हित इत्यर्थ । इदछ पुटपाकत्रय वैद्वंन्यैविधेय तद्वाग्मटेन्नोक्षम्, इह तु अन्थिनिस्तारभयाच्चक्रेण न लिखितम्, किन्तुपयुक्तमिति मया लिख्यते यथा—'भूयरा प्रमहानूपमेदोमज्जवमामिषे । स्नेहन पयसा पिष्टैजीवनीयैश्च कल्पयेत् । सृगपचियक्रनमासमुकायस्तान्रसैन्थवे । स्रोतोजराङ्ककदलेखेखनो मस्तु-किल्पते । मृगपचियक्रनमज्जवसान्त्रहृदयामिषं । मधुरैः सप्दते स्तन्यद्वार्पिष्टैः प्रमादन इति ॥ १ रा

विल्वमात्रं पृथक् पिएडं मांसभेषजकत्कयोः।
उच्तूकवटाम्भोजपत्रैः स्निग्धादिषु क्रमात्॥
वेष्टियत्वा मृदा लिप्तं घवधन्वनगोमयैः।
पचेत् प्रदीप्तरग्याभं पक्तं निष्पीड्य तद्रसम्॥
नेत्रे तर्पणवद्युञ्ज्याच्छतं हे त्रीणि धारयेत्।
लेखनस्नेहनान्त्येषु कोष्णी पूर्वे हिमोऽपरः॥
धूमपोऽन्ते तयोरेव योगास्तत्र च तृतिवत्॥१३॥

पुटपाकत्रयस्य कल्पनामाइ विल्वेत्यादि—मासयुक्त भेपजञ्चानन्तरोक्षजीवनीवादिक तथोः कल्करूपयो पिग्छ । १थिग्वल्वमोत्रमिति पलमात्रम् । पर्ग्छादिपत्रै क्रमेण रिनम्धादिषु रेनेहादिपुटपाकेषु वेष्टियत्वा अनन्तर सदा लिस
प्रदीक्षेप्रथन्वनगोमये प्रवेद्द । क्रमादिति ध्रथम्बनगोमयेरित्यत्रापि योजयन्ति
किचिद्द । तेन रेनेहनपुटपाके परग्रहपत्रेण वेष्टनम्, ध्रथकाष्ठाद्वारेण च
पाक । लेखने वटपत्रेण वेष्टनम्, धन्वनकाष्ठाद्वारेण च पाकः । प्रसादने तु
अन्मोलपत्रैवेष्टनम्, गोमयाग्रिना च पाक इति । अग्न्याभित्यश्चिवर्णम्,
पत्तच्च सन्यक्षाक्षश्चार्थमुक्तम् । तर्पण्यद् युक्ज्यादित्यनेन निर्वाते तर्पणोकःविधिमत्राप्यितिदिशति । पत्तद्वमञ्च कियन्त काल नेत्रे धारयेदित्याइ शतं द्वे

त्रीणि धारयेत् लेपानस्नेहनान्त्योष्त्रति । एतच यथाक्रम योज्यस्, तेन लेखनपुटपाके रातमिति मानाशत धारयेत् । छह्ने तु हे मानाशते, अन्त्य इति प्रमादने त्रीणि मात्राशतानि धारयेदित्यर्थः । पूर्वी छह्लेपानी कोष्णी, अपर इति प्रसादनो हिमः रातिलो योज्यः । धूमपोऽन्ते तयोर्वेति पूर्वयो छह्नेलखनयेरिव अन्त धूमप स्यात्, न तु प्रसादनान्त इत्येवशब्दार्थ । योगास्तत्र च तृप्तिवदिति तर्पणवदित्यर्थः ॥१३॥

तर्पणं पुटपाकञ्च नस्थानहें न योजयेत्। त्यावन्त्यहानि युक्षीत द्विगुणा हितभाग्मवेत्॥ १४॥ इत्याश्च्योतनाञ्चनतर्पणपुटपाकाधिकारः।

तर्पणपुरपाकौ येषा न कार्यो तानाह तर्पणिमत्यादि—नस्यानहं इति निषि-द्धनस्यपुरुषे । इद्गानी तर्पणपुरपाकिषधानानन्तर यावन्ति दिनानि हितसेवन कर्त्तेच्य ।तदाह यावन्तीत्यादि—यावन्ति दिनानि च्याप्य तर्पणपुरपाकिषिध कृत तद्दि-गुणानि दिनानि हितसेवी भूत्वा तिष्ठेदित्यर्थ ॥ १४॥

### श्याश्च्योतनाक्षनतर्पणपुटपाकाधिकारविष्ठतिः। अथ शिराज्यधाधिकारः।

श्रथ स्निग्धतनुः स्निग्धरसाम्त्रप्रतिभोजितः ।

प्रत्यादित्यमुखं स्विन्नो जानूचासनसस्यितः ॥

मृदुपद्वात्तेकशान्तो जानुस्थिपतकूर्परः ।

श्रमुष्ठगर्भमुष्टिभ्यां मन्ये गाढं निर्पाडयेत् ॥

दन्तसम्पीडनोत्कासगरडाध्मानानि चाचरेत् ।

पृष्ठतो,यन्त्रयेचैनं वस्त्रमावष्टयेन्नरः ॥

कन्धरायां परिचिष्य न्यस्यान्तर्वामतर्जनीम् ।

पवमुत्थाप्य विधिना शिरां विध्येच्छिरोगताम् ॥ १॥

पूर्वन्तु नेनरोगे स्त्रिग्धरय च्येन कीम्सेन शिरान्यधैः शम नयेदित्युक्तम्, अत आक्षयोतनादिवत् शिरान्यधस्यापि नेत्ररोगहरत्वादनन्तर शिरान्यधिविधर्वाच्य । तत्र प्राधान्यात् प्रथम शिरोगतिशराच्यथे कर्त्तन्ये शिरोत्थापनप्रकारमाह अयेत्यादि— वाग्मटस्य । आदित्याभिमुख लक्ष्यीकृत्य, जानूकासनसिश्वत इति उपविष्ट इत्यर्थ ।
मदुना पट्टेनाचो गृष्टीतो वढ इति यावत् केशान्तो यस्य म तथा । जानुनि स्थापित
कृष्र कफोिखिद्वय येन स तथा । मुिष्टम्या मन्ये शीवाधमन्यौ प्रपीडयेत् तथा दन्तमन्पीडनादीनामन्यतममाचरेत्, आतं इति रोषः । दन्तैर्देन्तानां पंडन दन्तपंडनम्
उत्कास काम पव, गण्डाध्मान वायुना मुखपूरण, सुश्रेतेऽप्युक्त—कर्मपुरुषश्च
वायुना मुख पूरयेत् '' इति तथा नर परिचारकजन. पृष्ठत इति पृष्ठदेशे स्थित्वा
पनमातुर यन्त्रयेत् । किं कुर्वन् यन्त्रयेदित्याह्—वस्न कन्धराया शीवाया परिचिन्य
तस्य मध्ये स्वकीयवामतर्जनीं न्यस्यारोप्य वस्नमावेष्टयन् पंडियेदिति ॥ १ ॥

विध्येद्धस्तशिरां वाहावनाकुञ्चितकूपेरे । वद्ध्वा सुस्नोपविष्टस्य मुष्टिमंगुष्टगर्भिण्म् । ऊद्ध्वे वेध्यप्रदेशाच पहिकां चतुरंगुले ॥ २ ॥

विध्वेदित्यादि—वाग्मटस्य । श्रनाकुञ्चितः कूपेरः कफोणियस्य । कि कुला विध्येदित्याह्—मुखोपविष्टस्यातुरस्य श्रद्गुष्ठगर्भिण मुष्टि वद्ध्वा वन्ध्यित्वा । पुन कि कृत्वा १ वेध्यप्रदेशादुपरि चतुरङ्गुले यन्त्रपट्टिका शिरायन्त्रणार्थं पट्टिकां वस्तादिपट्टी वद्ध्वा ॥ २ ॥

पादे तु सुस्थिते उघस्तात् जानुसन्धेर्निपीडिते ।
गाढं कराभ्यामागुल्फं चरेण तस्य चोपरि ॥
द्वितीये कुञ्चिते किञ्चिदारूढे हस्तवचतः ।
वद्ध्या विध्येचिञ्चरामित्थमनुक्षेप्विप कल्पयेत् ॥
तेषु तेषु प्रदेशेषु तत्तद्यन्त्रमुपायित् ।
ततो वीद्दिमुखं व्यध्यप्रदेशे न्यस्य पीडयेत् ॥
श्रंगुष्ठतर्जनीभ्यान्तु तलप्रच्छादितं भिषक् ॥ ३॥

पादगतशिराज्यधनकारमाह पादे त्वित्यादि—वाग्मटस्य । सुस्थित इत्येनः विषमपादन्यास निरस्यति । किंविशिष्टे पादे ? जानुसन्धरधस्तात् वैद्यस्य कराज्य मागुल्फ गुल्फपर्यन्त गाढ निपीडित इत्यर्थ । दितीये तु चरेण तस्य सुस्थिर पादस्योपरि आरूढे सति । किंविशिष्टे द्वितीये चरेणे ?—किंक्षित् कुक्किते । इस्तव ततो बद्ध्वेति—यथा इस्ते यन्त्रादिक वद्ध्वा ।शरा विध्येत् तथात्रापीत्यर्थः पवसुकरीत्या अनुक्तप्रदेशविषयेऽपि यन्त्र स्वयुद्ध्या कल्पयेदित्याह इत्यिमत्यिद

मीहिमुखादिशक्तेण यथा शिरान्यथे। विधेयस्तदाह तत इत्यादि । न्यस्यारोप्य प्रगुष्ठतर्जनीभ्या पांडयेदित्यन्वयः । करतत्तप्रच्छादितिमिति पांडनिक्रयाविशेषणम्, यतेन रक्नधारा नोद्ध्वंमुत्तिष्ठति इत्यमिसन्धिः ॥ ३ ॥

> वामहस्तेन विन्यस्य कुठारीमितरेण तु ॥ ताडयेन्मध्यमाहुल्याहुष्ठविष्टन्धमुक्तया ॥ ४ ॥

कुठारिकया वेधनप्रकारमाह वामहस्तेनेत्यादि — इतरेख दिख्यहस्तेन ताढयेदित्याह मध्यमांगुल्येति । अगुष्ठविष्टन्धमुक्तयेति आदी षृद्धागुष्ठेन विष्टभ्य मुक्तयेत्यर्थ: ॥ ४ ॥

> मांसले निक्तिपेदेशे बीह्यास्यं वीहिमात्रकम्। यवार्द्धमस्थ्नामुपरि शिरां विध्यन् क्वठारिकाम्॥४॥

इदानीमुक्तशस्त्रदय यसिन् प्रदेशे योज्य तदाह मासल इत्यादि—मासल प्रदेशे शिरा विध्येदिति योज्यम् । बीह्यास्यामिति वीहिमुख शस्त्रम् एकवीहिमात्रक निक्षिपेत् प्रवेशयेत् । अस्थनामुपरि शिरा विध्यन् कुठारिका यवार्द्धमात्रां निक्षिपेदित्यर्थ:॥ ५॥

श्रसम्यगंत्रे स्रवित विल्वन्योषनिशानतैः।
सागारधूमलवणतैलैदिह्यान्छिरामुखम्॥
सम्यक् प्रवृत्ते कोष्णेन नैलेन लवणेन च॥
श्रश्रद्धौ विलनोऽप्यसं न प्रस्थात् स्नावयेत् परम्॥
श्रितस्रुतौ हि मृत्युः स्याद्दारुणा वानिलामयाः॥
तत्राभ्यक्तरसर्काररक्षपानानि भेषजम्॥६॥
स्रुते रक्ते शनैर्यन्त्रमपनीय हिमाम्बुना।
प्रसाल्य तैलपोताक्तं बन्धनीयं शिरामुखम्॥
श्रश्रद्धं स्नावयेद्ध्यः सायमह्चपरेऽपि वा।
रक्ते त्वतिष्ठति चिषं स्तम्भनीमाचरेत् कियाम्॥
लोध्रियकुपत्तद्भमाषयण्ट्याह्नगैरिकैः।
मृत्कपालाञ्जनचौममसीचीरित्वगङ्कुरैः॥
विचूर्णयेद् व्रणमुखं पद्मकादि हिमं पिवेत्।

#### नामेव वा शिरा विध्येद्वयधात्तसादनन्तरम्॥ शिरामुख वा त्वरितं दहेत्तप्तशलाकया॥ ७॥

अयोगे चिकित्सामां अमस्यिगत्यादि — अशुद्धाविति अमस्यक् शुद्धा । प्रसादिति — प्रस्थोऽत्र सार्द्धत्रयोदशपलम् । परिमायृद्ध्वम् । अत्रव हतुमाह अतिस्रुतावित्यादि — नत्रेति रक्तादिस्रुती । रसः मास्ररंसः । प्रसात्येति शिरामुद्ध- मित्यन्य । तैलप्रोतकाक्षमिति तलाष्ट्रुतवस्त्रभित्यादे । एक्तम्मनीमिति वक्त्यमाणाम् । तामव रक्त्यां क्रियामाह लोभेत्यादि — पत्तद्व रक्तचन्द्रम् ; अञ्चन रक्षाञ्जनम् , चौमममी दन्धवन्त्रभस्म, चौरिणो वटो इम्बरादय , तेपा त्वक् अक्तरक्ष । पद्मकादि पद्मकादिगणम् । हिममिति शीतकपाय पिवेदिति । योभिति पूर्वविद्धाम् । व्यथाद्य तस्यादनन्तरमिति 'पूर्वव्यथसमीपोद्ध्वमागे । शिरासुक्षमिति विद्वशिरावणमु- गम् ॥ ६॥ ७॥

संशेषमध्यसुग्धार्थ्यं न चातिस्तृतिमाचरेत्। हरेच्छुद्गादिना शपं प्रसादमथवा नयेत्॥ मर्भहीने यथासन्नप्रदेशे व्यथयेच्छिराम्।॥ ८॥

दुष्टमि रक्त न निःशेष सावयेदित्याह मॅशेषमपीत्यादि—मशेषमिति दुष्ट-शोणितशेषम् । प्रसादमथवा नयेदिति प्रसादनलेपनादिना । शिरा हि दुष्टा एव वेध्या , उक्त हि—"श्रदुष्टा न वेध्या." इति । यत्र प्रवेशे तु वेध्यशिरा न दृश्येत् कथ तत्र शिरान्यथ कार्य्ये इत्याह मर्महीन इत्यादि—वाग्मटस्य । अत्र न्यध्यशिराणामदर्शन इति शेष । अत्यवैतसात् पूर्व वाग्मटे यथोक्तानामदर्शन इत्युक्तम् । यथासत्रदेश इति यत्र देशे न्यध्यशिरा न दृश्येते तत्र मर्मापदेशे वा अन्या शिरा या दृश्येते ता एव वेभ्या इत्यर्थ । मर्महीन इति मर्मविंतेते ॥ ॥ ॥

> न त्नपोडशातीतसप्तत्यव्दस्ततास्त्रांम् । श्रस्निग्धासेदितात्यर्थसेदितानिलरोगिणाम् ॥ गर्भिणीस्तिकाजीणिपत्तास्रश्वांसकासिनाम् । स्नेद्दपीते प्रयुक्तेषु तथा पश्चसु कर्मसु ॥ नायन्त्रितां शिरां विध्येष्ठ तिर्य्येङ्नाप्यसुत्थिताम् । नातिशीतोष्णवाताभ्रेष्वन्यत्रत्यायकाद्भदात् ॥ ६॥ वेषां शिरान्ययो, न कार्यसानाह न वित्यादि—नाम्मदस्य । श्रन्यत्रात्य-

विकाद् गदादिति-भात्यिके तु व्याघी एष्विष कालेषु शिरा व्यध्वैदेत्यर्थः ॥६॥ नात्युष्णशीतं लघु दीपनीयं एक्तेऽपनीते हितमभाषानम् । तदा शरीरं ह्यानवस्थितास्वविद्विशेषेण च रच्चणीयः । नरो हिताहारविहारसेवी मासं-भवेदावललामतो वा ॥१०॥

रक्षमानानतर यद्विषेय तदाए नाखुष्णेत्यादि—श्रनविश्वतास्रिति प्रचुर-रक्षम् ॥ १० ॥ प्रसन्त्रवर्णेन्द्रियमिन्द्रियार्थानिच्छन्तम्व्याहतशक्षिवेगम् । सुखान्वितं पुष्टिवलोपपन्नं विशुद्धरक्षं पुरुषं वदन्ति ॥११॥ इति शिराव्यधाधिकारः ।

इदानीं शोखितादरीनेऽपि विशुद्धरक्तशानार्थं लच्चमाह प्रसन्नेत्यादि—वेग. पुरीपादीनाम् ॥११॥

इति शिराच्यधाधिकारविवृति ।

# अथ सुस्थाधिकारः।

#### दिनाचारविधिः

व्राह्में मुहुत्ते उत्तिष्ठेत् सुस्था रह्मार्थमायुषः ।
शरीरचिन्तां निर्वर्त्यं कृतशौचिविधस्ततः ॥
प्रात्मेंकृत्वा च मृद्धग्रं कषायकद्वतिक्षकम् ।
भद्मेयद्दन्तपवनं दन्तमांसान्यबाधयन् ॥
नाद्यादजीर्थवमथुश्वासकासज्वरार्दितः ।
तृष्णास्यपाकहृद्गेत्रशिरःकणीमयी च तत् ॥
सौवीरमञ्जनं नित्यं हितमन्णोः प्रयोजयेत् ।
पञ्चरात्रेऽप्टरात्रे वा स्नावणार्थं रसाञ्जनम् ।
ततो नावनगरहूषधूमताम्बूलभाग्मवेत् ॥१॥
ध्दानीमात्तरहितिनिकित्सामिभाय स्थार्थन्तमाह मास स्थादिनमासो मुहुत्तो

गन्ने. पश्चिमयामस्य जेषनाविकाद्रयम् । शरीरिचन्ता मूत्रपुरीषोत्मर्गादिकरूपाम् । नत इति शीचविधेरनन्तर दन्तपवन मच्चेदिति । दन्ताः पूयन्ते अनेनेति दन्तपवन दन्तकाष्ठम् मुक्त्वा चिति मोजनानन्तरमपीत्यर्थ । दन्तकाष्ठ यैने विधेय तदाह् नाचादिति—दन्तपवनमित्यन्वयः । सुवीरा नाम नदी तद्भवमञ्जन सौवीराञ्जनम् । तष्ट्रमण् यथा—"वल्मीकशिखराकार महे नीलोत्पलखुति । सौवीराञ्जनमिञ्चन्ति मासुर्वेदार्थचिन्तकाः" इति । नित्य प्रत्यहम् । अत्र पञ्चरात्राष्ट्ररात्रप्रहण्णमदूरान्तरकाले नियमदशानार्थम्, तेन दोषकालमेपस्य अर्वाद्याच्ये कद्ध्वंच्च कर्त्तव्यं स्नावणाञ्जन-मिति । रसाञ्जनमिति दार्वोकाथसमुद्भव इत्यरुणः ॥१॥

ताम्बूलं चतिपत्तास्रह्णतेक्किपितचनुपाम् । विषमुञ्जीमदात्तीनामपथ्यञ्चापि शोपिणाम् ॥ श्रभ्यङ्गमाचरेन्नित्यं स जराश्रमवातद्दा । शिरःश्रवणपादेषु तं विशेषेण शीलयेत् ॥ वाह्याभ्यङ्ग कफश्रस्तकृतसंशुद्ध्यजीर्णिभि ॥२॥ निषिद्वताम्बूलानाइ ताम्बूलमित्यादि—तमित्यम्बङ्ग ॥२॥ शरीरचेष्टा या चेष्टा स्थैर्य्यार्था वलवर्द्धनी । देद्दव्यायामसंख्याता मात्रया तां समाचरेत् ॥३॥

रारीरत्यादी—देहेत्यनेन मनोव्यायाम मनिश्चन्तनादिक निरस्यति । सख्याता इति मिहता या च चेष्टामिमता, एतेन भारवहनाद्या अनिष्टादिकार्य्यवशास् क्रियमाणा चेष्टा निरस्यति । मात्रया ता समाचरेदिति मात्रा चार्द्वशिकः । यदाह्य वाग्मदः—अर्दशक्त्या निपेन्यरत्तु विलिमि. क्षिग्यमोजिमि. १ इति । अर्दशक्तिलक्षण यथा—"कक्षे ललाटे श्रीवायां स्वन्धे नाताङ्गसन्धिषु । स्वेद मक्षायने यत्र वलार्द्व त विनिदिशेष्ट् ॥३॥

वातिषत्तामयी वालो बुद्धोऽजीर्णी च तां त्यजेत्। उद्दर्भनं तथा कार्य्ये ततः स्नानं समाचरेत्॥ उप्णाम्बुनाघःकायस्य परिपेको वलावद्यः। तेनव त्त्रमाङ्गस्य वलद्यत् केशचचुपोः॥४॥

निषिदस्यायामानाइ वातेत्यादि---नेनेनेति उप्णाम्बुना उत्तमाङ्गस्य मस्तकस्य सेक केराचचुणोर्वलं इरनीनि बलइत् ॥४॥

स्नानमर्दितनेत्रास्यकर्णरोगातिसारिषु ।

श्राध्मानपीनसाजीर्णभुक्तवत्यु च गर्हितम् ॥४॥
नींचरोमनखरमश्रुनिमेलांग्रिमलायनः ।
स्नानशीलः ससुरिभः सुवेशो निमेलाम्बर ॥
धारयेत् सततं रतं सिद्धमन्त्रमहौपधीः ।
सातपत्रपदत्राणो विचरेद्युगमात्रहक् ।
निशि चात्ययिके कार्य्ये दएडी मौली सहायवान् ॥
जीर्णे हितं मितञ्चाद्यात्र वेगानीरयद्वलात् ।
न वेगितोऽन्यकार्य्यः स्यात्राजित्वा साध्यमामयम् ॥
दश्धा पापकर्माणि कायवाद्यानसस्यजेत् ॥
काले हितं मितं त्र्यादिवसंवादि पेशलम् ।
श्रात्मवत् सततं पश्येदिप कीटिपपीलिकम् ॥
श्रात्मनः प्रतिकृत्वानि परेषां न समाचरेत् ।
नक्कान्दिनानि मे यान्ति कथम्भूतस्य सम्प्रति ।
दुःखभाङ् न भवत्येवं नित्यं सिन्नाहितस्मृतिः ॥ ६॥

#### इति दिनाचाराविधिः॥

निषद्धलानानाइ लानमित्यादि—अहुँ। पादी, मलायनानि गुदोपस्थानि,तानि निर्मलानि यस्य। निर्मलाम्बर इत्यत्र अनुत्वयोज्ज्वल इति वाग्मटे पट्यते; अनुत्वयोऽनुद्धत इत्यर्थः। युग इस्तचतु प्रयम्। आत्ययि इत्यवश्यकर्तन्थे। वेगानिति मृत्रपुरीपवेगान्, ईरयेदित्युदीरयेत्। वेगित इति सञ्चातमृत्रपुरीपादिवेगः। दशधा पापकर्मायीति।
उक्तद्य-"अदत्तानामुपादान हिंसा चेवाविधानतः। परदारोपसेवा च कायिक त्रिविध
स्मृतम्। पारुष्यमनृतश्चेव पैशुन्यद्यापि सर्वशा। असम्बन्धप्रलापश्च वाष्यय स्याद्यतुष्टयम्। परद्रव्येष्वभिध्यान मनसानिष्टचिन्तनम्। वितथाभिनिवेशश्च मानस त्रिविध
स्मृतम् " इति। अविसवादीति न पूर्वापरिवरुद्धम्, पेशल मधुरम्, काल इति यथा
चितसमये। आत्मन इत्यादी—परेपा न समाचरेदिति परेषा प्रतिकृत्वानि अनिएति न समाचरेत्। कृती न आचरेदिस्याद् आत्मन इत्यादि—आत्मनः प्रायाभृतामेव आत्मसम्बन्धादित्यर्थः। किंवा आत्मनो यानि प्रतिकृत्वानि अनिष्टानि

तानि परेपामिष नाचरेदिति । नक्तमित्यादि — कथम्भूतस्य कीट्टशस्य मम पाप पुष्य कुर्वतो ना दय परिहरतो ना मम्प्रीत नक्तं दिनानि मान्ति एव नित्य सिन्न-हितस्त्वतिर्य पुरुषो भवति स दु खभाक् न स्याद, यम्मादेन सर्वदा स्मान् पुरुषो दु खहेत्तत्या दुण्कृत त्यनति, सुखहेत्तत्या च सुक्तनमन्नि किति इत्यर्थ ॥५–६॥ इति दिनाचारनिधि-निवृति ।

ऋतुचय्यी

मासैर्डिसंख्येमीघाद्ये क्रमात् पड्टतदः स्मृताः। शिशिरश्च वसन्तश्च श्रीष्मवर्पाश्चरिद्धमाः॥ वित्तन शीतसंरोधाद्धमन्ते प्रवलोऽनलः। सेवेतातो हिमे स्निग्धस्वाद्धम्ललवणान् रसान्॥ गोधूमिष्टमापेनुन्तीरोत्थविकृतीः सुरा। नवमन्नं वसां तैलं शौचकार्थ्ये सुस्नोदकम्॥

युक्त्यार्केिकरणान् स्वेदं पाद्त्राण्ञ सर्वेदा ॥ ७ ॥
पारिशेष्यादृतुचर्यारूप सुस्थिहतमाइ मामेरित्यादि—पट्टतव इति शिशिरवसन्नमीष्म-वर्षा-शरेद्धमन्ता इत्यंथ । यथिप शिशिरादित्रसृतुत्रयमुत्तरायण्लेन प्रशसत्तावमे चे।दिष्ट तथापि वलवृद्धिप्रकर्पत्वेन प्राशस्त्यात् प्रथम हेमन्तिविधिमाह्
बिलन इत्यादि—विलन इत्यनेन प्राणिवलस्याभिवलहेतुत्व दर्भयिति । उक्त हि
पालकाष्ये—'श्रव्याहतादिभिप्रायात् प्रीत, प्रीतेर्वल बलात् । श्रियरग्रेश्च धातूना
नाग्य नाशस्त्रनो रुजाम् ' इति । किंवा विलन इत्युपचयवतः । शीतसरोधादिति
कुन्मकारपयनपद्भलेपन्यायात् शीतेन विहर्णनंग्च्छ्च्छरीरोष्मणो रोधात् । रसानिति
श्रीदकानूपमामरसान् । बीदृशान् ? स्वादम्ललवण्यद्रव्यसस्कारात् स्वाद्यम्लवणान् ।
उक्त हि चरके—" तस्मात् तुपारममये स्वाद्यम्लवणान् रसान् । श्रीदकानूपमामाना मध्यानामुपयोजयेत् " इति । मापस्थाने मासेति पाठा वाग्भटपुस्तके
नास्ति, टीकायाव्य न व्याख्यात इति ॥ ७॥

प्रावारित्यादि—वाग्मटस्य । प्रावारी गुकपावरण कम्वलादि अन्य त प्रावारः कार्णासलामवदुत्तरीयम् । भाजन सुप्तस्परालोमश चर्म । कीपेय क्रिमिकोपोद्शवक्तम् । प्रवेणी गोपी, अन्य त प्रवेणी प्रचीवारणाख्या वस्त्रविशेष हत्याष्ट्र. । रीरवी वस्त्रभेद इति केचित् अन्य त कार्णामवस्त्रमवेत्याष्ट्रः, चरके रीरवरथाने कुथकेति पट्टाते, कुथक्तत् वाच्यकम्बल । उण्णस्वभावेलेष्ठमिरिति नेपालकम्बलप्रचुरतःलकपट्टादिभि । कि कृतवा रायन भजेदित्याद अद्वारित्यादि —अद्वारतापेन सन्तप्त यत् गर्भगृह गृह-कोष्ठक तथा भृगृहच्च । चरकेऽप्युवन—''सेवेत भूगृहच्चोष्णमुष्ण गर्भगृह तथा '' इति ॥ म ॥

श्रयमेव विधिः कार्य्यं शिशिरेऽपि विशेषतः। तदा हि शीतमधिकं रोच्यञ्चादानकालजम्॥ ६॥ व्यविधि शिशिरेऽतिदिशति श्रयमेवत्यदि। श्रयेव हेतुमाह तदेत्यदि ॥६॥

कफश्चितो हि शिशिरे वसन्तेऽक्तश्चितापितः।
हत्वाशि कुरुते रोगांस्तनस्तत्र प्रयाजयेत्॥
तीदणं वमननस्यादि कवलग्रहमञ्जनम्।
व्यायामोडर्त्तनं धूमं शौचकार्व्ये सुखोदकम्॥
स्नातेऽनुलितः कपूरचन्दनागुरुकुंकुमैः।
पुराण्यवगोधूमचौद्रजांगलग्रस्यमुक्॥
प्रियेदासवारिष्टसीधुमाध्वीकमाधवान्।
वसन्तेऽनुमवेत् स्रीणां काननानाञ्च यौवनम्॥
गुरूष्णस्निग्धमधुरं दिवास्वप्रञ्च वर्जयेत्॥१०॥

नसन्तविधिमाह कफ इत्यादि—ग्रह्य भटित्र ग्रह्मपाचितिमित्यर्थ । श्रासवा-रिष्ट झराक्रतसन्थानम्, सीधु ग्रहासनः । माध्नीक मधुकृत मधम्, श्रक्णस्तु माद्गिकेति पठित्वा मृद्दीकारसोद्भव मद्यमिति न्याचिष्ट । माधवो मधुरीकृत श्रासनः । श्रनुभविदित्यनेन श्रेष्मच्यार्थं स्तोक मेशुनमनुजानाति, वसन्तस्यादानमध्यत्वादिति मावः । ग्रीनत्यादौ—श्रम्तस्थाने उष्णेत्यपपाठ ॥ १०॥

> मयूषेर्जगतः स्नेहं ग्रीष्मे पेपीयते रिवः। स्वादु शीतं द्रवं स्निग्धमन्नपानं तदा हितम्॥ शीतं सशर्करं मन्धं जांगलान् मृगपित्तणः।

घृतं पयः सशाल्यमं भजन् श्रीपो न सीर्ति ॥

मद्यम्णं न वा पेयमथवा सुबहृदकम् ।

मध्याहें चन्द्नाद्रांगः स्त्रप्याद्धारागृहे निशि॥

निशाकरकराकीणें प्रवाते सीयमस्नेक ।

निशाकरकराकीणें प्रवाते सीयमस्नेक ।

निशाकरकराकीणें प्रवाते सीयमस्नेक ।

सेव्यमानो मजेदास्यां मुक्तामणिविमूपितः ॥

सव्यमानो मजेदास्यां मुक्तामणिविमूपितः ॥

सव्यमानो मजेदास्यां मुक्तामणिविमूपितः ॥

सव्यमानो मजेदास्यां मुक्तामणिविमूपितः ॥

सव्यमानो मजेदास्यां मुक्तामणिविमूपितः ॥

श्रीप्ति न्य्यामञ्चात्र वर्जयेत् ॥ ११॥

द्यानिति । निर्माह प्रवादि म्यागृह रिति हेदाः । निर्माति पेरण न्यम्यते ।

दर्गियमा प्रयोजित ॥ ११॥

भूवाप्पान्मेश्वानिष्यन्द्रात् पाकाद्दम्लाङ्जलस्य च । वर्षास्वित्रवले जीणे कृष्यन्ति पवनाद्यः ॥ भेजेत् साधारणे सर्वभूष्मएस्तेजनञ्च यत् । श्रास्थापनं शुद्धतनुर्जीणं धान्यं कृतान् रसान् ॥ जांगलं पिणितं यूपान् मध्वरिष्टं चिरन्तनम् । दि्व्यं कौषं श्वतं वास्मा मोजनन्वतिदुर्दिने ॥ व्यक्तास्लतवण्सेहं संशुष्कं ज्ञाद्रवल्लघु । नदीजलोद्दमन्याहःस्वमायासात्पांस्त्यंजेत् ॥ १२ ॥

वर्षाविषिनाह म्दाप्नादिन्नादि — मृदापं प्रमावदिव दोवश्यकोपनम् । अन्य द्व विचयः उत्पादः । नेवानिष्यन् रीत्यदात्कक्षयन् । अन्य प्रावक्षयः अन्यपादः व स्वमावदः विच्यते । अन्यपादः व स्वमावदः विच्यते । अन्यपादः चाल्यते चाल्यते अधिनान्दनि विद्यापकोपनिति दर्शयति । अन्यपादः अधिनान्दे व वाद्यापित्रात् व साद्यविषयः वाद्यति । पदेन वर्षाद्व अधिनान्देन वाद्यादिशोपः, वद्यादिशोपेन च वाद्विमान्दे विद्याप्तः । वर्षः हि वपन्दे—' मृदायेपान्त्याकेन मन्तिन्त च वादिया । विद्वित च नन्देन वेषु ' द्यान्दोन्यं दुष्यति । पवनादय धति पवन्त्रमानाः । चाहायानिति विदेशसानिक्षयम्, इतान् स्वान्तायानिति विदेशसानिक्षयम् ।

निति सस्कृतमासरसान्, मध्वरिष्ट मधुकृतमिर्ष्ट, चिरन्तन पुरातनम् । दिव्यमित्या-काराजलम्, भोजनिमत्यादि परेख सम्बध्यते । सशुष्क्रिमिति नातिद्रवम् । चौद्रवदिति मधुयुक्तम् । एतच वापिकदेरोक्षेरो शोधनार्थं ग्रेयम् । वर्जनीयमाह नदीत्यादि । उदकमन्यः उदकप्रधानो मन्य , अह.स्वम दिवास्वमः ॥ १२॥

वर्णशितोचिताङ्गानां सहसैवार्करिशमिः।
तप्तानामाचित्तं पित्तं प्रायः शरिद कुप्यति ॥
तज्जयाय घृतं तिक्तं विरेको रक्तमोच्चणम्।
तिक्तं स्वादु कषायञ्च चुधितोऽत्रं भजेच्चघु ॥
इच्चः शालयो मुद्राः सरोऽम्भः क्षथितं पयः।
शरदोतानि पथ्यानि प्रदोपं चेन्दुरश्मयः॥
शारदानि च माल्यानि वासांसि विमलानि च।
तुपारचारसौहित्यदधितेलरसातपान् ॥
तीच्णमद्यदिवास्वप्रपुरावातातपांस्त्यजेत्।
शति वर्षासु चाद्यांस्त्रीन् वसन्तेऽन्त्यान् रसान् भजेत्॥
स्वादून् निदाध शरिद स्वादुतिक्रकषायकान्।
शरद्रसन्तयो रूचं शीतं धर्मधनान्तयोः॥
श्रत्रपानं समासेन विपरीतमतोऽन्यथा।
नित्यं सर्वरसाभ्यासः स्वस्वाधिक्यमृतावृतौ॥१३॥

शराद्विधिमाह वर्षेत्यादि—उचित समवेतम्, उच समवाये इत्यस्य रूपम् । भमवायोऽत्र सतताभ्यासरूपः सम्बन्धः, तेन शीतसमवेताङ्गानामित्यर्थः । सहसा इत्यः क्रमेण । श्राचितमिति सञ्चित वर्षाद्धः । प्राय इति वचनात् कदाचित्, वर्षाद्धः शीतमधुरादिसेवया पित्तच्यमयात् शरिद कोषो न भवत्येवेति दर्शयति । तिक छत पञ्चतिक्षधतादिकम् । कथित पय इति श्वत दुग्धम् । प्रदोषे चिति चकारे।ऽवधारणे प्रदोष प्वेत्यर्थः । वर्जनीयमाह तुपारेत्यादि । ऋतुमेदे रसानाहः शीत इत्यादि—वाग्मटस्य । शीत इति हिमशिशिरयोः । श्राधान् श्रीनिति स्वाह्वम्ललवण्यरसान् । श्रन्त्यानिति कद्वतिककषायानिति । शरद्वसन्तयोरित्यादी भजेदित्यनेन पूर्वोक्तेनान्वयः । श्रतः श्रन्यथेति—हेमन्तशिशिरयोस्तु विपरीतिमिति क्षिण्धम्, उष्णाद्यपान मोजयेदित्यर्थः । नित्यमिति सर्वदा सर्वेषा ष्रण्णा रसानामभ्यासः कार्यः । एवञ्च

सित शांते वर्णामु चार्चाकानित्यादि यदुक तदिरुध्यत इत्यत आह स्वस्वाधिक्य-मित्यादि—यरिमन् यरिमन् ऋतौ यो रसः सेन्यत्वेनोक तस्याधिक्यमात्रे तद्वचनस्य वात्पर्यामिति भाव ॥१३॥

ऋतेराद्यन्तसप्ताहानृतुसिन्धिरिति स्मृतः।
तत्र पूर्वो विधिस्त्याज्यः सेवनीयोऽपरः क्रमात्॥
इत्युक्तसृतुस्तत्यं यञ्चेष्टाहारव्यपाश्रयम्।
उपशते यदौवित्यादोकसात्म्य तदुच्यते॥
वेशानामामयानाञ्च धिपरीतगुणं गुणैः।
सात्म्यमिच्छन्ति सात्म्यक्षाञ्चेष्टितञ्चाद्यमेव च॥
तत्र्च नित्यं प्रयुक्षीत स्वास्थ्यं येनानुवर्तते।
ऋजातानां विकाराणामनुत्पत्तिकरञ्च यत्॥
नगरी नगरस्येव रथस्येव रथी यथा।
स्वश्ररीरस्य मेघावी कृत्येण्ववहितो भवेत्॥१४॥
इत्यृतुचर्या सुस्थाधिकारश्च।

श्रव्यारित्यादि—पूर्वश्रवारन्यमासस्यान्तिममप्ताह तथा परश्रव्याराधमासस्य प्रथमसप्ताहमिति सप्ताहद्वय श्रव्यसित्यर्थ. । क्रमादिति न महसा त्यागशीलने विधेये । अत्र हेतुर्वारमेटनैवोक्षी यथा—'श्रिसात्य्यजा हि रोगा. स्यु सहसा त्यागशीलनात्" हित । सात्म्यत्यागादसात्म्यमेय नाचेरिदित्यर्थ. । उपसहरित हत्युक्तमित्यादि । श्रद्धतात्म्यप्रसिक्षनाभ्यासमात्म्यमप्याह उपशेते हत्यादि—उपशेते स्वादि स्वादि स्वयादि श्रप्यमि विकार न जनयित । क्रुत हत्याह श्रीचित्यादित्यस्यासात् । अपभ्यमि हि निरन्तराभ्यासात् विपिनवाशीविषस्य नोपधातक भवतीति माव । श्रोकोऽभ्यास , तेन सात्म्यमोकसात्म्यम् । देशसात्म्य रोगसात्म्यश्र दर्शयित देशानामित्यादि—देशानामान्पादीनां ग्रंथे खेहगौरवादिभि सह विपरीतग्रय केहगौरवविपरीतरीच्यलाघवग्रक मुद्रजाङ्गलमासमध्यादि । श्राद्यमदनीयमध्य, विद्यानामात्वे, देशसात्म्यभिच्छन्त्यायुर्वेजविद हत्यर्थः । यवमामयविपरीतश्र शीविकारे उध्यमित्यादि रोगसात्म्यमित्यर्थः । ग्रुखश्रच्येनात्र विपरीतप्रमावायामिय महण्यम्, ततश्र प्रभाववैपरीत्यात् तादिवर्यायार्थकारियाञ्च महण्यम्, स्वाव प्रभाववैपरीत्यात् तादिवर्यायार्थकारियाञ्च महण्यम् । इदानीं मन्थ-

विस्तरमयात् सचेपेण स्वास्थ्यपरिपालनोपायमाद् तचेत्यादि—स्वाम्थ्यमिष् चद्वेजक-धातुवेषम्याविरिद्दतधातुसाम्यम् । तच्च स्वास्थ्यसुभय परिपाल्यते । विशुद्धाद्दाराचारा-भ्या सदा चीयमाणशरीरपोपणेन, प्रत्यवायदेतुपरिद्दारेण च, यथा दीपपरिपालन स्नेद्दविद्धानात् पोषणेन क्रियते, तथा निर्वापकदेतुवातादिपरिद्दारेण च। तत्र स्रोकपूर्वाद्धेन स्वास्थ्यपोपकदेतुरुक्ष , उत्तराद्धेन तु स्वास्थ्यविद्यातकदेतुपरिद्दारोऽभि-धय इति न पौनरुक्त्यम् । श्रमुत्पितिरेद्द उत्पादकसामग्रीविद्यहनम् । इदानीसुक्ष-स्यानुक्तस्य सुर्थाविधेरनेन कर्तव्यतामाद्द नगरीत्यादि—नगरी रथी चेति नगर्रथ-योरिषद्भतः, कृर्थेष्केष्वनुक्तेषु च॥१४॥

इत्यृतुचर्या सुस्थाधिकारश्च ॥

गौडाधिनाथरसवत्यधिकारिपात्र-नारायणस्य तनयः सुनयोऽन्तरंगात् । मानोरतु प्रथितलोधवलीकुलीनः श्रीचक्रपाणिरिह कर्नृपदाधिकारी ॥ १४ ॥

इदानीं ग्रम्थपरिसमांसी पिन्नदीनामुत्कित्तिनपूर्वक स्वनाम निवेशयन्नाह गौडा-धिनाधेत्यादि—गौडाधिनाथो नयपालदेव,, तस्य रसवती महानसम्, तस्याधिकारी सथा पात्रमिति मन्त्री, ईट्टशो यो नारायर्णस्तस्य तनयः, मुनय इति नीतिमान्, अन्तरद्वादिति लब्धान्तरद्वपदिवकात् भानोर्नु नारायणस्य तनय इति योज्यः तेन भानोर्नुज इत्यर्थ । विधाकुलसम्पत्तो हि भिषगन्तरद्व इत्युच्यते । लोधवलीसक्वक्दन्तकुलोत्पन्न ॥ १४॥

> यः सिद्धयोगितिखिताधिकसिद्धयोगा-नत्रैव नित्तिपति केवलमुद्धरेद्वा । महत्रयत्रिपथवेद्विदा जनेन दत्तः पतेत् सपदि मूर्द्धनि तस्य शापः ॥ १६ ॥ समातोऽयं ग्रन्थः ॥

य श्त्यादौ—सिद्धयोग श्रित यृन्दकृतसम्रहस्य सज्ञा, ताह्मेखितयोगमपेच्याधिका ये च सिद्धयोगा श्रत्र समहे जक्षास्तानधिकयोगान् तत्रैव सिद्धयोगे निचिपति, तथा यो वा तानधिकसिद्धयोगानित संम्रहादुद्धरेत् दूरीकुर्यात् , तस्य मूर्द्धनि श्रृंद्रोन पुँचा वच शान पेतर् । काँहुशेन पुदा रै—महत्रपत्रिपयेवेदविदा । काँरिवै बृहर्ट्टीका चल्द्रदोकेति महत्रपन् . त्रिपयेवेदा ऋाष्ट्रज्ञ सामरूपः , तदिदा ॥ १६ ।

> प्रस्वान्द्रमसा मुन्द्रवं चर्नमंग्रह्म् । प्रस्वागिद्रमस्तामिनिमिता दल्लचित्रका ॥ श्रासीद् समाया शिखेर्ष्यरम्य नष्वप्रतिष्ठ किल साहिसेन्, । बाद्योदिनासं क्षेत्रसर्वमीन विदित्य यः प्राप यसास्सुरुम् ॥ कानुन्यसेसन्यनपक्षकोऽम्द्र सतोऽपि तद्मीषरसेननामा । स्स्मारमृदुद्वरपन्यम्बन्नमादननास्त्वसोऽप बदे ॥ मालिङ्कत्रामानिन्नासम्मेगौँ शवनीपनिष्यदस्य । श्रान्यसेनम्य सुत्रो विषये दीक्रामिना श्री शिवदाससेनः ॥ देक्रसुर्वेतिहिताः स्तुर्था ये वा गुरम्योऽपिगता नयापि । सन्दत्र देऽमी उत्तर्न श्रमेष् दीक्र स्वरित्र समास ॥